



सिनगार

श्री तारतम वाणी

सिनगार

टीका व भावार्थ

श्री राजन स्वामी

प्रकाशक

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

नकुड़ रोड, सरसावा, सहारनपुर, उ.प्र.

www.spjin.org

सर्वाधिकार सुरक्षित (चौपाई छोड़कर)

© २००९, श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रस्ट

पी.डी.एफ. संस्करण — २०१८

अनुक्रमणिका

अनुभूमिका 12

1 बरनन करो रे रूहजी 14

2 अब हुकमें द्वारा खोलिया 88
(हुकमें इस्क का द्वार खोल्या है)

3 आसिक इन चरन की 152

4 ऐसा आवत दिल हुकमें (आतम 216
फरामोसी से जागे का प्रकरण)

5 सखीरी तेज भरयो आकास लों 288
(चरन को अंग तिनमें नख अंग)

6 फेर फेर चरन को निरखिए 299
(चरन हक मासूक के उपली सोभा)

7 ए क्यों छोड़े चरन मोमिन 354
(चरन निसबत का प्रकरण अन्दरताई)

- | | | |
|----|---------------------------------------------------------------|-----|
| 8 | उमर जात प्यारी सुपने
(कदम परिकरमा निसबत) | 444 |
| 9 | अर्स अन्दर सुख देवहीं
(अर्स अन्दर निसबत चरन) | 516 |
| 10 | असल इजार एक पाचकी
(श्री राजजी की इजार) | 533 |
| 11 | रूह मेरी क्यों न आवे तोहे लज्जत
(खुले अंग सिनगार छबि छाती) | 538 |
| 12 | मुख मेरे मेहेबूब का
(खभे कण्ठ मुखारविंद सोभा समूह) | 624 |
| 13 | श्रवण की किन विध कहूं
(हक मासूक के श्रवण अंग) | 676 |
| 14 | देखों नैना नूरजमाल
(हक मासूक के नेत्र अंग) | 718 |

- | | | |
|----|---------------------------------------------------|------|
| 15 | गौर निरमल नासिका
(हक मेहेबूब की नासिका) | 767 |
| 16 | जाको नामै रसना
(हक मासूक की जुबान की सिफत) | 781 |
| 17 | देत निमूना बीच नासूत
(हक मासूक के वस्तर) | 842 |
| 18 | भूखन सब्दातीत के
(हक मेहेबूब के भूखन) | 875 |
| 19 | फेर फेर पट खोलें हुकम
(जोबन जोस मुख बीड़ी छबि) | 934 |
| 20 | हक इलम के जो आरिफ
(हक मासूक का मुख सागर) | 996 |
| 21 | याद करो हक मोमिनों
(मुखकमल मुकुट छबि) | 1125 |

- | | | |
|----|---------------------------------------------------------------------------------|------|
| 22 | क्यों बरनों हक सूरत
(सिनगार कलस तिन सिनगार
बरनन विरहा रस) | 1297 |
| 23 | अरवा आसिक जो अर्स की
(मोमिन दुनी का बेवरा) | 1439 |
| 24 | सोई कहूं हकीकत मारफत
(हकीकत मारफत का बेवरा) | 1571 |
| 25 | इस्क रब्द खिलवत में
(मोमिनों की सरियत, हकीकत,
मारफत, इस्क रब्द का प्रकरण) | 1660 |
| 26 | बसरी मलकी और हकी
(कलस का कलस) | 1741 |
| 27 | एता मता तुम को दिया
(मता हक ताला ने मोमिनों को दिया) | 1767 |

28	बरनन कराए मुझपे	1825
29	रूहों मै रे तुमारा आसिक (हक मेहेबूब के जवाब)	1860

प्रस्तावना

प्राणाधार श्री सुन्दरसाथ जी! अक्षरातीत श्री राज जी के हृदय में ज्ञान के अनन्त सागर हैं। उनकी एक बूँद श्री महामति जी के धाम हृदय में आयी, जो सागर का स्वरूप बन गयी। इसलिये कहा गया है कि "नूर सागर सूर मारफत, सब दिलों करसी रोसन" अर्थात् यह तारतम वाणी मारिफत के ज्ञान का सूर्य है। यह ब्रह्मवाणी सबके हृदय में ब्रह्मज्ञान का उजाला करती है।

"हक इलम से होत है, अर्स बका दीदार" का कथन अक्षरशः सत्य है। इस ब्रह्मवाणी की अलौकिक ज्योति सुन्दरसाथ के हृदय में माया का अन्धकार कदापि नहीं रहने देगी। इस तारतम वाणी की थोड़ी सी भी अमृतमयी बूँदों का रसास्वादन जीव के लिये परब्रह्म के साक्षात्कार एवं अखण्ड मुक्ति का द्वार खोल देता है। अतः वैश्विक

स्तर पर इस ब्रह्मवाणी का प्रसार करना हमारा कर्तव्य है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये यह आवश्यक है कि अनेक भारतीय भाषाओं में अवतरित इस ब्रह्मवाणी की टीका सरल भाषा में प्रस्तुत हो। यद्यपि वर्तमान में अनेक सम्माननीय मनीषियों की टीकायें प्रचलित हैं, किन्तु ऐसा अनुभव किया जा रहा था कि एक ऐसी भी टीका हो, जो विश्लेषणात्मक हो, सन्दर्भ, भावार्थ, स्पष्टीकरण, एवं टिप्पणियों से युक्त हो।

मुझ जैसे अल्पज्ञ एवं अल्प बुद्धि वाले व्यक्ति के लिये यह कदापि सम्भव नहीं था, किन्तु मेरे मन में अचानक ही यह विचार आया कि यदि सन्त कबीर जी और ज्ञानेश्वर जी अपने योगबल से भैंसे से वेद मन्त्रों का उच्चारण करवा सकते हैं, तो मेरे प्राणवल्लभ अक्षरातीत मेरे से वाणी की टीका की सेवा क्यों नहीं करवा सकते?

इसी आशा के साथ मैंने अक्षरातीत श्री जी के चरणों में अन्तरात्मा से प्रार्थना की।

धाम धनी श्री राज जी, एवं सद्गुरु महाराज श्री रामरतन दास जी की मेहर की छाँव तले मैंने यह कार्य प्रारम्भ किया। सरकार श्री जगदीश चन्द्र जी की प्रेरणा ने मुझे इस कार्य में दृढ़तापूर्वक जुटे रहने के लिये प्रेरित किया। ब्रह्मवाणी के गुह्य रहस्यों के ज्ञाता श्री अनिल श्रीवास्तव जी का इस टीका में विशेष सहयोग रहा है।

सभी सम्माननीय पूर्व टीकाकारों के प्रति श्रद्धासुमन समर्पित करते हुए मैं यह आशा करता हूँ कि यह टीका आपको रुचिकर लगेगी। सभी सुन्दरसाथ से निवेदन है कि इसमें होने वाली त्रुटियों को सुधारकर मुझे भी सूचित करने की कृपा करें, जिससे मैं भी आपके अनमोल वचनों से लाभ उठा सकूँ एवं अपने को धन्य-धन्य कर सकूँ।

आप सबकी चरण-रज

राजन स्वामी

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा

जिला सहारनपुर (उ.प्र.)

निजनाम श्री जी साहिब जी, अनादि अक्षरातीत।
सो तो अब जाहेर भए, सब विध वतन सहीत।।

सिनगार

श्री किताब महासिनगार की जो हुकमें बरनन किया

यह ग्रन्थ श्री राज जी के श्रृंगार पर बृहत् रूप से प्रकाश डालने वाला है। स्वयं अक्षरातीत ने श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर इस ग्रन्थ का अवतरण किया है।

यह श्रृंगार ग्रन्थ श्री जी के वाङ्मय कलेवर का मुखारविन्द है। मुख ही दिल का दर्पण होता है। अक्षरातीत के हृदय में प्रेम, आनन्द, सौन्दर्य, एकत्व, और ज्ञान आदि के जो अनन्त सागर लहरा रहे हैं, उनका प्रकट रूप मुखारविन्द की शोभा में देखा जा

सकता है। उसकी झलक इस श्रृंगार ग्रन्थ द्वारा हमें इस संसार में मिल रही है।

श्रृंगार ग्रन्थ की वाणी ब्रह्मसृष्टियों के लिये मारिफत (परम सत्य, निरपेक्ष सत्य) का द्वार खोलती है। इसके बिना धाम धनी के दिल में बैठकर उनके सागरों के गुह्य रहस्यों को नहीं जाना जा सकता। श्री राज जी के दिल के जिन भेदों को परमधाम से लेकर आज तक जाना नहीं जा सका था, वह सब इस श्रृंगार ग्रन्थ में निहित है।

इस ग्रन्थ का अवतरण श्री ५ पद्मावती पुरी धाम में वि.सं. १७४७ में हुआ था। इस ग्रन्थ में निहित ज्ञान को आत्मसात् करके ब्रह्ममुनियों ने अध्यात्म जगत् की उस सर्वोच्च उपलब्धि को प्राप्त कर लिया, जिसमें केवल "तू" रह जाता है।

॥ मंगला चरण ॥

बरनन करो रे रूहजी, हकें तुम सिर दिया भार।

अर्स किया अपने दिल को, माहें बैठाओ कर सिनगार॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरी आत्मा ! अब तुम श्री राज जी के नख से शिख तक की शोभा का वर्णन करो, क्योंकि धाम धनी ने यह उत्तरदायित्व तुम्हें ही सौंपा है। उन्होंने तुम्हारे (सुन्दरसाथ के) दिल को अपना धाम बनाया है, इसलिये उनकी सम्पूर्ण शोभा को अपनी परात्म का श्रृंगार सजाकर विराजमान करो।

भावार्थ- सिर पर भार देने का तात्पर्य "उत्तरदायित्व सौंपने" से है। इस चौपाई के तीसरे चरण में कथित "अपने" शब्द का सम्बन्ध समस्त आत्माओं के धाम दिल से है। श्री महामति जी का हृदय तो पहले से ही

धाम बन चुका है, तभी तो उसमें श्री राज जी विराजमान होकर ब्रह्मवाणी का प्रकटन कर रहे हैं। "और जित आया हक इलम, अर्स दिल कह्या सोए" (सिनगार २४/४९) तथा "चरन ग्रहों नूरजमाल के, जिनने अर्स किया मेरा दिल" (सिनगार २/४२) से यही निष्कर्ष निकलता है कि ज्ञान और प्रेम के द्वारा जब धनी की शोभा दिल में विराजमान हो जाती है, तो उसे अर्श कहलाने की शोभा प्राप्त होती है।

इस चौपाई की दूसरी पंक्ति में सुन्दरसाथ के लिये धाम धनी का सिखापन है कि श्री राज जी ने ज्ञान के द्वारा उनके हृदय को धाम कहलाने की शोभा दे दी है। अतः उन्हें अपने हृदय में प्रेम भरना होगा और अपनी परात्म का श्रृंगार सजकर प्रियतम को बसाना होगा।

रूह चाहे बरनन करूं, अखंड सरूप की इत।

सुपने में सत सरूप की, किन कही न हक सूरत॥२॥

मेरी आत्मा यही चाहती है कि मैं श्री राज जी के अखण्ड स्वरूप का इस नश्वर जगत में वर्णन करूँ। आज दिन तक इस संसार में श्री राज जी के अखण्ड स्वरूप का वर्णन किसी ने भी नहीं किया है।

भावार्थ— संसार के अधिकतर ज्ञानीजनों ने परब्रह्म का स्वरूप निराकार माना है। साकारवादी मान्यता वाले लोगों ने स्वर्ग, वैकुण्ठ के देवी-देवताओं, त्रिदेवों, तथा आदिनारायण तक अपने को सीमित कर लिया। निराकार को पार करके योगमाया के ब्रह्माण्ड का साक्षात्कार करने वाली पञ्चवासनाओं (शुकदेव, सनकादिक, विष्णु, शिव, और कबीर जी) ने भी चतुष्पाद विभूतियों की ही शोभा का कुछ वर्णन किया है।

पुराण संहिता २९/७५-८० तथा माहेश्वर तन्त्र ४७/९-१३, ४९/३-२१ में जो अक्षरातीत की शोभा का वर्णन किया गया है, वस्तुतः वह "केवल ब्रह्म" की शोभा का वर्णन है, यद्यपि शिव जी का लक्ष्य और भाव अवश्य अक्षरातीत का है।

अक्षर और अक्षरातीत का स्वरूप एक ही है। इसी प्रकार अक्षर ब्रह्म के आनन्द स्वरूप "केवल ब्रह्म" का स्वरूप भी कुछ अंशों में तदोगत (वैसा ही) है और उसे प्रमाण रूप में माना जा सकता है, किन्तु अक्षरातीत के आवेश के बिना अक्षरातीत की शोभा का वर्णन कोई भी नहीं कर सकता। मुहम्मद साहिब ने भी परब्रह्म का दीदार अवश्य किया, किन्तु वर्णन करने का आदेश (हुक्म) नहीं था। अब श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर स्वयं परब्रह्म ही अपनी शोभा का वर्णन

करवा रहे हैं।

रात दिन बसैं हक अर्स में, मेरा दिल किया अर्स सोए।

क्यों न होए मोहे बुजरकियां, ऐसा हुआ न कोई होए॥३॥

परमधाम में अक्षरातीत अखण्ड रूप से विराजमान रहते हैं, किन्तु अब तो उन्होंने मेरे दिल को ही अपना धाम बना लिया है। ऐसी स्थिति में इस संसार में मेरी शोभा क्यों नहीं होगी? इस तरह की शोभा धारण करने वाला कोई व्यक्तित्व न तो पहले कभी हुआ है और न ही कभी होगा।

भावार्थ— श्री राज जी ने परमधाम से अलग पाँच स्वरूप (व्रज, रास, अरब, श्री देवचन्द्र जी, और श्री जी) धारण किये, किन्तु इनमें श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप की महिमा सर्वोपरि है। व्रज में अक्षर ब्रह्म की आत्मा को अपने निज

स्वरूप का बोध नहीं था। रास में भी जोश खींचे जाने से पूर्व यही स्थिति थी। अरब में भी मेअराज से पूर्व उन्हें कुछ भी पता नहीं था।

तब धाम धनिएं कियो विचार, ए दोऊ मगन हुए खेले नर नार।
मूल वचन की नाहीं सुध, ए दोऊ खेलें सुपने की बुध॥

प्र० हि० ३७/३३

फेर मूल सरूपें देख्या तित, ए दोऊ मगन हुए खेलत।
जब जोस लियो खेंच कर, तब चित चौंक भई अक्षर॥

प्र० हि० ३७/४१

धाम धनी ने श्री देवचन्द्र जी के धाम हृदय में विराजमान होकर लीला की, किन्तु वि. सं. १७३५ से पहले उनकी आत्मा पूर्ण रूप से जाग्रत नहीं हो सकी थी। उनकी वास्तविक जागनी सम्वत् १७३५ के पश्चात् दूसरे जामे में हुई।

आवेस जाको मैं देखे पूरे, जोगमाया की नींद होए।

पर जो सुख दीसे जागनी, हम बिना न जाने कोए॥

क० हि० २३/४६

महंमद कहे मैं हुकमें, सब रूहें थीं मुझ मांहे।

मैं चल्या अर्स मेयराज को, पर पोहोंच सक्या नाहें॥

सनंध ४१/६३

इन पड़ उत्तर वास्ते, बाईजीएं किए उपाए।

विलख विलख वचन लिखे, सो ले ले रूहें पोहोंचाए॥

सनन्ध ४१/२१

यदि बशरी सूरत दूज का चाँद है और मल्की सूरत
पूर्णमासी का चाँद, तो श्री प्राणनाथ जी का स्वरूप
दोपहर का सूर्य है—

दसमी के सवा नव बरस, ता दिन पैदा सरूप सरस।

पीछे जो तीसरा हुआ तमाम, वह चांद ए सूरज आखिरी इमाम॥

ब० क० १२/४

यदि यह संशय किया जाये कि सिनगार १ / ३ में महामति जी की महिमा का यह प्रसंग अन्य ब्रह्मात्माओं के साथ है, पूर्व के स्वरूपों के साथ नहीं, तो इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि यद्यपि इन पाँच स्वरूपों में धाम धनी ने ही लीला की है, किन्तु इनमें भाग लेने वाली आत्माओं को अलग-अलग प्रकार की शोभा मिली है, जो उनके स्वरूप के साथ जुड़ जाती है, जैसे ब्रज, रास, एवं अरब में अक्षर ब्रह्म की आत्मा की लीला है, तो जागनी ब्रह्माण्ड में श्यामा जी के दो तनों की लीला है, जिसमें दूसरे तन में श्री इन्द्रावती जी की आत्मा लीला करती है और उन्हें अक्षरातीत की शोभा

मिलती है। यह शोभा सबसे विशिष्ट है—

कोई दूजा मरद न कहावहीं, एक मेंहेंदी पाक पूरन।

खेलसी रास मिल जागनी, छत्तीस हजार सैंयन॥

सनंध ४२/१६

तारीफ महंमद मेंहेदी की, ऐसी सुनी न कोई क्यांहें।

कई हुए कई होएसी, पर किन ब्रह्माण्डों नांहें॥

सनंध ३०/४३

प्रगटे पूरण ब्रह्म सकल में, ब्रह्म सृष्ट सिरदार।

ईश्वरी सृष्ट और जीव की, सब आए करो दीदार॥

किरंतन ५७/२

नाम सिनगार सोभा सारी, मैं भेख तुमारो लियो।

किरंतन ६२/१५

कई देव दानव हो गए, कई तीर्थकर अवतार।

किन सुपने ना श्रवनों, सो इत मिल्या नर नार॥

सनंध ३३/३

आया सबका खसम, सब सब्दों का उस्ताद।

महंमद मेंहेदी आए बिना, कौन मिटावे वाद॥

सनंध ३०/४१

सब्दातीत के पार की, सो कहनी जुबां हद इत॥

बीतक ६२/८

किन कायम द्वार न खोलिया, अव्वल से आज दिन।

जो कोई बोल्या सो फना मिने, किन पाया न बका वतन॥४॥

सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर आज दिन तक किसी ने भी
अखण्ड धाम की पहचान नहीं दी थी। परब्रह्म के सम्बन्ध

में सबका वर्णन इस नश्वर जगत् तक ही सीमित रहा है। किसी को भी अखण्ड धाम का ज्ञान नहीं था।

भावार्थ- इस चौपाई में यह दर्शाया गया है कि जीव सृष्टि में उत्पन्न होने वाले ज्ञानीजन परब्रह्म के धाम के सम्बन्ध में किस प्रकार अनभिज्ञ रहे हैं। यहाँ ईश्वरी सृष्टि की विभूतियों का कोई प्रसंग नहीं है।

अर्स बका हक बरनन, सो बीच फना जिमी क्यों होए।

अव्वल से आज दिन लगे, बका सब्द न बोल्या कोए॥५॥

जब सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर आज दिन तक किसी को भी अखण्ड शब्द का बोध ही नहीं था, तो उस स्वलीला अद्वैत सच्चिदानन्द परब्रह्म और उनके अखण्ड धाम का वर्णन हो पाना इस नश्वर जगत् में कैसे सम्भव था?

भावार्थ- अखण्ड (बका) का तात्पर्य है वह वस्तु, जो

सृष्टि से पूर्व थी और सृष्टि के पश्चात् भी पूर्ववत् बनी रहे।
उसके स्वरूप में नाम-मात्र भी विकृति न हो सके।

ए चेतन कहावे झूठी जिमी, सो सब जड़ तूं जान।

जो थिर कहावे अर्स में, सो चेतन सदा परवान॥६॥

हे मेरी आत्मा! इस नश्वर संसार में जो चेतन प्राणी वर्ग है, उसे तुम जड़ ही समझना। इसके विपरीत परमधाम में स्थिर कहलाने वाले पदार्थों को तुम निश्चित रूप से हमेशा चेतन जानना।

भावार्थ- इस सृष्टि के सभी प्राणी आदिनारायण (महाविष्णु, ईश्वर) की चेतना के प्रतिभास (चिदाभास) हैं। मोहसागर में प्रकट होने वाले आदिनारायण का स्वरूप भी अव्याकृत का प्रतिबिम्बित स्वरूप होने से अखण्ड नहीं है। ऐसी स्थिति में जीवों के अखण्ड होने

का प्रश्न ही नहीं है। यही कारण है कि चेतन कहलाने वाले प्राणियों को भी मूलतः जड़ कहा गया है, क्योंकि इनका स्वरूप स्वप्नवत् है और जड़ संसार में है।

परमधाम में दृष्टिगोचर होने वाले माणिक और पुखराज पर्वत, रंगमहल, आठों सागर, हौज कोशर, आदि स्थिर होते हुए भी चेतन और नूरमयी हैं, क्योंकि इनका प्रकटन श्री राज जी के दिल से है। ये सभी आत्मस्वरूप हैं।

ए झूठी रवेसैं और हैं, और अर्स में और न्यामत।

ए किया निमूना अर्स जानने, पर बने ना तफावत॥७॥

कालमाया के इस झूठे ब्रह्माण्ड की लीला अलग प्रकार की है तथा परमधाम में नूरी शोभा, सौन्दर्य, चेतनता, आदि की सम्पदा रूपी लीला अलग प्रकार की है। यद्यपि इस ब्रह्माण्ड की रचना परमधाम को समझने के लिये ही

की गयी है, किन्तु तारतम ज्ञान के न होने से परमधाम और जगत् में भेद करना विद्वानों के लिये सम्भव नहीं हो पाता।

भावार्थ- यह जगत् असत्, जड़, और दुःखमय है, जबकि परमधाम सत्, चित्, और आनन्दमय है। तारतम ज्ञान के न होने से विद्वतजनों ने इस संसार में सच्चिदानन्दमय परब्रह्म का निवास मान रखा है। कड़्यों ने तो इस जगत् को ही ब्रह्मरूप माना है। वे यजुर्वेद के कथन "आदित्यवर्णं तमसस्परस्तात् " को भी अमान्य कर देते हैं। ऐसी स्थिति में स्वलीला अद्वैत परमधाम और त्रिगुणात्मक जगत् में भेद दर्शाना तारतम ज्ञान के बिना सम्भव नहीं है।

सतलोक मृतलोक दो कहे, और स्वर्ग कह्या अमृत।

जो नीके किताबें देखिए, तो ए सब उड़सी असत॥८॥

धर्मग्रन्थों में प्रायः मृत्यु लोक और वैकुण्ठ (सत्य लोक) का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार स्वर्गपुरी को मृत्यु से रहित प्राणियों वाला कहा गया है, किन्तु यदि धर्मग्रन्थों का गहन चिन्तन किया जाये तो यह स्पष्ट होता है कि वैकुण्ठ सहित सभी लोक नश्वर हैं तथा महाप्रलय में लय हो जाने वाले हैं।

इन झूठी जिमी में केहेत हों, सांच झूठ हैं दोए।

जब आगूं अर्स के देखिए, तब इनमें न सांचा कोए॥९॥

इस नश्वर संसार में ही मैं सत्य लोक और नश्वर पृथ्वी लोक का वर्णन कर रही हूँ, किन्तु जब परमधाम की ओर देखती हूँ, तो यही निष्कर्ष निकलता है कि इस

कालमाया के ब्रह्माण्ड में कुछ भी सत्य (अखण्ड) नहीं है।

भावार्थ- सामान्यतः लोग जन्म-मरण के चक्र, रोग, तथा वृद्धावस्था के कष्टों से बचने के लिये स्वर्ग-वैकुण्ठ की इच्छा करते हैं। उनकी दृष्टि में ये अविनाशी लोक हैं, किन्तु जब परमधाम के समक्ष (परिप्रेक्ष्य में) इनको देखा जाता है, तो यही निष्कर्ष निकलता है कि ये भी मायाजनित हैं तथा नश्वर हैं।

अर्स हमेसा कायम, ए दुनी न तीनों काल।

हुआ है ना होएसी, तो क्यों दीजे अर्स मिसाल॥१०॥

परमधाम अनादि काल से अखण्ड है, जबकि यह संसार भूत, भविष्य, तथा वर्तमान में भी नहीं है। इसकी नश्वरता के कारण यही कहना पड़ता है कि यह संसार न

तो पैदा हुआ है, न है, और न होने वाला है। ऐसी स्थिति में इसकी तुलना परमधाम से कैसे की जा सकती है?

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय होता है कि वर्तमान समय में जब सूर्य, चाँद, और सितारों से भरा हुआ यह जगत् प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है, तो वर्तमान में इसके अस्तित्व को क्यों नकारा गया है?

वस्तुतः सत्य उसको कहते हैं, जिसके स्वरूप में रंचमात्र भी परिवर्तन न होता हो। इस ब्रह्माण्ड का प्रत्येक परमाणु पल-पल गतिशील है, जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक पदार्थ का स्वरूप पल-पल परिवर्तनशील है। मूलतः किसी भी पदार्थ का स्वरूप स्थिर नहीं है। दहकता हुआ सूर्य भी कुछ समय के पश्चात् शीतल हो जाने वाला है। यही कारण है कि वर्तमान में दिखने वाला जगत् सत्य की यथार्थ कसौटी पर खरा नहीं उतरता।

इस प्रकार जो वर्तमान में प्रत्यक्ष होते हुए भी नहीं है ,
उसके भूत या भविष्य में होने की बात नहीं मानी जा
सकती।

ए बारीक बातें अर्स की, इत दिल जुबां पोहोंचे नाहें।

ए हुकम कहावे हक का, इलम हुकम के माहें॥११॥

जिस परमधाम में अन्तःकरण और वाणी (जिह्वा) की
गति (पहुँच) नहीं है, वहाँ की ये बहुत ही रहस्यमयी बातें
हैं। इस ब्रह्मवाणी के अन्दर धनी का हुक्म (आदेश)
विद्यमान है और वह ही मुझसे इस ज्ञान को कहलवा रहा
है।

भावार्थ— धाम धनी अपने आवेश स्वरूप से श्री
महामति जी के धाम हृदय में विराजमान हैं और वे ही
इस ज्ञान को कह रहे हैं। उनके दिल की इच्छा को हुक्म

कहा गया है। इस प्रकार हुक्म के द्वारा कहा जाना या धनी के आवेश स्वरूप द्वारा कहे जाने में कोई अन्तर नहीं है।

सत सुख कई सरूप में, कई आनन्द आराम।

कई खुसाली खूबियां, अंग छूटे न आठों जाम॥१२॥

श्री राज जी के अखण्ड स्वरूप में अनेकों प्रकार के आनन्द और सुख छिपे हुए हैं। इस स्वरूप में आह्लाद उत्पन्न करने वाली अनेक प्रकार की विशेषताएँ छिपी हुई हैं, जो आठों प्रहर आत्मा के दिल से अलग नहीं हो पातीं।

भावार्थ— आनन्द आत्मा का विषय है, जबकि सुख जीव और उसके अन्तःकरण का विषय है। धाम धनी की शोभा को अपनी आत्मा के धाम हृदय में बसा लेने पर

आत्मा और जीव दोनों को ही अपनी पात्रता के अनुसार आनन्द, सुख, एवं आह्लाद का अनुभव होने लगता है।

अर्स सबे है चेतन, हर चीज में सब गुन।

सब न्यामतेँ एक चीज में, कमी न माहें किन॥१३॥

परमधाम की प्रत्येक वस्तु चेतन है। उसमें परमधाम के सभी गुणों— प्रेम, आनन्द, सौन्दर्य, एकत्व, सुगन्धि, ज्ञान, चैतन्यता आदि— की निधियाँ विद्यमान हैं। किसी भी वस्तु में अन्य किसी वस्तु की अपेक्षा कोई भी कमी नहीं है।

भावार्थ— सम्पूर्ण परमधाम सच्चिदानन्दमय है, अतः वहाँ की लीला रूपी प्रत्येक वस्तु में अक्षरातीत का ही स्वरूप क्रीड़ा कर रहा है। वहाँ के माणिक और पुखराज पहाड़, हौज कौशर, फूल बाग, आदि को लौकिक दृष्टि से नहीं

देखना चाहिए। वहाँ की प्रत्येक वस्तु आत्म-स्वरूप है और प्रेम के द्वारा अपने प्रियतम को रिझाती है।

इन झूठी जिमी में बरनन, सत सरूप को कह्यो न जाए।

कबूं किन कानों ना सुनी, सो क्यों जीव हिरदे समाए॥१४॥

इस नश्वर जगत में अक्षरातीत के अखण्ड स्वरूप का यथार्थ रूप से वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है। जिस शोभा को आज दिन तक, किसी ने जब किसी से सुना ही नहीं है, उसे सुनने पर भला कोई जीव अपने हृदय में कैसे आत्मसात् कर सकता है?

ए लीला जानें सृष्ट ब्रह्म की, जाए पोहोंच्या होए तारतम।

ए दृष्ट पूरन तब खुले, जाए अव्वल आखिर इलम॥१५॥

परमधाम की अद्वैत लीला को मात्र वे ब्रह्मसृष्टियाँ ही

जानती हैं, जिनके पास तारतम ज्ञान होता है। परमधाम में होने वाली ब्रह्मलीला में इश्क रब्द (प्रेम-सम्वाद) से लेकर इस जागनी ब्रह्माण्ड तक के सम्पूर्ण तथ्यों को जानने पर ही ज्ञान-चक्षु पूर्ण रूप से खुल पाते हैं।

भावार्थ- तारतम ज्ञान द्वारा जब प्रियतम परब्रह्म के धाम, स्वरूप, लीला, प्रेम-सम्वाद, ब्रज, रास, एवं जागनी लीला का यथार्थ बोध हो जाता है, तभी स्वलीला अद्वैत परमधाम के गुह्य रहस्यों को जाना जा सकता है।

कहे वेद वैराट कछुए नहीं, जैसे आकास फूल।

ए चौदे तबक जरा नहीं, ना कछू डाल न मूल॥१६॥

वेदान्त के ग्रन्थों में कहा गया है कि जिस प्रकार आकाश में फूल नहीं होता, उसी प्रकार इस जगत् का

अस्तित्व नहीं है। चौदह लोकों के यह ब्रह्माण्ड रूपी वृक्ष नाममात्र भी नहीं है। न तो इसकी कोई डालियाँ हैं और न ही जड़ है।

भावार्थ- वेदान्त के ग्रन्थों में इस जगत् को आकाश के फूल, खरगोश के सींग, तथा बन्ध्या के पुत्र के समान वर्णित किया गया है। अविद्या से ग्रस्त होने के कारण सीपी में चाँदी, रस्सी में सर्प, खम्भे में पुरुष, तथा आकाश में नीलिमा के समान इसका अस्तित्व माना गया है।

तुच्छत्वान्नासदासीद्गगनकुसुमवद्भेदकं नो सदासीत्।

(अद्वैत वेदान्त शतश्लोकी श्लोक २३)

आकाश कुसुम के समान तुच्छरूप होने से असत् नहीं था और भेद करने वाले (ब्रह्म से भिन्न) सत् नहीं था, किन्तु इन दोनों से भिन्न जगत् के उपादान कारण के रूप

में था।

नन्वविद्याध्यारोपितं यत्र यत्, तदसत् तत्र दृष्टम्—
यथां रजतं शुक्तिकायाम्, स्थाणौ पुरुषः,
रज्ज्वां सर्पः आकाशेतलमलित्वमित्यादि।

(अद्वैत वेदान्त (उपदेश साहस्री) ख० ५५)

कतेबे भी यों कहा, चौदे तबक ए जोए।

एक जरा नजरों न आवहीं, जाके टूक न होवें दोए॥१७॥

कतेब ग्रन्थों में भी कहा गया है कि चौदह लोकों का यह ब्रह्माण्ड इतना सूक्ष्म है कि एक कण के रूप में इसको देखा भी नहीं जा सकता और इसको दो टुकड़ों में बाँटा भी नहीं जा सकता।

भावार्थ— कुरआन पारा २६ सूरे मुहम्मद आयत ३७ में

कहा गया है कि यह संसार नाशवान है और केवल परमधाम ही अखण्ड है।

ऐसा चौदे तबक का निमूना, क्यों हक को दिया जाए।

ए सब्द झूठी जिमी का, क्यों सकिए अर्स पोहोंचाए॥१८॥

जब चौदह लोकों का यह ब्रह्माण्ड इस प्रकार से अस्तित्वविहीन है, तो इसकी उपमा अक्षरातीत या उनके अखण्ड परमधाम को कैसे दी जा सकती है? इस नश्वर जगत के शब्दों से परमधाम की शोभा का वर्णन हो पाना सम्भव ही नहीं है।

भावार्थ— इस चौपाई का आशय यह है कि इस ब्रह्माण्ड में दिखायी देने वाले सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्रों, या विद्युत की ज्योति से अक्षरातीत के स्वरूप की उपमा नहीं दी जा सकती।

कही जाए न सोभा इन मुख, ना कछू दई जाए साख।

एक जरा हरफ न पोहोंचहीं, जो सब्द कहिए कई लाख॥१९॥

इस नश्वर शरीर के मुख से न तो श्री राज जी की शोभा का वर्णन हो सकता है और न उसे दर्शाने के लिये कोई साक्षी ही दी जा सकती है। यदि धाम धनी की शोभा का वर्णन करने में लाखों शब्दों का प्रयोग किया जाये , तो उनमें एक भी शब्द परमधाम तक नहीं पहुँच पायेगा।

ना अर्स बका किन देखिया, ना कछू सुनिया कान।

तरफ भी किन पाई नहीं, तो करे सो कौन बयान॥२०॥

जब इस संसार में आज दिन तक किसी ने अखण्ड परमधाम को देखा ही नहीं, उसके बारे में अपने कानों से कुछ सुना ही नहीं, तथा यह भी उसे ज्ञात नहीं हो सका कि वह इस संसार से किस तरफ है, तो उसका वर्णन

भला कोई भी कैसे कर सकता था?

एक कह्या अर्स-अजीम, दूजा सदरतुल-मुंतहा।

तीसरा कह्या मलकूत, जो अर्स फरिस्तों का॥२१॥

धर्मग्रन्थों में तीन प्रकार के धामों का वर्णन है – एक तो परमधाम कहा जाता है और दूसरा अक्षर धाम। तीसरा वैकुण्ठ कहा जाता है, जिसमें विष्णु आदि देवगण रहते हैं।

ए तीनों अर्स मुख थें कहें, पर बेवरा न पासे किन।

ए दुनियां क्यों समझे, हकीकत खोले बिन॥२२॥

यद्यपि संसार के विद्वतजन अपने मुख से इन तीनों का नाम लेते हैं, किन्तु उनके पास इसका स्पष्ट विवरण नहीं है कि ये किसके धाम हैं, कहाँ पर हैं, और इनका स्वरूप

कैसा है? जब तक तारतम ज्ञान के द्वारा वास्तविक सत्य का प्रकाश न हो, तब तक संसार के लोग भला तीनों धामों की वास्तविकता कैसे जान सकते हैं?

हक हुकम जाहेर हुआ, दोऊ हादी हुए मेहेरबान।

खुली हकीकत मारफत, तो जाहेर करूं फुरमान॥२३॥

अब मेरे धाम हृदय में युगल स्वरूप विराजमान होकर मेहर की वर्षा कर रहे हैं। उनकी अनुकम्पा से उनके हुक्म (आदेश) की पहचान हो गयी है तथा परमधाम की हकीकत एवं मारिफत (सत्य तथा निरपेक्ष परमसत्य) भी स्पष्ट हो चुकी है। अब मैं धाम धनी की मेहर से धर्मग्रन्थों के गुह्य रहस्यों को प्रकाश में ला रही हूँ।

भावार्थ— अक्षरातीत के दिल की इच्छा ही आदेश या हुक्म है। उनके दिल का स्वरूप परमसत्य (मारिफत) है

तथा उसका प्रकट रूप (हकीकत) सम्पूर्ण परमधाम, श्यामा जी, एवं सखियाँ आदि हैं। परमधाम में अनादि काल से रहते हुए भी इश्क या हकीकत-मारिफत की पहचान नहीं थी, जो इस जागनी ब्रह्माण्ड में हुई है।

ए तीनों गिरो का बेवरा, एक रूहें और फरिस्ते।

तीसरी खलक आम जो, कुन्न केहेते उपजे॥२४॥

धर्मग्रन्थों में तीन प्रकार की सृष्टियों का विवरण है— एक तो ब्रह्मसृष्टि है और दूसरी ईश्वरी सृष्टि। तीसरी जीव सृष्टि है, जो आदिनारायण के संकल्प "एकोऽहम् बहुस्याम्" (कुन्न) से उत्पन्न हुई है।

भावार्थ— यद्यपि उपनिषदों और कुरआन के अन्दर एकोऽहम् बहुस्याम् (कुन्न) का कथन क्रमशः अक्षर और अक्षरातीत के लिये माना जाता है, किन्तु तारतम ज्ञान

की दृष्टि से देखने पर यह आदिनारायण (क्षर पुरुष) के लिये प्रयुक्त होता है। "अर्स से आवे हुकम, तिन हुकमें चलें कई हुकम" के कथन के आधार पर अक्षरातीत के अन्दर आया भाव (संकल्प) अक्षर से होते हुए स्वप्न स्वरूप आदिनारायण में आता है। इस प्रकार उपरोक्त कथनों में किसी भी प्रकार का विरोधाभास नहीं होता है।

रूहें गिरो कही लाहूती, और फरिस्ते जबरूती।

और गिरो जो तीसरी, जो कही मलकूती॥२५॥

ब्रह्मसृष्टियाँ परमधाम में रहती हैं और ईश्वरी सृष्टि योगमाया के ब्रह्माण्ड (सत्स्वरूप) में रहती हैं। तीसरी जीव सृष्टि का निवास वैकुण्ठ में होता है।

अव्वल खासल खास रूहन की, गिरो फरिस्तों की खास कही।

और कुन्न की तीसरी, ए जो आम खलक भई॥२६॥

अति विशिष्ट (खासल खास) सृष्टि ब्रह्मसृष्टियों की है, जो अक्षरातीत की अंगरूपा हैं। ईश्वरी सृष्टि को विशिष्ट अर्थात् विशेष (खास) सृष्टि कहते हैं। संकल्प से पैदा होने वाली जीव सृष्टि को साधारण (आम) सृष्टि कहते हैं।

दुनियां सरीयत फरज बंदगी, और फरिस्तों बंदगी हकीकत।

रूहों हकीकत इस्क, और इनपे है मारफत ॥२७॥

संसार में रहने वाली जीव सृष्टि कर्मकाण्ड की भक्ति को ही अपना सर्वोपरि कर्तव्य मानती है। ईश्वरी सृष्टि ज्ञान युक्त प्रेम मार्ग भक्ति (हकीकत की बन्दगी) की राह अपनाती है। ब्रह्मसृष्टियाँ ज्ञान-विज्ञान युक्त अनन्य प्रेम-

लक्षणा भक्ति (हकीकत-मारिफत के इश्क) की राह अपनाती हैं।

भावार्थ- शरीर एवं इन्द्रियों से की जाने वाली भक्ति कर्मकाण्ड के अन्तर्गत मानी जाती है। शुद्ध ज्ञान की राह पर चलते हुए ध्यान मार्ग का अवलम्ब करना हकीकत की बन्दगी है। परब्रह्म के अनन्य प्रेम का अनुसरण करते हुए उसकी शोभा में डूब जाना ब्रह्मसृष्टियों की राह है। विज्ञान (मारिफत) का द्वार इसी से खुलता है।

रूहें आसिक सोई लाहूती, जाके अर्स-अजीम में तन।

कह्या हकें दोस्त रूहें कदीमी, जो उतरे अर्स से मोमिन॥२८॥

परमधाम में रहने वाली ब्रह्मसृष्टियाँ धनी के प्रेम में हमेशा ही निमग्न रहने वाली होती हैं। इनके मूल तन परमधाम में मूल मिलावे में विराजमान हैं। निजधाम से

इस नश्वर जगत में अवतरित होने वाले इन ब्रह्ममुनियों को धाम धनी ने अपना अनादि मित्र कहा है।

भावार्थ- श्यामा जी और सखियों के रूप में श्री राज जी का दिल ही लीला कर रहा है। इस प्रकार श्री राज जी, श्यामा जी, एवं सखियों में अनादि काल से अटूट प्रेम का सम्बन्ध है, जिसे दर्शाने के लिये कदीम दोस्त (अनादि मित्र) शब्द का प्रयोग किया गया है। यद्यपि इनमें प्रिया-प्रियतम का भाव है, किन्तु इस संसार के भावों में दोस्त कहा गया है।

अर्स कहा दिल मोमिन, जो मोमिन दिल आसिक।

सो मोमिन कछुए न राखहीं, बिना अर्स बका हक॥२९॥

ब्रह्ममुनियों का दिल ही परमधाम होता है, क्योंकि ये धनी के यथार्थ प्रेमी (आशिक) होते हैं। ये ब्रह्ममुनि अपने

धाम हृदय में परमधाम और अक्षरातीत के अतिरिक्त
अन्य किसी को भी नहीं बसाते।

सोई मोमिन जानियो, जो उड़ावे चौदे तबक।

एक अर्स के साहेब बिना, और सब करे तरक॥३०॥

वास्तविक ब्रह्ममुनि वही है, जो चौदह लोकों के इस
ब्रह्माण्ड से अलग हो जाये। परमधाम में विराजमान अपने
प्राणवल्लभ को छोड़कर अन्य सांसारिक वस्तुओं के मोह
का पूर्णतया परित्याग कर दे।

भावार्थ— पृथ्वी, स्वर्ग, तथा वैकुण्ठ आदि लोकों के
भोग नश्वर हैं, और माया के बन्धन में बाँधने वाले हैं।
ऐसा जानकर, जो स्वप्न में भी इनकी कामना न करे
और सभी प्रकार की तृष्णाओं (लोकेषणा, वित्तेषणा,
तथा दारेषणा) का परित्याग कर दे, तो ऐसा कहा जा

सकता है कि उसने इस संसार में रहते हुए भी चौदह लोकों के ब्रह्माण्ड का परित्याग कर दिया है (उड़ा दिया है)। ऐसे व्यक्ति के हृदय में मात्र प्रियतम की छवि अखण्ड रूप से बसी होती है।

उतरे हैं अर्स से, वे कहे महंमद मेरे भाई।

सो आखिर को आवसी, ए जो अहेल इलाही॥३१॥

मुहम्मद साहिब कहते हैं कि परमधाम से अवतरित होने वाले वे ब्रह्ममुनि मेरे भाई हैं। वे कियामत के समय में इस संसार में प्रकट होंगे तथा परब्रह्म के ज्ञान के उत्तराधिकारी होंगे।

भावार्थ— ब्रह्ममुनियों को मुहम्मद साहिब के द्वारा अपना भाई कहे जाने का कारण यह है कि मुहम्मद साहिब के अन्दर अक्षर ब्रह्म की आत्मा विराजमान थी। परमधाम

की वहदत में अक्षर ब्रह्म, महालक्ष्मी, श्यामा जी, व सखियाँ श्री राज जी के ही अंग हैं। मुहम्मद साहिब ने अपने चारों नजदीकी व्यक्तियों अबू बक्र, उमर, उस्मान, तथा अली को अपना दोस्त (लौकिक) कहा है, भाई नहीं। यहाँ यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि इसी प्रकरण की चौपाई २८ में वर्णित धनी के कदीमी दोस्त तथा मुहम्मद साहिब के दोस्तों में आकाश-पाताल का अन्तर है।

वे फकीर अतीम हैं, मुझे उठाइयो उनों में।

हक बरकत दुनियां मिने, होसी सब इनों से॥३२॥

मुहम्मद साहिब ने परब्रह्म से प्रार्थना की है कि हे अल्लाह तआला! कियामत के समय में प्रकट होने वाले यतीम फकीरों के साथ मुझे भी रखना (जाग्रत करना)। इन

फकीरों की कृपा से ही खुदा की बरकत संसार को मिलेगी।

भावार्थ- इस चौपाई में ब्रह्ममुनियों (फकीरों) को यतीम कहने का कारण यह है कि वे लौकिक सुख-सुविधाओं के मोह-जाल से पूर्णतया अलग होंगे।

"मुक्त देसी ब्रह्माण्ड को , आए ब्रह्म आत्म सत " (किरंतन ७६ / १) का कथन इस चौपाई के तीसरे चरण के अनुकूल है, जिसमें यह कहा गया है कि सच्चिदानन्द परब्रह्म के ज्ञान, प्रेम, एकत्व आदि की निधियाँ इन ब्रह्ममुनियों के माध्यम से ही संसार में फैलेंगी।

अक्षरातीत के द्वारा लाये हुए परमधाम के तारतम ज्ञान के प्रकाश में स्वयं को जाग्रत करना ही "उठना" है।

मोहे इलम दिया हक ने, सो इनों को देसी इमाम।

आखिर बड़ाई इनों की, कहे मुसाफ हदीसें तमाम॥३३॥

मुहम्मद साहिब कहते हैं कि मुझे अल्लाह तआला (परब्रह्म) ने सारा ज्ञान दिया है और उन ब्रह्ममुनियों को परब्रह्म की आवेश शक्ति "इमाम" मुहम्मद महदी साहिब्बुज्जमा (श्री प्राणनाथ जी) के रूप में परमधाम का ज्ञान देगी। कुरआन और सभी हदीसों में कियामत के समय में प्रकट होने वाले इन्हीं ब्रह्ममुनियों (मोमिनों) की महिमा गायी गयी है।

भावार्थ- कुरआन-ए-पाक के पार: तीसवाँ "अमम" सूरत ९७ कद्र की आयत संख्या एक "इन्ना अन्जल्लाहु" से लेकर आयत संख्या चार-पाँच में वर्णित "मलाइकतु व रुहु" से तात्पर्य इन्हीं मोमिन ब्रह्ममुनियों से है। जबकि प्रायः विद्वान रुहों से तात्पर्य मुहम्मद (सल्ल.) व

जिबरील फरिश्ते से लेते हैं, जो कि अनुचित है, क्योंकि यहाँ पर "मलाइक" नहीं "मलाइकतुं" बहुवचन है, अर्थात् फरिश्तों से है। फरिश्ता तथा "रूह" (आत्मा) एकवचन है और "रूहु" बहुवचन शब्द है। अतः विचारिए कि ये मोमिनों के लिए ही है।

ए मांग्या अलिएं हकपे, मुझे उठाइयो आखिरत।

मेहेंदी के यारों मिने, मैं पाउं निसबत॥३४॥

हजरत अली ने भी अल्लाह तआला से प्रार्थना की थी कि हे खुदा ! जब आख़रूल इमाम मुहम्मद महदी साहिब्बुज्जमाँ इस नश्वर संसार में अपने दोस्त मोमिनों (ब्रह्ममुनियों) के साथ प्रकट हों, तो यह कृपा (इनायत) करना कि मैं भी उनके साथ रहूँ और मुझे भी कियामत के समय में अखण्ड ज्ञान का प्रकाश मिल सके (मैं

जाग्रत हो सकूँ)।

भावार्थ— लगभग ग्यारह सौ वर्ष के पश्चात् पुनः प्रकट होने का तात्पर्य है— मानव तन धारण करना। यद्यपि कतेब परम्परा में पुनर्जन्म का सिद्धान्त मान्य नहीं है, किन्तु यदि हम तारतम ज्ञान के प्रकाश में कतेब ग्रन्थों का अवलोकन करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि पुनर्जन्म एक ध्रुव सत्य है। कुरआन २/२९/१९ में स्पष्ट रूप से कहा गया है— "क्या इन लोगों ने देखा नहीं कि अल्लाह पहली बार कैसे पैदा करता है और पुनः उसकी पुनरावृत्ति करता है।" समस्त पैगम्बरों एवं अली वली उल्लाह इमाम हज़रत की इच्छा तभी पूर्ण हो सकती है, जब वे पुनः मानव तन धारण करें और इल्मे लुदुन्नी (तारतम ज्ञान) के प्रकाश में आत्मिक आनन्द प्राप्त करें। इसे ही "कब्र से उठना" कहा गया है। इस सम्बन्ध में

विशेष विवरण किरन्तन ६१/१३ की व्याख्या में दिया गया है, कृपया वहाँ देखें।

इमाम जाफर सादिक, उन्होंने मांग्या हकपे।

मुझे उठाइयो आखिरत, मेहेंदी के यारों में॥३५॥

इमाम जाफ़र "सादिक" ने भी अल्लाह तआला से प्रार्थना की है कि क्रियामत के समय जब आख़रूल इमाम मुहम्मद महदी साहिब्बुज़्ज़मा अपने दोस्तों के साथ इस फानी दुनियां में प्रकट हों, तो हमें भी उनकी संगति में रहने का अवसर मिले।

मूसा इबराहीम इस्माईल, जिकरिया एहिया सलेमान।

दाऊदें मांग्या मेंहेंदी जमाना, उस बख़त उठाइयो सुभान॥३६॥

हजरत इब्राहिम, इस्माईल, ज़िकरिया, याहिया,

सुलेमान, तथा दाऊद मूसा आदि पैगम्बरों ने भी परब्रह्म से प्रार्थना की है कि इमाम मुहम्मद महदी के समय में हमें भी तन मिले, ताकि उनके अलौकिक ज्ञान से हम जाग्रत हो सकें।

भावार्थ- "उठने" का भाव यह कदापि नहीं लेना चाहिए कि तारतम वाणी की आवाज सुनकर कब्रों में पड़े हुए मुर्दे उठकर खड़े हो जायेंगे। वस्तुतः इस पञ्चभौतिक शरीर को कब्र कहा गया है। उसमें अज्ञानता के अन्धकार में भटकने वाला जीव ही मुर्दा है, जो ब्रह्मवाणी के प्रकाश में अक्षरातीत और अपने निज स्वरूप की पहचान कर जाग्रत हो जायेगा। इसे ही "कब्रों से उठना" कहा गया है। इसके लिये पूर्व पैगम्बरों को पुनः मानव तन धारण करना अनिवार्य है।

लिख्या यों फुरमान में, सब आवेंगे पैगंमर।

जासी जलती दुनियां सबपे, कोई सके न मदत कर॥३७॥

कुरआन में ऐसा लिखा है कि कियामत के समय में सभी पैगम्बर प्रकट होंगे। दुःखों की अग्नि में जलने वाले दुनिया के सभी लोग उनके पास मुक्ति के लिये जायेंगे, लेकिन कोई भी पैगम्बर उनकी कुछ भी सहायता नहीं कर सकेगा।

भावार्थ- यह प्रसंग कुरआन में इन स्थानों पर है –
पा.१ आ.३०, पा.२ आ.२४७, पा.३ आ.२५१-२५२,
तथा पा.१६ आ.१०७-१०८।

आखिर महंमद छुड़ावसी, और आग न छूटे किन से।

सब जलें आग दोजख की, ए लिख्या जाहेर फुरमान में॥३८॥

कुरआन में यह बात प्रत्यक्ष रूप से लिखी है कि जब

सारी दुनिया दोजख की आग में जल रही होगी, तो उस समय एक मात्र महामति श्री प्राणनाथ जी (आखिरी मुहम्मद) ही सबको उससे मुक्ति दिलायेंगे। उनके अतिरिक्त अन्य कोई भी दोजख की आग से संसार के लोगों को नहीं छुड़ा सकेगा।

भावार्थ— कुरआन सूरः हश्र ५९ पारः २८ में यह प्रसंग वर्णित है कि एकमात्र मुहम्मद साहिब ही संसार के लोगों को दोजख की अग्नि से छुड़ायेंगे। इसका बाह्य अर्थ लेकर गैर-मुस्लिमों को काफिर और दोजखी कहने की भूल उग्रपन्थी लोगों द्वारा की जाती है, किन्तु इसका वास्तविक आशय श्री प्राणनाथ जी (हक्की सूरत) से है जो मुहम्मद की तीसरी सूरत हैं। इसी स्वरूप को आखरुल इमाम मुहम्मद महदी साहिब्बुज्जमा कहते हैं।

मुहम्मद साहिब ने तो हदीसों में पहले से ही "बारकला

हिंद मुस्लिम बारकला" कहा है। श्री प्राणनाथ जी, ब्रह्ममुनियों, और भारतवर्ष के विषय में मिस्कात शरीफ, मुस्लिम शरीफ, सही बुखारी, आदि में लिखा है कि मुहम्मद कहते हैं कि मुझे हिन्द से ईमान की खुशबू आ रही है। वहीं पर सच्चा इन्साफ होगा, जबकि अरब में फितना उठेगा।

सब पैगंमर सरमिंदे, होसी बीच आखिरत।

इत छिपी न रहे कछुए, खुले पट हकीकत मारफत॥३९॥

कियामत के समय जब हकीकत और मारिफत (ज्ञान-विज्ञान) के सभी भेद खुल जायेंगे तथा अध्यात्म जगत् की कोई भी गुह्य बात (धाम, स्वरूप, एवं लीला आदि) छिपी नहीं रहेगी, तो सभी पैगम्बर इस बात पर लज्जित (शर्मशार) होंगे कि हमारा ज्ञान तो तारतम ज्ञान के

समक्ष कुछ भी महिमा नहीं रखता।

पीठ देवे दुनी को, सो मोमिन मुतलक।

देखो कौल सबन के, सब बोले बुध माफक॥४०॥

निश्चित रूप से ब्रह्मसृष्टि वही है, जो इस संसार से मुख मोड़कर एकमात्र परब्रह्म से प्रेम करे। हे साथ जी! आप संसार के सभी धर्मग्रन्थों को देखिए। उनमें सभी ग्रन्थकारों ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार ही अपना वक्तव्य दिया है (कथन किया है)।

भावार्थ- मन्त्र-द्रष्टा ऋषियों ने वेदों की व्याख्या में शाखाओं, ब्राह्मणों, एवं आरण्यक ग्रन्थों की रचना की है। इन्हीं ऋषियों ने ऋतम्भरा प्रज्ञा (समाधिस्थ बुद्धि) द्वारा ग्यारह उपनिषदों तथा छः दर्शनों की भी रचना की है, किन्तु वर्तमान काल में उपनिषदों की संख्या १०८ तक

पहुँच गयी है। स्पष्ट है कि साम्प्रदायिक लोगों ने अपनी बुद्धि के अनुसार शेष रचना की है। इसी प्रकार पुराणों, उपपुराणों, तथा तन्त्र ग्रन्थों की रचना यही दर्शाती है कि इनके रचनाकारों का बौद्धिक स्तर ऋषियों से बहुत अलग (निम्न) था। यही स्थिति तौरेत, इज़ील, और जम्बूर में भी देखने को मिलती है।

माहें मैले बाहेर उजले, सो तो कहे मुनाफक।

मासिवा-अल्लाह छोड़ें मोमिन, तामें कुफर नहीं रंचक॥४१॥

जिनके हृदय में विकार भरा होता है, किन्तु ऊपर से अपनी पवित्रता दर्शाते हैं, उन्हें मिथ्यावादी (मुनाफिक) कहते हैं। ब्रह्मसृष्टियों में नाममात्र के लिये भी माया का विकार नहीं होता। वे परब्रह्म को छोड़कर शेष सारे संसार से किनारा कर लेती है।

भावार्थ- "मुनाफक" उसको कहते हैं, जो मुँह के सामने कुछ कहे तथा पीठ पीछे कुछ और कहे। ऐसा व्यक्ति दिल में कुछ और रखता है तथा मुख से कुछ और कहता है।

पाक दिल पाक रूह, जामें जरा न सक।

जाको ऊपर ना डिंभक, एक जरा न रखे बिना हक॥४२॥

परब्रह्म की अंगरूपा इन पवित्र ब्रह्मसृष्टियों का दिल भी अति पवित्र होता है। उनमें नाममात्र के लिये भी संशय जैसी कोई वस्तु नहीं होती। वे ऊपर से किसी प्रकार का आडम्बरयुक्त दिखावा नहीं करतीं। वे अपने दिल में अपने प्राणप्रियतम के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु को रंचमात्र भी नहीं बसातीं।

भावार्थ- हृदय में ज्ञान, भक्ति, एवं विनम्रता से रहित

व्यक्ति यदि मनोविकारों से ग्रसित रहे तथा मात्र अपनी धार्मिक वेशभूषा से सब पर अपना प्रभुत्व (रोब) दर्शाया करे, तो उसे आडम्बरी कहते हैं। ऐसे लोग बड़े-बड़े तिलक, माला, दाढ़ी, या रंगे हुए वस्त्रों को ही धर्म का स्वरूप मानते हैं, जबकि वे धर्म के वास्तविक स्वरूप से कोशों दूर होते हैं।

सरभर एक मोमिन के, कई कोट मिलो खलक।

जाको मेहेर करें मोमिन, ताए सुपने नहीं दोजक॥४३॥

यदि इस संसार के करोड़ों व्यक्ति भी मिल जायें, तो भी उनकी महत्ता एक ब्रह्मसृष्टि के बराबर नहीं हो सकती। जिस जीव पर ब्रह्मसृष्टि की मेहर होती है, उसे स्वप्न में भी दोजक की अग्नि में नहीं जलना पड़ेगा।

भावार्थ— ब्रह्मसृष्टि इस संसार में जीवों के ऊपर ही

विराजमान होकर इस खेल को देख रही है। ऐसी स्थिति में उस जीव के तन को भी आत्मा का ही तन कहा जाता है। ऐसा जीव भी संसार के अन्य जीवों से अलग होता है। इस संसार के करोड़ों लोग भी उसकी बराबरी नहीं कर सकते, क्योंकि उसके अन्दर परब्रह्म की अंगरूपा आत्मा विराजमान होती है। यद्यपि वह व्यक्तित्व, शारीरिक रूप, शक्ति, कुल, धन, विद्या, आदि में अन्य जीवों से पीछे हो सकता है, किन्तु उसकी आध्यात्मिक गरिमा के समक्ष करोड़ों लोग भी नहीं ठहर सकते, क्योंकि संसार के मनुष्य या देवता मात्र चिदाभास (नारायण की चेतना के प्रतिबिम्ब) हैं। जिस जीव के ऊपर किसी ब्रह्मसृष्टि का प्रेम बरसेगा, निश्चित रूप से वह वैसे ही भवसागर से पार हो जायेगा, जैसे चन्दन की सुगन्ध से बबूल आदि कंटीले वृक्ष भी सुगन्धि से भर

जाते हैं।

तुम सुनो मोमिनों वचन, जो धनिएं कहे मुझे आए।

साथ आया अपना खेलमें, सो लीजो सबे बोलाए॥४४॥

हे साथ जी! साक्षात् धाम धनी ने मुझसे इस संसार में जो बातें कही हैं, उसे सुनिये। धाम धनी ने कहा है कि परमधाम से जो भी सुन्दरसाथ इस खेल में आया है, उसे जाग्रत करके वापस परमधाम ले आओ।

मोहे कह्या आप श्री मुख, तेरी अर्स से आई आतम।

तोको दिया अपनायत जानके, हक बका अर्स इलम॥४५॥

अपने श्रीमुख से उन्होंने मुझसे कहा है कि इन्द्रावती (महामति)! तुम्हारी आत्मा परमधाम से इस माया का खेल देखने के लिये आयी है। परमधाम के मूल सम्बन्ध

से ही मैंने तारतम वाणी के रूप में तुम्हें परमधाम और अपने दिल का सारा ज्ञान दिया है।

निज हुकम आया सिर मोमिनों, जिनके ताले निज नूर।

ऐसे ताले हमारी रूह के, क्यों न करें हम हक जहूर॥४६॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी ! जब आप ब्रह्मसृष्टियों के सौभाग्य में ब्रह्मवाणी का अखण्ड प्रकाश मिला है और आपके साथ धाम धनी का हुकम है अर्थात् स्वयं धाम धनी लीला कर रहे हैं, तो हम सभी मिलकर उनकी महिमा को इस संसार में क्यों न प्रकट करें?

भावार्थ- संसार के लोग परब्रह्म की महिमा को कहते- सुनते तो हैं, किन्तु यथार्थ रूप से नहीं जानते। परब्रह्म की महिमा में उनकी पहचान अर्थात् धाम, स्वरूप, और लीला छिपी होती है। इसके बोध से ही संसार को

अखण्ड मुक्ति मिलेगी।

ब्रह्मसृष्ट हुती बृज रास में, प्रेम हुतो लछ बिन।

सो लछ अव्वल को ल्याय रूह अल्ला, पर न था आखिरी इलम पूरन॥४७॥

ब्रज और रास में अक्षरातीत के साथ ब्रह्मसृष्टियों का प्रेम तो था, लेकिन लक्ष्य विहीन था। जागनी लीला के प्रारम्भ में सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने तारतम ज्ञान के द्वारा उस लक्ष्य को दर्शा तो दिया, लेकिन "तारतम का तारतम" रूपी पूर्ण ज्ञान न होने से जागनी नहीं हो सकी।

भावार्थ- मूल घर और मूल सम्बन्ध की पहचान न होने से ब्रज और रास में धनी के प्रति जो प्रेम था, उसे लक्ष्य विहीन कहा गया है। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने मूल सम्बन्ध और निज घर की पहचान तो करा दी थी, किन्तु खिल्वत, परिक्रमा, सागर, और श्रृंगार की वाणी

के अवतरण न होने से यथार्थ जागनी सम्भव नहीं थी। सुन्दरसाथ आड़िका लीला में ही सम्मोहित होकर रह गये।

जोलों मुतलक इलम न आखिरी, तोलों क्या करे खास उमत।

पेहेचान करनी मुतलक, जो गैब हक खिलवत॥४८॥

जब तक "तारतम का तारतम" रूपी परमधाम का सर्वोपरि ज्ञान (आखिरी इल्म) न प्रकट हो, तब तक ब्रह्मसृष्टियाँ भी क्या कर सकती थीं? धाम धनी की छिपी हुई खिल्वत की पहचान तो इस पूर्ण ज्ञान के द्वारा ही सम्भव है।

भावार्थ— खिल्वत, परिक्रमा, सागर, तथा श्रृंगार को "तारतम का तारतम" कहते हैं। इन्हीं ग्रन्थों में हकीकत और मारिफत का ज्ञान निहित है, जिसके बिना आत्म—

जाग्रति का लक्ष्य पूर्ण नहीं हो सकता।

लिख भेज्या फुरमान में, हक रमूजें इसारत।

सो पाइए इलम हक के, जब खुले हकीकत मारफत॥४९॥

धाम धनी ने कुरआन, भागवत, तथा वेदादि में गुह्य रहस्य की बातें संकेतों में लिखकर भेजी हैं। जब ब्रह्मवाणी के द्वारा परमधाम की हकीकत और मारिफत के भेद स्पष्ट हो जायेंगे, तो इन धर्मग्रन्थों के भेद भी खुल जायेंगे।

भावार्थ— कुरआन का अधिकांश भाग ऐतिहासिक घटनाक्रमों के रूप में सांकेतिक भाषा में आलंकारिक शब्दों द्वारा लिखा गया है, किन्तु उसमें परमधाम और जागनी लीला सम्बन्धी गुह्य बातें छिपी हुई हैं, जिन्हें मात्र तारतम वाणी के प्रकाश में ही जाना जा सकता है।

कुरआन के नौवें (९) पारः में लड़ियों की माला बनाने का आशय यही है कि सभी किस्सों का एकीकरण करके समझें। इसी प्रकार वेदों में पहेलियों तथा संकेतों के द्वारा अध्यात्म जगत के गूढ़ रहस्यों को उद्घाटित किया गया है। अथर्व का स्कम्भ सूक्त तो इसके लिये प्रसिद्ध है। यही स्थिति भागवतादि धर्मग्रन्थों में भी देखने को मिलती है।

जो कीजे बरनन हक बका, होए जोस मेहेर हुकम।

निसबत हक हादीय सों, और आखिर इस्क इलम॥५०॥

किसी के द्वारा श्री राज जी के अखण्ड स्वरूप का वर्णन हो पाना तभी सम्भव है, जब आत्मा को धाम धनी का जोश, मेहर, और हुक्म प्राप्त हो। इसके अतिरिक्त युगल स्वरूप के साथ अखण्ड सम्बन्ध तथा प्रेम होना भी आवश्यक है। साथ ही साथ तारतम का तारतम रूप

चारों ग्रन्थों खिल्वत , परिक्रमा, सागर, तथा श्रृंगार का ज्ञान होना भी आवश्यक है।

भावार्थ- इस चौपाई में श्री राज श्यामा जी से सम्बन्ध होने का तात्पर्य है- युगल स्वरूप का साक्षात्कार होना। यह शोभा मात्र ब्रह्मसृष्टियों को ही प्राप्त है। मात्र महामति जी ही इस कसौटी पर खरी उतरीं और उनके तन से धाम धनी ने अपने श्रृंगार का वर्णन करवाया। अन्य ब्रह्मसृष्टियों को धनी की शोभा का वर्णन करने का हुक्म नहीं था।

अर्स अरवाहों को चाहिए, खोलें रूह की नजर।

तब देखें आम खलक को, ज्यों खेल के कबूतर॥५१॥

परमधाम की आत्माओं को चाहिए कि वे ब्रह्मवाणी के ज्ञान तथा धनी के प्रेम से अपनी आत्मिक दृष्टि को

खोलें। यदि वे ऐसा करके इस जगत की लीला को देखती हैं, तो उन्हें यह विदित हो जायेगा कि यह सम्पूर्ण जीव सृष्टि उस खेल के कबूतर की तरह हैं, जिसका बाजीगर (अक्षर ब्रह्म) दूर बैठे हुए इस खेल को खिला रहा है।

तो न लेवे निमूना इनका, ना लेवें इनकी रसम।

हक बिना कछुए ना रखें, अर्स अरवाहों ए इलम॥५२॥

इस अवस्था में ब्रह्मसृष्टि जीवों को अपना आदर्श नहीं मानेगी और उनके कर्मकाण्डों की नकल नहीं उतारेगी। धनी की वाणी का ज्ञान प्राप्त हो जाने के पश्चात् तो ब्रह्मसृष्टियाँ अपने धाम हृदय में अक्षरातीत के अतिरिक्त अन्य किसी को भी नहीं बसातीं।

भावार्थ— ब्रह्ममुनियों के जीवन का एकमात्र लक्ष्य होता

है- अक्षरातीत को अपने धाम हृदय में बसाना। वे कर्मकाण्डों में अपनी ऊर्जा को व्यर्थ नहीं करतीं। यद्यपि जीव सृष्टि में उत्पन्न होने वाले महापुरुषों के आध्यात्मिक गुण सम्माननीय हैं, किन्तु अक्षरातीत की प्राप्ति की तुलना में गौण हैं।

स्वयं धर्मात्मा होते हुए भी भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य ने विधर्मी दुर्योधन का ही साथ दिया, क्योंकि वे अपनी प्रतिज्ञा तथा अन्न ग्रहण करने के बन्धन में बन्धे हुए थे। इसी प्रकार कर्ण ने मित्र धर्म निभाने तथा शल्य ने स्वागत मोह में अन्याय का साथ दिया। इसी प्रकार अपने पिता के प्रति होने वाले अत्याचार का बदला लेने के लिये परशुराम जी ने भी कई बार बहुत से क्षत्रियों का वध कर डाला। ब्रह्मसृष्टियाँ धनी के प्रेम का मार्ग छोड़कर इस प्रकार की भूल नहीं करेंगीं।

इत सब मुतलकियां चाहिए, बरनन करना मुतलक।

लिख्या आखिर जाहेर होएसी, सूरत बका जात हक॥५३॥

अक्षरातीत की उस शब्दातीत शोभा का कुछ न कुछ (थोड़ा सा) वर्णन तो करना ही है, किन्तु यह वर्णन ब्रह्मसृष्टियों में ही करना उचित होता है। धर्मग्रन्थों में लिखा है कि कियामत के समय (अन्तिम समय) में ही परमधाम, परब्रह्म, तथा ब्रह्मसृष्टियों की शोभा का ज्ञान अवतरित होगा।

भावार्थ- "मुतलक" शब्द अरबी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ होता है - बिल्कुल, निश्चय, थोड़ा सा, निपट इत्यादि। इसी प्रकार मुतलकियां शब्द बहुवचन में प्रयुक्त है। इसका शुद्ध उच्चारण मुतलक़ी होता है, जिसका अर्थ होता है - मिलन करने वाला अर्थात् परब्रह्म का साक्षात्कार करने वाली ब्रह्मसृष्टियाँ।

लिख्या अव्वल फुरमान में, जाहेर होसी कयामत।

जो लों होए इलम मुकैयद, तोलों जाहेर न हक मारफत॥५४॥

धर्मग्रन्थों में यह बात पहले से ही लिखी है कि कियामत (अखण्ड ज्ञान के प्रकटन) का समय आयेगा। जब तक कर्मकाण्ड (शरीयत) के बन्धनों में जकड़े रहने वाला ज्ञान प्रसार में रहेगा, तब तक अक्षरातीत की वास्तविक पहचान नहीं हो सकती।

भावार्थ- "फुरमान" शब्द का तात्पर्य यहाँ मात्र कुरआन नहीं है, बल्कि दोनों धाराओं, वेद-कतेब अर्थात् हैमेटिक-सैमेटिक, के धर्मग्रन्थों से है। जहाँ कुरआन पारः (१) अलिफ़, लाम, मीम से लेकर पारः (३०) अम्मः तक में तथा हदीसों में कियामत के सात निशान बताये गये हैं, वहीं बाइबल में Second Christ के प्रकटन के समय चार निशानों का वर्णन किया गया है-

देखिये, कतेब ग्रन्थों की यह मान्यता है कि उस समय परब्रह्म का अलौकिक ज्ञान अवतरित होगा (The Solonians 4:16)। इसी प्रकार हिन्दू धर्मग्रन्थों पुराण संहिता, माहेश्वर तन्त्र, बुद्ध गीता, तथा बृहत्सदाशिव संहिता में परब्रह्म के द्वारा परमधाम के अलौकिक ज्ञान के प्रकट होने का वर्णन है—

अगाधाज्ञानजलधौ पतितासु प्रियासु च।

स्वयं कृपा महाम्भोधौ ममञ्ज पुरुषोत्तमः॥

पु० सं० ३१/५०

मुक्तिदा सर्वलोकानां भविता भारताजिरे।

प्रसरिष्यति हृद्देशे स्वामिन्याः प्रभुणेरिता॥

एवं सम्प्राप्त विज्ञाना विनिद्रा ब्रह्मणः प्रियाः।

प्राप्स्यन्ति परमानन्दं परिपूर्ण मनोरथः॥

बृहत्सदाशिव संहिता श्लोक १९, २०

तासामेकां च परमां सुभगां सुन्दरीं प्रियाम्।
प्रबोधयिष्यतितरां कथयित्वा विनिर्णयम्॥

मा० त० २२/२७

जेती चीजें अर्स में, सो सब मुतलक न्यामत।
सो मुतलक इलम बिना, क्यों पाइए हक खिलवत॥५५॥
परमधाम में जो भी नूर , प्रेम, आनन्द, एकत्व
(एकदिली) आदि वस्तुएँ हैं, वे सभी निश्चित रूप से
ब्रह्मसृष्टियों के लिये नेमतें (सम्पदायें) हैं। ऐसी स्थिति में
सर्वोपरि ज्ञान (तारतम वाणी) के बिना श्री राज जी की
खिल्वत की पहचान नहीं हो सकती।

भावार्थ- यद्यपि सामान्य रूप से खिल्वत का अर्थ मूल
मिलावे से लिया जाता है, किन्तु बातिनी रूप में धाम
धनी का दिल या सम्पूर्ण परमधाम ही खिल्वत है ,

क्योंकि श्री राज जी (आशिक) के दिल में सभी सखियों तथा श्यामा जी (माशूक) का स्वरूप विराजमान है। वर्तमान में भले ही श्री राज जी मूल मिलावे में बैठे हैं, किन्तु परमधाम के एक-एक कण में स्वयं श्री राज जी ही लीला कर रहे हैं और सम्पूर्ण परमधाम उनके प्रेम और आनन्द की लीलास्थली है।

ए जो चौदे तबक का बातून, तिन बातून का बातून नूर।
 ताको भी बातून नूर बिलंद, केहेना तिन बिलंद का बातून जहूर॥५६॥
 चौदह लोकों का मूल (बातिनी स्वरूप) निराकार है। उस निराकार का प्रकटीकरण अक्षर ब्रह्म के मन से है। इसी प्रकार अक्षर ब्रह्म का स्वरूप परमधाम के अन्दर निहित है। उस परमधाम का भी प्रकटीकरण जिस अक्षरातीत से है, अब उनकी शोभा का वर्णन करना है।

भावार्थ- वैकुण्ठ भी चौदह लोकों के अन्तर्गत ही है, इसलिये इसका प्रकटीकरण निराकार (मोह सागर) से मानना पड़ेगा। जिस वैकुण्ठ में ब्रह्मा, विष्णु, और शिव रहते हैं, वह चौदहवाँ लोक है। बेहद वाणी में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि त्रिदेवों को भी इस बात की पूर्ण जानकारी नहीं है कि इस निराकार मण्डल में कितने चौदह लोक हैं।

फेर पूछे सिव विष्णु को, कहे ब्रह्माण्ड और।

और ब्रह्माण्ड की वारता, क्यों पाइए इन ठौर॥

बेहद वाणी चौपाई ६

किन्तु "वैकुण्ठ मिने नारायन जी, जिन मुख स्वांसा वेद" के कथन से यह स्पष्ट है कि इस चौपाई में जिस वैकुण्ठ का वर्णन किया गया है, वह चौदह लोकों के वैकुण्ठ से अलग होगा, क्योंकि मारिफत सागर ३/५२,

५३ में यह बात कही गयी है कि त्रिदेव भी आदिनारायण का पार नहीं पाते हैं।

यही बात नारायण क्रीड़ा कुन्दुकम् ग्रन्थ में कही गयी है कि आदिनारायण के रोम-रोम में अष्टावरण युक्त ब्रह्माण्ड भ्रमण करते रहते हैं-

"जल यन्त्रस्थ घटमालिका जालवन्महा।
विष्णोरेकैरोमकूपान्तरेष्वनन्तकोटि ब्रह्माण्डानि
सावरवाणि भ्रमन्ति॥"

अक्षर ब्रह्म और परमधाम अनादि है। इनका प्रकटीकरण नहीं होता। केवल मानवीय बुद्धि में समझ में आने के लिये ही ऐसा कहा गया है।

ए बातून अर्स बारीकियां, सो होए मुतलकियों इलम।
अर्स बका करें जाहेर, सबों भिस्त देवें हुकम॥५७॥

परमधाम की ये छिपी हुई गुह्य बातें हैं, जिसका ज्ञान मात्र ब्रह्मसृष्टियों को ही होता है। वे ही अखण्ड परमधाम को इस झूठे संसार में प्रकाश में लायेंगी (जाहिर करेंगी) और धनी के हुक्म से इस ब्रह्माण्ड के सभी जीवों को अखण्ड मुक्ति देंगी।

बरनन करें बका हक की, हम जो अर्स अरवा।

लेवें सब मुतलकियां, हम सें रहे न कछू छिपा॥५८॥

परमधाम की हम आत्मायें (ब्रह्मसृष्टियाँ) ही श्री राज जी की अखण्ड शोभा का वर्णन करती हैं और इस ज्ञान को धारण करती हैं। परमधाम की कोई भी बात हमसे छिपी हुई नहीं रहती।

और बात बारीक ए सुनो, अर्स छोड़ न आए मोमिन।

और बातें मुतलक खेल की, करसी अर्स में देखे बिन॥५९॥

हे साथ जी! यह विशेष बात भी सुनिये कि परमधाम को छोड़कर ब्रह्मसृष्टियाँ अपने नूरी तन से इस संसार में नहीं आयी हैं, बल्कि सुरता द्वारा आयी हैं। इस खेल की सारी बातें अपने मूल तनों में जाग्रत होने के बाद करेंगी।

हम झूठी जिमी में आए नहीं, झूठ रहे न हमारी नजर।

ब्रह्मांड उड़ावे अर्स कंकरी, तो रूहों आगे रहे क्यों कर॥६०॥

न तो हम इस झूठे संसार में अपने नूरी तनों से आयें हैं, और न हमारी नूरी नजरों के सामने यह स्वप्न का ब्रह्माण्ड टिक सकता है। जब परमधाम की एक कंकड़ी के सामने यह ब्रह्माण्ड नहीं रह सकता, तो ब्रह्मसृष्टियों की नूरी नजरों के सामने भला कैसे रह सकता है?

और माया देखाई हम को, करी वास्ते हमारे ए।

होसी पूरन हमारी अर्स में, रूहें उमेद करी दिल जे॥६१॥

धाम धनी ने हमारे लिये ही यह माया का खेल बनाकर दिखाया है। ब्रह्मसृष्टियों ने अपने दिल में खेल की जो इच्छा की थी, उसे परमधाम में बिठाये रखकर ही धाम धनी पूर्ण कर देंगे।

भावार्थ- अभी छठे दिन की लीला चल रही है, और जब श्रृंगार ग्रन्थ की वाणी अवतरित हुई, उस समय सभी आत्मायें जाग्रत नहीं हो सकी थीं, यही कारण है कि इच्छा के पूर्ण होने का कथन भविष्यत् काल में किया गया है।

हम रूहें न आइयां खेल में, हक अर्स सुख लिए इत।

हक हुकमें इलम या विध, सुख दिए कर हिकमत॥६२॥

यद्यपि हम ब्रह्मसृष्टियाँ इस खेल में अपने नूरी तन से नहीं आयी हैं, फिर भी इस संसार में हमने परमधाम और धाम धनी के सुखों का रसपान किया है। इस प्रकार श्री राज जी ने अपने हुक्म और इल्म (आदेश और ज्ञान) द्वारा हमें युक्ति से अपने सुखों का रसास्वादन कराया है।

भावार्थ— ब्रह्मसृष्टियों के नूरी तन मूल मिलावा में धनी के चरणों में बैठे हैं और उनकी सुरता इस संसार में आत्मा के रूप में खेल देख रही है। आत्मा का मूल तन परात्म है। दूसरे शब्दों में आत्मा को परात्म का प्रतिबिम्ब भी कहते हैं। अक्षरातीत की हृदय की इच्छा ही आदेश (हुक्म) है। तारतम वाणी के द्वारा परमधाम के पच्चीस पक्षों तथा अष्ट प्रहर की सम्पूर्ण लीला का ज्ञान आत्मा को प्राप्त हो जाता है और विरह-प्रेम में डूबकर वह प्रत्यक्ष अनुभव भी कर लेती है। इस प्रकार उसे इस

संसार में परमधाम के सुखों का रसास्वादन होने लगता है।

हम तो हुए इत हुकम तले, मैं न हमारी हममें।

ए मैं बोले हक का हुकम, यों बारीक अर्स माएने॥६३॥

इस संसार में हम श्री राज जी के हुकम के अधीन हैं, इसलिये हमारे अन्दर अब किसी भी प्रकार की "मैं" के अस्तित्व का प्रश्न ही नहीं है। मेरे द्वारा अपने लिये जिस "मैं" शब्द का उच्चारण हो रहा है, वह श्री राज जी का हुकम ही कहलवा रहा है। इस प्रकार परमधाम की ये गुह्य बातें हैं।

भावार्थ— ब्रह्मवाणी के प्रकाश में धाम धनी तथा अपनी परात्म के स्वरूप की पहचान होने के पश्चात् ही यह कहा जा सकता है कि अब मेरे अन्दर हक की "मैं" बोल रही

है। धाम धनी की कृपा के बिना कोई भी व्यक्ति लौकिक "मैं" के बन्धन को नहीं काट सका है।

हुकम किया चाहे बरनन, ले हक हुकम मुतलक।

करना जाहेर बीच झूठी जिमी, जित छूटी न कबूं किन सक॥६४॥

अब धाम धनी का हुकम ही धनी की शोभा का वर्णन करना चाह रहा है, अर्थात् मेरी आत्मा को श्री राज जी की शोभा का वर्णन करने का आदेश (हुकम) है। निश्चित रूप से धनी के आदेश से उनकी शोभा को ऐसे झूठे संसार में प्रकाश में लाना है, जिसमें आज दिन तक किसी का भी संशय समाप्त नहीं हुआ।

दिन एते हक जस गाइया, लदुन्नी का बेवरा कर।

हकें हुकम हाथ अपने लिया, जो दिया था महंमद के सिर पर॥६५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी ! मैंने आज दिन तक तारतम वाणी के द्वारा धाम धनी की महिमा का गायन किया है। मेरे प्राण प्रियतम अक्षरातीत ने सुन्दरसाथ को अपनी पहचान देने के लिये मुझे जो आदेश दिया था, उसे अब अपने हाथ में ले लिया है।

भावार्थ- श्रृंगार की वाणी में सर्वोपरि (मारिफत) ज्ञान निहित है। इसे महामति जी के तन से अवतरित कराकर धाम धनी ने छठें दिन की जागनी का द्वार खोल दिया। ब्रह्मवाणी के ज्ञान को ग्रहण करके ही भिन्न-भिन्न समय पर सुन्दरसाथ ने जागनी कार्य को आगे बढ़ाया है। यद्यपि जागनी ब्रह्माण्ड में अक्षरातीत कहलाने की शोभा मात्र महामति जी को ही है, किन्तु सुन्दरसाथ के धाम हृदय में विराजमान होकर स्वयं धाम धनी ही जागनी कर रहे हैं। यही महामति जी (आखिरी मुहम्मद) से हुक्म लेने का

भाव है।

प्रकरण ॥१॥ चौपाई ॥६५॥

हुकमें इस्क का द्वार खोल्या है

इस प्रकरण में यह दर्शाया गया है कि धाम धनी ने ब्रह्ममुनियों के लिये परमधाम के इस्क का द्वार खोल दिया है। उनके हृदय को अपना धाम बनाकर विराजमान हो गये हैं और परमधाम की सम्पूर्ण सम्पदा (नेमतों) भी आत्माओं के धाम हृदय में निवास करने लगी हैं।

अब हुकमें द्वारा खोलिया, लिया अपने हाथ हुकम।

दिल मोमिन के आए के, अर्स कर बैठे खसम॥१॥

अब धाम धनी ने ब्रह्मवाणी द्वारा परमधाम के प्रेम का द्वार खोल दिया है और श्री महामति जी को जो हुक्म दिया था, उसे अपने हाथ में ले लिया है। उन्होंने ब्रह्मसृष्टियों के हृदय को अपना धाम बनाया है और उसमें आकर विराजमान हो गये हैं।

भावार्थ- श्रृंगार ग्रन्थ के रूप में परमधाम का सर्वोपरि (मारिफत) ज्ञान अवतरित होने के पश्चात् सुन्दरसाथ को अपने धाम हृदय में धनी को बसाने का मार्ग प्राप्त हो गया। साथ ही धनी के दिल में डूबकर एकत्व प्राप्त करने की भी स्थिति प्राप्त हो गयी। श्री महामति जी के तन से यही प्रमुख कार्य कराना था, यही हुक्म था। इसके पश्चात् सुन्दरसाथ को वह मार्ग मिल गया, जिस पर चलकर अध्यात्म जगत के शिखर पर पहुँचा जाता है। इसे ही अपने हाथ में हुक्म लेना कहा गया है। कलस हिन्दुस्तानी ८/३२,३६ में कहा गया है-

सिर ले आप खड़ी रहो, कहे तूं सब सैंयन।

प्रकास होसी तुझसे, दृढ़ कर देखो मन॥

ए सोभा होसी तुझे सोहागनी, जिन जुदी जाने आप।

चौदे तबक एक होएसी, सब हुकमें के प्रताप॥

यही प्रमुख कार्य था, जो छठें दिन की लीला में अब ब्रह्मवाणी के द्वारा हो रहा है। इस चौपाई का यह आशय कदापि नहीं लेना चाहिये कि अब जागनी लीला में श्री महामति जी की कोई भूमिका नहीं है। वस्तुतः इस जागनी ब्रह्माण्ड में अक्षरातीत की सारी शोभा श्री महामति जी को ही प्राप्त है। उनके चरणों में ही प्रत्येक ब्रह्मात्मा को अध्यात्म का सम्पूर्ण धन प्राप्त होता है—

इंद्रावती के मैं अंगे संगे, इन्द्रावती मेरा अंग।

जो अंग सौंपे इंद्रावती को, ताए प्रेमे खेलाऊं रंग॥

सुख देऊं सुख लेऊं, सुख मैं जगाऊं साथ।

इन्द्रावती को उपमा, मैं दर्ई मेरे हाथ॥

कलस हिन्दुस्तानी २३/६६,६८

हक अर्स दिल मोमिन, और अर्स हक खिलवत।

वाहेदत बीच अर्स के, है अर्स में अपार न्यामत॥२॥

ब्रह्मसृष्टियों का हृदय ही अक्षरातीत का वह धाम है, जिसमें मूल मिलावा भी है तथा वहदत (एकदिली) का रस भी है। इस प्रकार परमधाम की अपार सम्पदा ब्रह्ममुनियों के धाम हृदय में विराजमान है।

भावार्थ— परात्म के हृदय में युगल स्वरूप सहित सम्पूर्ण परमधाम विद्यमान है। अतः यह स्वाभाविक है कि परात्म की प्रतिबिम्ब स्वरूपा आत्मा के हृदय में भी युगल स्वरूप सहित सम्पूर्ण परमधाम और उसकी सम्पदा (इश्क, वहदत, इल्म आदि) विद्यमान हो। आगे की चौपाइयों में यही बात दर्शायी गयी है।

ए साहेदी जाहेर सुनो, जो लिखी माहें फुरमान।

अर्स कहा दिल मोमिन, अर्स में सब पेहेचान॥३॥

हे साथ जी! धर्मग्रन्थों में लिखी हुई इस साक्षी को स्पष्ट रूप से सुनिये। ब्रह्ममुनियों का हृदय ही परमधाम है, और उस हृदय में परमधाम की सम्पूर्ण पहचान (लीला रूपी सामग्री) निहित है।

हक हादी रूहें अर्स में, इस्क इलम बेसक।

जोस हुकम मेहेरबानगी, हकीकत मारफत मुतलक॥४॥

हृदय रूपी उस परमधाम में युगल स्वरूप श्री राज श्यामा जी तथा सखियाँ भी विद्यमान हैं। उस धाम हृदय में इश्क तथा संशय रहित ज्ञान है। श्री राज जी का जोश, हुकम, तथा मेहर भी उसी में विद्यमान है। निश्चित रूप से हकीकत (सत्य) तथा मारिफत (परमसत्य) भी

उसमें ही है।

भावार्थ- इस चौपाई में जोश का तात्पर्य केवल सत् का जोश नहीं है, बल्कि इश्क, वहदत आदि का जोश है। परमधाम में सभी सखियाँ एवं श्यामा जी हकीकत के रूप में हैं और उनके अन्दर मारिफत (परमसत्य) स्वरूप श्री राज जी विराजमान हैं। इस प्रकार धाम दिल में हकीकत एवं मारिफत की उपस्थिति कही जाती है।

दिल मोमिन अर्स कहा, सब अर्स में न्यामत।

सो क्यों न करे दिल बरनन, जाकी हक सों निसबत॥५॥

ब्रह्मसृष्टि का हृदय ही धाम कहा जाता है, जिसमें परमधाम की सम्पूर्ण सम्पदा (नेमतेँ) विद्यमान है। जिस आत्मा का धनी से अखण्ड सम्बन्ध है, वह धनी की शोभा का वर्णन क्यों न करे?

सब बातें हैं अर्स में, और अर्स में वाहेदत।

हौज जोए बाग अर्स में, अर्स में हक खिलवत॥६॥

परमधाम में शोभा, सौन्दर्य, और आनन्द आदि सभी विद्यमान है। वहाँ पर वहदत तथा खिल्वत का सुख है। यहाँ तक कि हौज कोशर, यमुना जी, फूल बाग, एवं नूर बाग भी परमधाम में हैं।

सो अर्स कहा दिल मोमिन, सो काहे न करे बरनन।

जिन दिल में ए न्यामत, सो मुतलक अर्स रोसन॥७॥

ये सारी निधियाँ जिस परमधाम में हैं, वह अनन्त परमधाम ब्रह्मसृष्टि का दिल कहा गया है। वह दिल भला निजधाम एवं अपने प्रियतम अक्षरातीत की शोभा का वर्णन क्यों नहीं करेगा ? जिस दिल में वर्णन करने का निधि रूपी सामर्थ्य होता है , निश्चित रूप से उसके

अन्दर परमधाम की शोभा विराजमान होती है।

भावार्थ- जिस प्रकार एक छोटी सी बूँद के अन्दर पृथ्वी से तेरह लाख गुना बड़ा सूर्य दिखायी देता है, उसी प्रकार अणु से भी सूक्ष्म आत्मा के हृदय में अनन्त परमधाम विद्यमान होता है।

हम सिर हुकम आइया, अर्स हुआ दिल हम।

एही काम हक इलम का, तो सुख काहे न लेवें खसम॥८॥

हमारे सिर पर श्री राज जी का हुक्म है, अर्थात् धाम धनी पल-पल हमारे साथ हैं। इस प्रकार हमारा दिल धनी का निवास बन गया है। तारतम वाणी का कार्य ही है हमारे हृदय को धाम बनाना। ऐसी स्थिति में हम अपने धाम हृदय में विराजमान अक्षरातीत से परमधाम का सुख क्यों न लें?

भावार्थ- ब्रह्मसृष्टियाँ धाम धनी के दिल की स्वरूपा हैं। उनकी प्रत्येक लीला अक्षरातीत के हृदय की इच्छा (हुक्म) से जुड़ी होती है। इस प्रकार अंग-अंगी होने से प्रत्येक लीला में आत्माओं के साथ धनी का जुड़ा रहना अनिवार्य है। इसे ही अपने सिर पर धनी का हुक्म होने की बात कही गयी है। बीतक साहिब में पत्री के अन्दर श्री जी के द्वारा यह कहना कि मैं तुम्हारे सिर पर एक पाँव से खड़ा हूँ, यही बात दर्शाता है।

कह्या अर्स हमार दिल को, हैं हमहीं हक हुक्म।

क्यों न आवे इस्क हक का, यों बेसक हैयाती इलम॥९॥

हमारे दिल को परमधाम कहा गया है। हम ही धाम धनी के हुक्म के स्वरूप हैं। जब हमारे पास अखण्ड धाम का संशय रहित तारतम ज्ञान है, तो हमारे अन्दर प्रियतम

का प्रेम क्यों नहीं आयेगा अर्थात् अवश्य आयेगा।

भावार्थ- सर्वोच्च ब्राह्मी अवस्था (मारिफत) में आत्मा और धनी में किसी भी प्रकार का भेद नहीं रह जाता। उसी अवस्था में यह कहा जा सकता है कि हम श्री राज जी के हुक्म के स्वरूप हैं। इस चौपाई के दूसरे चरण में यही बात दर्शायी गयी है। यह सम्पूर्ण प्रकरण ही ब्राह्मी अवस्था का चित्रण करता है।

चरन बासा हमारे दिल में, रहे रूह के नैनों माहें।

क्यों न्यारे हम से रहें, हम बसें हक हैं जाहें॥१०॥

हमारा हृदय हमारी आत्मा के नैनों का स्वरूप है। इसमें प्रियतम के चरण कमल अखण्ड रूप से वास करते हैं। ऐसी स्थिति में भला प्रियतम के चरण कमल हमसे अलग कैसे हो सकते हैं? जहाँ धाम धनी विराजमान हैं, वहाँ

पर हमारा भी अस्तित्व अनिवार्य है, क्योंकि हम तो उनके ही हृदय की स्वरूपा हैं।

मेरे सब अंगों हक हुक्म, बिना हुक्म जरा नाहें।

सोई हुक्म हक में, हक बसैं अर्स में ताहें॥११॥

मेरे अंग-अंग में प्रियतम का हुक्म (इच्छा) समाया हुआ है। मेरे शरीर का एक रोम भी उनके आदेश (हुक्म) से रहित नहीं है। धाम धनी जिस परमधाम में विराजमान हैं और उनके दिल में जो हुक्म है, वही अब मेरे भी दिल में है।

भावार्थ- प्रियतम से एकाकार हो जाने के पश्चात् किसी भी प्रकार का भेद नहीं रह जाता। प्रियतम की इच्छा (हुक्म, आदेश) ही उसकी इच्छा रह जाती है, क्योंकि उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। इस स्थिति

के विषय में मुण्डकोपनिषद में इस प्रकार कहा गया है –
 "यथा नद्यः समुद्रे अस्तं गच्छन्ति नाम रूपं विहाय",
 अर्थात् नदियाँ जब समुद्र में मिलती हैं, तो नाम और रूप
 को भूल जाती हैं और उसी के तदोगत हो जाती हैं।

हम अरस-परस हैं हक के, ए देखो मोमिनों हिसाब।

हम हकमें हक हममें, और हक बिना सब ख्वाब॥१२॥

हे साथ जी! इस बात को अच्छी तरह से देखिये कि हम
 और धाम धनी आपस में एक ही स्वरूप हैं (अरस-परस
 हैं)। हमारे हृदय में स्वयं प्रियतम अक्षरातीत हैं, और
 उनके अन्दर हम हैं। उनके बिना हमारे लिये सब कुछ
 स्वप्नवत् नश्वर है।

भावार्थ- ब्रह्मसृष्टियों के लिये धाम धनी ही सर्वस्व हैं।
 वे उनके जीवन के आधार हैं। यही कारण है कि

ब्रह्मसृष्टियों की दृष्टि में श्री राज जी के बिना सब झूठा है।

हक हुकमें सब मिलाइया, अर्स मसाला पूरन॥

हादी रूहों जगावने, करावने हक बरनन॥१३॥

श्यामा जी सहित सभी सखियों को जाग्रत करने के लिये तथा अपनी शोभा-श्रृंगार का वर्णन कराने के लिये, श्री राज जी ने अपने हुक्म से परमधाम की सम्पूर्ण सम्पदा को दोनों तनों में स्थित कर दिया।

भावार्थ- प्रेम (इश्क), ज्ञान (इल्म), एकत्व (वहदत), आनन्द, नूर, जोश, आवेश, और जाग्रत बुद्धि आदि निधियों को धाम धनी ने श्यामा जी के दोनों तनों में रखा।

आखिर मोमिन आकिल, कह्या जिनका दिल अर्स।

तो हक दिल का जो इस्क, सो मोमिन पीवें रस॥१४॥

आखिरत (कियामत) के समय में जो ब्रह्ममुनि प्रकट होंगे, वे जाग्रत बुद्धि के ज्ञान से युक्त होने के कारण बहुत ही बुद्धिमान होंगे। उनके हृदय में परमधाम की छवि बसी होगी। इस प्रकार वे ब्रह्ममुनि अपने धाम हृदय में विराजमान अक्षरातीत के हृदय से प्रवाहित होने वाले प्रेम रस का पान करेंगे।

विचार करें दिल मोमिन, जो अर्स मता दिल हम।

तो हक दिल होसी कौन न्यामत, जो हक वाहेदत खसम॥१५॥

हे साथ जी! अपने हृदय में इस बात का विचार कीजिए कि जब परमधाम की निधियों का इतना ज्ञान हमारे पास है, तो एकत्व के मूल (वहदत की मारिफत) स्वरूप श्री

राज जी के हृदय में कौन-कौन सी निधियाँ होंगी?

भावार्थ- अक्षरातीत के हृदय में अनन्त निधियाँ हैं। प्रेम, आनन्द, सौन्दर्य, एकत्व आदि के रूप में तो उन अनन्त निधियों का मात्र दिग्दर्शन कराया गया है। वस्तुतः वे शब्दातीत हैं।

देखो मोमिनों के दिल में, कही केती अर्स बरकत।

विचार देखो हक दिल में, क्या होसी हक न्यामत॥१६॥

हे साथ जी! यह बात बहुत ही विचारणीय है कि जब ब्रह्ममुनियों के धाम हृदय में परमधाम की इतनी निधियाँ विद्यमान हैं, तो स्वयं धाम धनी के दिल में कितनी निधियाँ होंगी?

भावार्थ- वस्तुतः इस कालमाया के ब्रह्माण्ड में ही ऐसा देखा जाता है कि मूल श्रोत में अधिक सम्पदा होती है,

और उससे बहने वाले प्रवाह में कम, उदाहरणार्थ—सागर में अथाह जलराशि होती है, जबकि लहरों में कम। इसी प्रकार सूर्य में बहुत अधिक प्रकाश होता है, जबकि किरणों में कम। यद्यपि अक्षरातीत और आत्माओं की लीला को लौकिक दृष्टि से समझने के लिये सागर तथा उसकी लहरों, सूर्य एवं उसकी किरणों का दृष्टान्त अवश्य दिया जाता है, किन्तु यथार्थ में वैसा नहीं है क्योंकि स्वयं अक्षरातीत अपनी अंगरूपा आत्माओं के धाम हृदय में विराजमान होते हैं, जबकि किरणों में सूर्य या लहरों में सागर विराजमान नहीं होता है, केवल अंश मात्र ही स्थित रहता है।

मूल मिलावा में सिंहासन पर आसीन हुए श्री राज जी तथा परात्म के हृदय में विराजमान श्री राज जी के स्वरूप में कोई भी अन्तर नहीं होता है। आत्माओं के

धाम हृदय में भी उसी स्वरूप की झलक होती है, किन्तु लौकिक मर्यादा के अनुसार अक्षरातीत को अनन्त निधियों वाला कहा गया है, जबकि उसी अक्षरातीत को अपने धाम हृदय में बसा लेने पर भी उस आत्मा को अनन्त निधियों वाला नहीं कहा जाता, क्योंकि यह भौतिक जगत अध्यात्म के अद्वैत दर्शन को पूर्णतया अंगीकार नहीं कर सकता। श्री महामति जी के धाम हृदय में अनन्त निधियों वाले अक्षरातीत अवश्य विराजमान हैं, किन्तु उस तन से होने वाली लीला की एक सीमा रेखा है।

हक हादी अर्स मोमिन, सो तो पेहेले हक दिल माहें।

जो चीज प्यारी रूह को, ताए हक पल छोड़ें नाहें॥१७॥

परमसत्य (मारिफत) के स्वरूप श्री राज जी के हृदय में

युगल स्वरूप श्री राज श्यामा जी, सखियाँ, एवं सम्पूर्ण परमधाम विद्यमान है। आत्माओं के लिए इश्क बहुत ही प्यारी वस्तु है, क्योंकि इसी के द्वारा वे अपने प्राण प्रियतम को रिझाती हैं। धाम धनी एक पल के लिये भी अपने से इश्क को अलग नहीं होने देते।

भावार्थ- अक्षरातीत के दिल से ही श्यामा जी, सखियाँ, और परमधाम हैं। श्री राज जी का स्वरूप ही लीला रूप में श्यामा जी और सखियों के रूप में दृष्टिगोचर होता है, अर्थात् मारिफत ही हकीकत के रूप में दिखायी देता है। व्यक्ति और व्यक्तित्व सूक्ष्म रूप से दिल में विद्यमान होते हैं, इसी प्रकार श्यामा जी के दिल में भी श्री राज जी, श्यामा जी, एवं सखियाँ दृष्टिगोचर होते हैं। यही स्थिति प्रत्येक परात्म के दिल में होती है।

बात यहीं समाप्त नहीं होती। परमधाम के कण-कण में

इस नजारे को देखा जा सकता है। यही परमधाम की वहदत है, जिसे सागर १/४३ में कहा गया है—

जो कछुए चीज अर्स में, सो सब वाहेदत मांहे।

जरा एक बिना वाहेदत, सो तो कछुए नाहें॥

स्वलीला अद्वैत परमधाम में अनन्य प्रेम किस प्रकार लीला का रूप धारण करता है तथा सखियों एवं युगल स्वरूप से इसका क्या सम्बन्ध है, यह खिल्वत १६/३१, ३२, ३३ में दर्शाया गया है—

बिना जुदागी इस्क की, क्यों कर पाइए खबर।

सो तो बका में है नहीं, सब कोई बराबर॥

कोई बात खुदा से न होवहीं, ऐसे न कहियो कोए।

पर एक बात ऐसी बका मिने, जो हक से भी न होए॥

कौल फैल हाल बदले, पर छूटे ना रूह इस्क।

रूह इस्क दोऊ बका, इनमें नाहीं सक॥

जो मता कह्या दिल मोमिन, सो मोमिन दिल समेत।

सो बसत हक के दिल में, सो हक दिल मता रूह लेत॥१८॥

ब्रह्मसृष्टियों के दिल में परमधाम की सम्पदा (नेमतेँ) विद्यमान होती है और वह ब्रह्मसृष्टि अपने दिल समेत श्री राज जी के दिल में रहती है। इस प्रकार अक्षरातीत के हृदय से आत्मा अपने धाम हृदय में सम्पूर्ण निधियों को प्राप्त कर लेती है।

जो रूह पैठे हक दिल में, सो मगन माहें न्यामत।

जो तित पड़ी कदी खोज में, तो छूटे ना लग कयामत॥१९॥

जो आत्मा श्री राज जी के दिल में डुबकी लगाती है, वह उनकी अनन्त निधियों में मग्न हो जाती है। किन्तु यदि वह धाम धनी के दिल की अनन्त निधियों की थाह लगाने (सीमा जानने) का प्रयास करती है, तो भले ही वह ब्रह्माण्ड के अखण्ड होने तक उसमें लगी रहे, किन्तु पार नहीं पा सकती।

जो सुराही हक की पीवना, सो इस्क हक दिल मिने।

सो मोमिन पीवे कोई पैठके, और पिया न जाए किने॥२०॥

अक्षरातीत का हृदय वह सुराही है, जिसमें प्रेम का दरिया उमड़ता है। एकमात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही धाम धनी के दिल में डूबकर उस प्रेमरस का पान करती हैं। अन्य ईश्वरी सृष्टि या जीव सृष्टि इस सौभाग्य से वंचित हो जाती हैं।

भावार्थ- जीव सृष्टि या ईश्वरी सृष्टि में कोई कितना ही ज्ञानी, योगी, तपस्वी, एवं शीलवान क्यों न हो जाये, किन्तु मूल सम्बन्ध न होने के कारण वह धाम धनी के दिल में डुबकी नहीं लगा सकता। वह अपने कठिन प्रयत्नों से परब्रह्म की कृपा का पात्र बनकर दर्शन या ज्ञान के क्षेत्र में कुछ उपलब्धियों को अवश्य प्राप्त कर सकता है।

कुलफ था एते दिन, द्वार इस्क न खोल्या किन।

सो खोल दिया हकें मेहेर कर, अपने हाथ मोमिन॥२१॥

धाम धनी के दिल में लहराने वाले प्रेम के सागर को, आज दिन तक किसी ने भी, न तो जाना था और न ही पाया था। अब स्वयं श्री राज जी ने अपनी अंगनाओं पर मेहेर कर, तारतम वाणी के द्वारा, प्रेम के सागर में प्रवेश

करने का मार्ग बता दिया है।

गंज खोलसी इस्क का, मोहोर हुती जिन पर।

लेसी अछूत प्याले मोमिन, हकें खोली मोहोर फजर॥२२॥

अब प्राण प्रियतम अपने हृदय के गंजानगंज इश्क को खोल देंगे, जिस पर आज दिन तक ताला लगा था अर्थात् जिसे अब तक कोई भी प्राप्त नहीं कर सका था। श्री राज जी के जिन प्रेम भरे प्यालों को अब तक कोई भी संसार में पी नहीं सका था, उसे धाम धनी ने तारतम वाणी के उजाले में ब्रह्मसृष्टियों के लिये सुलभ कर दिया और प्रेम मार्ग के बन्द दरवाजे को खोल दिया। इस प्रेम का रसपान परमधाम की आत्मायें ही करेंगीं।

ए पिएं प्याले मोमिन, हक सुराही सराब।

लाड़ लज्जत लें अर्स की, ए मस्ती माहें आब॥२३॥

श्री राज जी के हृदय रूपी सुराही में उमड़ने वाले प्रेम के सागर की अमृतधारा का रसपान परमधाम की आत्मायें ही करती हैं। इस प्रकार इस संसार में रहकर भी वे परमधाम के प्रेम का स्वाद लेती हैं। निश्चित रूप से परमधाम के इस जल रूपी प्रेम में ही वास्तविक आनन्द छिपा हुआ है।

भावार्थ- श्री राज जी का नख से शिख तक का सम्पूर्ण स्वरूप अनन्त प्रेम का सागर है। उस अलौकिक शोभा को अपनी आत्मा के धाम हृदय में बसाने पर प्रेम प्रकट होने लगता है। आत्मा वह मछली है, जो प्रियतम के प्रेम रूपी जल में क्रीड़ा करती है। वही तो उसके जीवन का आधार है।

हक सुराही ले हाथ में, दें मोमिनों भर भर।

सुख मस्ती देवें अपनी, और बात न इन बिगर॥२४॥

धाम धनी अपने हृदय रूपी सुराही से ब्रह्मसृष्टियों के हृदय रूपी प्यालों में प्रेम भरते हैं , और उन्हें अपने आनन्द के नशे में डुबो देते हैं। इसके अतिरिक्त और कोई लीला नहीं होती।

भावार्थ- जिस प्रकार, इस संसार का कण-कण मोहमयी है, उसी प्रकार परमधाम का कण-कण प्रेममयी है। प्रेम में ही आनन्द छिपा होता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि परमधाम में मात्र प्रेम की ही लीला होती है, जिसका फल आनन्द है।

अमल ऐसा इन मद का, अर्स रूहें रही छकाए।

छाके ऐसे नींद सुपन में, जानों अर्स में दिए जगाए॥२५॥

इस आनन्द का नशा ही कुछ ऐसा होता है कि परमधाम की आत्मायें उसमें बेसुध हो जाती हैं (पूर्ण रूप से तृप्त हो जाती हैं)। माया के इस मोहमयी ब्रह्माण्ड में भी वे इतनी अधिक आनन्दित हो जाती हैं कि उन्हें ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे परमधाम में ही जाग्रत हो गयी हों।

भावार्थ— इस चौपाई का यह स्पष्ट निर्देश है कि यदि हमें आनन्द के शिखर पर पहुँचना है, तो प्रियतम की शोभा को अपने हृदय-धाम में बसाते हुए प्रेम की राह अपनानी पड़ेगी। निःसन्देह इसके लिये प्रेममयी चितवनि के अतिरिक्त अन्य कोई भी विकल्प नहीं है।

पेहेले एक ए हक के दिल में, रूहों लाड़ कराऊं निस दिन।

बेसुमार बातें हक दिल में, सब इस्क वास्ते मोमिन॥२६॥

श्री राज जी के दिल में यह बात पहले (अनादि काल)

से ही बनी रहती है कि मैं अपनी आत्माओं को दिन-रात प्रेम के आनन्द में डुबोये रखूँ। अपनी अंगनाओं को प्रेम में डुबोये रखने की अनन्त बातें श्री राज जी के दिल में उठती रहती हैं।

ए खेल किया वास्ते इस्क, वास्ते इस्क पेहेचान।

जुदे किए इस्क वास्ते, देने इस्क सुख रहेमान॥२७॥

माया का यह खेल धाम धनी ने अपने इश्क (मारिफत) की पहचान देने के लिये ही बनाया है। इश्क की पूर्ण (मारिफत की) पहचान होने पर ही उसका वास्तविक आनन्द प्राप्त होता है, इसलिये मेहर के सागर अक्षरातीत ने सखियों को अपने चरणों में बिठाये रखकर ही सुरता से अलग कर दिया।

मोमिन उतरे इस्क वास्ते, वास्ते इस्क ल्याए ईमान।

ईमान न ल्याए सो भी इस्कें, इस्कें न हुई पेहेचान॥२८॥

परमधाम से ब्रह्ममुनि इस नश्वर जगत में अनन्य प्रेम की वास्तविक पहचान करने के लिये आये। तारतम वाणी के प्रकाश में प्रेम की पहचान करने के लिये उन्होंने धनी के प्रति अटूट विश्वास (ईमान) धारण किया। यदि उन्हें ईमान नहीं आ सका या धनी की पहचान नहीं हो सकी, तो इसमें इश्क ही प्रमुख कारण है।

कम ज्यादा सब इस्कें, इस्कें दोऊ दरम्यान।

इस्कें बंदगी या कुफर, सब वास्ते इस्क सुभान॥२९॥

किसी ने धनी का थोड़ा सा इश्क लिया, तो किसी ने बहुत अधिक, और किसी ने मध्यम परिमाण में प्रेम की राह अपनायी। श्री राज जी के इश्क की पहचान के लिये

ही किसी ने इश्क की राह पकड़ी, तो किसी ने भक्ति की,
और किसी ने नास्तिकता (कुफ्र) की।

भावार्थ- इस खेल में लीला रूप में किसी के तन से
यदि नास्तिकता का व्यवहार होता है, तो इसमें कोई
आश्चर्य नहीं किया जा सकता। धनी के हुक्म से ही लीला
में बिहारी जी एवं औरंगजेब ने धर्म विरुद्ध आचरण
किया।

छोटी बड़ी या जो कछू, ए जो चौदे तबक की जहान।

ए भी हक इस्क तो पाइए, जो होए बेसक पेहेचान॥३०॥

चौदह लोकों का यह ब्रह्माण्ड चाहे छोटा है या बड़ा या
जैसा भी है, प्रेम की पहचान के लिये बना है। यदि धाम
धनी की यथार्थ पहचान हो जाती है, तभी प्रियतम का
प्रेम पाया जा सकता है।

जो न्यामत हक के दिल में, तिन का क्योंए ना निकसे सुमार।

सो सब इस्क हक का, रुहों वास्ते इस्क अपार॥३१॥

अक्षरातीत के हृदय में अपनी आत्माओं के लिये जो निधियाँ (नेमतें) हैं, उनकी कोई सीमा नहीं है। ब्रह्मसृष्टियों के ऊपर धनी की जिन नेमतों की बरसात होती है, उसमें श्री राज जी के हृदय का प्रेम (इश्क) ही लीला करता है। वस्तुतः धनी के हृदय में अनन्त प्रेम का सागर लहराया करता है।

ए इलम आया जब रुह को, तब पेहेचान आई मुतलक।

जो हरफ निकसे दुनी का, सो सब देखे इस्क हक॥३२॥

आत्मा में जब ब्रह्मवाणी के ज्ञान का प्रकाश मिलता है, तो उसे प्रियतम की यथार्थ पहचान हो जाती है। उसके मुख से निकलने वाली लौकिक बातों में भी परमधाम के

प्रेम की झलक (छाप) मिलती है।

भावार्थ- हृदय के भावों के अनुसार ही मुख से शब्द निकला करते हैं। यदि हमारे हृदय में धाम धनी के प्रेम की सरिता प्रवाहित होती है, तो निश्चित है कि हमारी लौकिक बातों में भी उसकी सुगन्धि अवश्य मिलेगी।

जब ए इलम रूहों पाइया, इस्क हो गया चौदे तबक।

और देखे न कछुए नजरों, सब देखे इस्क हक॥३३॥

जब ब्रह्मसृष्टियों को तारतम ज्ञान का प्रकाश मिलता है, तो उनकी दृष्टि में चौदह लोकों का यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही प्रेममयी दिखने लगता है। इसके अतिरिक्त उन्हें और कुछ भी नहीं दिखाई देता। चारों ओर उन्हें धाम धनी का प्रेम ही दिखाई देने लगता है।

भावार्थ- "दृष्टि के अनुसार सृष्टि" की कहावत इस

चौपाई में चरितार्थ होती है। हृदय की भावनायें आँखों से प्रकट होती हैं। जब हृदय में प्रियतम का प्रेम बस जाता है, तो सर्वत्र उसी की अनुभूति होने लगती है। इसी को कहते हैं— "जित देखूं तित स्याममयी है।" उसकी दृष्टि में यह मायावी ब्रह्माण्ड गौण हो जाता है। किरंतन ९/४ में यह स्थिति इस प्रकार दर्शायी गयी है—

लगी वाली और कछु न देखे, पिंड ब्रह्मांड वाको है री नहीं।
ओ खेलत प्रेमे पार पिया सों, देखन को तन सागर माहीं॥

रूह देखे अपने इस्क सों, होसी कैसा हक इस्क।

कैसा इलम तोकों भेजिया, जामें सक नहीं रंचक॥३४॥

जब आत्मा धनी के प्रेम में डूब जाती है, तो वह उसी भाव में श्री राज जी के प्रेम के विषय में सोचती है कि प्रियतम के हृदय में हमारे लिये कितना अनन्त प्रेम

उमड़ा करता है? वह ब्रह्मवाणी के विषय में भी सोचती है कि धाम धनी ने हमारे लिये कैसा अलौकिक ज्ञान भेज दिया है, जिसमें नाम मात्र के लिये भी संशय नहीं है।

त्रिलोकी त्रैगुन में, कहूं नहीं बेसक इलम।

सो हकें भेज्या तुम ऊपर, ए देखो इस्क खसम॥३५॥

पृथ्वी, स्वर्ग, और वैकुण्ठ भी त्रिगुणात्मक हैं। इनमें कहीं भी संशय रहित ब्रह्मज्ञान नहीं मिल सकता। हे साथ जी! इस बात का विचार करके देखिए कि धाम धनी का आपके ऊपर कितना प्रेम है, जो उन्होंने ब्रह्मवाणी के रूप में अपनी अनमोल निधि भेज दी है।

किए चौदे तबक तुम वास्ते, इनमें मता है जे।

ए भी हक इस्क तो पाइए, जो देखो हक इलम ले॥३६॥

चौदह लोकों का यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आपके लिये ही बनाया गया है। इसमें जो कुछ भी ज्ञान है, वह आपको सत्य की साक्षी देने के लिये है। यदि आप ब्रह्मवाणी की दृष्टि से देखें, तो यह स्पष्ट होगा कि इसमें भी धाम धनी का प्रेम ही छिपा हुआ है, अर्थात् श्री राज जी संसार के ग्रन्थों की साक्षी दिलाकर अपनी पहचान को दृढ़ कराना चाहते हैं। यह प्रेम के कारण ही है।

फुरमान भेज्या हकें इस्कें, इस्कें लिखी इसारत।

तुमें कुन्जी दर्ई हकें इस्कें, खोलनें हक मारफत॥३७॥

अपने इश्क की पहचान देने के लिये ही प्रियतम ने कुरआन और भागवत आदि धर्मग्रन्थों को भेजा तथा संकेतों में सारी बातें लिखवायीं। धाम धनी ने अपने इश्क के कारण ही आपको तारतम ज्ञान की कुञ्जी दी, ताकि

आप अक्षरातीत की पूर्ण पहचान कर सकें।

फुरमान कोई न खोल सके, सो भी इस्क कारन।

खिताब दिया सिर एक के, सो भी वास्ते इस्क मोमन॥३८॥

भागवत, वेद, और कुरआन आदि धर्मग्रन्थों के भेदों को आज दिन तक किसी के भी द्वारा न खोले जाने का कारण यह है कि इसके द्वारा धाम धनी ब्रह्मसृष्टियों के प्रति अपना अखण्ड प्रेम दर्शाना चाहते हैं। इसी प्रेम के कारण इन धर्मग्रन्थों के रहस्यों को उजागर करने की शोभा एकमात्र श्री महामति जी को मिली है।

सब दुनियां हक इस्क हुआ, तो देखो अर्स में होसी कहा।

ए आया इलम रूहन पर, हकें भेज्या ए तोफा॥३९॥

धाम धनी ने ब्रह्मसृष्टियों के लिये ब्रह्मवाणी के रूप में

ऐसा अनमोल उपहार भेजा है, जिसने आत्माओं की दृष्टि को प्रेममयी बना दिया। जब उनकी दृष्टि में यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड इश्कमयी है, तो यह विचारणीय तथ्य है कि स्वलीला अद्वैत परमधाम में कितना प्रेम होगा?

भावार्थ— ब्रह्मवाणी के द्वारा ही परमधाम, अपनी, एवं धनी के स्वरूप की पहचान होती है, जिससे हृदय में प्रेम प्रकट होता है। जिस प्रकार आँखों पर हरे रंग का चश्मा लगा लेने पर प्रत्येक वस्तु हरी दिखायी देने लगती है, उसी प्रकार प्रेममयी दृष्टि हो जाने पर यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्रेम से भरा हुआ दिखने लगता है, जो ईर्ष्या, द्वेष, और घृणा के विकारों से परिपूर्ण है, तथा जिसमें तृष्णाओं के पीछे पागल बने लोगों ने खून की नदियाँ बहायी हैं।

विचार किए इत पाइए, हुआ एही अर्स सहूर।

वाको लिख्या कुरान में, ए जो कह्या नूर का नूर॥४०॥

इस ब्रह्मवाणी को विचारने पर, अर्थात् चिन्तन-मनन करने पर, इस संसार में ही उस अनादि परमधाम का चिन्तन हो जाता है, जिसे कुरआन में नूर का नूर कहा गया है।

भावार्थ- बेहद में भी नूर है तथा परमधाम में भी नूर है, किन्तु परमधाम के नूर (मारिफत) से ही बेहद के नूर (हकीकत) का स्वरूप व्यक्त हुआ है। यद्यपि दोनों का ही स्वरूप अनादि है। सनंध (सनद) ग्रन्थ ३९/११ में इसे इस प्रकार कहा गया है-

अब नेक कहूं इन नूर की, इन नूर से पैदा नूर।

पेहेले कहूं तिन नूर की, जित रुहें खेली मांहें जहूर॥

ए जाहेर कही हक वाहेदत, हक हादी उमत बातन।

सो करुं जाहेर बरकत हादियों, पर अव्वल नफा लेसी मोमिन॥४१॥

श्री राज जी की एकदिली के सम्बन्ध में जो बातें प्रत्यक्ष रूप में कही गयी हैं, उसमें श्री राजश्यामा जी और सखियाँ बातिनी (गुह्य) रूप से विद्यमान हैं। अब युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी की कृपा से मैं उसे प्रकट कर रही हूँ, किन्तु उसका लाभ सबसे पहले ब्रह्मसृष्टियाँ ही लेंगी।

भावार्थ- "जाहेर" का तात्पर्य है – व्यक्त स्वरूप। "बातन" का भाव है – उस एकदिली में जो स्वरूप निहित है अर्थात् विद्यमान है। इस चौपाई में "हादी" शब्द का भाव दोनों सूरतों (बशरी, मल्की) से नहीं, बल्कि युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी से है।

चरन ग्रहों नूर जमाल के, जिनने अर्स किया मेरा दिल।
 सो बयान करत है हुकम, हक सुख लेसी मोमिन मिल॥४२॥

मैं धाम धनी के उन चरणों को आत्मसात् करती हूँ,
 जिनको अपने हृदय में बसाने से इसे धाम की शोभा प्राप्त
 हो गयी। धाम धनी का हुक्म ही प्रियतम की शोभा का
 वर्णन कर रहा है। अब सभी ब्रह्ममुनि मिलकर इस वर्णन
 से श्री राज जी का आनन्द प्राप्त करेंगे।

अर्स हमेसा कायम, जो हक का हुआ तखत।
 सो कायम दिल मोमिन का, जित है हक खिलवत॥४३॥

परमधाम शाश्वत है और अखण्ड है। उसमें श्री राज जी
 मूल मिलावा में सिंहासन पर विराजमान हैं। इसी प्रकार
 ब्रह्मसृष्टियों का धाम हृदय भी अखण्ड है, जिसमें मूल
 मिलावा विद्यमान है।

भावार्थ- ब्रह्मसृष्टियों की परात्म का दिल तो अखण्ड है ही, आत्मा का दिल भी अखण्ड है। जाग्रत हो जाने के पश्चात् आत्मा के दिल की सारी स्थिति परात्म के दिल जैसी हो जाती है। सागर ११/४४ में इसे इस प्रकार व्यक्त किया गया है-

अन्तस्करन आतम के, जब ए रहयो समाए।

तब आतम परआतम के, रहे न कछू अन्तराए॥

कदमों लागूं करूं सिजदा, पकड़ के दोऊ पाए।

हुकम करत हैं मासूक, बीच आसिक के दिल आए॥४४॥

मैं श्री राज जी के दोनों चरणों को पकड़कर प्रेमपूर्वक प्रणाम करती हूँ। मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर अक्षरातीत मुझे श्रृंगार का वर्णन करने का आदेश दे रहे हैं।

मासूक तुमारी अंगना, तुम अंगना के मासूक।

ए हुकमें इलम दृढ़ किया, अजूं रूह क्यों न होत टूक टूक॥४५॥

मेरे प्राणवल्लभ! आपके हुक्म ने तारतम वाणी के द्वारा मुझे इस बात में दृढ़ता कर दी है कि अर्धांगिनी के रूप में मैं आपकी माशूक हूँ तथा आप मेरे आशिक हैं। इसी प्रकार आप मेरे माशूक हैं और मैं आप की आशिक हूँ। इतना जानने पर भी मेरी आत्मा आपके प्रेम में टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो जाती, अर्थात् पूर्ण रूप से न्योछावर क्यों नहीं हो जाती?

इतहीं सिजदा बंदगी, इतहीं जारत जगात।

इतहीं जिकर हक दोस्ती, इतहीं रोजा खोलात॥४६॥

अब श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान श्री राज जी के चरणों में प्रणाम करना है और अनन्य प्रेम

लक्षणा भक्ति से इन्हें रिझाना है। इन्हीं के दर्शन करने के लिये यात्रा (जियारत) करनी है तथा इन्हीं पर अपना सर्वस्व समर्पण (जकात) करना है। इन्हीं के चरणों में बैठकर धनी के प्रेम की वार्ता रूपी चर्चा का श्रवण करना है। इन्हीं श्री महामति जी के पावन सान्निध्य में श्रद्धा और सेवा के द्वारा स्वयं को पवित्र करना (रोजे रखना) है।

भावार्थ— शृंगार ग्रन्थ का अवतरण उस समय हुआ, जब श्री ५ पद्मावती पुरी धाम में श्री महामति जी के तन से जागनी लीला चल रही थी। इस चौपाई में श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान युगल स्वरूप के चरणों में समर्पित होने के लिये कहा गया है, जबकि स्वयं श्री महामति जी अपने धाम हृदय में विराजमान युगल स्वरूप के चरणों में प्रणाम करते हैं। सन्ध्या के समय की आरती

के कथन "तन, मन, जीव न्योछावर कीन्हों, महामति चरणों लाग" का कथन यही दर्शाता है। यही विचारणीय तथ्य है कि उस समय श्री महामति जी को ही अक्षरातीत का स्वरूप मानकर उतारी जाती थी, जबकि स्वयं महामति अपने धाम हृदय में विद्यमान अक्षरातीत के चरणों में प्रणाम करते हैं।

इस चौपाई से यह बात स्पष्ट रूप से सिद्ध होती है कि वर्तमान समय में श्री महामति जी का तन जिस गुम्मत जी मन्दिर, पद्मावती पुरी धाम में विद्यमान है, उसी के प्रति सबको नतमस्तक होना चाहिए तथा उन्हीं के दर्शन एवं समर्पण में अपना अहोभाग्य मानना चाहिए।

यदि यह संशय किया जाये कि छठें दिन की लीला में तो धाम धनी ने सभी के दिल को अपना धाम बनाया है, तो हम अपने सद्गुरु, किसी परमहंस, या स्वयं अपने

धाम हृदय में विराजमान युगल स्वरूप को क्यों न प्रणाम करें? श्री महामति जी के स्वरूप पर अनिवार्य रूप से इतनी श्रद्धा की क्या आवश्यकता है? श्री महामति जी को तो हमने देखा नहीं है। ऐसी स्थिति में किसी भी परमहंस को अक्षरातीत मानकर रिझाने में क्या आपत्ति है? इसका समाधान इस प्रकार है—

ब्रह्मवाणी के द्वारा यह स्पष्ट रूप से निर्देश दिया जा चुका है कि इस जागनी ब्रह्माण्ड में श्री प्राणनाथ जी के अतिरिक्त अन्य किसी को भी अक्षरातीत कहलाने की शोभा नहीं है। "कोई दूजा मरद न कहावहीं, एक मेहेंदी पाक पूरन" (सनंध ४२/१६) के इस कथन से इसकी पुष्टि होती है। महाराजा छत्रसाल जी के धाम हृदय में विराजमान होकर धाम धनी ने सात वर्षों तक आवेश लीला की। उन्हें "अमीरूल मोमिनीन" की भी शोभा

मिली, फिर भी उन्हें अक्षरातीत नहीं कहा गया। इसी प्रकार श्री लालदास जी के धाम हृदय में विराजमान होकर उन्होंने बीतक की रचना करवायी, फिर भी उन्हें अक्षरातीत की शोभा नहीं मिली। जब महान शोभा वाली इन आत्माओं की यह स्थिति है, तो अन्यो को अक्षरातीत की शोभा कैसे दी जा सकती है?

किसी भी ब्रह्ममुनि, परमहंस, या सद्गुरु के धाम हृदय में विराजमान अक्षरातीत को अवश्य प्रणाम करना चाहिए और उनके प्रति श्रद्धा एवं समर्पण की भावना भी रखनी चाहिए, किन्तु उन्हें श्री प्राणनाथ जी के बराबर की शोभा वाला नहीं मानना चाहिए, क्योंकि इससे श्रीमुखवाणी एवं धर्म की मर्यादा का उल्लंघन होगा और आध्यात्मिक समाज अनेक व्यक्तियों के नाम पर अलग-अलग गुटों में बँट जायेगा, जिसका परिणाम बहुत ही भयावह होगा।

यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि हम जिन परमहंस या अपने सद्गुरु पर श्रद्धा रखते हैं, उन्होंने भी अध्यात्म की इस उच्च अवस्था की प्राप्ति श्री प्राणनाथ जी की कृपा से ही की होती है। यद्यपि परमधाम की वहदत में सभी समान हैं और श्री राज जी के ही स्वरूप हैं, किन्तु इस संसार में एक से अधिक स्वरूप को अक्षरातीत के रूप में मानना कदापि उचित नहीं है।

दिल को तुम अर्स किया, तुम आए बैठे दिल माहें।

हम अर्स समेत तुम दिल में, अजूं क्यों जोस आवत नाहें॥४७॥

हे धाम धनी! आपने मेरे हृदय को अपना धाम बनाया है और इसमें आकर विराजमान हो गये हैं। इसी प्रकार परमधाम सहित हम सभी आत्मायें आपके दिल में विद्यमान हैं, फिर भी यह कितने आश्चर्य की बात है कि

अभी भी हमारे अन्दर आपके प्रति प्रेम का जोश नहीं उमड़ पा रहा है?

दिल अर्स हुआ हुकमें, तुम आए अपने हुकम।

इस्क इलम सब हुकमें, कहूं जरा न बिना खसम॥४८॥

मेरे प्रियतम्! आपके आदेश (हुकम) से ही मेरे हृदय ने धाम कहलाने की शोभा पायी है। आप अपनी इच्छा (हुकम) से ही इसमें विराजमान हुए हैं। मेरे अन्दर आपके प्रति जो भी प्रेम है या तारतम ज्ञान का प्रकाश है, वह आपकी इच्छा से ही है। आपकी इच्छा के बिना तो कहीं कुछ भी नहीं होता।

बुध जाग्रत इलम हक का, और हकै का हुकम।

जोस अर्स का दिल में, ए सब मिल दिल में हम॥४९॥

मेरे हृदय में आपने जाग्रत बुद्धि के तारतम ज्ञान का प्रकाश भर दिया है और हुक्म के रूप में अपने आवेश स्वरूप से आप स्वयं विराजमान हैं। मेरे अन्दर परमधाम का जोश भी है। इस प्रकार मेरे धाम हृदय में ये सारी निधियाँ विद्यमान हो गयी हैं।

भावार्थ— इस चौपाई में वर्णित जोश तथा चौपाई ४७ में वर्णित जोश में अन्तर है। चौपाई ४७ में प्रेम के जोश का वर्णन है, तो चौपाई ४९ में श्री राज जी के सत अंग के जोश (जिबरील) का वर्णन है। श्री महामति जी के धाम हृदय में जो पाँच शक्तियाँ हैं, उनमें जिस जोश का वर्णन है, उसी का प्रसंग यहाँ पर है। प्रकाश हिन्दुस्तानी की प्रकट वाणी में इसे इस प्रकार दर्शाया गया है—

धनी जी का जोश आतम दुलहिन, नूर हुक्म बुध मूल वतन।
ए पांचों मिल भई महामती, वेद कतेबों पहुंची सरत॥

अब दिल में ऐसा आवत, ए सब करत चतुराए।

फेर देखूं इन चतुराई को, तो हक बिन हरफ न काढ़यो जाए॥५०॥

अब मेरे दिल में ऐसा भी आता है कि ये सारी बातें कहीं मैं चतुराई से तो नहीं कह रही हूँ? पुनः अब मैं अपनी चतुराई (चातुर्यता) के विषय में सोचती हूँ, तो यही निष्कर्ष निकलता है कि धाम धनी के हुक्म के बिना तो मेरे मुख से एक शब्द भी नहीं कहा जा सकता।

हक चतुराई ना चौदे तबकों, हक बका कही न किन तरफ।

ला मकान सुन्य छोड़ के, किन सीधा कहा न एक हरफ॥५१॥

चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड में कहीं भी श्री राज जी की निज बुद्धि नहीं है। आज तक किसी ने भी यह नहीं बताया है कि अक्षरातीत और उनका परमधाम कहाँ पर है? अक्षर ब्रह्म की पञ्चवासनाओं को छोड़कर आज दिन

तक किसी ने भी शून्य-निराकार से परे का एक शब्द भी सीधे ढंग से नहीं कहा।

हक चतुराई हक इलम, और हकै का हुकम।

ए तीनों मिल केहेत हैं, है बात बड़ी खसम॥५२॥

धाम धनी की महिमा अनन्त है। मेरे धाम हृदय में उनकी निज बुद्धि और तारतम ज्ञान का प्रकाश है। अपने आवेश स्वरूप से वे हुकम के रूप में स्वयं विराजमान हैं। इस प्रकार इन तीनों का स्वरूप मिलकर इस ब्रह्मवाणी का अवतरण करा रहा है।

ला मकान सुन्य के परे, हुआ नूर अछर।

कोट ब्रह्मांड उपजे खपे, एक पाउ पल की नजर॥५३॥

निराकार मण्डल के परे अक्षर ब्रह्म हैं। उनके आदेश से

एक पल के चौथाई भाग से भी कम समय में करोड़ों ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं और लय हो जाते हैं।

अक्षरातीत नूरजमाल, ए तरफ जानें अछर नूर।

एक या बिना त्रैलोक को, इन तरफ की न काहू सहूर॥५४॥

अक्षरातीत पूर्ण ब्रह्म की पहचान एकमात्र अक्षर ब्रह्म को ही है। इनके अतिरिक्त तीनों लोक (पृथ्वी, स्वर्ग, और वैकुण्ठ) में किसी को भी अक्षरातीत का ज्ञान नहीं है।

तो कह्या आगूं हक बुध के, चौदे तबकों सुध नाहें।

सो बुध जाग्रत महंमद रूहअल्ला, दई मेरे हिरदे माहें॥५५॥

इसलिये धर्मग्रन्थों में कहा गया है कि एकमात्र परब्रह्म की निज बुद्धि के ज्ञान से ही परब्रह्म को जाना जा सकता है। चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में किसी को भी

सच्चिदानन्द परब्रह्म की पहचान नहीं है। श्री श्यामा जी ने जाग्रत बुद्धि को मेरे धाम हृदय में स्थापित कर दिया।

भावार्थ- अथर्ववेदीय केनोपनिषद् का कथन "न विद्वो न विजानिमः", अर्थात् न तो हम परब्रह्म को यथार्थ रूप से जानते हैं और न जान सकेंगे, यह सिद्ध करता है कि इस संसार में मन-बुद्धि के धरातल पर परब्रह्म को नहीं जाना जा सका है। इसी प्रकार अथर्ववेद के केन सूक्त में ब्रह्मपुरी को "अयोध्या" कहकर वर्णित किया गया है। "अयोध्या" का अर्थ है, जिसे युद्ध में जीता न जा सके, अर्थात् जिसमें प्रवेश न किया जा सके या प्राप्त न किया जा सके। इन कथनों से यह संकेत मिलता है कि अक्षरातीत को अब तक यथार्थ रूप से जाना नहीं जा सका था।

पुराण संहिता तथा माहेश्वर तन्त्र के कथनों से यह स्पष्ट

होता है कि परब्रह्म के तारतम ज्ञान से उसे यथार्थ रूप से जाना जा सकता है। माहेश्वर तन्त्र ३ / ५९ में कहा गया है—

विषयानन्द सन्तुष्टा लोकाः सर्वेऽपि देवताः।

न प्राप्नुवन्ति कणिकां नित्यानन्दमहोदधेः॥

विषयों में सन्तुष्ट रहने वाले सभी प्राणी और देवता उस ब्रह्मानन्द के सागर का एक कण रूपी बिन्दु भी प्राप्त नहीं कर पाते हैं। पुराण संहिता ३१ / ७० में कहा गया है—

सुन्दरी चेंदिरा सख्यौ नामाभ्यां चन्द्रसूर्ययोः।

मायान्धकारनाशाय प्रतिबुद्धे भविष्यतः॥

परमधाम की दो आत्माएँ, सुन्दरी और इन्दिरा, इस संसार में चन्द्र और सूर्य (श्री देवचन्द्र और श्री मिहिरराज) नामक तन धारण करेंगी। इनके द्वारा परब्रह्म का दिया हुआ अलौकिक ज्ञान अवतरित होगा, जो जगत

के अन्धकार को दूर करेगा।

पातसाही एक खावंद की, बीच साहेबियां दोए।

ए वाहेदत की हकीकत, बिना मारफत न जाने कोए॥५६॥

परमधाम में मात्र अक्षरातीत का ही स्वामित्व है, अर्थात् वहाँ के कण-कण में उन्हीं की लीला है। परमधाम में उनकी दो प्रकार की लीला है। अक्षरधाम में वे अक्षर ब्रह्म के रूप में हैं, तो रंगमहल में उनके प्रेम और आनन्द का स्वरूप लीला करता है। परमधाम की एकदिली (एकत्व) की यही वास्तविकता है, जिसे सर्वोपरि सत्य ज्ञान (मारिफत) के बिना नहीं जाना जा सकता है।

भावार्थ- परमधाम में एक अक्षरातीत के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं है। उपनिषदों में "सर्वम् खल्विदं ब्रह्म" का कथन यही दर्शाता है। लीला रूप में वे श्यामा जी,

सखियों, अक्षर ब्रह्म, तथा महालक्ष्मी आदि के रूप में अवश्य दृष्टिगोचर होते हैं, इसे ही परब्रह्म का स्वामित्व कहा गया है।

सो बुध दोऊ असों की, दोऊ सरूप थें जो गुझ।

ए सुख कायम अर्स रूहन के, सो कायम कुंजी दर्ई मुझ॥५७॥

अक्षरधाम में अक्षर ब्रह्म हैं तथा परमधाम में अक्षरातीत हैं। इन दोनों स्वरूपों तथा इनकी जाग्रत बुद्धि एवं निज बुद्धि का रहस्य अभी तक अति गुह्य था। परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों के सुख अखण्ड हैं। उन्हें प्राप्त करने के लिये अखण्ड ज्ञान की कुञ्जी "तारतम ज्ञान" को धाम धनी ने मेरे हृदय में स्थापित कर दिया है।

और सुख बारीक ए सुनो, कहे नूर नूरतजल्ला दोए।

नूरतजल्ला के अंदर की, सुध नहीं नूर को सोए ॥५८॥

हे साथ जी! आनन्द की एक गुह्य बात सुनिये। परमधाम में अक्षर और अक्षरातीत दो पुरुष कहे जाते हैं। अक्षरातीत के रंगमहल में प्रेम और आनन्द की जो लीला होती है, उसकी सुध अक्षर ब्रह्म को भी नहीं है।

जित चल न सके जबरईल, कहे आगूं जलत मेरे पर।

जलावत नूर तजल्ली, मैं चल सकों क्यों कर ॥५९॥

अक्षर ब्रह्म का फरिश्ता जिबरील भी उस परमधाम में नहीं जा सका। उसने स्पष्ट रूप से कह दिया कि यदि मैं आगे (सत्स्वरूप से) चलता हूँ, तो परमधाम की तेज से मेरे पर जलने लगते हैं। मैं किसी भी तरह से आगे नहीं चल सकता।

भावार्थ- जिबरील कोई पक्षी नहीं है, जिसके पँख (पर) जल जायें। यह धनी के जोश का स्वरूप है— "जबराईल जोस धनीय का" (खुलासा १२/४५)। सनंध ३७/३ में अक्षर ब्रह्म के फरिश्ते के रूप में भी इसका वर्णन किया गया है—

यामें एक रसूल संग, ए जो जबराईल।

सो नूर से आवत रुहन पर, हकें भेज्या रोसन वकील।।

इसके द्वारा ही ब्रह्मज्ञान का सन्देश संसार में आता है, तथा परमधाम और अक्षरधाम की सुरताओं को निराकार से पार कराता है, इसलिये इसे पक्षी के रूप में वर्णित किया गया है। जोश का स्वरूप प्रेम के धाम में नहीं जा सकता, इसलिये पँख जलने की बात कही गयी है।

सो सुध बातून नूरजमाल की, अर्स अजीम के अन्दर।

दोऊ हादियों मेहेर कर, पट खोल दिए अंतर ॥६०॥

परमधाम में अक्षरातीत की अपनी आत्माओं के साथ जो अनन्य प्रेम और आनन्द की लीला होती है, वही गुह्य (बातिनी) बात है। युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी ने मेरे ऊपर मेहर की है और माया का पर्दा हटाकर परमधाम के गुह्य रहस्यों को बता दिया है।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण में कथित "अंतर" शब्द का तात्पर्य है- पिण्ड ब्रह्माण्ड से परे जो निराकार (मोह सागर) का पर्दा है, उसे हटा दिया।

जो सुध नहीं नूर जाग्रत, नूरजमाल का बातन ।

सो बेसक सुध हकें मोहे दर्ई, सो मैं पाई वजूद सुपन॥६१॥

अक्षरातीत की जिन गुह्य बातों का ज्ञान जाग्रत स्वरूप

अक्षर ब्रह्म को भी नहीं है, उसे धाम धनी ने मेरे इस स्वप्न के तन में दे दिया। अब मुझे उन सारी बातों की पूर्ण रूप से सुध हो गयी है।

रूहें अंदर अर्स अजीम के, जो अरवा बारे हजार।

हक ऊपर बैठ देखावत, ए जो खेल कुफार॥६२॥

परमधाम में बारह हजार ब्रह्मसृष्टियाँ हैं। धाम धनी मूल मिलावे में सिंहासन पर विराजमान हैं और अपनी अँगनाओं को अपने चरणों में बिठाकर माया का यह झूठा खेल दिखा रहे हैं।

भावार्थ— परमधाम में अनन्त आत्मायें हैं, किन्तु इस खेल में उनकी नजर को बहुत थोड़ी संख्या (१२०००) में सीमित कर दिया है। यही कारण है कि इस चौपाई में परमधाम में सखियों की संख्या १२००० बतायी गयी है।

परमधाम में किसी भी वस्तु को संख्या की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता।

सो भिस्त दई हम सबन को, कर जाहेर बका अर्स इत।

करें त्रैलोकी त्रिगुन कायम, ब्रह्मसृष्ट की बरकत॥६३॥

श्री राज जी ने मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर अखण्ड परमधाम का ज्ञान इस झूठे संसार में प्रकट किया और हमारे जीवों को सत्स्वरूप की प्रथम बहिश्त दी। अब इस अलौकिक ज्ञान के द्वारा ब्रह्मसृष्टियों की कृपा से सत्व, रज, तथा तम के बन्धन में फँसे हुए ब्रह्माण्ड (त्रिलोकी) के जीवों को अखण्ड मुक्ति प्राप्त होगी।

भावार्थ— इस चौपाई के प्रथम चरण में "हम सबन को" का भाव हमारे जीवों से है। बहिश्त का तात्पर्य परमधाम

से नहीं लिया जा सकता। जीव परमधाम जा नहीं सकते और नित्य मुक्त आत्मा को बहिश्त की आवश्यकता नहीं होती।

ए बात बारीक अति बुजरक, दोऊ सरूपों सुख बातन।
 करी परीछा इस्क साहेबी, सुख होसी नूर रुहन॥६४॥

ब्रह्मसृष्टियों के जीवों को सत्स्वरूप की बहिश्त मिलने की गुह्य बात का बहुत ही महत्व है। इसमें आनन्द अंग तथा सत अंग (अक्षर ब्रह्म) का सुख छिपा हुआ है। धाम धनी ने ब्रह्मसृष्टियों के प्रेम की परीक्षा लेने तथा अपना स्वामित्व दर्शाने के लिये माया का यह खेल बनाया है। इस खेल के समाप्त होने के पश्चात् अक्षर ब्रह्म तथा आत्माओं को बहुत अधिक आनन्द होगा।

भावार्थ— इस चौपाई में दो स्वरूपों का भाव सत अंग

तथा आनन्द अंग से है। ब्रह्मसृष्टियों के जीव सत्स्वरूप की पहली बहिश्त में परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों जैसा रूप धारण करेंगे तथा उनके तन से परमधाम जैसी ही प्रेममयी लीला हुआ करेगी, जिसका रसपान अक्षर ब्रह्म रास की तरह करते रहेंगे। इस प्रकार परमधाम की प्रेममयी लीला का प्रतिबिम्बित रस उनको मिलता रहेगा। इसी प्रकार सखियों ने इस खेल में ब्रह्मवाणी के द्वारा परमधाम के प्रेम, एकत्व (वहदत), मूल सम्बन्ध (निस्बत), तथा खिल्वत की मारिफत के उन रहस्यों को जान लिया है, जिसे परमधाम में अनादि काल से रहने पर नहीं जान सकी थीं। अब परात्म में जाग्रत होने के पश्चात् प्रेम और आनन्द की लीला का रस न्यारा ही होगा। इसे ही दोनों स्वरूपों का सुख लेना कहा गया है।

करसी कायम खाकीबुत को, करके नूर सनमुख।

इन से अछर और मोमिन, लेसी कायम अर्स के सुख॥६५॥

धाम धनी हमारे जीवों को अक्षर की नजर योगमाया के ब्रह्माण्ड (सत्स्वरूप) में अखण्ड कर देंगे। इससे अक्षर ब्रह्म और ब्रह्मसृष्टियों को परमधाम के अखण्ड सुखों का रसपान होता रहेगा।

भावार्थ— योगमाया में अखण्ड होने वाले तनों से परमधाम में ब्रह्मसृष्टियाँ खेल की हँसी का आनन्द ले सकेंगी।

ए सुख जानें नूरजमाल, या जानें नूर अछर।

या हम रूहें जानहीं, कहे महामत हुकमें यों कर॥६६॥

धाम धनी के हुक्म से श्री महामति जी कहते हैं कि इस सुख को या तो स्वयं अक्षरातीत जानते हैं, या अक्षर ब्रह्म

जानते हैं, या श्यामा जी सहित हम सभी आत्मार्ये जानती हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में जिस सुख की ओर संकेत किया गया है, वह जागनी लीला के समाप्त होने के पश्चात् योगमाया की बहिश्यों में जीवों के अखण्ड होने से सम्बन्धित है। अक्षरातीत तो पूर्णकाम हैं, किन्तु इस चौपाई में उनको भी सुख की अनुभूति का कथन इसलिये किया गया है, क्योंकि जब आत्माओं ने इस जागनी लीला में उनके दिल के भेदों को जान लिया है तो प्रेम का रस कुछ न्यारा ही होगा। इसे ही लौकिक भावों में अक्षरातीत के द्वारा सुख को जानने की बात से वर्णित किया गया है।

प्रकरण ॥२॥ चौपाई ॥१३१॥

इस प्रकरण में परमधाम के प्रेम, श्रृंगार, और धनी के आदेश (हुक्म) आदि पर प्रकाश डाला गया है।

आसिक इन चरन की, आसिक की रूह चरन।

एह जुदागी क्यों सहे, रूह बिना अपने तन॥१॥

ब्रह्मसृष्टियाँ धनी के चरणों की आशिक हैं और धनी के चरण कमल ही ब्रह्मसृष्टियों के जीवन के आधार हैं। भला परमधाम की आत्मायें अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत से वियोग कैसे सहन कर सकती हैं? कदापि नहीं, क्योंकि वे तो उन्हीं के तन हैं।

भावार्थ— इस चौपाई में "रूह" शब्द से तात्पर्य जीवन के आधार से है। रूह (आत्मा) के बिना जिस प्रकार शरीर का अस्तित्व सम्भव नहीं होता, उसी प्रकार धनी के चरणों के बिना ब्रह्मसृष्टियों का भी अस्तित्व सम्भव

नहीं है, इसलिये इस चौपाई में धनी के चरणों को
ब्रह्मात्माओं के जीवन का आधार (रूह) कहा गया है।

जो रूह अर्स की मोमिन, तिन सब की ए निसबत।

दिल मोमिन अर्स इन माएनों, इन दिल में हक सूरत॥२॥

परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों की जो भी आत्मा इस खेल में
आयी है, उनका मूल सम्बन्ध धनी के चरणों से होता है।
इनके हृदय में अक्षरातीत का स्वरूप विराजमान होता है,
इसलिये इनके हृदय को "धाम" कहलाने की शोभा प्राप्त
है।

हक सूरत रूह मोमिन, निसबत एह असल।

मोमिन रूहें कही अर्स की, तो अर्स कहा मोमिन दिल॥३॥

ब्रह्मसृष्टियों की आत्मा में अक्षरातीत श्री राज जी का

स्वरूप विराजमान होता है। इनका यह सम्बन्ध वास्तविक और अखण्ड होता है। इन ब्रह्ममुनियों को परमधाम की आत्मा कहा जाता है, इसलिये इनके हृदय को परमधाम के रूप में जाना जाता है।

भावार्थ- श्यामा जी और सखियों सहित सम्पूर्ण परमधाम अक्षरातीत श्री राज जी के दिल का ही व्यक्त (प्रकट) स्वरूप है। इसलिये प्रत्येक आत्मा के धाम हृदय में अक्षरातीत का निवास होना अनिवार्य है।

ए चरन दोऊ हक के, आए धरे मेरे दिल माहें।

तो अर्स कहा दिल मोमिन, आई न्यामत हक हैं जाहें॥४॥

श्री राज जी के दोनों चरण कमल मेरे धाम हृदय में आकर विराजमान हो गये हैं। यही कारण है कि ब्रह्मसृष्टियों के हृदय को श्री राज जी का धाम कहा जाता

है। जिस हृदय में प्रियतम का स्वरूप बस जाता है, उसमें उनकी सम्पूर्ण निधियाँ आ जाती हैं।

ए चरन हुए अर्स मासूक, हुआ अर्स चरन दिल एक।

ए वाहेदत जुदागी क्यों होए, जो ताले लिखी ए नेक॥५॥

माशूक श्री राज जी के चरण कमल में ही आत्माओं का धाम है और आत्माओं के हृदय में श्री राज जी का धाम है। इस प्रकार दोनों धाम (चरण और हृदय) एक हो गये। भला वहदत के स्वरूपों में वियोग कैसे हो सकता है ? इन ब्रह्मसृष्टियों का सौभाग्य है, जो धनी से उनका अखण्ड सम्बन्ध निरन्तर बना रहता है।

अर्स अरवाहें जो वाहेदत में, सो सब तले हक नजर।

इस्क सुराही हाथ हक के, रूहों पिलावें भर भर॥६॥

परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों में एकदिली है। वे हमेशा ही श्री राज जी की प्रेम भरी नजरों की छाँव तले रहती हैं। धाम धनी का हृदय प्रेम (इश्क) की वह सुराही है, जिससे वे ब्रह्मसृष्टियों के दिल (हृदय) रूपी प्यालों में प्रेम भरा करते हैं और उसका रसपान कराते हैं।

भावार्थ- इस चौपाई के तीसरे चरण में श्री राज जी के हाथों में इश्क की सुराही होने का वर्णन किया गया है। वस्तुतः यहाँ आलंकारिक वर्णन है। वहाँ इश्क की सुराही को हाथ से पकड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है, बल्कि श्री राज जी का हृदय ही वह प्रेम का सागर है, जिसे सुराही के रूप में दर्शाया गया है।

इस्क हक के दिल में, सो दिल पूरन गंज अपार।

असल तन इत जिनों, सोए रस पीवनहार॥७॥

अक्षरातीत श्री राज जी के हृदय में पूर्ण गंजानगंज अनन्त प्रेम (इश्क) भरा हुआ है, किन्तु इस प्रेम-रस का पान मात्र वे आत्मायें ही करती हैं, जिनके मूल तन परमधाम में विद्यमान हैं।

भावार्थ- पूर्ण गंजानगंज शब्द का भाव होता है- पूर्ण भण्डार राशि या कोश। पूर्ण शब्द का प्रयोग इसलिये किया गया है कि उसमें कभी भी कमी नहीं आती।

सराब हक सुराही का, पिया अरवाहों जिन।

आठों जाम चौसठ घड़ी, क्यों उतरे मस्ती तिन॥८॥

अक्षरातीत के हृदय में लहराने वाले प्रेमरस का जिन आत्माओं ने पान कर लिया है, वे अष्ट प्रहर चौंसठ घड़ी, अर्थात् दिन-रात, आनन्द की अथाह मस्ती में डूबी रहती हैं। उनका आनन्द कभी कम नहीं होता।

असल अरवाहें अर्स की, जो हैं रूह मोमिन।

एक निसबत जानें हक की, जिनों मासूक प्यारे चरन॥९॥

परमधाम की अनादि आत्मायें, जो इस संसार में "ब्रह्ममुनि" कहलाती हैं, उन्हें श्री राज जी के चरणकमल बहुत ही प्यारे होते हैं। वे एकमात्र धाम धनी से ही अपना अखण्ड सम्बन्ध रखती हैं, अर्थात् केवल श्री राज जी से ही उनका वास्तविक प्रेम होता है।

भावार्थ- इस चौपाई में "अरवाह" और "रूह" समानार्थक शब्द हैं। इसी प्रकार ब्रह्ममुनि शब्द मोमिन का हिन्दी रूपान्तर है।

इस चौपाई के पहले चरण में "असल" (मूल, वास्तविक, अनादि) शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका तात्पर्य यह है कि वे अनादि काल से परमधाम में रह रही हैं।

मोमिन वासा चरन तले, अर्स अरवाहों का मूल।

मोमिन आए इत अर्स से, तो फुरमान ल्याए रसूल॥१०॥

ब्रह्ममुनि हमेशा ही धनी के चरणों की शोभा में डूबे रहते हैं। परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों का मूल ठिकाना धनी के चरणकमल ही हैं। ब्रह्ममुनि इस नश्वर जगत का खेल देखने के लिये परमधाम से आये हैं। उन्हें साक्षी देने के लिये धाम धनी ने कुरआन का ज्ञान देकर अपने सन्देशवाहक के रूप में मुहम्मद साहिब को भेजा।

भावार्थ- इस चौपाई में "चरण" शब्द का प्रयोग आलंकारिक है। यहाँ "चरण" का भाव स्वरूप से है, जिसमें नख से शिख तक का सम्पूर्ण श्रृंगार निहित है। केवल बाह्य चरणों से जुड़े रहना तो दासत्व का प्रतीक है, जबकि प्रेम मार्ग में आशिक (प्रेमी) अपने माशूक (प्रेमास्पद) के मुखारविन्द का दीदार करता ही है।

तो कह्या मोमिन खाना दीदार, पानी पीवना दोस्ती हक।

तवाफ सिजदा इतहीं, करें रूह कुरबानी मुतलक॥११॥

इसलिये प्रियतम अक्षरातीत का दीदार (दर्शन) ही ब्रह्ममुनियों का भोजन है और उनसे प्रेम (मित्रता) करना ही पानी पीना है। प्रियतम के अंग-अंग की शोभा को अपने हृदय में बसाये रखने में ही इनकी परिक्रमा पूर्ण होती है। अपने प्राणवल्लभ की सामीप्यता में स्वयं को पहुँचा देना ही प्रणाम करना है। निश्चित रूप से इस राह पर चलने में ब्रह्मसृष्टियाँ अपना सर्वस्व न्योछावर कर देती हैं।

रूहें अव्वल आखिर इतहीं, मोमिन ना दूजा ठौर।

कहे चौदे तबक जरा नहीं, बिना वाहेदत ना कछू और॥१२॥

शुरु (इश्क रब्द) से लेकर आखिर (जागनी लीला)

तक ब्रह्मसृष्टियाँ धनी के चरणों में ही रही हैं। अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत के अतिरिक्त अन्य किसी की छत्रछाया इन्हें स्वीकार नहीं है। धर्मग्रन्थों में तो ऐसा कहा गया है कि चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड का कोई अस्तित्व ही नहीं है। परमधाम की वहदत (एकदिली) के अतिरिक्त ब्रह्मसृष्टियों के लिये और कुछ भी निवास योग्य नहीं है।

जो अब भी जाहेर ना होती, बका हक सूरत।

तो क्यों होती दुनी हैयाती, क्यों भिस्त द्वार खोलत॥१३॥

यदि इस जागनी लीला में भी अक्षरातीत की अखण्ड शोभा जाहिर (प्रकाशित) नहीं होती, तो इस संसार को अखण्ड मुक्ति नहीं मिल सकती थी और संसार के जीवों को बेहद मण्डल की अखण्ड बहिश्तों में जाने का अवसर

भी नहीं प्राप्त हो सकता था।

जो दीदार न होता दुनी को, तो क्यों करते इमाम इमामत।

क्यों जानते कयामत को, जो जाहेर न होती निसबत॥१४॥

यदि संसार के लोगों को श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में अक्षरातीत का दर्शन नहीं होता, तो आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिबुज्जमा (श्री प्राणनाथ जी) के द्वारा इमामत करने का दावा नहीं किया जा सकता था। यदि ब्रह्मसृष्टियों को अक्षरातीत से अपने मूल सम्बन्ध का ज्ञान नहीं होता, तो कियामत के बारे में भी कोई नहीं जान सकता था।

भावार्थ— इमामत का तात्पर्य है – नेतृत्व करना। परमधाम से आयी हुई आत्माओं को तारतम ज्ञान (इल्मे लुदुन्नी) के प्रकाश में परब्रह्म के चरणों में ले जाना ही

इमामत है। जब श्री प्राणनाथ जी ने ब्रह्ममुनियों को अखण्ड परमधाम में ध्यान लगवाया, तो संसार के लोग समझ गये कि श्री प्राणनाथ जी के रूप में अब परब्रह्म का ही स्वरूप इस संसार में प्रकट हो चुका है। जब जीव, ईश्वरी, एवं ब्रह्मसृष्टि ने प्रियतम अक्षरातीत को पहचान लिया तो यह निश्चित हो गया कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को मुक्ति देने वाले तारतम ज्ञान का प्रकटीकरण हो चुका है, अर्थात् कियामत आ चुकी है।

अर्स बका द्वार न खोलते, तो क्यों होती सिफायत महंमद।

हक के कौल सबे मिले, जो काफर करते थे रद॥१५॥

यदि श्री प्राणनाथ जी ब्रह्मवाणी के द्वारा अखण्ड परमधाम का द्वार नहीं खोलते, तो मुहम्मद साहिब के द्वारा की गयी अनुशंसा (सिफारिश) की बात सत्य कैसे

होती? धाम धनी के द्वारा कुरआन में कही हुई वे सभी बातें सत्य हो चुकी हैं, जिसे काफिर लोग उस समय झूठी कहा करते थे।

भावार्थ- सही बुखारी शरीफ जिल्द तीसरी पृ. सं. ६६४/९ में कहा गया है कि कियामत के समय में तुम अल्लाह का दीदार करोगे। मुहम्मद साहिब ने इसके सम्बन्ध में अपने साथियों से कहा था कि जब कियामत का समय आयेगा, तो मैं अल्लाहतआला से तुम्हारी अनुशंसा (सिफारिश) करके तुम्हें अखण्ड बहिश्तें दिलाऊँगा। कुरआन-हदीसों में कही हुई इन बातों पर काफिर लोग हँसी उड़ाया करते थे कि ये सारी बातें गप्प हैं, किन्तु अब वे सारी बातें सत्य प्रमाणित हो चुकी हैं।

कह्या अव्वल महंमद ने, हक अमरद सूरत।

में देखी अर्स अजीम में, पोहोंच्या बका बीच खिलवत॥१६॥

मुहम्मद साहिब ने कुरआन में कहा है कि अल्लाहतआला का अति सुन्दर किशोर स्वरूप (अमरद सूरत) है। अखण्ड परमधाम के अन्दर मूल मिलावा में पहुँचकर मैंने उनकी किशोर शोभा को देखा है।

भावार्थ— कुरआन पारा २७ सूरत ५३ आयत १-१८ तक में मुहम्मद साहिब के मेअराज का वर्णन है। इसी प्रकरण की व्याख्या में, कुरआन-ए-पाक के सर्वश्रेष्ठ व्याख्याकर्ता मौलवी कमालु दीन हुसैन वाइज काशफी ने तफसीर-ए-हुसैनी धर्मग्रन्थ में, अल्लाह को "अमरद सूरत" (किशोर स्वरूप) वाला कहा है।

हौज जोए बाग जानवर, जल जिमी अर्स मोहोलात।

और अनेक देखी न्यामतें, गुझ जाहेर करी कई बात॥१७॥

मुहम्मद साहिब ने परमधाम पहुँचकर वहाँ नूरी हौज कोशर, यमुना जी, बाग-बगीचों, जानवरों, जल, धरती, और असंख्य महलों को देखा। इनके अतिरिक्त परमधाम की और भी नेमतों (निधियों) को देखा। कुरआन के अन्दर परमधाम की कई गुह्य बातों को उन्होंने प्रकट भी किया है।

भावार्थ- कुरआन के पार: ३० सूरत १०८ आयत इन्ना आतेना सूरत में हौज कौशर का वर्णन है। इसी प्रकार कुरआन-ए-पाक की सर्वश्रेष्ठ व्याख्या तफ़सीर-ए-हुसैनी में वर्णन है कि मुहम्मद (सल्ल.) ने अर्श (परमधाम) में अलौकिक वृक्षों के नीचे नहरें बहती हुई देखीं। इमाम सालवी साहिब के सन्दर्भ से नहर के दोनों

किनारों पर अद्भुत , अतुलनीय, स्वादिष्ट फलों से सुसज्जित एवं फूलों से लदे हुए उद्यान देखे। अद्भुत रोमाञ्चक झरने, जल-प्रपात का मधुर-सुगन्धित शीतल जल देखा, जिसे हाथ में लेने पर अत्यधिक मोहकता थी। मेअराज के पश्चात् भी उन्होंने अपने हाथों में भीनी-भीनी सुगन्धि महसूस की।

सो बरनन हुई हक सूरत, जासों महंमदें करी मजकूर।

नब्बे हजार हरफ सुने, नूर पार पोहोंच हजूर॥१८॥

इस प्रकार कतेब परम्परा में अक्षरातीत की शोभा का वर्णन हो सका। मुहम्मद साहिब को जब मेअराज हुआ तो वे अक्षरधाम से भी परे परमधाम के रंगमहल में पहुँचे और उन्होंने अक्षरातीत के मुखारबिन्द से ९०,००० शब्दों में बँधी हुई बातों को सुना। इसका विस्तृत वर्णन

उर्दू में क़स्सुल अंबिया एवं हिंदी में शब -ए-मे'अराज नामक पुस्तकों में है।

हक हुकमें कछू जाहेर किए, और छिपे रखे हुकम।

सो हुकमें अव्वल आखिर को, अब जाहेर किए खसम॥१९॥

श्री राज जी के आदेश से उन्होंने शरियत तथा तरीकत की कुछ बातों को कुरआन में प्रकट किया , तथा हकीकत एवं मारिफत की बातों को छिपाये रखा। शुरु (इश्क-रब्द) से लेकर आखिर (जागनी लीला) तक की सारी बातों को धाम धनी ने अब अपने हुक्म (आदेश) से प्रकाश में ला दिया है।

भावार्थ- कुरआन में मुख्यतः शरियत और तरीकत का ज्ञान है। हरूफे मुक्तेआत के रूप में हकीकत-मारिफत का ज्ञान संकेतों में छिपा हुआ है, जिनके रहस्यों को श्री

प्राणनाथ जी ने उजागर किया है। मारिफत के शब्द तो मुहम्मद साहिब की जिह्वा से उच्चरित ही नहीं हो सके। यह बात श्रीमुखवाणी में इस प्रकार दर्शायी गयी है—

कह्या जाहेर रसूले, मैं हरफ सुने हैं कान।

सो आए केहेसी इमाम, मैं लिखे नहीं फुरमान॥

जो हरफ जुबां चढ़े नहीं, सो क्यों चढ़े कुरान।

और जुबां ले आवसी, इमाम एही पेहेचान॥

बोले न मेंहेंदी एक जुबां, जुबां बोले कई लाख।

आगे बिन जुबां बोलसी, बिन अंगों बिन भाख॥

सनंध ३९/१,२,३

सब कोई कहे खुदा एक है, दूजा कहे न कोए।

कलाम अल्ला कहे एक खुदा, दूजा बरहक महंमद सोए॥२०॥

संसार के सभी मतों का कहना है कि परब्रह्म एक है। कोई भी दो परब्रह्म नहीं कहता। कुरआन का भी यही कथन है कि खुदा (परब्रह्म) तो मात्र एक ही है। परब्रह्म के अतिरिक्त मुहम्मद साहिब का कथन पूर्ण सत्य है।

सो महंमद कहे मैं उमत से, मुझसे है उमत।

मैं उमत बिना न पी सकों, हक हजूर सरबत॥२१॥

श्यामा जी कहती हैं कि मैं ब्रह्मसृष्टियों से हूँ तथा ब्रह्मसृष्टियाँ मुझसे हैं। मैं ब्रह्मसृष्टियों के बिना धाम धनी के प्रेम का रसपान नहीं कर सकती।

भावार्थ— कुरआन-ए-पाक में पार: १६ सूरत मरियम के अनुसार तफसीर-ए-हुसैनी में स्पष्टतः मुहम्मद की तीन सूरते बतायी गई हैं— बसरी, मलकी, हक्की।

इस चौपाई में श्यामा जी के लिये ही मुहम्मद शब्द का

प्रयोग किया गया है। इस चौपाई में श्यामा जी के कथन का आशय यह है कि ब्रह्मसृष्टियों से मेरा अंग-अंगी का सम्बन्ध है। इसे ही दूसरे शब्दों में चौपाई में कहा गया है कि मैं ब्रह्मसृष्टियों से हूँ तथा ब्रह्मसृष्टियाँ मुझसे हैं।

खुदा एक महंमद साहेद, मसहूद है उमत।

ए तीनों अर्स अजीम में, ए वाहेदत बीच हकीकत॥२२॥

श्यामा जी साक्षी देती हैं कि एकमात्र अक्षरातीत ही प्राणप्रियतम हैं, जिनकी मैं अंगरूपा हूँ, तथा मेरी अंगरूपा ये प्रत्यक्ष रूप में उपस्थित ब्रह्मसृष्टियाँ हैं। वास्तविकता यह है कि परमधाम की एकदिली (वहदत) में ये तीनों एक ही स्वरूप हैं।

भावार्थ- "मसहूद" का साहित्यिक रूप मशहद होता है, जिसका अर्थ है "उपस्थित"। श्री राज जी के हृदय

(मारिफत) से ही हकीकत के रूप में श्यामा जी और सखियाँ हैं। इसी प्रकार अक्षर ब्रह्म और महालक्ष्मी भी उन्हीं के दिल के स्वरूप हैं।

ए उपले माएने तीन कहे, और चौथा नूर मकान।

ए बातें मारफत की, सब मिल एक सुभान॥२३॥

श्री राज जी, श्यामा जी, और ब्रह्मसृष्टियों को बाह्य रूप में तीन कहा जाता है। चौथे स्वरूप अक्षरधाम में अक्षर ब्रह्म हैं। उनके साथ महालक्ष्मी भी हैं। ये सभी पाँचों स्वरूप मिलकर एक परब्रह्म के स्वरूप सिद्ध होते हैं। ये सारी बातें मारिफत (सर्वोपरि सत्य) की हैं।

भावार्थ— स्वलीला अद्वैत सच्चिदानन्द परब्रह्म के स्वरूप में ये पाँच स्वरूप निहित है— १. श्री राज जी २. श्री श्यामा जी ३. सखियाँ ४. अक्षर ब्रह्म ५. महालक्ष्मी।

रसूलें एता इत जाहेर किया, और हरफ रखे छिपाए।

हक मेला बड़ा होएसी, सो करसी जाहेर खिलवत आए॥२४॥

रसूल साहिब ने इस संसार में बस इतनी ही बात बतायी है। शेष मारिफत की बातें इसलिये छिपा दीं, ताकि कियामत के समय जब परब्रह्म आत्माओं को जाग्रत करेंगे, तो उस समय वे परमधाम की खिल्वत की गुह्य बातों को प्रकट करेंगे।

भावार्थ- कुरआन-हदीस का कथन है- "अना नूरिल्लाह व कुल शैअं मिन्नूरी", अर्थात् परब्रह्म के नूर से मुहम्मद नूरी अर्थात् श्यामा जी परब्रह्म की अंगरूपा हैं, एवं मुहम्मद (सल्ल.) के नूर से, तथा सखियाँ श्यामा जी की अंगरूपा हैं। कुरआन की मारिफत की बातें श्रृंगार ग्रन्थ में अवतरित हुई हैं।

बसरी मलकी और हकी, कही महंमद तीन सूरत।

तामें दोए देसी हक साहेदी, हकी खोले सब हकीकत॥२५॥

मुहम्मद की तीन सूरतें कही गयी हैं— बशरी, मलायकी (मलकी), और हक्की। इसमें दो सूरत धाम धनी की साक्षियाँ देंगी तथा तीसरी सूरत वास्तविक ज्ञान को उजागर करेगी।

भावार्थ— कुरआन के व्याख्या ग्रन्थ तफ्सीर-ए-हुसैनी में पारः १६ सूरः मरियम १९ में तीन सूरतों की विवेचना की गयी है। बशरी सूरत रसूल मुहम्मद साहिब हैं। मल्की सूरत सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी हैं, और हक्की सूरत श्री प्राणनाथ जी हैं।

हकी हक अर्स करे जाहेर, ऊग्या कायम सूर फजर।

होसी सब हैयाती, देख कायम खिलवत नजर॥२६॥

श्री प्राणनाथ जी (हक्की सूरत) के द्वारा ब्रह्मवाणी के रूप में अखण्ड ज्ञान का सूर्य उगेगा, जिससे परमसत्य का ज्ञान सर्वत्र फैल जायेगा, और परमधाम तथा अक्षरातीत की पहचान प्रकट हो जायेगी। अखण्ड मूल मिलावा को अपने ज्ञान चक्षुओं से देखकर (प्राप्त कर) संसार के प्राणी अखण्ड मुक्ति को प्राप्त होंगे।

भावार्थ- वेदान्त का कथन है- "ऋते ज्ञानात् न मुक्तिः", अर्थात् परब्रह्म के ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं मिलती। जब ब्रह्मवाणी के द्वारा संसार के लोगों को परब्रह्म के धाम, स्वरूप, तथा लीला का बोध हो जायेगा तो उनकी मुक्ति निश्चित है।

ले हकी सूरत हक इलम, करसी जाहेर हक बिसात।

खिलवत भी छिपी ना रहे, करे जाहेर वाहेदत हक जात॥२७॥

श्री प्राणनाथ जी ब्रह्मवाणी के द्वारा अक्षरातीत की निधियों (पच्चीस पक्षों सहित ज्ञान, प्रेम, एकत्व, शोभा-श्रृंगार, लीला, आदि) को उजागर करेंगे। इस ब्रह्मवाणी के द्वारा परमधाम की खिल्वत तथा श्री राजश्यामा जी एवं सखियों के बीच की एकदिली (वहदत) भी स्पष्ट रूप से प्रकाश में आ जायेगी।

फजर कही जो फुरमाने, सो अर्स बका हक दिन।

जो लों बका तरफ पाई नहीं, तो लों सबों ना रोसन॥२८॥

धर्मग्रन्थों में जिसे प्रातःकाल होना कहा गया है, वह अखण्ड परमधाम तथा सच्चिदानन्द परब्रह्म के स्वरूप के उजागर होने के सम्बन्ध में है। जब तक संसार के लोगों को अखण्ड परमधाम का ज्ञान प्राप्त नहीं होता, तब तक उनके हृदय में ज्ञान का प्रकाश नहीं हो सकेगा।

भावार्थ- अज्ञान के अन्धकार को रात्रि कहा जाता है तथा ज्ञान के प्रकाश को दिन कहा जाता है। धर्मग्रन्थों के चिन्तन-मनन में लगा हुआ संसार तारतम ज्ञान से रहित होने के कारण परब्रह्म के धाम, स्वरूप, तथा लीला के विषय में अनभिज्ञ है। संसार के लोग ब्रह्मज्ञान के अभाव में मात्र शब्द जाल में उलझ गये हैं और इस नश्वर जगत में ही ब्रह्म के साकार या निराकार स्वरूप की कल्पनाओं में फँसे पड़े हैं। मात्र ब्रह्मवाणी के प्रकाश में ही इनसे मुक्त हुआ जा सकता है।

अब दिन कायम जाहेर हुआ, सबों रोसनी पोहोंची बका हक।

कायम किए सब हुकमें, बरस्या बका इस्क मुतलक॥२९॥

अब तो अखण्ड परमधाम के ज्ञान का उजाला भी फैल गया है, जिससे अक्षरातीत के अखण्ड स्वरूप की

पहचान सभी तक पहुँच रही है। निश्चित रूप से परमधाम के अखण्ड प्रेम की वर्षा भी हुई है, जिसके कारण धनी के हुक्म से सभी प्राणी अखण्ड मुक्ति को प्राप्त करेंगे।

भावार्थ- परमधाम के ज्ञान एवं शाश्वत प्रेम के द्वारा ही संसार के प्राणी इस भवसागर से पार होंगे। वस्तुतः इस ब्रह्माण्ड के प्राणियों के लिये यह स्वर्णिम अवसर है।

रुह अल्ला चौथे आसमान से, आए खोली सब हकीकत।

ल्याए इलम लदुन्नी, कही सब हक मारफत॥३०॥

चौथे आकाश परमधाम से श्यामा जी आर्यीं और उन्होंने वास्तविक सत्य को उजागर किया। तारतम ज्ञान के द्वारा उन्होंने अक्षरातीत के स्वरूप की पूर्ण पहचान करायी।

भावार्थ- श्यामा जी ने अक्षरातीत के पूर्ण स्वरूप की

यह पहचान अपने दूसरे तन (श्री इन्द्रावती) से दी। यह कार्य श्रृंगार ग्रन्थ के अवतरण से ही सम्भव हो सका। पहले तन में तो "तारतम का तारतम" अवतरित ही नहीं हो सका। इसी श्रृंगार ग्रन्थ १/४७,४८ में यह बात दर्शायी गयी है—

ब्रह्मसृष्ट हुती बृज रास में, प्रेम हुतो लछ बिन।

सो लछ अव्वल को ल्याए रुहअल्ला, पर न था आखिरी इलम पूरन॥

जो लों मुतलक इलम न आखिरी, तोलो क्या करे खास उमत।

पेहेचान करनी मुतलक, जो गैब हक खिलवत॥

जो कही महंमद ने, हक जात सूरत।

सोई कही रुहअल्ला ने, यामें जरा न तफावत॥३१॥

मुहम्मद साहिब ने श्री राजश्यामा जी तथा ब्रह्मसृष्टियों की जैसी शोभा बतायी है, वैसी ही शोभा सद्गुरु धनी श्री

देवचन्द्र जी (श्यामा जी) ने कही है। इनके कथनों में नाम मात्र के लिये भी अन्तर नहीं है।

भावार्थ- कुरआन-ए-पाक के पारः १६ सूरः १९ मरियम एवं पारः अमम में तथा हदीसों में वर्णन है कि "कलाम अरबी हक़ रसूलिना" एवं "कुल क़बूलं इमाम।" इससे यही तात्पर्य है, जिसका कुरआन की सर्वश्रेष्ठ व्याख्या तफ़सीर-ए-हुसैनी में भी वर्णन है, कि प्रथम बशरी, द्वितीय मलाइक, व तृतीय हक़ी सूरत है। इन तीनों के द्वारा ही संसार में अद्वैतवाद के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया गया है।

जो अमरद कहा महंमदें, सोई कही ईसे किसोर सूरत।
और सब चीजें कही बराबर, दोऊ मकान हादी उमत॥३२॥
मुहम्मद साहिब ने अल्लाह तआला (परब्रह्म) को अमरद

सूरत वाला कहा, तो सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने कहा कि परब्रह्म का स्वरूप किशोर है। दोनों धामों (अक्षरधाम तथा परमधाम), श्यामा जी, ब्रह्मसृष्टियों, तथा अन्य सभी बातों में भी उनके कथन समान हैं।

हौज जोए बाग अर्स के, जो कछू अर्स बिसात।

कहूं केती अर्स साहेदियां, इन जुबां कही न जात॥३३॥

परमधाम के हौज कौशर, यमुना जी, बागों, तथा अन्य सभी सामग्रियों के सम्बन्ध में इनका कथन समान है। परमधाम के सम्बन्ध में इनके द्वारा ही दी गई साक्षियों को मैं कितना कहूँ? इस जिह्वा से उनका वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

बरकत कुंजी रुहअल्ला, हुआ बेवरा तीन उमत।

पूरी उमेदें सबन की, जाहेर होते हक सूरत॥३४॥

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के द्वारा लाये हुए तारतम ज्ञान से तीनों सृष्टियों— जीव, ईश्वरी, तथा ब्रह्मसृष्टि का विवरण सबको प्राप्त हो गया। इस अलौकिक ज्ञान के द्वारा अक्षरातीत के स्वरूप की पहचान होते ही सबकी इच्छायें पूर्ण हो गयीं।

भावार्थ— यदि अक्षरातीत के स्वरूप की पूर्ण पहचान हो और उनके प्रेम मार्ग पर चला जाये, तो निश्चित ही उसकी लौकिक एवं आध्यात्मिक इच्छायें पूर्ण होती हैं। इस सम्बन्ध में रास १/८४ का कथन है—

मनना मनोरथ पूरण कीधां, मारा अनेक वार।

वारणे जाए इंद्रावती, मारा आतमना आधार॥

ले ग्वाही दोऊ हादियों की, किया हक बरनन।

सब कौल किताबों के, हक हुकमें किए पूरन॥३५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि मुहम्मद साहिब तथा सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के द्वारा दी गई साक्षियों को लेकर मैंने धाम धनी के आदेश से नख से शिख तक उनकी सम्पूर्ण शोभा का वर्णन किया। सभी धर्मग्रन्थों में इस समय को लेकर जो भविष्यवाणियाँ की गयी थीं, उसे भी पूरा कर दिया।

भावार्थ- भविष्योत्तर पुराण, भविष्य दीपिका, बुद्ध गीता, माहेश्वर तन्त्र, पुराण संहिता, कुरआन, हदीस, बाइबल, तथा दशम ग्रन्थ में श्री प्राणनाथ जी के सम्बन्ध में साक्षियाँ हैं कि जब वे प्रकट होंगे तो परमधाम का ज्ञान अवतरित होगा। ये सभी साक्षियाँ परिक्रमा, सागर, और श्रृंगार गन्थ के अवतरण के साथ ही पूर्ण हो गयीं।

वाहेदत अर्स अखंड, असल नकल नहीं दोए।

घट बढ़ अर्स में है नहीं, न नया पुराना होए॥३६॥

सच्चिदानन्दमयी परमधाम अखण्ड है। वहाँ एकदिली, एकत्व का साम्राज्य है, अर्थात् सभी के दिल में एक ही बात रहती है। वहाँ किसी मूल वस्तु की नकल का कोई रूप नहीं है। परमधाम में न तो कोई वस्तु घट सकती है और न बढ़ सकती है। यहाँ तक कि न तो कोई नयी वस्तु उत्पन्न होती है और न कोई पुरानी पड़ती है।

रंग नंग रेशम मिलाए के, हेम जवेर कुंदन।

इन विध बनावे दुनियां, वस्तर और भूखन॥३७॥

संसार के लोग प्रायः रेशम में अनेक प्रकार के रंगों और नंगों को मिलाकर वस्त्रों का निर्माण करते हैं। इसी प्रकार सोने या कुन्दन में जवाहरातों को जड़कर आभूषणों का

निर्माण होता है।

द्रष्टव्य- सोने को साढ़े सोलह बार अग्नि में तपाने पर वह कुन्दन या कञ्चन बनता है।

अर्स सरूप जो अखंड, ताको होए कैसे बरनन।

एक उतार दूजा पेहेरना, ए होए सुपन के तन॥३८॥

परमधाम में श्री राजश्यामा जी तथा सखियों सभी के स्वरूप अखण्ड हैं। उनका यथार्थ वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है। पूर्व के पहने हुए वस्त्रों और आभूषणों को उतार कर उनकी जगह दूसरे वस्त्रों और आभूषणों को पहनने की प्रक्रिया तो मात्र माया के नश्वर शरीरों में ही होती है।

ए विध अर्स में है नहीं, जो करत है नकल।

ज्यों अंग त्यों वस्तर भूखन, अर्स में एकै असल॥३९॥

इस संसार में जिस प्रकार किसी वस्त्र या आभूषण को उतारकर उसकी जगह दूसरे वस्त्र या आभूषण धारण किये जाते हैं (नकल किया जाता है), वैसा परमधाम में नहीं होता। परमधाम में तो एक अक्षरातीत का नूरी स्वरूप ही सर्वत्र लीला कर रहा है। वहाँ जिस प्रकार अंग-अंग चेतन और नूरमयी हैं, उसी प्रकार वस्त्र एवं आभूषण भी चेतन तथा नूरमयी हैं।

ज्यों अंग त्यों वस्तर भूखन, अखंड सरूप के एह।

इत नहीं भांत सुपन ज्यों, दुनी पेहेन उतारत जेह॥४०॥

श्री राज जी का स्वरूप अखण्ड नूरमयी है। उनके वस्त्र एवं आभूषण भी अंगों की तरह ही सच्चिदानन्दमयी हैं। इस नश्वर जगत में लोग जिस प्रकार वस्त्रों और आभूषणों को पहनते-उतारते रहते हैं, वैसा परमधाम में नहीं

होता।

सब चीजें रूह के हुकमें, करत चाह्या पूरन।

रूह कछुए चित्त में चितवे, सो होत सबे माहें खिन॥४१॥

आत्मा की इच्छा मात्र से वहाँ सभी वस्तुएँ उपस्थित रहती हैं। आत्मा अपने चित्त (हृदय) में जिसका भी चिन्तन करती है, वह क्षण भर में ही हो जाता है।

भावार्थ- जब परमधाम में स्वलीला अद्वैत की भूमिका है, तो इच्छा करने वाला (इच्छुक) और जिसकी इच्छा की जाये (इच्छित), दोनों एक ही स्वरूप सिद्ध होते हैं। इस प्रकार अनन्त सामर्थ्य वाले उस अक्षरातीत की लीला में इच्छा के साथ-साथ वस्तुओं का प्रकट होना स्वाभाविक ही है।

ज्यों अंग त्यों वस्तर भूखन, तिन सब अंगों सुख दायक।

सोभा भी तैसी धरे, जैसा अंग तैसा तिन लायक॥४२॥

श्री राज जी के जैसे अंग हैं, वैसे ही वस्त्र और आभूषण भी हैं। ये वस्त्र और आभूषण चेतन स्वरूप होने से प्रियतम अक्षरातीत के सभी अंगों में हर प्रकार का सुख देने वाले हैं। ये धनी के अंगों के अनुकूल ही अलौकिक शोभा को धारण किये रहते हैं।

हर एक में अनेक रंग, हर एक में सब सलूक।

कई जुगतेँ हर एक में, सुख उपजत रूप अनूप॥४३॥

परमधाम के प्रत्येक वस्तु में अनेक प्रकार के रंग हैं और हर प्रकार की शोभा विद्यमान है। प्रत्येक वस्तु में अनेक प्रकार की बनावट भी है। हर वस्तु का रूप अनन्त उपमा को धारण करने वाला और अनन्त सुख को देने वाला

है।

सब नंग में गुन चेतन, मुख थें केहेना पड़े न किन।

दिल में जैसा उपजे, सो आगूं होत रोसन॥४४॥

परमधाम के सभी नगों में चेतनता का गुण है, इसलिये मुख से किसी नग को कुछ भी कहना नहीं पड़ता। श्री राजश्यामा जी या सखियों के मन में जैसी इच्छा होती है, वह पहले से ही पूरी हो जाती है।

भावार्थ- सभी नग आत्म-स्वरूप हैं, इसलिये सखियों की तरह से ये भी धाम धनी को रिझाते हैं। हृदय में नगों के रूप, रंग, या बनावट में परिवर्तन की इच्छा होते ही ये वैसे ही दिखने लगते हैं, क्योंकि ये श्री राजश्यामा जी तथा सखियों के हृदय की भावना को उसी पल जान जाते हैं। यही कारण है कि इस चौपाई में मुख के द्वारा

नगों से कुछ भी न कहने की आवश्यकता बतायी गयी है।

अर्स सुख जो बारीक, सो जानत अरवा अर्स के।

ए झूठी जिमी जो दुनियां, सो क्यों कर समझे ए॥४५॥

परमधाम के अति गुह्य रहस्य वाले इन सुखों को मात्र परमधाम की आत्मायें ही जानती हैं। इस झूठे संसार के लोग भला स्वलीला अद्वैत की बातों को कैसे समझ सकते हैं?

जेता वस्तर भूखन, सब रंग रस कई गुन।

रूह कछुए कहे एक जरे को, सो सब आगूं होत पूरन॥४६॥

परमधाम में जो भी वस्त्र और आभूषण हैं, उनमें सभी प्रकार के रंग और रस (आनन्द) भरे हुए हैं। इनमें अनेक प्रकार के गुणों का वास है। ब्रह्मसृष्टियाँ वहाँ के किसी

कण मात्र से भी कुछ कहती हैं, तो वह पहले ही पूर्ण हो जाता है।

भावार्थ- इस चौपाई के तीसरे चरण में "कछुए" शब्द के प्रयोग से यह सिद्ध होता है कि "एक जरे" का तात्पर्य "नाम-मात्र" नहीं, बल्कि "एक कण" से है। वहाँ का कण-कण चेतन एवं आत्म-स्वरूप है, इसलिये ऐसी बातों में संशय नहीं करना चाहिए।

अनेक सिनगार एक खिन में, चित्त चाह्या सब होत।

दिलमें पीछे उपजे, आ आगे धरे अंग जोत॥४७॥

परमधाम में एक क्षण में ही अनेक प्रकार के श्रृंगार बदल जाते हैं। वहाँ सब कुछ दिल की इच्छानुसार ही होता रहता है। हृदय में कोई इच्छा तो बाद में प्रकट होती है, उसके पहले ही उस अंग में वस्त्र या आभूषण की ज्योति

से परिपूर्ण शोभा जगमगाने लगती है।

भावार्थ- इस चौपाई में इच्छा के प्रकटने से पूर्व ही उसके पूर्ण हो जाने का आशय यह है कि सम्पूर्ण परमधाम सच्चिदानन्दमय है। इच्छुक और इच्छित का एकत्व (वहदत्त) स्वरूप होने से नाममात्र के लिये भी समय का भेद नहीं पड़ता।

कई रंग रस नरमाई, कई सुख बानी जोत खुसबोए।

ए अर्स वस्तर भूखन की, क्यों कहूं सोभा सलूकी सोए॥४८॥

परमधाम के इन वस्त्रों और आभूषणों में अनेक प्रकार के रंग, रस, और कोमलता विद्यमान है। उनसे निकलने वाले मधुर स्वरो, ज्योति से भरपूर शोभा, और सुगन्धि में अनेक प्रकार के सुख भरे हुए हैं। इनकी शोभा – सुन्दरता का मैं वर्णन कैसे करूँ?

मीठी बानी चित्त चाहती, खुसबोए नरमाई चित्त चाहे।

सोभा सलूकी चित्त चाही, ए अर्स सुख कहे न जाए॥४९॥

इन वस्त्रों और आभूषणों से हृदय की इच्छानुसार बहुत ही मधुर ध्वनि निकला करती है। इच्छानुसार ही इनमें सुगन्धि और कोमलता भी दृष्टिगोचर होती है। शोभा – सुन्दरता भी हृदय के भावों के अनुसार ही होती है। इस प्रकार परमधाम के इन सुखों को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

अर्स बका की हकीकत, माहें लिखी कतेब वेद।

खोले जमाने का खावंद, और खोल न सके कोई भेद॥५०॥

वेद और कतेब में अखण्ड परमधाम का यथार्थ वर्णन किया गया है, किन्तु इसके भेदों को एकमात्र श्री प्राणनाथ जी के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं खोल

सकता।

भावार्थ- इस चौपाई के तीसरे चरण में कथित "जमाने का खावंद" का तात्पर्य है, इस ब्रह्माण्ड के अन्तिम समय के स्वामी। यह शोभा मात्र श्री प्राणनाथ जी को प्राप्त है।

वेदों और उपनिषदों में उस परमधाम का स्पष्ट वर्णन है—

प्रभाजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम्।

पुरं हिण्ययीम् ब्रह्माविवेशापराजिताम्॥

अथर्व वेद १०/२/३३

अर्थात् परब्रह्म के अतिशय तेज से प्रकाशमान, अति मनोहारिणी, यशोरूप तेज से चारों ओर से घिरी हुई अति तेजस्विनी, किसी से भी न जीती गई (प्राप्त की गई), उस ब्रह्मपुरी (परमधाम) में परब्रह्म विराजमान हैं।

इसी प्रकार मुण्डकोपनिषद में कहा गया है कि "दिव्ये

ब्रह्मपुरे ह्यषः व्योम्नि आत्मा प्रतिष्ठितः " अर्थात् दिव्य ब्रह्मपुर (परमधाम) में ही परब्रह्म का स्वरूप विद्यमान है।

कतेब पक्ष में मात्र कुरआन में ही परमधाम (अर्श-ए-अजीम) का वर्णन है। तौरेत, इंजील, तथा जम्बूर में परमधाम का कोई वर्णन नहीं है। कुरआन पारा २७ सूरत ५३ सूरः नज्म की आयत सं. १-१८ तक में मेअराज के चार स्तरों नासूत, मलूकत, जबरूत, और लाहूत का वर्णन है। इसे दूसरे शब्दों में ला मकान (नासूत, मलकूत), नूर मकान (बेहद), सिद्र तुल मुंतहा (अक्षरधाम), और अर्शे मजीद (परमधाम) कहते हैं।

लिख्या वेद कतेब में, सोई खोले जिन सिर खिताब।

देसी मुक्त सबन को, करके अदल हिसाब॥५१॥

हिन्दु धर्मग्रन्थों तथा कतेब ग्रन्थों में यह बात लिखी हुई

है कि अध्यात्म के (ग्रन्थों में वर्णित धाम सम्बन्धी) गूढ़ रहस्यों का स्पष्टीकरण मात्र वे ही (श्री प्राणनाथ जी) करेंगे, जिन्हें यह शोभा है। वे ही सबका न्याय करेंगे और सभी को अखण्ड मुक्ति भी देंगे।

भावार्थ— इस चौपाई में "वेद" शब्द से तात्पर्य समस्त हिन्दू धर्मग्रन्थों से है। अथर्ववेद के कई गूढ़ प्रश्न ऐसे हैं, जिनका ज्ञान मानवीय बुद्धि से दिया ही नहीं जा सकता। संक्षेप में वे इस प्रकार हैं—

यो वेतसं हिरण्ययं तिष्ठन्तं सलिले वेद।

स वै गुह्यः प्रजापतिः। अथर्ववेद १०/७/४१

जो जल में स्थित सोने के बेंत को जानता है, वह ही गुह्य प्रजा का स्वामी है।

इस मन्त्र में जल अक्षरातीत को कहा गया है। उसमें स्थित सोने का बेंत अक्षर हैं। इस रहस्य को जानने

वाला ब्रह्मसृष्टियों (गुह्य प्रजा) का प्रियतम मात्र अक्षरातीत है।

तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यऽरे त्रिप्रतिष्ठिते।

तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः॥

अथर्ववेद १०/२/३२

उस तेजोमय कोश (निजधाम) में तीन अरे (अक्षर + अक्षरातीत + श्यामा जी) तीन (सत्+चित्+आनन्द) में प्रतिष्ठित हैं। इनमें जो परम पूज्यनीय तत्त्व अक्षरातीत है, उसे मात्र ब्रह्मज्ञानी ही जानते हैं।

पुण्डरीक नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्।

तस्मिन् यद्यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः।

अथर्ववेद १०/८/४३

कमल के समान मनोहर वह ब्रह्मपुर नव भूमियों वाला तथा तीन गुणों (सत्+चित्+आनन्द) से आवृत्त है।

उसमें जो पूज्यनीय तत्व अक्षरातीत है, उसका ज्ञान मात्र ब्रह्मज्ञानी को ही है।

यहाँ यह निष्कर्ष निकलता है कि वेदों के उपरोक्त कथन जिस स्वरूप की ओर संकेत कर रहे हैं, वह श्री महामति जी का ही स्वरूप है, जिन्होंने वेदों के इन रहस्यों को तारतम ज्ञान द्वारा दर्शाया है। इसी प्रकार के प्रसंग उपनिषद, दर्शन, गीता, भागवत, तथा सन्त साहित्य में भी हैं। कबीर जी ने तो अपने बीजक ग्रन्थ के कई "शब्द" में स्पष्ट कहा है – "कहे कबीर या पद को बूझे, सो सतगुरु मैं चेला।"

कुरआन में १२ हरुफे मुक्तेआत हैं, जिनके बारे में ऐसा कहा गया है कि इनके भेद एकमात्र अल्लाहतआला ही कियामत के समय खोलेंगे। कुरआन का अलिफ, लाम, और मीम पारा इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। पार: १ सूरत

१ सूरः बक्र में अलिफ, लाम, मीम, एवं पारः १६ सूरः मरियम में भी इसका ही संकेत है।

सातों सरूप अखंड, मैं बरनन किए सिर ले।

दो रास पांच अर्स अजीम, बोझ दिया न सिर सरूपों के॥५२॥

श्री महामति जी कहते हैं कि धनी की "मैं" लेकर अपना उत्तरदायित्व निभाते हुए मैंने अखण्ड के सातों स्वरूपों का वर्णन किया। इनमें रास के दो श्रृंगार हैं तथा पाँच परमधाम के हैं। रास में एक श्रृंगार श्री राज जी का है, तो दूसरा श्यामा जी का। इसी प्रकार परमधाम के तीन श्रृंगार श्री राज जी के हैं, तो दो श्यामा जी के हैं। श्रृंगार का यह वर्णन धाम धनी ने अपने आदेश से मेरे द्वारा ही करवाया। जब वे श्री देवचन्द्र जी के तन में विराजमान थे, तो यह वर्णन नहीं हो सका।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण में "बोझ दिया न सिर सरूपों के" कहा गया है, जिसका तात्पर्य यह है कि श्री देवचन्द्र जी के तन में जब युगल स्वरूप विराजमान थे तो वर्णन नहीं हुआ।

इसका कारण यह है कि युगल स्वरूप अपनी शोभा का वर्णन स्वयं कैसे करें? यह तीसरे व्यक्ति द्वारा ही सम्भव था। इसलिए यह शोभा श्री महामति जी को मिली। वस्तुतः बोझ उठाना अपने उत्तरदायित्व को निभाना है। श्रीमुखवाणी में बोझ उठाने का प्रसंग कई स्थानों पर है—
बोझ अपनो निज वतन को, सो सब मेरे सिर दियो।

किरंतन ६१/१५

बोझ निबाहें साथ को, और बोझ मसनंद भरतार।

किरंतन ९५/११

जो लों इलम को हुकमें, कह्या नहीं समझाए।

तो लों सो रूह आप को, क्यों कर सके जगाए॥५३॥

जब तक श्री राज जी के आदेश से ब्रह्मवाणी का ज्ञान यथार्थ रूप से समझ में नहीं आता, तब तक वह आत्मा किसी भी प्रकार से स्वयं को जाग्रत नहीं कर सकती।

भावार्थ- श्रीमुखवाणी के शब्दों के बाह्य अर्थ को जान लेना ही वास्तविक ज्ञान नहीं है, बल्कि धनी की मेहर से गुह्य रहस्यों का बोध होना ही वास्तविक ज्ञान होना है। मारिफत का ज्ञान होने पर ही जागनी की राह प्राप्त होती है। श्रृंगार २/८६ में इस तथ्य को इस प्रकार व्यक्त किया गया है-

मारफत देवें इस्क, इस्कें होए दीदार।

इस्कें मिलिए हक सों, इस्कें खुले पट द्वार॥

जब रूह को जगावे हुकम, तब रूह आपै छिप जाए।

तब रहे सिर हुकम के, यों हुकमें इलम समझाए॥५४॥

जब धाम धनी का आदेश आत्मा को जाग्रत करता है, तो आत्मा स्वयं को धनी के प्रेम में विलीन कर लेती है। उस समय केवल श्री राज जी के आदेश की ही बात चलती है। श्री राज जी के आदेश से ब्रह्मवाणी के बोध होने का यही परिणाम होता है।

भावार्थ- जब लौकिक बुद्धि से ब्रह्मवाणी का चिन्तन किया जाता है, तो उससे प्राप्त होने वाले ज्ञान में "मैं" की गन्ध रहती है, किन्तु धनी के आदेश से मेहर की छाँव तले जो ज्ञान प्राप्त होता है, उसमें हर प्रकार की "मैं" विलीन हो जाती है। एक ऐसी भी स्थिति आती है, जिसमें आत्मा धनी के प्रेम में इस प्रकार डूब जाती है कि उसके दिल में केवल "तू" रह जाता है। इसे ही आत्मा

(रूह) का छिप जाना कहते हैं।

जाहेर किया हक इलमें, रूह सिर आया हुकम।

सोई करे हक बरनन, ले हकै हुकम इलम॥५५॥

धाम धनी की ओर से उनके श्रृंगार का वर्णन करने के लिये मेरी आत्मा को आदेश (हुकम) हुआ। प्रियतम के दिये हुए ज्ञान से मैंने उनके श्रृंगार को उजागर (प्रकाशित) भी कर दिया। श्री राज जी के आदेश और ज्ञान को पाकर ही आत्मा अपने प्राणवल्लभ की शोभा, श्रृंगार का वर्णन कर सकती है।

हुकमें बेसक इलम, और हुकमें जोस इस्क।

मेहेर निसबत मिलाए के, बरनन करे अर्स हक॥५६॥

धाम धनी के आदेश से ही आत्मा में संशय रहित ज्ञान

प्रकट होता है तथा जोश एवं प्रेम भी प्राप्त होता है। धनी की मेहर से जब निस्बत की भी पूर्ण पहचान हो जाती है, तो उस आत्मा के द्वारा परमधाम तथा अक्षरातीत की शोभा का वर्णन किया जाता है।

भावार्थ- धनी की मेहर के अन्तर्गत ही ज्ञान, प्रेम, जोश, आदेश, और मूल सम्बन्ध की पहचान है। जब शरीर, संसार, और जीव भाव से परे हटकर आत्मा अपने मूल तन एवं युगल स्वरूप का साक्षात्कार कर लेती है, तो उसे निस्बत की पहचान कहते हैं।

एही आसिक करे बरनन, और आसिकै सुने इत।

ए केहेवे लेवें मोमिन, या रसूल तीन सूरत॥५७॥

इस प्रकार की अवस्था में पहुँचे हुए ब्रह्ममुनि (प्रेमी, आशिक) ही परमधाम तथा श्री राज जी की शोभा का

वर्णन करते हैं तथा सुनते हैं। इस प्रकार के अलौकिक ज्ञान को कहने वाले तथा सुनने वाले, या तो ऐसे ही ब्रह्ममुनि होते हैं या मुहम्मद की तीन सूरतें हैं।

भावार्थ- परमधाम तथा अक्षरातीत की शोभा के सम्बन्ध में कुछ भी कहना-सुनना संसारी जीवों को रुचिकर नहीं लगता। इसे मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही चाहती हैं। इस प्रकार का ज्ञान केवल तीन स्वरूपों मुहम्मद साहिब, सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी, तथा श्री प्राणनाथ जी ने ही दिया है।

मैं हक अर्स में जुदे जानती, ल्यावती सब्द में बरनन।
जड़ में सिर ले ढूँढ़ती, हक आए दिल बीच चेतन॥५८॥
मैं परमधाम में श्यामा जी सहित स्वयं को तथा अन्य आत्माओं को श्री राज जी से अलग मानती थी। इस

संसार में आने के बाद भी मैं उस मूल सम्बन्ध को शब्दों में दर्शाने का प्रयास करती रही। तारतम ज्ञान न होने से मैं इस जड़ संसार में उन्हें खोजती रही, किन्तु वे तो मेरे धाम हृदय (चेतन स्वरूप) में स्वयं ही आकर विराजमान हो गये।

भावार्थ— अक्षरातीत के हृदय (मारिफत स्वरूप) का प्रकट स्वरूप श्यामा जी व सखियाँ हैं। स्वलीला अद्वैत धाम में इस भेद का पता श्री राज जी के अतिरिक्त अन्य किसी को भी नहीं था। इश्क रब्द (प्रेम विवाद) भी इसी कारण हुआ। इस जागनी लीला में भी आत्मा संसार में तब तक भटकती रही, जब तक उसे तारतम ज्ञान का प्रकाश नहीं मिला था। स्वलीला अद्वैत की पहचान तो ब्रह्मवाणी के अवतरण से ही सम्भव हो पायी है।

कहूं इनका बेवरा, सिर हुकम लेसी मोमिन।

सो हुकमें समझ जागसी, मिले हुकमें हक वतन॥५९॥

अब मैं इन बातों का विवरण देता हूँ। धनी के आदेश को ब्रह्ममुनि ही शिरोधार्य करेंगे। वे ही धनी के आदेश से ब्रह्मवाणी को समझ कर जाग्रत होंगे और ध्यान द्वारा निजघर में अपने प्रियतम से मिलेंगे।

हुकमें चले हुकम, हुकमें जाहेर निसबत।

हुकमें खिलवत जाहेर, हुकमें जाहेर वाहेदत॥६०॥

मूल स्वरूप श्री राज जी के आदेश (हुकम) से ही श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान आवेश स्वरूप का आदेश चलता है। धनी के आदेश से ब्रह्मवाणी द्वारा परमधाम की निस्बत (मूल सम्बन्ध) का बोध हुआ है। धनी के आदेश से ही परमधाम की खिल्वत और वहदत

(एकदिली) उजागर हुई है।

हुकमें दिल में रोसनी, सुध हुकमें अर्स नूर।

मुकैयद मुतलक हुकमें, हुकमें अर्स सहूर॥६१॥

धनी के आदेश से ही हृदय में ब्रह्मवाणी के ज्ञान का प्रकाश होता है और परमधाम के नूरी स्वरूप की पहचान होती है। माया का बन्धन और उससे मुक्ति भी श्री राज जी के आदेश से ही होती है। परमधाम का चिन्तन भी धनी के आदेश के बिना सम्भव नहीं होता।

कोई दम न उठे हुकम बिना, कोई हले ना हुकम बिना पात।

तहां मुतलक हुकम क्यों नहीं, जहां बरनन होत हक जात॥६२॥

श्री राज जी के आदेश के बिना न तो कोई प्राणी श्वाँस ले सकता है और न ही कोई पत्ता हिल सकता है। श्री

महामति जी के जिस हृदय से श्री राजश्यामा जी और सुन्दरसाथ के श्रृंगार का वर्णन होता है, वहाँ (उस दिल में) निश्चित रूप से धनी के आदेश की शक्ति होती है।

भावार्थ— इस प्रकरण में हुक्म (आदेश) का तात्पर्य है— श्री राज जी के हृदय की इच्छा। अक्षरातीत की सर्वशक्तिमानता को दर्शाने के लिये इस प्रकरण की इन चौपाइयों में बारम्बार हुक्म का विवरण दिया गया है। इसका मूल आशय यही है कि जो कुछ भी धाम धनी चाहते हैं, अन्ततोगत्वा वही होता है। उनकी आदेश शक्ति से बढ़कर किसी की भी शक्ति नहीं है।

हक बातें रूह हुकमें सुने, हुकमें होए दीदार।

हुकमें इलम आखिरी, खोले हुकमें पार द्वार॥६३॥

श्री राज जी के आदेश से ही आत्मा अपने प्राण प्रियतम

की बातों को सुनती है। धनी का दीदार भी उनके हुक्म से होता है। धाम धनी के आदेश से ही तारतम-का-तारतम रूपी खिल्वत, परिक्रमा, सागर, तथा श्रृंगार का ज्ञान प्राप्त होता है। इसी प्रकार श्री राज जी के हुक्म के द्वारा ही निराकार, बेहद से परे अखण्ड परमधाम का बोध प्राप्त होता है।

ए बरनन होत सब हुकमें, आया हुकमें बेसक इलम।

हुकमें जोस इस्क सबे, जित हुकम तित खसम॥६४॥

मेरे द्वारा प्रियतम के श्रृंगार का वर्णन भी उनके आदेश से हो रहा है। मेरे धाम हृदय में ब्रह्मवाणी का यह संशय रहित ज्ञान भी उनके आदेश से ही प्रकट हुआ है। धनी की इच्छा से ही मेरे अन्दर उनका जोश और प्रेम आया है। निश्चित रूप से जहाँ धनी का आदेश (हुक्म) लीला

कर रहा है, वहाँ (श्री महामति जी के हृदय में) ही प्रियतम अपने आवेश स्वरूप से साक्षात् विराजमान हैं।

जब ए द्वार हुकमें खोलिया, हुकमें देख्या हक हाथ।

तब रही ना फरेबी खुदी, वाहेदत हुकम हक साथ॥६५॥

जब धनी के आदेश से परमधाम का द्वार खुल गया, तो आत्मा ने यह अनुभव किया कि श्री राज जी के हाथों में ही हुक्म है, अर्थात् धनी के दिल से ही हुक्म (इच्छा, आदेश) बँधा हुआ है। परमधाम की एकदिली (एकत्व) में श्री राज जी के हृदय से होने वाली आदेश की लीला का बोध होने पर मन में छल-कपट और अहंकार नहीं रह जाता।

पेहेले हुकमें इलम जाहेर, हुआ हुकमें हक बरनन।

मैं हुकम लिया सिर अपने, अब रूह छिप गई हक इजन॥६६॥

पहले धनी के आदेश से मेरे तन से ब्रह्मवाणी का ज्ञान उजागर हुआ। उसके पश्चात् अक्षरातीत की शोभा-श्रृंगार का वर्णन हुआ। जब मैंने धनी के आदेश को ही सर्वोपरि मानकर उसे शिरोधार्य किया और प्रेम की राह अपना ली, तो प्रियतम की इच्छा से मेरी आत्मा का स्वरूप उनके अगाध प्रेम के सागर में विलीन हो गया।

हक बैठे दिल अर्स में, कह्या हकें अर्स दिल मोमिन।

रूहें पोहोंचाई हकें अर्स में, हक बैठे अर्स दिल रूहन॥६७॥

श्री राज जी ने ब्रह्ममुनियों (मोमिनों) के हृदय को अपना धाम कहा है। अब वे उसी धाम हृदय में विराजमान हो गये हैं। उन्होंने इस संसार में भी उनके धाम हृदय में

विराजमान होकर उनकी दृष्टि को परमधाम पहुँचा दिया है।

भावार्थ- जब आत्मा इस संसार में अपने प्राणप्रियतम को अपने धाम हृदय में बसाने लगती है, तो उसकी दृष्टि भी हद, बेहद से परे होकर परमधाम के पच्चीस पक्षों में पहुँच जाती है। इस चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है।

हक रूहें बीच अर्स के, नहीं जुदागी एक खिन।

हुकमें नैन कान दीजिए, अब देखो नैनों सुनो वचन॥६८॥

परमधाम में श्री राज जी और सखियों के बीच एक पल की भी जुदायगी नहीं है। हे साथ जी! अब धनी के आदेश से अपने धाम हृदय में ही अपने आत्मिक नेत्रों और आत्मिक कानों से प्रियतम की छवि को देखिए और उनके अमृतमयी वचनों को सुनिए।

भावार्थ- परमधाम में जिस तरह श्री राज जी अपनी अँगनाओं से पल भर भी दूर नहीं हैं, उसी तरह इस संसार में भी अपनी आत्माओं से दूर नहीं हैं। परमधाम में विराजमान युगल स्वरूप का ध्यान करते ही आत्मा के धाम हृदय में वहाँ की सारी शोभा दृष्टिगोचर होने लगती है। इसलिए श्री राज जी को ब्रह्ममुनियों की शाहरग (प्राणनली) से भी अधिक निकट कहा गया है।

अब हकें हुकम चलाइया, खुदी फरेबी गई गल।

रास खेल रस जागनी, हुआ रूहों सुख असल॥६९॥

अब धाम धनी के आदेश की लीला चल रही है। उनकी मेहर से सुन्दरसाथ की "मैं" और छल कपट (फरेबी) का समापन हो गया है। जागनी रास की इस लीला में ब्रह्मसृष्टियों को अपने अखण्ड सुख का रस मिला है।

कहे हुकमें महामत मोमिनो, हकें पोहोंचाई इन मजल।

कहे सास्त्र नहीं त्रैलोक में, सो हक बैठे रूहों बीच दिल॥७०॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! श्री राज जी के आदेश ने मुझे उपरोक्त (पूर्व में कही हुई) अवस्था में पहुँचा दिया है। शास्त्रों ने परब्रह्म के विषय में यह कह दिया है कि वह स्वप्नमयी पृथ्वी लोक, स्वर्ग, और वैकुण्ठ में भी नहीं है। अब वही सच्चिदानन्द परब्रह्म ब्रह्मसृष्टियों के धाम हृदय में विराजमान हो गये हैं।

प्रकरण ॥३॥ चौपाई ॥२०१॥

आतम फरामोसी से जागे का प्रकरण

इस नश्वर जगत में आत्मा कैसे जाग्रत होती है, इस विषय पर प्रकाश डाला गया है।

ऐसा आवत दिल हुकमें, यों इस्कें आतम खड़ी होए।

जब हक सूरत दिल में चुभे, तब रूह जागी देखो सोए॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे साथ जी ! मेरे दिल में ऐसा विचार आया करता है कि यदि धनी के आदेश से मुझे इश्क (प्रेम) मिल जाये तो मेरी आत्मा जाग्रत हो जाये। आप इस बात का विचार कीजिए कि यदि श्री राज जी की शोभा हमारे धाम हृदय में गहराई से बस जाये, तो निश्चित रूप से आत्मा जाग्रत हो जायेगी।

भावार्थ- इस चौपाई में श्री महामति जी ने सुन्दरसाथ की भावनाओं को अपनी ओर से कहकर व्यक्त किया है।

श्री महामति जी ने विरह-प्रेम का अनुभव हब्सा में बहुत पहले ही कर लिया था। जब उनके अन्दर स्वयं अक्षरातीत ही आवेश स्वरूप से विराजमान हैं, तो वे स्वयं के लिये इस प्रकार का कथन नहीं करेंगे। विनम्र और शालीन भाषा में इसी प्रकार की अभिव्यक्ति की जाती है। "चुभे" का तात्पर्य गहराई से बस जाने से है।

हक सूरत वस्तर भूखन, बीच बका अर्स के।

तिनको निरने इन जुबां, क्यों कर केहेवे ए॥२॥

अखण्ड परमधाम में श्री राज जी के अनन्त सौन्दर्य तथा वस्त्रों एवं आभूषणों की शोभा का वर्णन भला यहाँ की जिह्वा से कैसे किया जा सकता है?

जिन दृढ़ करी हक सूरत, हक हुकमें जोस ले।

अर्स चीज कही सो मेहेर से, पर बल इन अंग अकल के॥३॥

जिन्होंने भी अपने धाम हृदय में धनी की शोभा को अखण्ड रूप से बसा लिया, उन्होंने श्री राज जी के आदेश, मेहर, एवं जोश को प्राप्त कर परमधाम का अवश्य वर्णन किया, किन्तु व्यक्त करने की शक्ति यहाँ की बुद्धि एवं अंगों की थी।

भावार्थ- इस चौपाई में सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी की ओर संकेत किया गया है, जिन्होंने श्री महामति जी से पहले युगल स्वरूप एवं पच्चीस पक्षों की शोभा का वर्णन किया। किसी भी आत्मा के धाम हृदय में धनी के द्वारा दिया हुआ ज्ञान का अनन्त सागर भले ही उमड़ रहा हो, किन्तु उसको व्यक्त करने का साधन यह मानव शरीर ही है, जिसके अन्तःकरण एवं इन्द्रियों की सीमित शक्ति है।

इस चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है।

जो वचन जुबां केहेत है, हिस्सा कोटमा ना पोहोंचत।
पोहोंचे ना जिमी जरे को, तो क्या करे जात सिफत॥४॥

परमधाम की नूरमयी धरती के एक कण में भी इतना सौन्दर्य है कि उसके करोड़वें भाग का वर्णन भी यहाँ की जिह्वा से नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में श्री राजश्यामा जी तथा सखियों की शोभा का यथार्थ वर्णन हो पाना कैसे सम्भव है?

किया हुकमें बरनन अर्स का, पर दृष्ट मसाला इत का।
एक हरफ लुगा पोहोंचे नहीं, लग अर्स चीज बका॥५॥

यद्यपि धाम धनी के आदेश से मैंने परमधाम का वर्णन अवश्य किया है, किन्तु वहाँ की अलौकिक शोभा को

व्यक्त करने के लिये यहाँ के पदार्थों का दृष्टान्त दिया है।
अखण्ड परमधाम की शोभा के यथार्थ वर्णन में यहाँ का
कोई भी शब्द या एक अक्षर भी वहाँ पहुँच नहीं पाता है,
अर्थात् वर्णन नहीं कर पाता है।

जिन देखी सूरत हक की, इन वजूद के सनमंध।

जोस हुकम मेहेर देखावहीं, मोमिन जानें एह सनंध॥६॥

इस पञ्चभौतिक तन को प्राप्त कर जिसने भी अक्षरातीत
की शोभा का दर्शन किया है, उसने धनी की मेहर,
जोश, और आदेश के द्वारा ही यह सफलता प्राप्त की है।
इस रहस्य को मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही जानती हैं।

भावार्थ— प्रेम के भावों में भरकर अक्षरातीत की शोभा
का ध्यान करने पर धनी का जोश प्राप्त होता है। इस
जोश के बिना आत्मिक दृष्टि कभी भी निराकार को पार

नहीं कर सकती। जोश प्राप्त होने पर बेहद तक आत्मिक दृष्टि पहुँचती है। मुहम्मद साहिब भी इसी जोश के द्वारा बेहद तक पहुँचे थे। इसके पश्चात् धनी की मेहर के रूप में इश्क प्राप्त होता है, जिसके द्वारा आत्मिक दृष्टि मूल मिलावा में पहुँचती है और अपने प्राणवल्लभ का दीदार करती है। यह सारी प्रक्रिया धनी के आदेश की छत्रछाया में होती है। इस प्रकार कोई व्यक्ति भले कितना ही योगी, तपस्वी, एवं विद्वान क्यों न हो, किन्तु जोश एवं प्रेम के बिना वह निराकार, बेहद से परे परमधाम का साक्षात्कार नहीं कर सकता।

सबों सिफत करी जोस अकलें, इन अंग छूटे ना दृष्ट फना।
 कोई बल करो हक हुकमें, पर असेँ क्यों पोहोंचे सुपना॥७॥
 यद्यपि सभी (दोनों सूरतों) ने जोश और जाग्रत बुद्धि के

द्वारा परब्रह्म की शोभा की महिमा गायी है, किन्तु जीव के हृदय से नश्वर जगत के पदार्थों वाली दृष्टि नहीं जा पाती। यदि धाम धनी का हुक्म भी हो और प्रियतम की शोभा के वर्णन का प्रयास भी किया जाये, तो भी इस संसार के पदार्थों से दी जाने वाली उपमा परमधाम की शोभा का वर्णन नहीं कर सकती।

भावार्थ- श्री महामति जी से पूर्व परमधाम का वर्णन , या तो मुहम्मद साहिब ने किया था, या सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने। बशरी सूरत में जोश तो था , किन्तु जाग्रत बुद्धि नहीं थी। मल्की सूरत में दोनों शक्तियाँ थीं , किन्तु इनके द्वारा भी यथार्थ वर्णन नहीं हो सका। नूरमयी परमधाम के एक कण के तेज की समानता जब इस संसार के करोड़ों सूर्य भी नहीं कर सकते , तो यह प्रश्न होता है कि अक्षरातीत के मुखारविन्द की शोभा का

वर्णन करने के लिये इस ब्रह्माण्ड में ऐसा कौन सा पदार्थ है, जिससे दर्शाया जा सके?

नींद उड़े रहे न सुपना, और सुपने में देखना हक।

मेहेर इलम जोस हुकमें, हक देखिए बेसक॥८॥

जिस प्रकार नींद टूटते ही स्वप्न भी समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार ब्रह्मसृष्टियाँ यदि नींद से परे हो जाती हैं, तो इस स्वप्न के ब्रह्माण्ड का अस्तित्व नहीं रहना चाहिए। किन्तु धाम धनी की लीला ऐसी है कि इस स्वप्न के ब्रह्माण्ड में रहते हुए ही अक्षरातीत को देखना है। इस बात में कोई भी संशय नहीं है कि यदि आत्मा को धनी की मेहर, जोश, ब्रह्मवाणी का ज्ञान, और आदेश प्राप्त हो जाये, तो प्रियतम का दीदार (दर्शन) अवश्य होगा।

भावार्थ— परात्म की दृष्टि हुकम के द्वारा आत्मा के रूप

में नींद के इस खेल को देख रही है। आत्मा की दृष्टि इस खेल में फँसी हुई है। जब उसे ब्रह्मवाणी के द्वारा परमधाम, अक्षरातीत, और अपने निज स्वरूप का बोध होता है, तो वह धनी की मेहर से जोश और आदेश की छत्रछाया में सम्पूर्ण परमधाम, युगल स्वरूप, तथा अपनी परात्म को भी देख लेती है। चितवनि के द्वारा जहाँ वह जाग्रत परमधाम को देखती है, तो चितवनि टूटने के पश्चात् इस स्वप्नमयी ब्रह्माण्ड को देखती है।

दूसरे शब्दों में ऐसा भी कह सकते हैं कि इस समय परात्म के दिल में संसार है, परमधाम या धनी नहीं। जिस समय परात्म की दृष्टि में धनी हो जायेंगे, उसी समय यह जगत समाप्त हो जायेगा। वस्तुतः यदि मूल तनों की हुक्म वाली दृष्टि (सुरता, आत्मा) इस नींद के ब्रह्माण्ड से हट जाये तो स्वप्न के ब्रह्माण्ड का अस्तित्व

समाप्त हो जाये, किन्तु आत्मा की दृष्टि यदि इस संसार में है तो वह परमधाम को नहीं देखती, और यदि वह परमधाम में पहुँचती है तो संसार को नहीं देख पाती, किन्तु इस स्वप्नमयी ब्रह्माण्ड या शरीर के नष्ट होने का प्रश्न नहीं होता। यही कारण है कि धनी की मेहर से आत्म-दृष्टि द्वारा संसार में रहते हुए ही प्रियतम का साक्षात्कार भी हो जाता है और ब्रह्माण्ड भी बना रहता है। इसे ही आत्मा का फरामोशी (नींद) से जागना कहते हैं।

परात्म के तनों का फरामोशी से अलग-अलग जागना सम्भव नहीं है। उन तनों की दृष्टि के यहाँ से हटते ही महाप्रलय हो जाएगी। यह बात वैसे ही है, जैसे स्वप्न देखने वाला व्यक्ति अपने सपने के शरीर की दृष्टि से अपने मूल तन को देखता है तथा अन्य दृश्यों को भी

देखता है, किन्तु जैसे ही मूल तन से आँखें खोलकर देखने का प्रयास करता है, वैसे ही सपना टूट जाता है। इसे ही श्रृंगार ११/६९ में इस प्रकार कहा गया है—

हक भी कहे दिल में, अर्स भी कह्या दिल।

परदा भी कह्या दिल को, आया सहूरें बेवरा निकल॥

पर जेता हिस्सा नींद का, रूह तेती फरामोस।

जो मेहेर कर हुकम देखावहीं, तब देखे बिना जोस॥९॥

धनी के आदेश से आत्मा के ऊपर माया की जितनी नींद का प्रभाव है, उसके अनुसार ही उसमें बेसुधी है, अर्थात् धनी को भूली हुई है। यदि धाम की किसी आत्मा पर मेहर बरसती है और उसे अपने आदेश से दिखाते हैं, तो उसमें जोश की कोई आवश्यकता नहीं होती।

भावार्थ— परमधाम में सभी की परात्म वहदत

(एकदिली) के अन्दर है, जबकि इस खेल में सबकी स्थिति अलग-अलग है। यद्यपि सभी को समान रूप से एक ही नींद के ब्रह्माण्ड में डाला गया है, किन्तु उस नींद के प्रभाव से धनी को पहचानने और भूलने की लीला अलग-अलग है। उदाहरणार्थ— श्री इन्द्रावती एवं साकुण्डल की आत्मा माया की फरामोशी छोड़कर जाग्रत हो गयीं, किन्तु रतनबाई (बिहारी जी) और शाकुमार की आत्मा जीवन भर अज्ञानता में भटकती रहीं।

जिन्होंने अपनी नींद का प्रभाव हटाने के लिये तारतम ज्ञान, विरह, और प्रेम की राह अपनायी, उन्होंने अपनी बेसुधी (अज्ञानता) को उखाड़ फेंका तथा अपनी आत्मा को जाग्रत कर लिया। जिन्होंने इस फरामोशी (नींद) के ब्रह्माण्ड में स्वयं को जाग्रत नहीं किया, वे कई तनों में भटकती रहीं और अब भी भटक रही हैं।

चितवनि में धनी का जोश ही आत्मिक दृष्टि को निराकार से पार करता है, किन्तु यदि धाम धनी की विशेष मेहर हो तो वे बिना जोश के भी अपना स्वरूप दिखला देते हैं, जैसे श्याम जी के मन्दिर में श्री राज जी ने अपने आवेश स्वरूप से उन्हें दर्शन दिया। उस समय श्री श्यामा जी ने जोश का सहारा नहीं लिया। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी जब भी चर्चा करते थे, तो श्री राज जी का आवेश ही श्री कृष्ण जी के रूप में सभी को दर्शन देता था। उसमें जोश की कोई भूमिका नहीं थी। हब्शा में भी यही स्थिति थी।

वस्तुतः आवेश धनी का साक्षात् स्वरूप है, जबकि जोश उसकी शक्ति का अंश रूप है। "जबराईल जोश धनीय का" (खुलासा १२/४५) के कथन से यह स्पष्ट है कि धनी के सत् अंग अक्षर ब्रह्म के फरिश्ते जिबरील

को जोश का स्वरूप कहते हैं। इसी प्रकार धनी के प्रेम की शक्ति यदि लहराने लगे, तो उसे इश्क (प्रेम) का जोश कहते हैं। "इश्क जोश करे भीर" (सिनगार ८५/१५) का कथन यही दर्शाता है।

धनी का आवेश स्वरूप श्री राजश्यामा जी के रूप में दृष्टिगोचर हो सकता है, किन्तु जोश नहीं। धनी का आवेश मात्र ब्रह्मसृष्टियों तथा अक्षर ब्रह्म की आत्मा पर ही आ सकता है, किन्तु जोश ईश्वरी सृष्टि पर भी आ सकता है, जैसे— कबीर जी ने जोश के माध्यम से ही अपनी गूढ़ बातें कहीं, तो शुकदेव जी ने रास का वर्णन करने का प्रयास किया। श्री कृष्ण जी ने भी जोश के द्वारा ही गीता का ज्ञान दिया।

इसको इस दृष्टान्त के द्वारा समझा जा सकता है कि अग्नि में लोहे को तपाने पर लोहा भी उसके जैसा होकर

दहकने लगता है। इसमें अग्नि का आवेश लोहे के अन्दर प्रवेश किया हुआ माना जायेगा। पानी गर्म करते समय अग्नि का जोश (दाहक शक्ति) पानी के अन्दर प्रविष्ट होकर उसे गर्म करके भाप तो बना सकता है, किन्तु उसे अपने जैसा नहीं बना सकता। यही कारण है कि धनी का जोश जिबरील परमधाम में वैसे ही नहीं जा सकता, जैसे गर्म पानी और अग्नि का संयोग नहीं हो सकता। धाम धनी का आवेश जिसके अन्दर विराजमान हो जाता है, उसे साक्षात् धनी का स्वरूप मान लिया जाता है। ब्रज, रास के श्री कृष्ण, सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी, और श्री महामति जी के अन्दर आवेश का स्वरूप विद्यमान होने से ही इन्हें श्री राज जी का स्वरूप माना गया।

हक जानें सो करें, अनहोनी सो भी होए।

हिसाब किए सुपन में, मुतलक न देखे कोए॥१०॥

धाम धनी अपनी इच्छानुसार कुछ भी कर सकते हैं। कभी भी न हो सकने वाली असम्भव बात को भी वे सम्भव कर देते हैं। जिस परमधाम को निश्चित रूप से आज दिन तक इस सृष्टि का कोई भी व्यक्ति देख नहीं सका, उस परमधाम की शोभा सहित लीला का वर्णन धनी ने मेरे इस सपने के तन में विराजमान होकर कर दिया है।

ए बात तो कारज कारन, हक जानत त्यों करत।

असल रूह तन मिलावा, निसबत है वाहेदत॥११॥

ब्रह्मसृष्टियों के इस खेल में आने के कारण ही परमधाम का वर्णन हो सका। सर्वशक्तिमान अक्षरातीत जैसा चाहते

हैं, वैसा ही करते हैं। ब्रह्मसृष्टियों के मूल तन परमधाम के मूल मिलावा में हैं। इस संसार में उनकी सुरता (आत्मा) के तन हैं। उसी परमधाम में श्री राजश्यामा जी और सखियों में एकत्व (एकदिली) की लीला है।

भावार्थ- परमधाम में श्री राज जी का स्वामित्व (बादशाही) और एकदिली का इश्क (एकत्व का प्रेम) क्या है? इसे ब्रह्मसृष्टियाँ नहीं जानती थीं। इसी कारण यह माया का खेल बना, जिसमें ब्रह्मसृष्टियों को आना पड़ा और परमधाम का ज्ञान अवतरित हुआ। श्री राज जी का हृदय ही निस्बत और वहदत के रूप में लीला कर रहा है—

खिलवत निसबत वाहेदत, जेती अर्स हकीकत।

ए लज्जत हुकम सिर लेवहीं, अरस रुहें सिर ले हुज्जत॥

श्रृंगार २४/५७

ए हक बातन की बारीकियां, सो हक के दिए आवत।

ना सीखे सिखाए ना सोहोबतें, हक मेहेरें पावत॥१२॥

श्री राज जी के दिल की ये गुह्य बातें हैं, जो एकमात्र धाम धनी से ही प्राप्त होती हैं। मारिफत (सर्वोपरि सत्य) की इन बातों को न तो किसी की संगति से पाया जा सकता है और न तो सीखने या सिखाने से। धनी की मेहर से ही मारिफत के सारे रहस्य विदित होते हैं।

भावार्थ- अक्षरातीत के हृदय की गुह्यतम (मारिफत की) बातों को जानने के लिये किसी महान विभूति की मात्र संगति करने या उनकी कुछ आदतों की नकल करने की आवश्यकता नहीं होती। अध्यात्म की गूढ़ बातों को मात्र सुनने-सुनाने से ही इस स्तर तक नहीं पहुँचा जा सकता। महान विभूतियों की संगति में रहकर यदि उनकी शालीनता, विरह, प्रेम, तथा ज्ञान ग्रहण करने की

प्रवृत्ति को अपनाया जाये, तो धाम धनी की मेहर से यह अवस्था प्राप्त हो सकती है।

अपनी रूहों वास्ते, कई कोट काम किए।

ए जानें अरवाहें अर्स की, जिन नाम निसान लिए॥१३॥

धाम धनी ने अपनी आत्माओं को रिझाने के लिये करोड़ों मार्ग अपनाये हैं। इस रहस्य को मात्र परमधाम की वे आत्मायें ही जानती हैं, जिन्होंने इस संसार में प्रियतम के नाम तथा निशान को ग्रहण किया है।

भावार्थ— "हक को काम और कछू नहीं, देवें रूहों लाड लज्जत" के आधार पर अपनी अँगनाओं (माशूक) को रिझाना ही श्री राज जी (आशिक) का काम करना है। धाम धनी अपनी अँगनाओं को रिझाने के लिये पच्चीस पक्ष, अगणित पशु-पक्षियों, खूब-खुशालियों आदि का

रूप धारण किये हुए है, जिसका बोध सखियों को नहीं था। इनके माध्यम से वे अपनी अंगरूपा आत्माओं को रिझाते हैं। इसी को करोड़ों कामों की संज्ञा दी गयी है।

"नाम लेने" का तात्पर्य पहचान करने से है। इसी प्रकार परमधाम के पच्चीस पक्षों सहित युगल स्वरूप के अंग-अंग की शोभा को अपने धाम हृदय में बसा लेना ही "निशान लेना" है।

ए जो अर्स बारीकियां, अर्स सहूरें रूह जानत।

जिन पट खुल्या सो न जानहीं, बिना हक सिफत॥१४॥

आत्मिक धरातल पर होने वाले परमधाम के चिन्तन से ही ब्रह्मसृष्टियों को परमधाम की इन गुह्यतम बातों का पता चलता है। यदि किसी को परमधाम का अनुभव भी हो जाये, किन्तु यदि श्री राज जी की पूर्ण मेहर को

आत्मसात् नहीं किया, तो उन्हें भी मारिफत की गुह्य बातों का पता नहीं चल सकता।

भावार्थ- इस चौपाई में परमधाम के जिस चिन्तन (शहूर) की बात की गयी है, वह जीव के अन्तःकरण के द्वारा होने वाला बौद्धिक चिन्तन नहीं है, परन्तु आत्मा के अन्तःकरण द्वारा होने वाला चिन्तन है। परमधाम का साक्षात्कार होने के पश्चात् भी यदि उत्तरोत्तर प्रेम की गहराई में प्रवेश नहीं किया गया, तो मारिफत (सर्वोपरि आध्यात्मिक विज्ञान) की अवस्था प्राप्त नहीं होगी और गुह्यतम बातों का पता भी नहीं चल सकेगा।

जिन जो देख्या जागते, सो देखे माहें सुपन।

कानों सुन्या सोभी देखत, याके साथ तो हक इजन॥१५॥

परमधाम की जिन आत्माओं ने जाग्रत अवस्था में

परमधाम को देखा था, अब वे उसे चितवनि द्वारा इस सपने के ब्रह्माण्ड में देख रही हैं। अपने कानों से माया के जिस ब्रह्माण्ड के बारे में सुना था, उसे तो प्रत्यक्ष देख ही रही हैं। इनके साथ प्रियतम के आदेश (हुक्म) की शक्ति है, जो ये सारी लीलायें करवा रही है।

रखे वजूद को हुक्म, जेते दिन रख्या चाहे।

रूहों खेल देखावने, कई विध जुगत बनाए॥१६॥

धनी का हुक्म ब्रह्मसृष्टियों के तन को जितने समय तक रखना चाहता है, उतने समय तक रखता है। आत्माओं को माया का खेल दिखाने के लिये धनी का आदेश तरह-तरह की युक्तियाँ लगाता है, अर्थात् मार्ग निकालता है।

भावार्थ— इस चौपाई से यह निष्कर्ष निकलता है कि

ब्रह्मसृष्टियों ने इस खेल में जिस तन को धारण किया है, उसकी मृत्यु धनी के हुक्म पर निर्भर करती है। श्री राज जी के आदेश के बिना इस संसार की मृत्यु उसका बाल भी बाँका नहीं कर सकती। शाहजहाँपुर बोड़िये में मौत ने अपनी सारी शक्ति लगा दी, किन्तु श्रीजी की कृपा से नागजी भाई (गरीब दास जी) का कुछ भी न बिगाड़ सकी।

आतम तो फरामोस में, भई आड़ी नींद हुकम।

सो फेर खड़ी तब होवहीं, रूह दिल याद आवे खसम॥१७॥

आत्मायें तो माया की नींद में हैं। श्री राज जी के आदेश से उनके और धनी के बीच यह नींद ही पर्दा बनी हुई है। जब आत्मा के धाम हृदय में प्रियतम की छवि बसने लगती है, तो आत्मा परमधाम की तरह पुनः जाग्रत हो

जाती है।

भावार्थ- आत्मा के धाम हृदय में धनी की शोभा के बसते ही उसकी स्थिति भी परात्म जैसी हो जायेगी। इसे ही माया में जाग्रत होना कहते हैं। परात्म तो परमधाम की वहदत में है। उसकी जागनी एक ही साथ होगी। इस जागनी लीला में मात्र आत्मा की ही जागनी होनी है, परात्म की नहीं।

सो साख मोमिन एही देवहीं, यों बूझ में भी आवत।

अनुभव भी कछू केहेत है, और हुकम भी कहावत॥१८॥

आत्म-जाग्रति के सम्बन्ध में ब्रह्ममुनि ऐसी ही साक्षी देते हैं। ज्ञान दृष्टि से भी यही बात समझ में आती है। आत्मा का अनुभव भी कुछ ऐसी ही बातें कहता है और यह सब कुछ कहलवाना धाम धनी के आदेश से हो रहा

है।

मोमिन केहेवें हुकमें, बूझ अनुभव पर हुकम।

हुकम केहेवे सो भी हुकमें, कछू ना बिना हुकम खसम॥१९॥

ब्रह्ममुनि धनी के आदेश से ही कुछ कहते हैं। उनकी समझ और अनुभव भी प्रियतम की छत्रछाया में ही होता है। मूल स्वरूप के हुक्म से ही इस संसार में आवेश स्वरूप का हुक्म (आदेश, इच्छा) कार्य करता है। धनी के आदेश के बिना कुछ भी नहीं होता।

रूह तेती जागी जानियो, जेता दिल में चुभे हक अंग।

जो अंग हिरदे न आइया, रूह के तेती फरामोसी संग॥२०॥

आत्मा के धाम हृदय में धनी की जितनी शोभा बसती है, आत्मा को उतना ही जाग्रत हुआ माना जाता है।

आत्मा के धाम हृदय में अक्षरातीत के जिस अंग की शोभा नहीं बस पाती, आत्मा के अन्दर उतनी ही नींद (फरामोशी) मानी जाती है।

भावार्थ- आत्मा का स्वरूप परात्म का प्रतिबिम्ब है। अक्षरातीत के नख से शिख तक की सम्पूर्ण शोभा का बस जाना ही पूर्ण आत्म-जाग्रति है। आत्म-जाग्रति का स्तर कैसा है, यह धनी की शोभा को आत्मसात् करने पर निर्भर करता है?

ताथें जो रूह अर्स अजीम की, सों क्यों ना करे उपाए।
ले हक सरूप हिरदे मिने, और देवे सब उड़ाए॥२१॥

इसलिये जो भी परमधाम की आत्मा होगी, वह अपनी आत्म-जाग्रति का उपाय अवश्य करेगी। वह तो अपने प्राणप्रियतम की शोभा को अपने धाम हृदय में बसाकर

सारे संसार से किनारा कर लेती है।

इस्क बिना रूह के दिल, चुभे ना सूरत हक।

मेहेर जोस निसबतें, हक हुकमें चुभे मुतलक॥२२॥

हृदय में प्रेम आये बिना कभी भी धनी की शोभा नहीं बस सकती। यदि धनी से मूल सम्बन्ध हो अर्थात् परमधाम में मूल तन हो, तथा धनी की मेहर और जोश भी प्राप्त हो जाये, तो श्री राज जी के आदेश से निश्चित रूप से हृदय में प्रियतम की छवि बस जाती है।

मोहे दिल में हुकमें यों कह्या, जो दिल में आवे हक मुख।

तो खड़ा होए मुख रूह का, हक सों होए सनमुख॥२३॥

श्री राज जी के आदेश से मेरे हृदय में ऐसी प्रेरणा आयी कि यदि धाम धनी का मुखारविन्द मेरे धाम-हृदय में बस

जाता, तो मेरी परात्म का मुखारविन्द भी मेरी आत्मा के हृदय में आ जाता और धनी के सम्मुख होने का आनन्द मिलता।

भावार्थ- मूल मिलावा में परात्म का नूरी तन श्री राज जी के सम्मुख विद्यमान है। उसकी नूरी नजरें श्री राज जी की नजरों से मिली तो हुई हैं, किन्तु उन्हें धाम धनी नहीं दिखायी पड़ रहे हैं बल्कि यह झूठा संसार नजर आ रहा है। यद्यपि उनकी नूरी नजरें संसार की ओर नहीं हैं, फिर भी हृदय की क्रियाशीलता श्री राज जी के दिल रूपी पर्दे पर संसार को देख रही है।

यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि परात्म के दिल का सम्बन्ध नूरी नजरों से है तथा श्री राज जी के दिल से होने वाली सारी लीला उनके नेत्रों में पड़ रही है, जबकि धाम धनी के दिल को पर्दा कहा गया है। इसी प्रकार

परात्म के जिस दिल में सम्पूर्ण परमधाम दिखा करता था, अब वहाँ संसार दिखने लगा है। इसे श्रीमुखवाणी सिनगार ११/६९ में इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

हक भी कहे दिल में, अर्स भी कह्या दिल।

परदा भी कह्या दिलको, आया सहूरें बेवरा निकल।।

परात्म के दिल की क्रिया शक्ति ने परात्म का नख से शिख तक रूप धारण किया और आत्मा के रूप में इस नश्वर जगत में जीव के ऊपर बैठ गयी। अब चितवनि में आत्मा ने जब अपने धाम—हृदय में अपने प्राणवल्लभ को मूल मिलावे में देखा, तो उसे अपनी परात्म भी दिखायी पड़ी। श्री राज जी के जिस-जिस अंग को वह देखती जायेगी, परात्म का वह-वह अंग भी दिखता जायेगा। जब श्री राज जी का पूर्ण स्वरूप दिख जायेगा, तो आत्मा को भी अपना पूर्ण स्वरूप दिखने लगेगा। इसे ही आत्म—

जाग्रति कहते हैं।

किन्तु इस अवस्था में भी परात्म के किसी भी अंग में कोई जाग्रति नहीं होगी, बल्कि आत्मा को यह अनुभव होगा कि मेरा वास्तविक स्वरूप परात्म का है। इस अवस्था में उसे अपने पञ्चभौतिक तन का कुछ भी आभास नहीं रहेगा, जबकि यह सारा दृश्य उसे अपने धाम-हृदय में ही दिखायी देगा। इसी को दूसरे शब्दों में आत्मा के अंगों का खड़ा होना कहते हैं। परात्म के अंग जागनी लीला में खड़े नहीं होंगे, क्योंकि यहाँ आत्म-जाग्रति का प्रसंग है। यह बात इसी प्रकरण की चौपाई ७० में दर्शायी गयी है—

जब पूरन सरूप हक का, आए बैठा माहें दिल।

तब सोई अंग आत्म के, उठ खड़े सब मिल॥

अधुर हरवटी नासिका, दंत जुबां और गाल।

जो अंग आया हक का दिल में, उठे रूह अंग उसी मिसाल॥२४॥

जब आत्मा अपने धाम हृदय में श्री राज जी के अति सुन्दर होठों, ठुड्डी, नासिका, दाँतों, मुख, तथा गालों की शोभा को अपने धाम-हृदय में बसा लेती है, तो उसी क्रम में आत्मा के भी अंग जाग्रत हो जाते हैं (दिखने लगते हैं)।

भावार्थ- जिस प्रकार दर्पण में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर अपने रूप का निर्धारण किया जाता है, उसी प्रकार आत्मा अपने धाम-हृदय में अपनी परात्म का रूप (प्रतिबिम्ब) देखकर अपने रूप का निर्धारण करती है।

इसके साथ यह भी विशेष तथ्य है कि जिस प्रकार द्रष्टा दृश्य को देखते-देखते अपने को भी देखने लग जाता है, उसी प्रकार आत्मा भी परात्म को देखते-देखते स्वयं को

भी देखने लग जाती है, और ऐसी भी स्थिति आती है जब वह परात्म की जगह स्वयं का अस्तित्व अनुभव करने लगती है। यह स्थिति वैसे ही होती है, जैसे किसी अपने ही चित्र को बहुत ध्यानपूर्वक देखा जाये, तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह स्वयं ही चित्र के रूप में प्रत्यक्ष है। उसे चित्र में एकात्मता प्रतीत होने लगती है। इसी प्रकार चितवनि की प्रक्रिया में प्रतिबिम्ब (आत्मा) अपने बिम्ब को देखकर उससे तदात्म्य (एकरूपता) स्थापित कर लेती है, अर्थात् अब आत्मा को अपना वह अंग प्रत्यक्ष दिखाई देता है जो अंग श्री राज जी अथवा परात्म का देखा था।

इस प्रकार चितवनि की गहन स्थिति में तीनों ही दिखाई देंगे— १. श्री राज श्यामा जी २. परात्म ३. आत्मा। आत्मा को अपने जिस-जिस अंग का अनुभव होगा

उस-उस अंग का उठना कहा जायेगा। आगे की चौपाइयों में यही बात दर्शायी गयी है।

जो तू ग्रहे हक नैन को, तो नजर खुले रूह नैन।

तब आसिक और मासूक के, होए नैन नैन से सैन॥२५॥

हे मेरी आत्मा! यदि तू श्री राज जी के अति मनोहर नेत्रों को देखती है, तो तेरे भी नेत्र खुल जायेंगे। जब तुम्हारे नेत्रों की दृष्टि प्रियतम के नेत्रों से मिलेगी, तो प्रेम के संकेत रूपी बाण चलने शुरू हो जायेंगे।

भावार्थ- इस चौपाई में उस स्थिति का वर्णन है, जब आत्मा अपने धाम हृदय में ऐसा अनुभव करती है कि उसका प्रियतम उसके सम्मुख ही विराजमान है और वह अपनी परात्म जैसी शोभा से युक्त होकर उनका दीदार (दर्शन) कर रही है। स्थिति यहाँ तक पहुँच जाती है कि

जैसे परमधाम में परात्म अपने प्राणवल्लभ के नेत्रों से प्रेम के संकेत करती है, उसी तरह आत्मा भी करने लगती है। यह विशेष ध्यान देने योग्य तथ्य है कि उस अवस्था में अपने पञ्चभौतिक तन का जरा भी आभास नहीं रहेगा तथा आत्मा के दिल में सब कुछ घटित होते हुए भी ऐसा लगेगा जैसे हम मूल मिलावा में आमने-सामने बैठे हुए हैं।

**जो हक निलाट आवे दिल में, और दिल में आवे श्रवन।
दोऊ अंग खड़े होएं रूह के, जो होवें रूह मोमिन॥२६॥**

यदि किसी के अन्दर परमधाम की आत्मा हो और वह अपनी आत्मिक दृष्टि से अपने धाम हृदय में श्री राज जी के मस्तक और कानों की शोभा को देखती है, तो आत्मा को भी अपने मस्तक और कानों की शोभा दिखायी देगी।

भावार्थ- इस चौपाई में यह प्रश्न होता है कि परमधाम के तन तो नूरी हैं, किन्तु इस संसार में चितवनि करने पर कैसा दिखायी देता है?

इसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार यदि टी. वी. के पर्दे पर या जल में तपते हुए सूर्य को दिखाया जाये, तो सूर्य का वास्तविक रूप तो दिखता है किन्तु गर्मी का आभास नहीं होता, उसी प्रकार करोड़ों सूर्यों से भी अधिक प्रकाशमान परमधाम के नूरी तनों को देखने पर कुछ भी अनुचित प्रभाव नहीं पड़ता। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने श्याम जी के मन्दिर में श्री राज जी के आवेश स्वरूप को बाह्य आँखों से देखा था, किन्तु कुछ भी शारीरिक विकृति नहीं हुई। यह धाम धनी की अलौकिक लीला है।

भौं भृकुटी पल नासिका, सुन्दर तिलक हमेस।

गौर सोभा मुख चौक की, क्यों कहूं जोत नूर केस॥२७॥

श्री राज जी की दोनों भौंहों, भृकुटी, पलकों, तथा नासिका की बहुत ही सुन्दर शोभा है। उनके मस्तक पर हमेशा ही सुन्दर तिलक दिखायी देता है। मुख के चौक की शोभा अत्यधिक गौर वर्ण की है। उनके नूरमयी केशों की जगमगाती हुई ज्योति की शोभा का वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

भावार्थ- टुड्डी से लेकर निचले होंठ, तथा नासिका से लेकर ऊपरी होंठ, तथा दोनों कानों से लेकर होठों के दोनों किनारों की ओर का भाग मुख का चौक कहलाता है।

ए अंग जेते मैं कहे, आवें रूह के हिरदे हक।

तेते अंग रूह के, उठ खड़े होए बेसक॥२८॥

श्री राज जी के जिन अंगों का मैंने वर्णन किया है, यदि वे आत्मा के धाम हृदय में आ जाते हैं तो निश्चित रूप से आत्मा के वे अंग भी जाग्रत हो जाते हैं (उठ खड़े हो जाते हैं)।

पाग बनी सिर सारंगी, इन जुबां कही न जाए।

ए जुगत जोत क्यों कहूं, जो हकें बांधी दिल ल्याए॥२९॥

धाम धनी के सिर पर सारंगी के आकार की अति सुन्दर पाग बनी हुई है, जिसकी शोभा का वर्णन इस जिह्वा से हो पाना सम्भव नहीं है। श्री राज जी ने अपने दिल में अति प्रेम लेकर जिस पाग को बाँधा है, उसकी रचना अलौकिक है। उससे निकलने वाली ज्योति की शोभा का

वर्णन में कैसे करूँ?

अतंत सोभा सुन्दर, चढ़ती चढ़ती तरफ चार।

जित देखूँ तित अधिक, सोभा न आवे माहें सुमार॥३०॥

श्री राज जी की सुन्दर पाग की शोभा अनन्त है। उसकी शोभा चारों ओर बढ़ती हुई दिखायी देती है। जिधर भी दृष्टि जाती है, उधर ही और अधिक सुन्दरता दिखायी देती है। उसकी शोभा को किसी भी सीमा में नहीं बाँधा जा सकता।

हक हैड़ा हिरदे ग्रहिए, दिल में रहे दायम।

सो हैड़ा अंग रूह का, उठ खड़ा हुआ कायम॥३१॥

हे साथ जी! आप अपनी आत्मा के धाम हृदय में श्री राज जी के हृदय कमल (वक्षस्थल) की शोभा को इस

प्रकार से बसाइए कि वह अखण्ड हो जाये। यदि ऐसा हो जाता है, तो आपकी आत्मा का हृदय (वक्षस्थल) भी अखण्ड रूप से दिखने लगेगा।

जो हक अंग दिल में नहीं, सो अंग रूह का फरामोस।

जब हक अंग आया दिल में, सो रूह अंग आया माहें होस॥३२॥

आत्मा के धाम हृदय में श्री राज जी के जिस अंग की शोभा नहीं बस पाती, आत्मा के उस अंग में नींद (फरामोशी) बनी रहती है, अर्थात् आत्मा को अपने तन का वह अंग अनुभव (देखने) में नहीं आता। जब श्री राज जी का वह अंग हृदय में आ जाता है, तो आत्मा के उस अंग में भी जाग्रति आ जाती है।

कटि पेट पांसे हक के, पीठ खभे कांध केस।

ए दिलमें जब दृढ़ हुए, तब रूह आया देखो आवेस॥३३॥

जब आत्मा के धाम हृदय में श्री राज जी की कमर, पेट, पसलियाँ, पीठ, बाजुओं की माँसपेशियाँ (डौले), कन्धे, तथा केशों की अलौकिक शोभा दृढ़तापूर्वक बस जाती है, तो आत्मा के अन्दर अपने प्रियतम के प्रेम का आवेश आ जाता है।

भावार्थ— जिस प्रकार लोक व्यवहार में लोगों को भावावेश, प्रेमावेश, तथा क्रोधावेश के वशीभूत होते हुए देखा जाता है, उसी प्रकार यहाँ धनी के प्रेमावेश में डूब जाने का प्रसंग है। इसका तात्पर्य यह है कि इस अवस्था में रोम-रोम में प्रेम ही प्रेम दृष्टिगोचर होने लगता है। इस चौपाई में श्री राज जी के उस नूरमयी स्वरूप के आवेश का वर्णन नहीं है, जिसके द्वारा अक्षरातीत कहलाने की

शोभा प्राप्त हो जाती है।

बाजू मच्छे कोनियां, कांडे कलाइयां हाथ।

हक के अंग हिरदे आए, तब रूह खड़ी हुई हक साथ॥३४॥

श्री राज जी के दोनों बाजुओं के डौले (पुठे) तथा कोहनियों की शोभा अलौकिक है। हाथों की कलाइयों में कड़े सुशोभित हो रहे हैं। आत्मा के धाम हृदय में जब इनकी शोभा बस जाती है, तो आत्मा भी धाम धनी के सम्मुख स्वयं को जाग्रत रूप में अनुभव करती है।

भावार्थ— अँगुलियों से लेकर कन्धों तक का सम्पूर्ण भाग हाथ कहलाता है, किन्तु इसके अलग-अलग भाग हैं। काँख की दिशा वाला बाजू का भाग (मच्छ) माँसल एवं बहुत ही सुन्दर होता है। इसे माँसपेशी, पुठे, या डौले कहते हैं। कड़ा एक आभूषण है, जो कलाइयों में पहना

जाता है। इसके साथ ही कड़ी भी पहनी जाती है।

पोहोंचे हथेली अंगुरी नख, लीकें रंग सलूक।

हक अंग मिहीं हिरदे बैठे, अब निमख न होए रूह चूक॥३५॥

श्री राज जी की कलाइयों में पहुँचा सुशोभित हो रहा है। उनकी हथेलियों, अँगुलियों, नाखूनों, तथा हाथों की रेखाओं का रंग बहुत ही सुन्दर है। आत्मा के सूक्ष्म हृदय में जब इनकी शोभा विराजमान हो जाती है, तो आत्मा के जाग्रत होने में क्षण भर की भी देरी होने की चूक (भूल) नहीं होती।

भावार्थ— पोहोंचा एक आभूषण है, जो कलाई में पहना जाता है।

नख अंगूठे अंगुरियां, नीके ग्रहिए हक कदम।

सोई नख अंगुरियां पांउं रूह के, खड़े होत माहें दम॥३६॥

हे साथ जी! आप अपनी आत्मा के धाम हृदय में नाखूनों, अँगूठों तथा अँगुलियों सहित श्री राज जी के दोनों चरणों को अच्छी तरह से बसाइये। ऐसा करने पर एक पल के अन्दर नखों, और अँगुलियों सहित आत्मा के चरण कमल भी जाग्रत हो जाते हैं।

जब हक चरन दिल दृढ़ धरे, तब रूह खड़ी हुई जान।

हक अंग सब हिरदे आए, तब रूह जागे अंग परवान॥३७॥

जब प्रियतम अक्षरातीत के दोनों चरण कमल आत्मा के धाम हृदय में दृढ़तापूर्वक बस जाते हैं, तो ऐसा मान लेना चाहिए कि अब आत्मा भी जागनी के लिये खड़ी हो गयी है, अर्थात् जाग्रत होने की पूर्ण तैयारी हो चुकी है।

मोहोरी चूड़ी इजार की, और नेफा इजार बंध।

हरे रंग बूटी कई नकस, हकें सोभित भली सनंध॥३८॥

श्री राज जी की हरे रंग की इजार की मोहरी में चूड़ियाँ बनी हुई हैं। इजारबन्द तथा नेफे के ऊपर अनेक प्रकार की चित्रकारी से युक्त बूटियाँ बनी हुई हैं, जिनकी बहुत अधिक शोभा हो रही है।

भावार्थ— एड़ियों के पास इजार (सूथनी, चूड़ीदार पाजामा) का जो गोल घेरा होता है, उसे मोहरी कहते हैं। इसी प्रकार इजार का वह उपरी भाग जो कमर के चारों ओर घेर कर आता है, नेफा कहलाता है। इसी के अन्दर से डोरी (फीता) डाली जाती है, जिसे इजारबन्द कहते हैं।

क्यो कहूं जुगत जामें की, हरे पर उज्जल दावन।

निपट सोभित मिहीं बेलियां, झांई उठत अति रोसन॥३९॥

जामे की बनावट का मैं कैसे वर्णन करूँ? हरे रंग की इजार पर अति श्वेत रंग के जामे का दावन आया हुआ है। इस दावन के ऊपर बहुत ही बारीक बेलियाँ (लतायें) सुशोभित हो रही हैं। जामे के दावन के नीचे आयी हुई इजार बहुत अधिक आभा के साथ झलकार कर रही है।

भावार्थ- जामे का वह निचला भाग जो कमर से नीचे घुटनों तक गोलाकृति में आया होता है, दावन या दामन कहलाता है।

एक सेत रंग जामा कह्या, माहें जवेर जुगत कई रंग।

इन जुबां रोसनी क्यो कहूं, जो झलकत अर्स के नंग॥४०॥

जामे का रंग श्वेत है, जिसमें अनेक रंग के जवाहरात

युक्तिपूर्वक जड़े हुए हैं। परमधाम के इन नगों से इतनी अधिक ज्योति की झलकार हो रही है कि इस जिह्वा से उसका वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है।

बीच पटुका कस्या कमरें, रंग कई बिध छेड़े किनार।

बेली नकस फूल केते कहूं, अवकास भरयो झलकार॥४१॥

जामे की लम्बाई का बीच वाला भाग कमर के ऊपर आता है। यहाँ कमर में पटुका बँधा हुआ है, जिसके दोनों पल्लों की किनार पर अनेक रंगों की लताओं तथा फूलों के चित्र अंकित हैं। इनका मैं कितना वर्णन करूँ? पटुके की झलकार से सारा आकाश भरा हुआ दिखायी दे रहा है।

एक झलकार मुख केहेत हों, माहें कई सलूकी सुखदाए।
 सो गुन गरभित इन जुबां, रंग रोसन क्यों कहे जाए॥४२॥

अपने मुख से मैं पटुके की झलकार का वर्णन अवश्य कर रही हूँ, किन्तु उसकी एक ही झलकार में सुख देने वाली अनेक प्रकार की सुन्दरता विद्यमान होती है। पटुके में जगमगाते हुए रंगों के जो गुण छिपे हुए हैं, उसका वर्णन इस जिह्वा से नहीं किया जा सकता।

जामा जुड़ बैठा अंग पर, कोई अचरज खूबी लेत।
 सोभा सलूकी सुख क्यों कहूं, अंग गौर पर जामा सेत॥४३॥

जामा श्री राज जी के अंगों से सटा हुआ है। इसकी कुछ ऐसी विशेषतायें हैं, जो अत्यधिक आश्चर्य में डालने वाली हैं। श्री राज जी के अति सुन्दर गोरे रंग पर श्वेत रंग के जामे की शोभा और सुन्दरता से मेरी आत्मा को जिस

आनन्द की अनुभूति हो रही है, उसका वर्णन में कैसे करूँ?

बगलों नकस केवड़े, कंठ बेली दोऊ गिरवान।

ए जुगत जुबां तो कहे, जो कछू होए इन मान॥४४॥

जामे की दोनों बगलों में केवड़े के फूलों की चित्रकारी की गयी है। गले के चारों ओर तथा दोनों तनियों पर बेलों की शोभा आयी है। इनकी सुन्दरता का वर्णन तो तभी हो सकता है, जब इनके समान उपमा (तुलना) में कोई और भी हो।

कटाव कोतकी कांध पीछे, ऊपर फुंदन हारों के।

रूह जो जाग्रत अर्स की, सुख लेसी बका इत ए॥४५॥

जामे में दोनों कन्धों के पीछे पान के पत्ते के समान व

कन्धों पर बेलों की कटावदार कशीदाकारी की हुई है।
 उसके ऊपर गले में पहने हुए हारों के फुन्दन लटकते हैं।
 परमधाम की जो भी जाग्रत आत्मा होगी, वही इस
 अखण्ड शोभा का आनन्द लेगी।

बाहें चूड़ी और मोहोरियां, चूड़ी अचरज जुगत।

निपट मिहीं मोहोरीय से, चढ़ती चढ़ती सोभित॥४६॥

जामे की बाँहों की मोहरी पर चुन्नटों की शोभा आयी है।
 इनकी बनावट बहुत ही आश्चर्य में डालने वाली है। मोहरी
 के पास प्रारम्भ में तो बिल्कुल बारीक चुन्नटें हैं , जो
 क्रमशः बड़ी होती गयी हैं।

आए वस्तर हिरदे हक के, रूह अपने पेहेने बनाए।

तेती खड़ी रूह होत है, जेता दिल में हक अंग आए॥४७॥

जब आत्मा के धाम हृदय में श्री राज जी के वस्त्रों की शोभा आ जाती है, तो आत्मा को भी यह अनुभव होता है कि मैंने अपने वस्त्र धारण कर लिये हैं। श्री राज जी के जितने अंगों की शोभा आत्मा के हृदय में प्रकट हो (बस) जाती है, आत्मा के भी उतने अंग खड़े हो जाते हैं (जाग्रत हो जाते हैं)।

पांच नंग माहें कलंगी, तामें तीन नंग ऊपर।

एक मध्य एक लगता, पांच रंग जोत बराबर॥४८॥

श्री राज जी की पाग की कलंगी में पाँच नंग जड़े हुए हैं। उसमें तीन नंग तो ऊपर हैं, एक बीच में है, और एक पाग से लगता हुआ है। इन पाँच नगों से पाँच प्रकार के रंगों की ज्योति हमेशा ही जगमगाती रहती है।

ए जो कलंगी सिर पर, लटक रही सुखदाए।

जो भूखन रूह नजर भरे, तो जानों अरवा देवे उड़ाए॥४९॥

श्री राज जी के सिर पर बँधी हुई पाग में जो कलंगी जड़ी हुई है, वह आत्मा को बहुत ही आनन्द देने वाली है। यदि आत्मा इन आभूषणों को अपनी दृष्टि में ले लेती है, तो ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे वह इनके बिना अपना शरीर ही छोड़ देगी।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण का भाव यह है कि आत्मा इन आभूषणों की शोभा को देखकर उन पर इतना न्योछावर हो जाती है कि उनका वियोग सहन कर पाना उसके लिये सम्भव नहीं होता।

सात नंग माहें दुगदुगी, सो सातों जुदे जुदे रंग।

चढ़ती जोत आकास में, करत माहों माहें जंग॥५०॥

पाग की दुगदुगी में सात प्रकार के नग जड़े हुए हैं, जिनके अलग-अलग तरह के कुल सात रंग हैं। इनसे निकलने वाली ज्योतियाँ आकाश में फैल रही हैं और आपस में टकराकर युद्ध सी करती हुई प्रतीत हो रही हैं।

जो रस कलंगी दुगदुगी, सोई पाग को रस।

अंग रंग जोत बराबर, ए नंग रस नूर अर्स॥५१॥

कलंगी और दुगदुगी में प्रेम, सौन्दर्य, तथा आनन्द का जो रस है, वही रस पाग में भी है। इनके रंगों की ज्योति भी श्री राज जी के अंगों के समान है। इन नगों में नूरमयी परमधाम की एकदिली का रस प्रवाहित होता है।

भावार्थ— श्री राज जी के नख से शिख तक के स्वरूप, तथा वस्त्रों एवं आभूषणों के स्वरूप में तत्त्वतः कोई भी भेद नहीं है। सभी अक्षरातीत के दिल (हृदय) के व्यक्त

स्वरूप हैं। मात्र माननीय बुद्धि के लिये ग्राह्य बनाने हेतु (समझ में आने के लिये) ही इस प्रकार का वर्णन किया गया है।

ए जो हिरदे आए हक भूखन, जाहेर स्यामाजी के जान।
कलंगी दुगदुगी राखड़ी, होत दोऊ परवान॥५२॥

यदि श्री राज जी के आभूषणों की शोभा आत्मा के धाम हृदय में आ जाती है, तो यह मान लेना चाहिए कि साथ में श्यामा जी की शोभा भी अवश्य आ गयी है। यदि श्री राज जी की कलंगी और दुगदुगी दिखायी देती है, तो श्यामा जी की राखड़ी भी अवश्य दिखायी पड़ेगी। दोनों स्वरूपों की शोभा साथ-साथ ही प्रकट होती है।

भावार्थ- यह स्थिति केवल ब्रह्मसृष्टियों के ही साथ होगी, अर्थात् युगल स्वरूप का साक्षात्कार मात्र उन्हें ही

होगा। जीव सृष्टि या ईश्वरी सृष्टि यदि ब्रह्मसृष्टियों की तरह प्रेम में डूब जाती है, तो भी उसे केवल श्री राज जी का ही स्वरूप दिखायी देगा, श्यामा जी का नहीं।

सागर ६/३१ में कहा गया है—

अन्तर पट खोल देखिए, दोऊ आवत एक नजर।

इस कथन के आधार पर युगल स्वरूप (आशिक—माशूक) परस्पर एक—दूसरे में ओत—प्रोत हैं। अतः श्री राज जी का स्वरूप जहाँ भी होगा, श्यामा जी वहाँ अवश्य होंगी। यही स्थिति अन्य ब्रह्मसृष्टियों के साथ भी है।

दोऊ मुक्ताफल कान के, करड़े कंचन बीच लाल।

साड़ी किनार सेंथे पर, श्रवन पानड़ी झाल॥५३॥

श्री राज जी के दोनों कानों में सोने के ऐँठदार बड़े बाले

लटक रहे हैं, जिनमें मोती के फूल जड़े हुए हैं। इनके बीच में लाल नग सुशोभित हो रहा है। इसी प्रकार श्यामा जी के कानों में पानड़ी आयी है तथा नीचे झाला लटक रहा है। श्यामा जी की साड़ी का किनारा मांग के ऊपर से होकर शोभा दे रहा है।

भावार्थ— इस चौपाई में युगल स्वरूप की शोभा का साथ-साथ वर्णन किया गया है। चितवनि में भी सुन्दरसाथ को यही प्रक्रिया अपनानी चाहिए।

हक अंग तो मुतलक मारत, पर भूखन लगें ज्यों भाल।

चितवन जुगल किसोर की, देत कदम नूरजमाल॥५४॥

श्री राज जी के अंगों की शोभा तो आशिक (आत्मा) को निश्चित रूप से मार डालती है, अर्थात् आत्मा अपने प्रियतम के प्रति पूर्ण रूप से एकाकार हो जाती है और

स्वयं का अस्तित्व भूल जाती है। इसके साथ ही नूरमयी आभूषणों की शोभा भाले के समान चोट करती है। युगल स्वरूप की चितवनि आत्मा को धनी के चरण दिला देती है।

भावार्थ- युगल स्वरूप के अंग-अंग से छिटकने वाला अनन्त सौन्दर्य आत्मा को इतना बेसुध (मदहोश) कर देता है कि वह स्वयं को भूल जाती है। उस समय उसकी दृष्टि में अक्षरातीत के अनन्त प्रेम एवं सौन्दर्य से भरे अंगों के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नजर नहीं आता। इसे ही मार डालना कहते हैं। इस संसार में जिस प्रकार भाले की चोट से व्यक्ति तड़पने लगता है, उसी प्रकार श्री राज जी के आभूषणों की एक झलक भी यदि मिल जाये, तो आत्मा का हृदय भाले की चोट की तरह विरह में तड़पने लगता है।

अकेले केवल श्री राज जी का ही ध्यान नहीं करना चाहिए, बल्कि उनके साथ श्यामा जी का भी ध्यान करना चाहिए। वस्तुतः श्यामा जी अक्षरातीत की हृदय स्वरूपा हैं। वे परब्रह्म की आह्लादिनी शक्ति हैं। दोनों में कोई भेद नहीं है। वस्त्र-श्रृंगार आदि का जो भेद दिखायी पड़ता है, वह मात्र लीला भेद है, तात्त्विक नहीं। इस प्रकार अध्यात्म के शिखर तक मारिफत की अवस्था में पहुँचने के लिये युगल स्वरूप की चितवनि अनिवार्य है।

मुख बीड़ी आरोगें पान की, लाल सोभे अधुर तंबोल।

ए रूह दृष्टें जब देखिए, पट हिरदे देत सब खोल॥५५॥

जब श्री राज जी अपने मुख में पानों का बीड़ा ग्रहण करते (आरोगते) हैं, तो उस समय लालिमा से भरपूर उनके होठों तथा पान की अद्वितीय शोभा होती है। इसे

जब आत्म-दृष्टि से देखा जाता है, तो हृदय के सभी पर्दे खुल जाते हैं।

भावार्थ- सच्चिदानन्द परब्रह्म के द्वारा पान खाने का प्रसंग अपने लौकिक भावों के अनुसार लीला रूप में ही है। परमधाम में इसकी अनिवार्यता नहीं है। लौकिक जगत में पान चबाना श्रृंगार के प्रसाधनों में माना जाता है, इसी भाव की अभिव्यक्ति यहाँ की गयी है।

अक्षरातीत के लालिमा भरे होठों के अप्रतिम सौन्दर्य को देखने पर हृदय के पर्दे खुलने का अभिप्राय यह है कि इस अवस्था में प्रेम की गहनता बहुत बढ़ जाती है, जिससे आत्मा को एकदिली (वहदत), मूल सम्बन्ध (निस्बत), ज्ञान एवं प्रेम (इल्म तथा इश्क) के मारिफत (सर्वोपरि अवस्था) का द्वार खुल जाता है, और वह उसमें डूबने लगती है।

कहूं केते भूखन कंठ के, तेज तेज में तेज।

आसमान जिमी के बीच में, हो गई रोसन रेजा-रेज॥५६॥

श्री राज जी के गले में शोभायमान आभूषणों (हारों) की शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ? चारों ओर तेज ही तेज (नूरमयी) दिखायी पड़ रहा है, जिसमें आभूषणों का नूरी तेज मिल रहा है। धरती और आकाश के बीच का एक-एक कण नूरी तेज से जगमगा रहा है।

भावार्थ- परमधाम में धरती और आकाश तो नूरी हैं ही, श्री राज जी के अंग-अंग से भी अपार नूरमयी तेज फैल रहा है। उस तेज में गले के आभूषणों से निकलने वाला तेज मिल रहा है। इस चौपाई के दूसरे चरण में यही बात दशायीं गयी है।

हार कई जवेरन के, कहूं केते तिनके रंग।

कई लेहेरें माहें उठत, ए तो अर्स अजीम के नंग॥५७॥

श्री राजश्यामा जी के गले में जवाहरातों (हीरा, माणिक, मोती, नीलम, लहसुनिया इत्यादि) के कई हार हैं। मैं उनके कितने रंगों का वर्णन करूँ? परमधाम के इन नगों से नूरमयी ज्योति की लहरें उठती रहती हैं।

एक एक नंगमें कई रंग, रंग रंग में तरंग अपार।

तरंग तरंग किरने कई, हर किरने रंग न सुमार॥५८॥

एक-एक नग में कई प्रकार के रंग हैं। एक-एक रंग से प्रकाश की अनन्त तरंगें निकलती हैं। एक-एक तरंग से कई किरणें निकलती हैं और प्रत्येक किरण से इतने रंग निकलते हैं कि उनकी कोई सीमा ही नहीं है।

जामें चादर जुड़ रही, ढांपत नहीं झलकार।

गिनती जोत क्यों कर होए, नंग तेज ना रंग पार॥५९॥

श्री राज जी ने अपने जामे के ऊपर आसमानी रंग की चादर ओढ़ रखी है, फिर भी जामे की ज्योति की झलकार ढक नहीं पा रही है। जामे की ज्योति का माप कैसे किया जा सकता है, जब उसमें जड़े हुए नंगों के तेज और उनके रंगों की कोई सीमा ही नहीं है।

ए रंग जोत किन विध कहूं, जो ले देखो अर्स सहूर।

सोभा रंग सलूकी सुख, देखो रूह की आंखों जहूर॥६०॥

हे साथ जी! यदि आप परमधाम का चिन्तन करके देखें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि वहाँ के रंगों की ज्योति की शोभा का वर्णन कर पाना बहुत ही कठिन है। मैं उसका वर्णन कैसे करूँ? आप अपने आत्मिक चक्षुओं को

खोलकर परमधाम के रंगों की शोभा, सुन्दरता, तथा उससे मिलने वाले सुख का अनुभव कीजिए।

भूखन हक श्रवन के, और हक कण्ठ कई हार।

सोई कण्ठ श्रवन रूह के, साज खड़े सिनगार॥६१॥

जब आत्मा धनी के कानों के आभूषणों तथा गले में लटकते हुए हारों की शोभा को देखती है, तो उसे अपने गले एवं कानों के आभूषण भी सजे हुए दिखायी देने लगते हैं।

सोभा जुगल किसोर की, दोऊ होत बराबर।

जो हिरदे सो बाहेर, दोऊ खड़े होत सरभर॥६२॥

युगल किशोर की शोभा पूर्णतया समान है। आत्मा के धाम हृदय में जो शोभा दिखायी देती है, वही शोभा मूल

मिलावा में भी विराजमान है। दोनों की शोभा पूर्णतया समान है, रंचमात्र भी कोई अन्तर नहीं है।

बाजूबंध और पोहोंचियां, कड़े जवेर कंचन।

नंग रंग नाम केते कहूं, कही जाए न जरा रोसन॥६३॥

बाजूबन्द, पहुँची, और कड़े कञ्चन (शुद्ध स्वर्ण) के हैं, जिनमें तरह-तरह के नग जड़े हुए हैं। इन आभूषणों में जड़े हुए नगों के कितने रंगों और नामों का वर्णन करूँ ? इनके तो एक कण की ज्योति का वर्णन भी नहीं किया जा सकता।

मुंदरियां दसों अंगुरियों, एक छोटी की न केहेवाए जोत।

अर्स जिमी आकास में, हो जात सबे उद्धोत॥६४॥

श्री राज जी की दसों अँगुलियों में मुद्रिकायें हैं। इनमें से

एक छोटी सी अँगुली में आयी हुई मुद्रिका (अँगूठी) में भी इतनी ज्योति है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। इन मुद्रिकाओं से निकलने वाली ज्योति परमधाम में धरती से लेकर आकाश तक फैली हुई है।

हक के भूखन की क्यों कहूं, रंग नंग जोत सलूक।

आतम उठ खड़ी तब होवहीं, पेहेले जीव होए भूक भूक॥६५॥

श्री राज जी के आभूषणों में जड़े हुए नगों के रंगों तथा उनसे निकलने वाली ज्योति की सुन्दरता का वर्णन कैसे करूँ? इनकी शोभा को अपने हृदय में बसाकर आत्मा जाग्रत हो जाती है, किन्तु इसके पहले जीव अपने को पूर्ण रूप से न्योछावर कर देता है।

भावार्थ— इस चौपाई के चौथे चरण में "भूक भूक" शब्द का प्रयोग है, जिसका अर्थ होता है— स्वयं को टुकड़े—

टुकड़े कर देना। इस अवस्था की प्राप्ति के लिये जीव को धाम धनी के विरह-प्रेम में डूबकर "मैं" के बन्धन को तोड़ना होता है और धनी पर स्वयं को न्योछावर करना होता है। जब तक जीव इस लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाता, तब तक पूर्ण आत्म-जाग्रति नहीं हो पाती।

रूह भूखन हाथ के, हक भेले होत तैयार।

ए सोभा जुगल किसोर की, जुबां केहे न सके सुमार॥६६॥

आत्मा के धाम हृदय में जब श्री राज जी के हाथों के आभूषण बस जाते हैं (सज जाते हैं), तो उसी पल (साथ ही) आत्मा के हाथों के आभूषण भी दिखायी देने लगते हैं। युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी की शोभा अनुपम है। उसे सीमाबद्ध कर कहने का सामर्थ्य इस जिह्वा में नहीं है।

चारों जोड़े चरन भूखन, रंग चारों में उठें हजार।

ए बरनन जुबां तो करे, जो कछुए होए निरवार॥६७॥

श्री राज जी के दोनों चरणों में चार –चार (झांझरी घुंघरी, कांबी, कड़ला) आभूषण आये हैं। चार प्रकार के आभूषणों से हजारों तरह के रंग निकलते हैं। यदि इनकी शोभा की कोई सीमा हो, तब तो जिह्वा से कुछ वर्णन भी किया जाये।

वस्तर भूखन हक के, आए हिरदे ज्यों कर।

त्यों सोभा सहित आत्मा, उठ खड़ी हुई बराबर॥६८॥

श्री राज जी के वस्त्रों और आभूषणों की शोभा जैसे ही आत्मा के धाम हृदय में बस जाती है, वैसे ही उसी समय आत्मा भी अपने वस्त्रों एवं आभूषणों से सजकर प्रियतम के समक्ष जाग्रत हो जाती है।

सुपने सूरत पूरन, रूह हिरदे आई सुभान।

तब निज सूरत रूह की, उठ बैठी परवान॥६९॥

इस स्वप्न के तन में बैठी आत्मा के धाम हृदय में जब धाम धनी के मुखारविन्द की पूर्ण शोभा विराजमान हो जाती है, तो निश्चित रूप से आत्मा का मुखारविन्द भी पूर्ण रूप से जाग्रत हो जाता है।

जब पूरन सरूप हक का, आए बैठा माहें दिल।

तब सोई अंग आतम के, उठ खड़े सब मिल॥७०॥

जब श्री राज जी का नख से शिख तक का पूर्ण स्वरूप आत्मा के धाम हृदय में विराजमान हो जाता है, तब आत्मा भी अपने सभी अंगों सहित जाग्रत हो जाती है।

वस्तर भूखन सब अंगों, कण्ठ श्रवन हाथ पाए।

नख सिख सिनगार साज के, बैठे अर्स दिल में आए॥७१॥

आत्म-जाग्रति की यही पहचान है कि उसके धाम हृदय में श्री राज जी अपने नख से सिख तक के सम्पूर्ण श्रृंगार सहित विराजमान हो जाते हैं। श्री राज जी के कण्ठ, श्रवण, हाथ, पैर, आदि सभी अंगों में जो भी वस्त्र एवं आभूषण हैं, उन सबकी शोभा आत्मा के धाम हृदय में आ जाती है।

जब बैठे हक दिल में, तब रूह खड़ी हुई जान।

हक आए दिल अर्स में, रूह जागे के एही निसान॥७२॥

जब आत्मा के धाम हृदय में श्री राज जी का सम्पूर्ण स्वरूप विराजमान हो जाता है, तब यह जान लेना चाहिए कि आत्मा जाग्रत हो गयी है। आत्मा के जाग्रत

होने की यही स्पष्ट पहचान है।

द्रष्टव्य- इस चौपाई के पहले तथा तीसरे चरण का एक ही भाव है।

हक के दिल का इस्क, रूह पैठ देखे दिल माहें।

तो हक इस्क सागर से, रूह निकस न सके क्याहें॥७३॥

आत्मा जब अपने धाम हृदय में विराजमान अक्षरातीत के दिल में प्रवेश करती है, तो उनके हृदय में लहराने वाले प्रेम (इश्क) के अनन्त सागर को देखती है। उस प्रेम के सागर में वह इतना डूब जाती है कि चाहकर भी किसी प्रकार उससे निकल नहीं पाती।

भावार्थ- जिस प्रकार संसार में पिण्ड (मानव तन) के अन्दर सूक्ष्म रूप से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का अस्तित्व माना जाता है तथा एक अणु के अन्दर भी सौरमण्डल का

सिद्धान्त कार्य करता है, उसी प्रकार आत्मा के धाम हृदय में ही युगल स्वरूप सहित सम्पूर्ण परमधाम का वास होता है। परमधाम में जिस प्रेम और आनन्द के अनन्त सागर में वह क्रीड़ा करती है, नश्वर जगत में भी अपने धाम हृदय में वह उसकी अनुभूति कर लेती है। परमधाम में तो वह इन सागरों को माप नहीं सकती, किन्तु इस खेल में उसे यह सौभाग्य प्राप्त है कि उन सागरों का रसास्वादन करने के साथ-साथ उनका माप भी कर सकती है। श्रृंगार २०/१०९,११८ में यह बात इस प्रकार दर्शायी गयी है—

और इस्क माहें रुहन, हकें अर्स कह्यो जाको दिल।
 हकें दिल दे रुहों दिल लिया, यों एक हुए हिल मिल॥
 दुनियां चौदे तबकों, किन निरने करी न सूरत हक।
 तिन हक के दिल में पैठ के, करुं जाहेर हक इस्क॥

जो हक करें मेहेरबानगी, तो इन विध होए हुकम।

एता बल रूह तब करे, जब उठाया चाहें खसम॥७४॥

जब धाम धनी मेहेर करते हैं, तभी इस प्रकार का हुक्म होता है अर्थात् आत्मा धनी के हृदय में उमड़ने वाले प्रेम (इश्क) के सागर का अनुभव करती है। जब धाम धनी किसी आत्मा को जाग्रत करना चाहते हैं, तभी आत्मा इस प्रकार का बल करती है अर्थात् शक्ति लगाती है (प्रयास करती है)।

महामत हुकमें केहेत हैं, जो होवे अर्स अरवाए।

रूह जागे का एह उद्धम, तो ले हुकम सिर चढ़ाए॥७५॥

श्री राज जी के आदेश से श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! आपमें जो भी परमधाम की आत्मा हो, वह धनी के इस आदेश को शिरोधार्य करे कि आत्म-जाग्रति

के लिये धनी की सम्पूर्ण शोभा को अपने दिल में बसाये।
आत्मा को जाग्रत करने का एकमात्र यही उपाय है।

भावार्थ- इस सम्पूर्ण प्रकरण में युगल स्वरूप की शोभा को अपने धाम हृदय में बसाने का निर्देश दिया गया है। यह निर्देश स्वयं धाम धनी की ओर से है, जैसा कि इस प्रकरण की अन्तिम चौपाई में कहा भी गया है। इस प्रकार यह निर्विवाद सिद्ध है कि चितवनि ही आत्म – जाग्रति का एकमात्र साधन है। इससे विमुख होना अक्षरातीत के आदेश का स्पष्ट उल्लंघन है।

प्रकरण ॥४॥ चौपाई ॥२७६॥

चरन को अंग तिनमें नख अंग

इस प्रकरण में श्री राज जी के चरणों की अँगुलियों एवं नखों की शोभा का वर्णन किया गया है।

सखीरी तेज भरयो आकास लों, नख जोत निकसी चीर।

ज्यों सागर छेद के आवत, नेहेर निरमल का नीर॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों को सम्बोधित करते हुए कह रही है कि प्रियतम के चरण कमलों से निकलने वाला तेज आकाश में फैल रहा है। उनके नखों से निकलने वाली नूरमयी ज्योति नूरी आकाश को चीरती हुई इस प्रकार आगे बढ़ रही है, जैसे अथाह सागर को चीरती हुई अति स्वच्छ जल की कोई नहर बहती जा रही हो।

द्रष्टव्य— इस चौपाई में "सखी" शब्द का सम्बोधन

ब्रह्मसृष्टियों के लिये कहा गया है।

रंग केते कहूं चरन के, आवें न माहें सुमार।

याही वास्ते खेल देखाइया, रूह देखसी देखनहार॥२॥

धनी के चरणों की सुन्दरता का मैं कैसे वर्णन करूँ , उसकी तो कोई सीमा ही नहीं है। माया का यह खेल तो इसलिये दिखाया गया है, ताकि परमधाम की आत्मायें इस नश्वर जगत में भी प्रियतम के चरणों की पूर्ण पहचान कर सकें। इस खेल को द्रष्टा होकर मात्र वे आत्मायें ही देखेंगी क्योंकि वे ही इसके योग्य हैं।

भावार्थ- वस्तुतः धनी के चरण कमल ब्रह्मसृष्टियों के जीवन के आधार हैं। इन चरणों से उनका अखण्ड सम्बन्ध (निस्बत) है। परमधाम में निस्बत की मारिफत (पूर्ण सम्बन्ध) का बोध नहीं था। "मैं धनी की अर्धांगिनी

हूँ" की पहचान तो निस्बत की हकीकत (सम्बन्ध की सत्यता) की पहचान है, किन्तु "मेरा यह रूप-स्वरूप अक्षरातीत के हृदय का ही प्रकट (व्यक्त) स्वरूप है" यह बोध हो जाना पूर्ण सम्बन्ध (निस्बत की मारिफत) की पहचान है। इसकी पहचान इस जागनी ब्रह्माण्ड में हुई है और इसी लिये यह मायावी खेल बनाया गया है। सागर ग्रन्थ ६/११ में यह बात इस प्रकार कही गयी है—

ए चरन निमख न छोड़िए, राखिए माहें नैनन।

ए निसबत हक अर्स की, मेरी जीव के एही जीवन॥

प्यारे पाऊं मेरे पिउ के, देख नख अंगूठे अंगुरियों।

सो बैठे बीच दिल तखत के, तो अर्स कहा मेरे दिल को॥३॥

मेरे प्राणवल्लभ अक्षरातीत के चरण कमल मुझे बहुत ही प्यारे हैं। हे मेरी आत्मा! तू उनके अँगूठों, अँगुलियों के

नखों को देख। मेरे हृदय को तो धाम इसलिये कहा गया है कि धाम धनी स्वयं मेरे हृदय रूपी सिंहासन पर आकर विराजमान हो गये हैं।

दो अँगूठे आठ अंगुरी, नख सोभित तिन पर।

नख लगते सिर अंगुरी, ए जोत कहूं क्यों कर॥४॥

श्री राज जी के दोनों चरणों में दो अँगूठे तथा आठ अँगुलियां हैं। इनमें नाखून शोभायमान हो रहे हैं। सभी नख अँगुलियों के सिरे पर शोभा दे रहे हैं। इनकी अलौकिक ज्योति का मैं कैसे वर्णन करूँ।

चरन अँगूठे पतले, और पतली अंगुरियां।

लाल रंग माहें सोभित, अतंत उज्जलियां॥५॥

चरण कमल के अँगूठे तथा अँगुलियां पतली हैं। इनका

रंग अनन्त उज्ज्वलता में लालिमा लिये हुए शोभा वाला है।

देखूँ एक एक अंगुरी, आठों अंगुरी दोऊ पाए।

कोमल सलूकी मिल रही, ए छब फब कही न जाए॥६॥

अब मैं धनी के चरणों की एक-एक अँगुली को देख रही हूँ। दोनों चरणों में कुल आठ अँगुलियां आयी हैं। सभी अँगुलियां अत्यधिक कोमलता और अनन्त सौन्दर्य से भरपूर हैं। इनकी छवि इतनी आकर्षक है कि उसका वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है।

दोऊ पांउं बड़ी दो अंगुरी, अंगूठों बराबर।

तिन थें तीन उतरती, लगती कोमल सुन्दर॥७॥

दोनों चरणों के अँगूठों के पास वाली एक-एक, कुल दो

अँगुलियां बड़ी-बड़ी हैं। उनके बाद की तीनों अँगुलियां क्रमशः छोटी होती गयी हैं। सभी अँगुलियां बहुत ही कोमल और सुन्दर लग रही हैं।

भावार्थ- इस चौपाई के पहले चरण में कथित "दो अंगुरी" का तात्पर्य दोनों पैरों की एक-एक अँगुली से है।

झलकत नूर बराबर, ऊपर अंगुरियों नख।

सोभा सलूकी नख जोत की, जुबां केहे न सके इन मुख॥८॥

सभी अँगुलियों के नखों से समान रूप में नूर झलक रहा है। नखों से निकलने वाली ज्योति की शोभा - सुन्दरता का वर्णन इस मुख से नहीं हो सकता।

अतंत जोत नखन की, ताको क्यों कर कहूं प्रकास।

केहे केहे मुख एता कहे, जोत पोहोंची जाए आकास॥९॥

नखों में अनन्त ज्योति जगमगा रही है। उनके प्रकाश का मैं कैसे वर्णन करूँ। इस मुख से तो उसका मात्र इतना ही वर्णन हो सकता है कि नखों की ज्योति आकाश में फैल रही है।

जो सुंदरता अंगुरियों, और सुंदरता नख जोत।

ए सोभा न आवे सब्द में, केहे केहे कहूं उद्घोत॥१०॥

अँगुलियों में और नखों की ज्योति में अनन्त सौन्दर्य भरा हुआ है, जिसका वर्णन यहाँ के शब्दों में हो पाना सम्भव नहीं है। बोध के लिये मैं उसे बारम्बार प्रकाश के रूप में ही कह पा रही हूँ।

तेज जोत कछू और है, सोभा सुन्दरता कछू और।

पर ए अंग नूरजमाल के, याको नहीं निमूना ठौर॥११॥

श्री राज जी के अँगूठों, अँगुलियों, तथा नखों का तेज, ज्योति, शोभा, और सुन्दरता इस संसार से अलग प्रकार के हैं। अक्षरातीत के ये नूरी अंग हैं जिनकी सुन्दरता की उपमा किसी से भी नहीं दी जा सकती।

भावार्थ— पवन में वायु, यश में कीर्ति, अहंकार में अस्मिता, और सौन्दर्य में शोभा का जो स्वरूप होता है, वही स्वरूप तेज में ज्योति का होता है।

जोत में एकै रोसनी, सोभा सुन्दर गुन अनेक।

सोभा रंग रोसन नरमाई, रस मीठे कई विवेक॥१२॥

इस नूरी ज्योति में एक समान उज्ज्वलता है। इसमें शोभा, सुन्दरता आदि अनेक गुण छिपे हुए हैं। धनी के इन अंगों में शोभा, सौन्दर्य, उज्ज्वलता, कोमलता, तथा माधुर्य प्रेम के कई रस छिपे हुए हैं।

द्रष्टव्य- इस चौपाई में "रंग" शब्द का तात्पर्य रंगों (colors) से नहीं है, बल्कि सौन्दर्य से है। इसी प्रकार "रोसनी" का भाव उज्ज्वलता से है। यह फारसी भाषा का शब्द है।

सोभा माहें सलूकियां, और खुसबोई सुखदाए।

सुख प्रेम कई खुसालियां, इन जुबां कही न जाए॥१३॥

श्री राज जी के इन अंगों की शोभा में अनेक प्रकार की सुन्दरता तथा आनन्द देने वाली सुगन्धि छिपी हुई है। इनमें प्रेम और आनन्द की अनेक प्रकार की हर्षित करने वाली विशेषतायें भी विद्यमान हैं, जिनका वर्णन इस जिह्वा से हो पाना सम्भव नहीं है।

अर्स बातें सुख बारीक, सुपन बानी न आवे सोए।

कछुक जाने रूह अर्स की, जो बेसक जागी होए॥१४॥

परमधाम के आनन्द की बातें बहुत ही सूक्ष्म हैं, जिन्हें स्वप्न की वाणी (शब्दों) से व्यक्त नहीं किया जा सकता। केवल परमधाम की आत्मायें ही इसके विषय में कुछ जान पाती हैं, जो निश्चित रूप से जाग्रत हो गयी होती हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में वाणी का तात्पर्य श्रीमुखवाणी (तारतम वाणी) से नहीं है, बल्कि नश्वर जगत के शब्दों से है। यद्यपि श्रीमुखवाणी भी नश्वर जगत् के ही शब्दों में कही गयी है, किन्तु स्वयं अक्षरातीत के आवेश स्वरूप ने कही है, इसलिये इसे स्वप्न की वाणी नहीं कहा जा सकता।

महामत कहे हक हुकमें, ऐसा सुख ना दूजा कोए।

पांउं मासूक के आसिक, पिए रस धोए धोए॥१५॥

अब श्री राज जी के आदेश से श्री महामति जी कहते हैं कि प्रियतम अक्षरातीत के प्रेम में डूबी रहने वाली आत्मायें अपने धनी के चरणों को धो-धोकर पीती हैं, अर्थात् उन्हें अपने धाम हृदय में बसाये रखती हैं। इससे बढ़कर और कोई भी आनन्द नहीं है।

भावार्थ- इस चौपाई में धनी के चरणों को लौकिक जल से धोने का प्रसंग नहीं है, बल्कि प्रेम ही वह जल है जिसके द्वारा ब्रह्मसृष्टियाँ धनी के चरणों के ध्यान (चितवनि) में डूब जाती हैं। इस चौपाई का यह कथन भी प्रेममयी चितवनि की महत्ता को दर्शा रहा है।

प्रकरण ॥५॥ चौपाई ॥२९१॥

चरन हक मासूक के उपली सोभा

श्री राज जी के चरणों की बाहरी शोभा

इस प्रकरण में श्री राज जी के चरणों की शोभा का वर्णन किया गया है।

फेर फेर चरन को निरखिए, रूह को एही लागी रट।

हक कदम हिरदे आए, तब खुल गए अन्तर पट॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी ! मेरी आत्मा आपसे इसी बात की रट लगा रही है कि धनी के चरणों को बारम्बार देखिए। यदि श्री राज जी के चरण कमल आपके धाम हृदय में बस जायेंगे, तो आपके और धाम धनी के बीच का पर्दा हट जायेगा।

भावार्थ- "अन्तर" का अर्थ भेद होता है। "अन्तर पट" का अभिप्राय है- माया का वह पर्दा जिसके कारण

आत्मा अपने धाम धनी को नहीं देख पाती है।

गुन केते कहूं इन चरन के, आवें न माहें सुमार।

याही वास्ते खेल देखाइया, रूह देखसी देखनहार॥२॥

मैं धाम धनी के इन चरणों के गुणों का कितना वर्णन करूँ, इनकी कोई सीमा ही नहीं है। इन चरणों से आत्माओं का जो मूल सम्बन्ध है, उसकी पूर्ण पहचान देने के लिये ही यह माया का खेल दिखाया गया है। इस खेल को द्रष्टा होकर मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही देख सकेंगी।

बरनन करत हों चरन की, अर्स सूरत हक जात।

ए नेक कहूं हक हुकमें, सोभा सब्द न इत समात॥३॥

अब मैं परमधाम में विराजमान श्रीराजश्यामा जी तथा सखियों के चरण कमलों की शोभा का वर्णन करती हूँ।

धाम धनी के आदेश से मैं थोड़ी सी शोभा को ही व्यक्त कर पा रही हूँ क्योंकि उनकी शोभा शब्दों की परिधि में नहीं आती।

कदम तली अति उज्जल, निपट नरम रंग लाल।

रुहें आसिक इन मासूक की, ए कदम छोड़ें ना नूरजमाल॥४॥

श्री राज जी के चरणों की तलियाँ बहुत अधिक उज्ज्वल हैं। इनका रंग लाल है और ये अति कोमल हैं। धनी के प्रेम में डूबी रहने वाली ब्रह्मसृष्टियाँ अपने प्रियतम के चरण कमल को कभी नहीं छोड़ती हैं।

कही सुछम सूरत अमरद की, ए कदम भी तिन माफक।

रस रंग सोभा सलूकी, देख अर्स सहूरें हक॥५॥

श्री राज जी का स्वरूप त्रिगुणातीत और किशोर

अवस्था वाला कहा गया है। धनी के चरण कमल भी इसी के अनुकूल हैं। हे मेरी आत्मा! तू परमधाम के चिन्तन में डूबकर धनी के इन चरण कमलों को देख, जो अनन्त प्रेम, आनन्द, शोभा, और सुन्दरता से भरपूर हैं।

भावार्थ- इस चौपाई के पहले चरण में "सुछम" (सूक्ष्म) शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका तात्पर्य त्रिगुणातीत से है। इसी प्रकार रस और रंग शब्द का प्रयोग भी प्रेम तथा आनन्द के लिये किया गया है।

लांक सलूकी दोऊ कदम की, लाल एड़ी निपट नरम।

गौर रंग रस भरे, जुबां क्या कहे सिफत कदम॥६॥

दोनों चरणों की तली की गहराई अति सुन्दर है। लाल रंग की एड़ियाँ बहुत ही कोमल हैं। ये चरण कमल अति गौर वर्ण के हैं तथा इनमें आनन्द और प्रेम का रस भरा

हुआ है। इन चरणों की महिमा का वर्णन इस जिह्वा से कदापि सम्भव नहीं है।

सलूकी कदम तलीय की, ऊपर सलूकी और।

छब हक कदम की क्यों कहूं, ए जो जुबां इन ठौर॥७॥

चरण कमलों की तली (तलुओं) की सुन्दरता अलग प्रकार की है तथा उसके ऊपरी भाग वाले पञ्जों की शोभा अलग प्रकार की है। इस नश्वर जगत की जिह्वा से धनी के चरणों की शोभा का भला मैं कैसे वर्णन करूँ।

हक हादी रूहें निसबत, ए अर्स की वाहेदत।

जो रूह होवे अर्स की, सो क्यों छोड़ें ए न्यामत॥८॥

परमधाम की एकदिली (एकत्व) में युगल स्वरूप के चरणों से ब्रह्मसृष्टियों का अखण्ड सम्बन्ध है। जो

परमधाम की आत्मा होगी, वह इस अनमोल निधि को कभी नहीं छोड़ेगी अर्थात् कभी भी धनी के चरणों से अलग नहीं होगी।

ए कदम ताले मोमिन के, लिखी जो निसबत।

तो आठों जाम रूह अटकी, बीच अर्स खिलवत॥९॥

धनी के चरण कमलों को पाना ब्रह्मसृष्टियों के ही सौभाग्य में है क्योंकि श्री राज जी से इन्हीं का मूल सम्बन्ध है। यही कारण है कि अष्ट प्रहर (आठों पहर) आत्मा की दृष्टि परमधाम के मूल मिलावा में ही बनी रहती है।

भावार्थ— एक बार भी जिसके धाम हृदय में मूल मिलावा की छवि बस जाती है, वह अखण्ड रूप से आत्मा के हृदय में बनी रहती है। भले ही जीव शयन,

भोजन, या अन्य क्रियाओं में धनी को भूल जाये, किन्तु आत्मा नहीं भूलती। अष्ट प्रहर का कथन इसी सन्दर्भ में है।

लग रहे हक कदम को, सोई रूह अर्स की।

ए रस अमृत अर्स का, कोई और न सके पी॥१०॥

परमधाम की आत्मा कहलाने की शोभा उन्हीं को मिलती है, जो धनी के चरणों से हमेशा जुड़े रहते हैं। परमधाम के प्रेम रूपी अमृत की इस रसधारा का पान मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही करती हैं।

जो कोई अरवा अर्स की, हक कदम तिन जीवन।

सो जीव जीवन बिना क्यों रहे, जाके असल अर्स में तन॥११॥

जो भी परमधाम की ब्रह्मसृष्टि होती है, उसके लिये धनी

के चरण कमल ही जीवन के आधार होते हैं। जिन आत्माओं के मूल तन (परात्म) परमधाम में हैं, उनके जीव भी अपने जीवन के आधार स्वरूप इन चरणों के बिना कैसे रह सकते हैं।

हकें अर्स कहा अपना, जो अर्स दिल मोमिन।

सो मोमिन उतरे अर्स से, है असल निसबत तिन॥१२॥

श्री राज जी ने ब्रह्ममुनियों के धाम हृदय को ही अपना धाम कहा है। ये ब्रह्ममुनि परमधाम से उतरे हैं और धनी के चरणों से इनका ही मूल सम्बन्ध है।

ए जो मोमिन उतरे अर्स से, अर्स कहा दिल जिन।

हक कदम हमेसा अर्स में, ए कदम छोड़े ना मोमिन॥१३॥

ये ब्रह्ममुनि जो परमधाम से उतरे हैं, इनके दिल (हृदय)

को ही धाम कहा गया है। प्रियतम अक्षरातीत के चरण कमल हमेशा ही इनके धाम हृदय में वास करते हैं। धनी के चरणों को ये ब्रह्ममुनि कभी भी छोड़ते नहीं हैं।

हकें तो कहा अर्स दिल को, जो इनों असल अर्स में तन।
हक कदम छूटे दिल से, ताए क्यों कहिए मोमिन॥१४॥

इन ब्रह्ममुनियों के मूल तन परमधाम में है, इसलिये धाम धनी ने इनके हृदय को ही अपना धाम कहा है। जिनके हृदय में धाम धनी के चरण ही न आ सकें, उन्हें ब्रह्ममुनि कहलाने का क्या अधिकार है।

भावार्थ- परात्म के तन धनी के ही तन हैं। "तुम रूहें मेरे तन हो" का कथन यही सिद्ध करता है। उनके हृदय में श्री राज जी का निवास है। आत्मा का स्वरूप परात्म का प्रतिबिम्ब है, इसलिये उसके धाम हृदय में अक्षरातीत

का वास होना अनिवार्य है। इसे श्रृंगार ग्रन्थ २१/८१ में इस प्रकार कहा है—

सिफत ऐसी कही मोमिनों, जाके अक्स का दिल अर्स।
हक सुपने में भी संग कहे, रूहें इन विध अरस परस॥

हक कदम मोमिन दिल में, और कदम रूह हिरदे।

ए कदम नैन पुतली मिने, और रूह फिरत सिर पर ले॥१५॥

धनी के चरण कमल आत्मा के धाम हृदय में हैं। इसी प्रकार वे परात्म के भी धाम हृदय में अखण्ड रूप से विराजमान हैं। परात्म रूपी नैन की पुतली आत्मा है, जिसके हृदय में जब धनी के चरण कमल बस जाते हैं, तब वह उन्हें सिर-आँखों पर बिठाकर घूमा करती है अर्थात् उनके आदेश को सर्वोपरि मानते हुए समर्पित रहती है।

भावार्थ- "सिर पर बिठाना" या "आँखों में बसाना " मुहावरे हैं जिनका अर्थ होता है – बहुत सम्मानपूर्वक व्यवहार करना या प्रेमपूर्वक हृदय में धारण करना। सिर पर धारण करना या सिर झुकाना जहाँ दूसरों के प्रति सम्मान का द्योतक है, वहीं आँखों में बसाना प्रेम का परिचायक है। हृदय का प्रेम आँखों से प्रकट होता है, इसलिये आँखों में बसाने का कथन किया जाता है। अत्यधिक प्रेम की गहराई में आँखों की पुतली तथा उसके अन्दर तारे में भी प्रियतम को बसाने की बात आती है। इस चौपाई में यही तथ्य दर्शाया गया है।

हकें बैठक कही अपनी, दिल मोमिन का जे।

जिन दिल हक आए नहीं, सो दिल मोमिन कहिए क्यों ए॥१६॥

धाम धनी ने ब्रह्ममुनियों के हृदय को अपना निवास

स्थान माना है। जिस दिल में प्राणवल्लभ अक्षरातीत की शोभा नहीं बस सकती, उसे ब्रह्ममुनि का दिल कैसे कहा जा सकता है। कदापि नहीं।

भावार्थ- युगल स्वरूप के अंग-अंग की शोभा को अपने हृदय में बसाना ही तो चितवनि है। जो सुन्दरसाथ ऐसा नहीं करते हैं, उन्हीं के लिये इस चौपाई में धाम धनी की ओर से इतना कठोर निर्देश है कि उन्हें स्वयं को ब्रह्ममुनि, आत्मा, या सुन्दरसाथ कहलाने का कोई भी नैतिक आधार (अधिकार) नहीं है।

आसमान जिमी के लोक का, सब्द छोड़े ना सुरिया को।

बिन मोमिन सब दुनियां, खात गोते फना मों॥१७॥

पृथ्वी और आकाश में रहने वाले सभी लोकों के प्राणी ज्योति स्वरूप (आदिनारायण, सुरैया सितारा) को ही

परमात्मा का स्वरूप मानते हैं। ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त संसार के अन्य सभी जीव इस नश्वर जगत् (क्षर) में भटकते रहते हैं। वे परब्रह्म के अखण्ड धाम एवं स्वरूप के बारे में कुछ भी नहीं जानते।

भावार्थ— हिन्दू धर्मग्रन्थों में जिसे महाविष्णु , आदिनारायण, हिरण्यगर्भ, और प्रणव कहा गया है, उसे ही कतेब ग्रन्थों (कुरआन-हदीसों) में सुरैया सितारा (ज्योति स्वरूप) कहा गया है। वस्तुतः वेद, उपनिषद, तथा दर्शन ग्रन्थों में ब्रह्म का वाचक नाम "ॐ" कहा गया है—

ओऽम् इति एतत् सर्वम् तस्य व्याख्यानम्। माण्डूक्य.

ओऽम् क्रतो स्मर। यजु. ४०/१५

तस्य वाचकः प्रणवः। योग दर्शन १/२७

तत् ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये। ओऽम् इति एतत्।

कठो. २/१५

यद्यपि अक्षर ब्रह्म के मन स्वरूप अव्याकृत (अव्यक्त ब्रह्म) को ॐ से सम्बोधित किया जाता है। अतः उनके स्वाप्टनलक स्वरूप आढलनारायण को भी उसी नाम (ॐ) से सम्बोधलत कलया जाता है। माहेश्वर तन्त्र २०/२७ में इस प्रकार कहा गया है कल "तस्मात् नारायणो जज्ञे स एव प्रणवाभलधः" अर्थात् मोहसागर में प्रतिबलम्बलत होने वाला अक्षर ब्रह्म का मन आढलनारायण या प्रणव कहलाता है। हलरण्यगर्भ, ज्योतल स्वरूप, या सुरैया सलतारा एकार्थवाची शब्द हैं। इस नश्वर जगत् के लोग प्रकृति से परे उस स्वलीला अद्वैत के बारे में नहीं जान पाते।

सुरिया पर ला मकान है, तिन पर नूर अर्स।

अर्स पर अर्स अजीम, पोहोंचें मोमिन इत सरस॥१८॥

ज्योति स्वरूप से परे निराकार का मण्डल है। उससे परे अक्षर धाम है और अक्षरधाम से भी परे परमधाम है। इस आनन्दमयी धाम में ही ब्रह्मसृष्टियों का मूल निवास है और वे एकमात्र यहीं का ध्यान करते हैं।

अर्स दिल मोमिन तो कहा, अर्स बका सुध मोमिनो में।

चौदे तबकों गम नहीं, मोमिन आए हक कदमों से॥१९॥

ब्रह्मसृष्टियों के हृदय को परमधाम इसलिये कहते हैं क्योंकि इन्हें अखण्ड परमधाम का वास्तविक ज्ञान होता है। माया से परे परमधाम में अक्षरातीत का अखण्ड स्वरूप विराजमान है, जहाँ से ब्रह्ममुनि इस नश्वर जगत् में आये हैं। उस अद्वैत परमधाम का ज्ञान चौदह लोक के

इस ब्रह्माण्ड में किसी भी प्राणी को नहीं है।

सोई कहिए मोमिन, जिन दिल हक अर्स।

सो ना मोमिन जिन ना पिया, हक सुराही का रस॥२०॥

ब्रह्ममुनि (मोमिन) तो एकमात्र उसी को कहा जाता है, जिसका हृदय अक्षरातीत का धाम बन गया है। जिसने अक्षरातीत के हृदय में उमड़ने वाले प्रेम की रसधारा का पान नहीं किया है, उसे ब्रह्ममुनि कहलाने का कोई अधिकार नहीं है।

हकें दिल को अर्स तो कहा, करने मोमिन पेहेचान।

कहे मोमिन उतरे अर्स से, तन अर्स एही निसान॥२१॥

संसार को ब्रह्मसृष्टियों की पहचान देने के लिये ही धाम धनी ने इनके हृदय को अपना धाम कहा है। इन्हें

परमधाम से आया हुआ भी कहा गया है। इनकी स्पष्ट पहचान यही है कि इनके मूल तन परमधाम में विद्यमान हैं।

रूहें उतरी अपने तनसे, और कहा उतरे अर्स से।

तन दिल अर्स एक किए, हकें कदम धरे दिलमें॥२२॥

आत्मायें अपने मूल तन परात्म से आयी हैं, इसलिये इन्हें परमधाम से आया हुआ कहा गया है। धाम धनी जिसके दिल में अपने चरण कमल रख देते हैं, वह धाम बन जाता है। इस प्रकार परात्म के तन और आत्मा के दिल में एकरूपता हो जाती है।

भावार्थ— परमधाम में परात्म का तन, उसका हृदय, और परमधाम तीनों एक ही स्वरूप हैं। इस संसार में भी जब आत्मा के धाम हृदय में अक्षरातीत बस जाते हैं, तो

परमधाम जैसी स्थिति हो जाती है अर्थात् तन, हृदय, और धाम एक हो जाते हैं। यद्यपि यहाँ का तन परमधाम की तरह नूरमयी नहीं होता, फिर भी उसमें श्री राज जी के विराजमान हो जाने से उस तन को भी धाम धनी का ही तन कहा जाता है।

यही कारण है कि बीतक साहिब में श्री प्राणनाथ जी को चार बार "अक्षरातीत", बाइस बार "हक", एवं दौ सौ छब्बीस बार "राज" कहा गया है। यह शोभा मात्र सदगुरु धनी श्री देवचन्द्र जी और श्री महामति जी के लिये है, अन्य के लिये नहीं। अन्य आत्माओं के दिल और परात्म के तन या हृदय से मात्र एकरूपता हो जाती है। श्री बीतक साहिब में सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी श्री मिहिरराज जी से कहते हैं कि—

जो मुझे देखे धनी धाम का, तो पलक न फेरे नैन।

रात दिन दे प्रदक्षिना, मुख न निकसे बैन॥

बी. सा. १४/३५

ए निसबत असल अर्स की, हकें जाहेर तो करी।

दिल मोमिन अर्स तो कहा, जो रूहें दरगाह से उतरी॥२३॥

अक्षरातीत से ब्रह्मसृष्टियों का यह मूल सम्बन्ध परमधाम से ही है, जिसे धाम धनी ने ब्रह्मवाणी द्वारा प्रकाश में ला दिया है। ब्रह्मसृष्टियाँ इस माया का खेल देखने परमधाम से आयी हैं, इसलिये इनके हृदय को धाम कहा जाता है।

ख्वाब वजूद दिल मोमिन, हकें कहा अर्स सोए।

अर्स तन मोमिन दिल से, ए केहेने को हैं दोए॥२४॥

इस स्वप्न के तन में आत्मा का जो हृदय (दिल) है, उसे ही श्री राज जी ने अपना धाम कहा है। परात्म का तन और आत्मा का दिल मात्र कथन रूप में ये दो हैं, वस्तुतः दोनों का स्वरूप एक ही है।

मोमिन असल तन अर्स में, और दिल ख्वाब देखत।

असल तन इन दिल से, एक जरा न तफावत॥२५॥

आत्माओं का मूल तन परमधाम में है और इस संसार में उनका दिल स्वप्न की लीला को देख रहा है। इस प्रकार परात्म के तन तथा आत्मा के हृदय में नाम मात्र के लिये भी भेद नहीं है।

भावार्थ— परात्म के नूरी तन का ही प्रतिबिम्ब आत्मा का तन है, किन्तु आत्मा का तन जीव का यह पञ्चभौतिक तन नहीं है। आत्मा के तन का वर्णन श्रृंगार

ग्रन्थ के चौथे प्रकरण में किया गया है। जिस प्रकार धनी के जोश या आवेश को त्रिगुणातीत मानते हैं, उसी प्रकार आत्मा के तन को भी त्रिगुणातीत स्वरूप वाला माना जाता है। जैसे किसी वस्तु को देखने पर आँखों के रेटिना में उसका प्रतिबिम्ब बन जाता है। इस प्रतिबिम्ब का अस्तित्व होते हुए भी कोई वजन नहीं होता। इसी प्रकार आत्मा का भी स्वरूप मानना चाहिए।

जिस प्रकार स्वप्न में मन (दिल) की क्रियाशक्ति द्रष्टा के स्वरूप का प्रतिबिम्बित रूप धारण कर लेती है, उसी प्रकार श्री राज जी के आदेश से परात्म के दिल की क्रियाशक्ति (सुरता) ने परात्म का ही रूप धारण कर लिया है। इस प्रकार परात्म और आत्मा के स्वरूप में तथा इनके दिलों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। यह बात श्रृंगार में इस प्रकार दर्शायी गयी है—

दिल मोमिन अर्स तन बीच में, उन दिल बीच ए दिल।
 केहेने को ए दिल है, है अर्से दिल असल॥

सिनगार २६/१४

कहे मोमिन उतरे अर्स से, इनों दिल में हक सूरत।
 ए अर्स में अर्स इन दिल में, यों हिल मिल बीच खिलवत॥

सिनगार २३/८३

ए जो सरूप सुपन के, असल नजर बीच इन।
 वह देखें हमको ख्वाब में, वह असल हमारे तन॥
 उनों अंतर आंखें तब खुले, जब हम देखें वह नजर।
 अंदर चुभे जब रूह के, तब इतही बैठे बका घर॥

सागर ३/२,३

अर्स तन दिल में ए दिल, दिल अन्तर पट कछु नाहें।
 सुख लज्जत अर्स तन खैंचहीं, तब क्यों रहे अंतर मांहें॥

सिनगार ११/७९

तो हक सेहेरग से नजीक, ए विध जानें मोमिन।

अर्स दिल मोमिन तो कह्या, जो निसबत अर्स तन॥२६॥

इस प्रकार आत्मायें ही इस रहस्य को जानती हैं कि धाम धनी उनकी शाहरग (प्राण नली) से भी अधिक निकट किस प्रकार हैं। आत्माओं के हृदय को अक्षरातीत का धाम इसलिये कहा गया है, क्योंकि परात्म के मूल तन से इनका अखण्ड सम्बन्ध होता है।

ए बारीक बातें अर्स की, ए मोमिन जानें सहूर।

तो हक कदम दिल अर्समें, हक सहूर से नहीं दूर॥२७॥

परमधाम की ये सूक्ष्म रहस्यमयी बातें हैं, जिसे वाणी के चिन्तन में डूबी रहने वाली आत्मायें ही जानती हैं। धाम

धनी का चिन्तन करने से यही स्पष्ट होता है कि प्रियतम के चरण कमल आत्माओं के धाम हृदय में हमेशा ही विराजमान रहते हैं, कभी अलग नहीं होते।

ए ख्वाब देखे सो झूठ है, सत सोई जो माहें वतन।

सांच बैठी कदम पकड़के, झूठमें न आए आपन॥२८॥

आत्मा इस स्वप्न के ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी देख रही है, वह सब नष्ट हो जाने वाला है। सत्य वही है, जो परमधाम में है। अखण्ड स्वरूप वाली ब्रह्मसृष्टियाँ तो धनी के चरणों में बैठी हैं। हम तो झूठ में आए ही नहीं हैं।

भावार्थ— धनी के चरणों से अँगनाएं कभी भी अलग नहीं हो सकतीं, इसलिये धनी के चरणों को पकड़कर बैठे रहने की बात कही गयी है। इस खेल में ब्रह्मसृष्टियों की सुरता (आत्मा, वासना, प्रतिबिम्ब) आयी है, मूल

तन वहीं पर हैं, इसलिये इस चौपाई में यह बात कही गयी है कि हम इस खेल में नहीं आये हैं।

ए विचार देखो मोमिनों, हक देखावें अपने सहूर।

इन दिल को अर्स तो कहा, जो कदम नहीं आपनसे दूर॥२९॥

हे साथ जी! आप इस बात का विचार करके देखिए कि श्री राज जी ने हमें अपनी ब्रह्मवाणी के चिन्तन में लगा दिया है। इससे हमें यह बोध हो गया है कि हमारी आत्मा के हृदय को धाम इसलिये कहा गया है कि परात्म की ही तरह इसमें भी प्रियतम के चरणों का निवास है। अब ये चरण कमल कभी भी आत्मा के धाम हृदय से अलग नहीं हो सकते।

जो रूह देखे लांक लीक को, तो रूह तितहीं रहे लाग।

अर्स रूहों को इन लीक बिना, सुख दुनियां लागे आग॥३०॥

यदि आत्मा की दृष्टि श्री राज जी के चरणों की तली की गहराई में आयी हुई रेखाओं की शोभा में जाती है, तो वह उसी में लगी (डूबी) रह जाती है। परमधाम की आत्माओं के लिये इन रेखाओं को देखे बिना संसार के सभी सुख जलती हुई अग्नि के समान कष्टकारी लगते हैं।

भावार्थ— ब्रह्मसृष्टियों के लिये प्रेममयी चितवनि द्वारा युगल स्वरूप के चरणों के सौन्दर्य में स्वयं को डुबो देना ही सबसे बड़ा आनन्द है। इसके बिना संसार के सारे सुख उन्हें कष्टकारी लगते हैं।

एक लीक भी रूहथें न छूटहीं, तो क्यों छूटे तली कोमल।

अर्स रूहें इन लीक बिना, तबहीं जाए जल बल॥३१॥

जब आत्मा की दृष्टि से एक लकीर भी नहीं छूट पाती, तो प्रियतम के चरणों की अति कोमल तलियों की शोभा कैसे छूट जायेगी। यदि परमधाम की आत्माओं को ये रेखायें देखने को न मिलें, तो वे अपना अस्तित्व ही मिटा देंगी (जलकर राख हो जायेंगी)।

भावार्थ- इस चौपाई की पहली पंक्ति का भाव यह है कि आत्मा चरणों की तली की रेखाओं को गहनता से देखती है और उसी में डूबती जाती है। इस प्रकार वह सम्पूर्ण तली को भाव-विभोर होकर देखती है।

"जल कर राख हो जाना" एक मुहावरा है। आत्मा का स्वरूप तो तीनों काल में अखण्ड है। स्वप्न में भी उसके जलकर राख होने का प्रश्न नहीं है। इस कथन का भाव यह है कि जिस प्रकार इस नश्वर जगत में किसी प्रिय वस्तु के न मिलने से मनुष्य तड़प-तड़प कर मर जाता

है, उसी प्रकार परमधाम की आत्मा भी धनी के चरणों के तलुओं की रेखाओं को देखने के लिये इतना अधिक तड़पती है कि उसका कुछ अंश भी यदि (सांसारिक जीव) तड़प जाये तो उसका शरीर छूट जायेगा। विरह की गहन अवस्था में ब्रह्मसृष्टि का भी पञ्चभौतिक तन छूट सकता है।

ए कदम तली की जोत से, आसमान जिमी रोसन।

दिल मोमिन कदम बिना, अंग हो जाए सब अगिन॥३२॥

श्री राज जी के इन चरण कमलों की ज्योति से परमधाम में सम्पूर्ण धरती और आकाश प्रकाशित रहते हैं। यदि आत्मा के धाम हृदय में प्रियतम के चरण कमलों का वास न हो, तो विरह की अग्नि में उसके सभी अंग जलने लगते हैं।

चकलाई इन कदम की, कदम तली ऊपर सलूक।

ए फिराक मोमिन ना सहें, सुनते होए टूक टूक॥३३॥

धाम धनी के चरण कमल बहुत ही सुन्दर हैं। उनके चरणों की तलियाँ तथा ऊपरी भाग (पञ्जा) इतने सुन्दर हैं कि ब्रह्मसृष्टियाँ इनका वियोग सहन ही नहीं कर पाती हैं। इनकी शोभा का वर्णन सुनते ही स्वयं को न्योछावर कर देती हैं (टुकड़े-टुकड़े कर देती हैं)।

भावार्थ- टूक-टूक (टुकड़े-टुकड़े) होने का तात्पर्य है- अपने को इतना समर्पित करना कि अपना कोई भी अस्तित्व न रह जाये।

सोभा कदम तलीय की, और सोभा सलूकी नखन।

सोभा अंगुरी अंगूठे, क्यों छोड़ें आसिक तन॥३४॥

प्रियतम अक्षरातीत के चरण कमलों के तलुओं, नखों,

अँगूठों, तथा अँगुलियों की शोभा और सुन्दरता को भला ब्रह्मसृष्टियाँ कैसे छोड़ सकती हैं, क्योंकि वे तो उनके प्रेम में डूबी रहने वाली हैं और उनके साक्षात् तन हैं।

फना टांकन की सलूकी, और छब घूँटी काड़ों।

अर्स रूहें जुदागी ना सहें, जाके असल तन अर्स मौं॥३५॥

श्री राज जी के चरण कमल के पञ्जों, टखनों, घूँटी, और कड़ा की शोभा व सुन्दरता अद्वितीय है। परमधाम में जिनके मूल तन हैं, वे आत्मायें इस अलौकिक शोभा का वियोग कदापि सहन नहीं कर सकतीं।

भावार्थ— एड़ी के ऊपरी भाग को टखना या टाँकड़ कहते हैं। प्रत्येक पैर में दो टखने होते हैं— एक दाँया और एक बाँया। टखने और पिण्डली के बीच का भाग घूँटी कहलाता है। यह पिण्डली का अन्तिम सिरा होता है, जो

टखने से स्पर्श कर रहा होता है। इसी प्रकार टखने और एड़ी के बीच का भाग कड़ा कहलाता है।

पीड़ी घूटन पांउं माफक, सोभा अति सुन्दर।

ए कदम सुध तिने परे, जो रूह बेधी होए अन्दर॥३६॥

चरणों के अनुकूल ही पिण्डलियों तथा घुटनों की शोभा अत्यधिक सुन्दर आयी है। विरह-प्रेम के बाणों से जिनकी आत्मा बिंध गयी होती है, एकमात्र उनका ही धनी के इन चरणों की तरफ ध्यान जाता है।

भावार्थ- घुटने के नीचे का पिछला माँसल भाग पिण्डली कहलाता है। जाँघ तथा पिण्डली के बीच अस्थियों का वह स्थान जहाँ से पैर मुड़ता है, घुटना कहलाता है।

विचार तो भी याही को, रूह नजर तो भी ए।

जो रूह इन कदम की, रहे तले कदमै के॥३७॥

जो आत्मायें धनी के चरणों में रहने वाली होती हैं, वे ही इस संसार में धनी की छत्रछाया में रहती हैं अर्थात् संसार को पीठ देकर अक्षरातीत को ही अपना सर्वस्व मानती हैं। एकमात्र वे ही श्री राज जी के चरणों की इस शोभा के बारे में विचार करती हैं (अपने आत्मिक नेत्रों से उसका दर्शन करती हैं)।

भावार्थ- "चरणों में या कदमों में रहना " एक मुहावरा है, जिसका अभिप्राय होता है- सामीप्यता या छत्रछाया में रहना। ब्रह्मसृष्टियों का धाम धनी से अखण्ड सम्बन्ध है, इसलिये उनके कदमों में रहने की बात की गयी है। चरणों में झुकना और चरणों में रहने का भाव अलग है। इसी प्रकार चरणों में लाने का भाव भी अलग होता है।

हाथों कदम न छोड़हीं, रूह हिरदे माहें लेत।

हक कदम खैंचें रूह को, सब अंगों समेत॥३८॥

ब्रह्मसृष्टियों ने श्री राज जी के जिन चरणों को अपने हाथों से पकड़ रखा है, उसे वे किसी भी स्थिति में छोड़ती नहीं हैं। वह अपने प्राण प्रियतम के कमलवत् चरणों को अपने धाम हृदय में बसाये रखती हैं। धनी के चरण कमल भी अंग-प्रत्यंग सहित आत्मा को अपनी ओर खींचे रहते हैं।

भावार्थ- हृदय में धनी के प्रति अटूट सम्बन्ध बनाये रखना ही हाथों से चरणों को पकड़े रहना है। यहाँ बाह्य हाथों से चरणों को पकड़ने का प्रसंग नहीं है, क्योंकि सखियाँ तो मूल मिलावा में आपस में लिपट-लिपटकर बैठी हैं। "गले बाथ सब लेय के, मिल बैठेंगे एक होए" का कथन यही सिद्ध करता है। इस चौपाई के तीसरे चरण में

श्री राज जी के कदमों का भाव सम्पूर्ण स्वरूप से है।

जेते अंग आसिक के, सो सब कदमों लगत।

ए गत सोई जानहीं, जिन अंग रूह खैंचत॥३९॥

धनी के प्रेम में डूबी रहने वाली ब्रह्मसृष्टियों के अंग – प्रत्यंग भी धाम धनी की ओर ही उन्मुख (लगे) रहते हैं। इस अवस्था का अनुभव मात्र उन सुन्दरसाथ को ही होता है, जिनकी आत्मा के अंगों को धनी के चरण कमल अपनी ओर खींचते हैं।

भावार्थ- आत्मिक नेत्रों से ब्रह्मसृष्टि जहाँ अपने प्राणवल्लभ का दीदार पाना चाहती हैं, तो आत्मिक कानों से उनकी अमृतमयी वाणी का भी रसास्वादन लेना चाहती है। वह अपने लौकिक कानों से ब्रह्मवाणी की चर्चा भी सुनना चाहती है और अपनी आत्मिक जिह्वा से अपने

मन की सारी बातों को धनी के सम्मुख खोलकर रख देने की उसकी इच्छा होती है। उसके हृदय में उमड़ने वाले विरह के सागर में ऐसे-ऐसे तूफान उठा करते हैं कि सारा संसार उसे अग्नि की लपटों के समान कष्टकारी लगता है तथा आँखों से आँसुओं के मोती ढुलकते रहते हैं।

कई गुन हक कदम में, सब गुन खैंचें रूह को।

मासूक गुझ सोई जानहीं, आए लगी जिनसों॥४०॥

प्रियतम श्री राज जी के चरणों में अनेक गुण विद्यमान हैं और ये आत्मा को अपनी ओर खींचते हैं। श्री राज जी (माशूक) के चरणों के इन गुह्य रहस्यों को मात्र वे ब्रह्मसृष्टियाँ ही जानती हैं, जो धनी के इन चरणों से जुड़ी होती हैं।

भावार्थ- "पूरन पांचों इन्द्री सरूपें, एक एक में पांच पूरन" (परिकरमा ९/३०) के कथनानुसार तो प्रत्येक इन्द्रिय में अन्य सभी इन्द्रियों के गुण विद्यमान होते हैं। यदि आत्मिक दृष्टि से देखा जाये तो श्री राज जी के सभी गुण प्रत्येक अंग में वास करते हैं, क्योंकि वहदत (एकदिली) में किसी भी गुण का कहीं भी कम या अधिक होना सम्भव ही नहीं है, भले ही हम अपने लौकिक भावों से सौन्दर्य और प्रेम आदि को मुखारविन्द या आँखों में ही केन्द्रित क्यों न करें।

पांउं पीड़ी घूटन की, जो चकलाई सोभाए।

जेते अंग आसिक के, तिन सब अंगों देत घाए॥४१॥

श्री राज जी के चरण कमल की लम्बी पिण्डलियों तथा घुटनों की जो अलौकिक शोभा है, वह आत्माओं

(आशिकों) के सभी अंगों में चोट (घाव) करती है।

भावार्थ— हृदय जब किसी आनन्द या दुःख के बोझ को सहन नहीं कर पाता है, तो उसकी पीड़ा अन्य अंगों से फूट पड़ती है। इसी तथ्य को इस चौपाई में दर्शाया गया है। चरणों के अद्वितीय सौन्दर्य को देखकर हृदय स्वयं को सम्भाल नहीं पाता। उसकी स्थिति ऐसी हो जाती है, जिसे लौकिक भाषा से "किंकर्तव्यविमूढ़" हो जाना कहते हैं। इस स्थिति में शरीर के सभी अंग इतने शिथिल हो जाते हैं कि उनसे कोई भी क्रिया होना सम्भव ही नहीं होता।

क्यों कहूं पीड़ीय की, सलूकी सुख जोर।

ए सुख सब रगन को, और देत कलेजा तोर॥४२॥

पिण्डलियों के सौन्दर्य के दीदार का सुख इतना अधिक

है कि मेरे लिये उसका वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है। यह सुख सभी नाड़ियों और कलेजे के टुकड़े-टुकड़े कर देता है।

भावार्थ- आत्मा अपने प्राणवल्लभ के चरणों की पिण्डलियों के अनन्त सौन्दर्य को देखकर जहाँ आनन्द के सागर में डूब जाती है, वहीं जीव का हृदय इस बोझ को झेल नहीं पाता। उसे ऐसा प्रतीत होता है जैसे उसका कलेजा टुकड़े-टुकड़े हो गया है और प्रत्येक नाड़ी खण्ड-खण्ड हो गयी है।

घाव लगत टूटत रगां, इन विध रहेत जो याद।

मासूक मारत आसिक को, अर्स अंग चरन स्वाद॥४३॥

इस प्रकार यदि धनी के चरण कमलों की निरन्तर याद बनी रहे, अर्थात् आत्मा अपनी दृष्टि से चरणों की शोभा

का रसपान करती रहे, तो प्रेम के ऐसे बाण लगते हैं जिनसे हृदय में बहुत गहरे घाव हो जाते हैं तथा नाड़ियाँ भी टुकड़े-टुकड़े हो जाती हैं। माशूक (श्री राज जी) के चरणों का सौन्दर्य ही इतना अप्रतिम (अद्वितीय) होता है कि इससे आशिक (आत्मा) अपने अस्तित्व को समाप्त कर लेता है।

भावार्थ- इस चौपाई में कथित "मरने" का भाव यह है कि आत्मा प्रियतम के चरणों की शोभा में इतना डूब जाती है कि वह स्वयं को भूल जाती है और प्रियतम से एकाकार हो जाती है।

ए कदम देखे रूह फेर फेर, तली लांक या ऊपर।

दिल मोमिन अर्स कहा, सो या कदमों की खातिर॥४४॥

धनी के इन चरणों की शोभा को आत्मा बारम्बार देखा

करती है। कभी वह तली को देखती है, तो कभी गहराई को, और कभी उसके ऊपर की शोभा को देखती है। इन चरणों के हृदय में विराजमान होने से ही तो आत्माओं के हृदय को धाम कहलाने की शोभा प्राप्त है।

हक कदम अर्स दिल में, सो दिल मोमिन हुआ जल।

अरवा मोमिन जीव जलके, सो रूह जल बिन रहे न पल॥४५॥

आत्मा के धाम हृदय में ही अक्षरातीत के चरण कमल का निवास होता है। ब्रह्मसृष्टियाँ परमधाम रूपी जल में रहने वाले जीव के समान हैं। इस प्रकार आत्मा का धाम हृदय ही वह जल है, जिसके बिना आत्मा एक पल भी नहीं रह सकती।

भावार्थ— जिस प्रकार मछली आदि जल के जीव जल के बिना पल भर भी नहीं रह सकते, उसी प्रकार आत्मा

भी अपने जीवन के आधार परमधाम के बिना नहीं रह सकती। धनी के चरणों की महिमा कुछ ऐसी है कि हृदय में उसका प्रवेश होते ही हृदय को धाम की शोभा प्राप्त हो जाती है। प्रेममयी परमधाम ही जल है। इस सम्बन्ध में सिनगार २३/५४ का कथन है—

मोमिन अर्स बका बिना, रेहे सके ना एक पल।

जो हौज कोसर की मछली, तिन हैयाती वह जल॥

ए बेली फूल रूह मोमिन, सो बेल भई हक चरन।

बेल जुदागी फूल क्यों सहे, यों कदम बिना रहें ना मोमिन॥४६॥

धनी के चरण कमल अति मनोहर लता (बेल) की तरह हैं और उसमें लगे हुए फूल की तरह ब्रह्मसृष्टियों की आत्मा है। जिस प्रकार फूल कभी भी बेल से वियोग सहन नहीं कर सकता (मुरझा जाता है), उसी प्रकार

आत्मायें भी प्रियतम अक्षरातीत के चरणों से अलग नहीं रह सकतीं।

जब देखूं कदम रंगको, जानों एही सुख सागर।

जब देखूं याकी सलूकी, आड़ी निमख न आवे नजर॥४७॥

जब मैं श्री राज जी के चरणों के रंग को देखती हूँ, तो ऐसा प्रतीत होता है कि उज्ज्वलता और लालिमा से भरपूर इस अलौकिक रंग के रूप में आनन्द का सागर ही क्रीड़ा कर रहा है। जब मैं इनकी शोभा-सुन्दरता की ओर देखती हूँ, तो पल भर के लिये सामने कुछ भी नजर नहीं आता अर्थात् मैं उसी में डूब जाती हूँ।

जो आड़ी आवे पलक, तो जानों बीच पड़यो ब्रह्माण्ड।

ए निसबत हक वाहेदत, जो अर्स दिल अखंड॥४८॥

यदि आत्म-चक्षुओं के सामने पलकों का पर्दा आता है, तो यह स्थिति असह्य हो जाती है और ऐसा प्रतीत होता है कि सामने समस्त ब्रह्माण्ड आ गया है। धनी के चरणों से आत्मा का यह सम्बन्ध तो श्री राज जी की एकदिली (एकत्व) के अन्तर्गत है, क्योंकि परात्म के हृदय में समस्त परमधाम अखण्ड रूप से विद्यमान है।

भावार्थ- चितवनि की गहन स्थिति में शरीर , संसार, या ज्ञान सम्बन्धी किसी विचार का आना ही पलकों का ढक जाना है, जिससे प्रियतम का दीदार होना बन्द हो जाता है।

ए कदम ताले मोमिन के, सो मोमिन हक चरन।

तो अर्स कहा दिल मोमिन, जो रूहें असल अर्स में तन॥४९॥

धनी के ये चरण कमल ब्रह्मसृष्टियों के ही भाग्य में हैं।

उनके ही धाम हृदय में श्री राज जी के चरण कमल विराजमान होते हैं। इनके मूल तन परमधाम में हैं, इसलिये इनके हृदय को अक्षरातीत का धाम कहते हैं।

सुन्दरता इन कदम की, सो चुभ रही रूह के दिल।

अरस-परस ऐसी हुई, एक निमख न सके निकल॥५०॥

श्री राज जी के चरणों की सुन्दरता आत्मा के धाम हृदय में बस (चुभ) जाती है। आत्मा धनी के चरणों से इस प्रकार एकाकार हो जाती है कि एक क्षण के लिये भी उस शोभा के सागर से स्वयं को निकाल नहीं पाती।

चकलाई इन कदम की, सुख सलूकी देत।

हिरदे जो रूह के चुभत, रूह सोई जाने जो लेत॥५१॥

श्री राज जी के कदमों की सुन्दर बनावट आत्मा को

आनन्द देती है। धाम हृदय में अखण्ड रूप से बस जाने वाली यह शोभा आत्मा को इस प्रकार आनन्द देती है कि मात्र उसका रसपान करने वाला (रसिक) ही अनुभव कर सकता है।

अति मीठे रसीले रंग भरे, जाको ए चरन मेहेर करत।

सुख सोई जाने रूह अर्स की, जिन दिल दोऊ पांउं धरत॥५२॥

धनी के ये चरण कमल बहुत ही मधुर, प्रेम के रस और आनन्द से भरपूर हैं। जिस आत्मा के ऊपर मेहर करके ये दोनों चरण कमल उसके धाम हृदय में विराजमान हो जाते हैं, उसे इतना आनन्द प्राप्त होता है कि मात्र परमधाम की वह आत्मा ही इसका अनुभव कर सकती है।

सो पल पल ए रस पीवत, फेर फेर प्याले लेत।

ए अमल क्यों उतरे, जाको हक बका सुख देत॥५३॥

श्री राज जी के चरणों को अपने धाम हृदय में बसाने वाले ब्रह्ममुनि बार-बार प्रेम के प्याले पीते हैं और पल-पल आनन्द का रसपान करते हैं। जिनको स्वयं अक्षरातीत ही परमधाम के अखण्ड सुखों का रसपान कराते हों, भला उनके आनन्द का नशा कहाँ उतर सकता है।

ए सुख कायम हक के, जिन दिल एह कदम।

सोई रूह जाने ए जिन लिया, या जानत है खसम॥५४॥

जिनके हृदय में प्राण प्रियतम अक्षरातीत के चरण कमल विराजमान हो जाते हैं, उनसे मिलने वाला सुख अखण्ड होता है। धनी से प्राप्त होने वाले इस सुख की महिमा को

या तो वह आत्मा ही जानती है जिसने पाया होता है, या स्वयं श्री राज जी जानते हैं।

कई विध के सुख कदम में, मेहेर कर देत मेहेरबान।

तो अर्स कहा दिल मोमिन, इन पर कहा कहे सुभान॥५५॥

धाम धनी के चरणों में अनेक प्रकार के सुख छिपे होते हैं, जिसे वे मेहर कर प्रदान करते हैं। धाम धनी ने तो आत्माओं के हृदय को ही अपना धाम कहा है। इससे अधिक गरिमा वाली बात और क्या कह सकते हैं।

भावार्थ- जिस अक्षरातीत परब्रह्म को आज दिन तक संसार के ज्ञानीजन नहीं जान सके, वे धाम धनी जिनके हृदय धाम में स्वयं विराजमान हों, उन आत्माओं की गरिमा सहज ही समझी जा सकती है।

हकें दिल किया अर्स अपना, इन पर बड़ाई न कोए।

ए सुख लें मोमिन दुनी में, जो अर्स अजीम की होए॥५६॥

जब धाम धनी आत्माओं के हृदय को अपना धाम बनाकर विराजमान हो जाते हैं, तो आत्मा के लिये संसार में इससे बड़ी शोभा और कुछ भी नहीं हो सकती। जो भी परमधाम की आत्मा होती है, वह श्री राज जी को अपने धाम हृदय में बसाकर इस संसार में ही परमधाम के सुखों का रसपान करती है।

ए सुख क्या जानें खेल कबूतर, कहा हक का अर्स दिल।

ए जाहेर हुए सुख जानसी, मोमिन मिलावा मिल॥५७॥

इस सुख को भला माया के जीव क्या जानेंगे। इसे तो मात्र वे ब्रह्ममुनि ही जानते हैं, जिनका हृदय धनी का धाम कहा गया है। जब आत्मायें (ब्रह्मसृष्टियाँ) अपने मूल

तनों में जाग्रत हो जायेंगी और संसार के जीव बेहद मण्डल में अखण्ड हो जायेंगे, तब वे धनी के चरणों को अपने हृदय में बसाने की महत्ता समझेंगे।

भावार्थ- जिस प्रकार बाजीगर अपने जादू से कबूतरों को प्रकट करता है और बाद में उनका लोप (छिपाना) कर देता है, उसी प्रकार इस संसार के जीव भी आदिनारायण की चेतना के प्रतिभास हैं, जो महाप्रलय में लय हो जायेंगे। यही कारण है कि उन्हें "खेल के कबूतर" कहकर सम्बोधित किया गया है। बेहद में जाग्रत बुद्धि मिलने से जीवों को अक्षरातीत के प्रति प्रेम रखने का महत्त्व मालूम होगा।

कदम मेहेबूब के मोमिन, क्यों सहें जुदागी खिन।

तो हकें कहा अर्स दिल को, कर बैठे अपना वतन॥५८॥

ब्रह्ममुनि एक पल के लिये भी धनी के चरणों का वियोग सहन नहीं कर सकते। इसलिये श्री राज जी ने इनके हृदय को अपना धाम कहा है और उसमें विराजमान हो गये हैं।

दिया मोमिनों बड़ा मरातबा, जेती हक बिसात।

ले बैठे मोमिन दिल में, सब मता हक जात॥५९॥

श्री राज जी की लीला रूपी जो भी सामग्री है, उसमें ब्रह्मसृष्टियों का पद सर्वोपरि है। अक्षरातीत ज्ञान की सभी निधियों सहित ब्रह्ममुनियों के धाम हृदय में विराजमान हैं।

भावार्थ— यद्यपि परमधाम के कण-कण में अक्षरातीत के अतिरिक्त अन्य कोई है ही नहीं और वहदत में किसी को छोटा-बड़ा कहने का प्रश्न ही नहीं है, फिर भी लीला रूप में अपनी अङ्गरूपा अङ्गनाओं को धाम धनी ने सबसे बड़ी शोभा दी है। यहाँ तक कि अपने सत् अंग अक्षर

ब्रह्म, जोश स्वरूप जिबरील, तथा जाग्रत बुद्धि से भी बड़ी शोभा ब्रह्ममुनियों को दी है।

हक सूरत किन पाई नहीं, ना अर्स पाया किन।

तरफ भी किन पाई नहीं, माहें त्रैलोकी त्रैगुन॥६०॥

इन त्रिगुणात्मक तीनों लोक (पृथ्वी, स्वर्ग, तथा वैकुण्ठ) के प्राणियों में से किसी ने भी आज दिन तक न तो परमधाम का और न अक्षरातीत के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त किया है। उन्हें यह भी पता नहीं चल सका कि परमधाम किस तरफ है।

भावार्थ— जिस प्रकार अथाह महासागर में बहने वाली चींटी उसका पार नहीं जान सकती, उसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड के प्राणियों के लिये निराकार का मण्डल अनन्त है। वे इसके परे की बात सोच भी नहीं पाते। जिस प्रकार

समुद्र में असंख्य बुलबुले उठते हैं और लय हो जाते हैं, उसी प्रकार निराकार (मोहतत्त्व, मूल प्रकृति) से असंख्य ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते रहते हैं और लीन होते रहते हैं। ऐसी स्थिति में यह कैसे सम्भव है कि कोई भी इसके परे की बात सोच सके।

कह्या चौदे तबक जरा नहीं, तो बका सुध होसी किन।

हक सूरत अर्स कायम, सब दिल बीच कह्या मोमिन॥६१॥

धर्मग्रन्थों में कहा गया है कि स्वप्नवत् होने से चौदह लोक का यह ब्रह्माण्ड कुछ है ही नहीं। इस प्रकार इस नश्वर जगत के प्राणी अखण्ड परमधाम का ज्ञान कैसे प्राप्त कर पाते। परमधाम तथा अक्षरातीत का स्वरूप अखण्ड है और ब्रह्ममुनियों के धाम हृदय में ही इनका (परमधाम तथा श्री राज जी का) निवास है।

हक अंग नूर हादी कहा, मोमिन हादी अंग नूर।

ए सब हक वाहेदत, ज्यों हक नूर जहूर॥६२॥

श्यामा जी श्री राज जी के अंग (हृदय) का नूर हैं। इसी प्रकार ब्रह्मसृष्टियाँ श्यामा जी के अंग की नूर स्वरूपा हैं। इस प्रकार श्री राज जी का नूर ही सभी रूपों में लीला कर रहा है। इन सभी स्वरूपों में एकदिली (वहदत) की लीला है।

भावार्थ- "नूर" शब्द से तात्पर्य है – शाश्वत प्रेम, सौन्दर्य, आनन्द, त्रिगुणातीत ज्योति, आभा, कान्ति, छटा, उल्लास इत्यादि। अक्षरातीत के हृदय में नूर रूप में ये सभी निधियाँ समाहित हैं, जिनका प्रकट रूप श्यामा जी, सखियाँ, अक्षर ब्रह्म, महालक्ष्मी, और परमधाम के पच्चीस पक्ष हैं। सभी में एक धनी का दिल ही लीला करता है, इसलिये सभी को एकदिली के अन्तर्गत माना

जाता है। यद्यपि अक्षर ब्रह्म में सत् की एकदिली है, शेष सभी में आनन्द की एकदिली है।

ए गुझ थीं अर्स बारीकियां, कोई न जाने बका बात।

सो रूहें आए दुनी में प्रगटीं, अर्स बका हक जात॥६३॥

परमधाम की ये रहस्यमयी सूक्ष्म बातें हैं, जो आज दिन तक किसी को भी मालूम नहीं थीं। इस नश्वर जगत् में ब्रह्ममुनियों के आने से ही तारतम वाणी का अवतरण हुआ, जिससे संसार को अखण्ड परमधाम तथा श्री राजश्यामा जी एवं सखियों के स्वरूप का ज्ञान मिल सका।

कहे हुकम नूरजमाल का, मोहे प्यारे अति मोमिन।

महामत कहे दोनों ठौर, हमको किए धन धन॥६४॥

श्री राज जी का आवेश स्वरूप (हुक्म, आदेश, स्वरूप) कहता है कि मुझे ब्रह्ममुनि बहुत प्यारे हैं। श्री महामति जी कहते हैं कि धाम धनी ने हमें इस संसार में तथा परमधाम में भी धन्य-धन्य कर दिया है।

भावार्थ- इस संसार में ब्रह्मवाणी के द्वारा परमधाम का ज्ञान प्राप्त हो गया है, जिससे धनी के विरह-प्रेम में डूबकर चितवनि द्वारा वहाँ का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। ब्रह्मवाणी द्वारा ही परमधाम की निस्बत, वहदत, खिल्वत, और इश्क की मारिफत का ज्ञान मिला है, जो परमधाम में मालूम नहीं था। इसका आनन्द परात्म में जाग्रत होने पर मिलेगा। दोनों जगह (संसार और परमधाम में) धन्य-धन्य होने का यही आशय है।

प्रकरण ॥६॥ चौपाई ॥३५५॥

चरन निसबत का प्रकरण अन्दरताई

अक्षरातीत के चरण कमल से हमारे आत्मिक सम्बन्ध की गुह्य बातों को इस प्रकरण में दर्शाया गया है।

ए क्यों छोड़े चरन मोमिन, जो हक की वाहेदत।

आए दुनी में जाहेर करी, जो असल हक निसबत॥१॥

श्री राज जी की वहदत (एकदिली) में रहने वाले ब्रह्ममुनि भला उनके चरण कमल को कैसे छोड़ सकते हैं। ब्रह्मसृष्टियों ने इस संसार में आकर अक्षरातीत से अपने मूल सम्बन्ध को उजागर किया है।

भावार्थ- परमधाम में श्री राजश्यामा जी एवं सखियों में एक ही दिल लीला कर रहा है अर्थात् सबका दिल (हृदय) एक समान है। इसे ही एकदिली या "एकत्व स्वरूप" कहते हैं। अक्षरातीत के द्वारा अवतरित

ब्रह्मवाणी से ही मूल सम्बन्ध का ज्ञान मिला है, जिसे ब्रह्ममुनियों ने संसार में प्रकाशित (जाहिर) किया है।

रूहें उतरीं नूर बिलंद से, कदम नासूत में भूलत।

तिन पर रसूल होए आइया, जो असल हक निसबत॥२॥

माया का खेल देखने के लिये आत्मायें परमधाम से इस नश्वर जगत में आयीं, किन्तु इस माया के प्रभाव से धनी के चरणों को भूल गयीं। उनको जाग्रत करने के लिये सन्देशवाहक के रूप में स्वयं श्री राज जी ने श्यामा जी के अन्दर लीला की। ऐसा परमधाम के मूल सम्बन्ध के कारण ही हुआ।

भावार्थ— इस चौपाई में "रसूल" के रूप में बशरी सूरत का प्रसंग नहीं है, क्योंकि तीसरे चरण में "तिन पर" शब्द प्रयुक्त हुआ है जो ब्रह्मसृष्टियों के लिये है। श्री श्यामा

जी ही सब सुन्दरसाथ को जाग्रत करने के लिये आयी हैं और उन्होंने दो तन धारण किये। दोनों तनों में परब्रह्म ने विराजमान होकर आत्माओं को जाग्रत किया। इस लीला रूप को दर्शाने के लिये "रसूल" शब्द का प्रयोग किया गया है। प्रकास हिंदुस्तानी २/२ के शब्दों में—

सुन्दरबाई इन फेरे, आए हैं साथ कारन जी।

भेजें धनिएं आवेस देय के, अब न्यारे न होएं एक खिन जी॥

रुहें अर्स भूलीं नासूत में, ताए हक रमूजें लिखत।

सो सब मोमिन समझहीं, जो असल हक निसबत॥३॥

इस संसार में आकर ब्रह्मसृष्टियों ने अपने परमधाम को भुला दिया। उन्हें जाग्रत करने के लिये धाम धनी ब्रह्मवाणी के रूप में प्रेम भरी बातें लिख रहे हैं। इन बातों को मात्र वे ब्रह्ममुनि ही यथार्थ रूप में समझेंगे, जिनका

धनी के चरणों से मूल सम्बन्ध है।

रुहें कदम भूली नासूत में, हक ताए भेजे इसारत।

ताको हादी केहे समझावहीं, जो असल हक निसबत॥४॥

परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ इस संसार में आकर धनी के चरणों को भूल चुकी हैं। धाम धनी इनको जाग्रत करने के लिये ब्रह्मवाणी के द्वारा संकेत के रूप में अपनी बातें भेज रहे हैं। परमधाम के मूल सम्बन्ध के कारण ही अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में परमधाम का ज्ञान दे रहे हैं।

भावार्थ— इस चौपाई में "इसारत" (संकेत) का तात्पर्य धर्मग्रन्थों के प्रमाण से नहीं, बल्कि श्रीमुखवाणी के ज्ञान से है, क्योंकि यह प्रसंग वर्तमान काल का है, जबकि सभी धर्मग्रन्थों का अवतरण अतीत (भूतकाल) में हो

चुका है। परमधाम की शोभा तथा लीला शब्दातीत है। उसे मात्र संकेतों द्वारा ही ब्रह्मवाणी के रूप में व्यक्त किया गया है। यही कारण है कि इस चौपाई में "इशारत" शब्द का प्रयोग किया गया है। "अर्स बका बरनन किया, ले मसाला इत का" का कथन यही सिद्ध करता है।

श्यामा जी ही दूसरे तन में श्री प्राणनाथ जी (हादी) के स्वरूप में सबको परमधाम का ज्ञान दे रही हैं। "ए इलम ले रुह अल्ला आया, खोल माएने इमाम कहलाया।" इस चौपाई से यह स्पष्ट होता है।

रुहें अर्स की कदम भूलियां, तिन पर रुह अपनी भेजत।
 अर्स बातें केहे समझावहीं, जो असल हक निसबत॥५॥
 परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ इस संसार में धनी के चरणों को भूल चुकी हैं। उनको प्रबोधित करने के लिये धाम

धनी ने अपनी अर्धांगिनी श्यामा जी को भेजा। मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर वे सभी को परमधाम की बातें कहकर समझा रही हैं। यह सारी लीला परमधाम के मूल सम्बन्ध के कारण ही हो रही है।

फरामोस हुइयां लाहूत से, रूहअल्ला संदेसे देवत।

ए मेहेर लेवें मोमिन, जो असल हक निसबत॥६॥

परमधाम से इस खेल में आकर ब्रह्मसृष्टियाँ नींद (फरामोशी) में फँस गयी हैं। उनके लिये श्यामा जी परमधाम की बातों को धनी के सन्देश के रूप में कह रही हैं। धाम धनी की मेहर से इन बातों को मात्र ब्रह्ममुनि ही ग्रहण करते हैं क्योंकि धनी के चरणों से इनका अखण्ड सम्बन्ध होता है।

भावार्थ— ब्रह्मवाणी को श्यामा जी की रसना कहा गया

है। "ए रसना स्यामाजीय की, पिलावत रस रब का" (बीतक ७१/१२) का कथन इस सम्बन्ध में बहुत ही महत्वपूर्ण है। श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर युगल स्वरूप परमधाम का ज्ञान अवतरित कर रहे हैं।

खिताब हादी सिर तो हुआ, जो फुरमान और न कोई खोलत।
हक कदम हिरदे मोमिनों, जो असल हक निसबत॥७॥

श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर श्यामा जी ने कुरआन तथा भागवत आदि धर्मग्रन्थों के भेदों को स्पष्ट किया। यह शोभा प्राणनाथ जी की है। उनके अतिरिक्त अन्य कोई भी सभी धर्मग्रन्थों के भेद नहीं खोल सकता था, इसलिये उन्हें हादी कहलाने की शोभा मिली है। मूल सम्बन्ध के कारण धनी के चरण

कमल तो ब्रह्मसृष्टियों के अन्दर ही वास करते हैं। यही कारण है कि महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर उन्हें सारी शोभा दी।

द्रष्टव्य- "हादी" का तात्पर्य निर्देशन (हिदायत) या पथ-प्रदर्शन करने वाला होता है। यद्यपि प्रसंगानुसार तीनों सूरतों को हादी कहलाने की शोभा प्राप्त है, किन्तु वे भी मूल स्वरूप के आदेश (हुक्म) से ही सब कुछ करते हैं। आदेश (हुक्म) के रूप में श्री राज जी का जोश-आवेश ही लीला करता है।

रुहें भूलियां खिलवत खेल में, ताए रुहअल्ला इलम ल्यावत।
सो कायम करे त्रैलोक को, जो असल हक निसबत॥८॥
आत्मायें इस खेल में आकर अपने मूल मिलावा को भूल गयी हैं। ब्रह्मसृष्टियों का धाम धनी के चरणों से

अखण्ड सम्बन्ध है, इसलिये श्यामा जी अपने दूसरे तन में उनको परमधाम की वाणी का ज्ञान दे रही हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को वे ही अखण्ड मुक्ति देंगी।

इस्क रब्द हुआ अर्स में, तो रूहें इत देह धरत।

रूहें चरन तो पकड़े, जो असल हक निसबत॥९॥

परमधाम में इश्क रब्द (प्रेम की बहस) हुआ, जिसके कारण ब्रह्मसृष्टियों को माया में तन धारण करना पड़ा। इस नश्वर जगत में भी ये धनी के चरणों में इसलिये आ रही हैं, क्योंकि इनका श्री राज जी से अखण्ड सम्बन्ध है।

आए कदम दिल मोमिन, जाको सब्द न पोहोंचे सिफत।

हकें अर्स दिल तो कहा, जो असल हक निसबत॥१०॥

धनी के चरणों की महिमा अनन्त है। शब्दों में उसका वर्णन करना असम्भव है। वे चरण कमल अब ब्रह्ममुनियों के धाम हृदय में वास कर रहे हैं। श्री राज जी ने इन ब्रह्ममुनियों के हृदय को अपना धाम इसलिये कहा है, क्योंकि अक्षरातीत के चरणों से इनका अखण्ड सम्बन्ध होता है।

ए बरनन हुकमें तो किया, जो जाहेर करनी खिलवत।

ए कदम रूहें तो पकड़ें, जो असल हक निसबत॥११॥

श्री राज जी के आदेश से उनकी शोभा-श्रृंगार का वर्णन तो मैंने इसलिये किया क्योंकि मूल मिलावा को इस संसार में उजागर (प्रकटन) करना था। ब्रह्मवाणी का ज्ञान प्राप्तकर ब्रह्मसृष्टियाँ धनी के चरणों को इसलिये पकड़ती हैं, क्योंकि इनका अपने प्राण वल्लभ अक्षरातीत

से अखण्ड सम्बन्ध है।

भावार्थ- यद्यपि बाह्य रूप से वर्तमान समय में मूल मिलावा को ही खिल्वत (खल्वत) कहा जाता है, क्योंकि सखियों सहित युगल स्वरूप मूल मिलावा में ही बैठे हैं, किन्तु गुह्य (बातिनी) रूप से दिल ही खिल्वत है, जिसके दो भेद हैं-

१. आशिक का दिल ही खिल्वत होता है, क्योंकि उसमें उसका माशूक रहता है। "असल अर्स के बीच में, हक का नाम आशिक" के कथन के आधार पर श्री राज जी आशिक हैं और दिल खिल्वत है, क्योंकि उसमें श्यामा जी सहित सभी सखियाँ और पच्चीस पक्षों का वास है। यही स्थिति श्यामा जी की भी है।

२. सखियाँ अपने धाम हृदय में युगल स्वरूप को बसाये रखती हैं। इस लीला में सखियाँ आशिक हैं और युगल

स्वरूप माशूक हैं। इस कथन के अनुसार सखियों का दिल ही खिल्वत है, क्योंकि उसमें युगल स्वरूप सहित पच्चीस पक्षों का वास है।

हकें आए किया अर्स दिल को, बीच ल्याए कदम न्यामत।
 सिर हुकमें हुज्रत तो लई, जो असल हक निसबत॥१२॥
 धाम धनी ने मेरे हृदय में अपनी चरण रूपी निधि रखी,
 जिससे मेरा हृदय धाम बन गया। श्री राज जी के आदेश
 को शिरोधार्य करते हुए मैंने उनकी अर्धांगिनी होने का
 दावा लिया, क्योंकि उन्हीं से तो मेरा वास्तविक रूप में
 अखण्ड सम्बन्ध है।

अर्स मोहोल दिल को किया, आए बैठी हक सूरत।
 ए अर्स मेहेर तो भई, जो असल हक निसबत॥१३॥

श्री राज जी ने मेरे हृदय को परमधाम का रंगमहल बना दिया और इसमें उनकी शोभा विराजमान हो गयी। परमधाम की यह बातिनी मेहर मेरे ऊपर इसलिये हुई क्योंकि धनी से मेरा मूल का सम्बन्ध है।

इन कदमों मेहेर मुझ पर करी, देखाए दर्ई वाहेदत।

तो इलम दिया बेसक, जो असल हक निसबत॥१४॥

धाम धनी के चरणों की मेहर से मुझे वहदत (एकदिली) की मारिफत की पहचान हो गयी है। श्री राज जी के चरणों से मेरा अखण्ड सम्बन्ध है, इसलिये तो उन्होंने मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर ब्रह्मवाणी के रूप में संशय रहित ज्ञान दिया।

भावार्थ— एकदिली की हकीकत (एकत्व की यथार्थता) के स्वरूप में युगल स्वरूप तथा सखियाँ हैं, किन्तु परम

सत्य (मारिफत) यही है कि श्री राज जी का हृदय ही एकत्व का मूल है। उसी के प्रकट रूप में परमधाम के सभी स्वरूप एकत्व (एकदिली) के रूप में लीला में निमग्न (डूबे हुए) हैं।

मोमिनों पाई बेसकी, सो इन कदमों की बरकत।

सो क्यों छूटें मोमिन से, जो असल हक निसबत॥१५॥

धनी के इन चरणों की कृपा से ही ब्रह्ममुनियों ने ब्रह्मवाणी के रूप में संशय रहित ज्ञान पाया है और उसको आत्मसात् करके स्वयं भी संशय रहित हो गये हैं। अब वे धनी के इन चरण कमल को कदापि नहीं छोड़ सकते क्योंकि इनसे तो ब्रह्ममुनियों का अखण्ड सम्बन्ध है।

इन चरणों किया अर्स दिल को, दिल बोलें सुध परत।

रुहें तो लेवें महंमद सिफायत, जो असल हक निसबत॥१६॥

प्रियतम अक्षरातीत के चरण कमल जब ब्रह्मसृष्टियों के हृदय में आ गये, तो उनके हृदय ने धाम की शोभा को प्राप्त कर लिया। उनके बोलने से ही यह पहचान हो जाती है कि इनके अन्दर धाम धनी का स्वरूप विराजमान हो गया है। ब्रह्मसृष्टियाँ श्यामा जी के द्वारा किये गये निर्देशन (अनुशंसा) को प्राप्त करती हैं, क्योंकि इनका धनी के चरणों से अखण्ड सम्बन्ध है।

भावार्थ- जो हृदय में होता है, वही वाणी द्वारा व्यक्त होता है। एक सामान्य व्यक्ति के कथन में और ब्राह्मी अवस्था को प्राप्त एक व्यक्ति के कथन में अन्तर होता है। इस चौपाई के दूसरे चरण में यही भाव दर्शाया गया है।

सिफ्त (सिफायत) शब्द का अर्थ अनुशंसा (प्रशंसा)

करना होता है। बोलचाल की भाषा में इसे "सिफारिश" भी कहा जाता है।

कुरआन पारा १, २, ३ और १६ तथा मेयराज नामे में यह कथन है कि मुहम्मद साहिब ने कहा है कि जब परब्रह्म सबका न्याय करेंगे, उस समय सभी ज्ञानी, भक्त, देवी, देवता, पीर, और पैगम्बर भी न्याय के लिये खड़े होंगे। दुःखों की अग्नि में जलने वाले लोग जब उनके पास जायेंगे, तो वे स्पष्ट शब्दों में कहेंगे कि हम कुछ नहीं कर सकते। आप मुहम्मद साहिब के पास जाइए। उस समय मैं जिसकी सिफ्त करूँगा, वह अखण्ड मुक्ति को प्राप्त हो जायेगा। इस प्रकार का कथन श्रीमुखवाणी में बड़ा कयामतनामा ७/३५, ३६, ३७ में भी है—

जलती सब पैगंमरों पे गई, पर ठंढक दारू काहूँ थें न भई।
हाथ झटक के कहाँ यों कर, हम सब सरमिंदे पैगंमर॥

सब दुनियां को एही दिया जवाब, महंमद इनको लेसी सवाब।
 सब दुनियां जलती महंमद पे आई, दोजख आग रसूलें छुड़ाई॥
 सबों को सुख महंमदे दिए, भिस्त में नूर नजर तले लिए।
 कहे छत्ता अपनायत कर, जिन कोई भूलो ए अवसर॥
 इसका बातिनी भाव यह है कि अक्षरातीत की आवेश
 शक्ति ही श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में सबका न्याय
 करेगी। न्याय दो प्रकार से होगा— १. पाँचवें दिन की
 लीला का न्याय, २. सत्स्वरूप की प्रथम बहिस्त में होने
 वाला न्याय।

श्री महामति जी के धाम हृदय में युगल स्वरूप ,
 जिबरील, तथा अशराफील के साथ अक्षर की वह आत्मा
 भी है, जो अरब में मुहम्मद साहिब के रूप में थी। उनका
 वह कथन इस सन्दर्भ में पूर्ण होता है कि श्री महामति जी
 के धाम हृदय से जो ब्रह्मवाणी अवतरित हुई है, उसमें

कुरआन की हकीकत एवं मारिफत के भेदों को स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार जो व्यक्ति आखिरी मुहम्मद (श्री प्राणनाथ जी) के निर्देशों का पालन करेगा, वह अखण्ड मुक्ति प्राप्त करेगा। यही मुहम्मद साहिब के द्वारा की जाने वाली सिफत (सिफायत) का स्वरूप है।

दूसरे शब्दों में – योगमाया के ब्रह्माण्ड में होने वाली न्याय की लीला में श्री प्राणनाथ जी की जिस पर मेहर होगी, वह अखण्ड मुक्ति को अवश्य प्राप्त होगा। जिन्होंने बशरी, मल्की (मलाइकी), या हक्की सूरत पर ईमान (सच्ची श्रद्धा एवं विश्वास) रखा होगा, वे अनुशंसा (सिफत) के पात्र होंगे और उनको अखण्ड मुक्ति अवश्य मिलेगी। श्रृंगार ७/१६ की इस चौपाई में श्यामा जी (मल्की सूरत) का प्रसंग है, जो अपने दूसरे तन (श्री महामति जी) के अन्दर विराजमान होकर सब

सुन्दरसाथ को निर्देश दे रही हैं (सिफ्त कर रही हैं)।
उनके निर्देशन को परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ अवश्य ही
ग्रहण करेंगी।

रुहें कदम पकड़ें हक के दिल में, पैठ इस्क ठौर ढूँढत।
दिल मोमिन अर्स तो कहा, जो असल हक निसबत॥१७॥
ब्रह्मसृष्टियों ने ज्ञान दृष्टि से धनी के चरणों को पकड़
लिया है और अब उनके दिल में पैठकर इश्क (प्रेम)
खोज रही हैं। धनी के चरणों से मूल सम्बन्ध होने के
कारण ही तो इनके हृदय को परमधाम कहा गया है।

भावार्थ— ब्रह्मवाणी के ज्ञान को ग्रहण करके धनी के
चरणों पर अटूट श्रद्धा व विश्वास (ईमान) रखना ही
उनके चरणों को पकड़ना है। प्रेम में डूबकर धनी के
चरणों को पकड़ने का तात्पर्य उन्हें अपने धाम हृदय में

अखण्ड कर लेना है। "इस्क बिना न पाइए, ए जो नूरतजल्ला हक" (किरंतन ७४/३७) के कथन से यह सिद्ध है कि प्रेम के बिना धनी के चरणों का दीदार नहीं हो सकता। इस प्रकार की इस चौपाई में प्रेम की गहराई आने से पूर्व की अवस्था का वर्णन है। चौपाई के दूसरे चरण से यही भाव स्पष्ट होता है।

ए कदम ले दिल मोमिन, अर्स से ना निकसत।

ए रूहें जानें अर्स बारीकियां, जो असल हक निसबत॥१८॥

ब्रह्मसृष्टियाँ जब अपने प्राण प्रियतम के अति सुन्दर चरणों को अपने धाम हृदय में बसा लेती हैं, तो उनकी दृष्टि परमधाम से नहीं हट पाती। परमधाम की इन गुह्य बातों को मात्र वे ब्रह्मसृष्टियाँ ही जानती हैं, जिनका धनी के चरणों से शाश्वत सम्बन्ध होता है।

भावार्थ- इस चौपाई में जिस धाम से उनकी दृष्टि के न हटने की बात कही गयी है, वह परमधाम के लिये भी है तथा धाम हृदय के लिए भी है। साक्षात्कार (दीदार) की अवस्था में परमधाम और धाम हृदय में एकरूपता हो जाती है, किन्तु इसके पूर्व ध्यान तो बेहद से परे परमधाम में ही केन्द्रित किया जाता है।

रूहें सिर पर कदम चढ़ाए के, अर्स मोहोलों में मालत।
 सब हक गुझ रूहें जानहीं, जो असल हक निसबत॥१९॥

आत्मायें धनी के चरण कमलों को अपने सिर पर रखकर परमधाम के महलों में घूमती हैं और श्री राज जी के हृदय की सभी गुह्य बातों को जानती हैं, क्योंकि धाम धनी के चरणों से इनका अनादि सम्बन्ध है।

भावार्थ- किसी भी वस्तु को सिर पर रखना उसके

प्रति अटूट श्रद्धा व सम्मान की भावना को प्रदर्शित करता है। ब्रह्मसृष्टियाँ धनी के चरण कमलों को अपने जीवन का आधार मानती हैं और श्रद्धा से परिपूर्ण होकर चितवनि में परमधाम के महलों का साक्षात्कार करती हैं।

ले चरन दिल अर्स में, सब गलियों में फिरत।

सब सुध होवे अर्स की, जो असल हक निसबत॥२०॥

ब्रह्माँगनायें अपने धाम हृदय में श्री राज जी के चरण कमलों को बसाकर परमधाम की गली-गली में घूमा करती हैं। इन्हें परमधाम के सभी पक्षों का बोध होता है। वस्तुतः धनी से इनका शाश्वत सम्बन्ध होता है।

रुहें नैन पुतलियों बीच में, हक कदम राखत।

एक हुए दिल अर्स रुहें, जो असल हक निसबत॥२१॥

आत्मायें अपने नेत्रों की पुतलियों के बीच में धनी के चरण कमल को रखती हैं। इस प्रकार उनका हृदय परात्म और श्री राज जी के हृदय से एकरूप हो जाता है।

भावार्थ- परमधाम में परात्म की लीला होती है और इस नश्वर जगत में आत्मा की। जिस प्रकार परात्म को नेत्र कहते हैं, क्योंकि उससे श्री राज जी को देखने अर्थात् प्रेम करने की लीला सम्पादित होती है, उसी प्रकार आत्मा को भी नेत्र की संज्ञा प्राप्त होती है। पुतली को हृदय इसलिये कहते हैं क्योंकि उसमें स्वरूप विद्यमान होता है। साक्षात्कार की स्थिति में आत्मा का हृदय, परात्म का हृदय, तथा श्री राज जी का हृदय तीनों एक स्वरूप हो जाते हैं। इस चौपाई के तीसरे चरण का यही आशय है।

दिल अर्स किया इन कदमों, इतहीं बैठे कर भिस्त।

ए न्यारे निमख न होवहीं, जो असल हक निसबत॥२२॥

हृदय में धनी के चरण कमलों के बस जाने से अब हृदय ही आनन्द का धाम बन गया है। जिन चरणों से आत्मा का अनादि काल से अखण्ड सम्बन्ध रहा है, उनको अपने हृदय में बसा लेने के पश्चात् वह एक क्षण के लिये भी इन्हें अलग नहीं होने देगी।

भावार्थ- इस चौपाई में प्रयुक्त बहिश्त (भिस्त) का तात्पर्य आनन्द के भण्डार, स्थान से है। यहाँ योगमाया की बहिश्तों से कोई सम्बन्ध नहीं है, बल्कि आनन्द के सागर अक्षरातीत के हृदय धाम में बस जाने को ही "भिस्त" कहा गया है।

गुन केते कहूं इन कदम के, जिन अर्स अखंड किया इत।

ए कदम ताले तिनके, जो असल हक निसबत॥२३॥

श्री राज जी के चरणों की महिमा का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। इन चरणों के कारण ही तो मेरा हृदय "अखण्ड परमधाम" कहलाने लगा, किन्तु धनी के ये अति मनोहर चरण उन्हीं के हृदय में बसते हैं जिनका अक्षरातीत से मूल का सम्बन्ध होता है।

तिन भाग की मैं क्या कहूं, ए जिन दिल कदम बसत।

धन धन कदम धन ए दिल, जो असल हक निसबत॥२४॥

जिनके धाम हृदय में श्री राज जी के ये चरण कमल बस जाते हैं, उनके सौभाग्य का मैं कैसे वर्णन करूँ। बस इतना ही कहा जा सकता है कि वे चरण कमल धन्य-धन्य हैं, जो आत्मा के धाम हृदय में विराजमान होकर

अखण्ड आनन्द देते हैं। इसी प्रकार आत्मा का वह हृदय भी धन्य-धन्य है, जिसमें धनी के ये चरण कमल विराजमान होते हैं। वस्तुतः यह तो मूल सम्बन्ध के कारण ही होता है।

कई मलकूत वारुं तिन खाक पर, जिन दिल ए कदम आवत।
और दिल अर्स न होवहीं, बिना असल हक निसबत॥२५॥

जिनके हृदय में प्रियतम अक्षरातीत के चरण कमल बस जाते हैं, उनकी चरण-धूलि के ऊपर (पाने के लिये) मैं अनेक वैकुण्ठ के राज्यों को न्योछावर कर दूँ। बिना मूल सम्बन्ध के तो किसी का भी हृदय धाम नहीं बन सकता (भले ही कोई कितना ही ज्ञानी, ध्यानी, एवं तपस्वी क्यों न हो)।

भावार्थ- इस चौपाई में स्वयं महामति जी का यह

कथन बहुत ही महत्वपूर्ण है कि जिन्होंने अपने हृदय में अक्षरातीत की शोभा को बसा लिया है, उनकी चरण-धूलि पर मैं अनेक वैकुण्ठ के राज्यों का परित्याग कर दूँ। निःसन्देह यह कथन चितवनि की महत्ता को उजागर कर रहा है, जिसके द्वारा अध्यात्म की यह ब्राह्मी अवस्था प्राप्त होती है।

दिल सांच ले सरीयत चले, या पाक होए ले तरीकत।

दिल अर्स न होए बिना मोमिन, जाकी असल हक निसबत॥२६॥

भले ही कोई सच्चे हृदय से कर्मकाण्ड का पालन करे या पवित्र भाव से उपासना (भक्ति) का मार्ग अपनाये, किन्तु ब्रह्ममुनियों के अतिरिक्त अन्य किसी का भी हृदय धाम नहीं हो सकता, क्योंकि मात्र इनका ही श्री राज जी से अखण्ड सम्बन्ध होता है।

भावार्थ- संसार के जीव कर्मकाण्ड (शरीयत) और उपासना (तरीकत) के मार्ग पर चलते हैं। तारतम ज्ञान से रहित होने के कारण वे परब्रह्म के धाम, स्वरूप, तथा लीला के बारे में नहीं जानते। यही कारण है कि वे हकीकत (सत्य) के मार्ग पर नहीं चल पाते तथा परब्रह्म के साक्षात्कार से वंचित रह जाते हैं। तारतम ज्ञान प्राप्त कर लेने पर भी कर्मकाण्ड को छोड़ पाना इनके लिये बहुत कठिन होता है।

कोई करो सब जिमिएं सिजदा, पालो अरकान लग कयामत।
पर ए कदम न आवें दिल में, बिना असल हक निसबत॥२७॥
भले ही कोई सारी पृथ्वी पर अल्लाह की बन्दगी में सिज्दा करे या कियामत (महाप्रलय) होने तक तरीकत (उपासना) के ५२ सिद्धान्तों का पालन करता रहे, फिर

भी यदि धनी से उसका मूल सम्बन्ध नहीं है तो उसके हृदय में परब्रह्म (श्री राज जी) के चरण कमल नहीं आ सकते।

भावार्थ- "अरकान" का साहित्यिक शब्द "इरकान" होता है। इसका अर्थ होता है - उपासना सम्बन्धी सिद्धान्त। इनकी संख्या ५२ है। ये इस प्रकार हैं-

३ सूरत (बशरी, मलकी, हक्की) + ४ आकाश (नासूत, मलकूत, जबरूत, लाहूत) + ५ मख्लूकात (सृष्टि) + ६ नमाज + ७ कियामत के निशान + ८ बहिश्तें + ९ रियाज (इबादत) + दसवीं सदी पर विश्वास। इनको मानने वाला ही सच्ची इबादत करने वाला मुसलमान कहलाने का अधिकारी है।

तेहेत्तर फिरके महंमद के, तामें एक को हक हिदायत।

और नारी एक नाजी कहा, जाकी असल हक निसबत॥२८॥

मुहम्मद साहिब ने अपने ७३ पन्थों (फिरकों) का वर्णन किया है। उसमें से केवल एक ही फिरका सच्चा होगा, जिसको श्री राज जी की ओर से मार्गदर्शन प्राप्त होगा (हिदायत होगी)। एकमात्र वही फिरका अखण्ड सुख को प्राप्त करने वाला होगा, शेष सभी ७२ फिरके दोजखी होंगे। इसी एक फिरके का धनी से अखण्ड सम्बन्ध होगा।

भावार्थ— कुरआन में जिस नाजी फिरके (अखण्ड आनन्द प्राप्त करने वाले समुदाय) का वर्णन है, वह ब्रह्ममुनियों का ही समुदाय है। इनके मूल तन परमधाम में है और मुहम्मद साहिब ने इनको ही अपना भाई कहकर इनकी महिमा गायी है।

उत्तम होए खट करम करो, आचार करो विधोगत।

ब्रह्म चरन न आवें ब्रह्मसृष्ट बिना, जाकी ब्रह्मसों निसबत॥२९॥

श्री महामति जी संसार के लोगों को सम्बोधित करते हुए कह रहे हैं कि भले ही आप लोग अपनी श्रेष्ठता का दावा करें, षट्कर्मों का आचरण करें, तथा विधिवत् सदाचार का पालन करें, फिर भी यदि आप में परमधाम का मूल सम्बन्ध नहीं है तो श्री राज जी के चरण कमल आपके हृदय में नहीं आ सकते।

भावार्थ- वेद पढ़ना और पढ़ाना, यज्ञ करना और कराना, दान लेना तथा दान देना— ये षट्कर्म माने जाते हैं। तारतम ज्ञान से रहित होकर भले ही कोई कितना भी धर्माचरण क्यों न करे, उसे परब्रह्म के साक्षात्कार का अनुभव नहीं हो सकता। प्रकृति से परे वह परब्रह्म, अन्तःकरण और इन्द्रियों से होने वाली भक्ति द्वारा, प्राप्त

नहीं हो सकता है।

खटसास्त्र पढ़ो कांड तीनों, करम निहकरम विधोगत।

ब्रह्म चरन न आवें ब्रह्मसृष्टि बिना, जाकी ब्रह्मसों निसबत॥३०॥

हे संसार के लोगों! भले ही आप छः शास्त्रों तथा ज्ञान, कर्म, और उपासना से युक्त चारों वेदों का ज्ञान प्राप्त कर लीजिए, या धर्मानुकूल कर्म का आचरण कीजिए, अथवा निष्कर्म (कर्म रहित) अवस्था को प्राप्त हो जाइए, किन्तु यदि आप में ब्रह्मसृष्टि का अँकुर नहीं है तो अक्षरातीत के चरण कमल आपके हृदय में नहीं बस सकते।

भावार्थ— चारों वेदों में ज्ञान, कर्म, और उपासना का विशेष रूप से विवेचन है, इसलिये तीन काण्डों के रूप में चारों वेदों का कथन किया जाता है। अथर्ववेद में संशय रहित विज्ञान है। इसमें तीनों वेदों के उपसंहार के साथ—

साथ परम सत्य को दर्शाया गया है। दूसरे शब्दों में, ऋग्वेद में ऋचाओं के रूप में काव्य है, तो यजुर्वेद में काव्य और गद्य दोनों हैं। इसी प्रकार सामवेद में गेय ऋचायें हैं। अथर्ववेद में तीनों प्रकार की रचनायें हैं। इस प्रकार रचना की दृष्टि से भी चारों वेदों को तीन काण्डों के रूप में विभक्त किया गया है।

शुभ कर्म करना धर्मानुकूल है, किन्तु विदेहावस्था को प्राप्त हो जाने पर कर्म करते हुए भी उसे कर्म से रहित माना जाता है, क्योंकि वह किसी भी वासना से मुक्त होता है। इस अवस्था को निष्काम कर्म, निष्कर्म, अथवा अकर्म के रूप में प्रतिपादित किया जाता है।

नव अंगों पालो नवधा, ल्यो बैकुंठ चार मुगत।

ए चरन न आवें ब्रह्मसृष्ट बिना, जाकी ब्रह्म सों निसबत॥३१॥

भले ही आप श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, और आत्म-निवेदन से युक्त नवधा भक्ति का आचरण कीजिए तथा वैकुण्ठ की सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, और सायुज्य मुक्ति को भी प्राप्त कर लीजिए, फिर भी यदि आपमें परमधाम का अँकुर नहीं है, तो धाम धनी के चरण कमल आपके हृदय में नहीं बस पायेंगे। ये चरण कमल तो केवल ब्रह्ममुनियों (आत्माओं) के धाम हृदय में ही बसते हैं।

वेद सास्त्र पुरान पढ़ो, सब पैँडे देखो प्रापत।

ए चरन न आवें ब्रह्मसृष्ट बिना, जाकी ब्रह्मसों निसबत॥३२॥

भले ही आप सभी वेद-शास्त्र एवं पुराणों का अध्ययन कर लीजिए तथा परब्रह्म का साक्षात्कार कराने वाले सभी मार्गों की खोज कर लीजिए, फिर भी ब्रह्मसृष्टियों के

बिना धनी के चरण कमल अन्य किसी के हृदय में नहीं आ सकते क्योंकि इनका ही धाम धनी से अखण्ड सम्बन्ध होता है।

कोई वेद पांचों मुख पढ़ो, कई त्रैगुन जात पढ़त।

पर ए चरन न आवें ब्रह्मसृष्ट बिना, जाकी ब्रह्म सों निसबत॥३३॥

यदि किसी के पास पाँच मुख हों और उनसे चारों वेदों को पढ़ता रहे, जैसे कि अनेक त्रिगुणात्मक देव पढ़ते हैं, फिर भी ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त अन्य किसी भी देव आदि के हृदय में परब्रह्म के चरण कमल नहीं आ सकते। वस्तुतः आत्माओं का ही परब्रह्म से अखण्ड सम्बन्ध होता है।

भावार्थ— छान्दोग्योपनिषद् के कथन "इतिहास पुराणः पंचमों वेदनावेदः" से यह सिद्ध होता है कि वेदों की

व्याख्या में लिखे गये ब्राह्मण ग्रन्थ ही इतिहास पुराण हैं और इन्हें ही पञ्चम वेद की शोभा प्राप्त है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि यदि कोई चारों वेदों सहित इस पञ्चम वेद (ब्राह्मण ग्रन्थों) का भी अध्ययन करे, तो भी धनी के चरण कमल उसके हृदय में नहीं आ सकते सिवाय ब्रह्मसृष्टियों के।

इस चौपाई में "मुख" शब्द का प्रयोग किया गया है। यहाँ पर आलंकारिक रूप से ऐसा कहा गया है कि जिस प्रकार एक सिर होते हुए भी चारों वेदों को कण्ठस्थ करने के कारण ब्रह्मा जी को चतुर्मुखी और दस विद्याओं का पण्डित होने से रावण को दशानन कहते हैं, उसी प्रकार यदि किसी व्यक्ति के पाँच मुख हों और उनसे वह चारों वेदों को पढ़ता रहे, तो भी धनी के चरणों को नहीं पा सकता।

ब्रह्मसृष्ट कही वेदने, ब्रह्म जैसी तदोगत।

तौल न कोई इनके, जाकी ब्रह्मसों निसबत॥३४॥

वेदों में ब्रह्मसृष्टियों को परब्रह्म के समान कहा गया है। इनकी तुलना अन्य किसी प्राणी से नहीं की जा सकती, क्योंकि इनका तो अक्षरातीत से अनादि काल से अटूट सम्बन्ध होता है।

भावार्थ- तैत्तरीयोपनिषद में कहा गया है कि "ब्रह्मविदो ब्रह्मेव भवति" अर्थात् ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म के समान होता है। परब्रह्म की अङ्गरूपा आत्मायें ही उनके वास्तविक स्वरूप को जानती हैं, इसलिये ब्रह्मसृष्टियों को उनके समान ही कहा गया है। परब्रह्म की अङ्गरूपा होने से उन्हें ब्रह्मरूप कहने पर भी अद्वैत सिद्धान्त में कोई त्रुटि नहीं होती।

वैराग्य शतक में भर्तृहरि जी ने स्पष्ट रूप से कहा है कि

"ब्रह्मेन्द्रादिमरुद्गणांस्तृणकणान् यत्र स्थितो मन्यते " अर्थात् परब्रह्म में अपना चित्त लगाकर ज्ञानीजन ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवगणों को तिनके की भांति नगण्य मानते हैं। भर्तृहरि जी के इस कथन से स्पष्ट है कि ब्रह्मज्ञानी (परमहंस) के समक्ष ब्रह्मादि देवताओं की महिमा नगण्य है।

महाभारत के शान्तिपर्व अध्याय १९८ श्लोक ६-१० में कहा गया है कि परमधाम के समक्ष सभी देवलोक नरक के समान हैं- "एते वै निश्चास्तात स्थानस्य परमात्मनः।"

सुकजी आए इन वास्ते, ले किताब भागवत।

ए चरन न आवें ब्रह्मसृष्ट बिना, जाकी ब्रह्मसों निसबत॥३५॥

इन्हीं ब्रह्मसृष्टियों की पहचान कराने के लिये शुकदेव जी

भागवत् ग्रन्थ लेकर आये। परमधाम की आत्माओं के बिना धनी के चरण कमल अन्य किसी के भी हृदय में नहीं आ सकते।

ब्रह्मने भेजी परमहंस पर, वेद अस्तुत बंदोबस्त।

ए ब्रह्म चरन क्यों छोड़हीं, जाकी ब्रह्मसों निसबत॥३६॥

अक्षरातीत ने अपने आदेश से ब्रह्मसृष्टियों के लिये ही वेद वाणी भेजी है, जिसमें परब्रह्म के साथ – साथ ब्रह्मसृष्टियों की भी महिमा दर्शायी गयी है। जिनका धनी के चरणों से अखण्ड सम्बन्ध है, वे भला उन चरणों को कैसे छोड़ सकती हैं।

भावार्थ— चारों वेदों में अक्षर –अक्षरातीत की विवेचना की गयी है। इसके साथ ही वेदों में ऐसे कई मन्त्र हैं , जिनमें ब्राह्मी अवस्था को प्राप्त होने वाले उन ब्रह्ममुनियों,

परमहंसों की महिमा का चित्रण किया गया है। सामवेद पूर्वाचिक अ० २ ख० १ मं० १ में कहा गया है— "यत् इन्द्र अहम् यथा त्वम्" अर्थात् हे परब्रह्म! जैसे आप दिव्य गुणों वाले हैं, वैसे ही मैं भी हो जाऊँ। निःसन्देह यह मन्त्र परमधाम की आत्माओं और परब्रह्म की सादृश्यता (समानता) को दर्शा रहा है।

कही आई उपनिषद इनपे, पूर्व रिखी कहे जित।

धाम बका पाया इनोंने, जाकी ब्रह्मसों निसबत॥३७॥

उपनिषदों में भी इन्हीं ब्रह्ममुनियों के विषय में वर्णन किया गया है। इन ग्रन्थों में इन्हें पूर्व काल का ऋषि कहकर वर्णित किया गया है। एकमात्र इन्हीं को अखण्ड परमधाम का ज्ञान प्राप्त है, क्योंकि इनका परब्रह्म से अटूट सम्बन्ध है। ऐसा उपनिषदों का मत है।

भावार्थ- इस चौपाई में ब्रह्मसृष्टियों (ब्रह्ममुनियों) को सृष्टि से पूर्व के ऋषि कहकर वर्णित किया गया है। जब इस सृष्टि की उत्पत्ति नहीं हुई थी , तब भी इनका अस्तित्व था, क्योंकि ये परब्रह्म के अंग रूप हैं और इनका अनादि स्वरूप है। कठोपनिषद् १ / २ / २३ में कहा गया है-

नायामात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥

अर्थात् यह परब्रह्म न तो प्रवचन से प्राप्त होता है , न बुद्धि से, और न वेदादि के बहुत अधिक ज्ञान से। स्वयं परब्रह्म के द्वारा जिसका वरण (चयन) किया जाता है, एकमात्र वह ही परब्रह्म को प्राप्त कर पाता है। उसे ही परब्रह्म अपना यथार्थ स्वरूप दर्शाते हैं।

इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि अक्षरातीत के द्वारा

अपनी अँगरूपा आत्माओं (ब्रह्ममुनियों) का ही चयन किया जाता है और वे ही अक्षरातीत का साक्षात्कार कर पाते हैं।

यहाँ यह संशय होता है कि परब्रह्म द्वारा साक्षात्कार के लिये केवल ब्रह्मसृष्टियों का ही चयन क्यों किया जाता है? क्या यह भेदभाव नहीं है?

समान्यतः जीव सृष्टि कर्मकाण्डों की परिधि से बाहर निकल ही नहीं पाती। वे तो "अन्धेनैव नीयमाना यथान्धा" अर्थात् अन्धों के पीछे चलने वाले अन्धों की तरह ही होते हैं।

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विदुः।

अश्र्वर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्र्वर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः॥

कठोपनिषद् २/६

बहुतों को ब्रह्मज्ञान तो सुनने को भी नहीं मिलता। बहुत

से लोग उसे सुनते तो हैं, पर फिर भी कुछ जान नहीं पाते। ब्रह्मज्ञान का कथन करने वाला विरला ही होता है। उसे प्राप्त करने वाला कोई विशिष्ट ही होता है। ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु के उपदेश से उसे कोई विरला ही प्राप्त कर पाता है।

संसार में तारतम ज्ञान के अवतरण से पूर्व जो भी ब्रह्मज्ञान रहा है, उससे परमगुहा (एकादश द्वार) में ध्यान-समाधि द्वारा योगमाया के ब्रह्माण्ड की अनुभूति होती रही है, किन्तु इस स्तर तक पहुँचने वाले अँगुलियों पर गिने जा सकते हैं। परमगुहा के रहस्य का ज्ञान जिनको नहीं था, वे निराकार मण्डल तक ही पहुँच पाते थे और उसी शून्य-समाधि को सब कुछ मानकर चुप हो जाते थे। बेहद और अक्षर से परे अक्षरातीत के साक्षात्कार का कोई भी मार्ग नहीं था।

अब ब्रह्मसृष्टियों के कारण तारतम ज्ञान का अवतरण हुआ है, जिसके द्वारा बेहद से परे उस स्वलीला अद्वैत परब्रह्म का सीधे ध्यान द्वारा साक्षात्कार किया जा सकता है। इस प्रकार उपनिषदों का आशय यही है कि मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही उस सच्चिदानन्द परब्रह्म का साक्षात्कार करने में समर्थ हैं। यद्यपि न्याय की दृष्टि से सभी बराबर हैं, किन्तु साक्षात्कार की वास्तविक पात्रता केवल ब्रह्मसृष्टियों में ही आती है।

ब्रह्मसृष्ट मोमिन कहे, रूहें लेवें वेद कतेब विगत।

ए समझ चरन ग्रहें ब्रह्मके, जाकी ब्रह्मसों निसबत॥३८॥

ब्रह्ममुनि (मोमिन) ही वेद-कतेब के गुह्य रहस्यों को ग्रहण करते हैं और धनी के चरणों में स्वयं को समर्पित करते हैं, क्योंकि ये धनी के साक्षात् अंग हैं।

ब्रह्मसृष्ट रुहें नाम दोए, अर्स रुहें ए जानत।

दोऊ जान चरन ग्रहें एकै, जाकी ब्रह्मसों निसबत॥३९॥

परमधाम की आत्मायें इस बात को अच्छी तरह से जानती हैं कि ब्रह्मसृष्टि और रुह शब्द एकार्थवाची हैं। इस प्रकार वे भाषा-भेद और मतवाद से अलग होकर एक ही अक्षरातीत (नूरजमाल) के चरण पकड़ती हैं। इनका ही धनी से शाश्वत सम्बन्ध होता है।

भावार्थ- हिन्दू लोग जिसे ब्रह्मसृष्टि कहते हैं, मुस्लिम जन उसे रुह कहते हैं। संकीर्ण विचारधारा वाले इसी में लड़ते रहते हैं, क्योंकि वे साम्प्रदायिक कट्टरता के कारण अपनी विशेष वेशभूषा और रीति-रिवाजों की दीवार नहीं तोड़ पाते और "उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्" को चरितार्थ नहीं कर पाते।

पढ़े वेद कतेब को, जोग कसब ना पोहोंचत।

दिल अर्स किया जिन कदमों, ए न आवें बिना हक निसबत॥४०॥

हिन्दू और मुसलमान दोनों ही वेद और कतेब ग्रन्थों का अध्ययन करते हैं तथा उसके अनुसार योग-साधना या सूफी मत (कसब) की साधना करते हैं, किन्तु धनी के जिन चरणों के हृदय में आ जाने से धाम कहलाने की शोभा प्राप्त हो जाती है, वे चरण कमल बिना मूल सम्बन्ध के हृदय में नहीं आ पाते।

भावार्थ- हिन्दू सन्त जिस प्रकार ध्यान-साधना की प्रक्रिया अपनाते हैं, उसी प्रकार सूफी फकीर भी शरीयत के बन्धनों को तोड़ इश्क-ए-हकीकत का मार्ग अपनाते हैं। इनकी साधना पद्धति बहुत अंशों में योग-साधना से मिलती-जुलती है, केवल भाषा की दृष्टि से ही भिन्नता दिखायी देती है।

दिल अर्स कह्या जो मोमिन, सो दिल नाजी पाक उमत।

और इलाज ना इलम कोई, बिना असल हक निसबत॥४१॥

ब्रह्ममुनियों (मोमिनों) के हृदय को धाम इसलिये कहा जाता है, क्योंकि इस पवित्र सृष्टि का हृदय मोक्ष प्राप्त करने वाला होता है। जिसका मूल सम्बन्ध धनी से नहीं है, चाहे वह कितनी ही साधना कर ले या धर्मग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त कर ले, उसका हृदय पूर्णब्रह्म का धाम नहीं बन सकता।

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय होता है कि क्या सतयुग और त्रेतायुग में लम्बी-लम्बी साधनायें करने वाले ऋषियों, योगियों, और तीर्थकरों का हृदय पवित्र था?

यद्यपि पूर्वकाल के ऋषि-मुनि, तपस्वी, और तीर्थकर आदि वासना शून्य हो गये थे तथा आचरण की दृष्टि से

भी वे पूर्णतया पवित्र थे, किन्तु तारतम ज्ञान न होने से वे परब्रह्म के धाम-स्वरूप को अपने हृदय में न बसा सके। सम्पूर्ण दिव्यताओं और आनन्दों का मूल अक्षरातीत ही जब हृदय मन्दिर में नहीं बसा, तो मात्र वासनाओं से रहित हो जाने से पूर्ण पवित्र नहीं बना जा सकता। अक्षरातीत का साक्षात्कार हुए बिना कोई भी पूर्णता का दावा नहीं कर सकता।

इलम लदुन्नी भेजिया, सो मोमिन ए परखत।

परख चरन ग्रहें हक के, जाकी असल हक निसबत॥४२॥

धाम धनी ने ब्रह्मसृष्टियों के लिये तारतम ज्ञान भेजा है। ब्रह्मवाणी की वास्तविक पहचान ब्रह्ममुनि ही करेंगे और परब्रह्म के चरणों में आयेंगे। वस्तुतः श्री राज जी के चरणों से इनका ही अखण्ड सम्बन्ध है।

हक हादी की मेहेर से, भिस्त आठ होसी आखिरत।

पर ए चरन न आवें दिल में, बिना असल हक निसबत॥४३॥

न्याय के दिन युगल स्वरूप की कृपा से संसार के सभी जीवों को आठ बहिशतों में अखण्ड मुक्ति प्राप्त हो जायेगी, लेकिन जिनके हृदय में परमधाम का अँकुर नहीं है, उनके हृदय में धनी के चरण कमल नहीं बस सकते।

महंमद सूरत हकी बिना, द्वार खुले ना हकीकत।

ए कदम पावें दिल औलिया, जाकी असल हक निसबत॥४४॥

मुहम्मद की हक्की सूरत श्री प्राणनाथ जी के बिना संसार को सत्य का मार्ग नहीं मिल सकता। एकमात्र ब्रह्ममुनि (औलिया) ही अक्षरातीत के चरणों को अपने धाम हृदय में बसायेंगे, क्योंकि इन्हीं का श्री राज जी से वास्तविक सम्बन्ध है।

ए कदम आए जिन दिल में, तित आई हक सूरत।

ए चौदे तबक पावें नहीं, बिना असल हक निसबत॥४५॥

जिनके हृदय में धाम धनी के ये चरण कमल आ जाते हैं, उनके हृदय में श्री राज जी का नख से शिख तक का पूर्ण स्वरूप आ जाता है। चौदह लोक की जीव सृष्टि के प्राणी चाहे कितना भी प्रयास कर लें, किन्तु मूल सम्बन्ध न होने से प्रियतम के चरणों को वे अपने हृदय में नहीं बसा सकते।

दिल मोमिन क्यों अर्स कहा, ए दुनी ना एता विचारत।

ए विचार तो उपजे, जो होए हक निसबत॥४६॥

संसार के लोग इतना भी विचार नहीं करते कि मात्र ब्रह्मसृष्टियों के हृदय को ही "धाम" क्यों कहा गया है, उनके हृदय को क्यों नहीं? बेचारे, ये क्या करें। इनके

मन में इस प्रकार के विचार भी तो तब आयें, जब इनका धनी से अखण्ड सम्बन्ध हो।

रुहें अर्स बुधजी बिना, छल का पावे न कोई कित।

ए सहूर भी दिल न आवहीं, बिना असल हक निसबत॥४७॥

परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों तथा विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक श्री प्राणनाथ जी के बिना इन चरणों को संसार का कोई भी व्यक्ति कहीं भी प्राप्त नहीं कर सकता। बिना मूल सम्बन्ध के तो इस तरह का विचार भी किसी के हृदय में नहीं आ सकता कि हम परब्रह्म के चरण कमल को अपने हृदय मन्दिर में बसा लें।

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय होता है कि भयानक वनों एवं पर्वतों की गुफाओं में कठोर साधनायें करने वाले जीव सृष्टि के ही प्राणी रहे हैं। क्या इस प्रकार का विचार

आये बिना ही उन्होंने गृह त्याग कर दिया?

इसका समाधान यह है कि अब तक जितने भी योगी, यति, तपस्वी, एवं पैगम्बर हो गये हैं, उन्हें तारतम ज्ञान प्राप्त नहीं था, जिसके कारण उन्हें परब्रह्म के धाम एवं स्वरूप का बोध ही नहीं था। स्वरूप के ज्ञान बिना, वे प्रेम में कैसे डूब सकते थे या अपने हृदय में बसाने की बात कैसे सोच सकते थे। इन योगियों-तपस्वियों में से अधिकतर ने या तो भवसागर से पार होने के लिये तप किया, या आध्यात्मिक या लौकिक ऐश्वर्य पाने के लिये तप किया। किसी के हृदय में प्रेम की कुछ ब्यार बही भी तो लक्ष्य भटका हुआ था। मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही प्रेमपूर्वक धनी के चरणों को अपने हृदय में बसाना चाहती हैं।

रुह अल्ला दज्जाल को मारसी, छोड़ावसी उमत।

कर एक दीन चरन देखावहीं, जाकी असल हक निसबत॥४८॥

कुरआन में लिखा है कि श्यामा जी (रुहुल्लाह) अज्ञान रूपी दज्जाल को मार डालेंगी अर्थात् नष्ट कर देंगी और ब्रह्मसृष्टियों को उससे मुक्त करेंगी। वे सब में एक सत्य की स्थापना करके उनको परब्रह्म की पहचान करायेंगी, जिनका धाम धनी के चरणों से अखण्ड सम्बन्ध होगा।

भावार्थ- यह प्रसंग कुरआन के पारः अठ्ठारह (१८), तफ़सीर-ए-हुसैनी के पृष्ठ संख्या ११७, एवं सूरः नूर (२४) में है। कुरआन की इस भविष्यवाणी के अनुसार सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने मात्र ब्रह्मसृष्टियों को ही तारतम दिया और सबको धाम धनी की पहचान करायी।

अर्स सूरत पर सिजदा, करसी मेहेंदी इमामत।

कदम ग्रहे देखावहीं, जाकी असल हक निसबत॥४९॥

श्री महामति जी ब्रह्मसृष्टियों का नेतृत्व करेंगे और परमधाम में विराजमान युगल स्वरूप का ध्यान करायेंगे। वे अक्षरातीत की पहचान उन ब्रह्मसृष्टियों को करायेंगे, जिनका धाम धनी से अखण्ड सम्बन्ध है।

भावार्थ— शरियत (कर्मकाण्ड) का सिज्दा (प्रणाम) ही हकीकत (सत्य) में ध्यान से दीदार करना होता है। कदम पकड़ने का तात्पर्य पहचान करने या उन पर समर्पित होने से है।

दोरु आए बीच हिंदुअन के, जैसे कहा हजरत।

ए बेवरा सोई समझहीं, जाकी असल हक निसबत॥५०॥

मुहम्मद साहिब ने बहुत पहले ही भविष्यवाणी की थी

कि मल्की और हक्की सूरत (सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी और श्री प्राणनाथ जी) का प्रकटन हिन्दू तन में होगा। इस बात को मात्र वे आत्मायें ही समझेंगी, जिनका धनी के चरणों से मूल सम्बन्ध है।

भावार्थ— मुहम्मद साहिब ने कुरआन के पारः १६ सूरः ताहा में वर्णन है कि एक व्यक्ति हिन्द में अवतरित होगा। यह स्थान पूर्व में काबुल एवं हिन्द में चिन्हित है। इसका संकेत पारः (९) की तफसीर-ए-हुसैनी में इस प्रकार है कि इसके सिर पर चोटी होगी, स्याह आँखें, गेंहुआ वर्ण होगा।

अर्स कहा दिल मोमिन, ले दिल अर्स गलियों खेलत।

सो पावें रूहें लाहूती, जाकी असल हक निसबत॥५१॥

ब्रह्ममुनियों के हृदय को ही परमधाम कहा गया है। वे

धाम धनी के चरणों को अपने हृदय में बसाकर परमधाम की गलियों में घूमा (क्रीड़ा) करते हैं। श्री राज जी के चरणों को मात्र परमधाम की आत्मायें ही प्राप्त कर पाती हैं, क्योंकि इन्हीं का धनी के चरणों से शाश्वत सम्बन्ध होता है।

ए कदम पावें रुहें लाहूती, नहीं औरों की किसमत।

ए सोई पावें हक बारीकियां, जाकी असल हक निसबत॥५२॥

श्री राज जी के चरणों को मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही प्राप्त कर पाती हैं। यह सौभाग्य और सृष्टियों को प्राप्त नहीं हो पाता। श्री राज जी के हृदय की गुह्य बातों को मात्र वे अँगनायें ही जानती हैं, जिनका धनी से अनादि सम्बन्ध है।

अहेल किताब एही कहे, एही पावें हक मारफत।

एही आसिक होवें मासूक की, जाकी असल हक निसबत॥५३॥

इन ब्रह्ममुनियों को ही सभी धर्मग्रन्थों के गुह्य रहस्यों का उत्तराधिकारी (वारिस) कहा जाता हैं। अक्षरातीत के हृदय में छिपे हुए परम सत्य (मारिफत) की बातों को तारतम ज्ञान द्वारा एकमात्र ये ही जानते हैं। धाम धनी (माशूक) से सच्चा प्रेम करने वाले (आशिक) ये ही हैं। इन्हीं का धनी से अखण्ड सम्बन्ध होता है।

जो रूहें उतरी अर्स से, सो कदम ले अर्स पोहोंचत।

देसी भिस्त सबन को, जाकी असल हक निसबत॥५४॥

जो आत्मायें परमधाम से आयी हैं, वे धनी के चरणों को अपने हृदय में बसाकर परमधाम पहुँचेंगी। इनका धनी के चरणों से शाश्वत सम्बन्ध है और ये ही सारे संसार को

आठ बहिश्तों में अखण्ड मुक्ति देंगी।

जो रूहें कही लाहूती, इजने इत उतरत।

सो पकड़ें कदम इस्क सों, जाकी असल हक निसबत॥५५॥

परमधाम की आत्मायें इस नश्वर जगत में श्री राज जी के आदेश से ही आयी हैं। इनमें परमधाम का अँकुर होता है, इसलिए प्रेम से भरकर अपने हृदय में धनी के चरणों को बसा लेती हैं।

रूहें अर्स रब्दे इत आइयां, देखो कौन कदम ग्रहे जीतत।

सों क्यों बिछुरें इन कदम सों, जाकी असल हक निसबत॥५६॥

परमधाम में इस्क रब्द करके ब्रह्मात्मायें इस मायावी जगत् में आयी हैं। अब उनके लिये यह परीक्षा की घड़ी है कि कौन सबसे पहले प्रियतम के चरण कमल को अपने

हृदय में बसाती है और माया से जीतती है। जिनका धाम धनी के चरणों से अनादि का सम्बन्ध है, भला वे धनी के चरणों से कैसे अलग रह सकती हैं।

याही रब्दे इत आइयां, लेने पिउ का विरहा लज्जत।

सो पाए कदम क्यों छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥५७॥

इसी इश्क रब्द (प्रेम संवाद) के कारण आत्मायें इस संसार में आयी हैं, ताकि श्री राज जी के विरह का स्वाद ले सकें। अक्षरातीत की अर्धांगिनी आत्मायें अपने प्राणवल्लभ के चरणों को पाकर भला कैसे छोड़ सकती हैं, कदापि नहीं।

ए रब्द अर्स खिलवत का, रूहें इस्क अंग गलित।

सो क्यों छोड़ें पांउं पकड़ें, जाकी असल हक निसबत॥५८॥

यह रब्द परमधाम की उस खिल्वत का है, जहाँ आत्माओं का हृदय अपने प्रियतम के प्रेम में डूबा रहता था। धाम धनी से अटूट प्रेम का सम्बन्ध रखने वाली आत्मायें इन चरणों को पाने के पश्चात् भला कैसे छोड़ सकती हैं।

रुहें इन कदम के वास्ते, जीवते ही मरत।

सो क्यों छोड़ें प्यारे पांउं को, जाकी असल हक निसबत॥५९॥

अपने प्रियतम के चरण कमल को पाने के लिये आत्मायें अपनी मैं का परित्याग कर देती हैं और अपना सर्वस्व धनी पर न्योछावर कर देती हैं। श्री राज जी की अँगरूपा ये आत्मायें उनके अति प्यारे चरणों को पाकर स्वप्न में भी नहीं छोड़ सकतीं।

भावार्थ— "जीवित ही मर जाना" एक मुहावरा है,

जिसका अर्थ होता है— अपने अन्दर किसी भी प्रकार के अहंकार की गन्ध न रहने देना। इस अवस्था में ही पूर्ण समर्पण होता है और धनी के चरण कमल प्राप्त होते हैं।

याही कदम के वास्ते, रूहें जल बल खाक होवत।

तो दिल आए कदम क्यों छूटहीं, जाकी असल हक निसबत॥६०॥

इन चरणों को पाने के लिये ही ब्रह्मसृष्टियाँ अपने प्रियतम के प्रेम रूपी अग्नि में जलकर राख हो जाती हैं, अर्थात् अपने अस्तित्व को मिटा देती हैं (विलीन कर लेती हैं)। ऐसी स्थिति में जब चरण कमल ही उनके धाम हृदय में विराजमान हो जाते हैं, तो वे भला किसी भी स्थिति में उनके हृदय से कैसे निकल सकते हैं। सखियाँ तो श्री राज जी की अभिन्न अङ्गरूपा हैं।

रुहें होवें जिन किन खिलके, हक प्रगटे सुनत।

आए पकड़ें कदम पल में, जाकी असल हक निसबत॥६१॥

परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ भले ही समाज के किसी भी वर्ग में क्यों न आयी हो , किन्तु जैसे ही उन्हें श्री प्राणनाथ जी (श्री राज जी) के प्रकट होने की खबर मिलती है, वे पल भर में अपने प्रियतम के चरणों में आ जाती हैं। वस्तुतः इनका धाम धनी से अखण्ड सम्बन्ध होता है।

दृष्टव्य— श्री केशव दास जी, मुकुन्द दास जी, चिन्तामणि जी , भीम भाई जी, लालदास जी, एवं महाराजा छत्रसाल जी ने श्री राज जी के स्वरूप की पहचान होते ही चरणों में आने में पल भर की भी देर नहीं की। इस चौपाई से यह निर्विवाद रूप से सिद्ध होता है कि श्री प्राणनाथ जी ही अक्षरातीत के स्वरूप

(आवेश) हैं।

जब आखिर हक जाहेर सुनें, तब खिन में रूहें दौड़त।
 सो क्यों रहें कदम पकड़े बिना, जाकी असल हक निसबत॥६२॥
 आखिरत (कियामत) के समय में अक्षरातीत के प्रकट होने की बात जैसे ही आत्मायें सुनती हैं, वे उसी क्षण अपने प्रियतम से मिलने के लिये दौड़ पड़ती हैं। जिनका धाम धनी से शाश्वत सम्बन्ध है, भला वे धनी के चरणों में आये बिना कैसे रह सकती हैं।

जब इमाम आए सुने, तब मोमिन रहे ना सकत।
 दौड़ के कदम पकड़ें, जाकी असल हक निसबत॥६३॥
 श्री प्राणनाथ जी (आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिब्बुज्जमां) के इस संसार में प्रकट होने की बात

सुनते ही ब्रह्ममुनि (मोमिन) माया के बन्धनों में नहीं रह पाते। वे दौड़कर उनके चरण पकड़ लेते हैं अर्थात् माया के बन्धनों को तोड़कर (मारकर) श्री जी की शरण में आ जाते हैं, क्योंकि इनका अनादि काल से मूल परमधाम से सम्बन्ध है।

भावार्थ- "दौड़कर चरणों में आने" का अर्थ है- मोह ममता और तृष्णा के बन्धनों को तोड़कर श्री राज जी की शरण में आ जाना।

मलकूत बैकुंठ वास्ते, दुनी पहाड़ से गिरत।

तो रुहें हक कदम क्यों छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥६४॥

जब नश्वर वैकुण्ठ (मलकूत) को पाने के लिये संसार के जीव पहाड़ से कूद जाते हैं, तो जिन ब्रह्मसृष्टियों की धनी से अखण्ड प्रीति है, भला वे श्री राज जी के चरण कमल

को कैसे छोड़ सकती हैं।

भावार्थ- संसार के लोगों ने परमात्मा को प्रसन्न करने के नाम पर स्वयं को पर्वत की ऊँचाई से लुढ़काने की अन्धपरम्परा डाल ली। उनकी मान्यता थी कि इसके द्वारा उन्हें वैकुण्ठ की प्राप्ति हो जायेगी। उनकी यह धारणा पूर्णतया मिथ्या थी और तामसिक विचारों एवं निराशा की परिचायक थी।

मलकूत बैकुण्ठ वास्ते, दुनी सिर लेत करवत।

तो रुहें हक कदम क्यों छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥६५॥

वैकुण्ठ (मलकूत) की प्राप्ति के लिये संसार के लोग काशी आदि स्थानों में अपने शरीर को आरे से चिरवाते थे। ऐसी स्थिति में अखण्ड परमधाम के शाश्वत आनन्द के लिये ब्रह्मसृष्टियाँ धनी के चरणों को कैसे छोड़ेंगी,

जबकि वे तो उनकी अँगनायें हैं।

भावार्थ- रूढ़िवादी लोगों की मान्यता थी कि काशी में अपने शरीर को आरे से चिरवाने पर वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है। उनकी इस मानसिकता का पण्डों ने बहुत लाभ उठाया। यह कुप्रथा शाहजहाँ के समय में समाप्त हो सकी थी। वैदिक ज्ञान के लोप होने से पौराणिक मत-मतान्तरों का बोलबोला हो गया। हिन्दू जनमानस "ऋते ज्ञानात् न मुक्तिः" के कथन को पूर्णतया भूलकर उन अन्धविश्वासी रास्तों पर चल पड़ा था, जिन्हें आसुरी कर्म भी कह सकते हैं। भैरव देवता को खुश करने के लिये पहाड़ की चोटी से छलांग लगाना तथा भगवान् विष्णु एवं शिव जी को खुश करने के लिए आरे से शरीर को चिरवाना घोर तामसिक कर्म है। देवी को खुश करने के लिये अभी भी अपनी जिह्वा को काटकर चढ़ाने की बातें

सुनायी पड़ती हैं। वेद, उपनिषद्, तथा दर्शन ग्रन्थों में इस प्रकार के कृत्यों का कहीं भी उल्लेख नहीं है। श्रीमद्भगवद्गीता ने तो इसे पूर्णतया त्याज्य एवं आसुरी कर्म की संज्ञा दी है। गीता १७/१९ का स्पष्ट कथन है—
मूढग्राहेणात्मनो यत्प्रीत्या क्रियते तपः।

परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम्॥

अर्थात् दूसरों का विनाश करने या हानि पहुँचाने के उद्देश्य से मूर्खतावश अपने शरीर को पीड़ा देते हुए जो तप किया जाता है, वह तामसिक तप कहा जाता है।

कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।

मां चैवान्तः शरीरस्थं तान्विद्ध्युसुरनिश्चयान्॥

गीता १७/६

शरीर में स्थित चैतन्य को पीड़ा देने वाले तप को निश्चय ही आसुरी मानना चाहिए।

मलकूत बैकुंठ वास्ते, दुनियां आग पीवत।

तो रूहें हक कदम क्यों छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥६६॥

जब वैकुण्ठ (मलकूत) की प्राप्ति के लिये दुनिया के लोग आग पीते रहे हैं, तो ब्रह्मसृष्टियाँ भला श्री राज जी के चरणों से स्वयं को कैसे अलग कर सकती हैं। उनके अन्दर परमधाम का अँकुर विद्यमान है।

भावार्थ— तमोगुणी तांत्रिक क्रियाओं में अग्निपान की सिद्धि की जाती है। इसका अध्यात्म से कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

मलकूत बैकुंठ वास्ते, दुनी भैरव झंपावत।

तो रूहें हक कदम क्यों छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥६७॥

वैकुण्ठ की प्राप्ति के लिये लोग भैरव देवता को खुश करना चाहते हैं। इसके लिये वे पहाड़ की चोटी से छलांग

लगाकर अपने प्राण त्याग देते हैं। यदि वे वैकुण्ठ के लिये इतना कष्ट उठा सकते हैं, तो परमधाम की आत्मायें अपने धनी के चरणों को कैसे छोड़ सकती हैं। उनका परमधाम का शाश्वत सम्बन्ध है।

भावार्थ— भैरव को शिव जी का तामसिक रूप माना जाता है। तान्त्रिक क्रियाओं में भैरव की ही पूजा होती है। उन्हें खुश करने के लिये पहाड़ की चोटी से छलांग लगाना भैरव झांप कहलाता है।

मलकूत बैकुण्ठ वास्ते, दुनी हेम में गलत।

तो रुहें हक कदम क्यों छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥६८॥

जब वैकुण्ठ की प्राप्ति के लिये संसार के लोग बर्फ में अपने शरीर को गला देते हैं, तो ब्रह्मसृष्टियां अपने प्राण प्रियतम के चरणों को कैसे छोड़ सकती हैं। इनका तो

धनी से अंग-अंगी का सम्बन्ध है।

भावार्थ- पाँचों पाण्डवों का हिमालय में गल जाने का प्रसंग महाभारत में वर्णित है। केवल धर्मराज युधिष्ठिर ही बिना गले सदेह स्वर्ग जा सके थे। अन्य तपस्वी जन भी बर्फ में अपने शरीर को गला देते हैं। वस्तुतः अपनी इन्द्रियों एवं मन को विषयों से अलग करना ही तप है। अत्यधिक शीत या उष्णता से स्वयं को पीड़ा देना अथवा हिंसक कर्मों द्वारा स्वयं को कष्टों में झोंकना तप नहीं है, बल्कि अज्ञानता के घोर अन्धकार में भटकना है। गीता में वास्तविक तप का निरूपण इस प्रकार है-

देव, द्विज, गुरु और ज्ञानीजनों का पूजन , शौच, सरलता, ब्रह्मचर्य, तथा अहिंसा- यह शरीर सम्बन्धी तप हैं। जिस कथन से किसी को उद्वेग (उत्तेजना) न हो, सत्य, प्रिय, एवं हितकारी हो- वाणी का तप कहा

जाता है। वेद का स्वाध्याय भी इसी के अन्तर्गत है। मन की प्रसन्नता, सौम्यता, मौन, आत्मसंयम, और अन्तःकरण की शुद्धि मानसिक तप है।

और इलाज जो कई करो, पर पावे ना बिना किसमत।

सो हक कदम ताले मोमिन, जाकी असल हक निसबत॥६९॥

हे संसार के लोगों! भले आप कितना ही उपाय क्यों न करें, किन्तु मूल सम्बन्ध के सौभाग्य के बिना धनी के चरण कमल नहीं मिल सकते। प्रियतम अक्षरातीत के चरण कमल तो ब्रह्मसृष्टियों के ही सौभाग्य में हैं, जिनका धाम धनी से अनादि काल का अखण्ड सम्बन्ध है।

ए बिन मोमिन कदम न पाइए, जो करे कई कोट मेहेनत।

ए मोमिन अर्स अजीम के, जाकी असल हक निसबत॥७०॥

भले ही कोई करोड़ों प्रयास क्यों न करे , किन्तु ब्रह्ममुनियों के अतिरिक्त श्री राज जी के चरणों को अन्य कोई नहीं पा सकता। ये ब्रह्ममुनि (मोमिन) परमधाम के रहने वाले हैं, जिनका धाम धनी से शाश्वत सम्बन्ध रहता है।

**रुहें अर्स की कहें वेद कतेब, बिन कुंजी क्योंए न पाइयत।
सो रुहअल्ला बेसक करी, जाकी असल हक निसबत॥७१॥**

वेद-कतेब में ऐसा कहा गया है कि ब्रह्मसृष्टियाँ परमधाम की रहने वाली हैं। बिना तारतम ज्ञान के इस रहस्य को नहीं जाना जा सकता। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी (श्यामा जी) ने तारतम ज्ञान द्वारा ब्रह्मसृष्टियों को संशयरहित कर दिया। इन्हीं आत्माओं का धनी से मूल सम्बन्ध है।

भावार्थ- अथर्ववेद १०/८/३ में तीन प्रकार की जीव सृष्टि – सात्विक, राजसी, तामसी – के अतिरिक्त उस त्रिगुणातीत ब्रह्मसृष्टि का वर्णन है, जो कभी माया के बन्धन में नहीं आती और हमेशा परब्रह्म की सान्निध्यता में रहती हैं।

माहेश्वर तन्त्र अध्याय ४१ श्लोक १३ में कहा गया है कि अग्नि की चिनगारियों तथा जल की लहरों की तरह आत्मायें परब्रह्म के आनन्द स्वरूप की अङ्गरूपा हैं। इसी प्रकार कुरआन के तीसरे पारे की व्याख्या में तफसीर-ए-हुसैनी में कहा गया है कि पाँच तरह की सृष्टि हैं। इसमें मूल इमदाए की सृष्टि ही ब्रह्मसृष्टि है।

हक कदम दिल मोमिन, देख देख रुह भीजत।

एक पाउं पल ना छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥७२॥

धनी की अँगरूपा होने से आत्माओं के धाम हृदय में श्री राज जी के चरण कमल विराजमान होते हैं, जिन्हें देख-देखकर वे आनन्दमग्न रहा करती हैं और चौथाई पल के लिये भी उनसे अलग नहीं होतीं।

ए कदम रूहें दिल लेयके, देह झूठी उड़ावत।

कोई दिन रखें वास्ते लज्जत, जाकी असल हक निसबत॥७३॥

इन चरणों को अपने धाम हृदय में बसाकर आत्मायें अपने नश्वर तन को इस प्रकार न्योछावर कर देती हैं कि उनके लिये उसके अस्तित्व का कोई महत्व नहीं रह जाता। यदि अक्षरातीत की अँगनाओं का संसार में कुछ समय तक तन रहता भी है, तो मात्र परमधाम और माया के खेल का स्वाद लेने के लिये।

मोमिन आए अर्स से, दुनी क्या जाने ए गत।

ए कदम ताले ब्रह्मसृष्ट के, जाकी असल हक निसबत॥७४॥

ब्रह्ममुनि परमधाम से इस माया के खेल में आये हैं। इस रहस्य को संसार के लोग नहीं जान पाते और इन्हें अपने समान ही समझते हैं। धनी के चरण कमल तो मात्र ब्रह्मसृष्टियों को ही प्राप्त होते हैं क्योंकि ये उनके साक्षात् तन हैं।

रुहें खाना पीना रोजा सिजदा, इन कदमों हज ज्यारत।

और चौदे तबक उड़ावहीं, जाकी असल हक निसबत॥७५॥

धनी के इन चरणों में ही मोमिनो (ब्रह्ममुनियों) का भोजन है, जल है, और रोजा, नमाज तथा तीर्थयात्रा का आनन्द है। जिनका श्री राज जी के इन चरणों से सम्बन्ध होता है, उनके लिये चौदह लोक के मायावी सुखों का

कोई भी महत्व नहीं होता।

भावार्थ- आत्मायें धनी के चरणों के दीदार के बिना रह नहीं सकतीं, इसलिये उनके भोजन और जल के रूप में चरणों का वर्णन किया गया है। चरणों के ध्यान से ही हृदय परम पवित्र रहता है, इसलिये यही उनके लिये रोजा रखना है, युगल स्वरूप के चरणों का चिन्तन ही नमाज पढ़ना है, तथा उनकी शोभा में डूबे रहना ही वास्तविक तीर्थयात्रा (हज) है। इन ब्रह्ममुनियों को शरियत (कर्मकाण्ड) की नमाज, रोजा, और हज आदि करने की कोई आवश्यकता नहीं होती।

ए चरन पेहेचान होए मोमिनो, वाही को प्यारे लगत।

ना तो बुरा न चाहे कोई आपको, पर क्या करे बिना हक निसबत॥७६॥

श्री राज जी के चरणों की पहचान मात्र ब्रह्ममुनियों को

ही होती है और उन्हीं को प्यारे भी लगते हैं। परमधाम का मूल सम्बन्ध न होने से जीव सृष्टि युगल स्वरूप के चरणों से प्रेम नहीं कर पाती। यद्यपि कोई भी व्यक्ति अपना बुरा नहीं चाहता, किन्तु मूल सम्बन्ध न होने से वह क्या करे। ब्रह्मसृष्टियों की राह पर चल पाना उसके लिये बहुत कठिन होता है।

पाए बिछुरे पिउ परदेस में, बीच हक न डारें हरकत।

ए करी इस्क परीछा वास्ते, पर ना छूटे हक निसबत॥७७॥

अब ब्रह्मसृष्टियों ने अपने प्राणप्रियतम को इस नश्वर जगत में भी पा लिया है। उनके और धनी के बीच में अब माया कोई भी अड़चन (हरकत) नहीं डाल सकती। धाम धनी ने तो प्रेम की परीक्षा लेने के लिये इन्हें माया के खेल में भेजा था, परन्तु धनी के चरणों से मूल सम्बन्ध

बना ही रहा।

जिन परदेस में पांउं पकड़े, ज्यों बिछुरे आए मिलत।

सो मोमिन छोड़ें क्यों कदम को, जाकी असल हक निसबत॥७८॥

जिस प्रकार बिछोह (वियोग) के पश्चात् मिलन की घड़ियाँ बहुत ही मधुर होती हैं, उसी प्रकार आत्माओं ने इस मायावी जगत में भी धाम धनी के चरणों को पा लिया है। अब वे किसी भी स्थिति में श्री राज जी के चरणों को नहीं छोड़ सकतीं, क्योंकि इनका चरणों से अटूट सम्बन्ध है।

जो बिछुड़ के आए मिले, सो पलक ना छोड़ सकत।

सो रूहें पाए चरन पिउ के, जाकी असल हक निसबत॥७९॥

जिस प्रकार वियोग के पश्चात् मिलने पर पल भर के

लिये भी छोड़ पाना सम्भव नहीं होता, उसी प्रकार परमधाम की आत्माओं ने अपने प्रियतम के चरणों को इस नश्वर जगत में पा लिया है। अब इनके लिये धनी के चरणों को छोड़ पाना किसी प्रकार से सम्भव नहीं है। ऐसा मूल सम्बन्ध के कारण ही हो सका है।

असैं सब्द न पोहोंचे त्रैलोक का, सो दिल मोमिन अर्स कहावत।

इन कदमों बड़ाई दिल को दर्ई, जाकी असल हक निसबत॥८०॥

इस त्रिगुणात्मक ब्रह्माण्ड का कोई भी शब्द परमधाम में नहीं जा सकता, किन्तु कितने आश्चर्य की बात है कि ब्रह्ममुनियों का हृदय ही धाम कहलाता है। परमधाम के मूल सम्बन्ध के कारण ही धनी के चरण कमल आत्माओं के हृदय में विराजमान हुए, जिससे उन्हें धाम कहलाने की शोभा मिली।

भावार्थ- चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड को संक्षिप्त रूप में त्रैलोक्य (पृथ्वी, स्वर्ग तथा वैकुण्ठ) कहकर सम्बोधित किया जाता है। आधुनिक विज्ञान लोक-लोकान्तरों को सौर मण्डल या आकाशगंगा के मण्डल के रूप में मानता है। प्रत्येक सौर मण्डल में कुछ ग्रहों के साथ सूर्य स्थित है और प्रत्येक आकाशगंगा में करोड़ों सूर्य हैं। इसी प्रकार प्रकृति मण्डल में करोड़ों आकाशगंगाओं के अस्तित्व का पता चला है, किन्तु विशेषज्ञों का मत है कि इस प्रकृति मण्डल की सभी आकाशगंगाओं की गणना कर पाना मानवीय बुद्धि से परे है। इसी प्रकार वैदिक मान्यता में सम्पूर्ण प्रकृति मण्डल को जहाँ सात (भूः भुवः स्वः महः जनः तपः तथा सत्यं) या तीन भागों (पृथ्वी, अन्तरिक्ष, तथा द्यु लोक) में बाँटा गया है। वहीं पौराणिक मान्यता में चौदह लोक का वर्णन किया गया है और देवी भागवत

आदि ग्रन्थों में यह कह दिया गया है कि धूल के कणों को तो गिना जा सकता है किन्तु ब्रह्माण्डों की संख्या को नहीं गिना जा सकता।

इस चौपाई में "त्रैलोक" (त्रैलोक्य) शब्द का तात्पर्य चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड से ही है, जो स्वप्नवत् है और इस जैसे असंख्य ब्रह्माण्ड इस प्रकृति मण्डल में भ्रमण कर रहे हैं।

दिल मोमिन एही पेहेचान, दिल कदम छोड़ न चलत।

तो पाई अर्स बुजरकी, जो थी असल हक निसबत॥८१॥

ब्रह्मसृष्टियों के हृदय की मुख्य पहचान यही है कि वे किसी भी परिस्थिति में अपने प्रियतम के चरणों को नहीं छोड़ सकतीं। यही कारण है कि उनके हृदय को परमधाम कहलाने की शोभा मिली है। श्री राज जी के चरणों से

अनादि सम्बन्ध होने के कारण ही ऐसा सम्भव हुआ है।

ए कदम नूरजमाल के, आई दिल मोमिन लज्जत।

सो मोमिन अरवा अर्स के, जाकी असल हक निसबत॥८२॥

ब्रह्ममुनियों ने धनी के नूरी चरणों को अपने धाम हृदय में बसाकर उसका रसास्वादन किया है (स्वाद लिया है)। इन ब्रह्ममुनियों (मोमिनों) के रूप में परमधाम की आत्मायें हैं, जिनका धनी से अंग-अंगी का अखण्ड सम्बन्ध है।

भावार्थ- जिस प्रकार ब्रह्मसृष्टियाँ परमधाम में श्री राज जी के नूरी चरणों (स्वरूप) को अपने नूरी नेत्रों से देखती हैं, उसी प्रकार इस जागनी ब्रह्माण्ड में चितवनि के द्वारा अपने धाम हृदय में देखती हैं। उस समय इन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि हम साक्षात् परमधाम में ही देख

रही हैं। इसी को चरणों की लज्जत (स्वाद) लेना कहते हैं।

ए चरन दिल का जीव है, तिन बिन जीव क्यों जीवत।
तो हकें अर्स कहा दिल्को, जो असल हक निसबत॥८३॥
धनी के चरण कमल ही ब्रह्मसृष्टियों के दिल के
आस्तित्व (जीवन) के आधार हैं। इन चरणों के बिना
आत्मा इस संसार में रह ही नहीं सकती, इसलिये तो
स्वयं श्री राज जी ने आत्माओं के हृदय को अपना धाम
कहा है। इस हृदय (दिल) का धनी से शाश्वत सम्बन्ध
है।

भावार्थ— "जीवयति येन स जीवः" अर्थात् जिसके द्वारा
जीवित रहा जाता है, उसे जीव कहते हैं। जिस प्रकार
किसी पञ्चभौतिक तन में जीव के रहने पर ही उसका

अस्तित्व सम्भव होता है, उसी प्रकार धनी के चरणों से ही आत्मा के हृदय (दिल) का अस्तित्व है, इसलिये उपमा रूप में धनी के चरणों को दिल का "जीव" कहा गया है। आत्मा को "जीव" शब्द से सम्बोधित करने का कारण यह है कि आत्मा में ही हृदय का अस्तित्व है और आत्मा का आधार धनी के चरण हैं। इस प्रकार इस चौपाई में धनी के चरणों और आत्मा दोनों को ही जीव कहा गया है। यह विशेष बात है कि यहाँ जीव शब्द से तात्पर्य आदिनारायण के चिदाभास से नहीं है, बल्कि "जीवन" (अस्तित्व) के आधार को ही जीव कहा गया है, जैसे रास ग्रन्थ में श्री राज जी ने सखियों को अपने जीव का जीवन कहा है—

सखियों बात हूं केही कहूं, जीव मारो नरम।

वल्लभ मारा जीवनी प्रीतम, अलगी करूं हूं केम॥

जेम कहो तेम करुं रे सखियों, बांध्या जीव जीवन।
अधखिण अलगो न थाऊं, करार करो तमे मन॥

जो निसबती दिल चरनके, तामें जरा न तफावत।

ए कदम रूहें ल्याई दुनीमें, जाकी असल हक निसबत॥८४॥

श्री राज जी के चरण कमल से जिन आत्माओं का हृदय जुड़ा हुआ है, उनमें और धनी में कोई भी अन्तर नहीं रह जाता। अक्षरातीत से अखण्ड सम्बन्ध रखने वाली आत्माओं ने ही अपने प्रियतम के चरणों को इस संसार में बसाया है।

भावार्थ- जिस प्रकार परात्म के हृदय में धनी के चरण कमल अखण्ड रूप से विराजमान हैं, इसलिये उसे श्री राज जी का ही स्वरूप माना जाता है, उसी प्रकार आत्मा के धाम हृदय में चरणों के बस जाने पर वह भी

धनी का स्वरूप बन जाती है। वस्तुतः इस चौपाई में श्री महामति जी की ओर संकेत किया गया है, जिनके धाम हृदय में युगल स्वरूप के चरण कमल होने से उन्हें अक्षरातीत की शोभा मिली है।

यद्यपि परमधाम में वहदत (एकत्व) की भूमिका है, जहाँ परात्म और धाम धनी का एक ही स्वरूप है, किन्तु विधि और निषेध के इस संसार में एक से अधिक परमात्मा की मान्यता नहीं हो सकती। यही कारण है कि पाँचवे दिन की लीला में श्री महामति जी के अतिरिक्त श्री लालदास जी, महाराजा छत्रसाल जी, तथा भीम भाई आदि अनेक ब्रह्ममुनियों के हृदय में भी धनी की शोभा बस चुकी थी तथा छठे दिन की लीला में भी परमहंस महाराज श्री युगल दास तथा श्री रामरतन दास जी जैसे परमहंसों ने अपने धाम हृदय में अपने प्राणवल्लभ को

बसा लिया था, किन्तु उन्हें अक्षरातीत कहलाने की शोभा नहीं मिली। यह विशेष ध्यान देने योग्य तथ्य है कि यद्यपि स्वरूप से ही लीला होती है, किन्तु स्वरूप के विद्यमान होने पर भी अक्षरातीत की लीला होना या शोभा मिलना आवश्यक नहीं है।

हक जाहेर बीच दुनी के, रूहें समझ के समझावत।

हुआ फुरमाया रसूल का, तो जाहेर हुई हक निसबत॥८५॥

अक्षरातीत इस संसार में श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में प्रकट हो चुके हैं। ब्रह्मसृष्टियाँ इस बात को जानकर अन्य लोगों को समझाती हैं। मुहम्मद साहिब ने ब्रह्मसृष्टियों (मोमिनो) के सन्दर्भ में जो कुछ भी कहा था, वह सब सत्य घटित हो गया है। अब अक्षरातीत से आत्माओं का मूल सम्बन्ध भी उजागर हो गया है।

भावार्थ- मुहम्मद साहिब ने पारः १७ में कहा है कि आखिरी नबी एक मुहम्मद है। जबकि पारः १६ सूरः मरियम में एक मर्द कामिल की अत्यन्त महिमा वर्णित है जो कि समस्त धर्मों को एक कर देगा।

चौदे तबक करसी कायम, ए जो झूठे खाकी बुत।

मोमिन बरकत इन कदमों, जाकी असल हक निसबत॥८६॥

आत्माओं का श्री राज जी से परमधाम का अखण्ड सम्बन्ध है। धनी के चरणों की कृपा से चौदह लोक के उन सभी प्राणियों को वे शाश्वत मुक्ति देंगे, जो महाप्रलय में लय हो जाते हैं और जिनके तन भी पञ्चभौतिक होते हैं।

सबों भिस्त दे घरों आवसी, रूहें कदम ग्रहें बड़ी मत।

अर्स के तन जो मोमिन, जाकी असल हक निसबत॥८७॥

इन आत्माओं (ब्रह्ममुनियों) के मूल तन परमधाम में हैं और ये अक्षरातीत की अँगनायें हैं। ये तारतम ज्ञान द्वारा धनी के स्वरूप की पहचान करके उनके चरणों में आयेंगी तथा संसार के सभी प्राणियों को मुक्ति देकर वापस परमधाम जायेंगी।

ए काम किया सब हुकमें, अव्वल बीच आखिरत।

हक बका द्वार खोलिया, महामत ले आए निसबत॥८८॥

श्री राज जी के आवेश स्वरूप आदेश (हुक्म) ने ब्रज, रास, और जागनी ब्रह्माण्ड में सारी लीला की है। श्री महामति जी ने तारतम ज्ञान से ब्रह्मसृष्टियों को धनी से उनके मूल सम्बन्ध का ज्ञान दिया, और अक्षरातीत तथा

परमधाम के दर्शन (दीदार) का मार्ग (दरवाजा) खोल दिया।

प्रकरण ॥७॥ चौपाई ॥४४३॥

कदम परिकरमा निसबत

इस प्रकरण में धनी के चरणों को केन्द्र बनाकर परमधाम के मूल सम्बन्ध को दर्शाया गया है। कदमों की परिक्रमा का यही भाव है। इस प्रकरण में यह बात विशेष रूप से बतायी गयी है कि धाम धनी के चरणों को हृदय में बसा लेने पर परमधाम के किस-किस सुख का अनुभव होता है। यही चरणों का सुख है, जिसे आत्मायें इस संसार में भी प्राप्त कर लेंगी।

उमर जात प्यारी सुपने, निस दिन पिउ जपत।

लाल कदम न छोड़ें मोमिन, जाकी असल हक निसबत॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि इस मायावी जगत् में आत्माओं ने जिन मानव तनों को धारण किया है, उनकी प्यारी उम्र प्रियतम को दिन-रात पुकारने में बीत जाती

है। जिन ब्रह्मात्माओं का धनी के चरणों से शाश्वत सम्बन्ध है, वे लालिमा से भरपूर धनी के अलौकिक चरणों को कभी भी नहीं छोड़ेंगी।

भावार्थ- उम्र तो मात्र नश्वर तन की ही होती है। आत्मा की उम्र अनादि और अनन्त है। इस चौपाई के दूसरे चरण में माला फेरकर नाम जपने का प्रसंग नहीं है, बल्कि मानसिक और आत्मिक दृष्टि से युगल स्वरूप के चिन्तन तथा ध्यान में खोये रहने का प्रसंग है।

मांग लई प्यारी उमर, ए जो रब्द के बखत।

लाल पांउं तली छोड़ें क्यों मोमिन, जाकी असल हक निसबत॥२॥

परमधाम में होने वाली प्रेम बहस (इश्क रब्द) के समय ही ब्रह्मसृष्टियों ने इस नश्वर जगत में रहने की मांग की थी। श्री राज जी के चरणों से जिनका अखण्ड सम्बन्ध

है, वे आत्मायें अपने प्रियतम की लाल तलियों की शोभा को अपने हृदय से कदापि अलग नहीं कर सकतीं।

भावार्थ- इस संसार में कोई भी व्यक्ति स्वाभाविक रूप से मरना नहीं चाहता। उत्तेजना के वशीभूत होकर ही कोई आत्महत्या करता है, किन्तु जीवित रहने की सबकी इच्छा होती है। यही कारण है कि इस चौपाई के पहले चरण में "प्यारी उम्र" का कथन किया गया है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि आत्माओं ने बहुत प्यार से खेल का समय माँगा था, इसलिये "प्यारी उम्र" का कथन है।

पाउं निस दिन छोड़ें ना मोमिन, सुपने या सोवत।

सो क्यों छोड़ें बेसक जागे, जाकी असल हक निसबत॥३॥

धनी से अखण्ड सम्बन्ध रखने वाले ब्रह्ममुनि दिन-रात

अपने हृदय में प्रियतम के चरणों को बसाये रखते हैं। जब वे नींद या स्वप्न में भी धनी के चरणों को नहीं छोड़ते, तो संशय रहित होकर जागने के बाद कैसे छोड़ देंगे, कदापि नहीं।

भावार्थ- एक बार धनी की शोभा जब आत्मा के हृदय में बस जाती है, तो वह हमेशा के लिये अखण्ड हो जाती है। निद्रा या स्वप्न की अवस्था में भी उससे अलग नहीं होती, क्योंकि नींद या स्वप्न का सम्बन्ध जीव के शरीर और हृदय से होता है, आत्मा के हृदय से इसका कोई भी सम्बन्ध नहीं होता। यही कारण है कि इस चौपाई में नींद या स्वप्न में भी आत्मा के द्वारा धनी के चरणों से जुड़े रहने की बात कही गयी है। जाग्रत अवस्था में तो आत्मा और जीव दोनों के हृदय का सम्बन्ध प्रियतम के चरणों से जुड़े रहना स्वाभाविक है। इस चौपाई में यही

भाव व्यक्त किया गया है।

जब उड़ी नींद असल की, हक देखे होंए जाग्रत।

सुख लेसी खेल का अर्स में, जाकी असल हक निसबत॥४॥

धनी से अखण्ड सम्बन्ध रखने वाली आत्माओं के मूल तन परात्म की दृष्टि जब नींद से हट जायेगी और वह जाग्रत होकर श्री राज जी को देखेंगी, तो इस जागनी लीला का सुख वह परमधाम में लेंगी।

भावार्थ- परात्म (असल) के तन में यथार्थतः नींद नहीं होती, बल्कि उसकी दृष्टि श्री राज जी के आदेश से सुरता, आत्मा, या वासना के रूप में इस खेल को देख रही होती है। इसलिये जब तक दृष्टि इस खेल में है, तब तक वहदत में होते हुए भी उन तनों में फरामोशी (नींद) जैसी स्थिति का अहसास होता है। इस चौपाई में यही

भाव दर्शाया गया है।

दीजे परिकरमा अर्स की, मोमिन दिल ना सखत।

सूते भी कदम ना छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥५॥

हे साथ जी! अपनी आत्मिक दृष्टि से परमधाम के पच्चीस पक्षों को देखिए। अक्षरातीत की अँगना स्वरूप इन आत्माओं का हृदय बहुत ही कोमल होता है। वे सोते समय भी अपने हृदय से धनी के चरणों को अलग नहीं कर पातीं।

भावार्थ— पैरों से की जाने वाली परिक्रमा कर्मकाण्ड के अन्तर्गत है। आत्मिक दृष्टि से सम्पूर्ण परमधाम को देखना ही वास्तविक परिक्रमा है।

सुख आगूं अर्स द्वार के, कई बिध केलि करत।

सो क्यों छोड़ें चरन हक के, जाकी असल हक निसबत॥६॥

रंगमहल के मुख्य द्वार के सामने चाँदनी चौक है, जिसके सुख असीम हैं। वहाँ अनेक प्रकार की प्रेममयी लीलायें होती रहती हैं। श्री राज जी की अँगनायें इस संसार में भी अपने प्रियतम के चरणों को कदापि नहीं छोड़ सकतीं।

भावार्थ— जब सखियाँ चाँदनी चौक के दोनों चबूतरों पर विराजमान होती हैं, तब सामने चाँदनी चौक में अनेक प्रकार के पशु-पक्षी अनेक तरह से खेल-करतब दिखाकर सखियों को हँसाते हैं।

करें सुपने में कुरबानियां, ऐसे मोमिन अलमस्त।

सूते भी कदम न छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥७॥

धनी के अँगरूप ये ब्रह्ममुनि श्री राज जी के प्रेम में इतने अधिक डूबे होते हैं कि इस नश्वर जगत में भी उनके ऊपर अपना सर्वस्व त्याग देते हैं और नींद की अवस्था में भी अपने हृदय में चरण कमलों को बसाये रखते हैं।

सुपने कदम पकड़ के, तापर अपना आप वारत।

हक करें सुरखरू इनको, जाकी असल हक निसबत॥८॥

तारतम ज्ञान के द्वारा ब्रह्ममुनि इस नश्वर जगत में भी धाम धनी के स्वरूप की पहचान कर लेते हैं और उनके चरणों में स्वयं को समर्पित कर देते हैं। अपने अँगरूप इन ब्रह्ममुनियों को स्वयं श्री राज जी अलौकिक शोभा से सम्पन्न कर देते हैं।

लेवें सुख बाग मोहोलन में, मलारमें बरखा रूत।

रूहें क्यों छोड़ें चरन सुपने, जाकी असल हक निसबत॥९॥

परमधाम में सखियाँ धाम धनी के साथ बागों और महलों में विहार करने का आनन्द लेती हैं तथा वर्षा ऋतु में मल्हार राग में गायन करके युगल स्वरूप को रिझाती हैं। धनी की ये अँगनायें भला इस नश्वर जगत में धनी को कैसे छोड़ सकती हैं।

भावार्थ— वर्षा ऋतु में मल्हार राग गाया जाता है। यह हृदय को आनन्दित करने वाला होता है। रास की लीलाओं का गायन अधिकतर इसी राग में किया जाता है।

रूहें खेलें मलार बनमें, हक हादी की सोहोबत।

ए क्यों छोड़ें चरन मोमिन, जाकी असल हक निसबत॥१०॥

युगल स्वरूप के साथ वनों में विहार करती हुई सखियाँ मल्हार राग में अति मनमोहक गायन करती हैं। इस प्रकार की लीला के रस में डूबी रहने वाली सखियाँ इस नश्वर जगत में भी धनी के चरणों को नहीं छोड़ सकती हैं, क्योंकि ये तो धनी की साक्षात् अर्धांगिनी हैं।

मोमिन बसैं अर्स बनमें, ऊपर चाह्या मेह बरसत।

सो क्यों रहें इन पाउं बिना, जाकी असल हक निसबत॥११॥

ब्रह्मसृष्टियाँ जब परमधाम के नूरमयी वनों में धनी के साथ क्रीड़ा करती हैं, तो उनके ऊपर नूरी बादलों से इच्छानुसार वर्षा होती है। धनी के साक्षात् तन कही जाने वाली ये आत्मायें इस संसार में भी अपने प्रियतम के चरणों के बिना कैसे रह सकती हैं, कदापि नहीं।

रुहें मलार अर्स बाग में, ऊपर सेरड़ियां गरजत।

रुहें सुपने पांउं न छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥१२॥

ब्रह्मात्मायें जब परमधाम के नूरी बागों में मल्हार राग में गाती हैं, तो उनके ऊपर नूरमयी बादल गरजते हैं। अपने प्रियतम के साथ परमधाम में इस प्रकार का आनन्द लेने वाली आत्मायें इस सपने के संसार में भी उनके चरणों को नहीं छोड़ती हैं।

रुहें खेलें हक हादी सों बन में, नूर बिजलियां चमकत।

सो क्यों रहें हक कदम बिना, जाकी असल हक निसबत॥१३॥

जब युगल स्वरूप के साथ सखियाँ वनों में क्रीड़ा करती हैं, तो आकाश में नूरी बिजलियाँ चमकती हैं। श्री राज जी की अर्धांगिनी ये आत्मायें इस जगत् में भी उनके चरणों के बिना कैसे रह सकती हैं, कदापि नहीं।

हक खेलोंने कई खेलावहीं, कई मोर कला पूरत।

सो क्यों छोड़ें पाउं हक के, जाकी असल हक निसबत॥१४॥

इन वनों में श्री राज जी पशु-पक्षियों को अनेक प्रकार के खेल खिलाते हैं। अनेक मोर अपनी मनोहर कला से नाच दिखाकर धनी को रिझाते हैं, तो श्री राज जी की अर्धांगिनी ब्रह्मसृष्टियाँ इस संसार में अपने प्रियतम के चरणों को कैसे छोड़ सकती हैं।

रुहें खेलें अर्स के बागमें, कई पसु पंखी खेलावत।

सो क्यों रहें हक कदम बिना, जाकी असल हक निसबत॥१५॥

परमधाम के नूरमयी बागों में ब्रह्मसृष्टियाँ खेला करती हैं और पशु-पक्षियों को तरह-तरह के खेल खिलाया करती हैं। धनी की ये अँगनायें उनके चरणों के बिना इस संसार में भला कैसे रह सकती हैं, कदापि नहीं।

रुहें सुपने दुनीको न लागहीं, जाको मुरदार कही हजरत।
 ए हक कदम क्यों छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥१६॥

आत्मायें स्वप्न में भी इस झूठे संसार में नहीं फँस सकतीं, जिसे मुहम्मद साहिब ने जड़ और नश्वर कहा है।
 श्री राज जी की ये प्रियायें अपने प्रियतम के चरणों को कभी भी नहीं छोड़ सकतीं।

ए रुहें हक हादी संग, विध विध बन विलसत।
 ए क्यों छोड़ें कदम मोमिन, जाकी असल हक निसबत॥१७॥

ये सखियाँ युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी के साथ वनों में तरह-तरह की आनन्दमयी लीलायें करती हैं।
 धनी से इनका अखण्ड सम्बन्ध है और ये किसी भी स्थिति में अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत के चरण कमल को नहीं छोड़ सकती हैं।

खेलने वाली सातों घाटकी, हक प्रेम सुराही पिलावत।

रुहें सुपने न छोड़े कदम को, जाकी असल हक निसबत॥१८॥

ये सखियाँ अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत के साथ यमुना जी के सात घाटों में प्रेममयी क्रीड़ायेँ करती हैं और श्री राज जी अपने हृदय रूपी सुराही से इन्हें प्रेम का रस पिलाया करते हैं। धनी की अँगरूपा ये आत्मायेँ इस स्वप्नमयी संसार में भी उनके चरणों को नहीं छोड़ सकती हैं।

रुहें सराब हक सुराही का, पैदर पे पीवत।

बेहोस हुए न छोड़ें कदम, जाकी असल हक निसबत॥१९॥

अक्षरातीत का हृदय वह सुराही है, जिसमें प्रेम की अलौकिक शराब भरी हुई है। ब्रह्मसृष्टियाँ अपने हृदय रूपी प्यालों में उस प्रेमरस का इस प्रकार निरन्तर पान करती हैं कि बेसुध भी नहीं होतीं और धनी के चरणों को

पकड़े भी रहती हैं, क्योंकि धनी से उनका अखण्ड सम्बन्ध है।

भावार्थ- माया की नशीली शराब से जो बेहोशी होती है, वह अज्ञानता एवं तमोगुण के कारण होती है, किन्तु इस चौपाई में जिस बेहोशी का प्रसंग है, वह प्रेम की बेसुधी है, जिसमें स्वयं का बोध नहीं रहता। आत्मा परात्म का प्रतिबिम्ब है। परमधाम में वहदत (एकत्व) की लीला होने से अक्षरातीत के इश्क का रसपान परात्म तो करती है, किन्तु बेसुध नहीं होती। इसी प्रकार आत्मा धनी के प्रेम में हकीकत की अवस्था में बेसुध होती है और मारिफत में स्वयं को भूल जाती है। उस समय वह केवल धनी को ही देख रही होती है, उसे स्वयं का जरा भी भान नहीं होता।

यद्यपि सामान्य रूप से बेहोश होने, बेसुध होने, तथा

भूल जाने का भाव एक ही प्रतीत होता है, किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर इनमें अन्तर स्पष्ट है। परात्म या आत्मा के लिये बेहोश शब्द प्रयुक्त नहीं हुआ है, बल्कि जीव के लिये हुआ है, क्योंकि अक्षरातीत के साक्षात् तन कहे जाने वाले स्वरूपों में बेहोशी नहीं हो सकती। वे इश्क में बेसुध हो सकती हैं।

वस्तुतः बेहोशी का भाव जीव के लिये प्रयुक्त होता है। जिस प्रकार छः वर्ष के बालक के सिर पर यदि एक क्रिंटल गुलाब के फूलों का टोकरा रख दिया जाये, तो कोमल और सुगन्धित फूलों से भी वह दब जायेगा। जो जीव जितना ही निर्मल होता है, वह उतना ही आत्मा को मिलने वाले आनन्द को झेल लेता है, अन्यथा बेहोश हो जाता है। यह तथ्य श्रृंगार की इन चौपाइयों से स्पष्ट है—

हुकम जो प्याला देवहीं, सो संजमें संजमे पिलाए।
 पूरी मस्ती न हुकम देवहीं, जानें जिन कांच सीसा फूट जाए॥
 ना तो ए प्याला पीय के, कच्चा वजूद न राख्या किन।
 पर हुकम राखत जोरावरी, प्याला पिलावे रखे जतन॥
 जिन जेता हजम होवहीं, ज्यों होए नहीं बेहोस।
 तब हीं फूटे कुप्पा कांच का, पाव प्याले के जोस॥

श्रृंगार २४/८३, ८४, ८७

झूलें पुल मोहोल साम सामी, जल बीच मोहोल झलकत।
 रुहें हक कदम क्यों छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥२०॥
 यमुना जी के ऊपर केल घाट तथा बट घाट के सामने
 क्रमशः केल पुल तथा बट पुल की शोभा आयी है। दोनों
 पुल पाँच भूमिका एवं छठीं चाँदनी के हैं। पुलों की प्रत्येक

भूमिका में हिण्डोले लटक रहे हैं, जिनमें सखियाँ झूला झूलती हैं। दोनों पुल आमने-सामने हैं। यमुना जी के जल में दोनों पुल के महलों की झलकार शोभा देती है। श्री राज जी की अँगनायें स्वप्न के संसार में भी धनी के चरणों को नहीं छोड़ सकतीं, क्योंकि इनका अखण्ड सम्बन्ध है।

रुहें रमें किनारे जोए के, हक हादी रुहें झीलत।

सो सुपने कदम न छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥२१॥

सखियाँ युगल स्वरूप के साथ यमुना जी के जल में स्नान करती हैं और किनारे पर क्रीड़ा करती हैं। इस प्रकार वे इस नश्वर संसार में भी धनी के चरणों को नहीं छोड़ सकतीं, क्योंकि उनकी अर्धांगिनी हैं।

हक हादी रूहें पाट पर, मन चाह्या सिनगार साजत।

रूहें हक कदम क्यों छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥२२॥

युगल स्वरूप के साथ जो सखियाँ पाट घाट पर अपनी इच्छानुसार श्रृंगार करती हैं, वे इस नश्वर जगत् में श्री राज जी के चरण कमल को कैसे छोड़ सकती हैं? उनके साथ तो परमधाम का मूल सम्बन्ध जुड़ा हुआ है।

रूहें मिलावा अर्स बाग में, देखो किन विध ए सोभित।

रूहें हक कदम क्यों छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥२३॥

हे साथ जी! आप इस बात का विचार कीजिए कि परमधाम के नूरमयी बागों में जब सखियाँ अपने प्रियतम के साथ लीला विहार करती हैं, तो उनकी शोभा कितनी मनमोहक होती है। धनी की वे अँगनायें इस नश्वर जगत् में भी प्रियतम के चरणों को नहीं छोड़ेंगी।

पसु पंखी बोलें इन समें, कई विध बन गूँजत।

रूहें सुपने कदम न छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥२४॥

युगल स्वरूप के साथ सखियाँ जब वनों में विहार करती हैं, तो पशु-पक्षियों की अनेक प्रकार की मधुर ध्वनियों से पूरा वन ही गुञ्जित होने लगता है। वे सखियाँ इस संसार में अपने प्रियतम को कदापि नहीं छोड़ेंगी क्योंकि धनी से इनका अंग-अंगी का सम्बन्ध (नाता) है।

विध विध के कुन्ज बनमें, हक रूहें केलि करत।

सो क्यों छोड़ें इन कदम को, जाकी असल हक निसबत॥२५॥

सखियाँ श्री राज जी के साथ कुञ्ज वन में अनेक प्रकार की प्रेममयी क्रीड़ाएँ करती हैं। अपने मूल सम्बन्ध के कारण वे इस संसार में भी अपने प्रियतम के चरणों को नहीं छोड़ सकतीं।

बट पीपल की चौकियां, हक हादी रूहें हींचत।

रूहें सुपने कदम न छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥२६॥

वट-पीपल की चौकी के चारों भोम में हिण्डोले लगे हैं, जिनमें युगल स्वरूप के साथ सखियाँ झूला झूलती हैं। प्रियतम के साथ झूला झूलने का आनन्द लेने वाली ये सखियाँ स्वप्न के संसार में भी उनके चरणों को नहीं छोड़ सकतीं।

ताल पाल बन गिरदवाए, ऊपर कई मोहोल देखत।

सो क्यों छोड़ें हक कदमको, जाकी असल हक निसबत॥२७॥

हौज कौशर ताल की पाल पर चारों ओर वनों की शोभा आयी है। चौरस पाल के ऊपर कई तरह के महल दिखायी देते हैं। इनमें लीला करने वाली धनी की अँगनायें संसार में उनके चरणों को कदापि नहीं छोड़

सकतीं।

भावार्थ- हौज कौशर ताल की चौरस पाल पर बड़े वन की तीन हारें आयी हैं और चौरस पाल को घेरकर ढलकती पाल पर भी बड़े वन की दो हारें आयी हैं, जो पाँच भूमिका तक ऊँची हैं। चौरस पाल के ऊपर १६ देहुरी का घाट, १३ देहुरी का घाट, ९ देहुरी का घाट, झुण्ड का घाट, १२८ बड़ी देहुरियाँ, तथा १२४ छोटी देहुरियाँ आदि महल शोभायमान हैं।

सोभा चारों घाट की, जित जोए हौज मिलत।

रुहें सुपने कदम न छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥२८॥

हौज कौशर ताल के चार घाट हैं— १. सोलह देहुरी का घाट २. झुण्ड का घाट ३. ९ देहुरी का घाट और ४. तेरह देहुरी का घाट। यमुना जी का जल सोलह देहुरी के

घाट के नीचे से होते हुए हौज कौशर में मिल जाता है। इन चारों घाटों की शोभा अलौकिक है। इनमें धनी के साथ क्रीड़ा करने वाली आत्मायें स्वप्न के संसार में भी अपने प्रियतम के चरणों को नहीं छोड़ सकतीं, क्योंकि उनका श्री राज जी से अखण्ड सम्बन्ध है।

ए जो कहे मेहेराव, घाटों ऊपर सोभित।

हक कदम हिरदे रूह के, जाकी असल हक निसबत॥२९॥

हौज कौशर ताल में घाटों के ऊपर मेहराबें शोभा देती हैं। ब्रह्मसृष्टियों का धनी से अखण्ड सम्बन्ध होता है, इसलिये इस संसार में भी धनी के चरण कमल उनके धाम हृदय में विराजमान होते हैं।

भावार्थ— हौज कौशर की चौरस पाल पर चारों दिशा में चार घाट आए हैं। उनके चबूतरों पर थम्भें आए हैं, जिन

पर मेहराबें बनी हुई हैं। झुण्ड के घाट में वृक्षों की डालियों की मेहराबें बनी हैं। अलग-अलग घाटों पर मेहराबों की संख्या अलग-अलग है।

खेलें हौज कौसर के बागमें, रुहें बन डारी झूलत।

हक चरन सुपने न छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥३०॥

हौज कौसर ताल की चौरस पाल पर और ढलकती पाल पर पाँच हारें बड़े वन की आयी हैं, जो पाँच भूमिका तक ऊँची हैं। इन बागों में सखियाँ धाम धनी के साथ खेलती हैं और वन के वृक्षों की डालियों में झूलती हैं। श्री राज जी की ये अँगनायें इस नश्वर जगत में भी धनी के चरणों को नहीं छोड़ सकतीं।

रुहें खेलें टापू के गुरज में, जाए झरोखों बैठत।

सो क्यों रहें हक कदम बिना, जाकी असल हक निसबत॥३१॥

सखियाँ टापू महल के गुर्जों में खेलती हैं और झरोखों में बैठकर चारों तरफ की शोभा देखती हैं। ये संसार में श्री राज जी के चरणों के बिना नहीं रह सकतीं, क्योंकि इनका धाम धनी से शाश्वत सम्बन्ध है।

भावार्थ— हौज कौशर के मध्य में टापू महल आया है, जो तीन भूमिका तक ऊँचा है। टापू महल की हर भूमिका में घेरकर ६४ हाँस में ६०-६० महल (बाहरी हार मन्दिर) व ४-४ मुख्य दरवाजे आये हैं। इन मन्दिरों को घेरकर परिक्रमा की रौंस आयी है। इस रौंस पर मन्दिरों से लगकर ६४ हाँस की सन्धियों में ६४ गुर्ज आये हैं, जहाँ आत्मायें खेलती हैं। इस प्रकार ताल के मध्य में ६४ गुर्जों वाला टापू महल ६४ पँखुडी वाले कमल के

फूल के समान दिखायी दे रहा है। यहाँ टापू महल की चाँदनी की किनार को झरोखा कहा है, क्योंकि चाँदनी की किनार पर चारों तरफ कमर भर ऊँचा चबूतरा है। गुर्जों की चाँदनी भी यहाँ तक आयी है। इनके व चबूतरे की बाहरी किनार पर काँगरी युक्त कमर भर ऊँची दीवार शोभायमान है। चबूतरों पर चारों तरफ ३००० कुर्सियाँ हैं, जिनमें से प्रत्येक कुर्सी पर ४-४ सखियाँ बैठती हैं। ६० गुर्जों (दरवाजे के दायें-बायें के आधे गुर्जों को एक गिना गया है) की चाँदनी पर बड़ी कुर्सियाँ रखी हैं, जिनमें से प्रत्येक में २००-२०० सखियाँ बैठती हैं। इस प्रकार सभी १२००० सखियाँ यहाँ पर बैठकर चारों ओर का दृश्य देखती हैं।

खेलें अर्स हौज टापू मिने, हक भेले चांदनी चढ़त।

रुहें क्यों रहें इन कदम बिना, जाकी असल हक निसबत॥३२॥

परमधाम में श्री राजश्यामा जी के साथ सखियाँ हौज कौशर के मध्य में टापू महल में खेलती हैं और उनके साथ चाँदनी तक चढ़ती भी हैं। श्री राज जी की अर्धांगिनी स्वरूपा ये आत्मायें इस संसार में अपने प्रियतम के चरणों के बिना कैसे रह सकती हैं।

नेहेरें मोहोल ढांपियां, जल चक्राव ज्यों चलत।

मोमिन हक कदम क्यों छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥३३॥

नहरों से ढके हुए जवाहरातों (जवेरों) के महलों में जल चक्र (भँवर) की तरह चलता है। धनी से शाश्वत सम्बन्ध रखने वाली आत्मायें उनके चरणों को कभी भी नहीं छोड़ सकतीं।

भावार्थ- रंगमहल, सात घाट, यमुना जी, अक्षर धाम, पुखराज हौज कौसर, २४ हाँस का महल, कुञ्ज, निकुञ्ज, पश्चिम की चौगान, और बड़े वन को चारों ओर से घेरकर एक हीरे के नग के अन्दर अनेक रंगों की झलकार से युक्त जवाहरातों के महलों के नौ फिरावे सुशोभित हो रहे हैं। जवाहरातों के महलों की चाँदनी में कुण्ड, नहरें, एवं फव्वारे शोभायमान हैं तथा चारों तरफ गुर्जों के कुण्डों से पानी की धारायें नीचे कुण्डों में गिरती हैं। जवाहरातों के महल एक हीरे के हैं, इसलिये इसकी दिवारों, दरवाजों, और थम्भों आदि में पानी की नहरें (धारायें) बहती हुई दिखती हैं।

कई मोहोल मानिक पहाड़में, हिसाबमें न आवत।

ए मोमिन कदम क्यों छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥३४॥

माणिक पहाड़ में इतने अधिक महल हैं कि उनकी संख्या नहीं गिनी जा सकती। धनी के अँगरूप ये ब्रह्ममुनि किसी भी स्थिति में श्री राज जी के चरणों को नहीं छोड़ सकते।

भावार्थ— माणिक पहाड़ १२००० भूमिका वाला है। प्रत्येक भूमिका में १२००० हवेलियों की १२००० हारें आयी हैं। प्रत्येक हवेली में १२००० महल आये हैं। प्रत्येक महल में १२००० मन्दिर आये हैं और इसी प्रकार प्रत्येक मन्दिर में १२००० कोठरियाँ आयी हैं।

कई ताल नेहेरें मानिक पर, ढिग हिंडोलों चादरें गिरत।
ए कदम मोमिन क्यों छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥३५॥
माणिक पहाड़ में (भीतर, चाँदनी में, बाहर बगीचों में)
अनेक तालों और नहरों की शोभा आयी है। माणिक

पहाड़ को घेरकर चारों ओर ताल के महलों की चाँदनी के नीचे महाबिलन्द हिण्डोले आये हैं, तथा ताल के महलों की चाँदनी में पुनः ताल, व इसके तीन तरफ नहरें हैं। इन पर माणिक पहाड़ की चाँदनी के गुर्जों से पानी की चादरें (धाराएँ) गिरती हैं, जो १-१ भोम नीचे गिरते हुए अन्त में महानद में जाकर मिल जाती हैं। इस माणिक पहाड़ में धाम धनी के साथ विहार करने वाली उनकी अँगनाएं संसार में भी उनके कदमों को नहीं छोड़ेंगी।

कई भांतों नेहेरें बनमें, सागरों निकस मिलत।

मोमिन खेलें कदम पकड़के, जाकी असल हक निसबत॥३६॥

प्रत्येक सागर की चार हार हवेली (छोटी राँग) की तरफ दो-दो घड़नाले आये हैं। एक घड़नाले से सागर का पानी निकलता है और नहरों के रूप में वनों से होता

हुआ सम्पूर्ण परमधाम में होकर दूसरे घड़नाले से सागर में वापस समा जाता है। धनी से अखण्ड सम्बन्ध रखने वाले ब्रह्ममुनि इन स्थानों में श्री राज जी की सान्निध्यता में प्रेममयी लीला करते हैं।

द्रष्टव्य— इस चौपाई के तीसरे चरण में कथित "खेलें" का भाव प्रेममयी लीला (क्रीड़ा) से है। यह सांसारिक खेल-कूद का प्रसंग नहीं है।

कई बड़े मोहोल किनारे सागरों, कई मोहोल टापू झलकत।
 ए मोमिन कदमों सुख लेवहीं, जाकी असल हक निसबत॥३७॥

सागरों की किनार पर बड़ी राँग की हवेलियाँ हैं तथा सागरों में बहुत से टापू महल झलकार कर रहे हैं। अक्षरातीत से जिनका शाश्वत सम्बन्ध होता है, वे ब्रह्ममुनि श्री राज जी के चरणों में इस शोभा का सारा

आनन्द प्राप्त करते हैं।

भावार्थ- सागरों की चारों दिशाओं में किनारे पर महाहवेलियाँ आयी हैं, जो १४ करोड़ ४० लाख भूमिका ऊँची हैं।

आगूं बड़ा चौगान बन बिना, दूब कई दुलीचों जुगत।

मोमिन दौड़ के कदम पकड़ें, जाकी असल हक निसबत॥३८॥

पश्चिम की चौगान में कोई भी वन नहीं है। उसके आगे दूब-दुलीचा की कई प्रकार की शोभा है। जिनका धनी से शाश्वत सम्बन्ध है, वे ब्रह्ममुनि इस नश्वर जगत् में श्री राज जी के चरणों को अपने हृदय में बसाने में देरी नहीं करते।

भावार्थ- दौड़कर चरण पकड़ने का तात्पर्य है- अपने हृदय में बसाने के लिये अत्यधिक शीघ्रता करना।

हक हादी रूहें इन चौगानमें, कई पसु पंखी दौड़ावत।

मोमिन लेवें सुख कदमों, जाकी असल हक निसबत॥३९॥

इस पश्चिम की चौगान में श्री राजश्यामा जी के साथ सखियाँ पशु-पक्षियों की सवारी करके उन्हें दौड़ाती हैं। धनी से अखण्ड सम्बन्ध रखने वाली आत्मायें अपने प्रियतम के चरणों को अपने हृदय धाम में बसाकर इस लीला का सुख लेती हैं।

कहा कहूं बाग अर्स का, जित कई रंगों फूल फूलत।

रूहें क्यों रहें हक कदम बिना, जाकी असल हक निसबत॥४०॥

परमधाम के फूल बाग की शोभा का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। इन बागों में अनन्त रंगों के फूल खिले रहते हैं। श्री राज जी की अर्धांगिनी आत्मायें इस संसार में भी उनके चरणों को अपने हृदय में बसाये बिना नहीं रह सकतीं।

रुहें खेलें फूल बाग में, कई खुसबोए रस बेहेकत।

सो क्यों रहें हक कदम बिना, जाकी असल हक निसबत॥४१॥

सखियाँ परमधाम के उस फूल बाग में क्रीड़ा करती हैं, जहाँ की वायु में सुगन्धि बहती है। धाम धनी के चरणों से जिनका शाश्वत सम्बन्ध है, वे आत्मायें इस संसार में उनके बिना रह ही नहीं सकतीं, क्योंकि धनी के चरण कमल ही तो उनके जीवन के आधार हैं।

विध विधकी बन छत्रियां, जड़ाव चंद्रवा ज्यों चलकत।

ए कदम सुख सुपने लेवहीं, जाकी असल हक निसबत॥४२॥

वृक्षों की डालियाँ, फूल-पत्ते ऊपर जाकर आपस में इस प्रकार मिल गये हैं कि वे रत्नों से जड़े हुए सुन्दर चन्द्रवा के समान शोभायमान हो रहे हैं। ये छतरियाँ अनेक प्रकार की शोभा से युक्त हैं। धनी की अँगनायें इस

नश्वर जगत् में भी अपने प्रियतम के चरणों को अपने हृदय में बसाकर परमधाम का आनन्द लेती हैं।

इन बाग तले जो बाग है, ए क्यों कहे जुबां सिफत।

ए मोमिन कदम क्यों छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥४३॥

फूलबाग के नीचे जो नूरबाग आया है, उसकी शोभा का वर्णन यहाँ की जिह्वा कैसे कर सकती है। धाम धनी से जिनका प्रिया-प्रियतम का सम्बन्ध है, वे आत्मायें धनी के चरणों को कभी भी नहीं छोड़ सकतीं।

मोर चकोर मैना कोयली, कई विध वन टहुंकत।

रूहें कदम सुख सुपने लेवहीं, जाकी असल हक निसबत॥४४॥

नूरबाग के तीन तरफ पाँच भूमिका के ऊँचे बड़ोवन हैं, जिनमें मोर, चकोर, मैना, और कोयल आदि अनन्त

प्रकार के पक्षी हैं, जो अति मीठी ध्वनि में बोला करते हैं।
 श्री राज जी की अँगनायें अपने हृदय में उनके चरण
 कमल को बसा लेती हैं और परमधाम के आनन्द का
 रसपान करती हैं।

जो खेलें झीलें चेहेबच्चे, जल फुहारे उछलत।

सो क्यों रहें हक कदम बिना, जाकी असल हक निसबत॥४५॥

नूरबाग में नूरमयी जल के फव्वारों से जल ऊपर
 उछलता रहता है। जो सखियाँ जल के कुण्डों (हौजों) में
 स्नान करती हैं और तरह-तरह की क्रीड़ाएँ करती हैं, वे
 इस संसार में भी धनी के चरणों के बिना नहीं रह
 सकतीं, क्योंकि वे श्री राज जी की प्रियायें हैं।

रुहें खेलें लाल चबूतरे, कई रंगों हाथी झूमत।

सो क्यों रहें हक कदम बिना, जाकी असल हक निसबत॥४६॥

ब्रह्मसृष्टियाँ लाल चबूतरे पर तरह-तरह के खेल करती हैं, जिसके सामने बड़ोवन में अनेक रंगों के हाथी आनन्द में झूमते रहते हैं। यहाँ की लीला में मग्न रहने वाली आत्माओं के लिये संसार में भी धनी के चरणों के बिना रह पाना सम्भव नहीं है, क्योंकि इनका धाम धनी से परमधाम का ही सम्बन्ध है।

कई बाघ चीते दीपे केसरी, बोलें कूदें गरजत।

रुहें क्यों रहें हक कदम बिना, जाकी असल हक निसबत॥४७॥

लाल चबूतरे के सामने बड़ोवन में अनेक प्रकार के बाघ, चीते, तेंदुए, और केशरी सिंह लीला रूप में गर्जते हुए बोलते हैं और लम्बी-लम्बी छलांगें भरकर कूदते हैं।

सखियाँ इस लीला की प्रत्यक्ष द्रष्टा हैं और वे संसार में भी धनी के चरणों को अपने धाम हृदय में बसाये रखती हैं। अंग-अंगी का सम्बन्ध ही कुछ ऐसा है।

द्रष्टव्य- परमधाम के बाघ, चीते, और सिंह आदि भी प्रेम के स्वरूप हैं। उनमें कल्पना मात्र भी हिंसा की भावना नहीं होती। उनकी गर्जना भी मात्र लीला रूप में ही है।

कई विध बाजे बजावहीं, इत बांदर नट नाचत।

रुहें सुपने कदम न छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥४८॥

इस लाल चबूतरे के सामने बड़ोवन में बन्दर अनेक प्रकार के बाजे बजाते हैं और नट (नर्तक) की तरह बहुत ही सुन्दर नृत्य करते हैं। धनी के हृदय की अँगरूपा आत्मायें इस संसार में भी उनके चरण कमल को नहीं

छोड़ पातीं।

कई बड़े पसु पंखी अर्स के, कई उड़ें खेलें कूदत।

रुहें क्यों रहें हक चरन बिना, जाकी असल हक निसबत॥४९॥

परमधाम के मधुवन में अनन्त प्रकार के बड़े-बड़े पशु-पक्षी भी हैं, जिनमें से बहुत तो मनोहर उड़ान भरकर धनी को रिझाते हैं, तो कुछ कूदकर और कुछ तरह-तरह के खेल दिखाकर। श्री राज जी से जिनका अटूट सम्बन्ध है, वे आत्मायें संसार में भला धनी के चरणों से कैसे विमुख रह सकती हैं।

द्रष्टव्य- उस स्वलीला अद्वैत परमधाम में एकमात्र श्री राज जी का ही स्वरूप सभी रूपों में लीला कर रहा है। पशु-पक्षियों के रूप में भी स्वयं श्री राज जी हैं। लीला रूप में ही अलग-अलग दृश्यों और क्रियाओं का

अस्तित्व है, किन्तु मूल रूप में एकमात्र अक्षरातीत हैं।

खुलासा १६/८४ में स्पष्ट कहा गया है—

खेलोने जो हक के, सो दूसरा क्यों केहेलाए।

कई विध यों मधुवन में, सुख लेवें चित्त चाहत।

सो क्यों रहें हक कदम बिना, जाकी असल हक निसबत॥५०॥

इस प्रकार मधुवन में सखियाँ युगल स्वरूप के साथ अनेक प्रकार से इच्छानुसार सुख लेती हैं। वही सखियाँ इस संसार में अपने प्राणवल्लभ के चरणों के बिना कैसे रह सकती हैं।

बड़े मोहोल जो पहाड़ से, इत रुहें खेलें कई जुगत।

सो सुपने कदम न छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥५१॥

पुखराज पहाड़ में बड़े-बड़े महल हैं, जिनमें ब्रह्मसृष्टियाँ अनेक प्रकार के खेल करती हैं। धनी की अर्धांगिनी ये सखियाँ स्वप्न में भी धनी के चरणों को नहीं छोड़ सकती हैं।

चार मोहोल बड़े थंभ ज्यों, सो ऊपर जाए मिलत।

रुहें इत सुख कदमों लेवहीं, जाकी असल हक निसबत॥५२॥

पुखराज पहाड़ में चार महल हैं, जो थम्भों (आधार स्तम्भ, पेड़) के समान प्रतीत होते हैं। इनकी छठी भोम से चारों तरफ छज्जे बढ़ते जाते हैं और २५० भोम ऊपर सारे छज्जे आपस में मिल जाते हैं। फिर १००० भोम तक गोलाई में चारों तरफ छज्जे बढ़ते हैं। श्री राज जी की अँगरूपा आत्मायें उनके चरणों को अपने हृदय में बसाकर पुखराज के सुखों का अनुभव करती हैं।

भावार्थ- वैसे पुखराज पहाड़ में पाँच पेड़ों (थम्भ रूपी महलों) का वर्णन आता है (चारों दिशाओं में चार और मध्य में एक), किन्तु यहाँ पर दिशा के चारों पेड़ों का ही वर्णन किया गया है। मध्य के पेड़ का वर्णन नहीं किया गया है। इसी तरह का वर्णन परिक्रमा में भी किया गया है।

तले चार गुरज बिलंद हैं, थंभ होत ज्यों कर।

चारों भोम से छात लग, आए पोहोंचे ऊपर॥

सो याही छात को लग रहे, ज्यों एक मोहोल चार पाए।

पेड़ पांचमा बीच में, मोहोल पांचों जुदे सोभाए॥

परिकरमा १३/४१,४२

हजार हांसैं जित गिरदवाए, बीच मोहोल बड़े बिराजत।

इत रुहें सुख लेवें चरनका, जाकी असल हक निसबत॥५३॥

पुखराज पहाड़ की हजार भोम ऊपर चाँदनी की किनार पर चारों तरफ हजार हाँस के महल आये हैं तथा चाँदनी के मध्य में १००० भोम ऊँचा आकाशी महल शोभायमान है। ब्रह्मसृष्टियाँ इस संसार में भी अपने धनी के चरणों को हृदय में बसाकर आनन्द में मग्न हो जाती हैं।

पहाड़ पुखराजी मोहोल में, सुख चाँदनी लेवत।

सो क्यों रहें हक कदम बिना, जाकी असल हक निसबत॥५४॥

पुखराज पहाड़ के महलों में तथा चाँदनी में आकर सखियाँ आनन्द लेती हैं। धाम धनी के चरणों से जिनका अखण्ड सम्बन्ध है, वे इस संसार में प्रियतम के चरणों के बिना नहीं रह सकतीं।

अति बड़े चार द्वार चांदनी, कई हाथी हलकों आवत।

चरन छूटे ना इन खावंद के, जाकी असल हक निसबत॥५५॥

पुखराज पहाड़ की चाँदनी की किनार पर जो हजार हाँस के महल हैं, उनकी चारों दिशा की हाँस में चार बड़े द्वार आये हैं, जो पाँच भूमिका तक ऊँचे हैं। इन दरवाजों की छठीं चाँदनी के ऊपर पाँच भूमिका के और ऊँचे महल हैं, जिससे इन बड़े दरवाजों की कुल ऊँचाई १० भूमिका एवं ११वीं चाँदनी हो गयी है। उत्तर और पश्चिम के द्वारों से सीढ़ियाँ (घाटियाँ) नीचे तक उतरी हैं। इन्हीं सीढ़ियों से हाथियों के अनेक झुण्ड आया करते हैं। श्री राज जी की अँगरूपा इन आत्माओं से प्रियतम के चरण कमल कभी भी छूट नहीं सकते।

बड़े पसु पंखी इन चांदनी, हक हादी मोहोला लेवत।

रुहें ए चरन क्यों छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥५६॥

पुखराज पहाड़ की चाँदनी पर बड़े-बड़े पशु-पक्षी युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी का दर्शन करते हैं। जिन अँगनाओं का श्री राज जी से प्रिया-प्रियतम का अटूट सम्बन्ध है, वे धाम धनी के चरणों को किसी भी स्थिति में नहीं छोड़ सकतीं।

भावार्थ- यद्यपि परमधाम की एकदिली में छोटे-बड़े के नाम पर पशु-पक्षियों या किसी में भी किसी प्रकार का भेदभाव या बन्धन नहीं है, किन्तु यहाँ मात्र लीला रूप में ही ऐसा दर्शाया गया है।

हाथी बाघ चीते दीपे केसरी, कोई जातें गिन ना सकत।

हक कदम रुहें क्यों छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥५७॥

पुखराज पहाड़ की चाँदनी पर आकर श्री राजश्यामा जी का दर्शन करने वाले हाथियों, बाघों, चीतों, तेन्दुओं, तथा केशरी सिंहों की इतनी अधिक जातियाँ हैं कि उन्हें कोई गिन ही नहीं सकता। श्री राज जी से शाश्वत सम्बन्ध रखने वाली आत्मायें उनके चरणों को भला इस संसार में क्यों छोड़ेंगी, कदापि नहीं।

ए निपट बड़े मोहोल चांदनी, इत कई मिलावे मिलत।

रुहें न छोड़ें हक कदम को, जाकी असल हक निसबत॥५८॥

पुखराज पहाड़ की चाँदनी में आकाशी महल तथा हजार हाँस के महल की शोभा आयी है। यहाँ पर अनेक पशु-पक्षियों के झुण्ड मिलते हैं। धाम धनी की अर्धांगिनी आत्मायें कभी भी उनके चरणों को नहीं छोड़ सकती हैं।

बड़े चार द्वार चबूतरों, क्यों कहूं देहेलानों सिफत।

ए सुख लेवें मोमिन कदमों, जाकी असल हक निसबत॥५९॥

पुखराज पहाड़ की हजार हाँस की चाँदनी पर चारों दिशा में चार बड़े दरवाजे आये हैं, जिनके बाहरी तरफ दायें-बायें दो-दो चबूतरे शोभायमान हैं। भीतर की ओर भी ऐसे ही ४ बड़े दरवाजे व दो-दो चबूतरे आये हैं। इन दरवाजों से अन्दर जाने पर दायें-बायें त्रिपोलिये (देहलानें) और हवेलियाँ दिखायी पड़ती हैं। इनकी शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ। जिन ब्रह्ममुनियों का श्री राज जी से परमधाम का शाश्वत सम्बन्ध है, वे अपने हृदय में उनके चरणों को बसाकर पुखराज की इस सम्पूर्ण शोभा का आनन्द लेते हैं, अर्थात् अपने धाम हृदय में इस सम्पूर्ण शोभा का दर्शन कर लेते हैं।

ए अति ऊंचे मोहोल बीच के, हक सुख आकासी देवत।

रूहें ए कदम क्यों छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥६०॥

पुखराज की चाँदनी के मध्य तीसरे हिस्से में कमर भर ऊँचा चौरस चबूतरा है, जिस पर आकाशी महल की शोभा आयी है। यह हजार भूमिका वाला है तथा आकाश को छूता हुआ प्रतीत होता है। इसमें अनन्त रंगों की जगमगाहट दृष्टिगोचर होती है। धाम धनी इस शोभा का सुख आत्माओं के धाम हृदय में देते हैं। अलौकिक आनन्द को देने वाले इन चरणों को ब्रह्मसृष्टियाँ भला कैसे छोड़ सकती हैं। वस्तुतः यह धनी की अँगरूपा हैं।

हक हादी रूहें बड़े मोहोलमें, इन गुरजों सुख को गिनत।

ए कदम सुख मोमिन जानहीं, जाकी असल हक निसबत॥६१॥

आकाशी महल और उसके गुर्जों में श्री राजश्यामा जी

के साथ सखियाँ जिस आनन्द का रसपान करती हैं, उसका आँकलन भला कौन कर सकता है, कोई नहीं। धाम धनी के अँगरूप ब्रह्ममुनि ही जानते हैं कि श्री राज जी के चरणों को अपने दिल में बसाने का क्या सुख है।

भावार्थ- आकाशी महल में १३ चौरस हवेलियों की १३ हारें आयी हैं। इन हवेलियों की चारों दिशाओं में कुल १०४ चौखूँटे गुर्ज, चार कोनों में ५ पहल के ४ गोल गुर्ज, और ४८ त्रिपोलिये के गुर्ज आये हैं, जिनमें लीला-विहार का सुख अनन्त है।

सुख लेत ताल मूल जोएके, कई विध केलि करत।

रुहें क्यों छोड़ें हक चरनको, जाकी असल हक निसबत॥६२॥

यमुना जी का मूल खजाने का ताल है, जिसका जल पुखराजी ताल में आता है। सखियाँ युगल स्वरूप के

साथ इस पुखराजी ताल में अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करती हैं और अलौकिक आनन्द लेती हैं। धाम धनी की अँगनायें स्वप्न के संसार में भी अपने प्रियतम के चरणों को कैसे छोड़ सकती हैं।

भावार्थ- यमुना जी का मूल खजाने का ताल है, जहाँ से पानी मध्य के पेड़ के स्तून (पानी के पाइप) के द्वारा २००० भोम ऊपर आकाशी महल की चाँदनी में आता है। चाँदनी के सब बगीचों में पानी पहुँचाकर, पुखराज की चाँदनी के सब बगीचों में पानी पहुँचाकर, पूर्व दिशा में बड़े दरवाजे व छज्जे के नीचे होकर, देहलानों की २१वीं चाँदनी से गुप्त रूप से चलकर चार धाराओं के रूप में २० भूमिका ऊपर से पुखराजी ताल में गिरता है। पुखराजी ताल ९८० भूमिका तक गहरा है। पुखराजी ताल से यह पानी पूर्व दिशा के देहलानों से चार नहरों के

रूप में आगे बढ़कर १६ धाराओं के रूप में ४८० भोम ऊपर से अधबीच के कुण्ड में गिरता है। फिर ७८४ स्तूनों से पानी इसकी तलहटी में उतरता है। आगे ढपो चबूतरा व मूलकुण्ड की तलहटी से होते हुए यह श्री यमुना जी के रूप में प्रकट होता है।

**मोहोल बड़े ताल ऊपर, रुहें सुख लेवें हक सों इत।
ए क्यों छोड़ें हक कदम को, जाकी असल हक निसबत॥६३॥**

पुखराजी ताल के चारों ओर जवाहरातों के महल बने हैं। इनकी तीन हारें हैं, जिनकी शोभा रंगमहल की चौरस हवेलियों के समान है। इन महलों में सखियाँ अपने प्रियतम के साथ प्रेम लीला का आनन्द लेती हैं। धाम धनी से शाश्वत सम्बन्ध रखने वाले आत्मायें कभी भी चरणों को नहीं छोड़ सकती हैं।

दोनों तरफों मोहोल के, आगूं जित दरखत।

सो क्यों छोड़ें कदम सुपने, जाकी असल हक निसबत॥६४॥

जवाहरातों के महलों के दोनों ओर बड़े वन के वृक्षों की पाँच-पाँच हारें आयी हैं। इन महलों और बड़े वन के वृक्षों की २० भूमिका और २१वीं चाँदनी आयी है। श्री राज जी की प्रियायें इस स्वप्न के संसार में उनके चरण कमल को नहीं छोड़ सकती हैं।

दोऊ किनारे गुरज दोए, बीच सोले चादरें उतरत।

सो क्यों रहें हक कदम बिना, जाकी असल हक निसबत॥६५॥

अधबीच के कुण्ड के पश्चिम की दहलान की ९७८वीं भूमिका से ९८१वीं भूमिका तक चार छज्जे निकले हैं, जहाँ से जल की १६ चादरें उतरती (गिरती) हैं, उस दहलान के दाएं-बाएं १-१ गोल व चौरस गुर्ज बने हैं।

धनी के चरणों से जिनका अखण्ड सम्बन्ध है, वे उनके चरणों के बिना कैसे रह सकती हैं।

भावार्थ- पुखराजी ताल के पूर्व की दहलानें, अधबीच के कुण्ड के पश्चिम की दहलानों से मिलते हुए हजार भूमिका तक गयी हैं। अधबीच के कुण्ड की दहलान के पूर्वी किनारे के दोनों कोनों (आग्नेय, ईशान) में २-२ गुर्ज (१ गोल व १ चौरस) आये हैं। इस दहलान के पूर्व में ९७८वीं भूमिका से ९८१वीं भूमिका तक चार छज्जे क्रमशः ४००, ८००, १२००, १६०० कोस के निकले हैं। पुखराजी ताल का पानी दहलानों की ९८१वीं भूमिका से ४ नहरों के रूप में आता है तथा इन छज्जों में से प्रत्येक से ४-४ धारायें (कुल १६ धारायें) ४८० भूमिका ऊपर से अधबीच के कुण्ड में गिरती हैं।

ऊपर चादरों मोहोल जो, बीच बड़े देहेलान देखत।

दोऊ तरफों कदम सुख लेवहीं, जाकी असल हक निसबत॥६६॥

अधबीच के कुण्ड के चबूतरे से ४९६ भोम ऊपर (४९७वीं भोम) के मध्य तीसरे हिस्से में अधबीच का कुण्ड है, जिसमें ४८० भूमिका ऊपर से १६ धारायें गिरती हैं। इस कुण्ड के चारों तरफ दहलान की जगह छोड़कर खास (विशेष) महल हैं, जिनकी ऊँचाई ४ भूमिका एवं ५वीं चाँदनी है। खास महल की ५वीं चाँदनी की पूर्व दिशा में बैठकर पश्चिम दिशा में देखने से ५०० भूमिका ऊपर तक देहलान दिखायी देती है। धनी के चरणों से जिनका अखण्ड सम्बन्ध होता है, वे परमधाम में और यहाँ भी अखण्ड सुख को प्राप्त होते हैं।

अधबीचमें कुंड जो, जित चादरों जल गिरत।

रुहें छोड़ें न कदम सुपने, जाकी असल हक निसबत॥६७॥

अधबीच के कुण्ड में ४८० भूमिका ऊपर से १६ चादरों के रूप में गिरता हुआ जल कर्णप्रिय मधुर गर्जना के साथ सुन्दर मनमोहक दृश्य प्रस्तुत कर रहा है। परमधाम की आत्मायें सपने के संसार में भी श्री राज जी के चरणों को नहीं छोड़ती हैं।

तले ताल बन बंगले, जल चक्राव ज्यों चलत।

रुहें सुपने कदम न छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥६८॥

पुखराजी ताल के नीचे चबूतरे पर वनों और बँगलों की शोभा है। वहाँ की नहरों में जल चक्करदार (चक्रावदार) रूप से प्रवाहित हो रहा है। श्री राज जी की अर्धांगिनी आत्मायें स्वप्न के संसार में भी अपने प्रियतम के चरणों

को नहीं छोड़ती हैं।

भावार्थ— बँगले के चबूतरे पर सर्वप्रथम बड़ोवन के वृक्षों की पाँच हारें हैं। इनके भीतरी तरफ फीलपायों (हाथी के पैर के समान मोटे थम्भों) की चार हारें हैं। इनके भीतरी तरफ बड़ोवन के वृक्षों की पुनः पाँच हारें हैं। इन सबके भीतरी तरफ चबूतरे के तीसरे हिस्से में आड़ी-खड़ी नहरों के बीच ४८ बँगलों की ४८ हारें तथा ४८ कुण्डों की ४८ हारें क्रमशः शोभायमान हैं। प्रत्येक बँगलों तथा चेहबच्चों की चारों दिशा में नहरें एवं चारों कोनों में छोटे जल के कुण्ड (चहबच्चे) हैं। इनमें ५-५ फव्वारे हैं। इन नहरों में पानी चक्करदार रूप से प्रवाहित हो रहा है। प्रत्येक चहबच्चे की चारों दिशा में नहरें हैं। कहीं एक दिशा की नहर से पानी आ रहा है तथा अन्य तीन दिशा की नहरों में जा रहा है। कहीं दो दिशा की नहर से पानी आ

रहा है तथा अन्य दो दिशा की नहरों में जा रहा है। कहीं तीन दिशा की नहर से पानी आ रहा है तथा एक दिशा की नहर में जा रहा है। इसीलिए इन्हें चक्रावदार नहरें कहा है।

कई फुहारे मुख जानवरों, जल तीर ज्यों छूटत।

क्यों भूलें इत सुख कदम के, जाकी असल हक निसबत॥६९॥

बँगलों के चारों तरफ फीलपायों में जानवरों के मुख बने हुए हैं, जिनसे तीर के समान जल के फव्वारे चलते रहते हैं। धनी के जिन चरणों को हृदय में बसा लेने पर इस तरह के सुखों का अनुभव होता है, परमधाम की आत्मायें धनी के उन चरणों को कैसे भूल सकती हैं।

भावार्थ— फीलपायों में जानवरों के मुख की आकृति बनी हुई है। कहीं हाथी, कहीं सिंह, तो कहीं घोड़ा।

इनके मुख से पानी तीर के समान (तेजी से) निकलता है, जो कोने के चहबच्चे में गिरता है।

ए जंजीरें जलकी, अदभुत सोभा लेवत।

क्यों छोड़ें ए कदम मोमिन, जाकी असल हक निसबत॥७०॥

इन बँगलों-चहबच्चों के चारों ओर जो नहरें तथा छोटे कुण्ड (चहबच्चे) हैं, जिनमें जंजीरों की तरह जल की अद्भुत शोभा है। संसार में इस प्रकार के अलौकिक सुखों को देने वाले चरणों को श्री राज जी की अँगनायें भला कैसे छोड़ सकती हैं।

भावार्थ- जिस प्रकार जंजीर में कड़ियाँ आपस में जुड़ी होती हैं, उसी प्रकार सभी नहरें छोटे चहबच्चों के द्वारा आपस में जुड़ी हुई हैं।

उलंघ जात कई चेहेबच्चों, जल साम सामी जात आवत।
 इत कदम सुख मोमिन लेवहीं, जाकी असल हक निसबत॥७१॥

नहरों का जल कई कुण्डों (चहबच्चों) को पार करता हुआ आगे बढ़ता रहता है। चहबच्चे की एक दिशा की नहर से पानी आता है, दूसरी दिशा की नहर में जाता है। इस प्रकार आमने-सामने चारों दिशाओं में पानी आता – जाता है। धनी से अखण्ड सम्बन्ध रखने वाले ब्रह्ममुनि इस शोभा का सुख उनके चरणों को अपने हृदय में बसाकर लेते हैं।

जल आवे जाए ऊपरसे, तले हक हादी रूहें खेलत।
 ए सुख क्यों छूटें कदमके, जाकी असल हक निसबत॥७२॥

कुण्डों के फव्वारों से जल एक कुण्ड से दूसरे कुण्ड में ऊपर-ऊपर ही आता-जाता है। उनके नीचे बगीचों में

तथा बँगलों की चाँदनी पर श्री राजश्यामा जी सखियों के साथ अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करते हैं। धनी की अँगरूपा आत्माओं को ये सुख प्राप्त होते हैं। मायावी जगत में भी आत्माएँ उन सुखों को छोड़ नहीं पातीं , अर्थात् अपने धाम हृदय में प्रियतम के चरण कमल को बसाकर पुनः प्राप्त कर लेती हैं।

भावार्थ— बँगलों की छठी चाँदनी के मध्य में कमर भर ऊँचा चबूतरा है, जिसके चारों कोनों में चार थम्भ हैं , जिनके ऊपर गुम्मत, कलश की शोभा आयी है। बँगले के चारों कोनों के चहबच्चों के फव्वारे उछलकर इस कलश की नोंक को छूते हुए एक-दूसरे में गिर रहे हैं।

गिरदवाए बड़े द्वार मेहेराबी, ए मोहोल सोभा लेवत।

इत खेलें रूहें कदम तले, जाकी असल हक निसबत॥७३॥

बँगलों को घेरकर चारों तरफ जो थम्भ (फीलपाये) आये हैं, उन थम्भों में मेहराबें आयी हैं। इन्हें ही "मेहराबी द्वार" कहा गया है। इनसे महल शोभायमान हो रहे हैं। परमधाम की आत्मायें धनी के चरणों की छत्रछाया में ही इन महलों में क्रीड़ा करती हैं तथा इस संसार में भी जागनी रास खेल रही हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में "कदम तले" का भाव चरणों की सान्निध्यता से है। "दोऊ तन तले कदम के, आत्म परआत्म" से स्पष्ट है कि चाहे परमधाम की लीला हो या संसार में जागनी लीला हो, सब कुछ धाम धनी की छत्रछाया में ही होता है।

इत ताल तले बन छाया मिने, रूहें बीच बगीचों मलपत।
ए सुपने कदम न छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥७४॥

पुखराजी ताल के नीचे बड़ोवन तथा फीलपायों की छत (छाया) के नीचे बँगलों व चहबच्चों के चारों तरफ आए बगीचों में सखियाँ तरह-तरह की क्रीड़ाएँ करती हैं। इस प्रकार के सुखों की अनुभूति कराने वाले धनी के चरणों को सखियाँ कभी भी छोड़ती नहीं हैं।

भावार्थ- प्रत्येक बँगलों तथा बड़े चहबच्चों के चारों तरफ १२-१२ बगीचे हैं जिनमें बेशुमार नहरें , चहबच्चे, व फव्वारे शोभायमान हैं।

केती चक्राव से बाहेर, जोए तले चबूतरों निकसत।

रुहें खेलें तले कदमके, जाकी असल हक निसबत॥७५॥

खजाने के ताल का पानी आकाशी महल, पुखराजी ताल, अधबीच के कुण्ड आदि कई स्थानों से गुजरते हुए (चक्कर लगाते हुए) ढपो चबूतरा व मूल कुण्ड की

तलहटी से होते हुए यमुना जी के रूप में प्रकट होता है। यहाँ पर सखियाँ श्री राज जी के साथ क्रीड़ा करती हैं। संसार में भी वे उनके चरणों को नहीं छोड़ सकती हैं।

भावार्थ- पुखराज की तलहटी में खजाने के ताल से मध्य बड़े थम्भ (पेड़) द्वारा जल आकाशी महल की चाँदनी तक जाता है। वहाँ से वापस पुखराज की चाँदनी से होते हुए पुखराजी ताल में चार धाराओं के रूप में गिरता है। पुखराजी ताल से जल दहलानों से होता हुआ अधबीच के कुण्ड में १६ धाराओं द्वारा गिरता है। यहाँ से ७८४ स्तूनों से पानी ४९६ भूमिका नीचे अधबीच के कुण्ड के चबूतरे पर उतरता है। फिर तलहटी के थम्भों द्वारा पानी तलहटी के ताल में पहुँच जाता है।

उधर पुखराजी ताल के १००० भोम ऊपर पश्चिम की दहलानों के थम्भों से पानी उतरते हुए २० भोमों में पानी

पहुँचाकर ९८१वीं भूमिका में आता है। फिर पूर्व की दहलानों के थम्भों से होकर हर भूमिका में पानी पहुँचाते हुए बँगलों की छठी चाँदनी पर आ जाता है। यहाँ से कुछ पानी फीलपायों के द्वारा उतरकर जानवरों की मुखाकृति से निकलता है तथा कोने के चहबच्चों में गिरता है, फिर बँगलों में जाता है।

पुनः यह सारा पानी तलहटी के फीलपायों से उतरकर तलहटी के ताल में चला जाता है। बँगलों की छठी चाँदनी से कुछ पानी धारा के रूप में पुखराज व बँगला के चबूतरे के मध्य में आये चहबच्चे में गिरता है। यह पानी भी नहर के द्वारा बँगले की तलहटी के ताल में पहुँच जाता है। कुछ पानी खजाने के ताल से पूर्व की नहर से होते हुए बँगले की तलहटी के ताल में आता है। इसके बाद यह सारा पानी भी नहर द्वारा अधबीच के कुण्ड की

तलहटी के ताल में जाता है।

यहाँ से पानी का एक बड़ा पूर पूर्व दिशा में चलता है, जो ढँपो चबूतरा एवं मूल कुण्ड की तलहटी से होते हुए आगे यमुना जी के रूप में प्रकट होता है। इस प्रकार जल नीचे से ऊपर होते हुए चक्राव (चक्र) के रूप में पुनः नीचे आता है, अर्थात् मूल कुण्ड से यमुना जी के रूप में प्रकट होता है।

जोए चबूतरों कुंड पर, ऊपर बन झूमत।

ए कदम सुख मोमिन लेवहीं, जाकी असल हक निसबत॥७६॥

यमुना जी, ढँपा चबूतरा, और मूल कुण्ड के चबूतरे के दोनों ओर पुखराजी रौंस है, जिस पर बड़े वन के वृक्षों की दो हारें दो भूमिका तक ऊँची आयी हैं। उनकी डालियाँ इन चबूतरों पर और यमुना जी पर झूमती हैं।

धनी के चरणों को अपने हृदय में बसाकर ब्रह्ममुनि ही इस शोभा का आनन्द ले पाते हैं, क्योंकि वे अक्षरातीत के अङ्गरूप हैं।

जमुना जल ढांपी चली, ए बैठक सोभा अतंत।

ए सुपने कदम न छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥७७॥

मूल कुण्ड से यमुना जी प्रकट तो हो जाती हैं, किन्तु मरोड़ तक की दूरी की आधी दूरी (११७४०० कोस) तक ढपी रहती है। ढपी यमुना जी के दायें-बायें पाल पर सुन्दर बैठक है, जिसकी शोभा अपरम्पार है।

भावार्थ- मूल कुण्ड से यमुना जी के मरोड़ तक दोनों तरफ के पाल पर थम्भों की २-२ हारें (दोनों किनारों पर) हैं। इन थम्भों की छत आधी दूरी तक यमुना जी पर भी है। इसे ढपी यमुना जी कहते हैं। ढपी यमुना जी पर

५ देहुरियाँ शोभायमान हैं, जिनके दायें-बायें पाल की चाँदनी पर भी ५-५ देहुरियाँ हैं। पाल से दोनों तरफ (जल रौंस एवं पुखराजी रौंस पर) ३-३ सीढ़ियाँ उतरी हैं। शेष जगह में इन थम्भों के मध्य कठेड़ा शोभायमान है। पाल पर सुन्दर गिलम, सिंहासन, व कुर्सियाँ शोभायमान हैं। यहाँ युगल स्वरूप के साथ सखियों की बैठक बहुत ही मनोरम दृश्य उपस्थित करती है। सपने के संसार में भी सखियाँ धनी के इन चरणों को नहीं छोड़ सकती हैं।

दोऊ किनारे ढांपिल, आगूं जल जोए खुलत।

रुहें क्यों रहें इन कदम बिना, जाकी असल हक निसबत॥७८॥

ढपी यमुना जी के आगे मरोड़ तक (शेष आधी दूरी तक) यमुना जी पर छत नहीं आयी है, केवल दोनों

तरफ के पालों पर छत आयी है, जिन पर ५-५ देहुरियाँ शोभायमान हैं। इसे खुली यमुना जी कहते हैं। इस प्रकार ढपी व खुली यमुना जी को मिलाकर कुल २५ देहुरियाँ होती हैं। इस शोभा का अनुभव कराने वाले धनी के चरणों के बिना परमधाम की आत्मायें संसार में रह ही नहीं सकतीं।

एक मोहोल एक चबूतरा, जाए जोए पुल तले मिलत।

रुहें ए कदम क्यों छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥७९॥

ढपी-खुली यमुना जी (२५ देहुरियों) के बाद दक्षिण दिशा में मुड़ जाती है। मरोड़ से केल पुल तक यमुना जी के दोनों तरफ के पाल पर क्रमशः ५ महल और ४ चबूतरे आए हैं। इन्हें एक महल और एक चबूतरा कहते हैं। इस प्रकार की शोभा लेते हुए यमुना जी केल पुल के

नीचे पहुँच जाती हैं। धनी की अँगरूपा आत्मायें उनके चरणों से कभी भी अलग नहीं हो सकतीं।

जोए इतथें मरोर सीधी चली, अर्स आगूं सोभा सरत।
 रुहें क्यों छोड़ें इन कदम को, जाकी असल हक निसबत॥८०॥

यमुना जी यहाँ (ईशान कोने) से मुड़ने के बाद दक्षिण दिशा में ९ लाख कोस तक सीधी चली जाती हैं। रंगमहल के सामने से गुजरते समय इसकी शोभा और बढ़ जाती है। श्री राज जी की प्रियायें इन चरणों के बिना कदापि नहीं रह सकतीं।

दोऊ पुल के बीच में, बड़ी सातों घाटों सिफत।
 रुहें खेलें इत कदमों तले, जाकी असल हक निसबत॥८१॥

केल पुल तथा वट पुल के बीच में श्री यमुना जी के

दोनों तरफ सात घाट (केल, लिबोई, अनार, अमृत, जाँबू, नारंगी, और वट) आये हैं। इनकी शोभा बहुत अधिक है। धाम धनी के चरणों से अखण्ड सम्बन्ध रखने वाली आत्मायें इन सातों घाटों में क्रीड़ा करती हैं तथा इस जागनी ब्रह्माण्ड में भी उनके चरणों की छाँव तले जागनी रास खेल रही हैं।

नूर और नूरतजल्ला, अर्स साम सामी झलकत।

ए रूहें कदम न भूलें सुपने, जाकी असल हक निसबत॥८२॥

यमुना जी के पूर्व में अक्षर धाम है और पश्चिम में रंगमहल है। इस प्रकार अक्षर ब्रह्म और अक्षरातीत के रंगमहल आमने-सामने झलकार करते हैं। सखियाँ स्वप्नमयी संसार में भी धनी के चरणों को नहीं भूलती हैं, क्योंकि इनका श्री राज जी से अटूट सम्बन्ध है।

दोऊ दरबारकी रोसनी, अंबर नूर भरत।

रुहें कदम न भूलें सुपने, जाकी असल हक निसबत॥८३॥

अक्षर ब्रह्म तथा अक्षरातीत के रंगमहल से निकलने वाली नूरी ज्योति सम्पूर्ण आकाश में फैल रही है। धाम धनी से इन ब्रह्मसृष्टियों का शाश्वत सम्बन्ध है और ये संसार में भी श्री राज जी के चरणों को नहीं भूलती हैं।

अर्स जिमी नूर अपार है, इतके वासी बड़े बखत।

महामत रुहें हक जात हैं, जाकी हक कदमों निसबत॥८४॥

श्री महामति जी कहते हैं कि परमधाम की धरती के नूर की कोई सीमा नहीं है, वह अनन्त है। यहाँ रहने वाले भी बड़े भाग्यशाली हैं। ब्रह्मसृष्टियाँ तो साक्षात् धनी की अँगरूपा हैं। इनका धनी के चरणों से अटूट सम्बन्ध है।

भावार्थ— परमधाम में केवल नूर ही अनन्त नहीं है ,

बल्कि वहाँ का विस्तार, शोभा, श्रृंगार, प्रेम, आनन्द, सखियों या पशु-पक्षियों की संख्या आदि सभी कुछ अनन्त है।

प्रकरण ॥८॥ चौपाई ॥ ५२७॥

अर्स अंदर निसबत चरन

इस प्रकरण में भी पूर्व प्रकरण की तरह यह दर्शाया गया है कि परमधाम में विराजमान श्री राज जी के नूरमयी चरणों से हमारी आत्मा का क्या सम्बन्ध है।

अर्स अंदर सुख देवहीं, जो रूहों दिल उपजत।

सो रूहें कदम क्यों छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥१॥

परमधाम में आत्माओं के हृदय में जो भी इच्छा उत्पन्न होती है, उसे श्री राज जी पूर्ण करके आनन्द देते हैं। धनी की अँगनायें उनके चरणों को कैसे छोड़ सकती हैं।

अर्स अरवाहें भोम खिलवत, नूर दसों दिस लरत।

सो क्यों छोड़ें इन कदम को, जाकी असल हक निसबत॥२॥

परमधाम के मूल मिलावा में धनी के चरणों में सखियाँ बैठी हुई हैं। दसों दिशाओं में नूर ही नूर फैल रहा है। श्री राज जी के चरणों से जिनका अखण्ड सम्बन्ध है, वे इस संसार में भी धनी के चरणों को नहीं छोड़ सकती हैं।

रुहें बारे हजार बैठाए के, हक हांसी को खेलावत।

सो रुहें कदम क्यों छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥३॥

मूल मिलावा में धाम धनी ने अपने चरणों में बारह हजार सखियों को बैठा रखा है और हँसी के लिये माया का खेल दिखा रहे हैं। धनी के चरणों से अखण्ड सम्बन्ध रखने वाली आत्मायें संसार में उनके चरणों से कदापि अलग नहीं हो सकती हैं।

लें सुख चेहेबच्चे भोम दूसरी, मोहोल बारे सहस्र जित।

सो क्यों छोड़ें रूहें कदमको, जाकी असल हक निसबत॥४॥

दूसरी भूमिका में धाम धनी के साथ खड़ोकली (तरण-ताल) में स्नान का सुख है, तो भुलवनी के १२००० मन्दिरों में लीला का सुख है। इस संसार में आने पर भी धनी की अँगनायें उनके चरणों को कदापि नहीं छोड़ सकती हैं।

रूहें तीसरी भोम चढ़के, बड़े झरोखों आवत।

सो क्यों रहें हक कदम बिना, जाकी असल हक निसबत॥५॥

ब्रह्मसृष्टियाँ तीसरी भूमिका की पड़साल में आती हैं और बड़े झरोखे से चाँदनी चौक का सम्पूर्ण दृश्य देखती हैं। जिनका श्री राज जी से परमधाम का शाश्वत सम्बन्ध है, वे धनी के चरणों के बिना इस संसार में रह ही नहीं

सकती हैं।

भावार्थ- तीसरी भूमिका में जो पड़साल आयी है, उसमें थम्भों के बीच की जगह को ही बड़े झरोखे कहा गया है।

कई इंड पलथें पैदा फना, जिन कादर ए कुदरत।

ए आवें मुजरे इन सरूपके, जाकी असल हक निसबत॥६॥

जिस अक्षर ब्रह्म की शक्ति से कई (करोड़ों) ब्रह्माण्ड एक पल में पैदा होते हैं और लय को प्राप्त हो जाते हैं, वे स्वयं श्री राज जी तथा सखियों का दर्शन करने के लिये आते हैं, जिनका धाम धनी से शाश्वत सम्बन्ध है।

भावार्थ- अक्षर ब्रह्म की योगमाया ही वह शक्ति है, जिससे सृष्टि की उत्पत्ति और लय की प्रक्रिया चलती रहती है। "सो चाहे हमारा दरसन" (किरंतन) के कथन

से यह स्पष्ट है कि अक्षर ब्रह्म भी सखियों के दीदार के इच्छुक रहते हैं।

नूर मकानसें आवें दीदार को, इत नूरजमाल बिराजत।

रुहें याद कदम क्यों छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥७॥

जब श्री राज जी तीसरी भूमिका की पड़साल में झरोखे को पीठ देकर बैठे होते हैं, उस समय अक्षर धाम से अक्षर ब्रह्म उनका दर्शन करने के लिये आते हैं। ब्रह्मसृष्टियाँ तो उनकी अँगनायें हैं। भला, इस संसार में वे अपने प्रियतम के चरणों की याद में डूबे रहना कैसे छोड़ सकती हैं।

हक बैठें पौढें भोम तीसरी, आगू झरोखों आरोगत।

रुहें क्यों छोड़ें इन कदमको, जाकी असल हक निसबत॥८॥

श्री राज जी श्यामा जी के साथ तीसरी भूमिका की पड़साल में नीले(हरे)–पीले मन्दिर के सामने झरोखे को पीठ देकर सिंहासन पर बैठते हैं, तथा नीले(हरे)–पीले रंग के मन्दिर में आराम या शयन करते हैं (पौढ़ते हैं), तथा झरोखे के सामने भोजन आरोगने की लीला करते हैं। धनी के चरणों से जिनका मूल सम्बन्ध है, वे उनके चरणों को कैसे छोड़ सकती हैं।

भावार्थ– इस मन्दिर के एक तरफ का थम्भ व आधी मेहराब पाच नग (हरे रंग) की है तथा दूसरे तरफ का थम्भ व आधी मेहराब पुखराज नग (पीले रंग) की है, अर्थात् इस मन्दिर की मेहराब दो रंगों – हरे और पीले – की हैं, जिससे इस मन्दिर में इन दोनों रंगों की झाँई पड़ती है।

रुहें अर्स अजीम की, भोम चौथी देखें निरत।

सो हक कदम क्यों छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥९॥

परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ चौथी भूमिका की चौथी चौरस हवेली में नृत्य की लीला देखती हैं। श्री राज जी की अँगनायें अपने प्रियतम के चरणों को कदापि नहीं छोड़ सकती हैं।

रुहें अर्स अजीम की, पांचमी भोम पौढ़त।

सो सुपने कदम न छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥१०॥

परमधाम की आत्मायें पाँचवी भूमिका में शयन करती हैं। धनी से शाश्वत सम्बन्ध रखने वाली आत्मायें इस नश्वर जगत् में भी अपने प्राणवल्लभ के चरण कमल को नहीं छोड़ सकती हैं।

भावार्थ— परमधाम में इस नश्वर जगत् की तरह भूख या

नींद का विकार नहीं है, किन्तु अद्वैत की लीला को व्यक्त करने के लिये मानवीय सांचे में ढाला गया है।

रूहें अर्स अजीम की, भोम छठी कई जुगत।

सो क्यों रहें हक कदम बिना, जाकी असल हक निसबत॥११॥

परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ छठीं भूमिका में अनेक प्रकार की लीला करती हैं। धनी की ये अँगनायें संसार में उनके चरणों के बिना रह ही नहीं सकती हैं।

रूहें अर्स भोम सातमी, जो छपर-खटों हींचत।

सो सुपने कदम न छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥१२॥

परमधाम की आत्मायें रंगमहल की सातवीं भूमिका में आमने-सामने हिण्डोलों में झूला झूलती हैं। अक्षरातीत से इन आत्माओं का शाश्वत सम्बन्ध है और स्वप्न में भी

उनके चरणों को ये नहीं छोड़ सकतीं।

द्रष्टव्य- षट्कोण वाले हिण्डोलों को "खट छप्पर" कहते हैं।

ए अर्स भोम आठमी, साम सामी हिंडोलें खटकत।

ए रूहें सुपने कदम न छोड़हीं, जाकी असल हक निसबत॥१३॥

परमधाम में रंगमहल की आठवीं भूमिका में सखियाँ चारों तरफ से आमने-सामने के हिंडोलों में झूलती हैं। ये हिण्डोले बहुत ही मधुर ध्वनि करते हैं। धनी की ये अँगनायें सपने के संसार में भी अपने प्रियतम के चरणों को नहीं छोड़ सकती हैं।

अर्स रूहें सुख नौमी भोमें, सुख सिंघासन समस्त।

सो क्यों रहें हक कदम बिना, जाकी असल हक निसबत॥१४॥

रंगमहल की नवमीं भूमिका में बाहरी हार मन्दिरों की जगह पर २०१ हाँस के छजे आये हैं। प्रत्येक हाँस में एक-एक सिंहासन और १२०००-१२००० कुर्सियाँ आयी हैं। परमधाम की आत्मायें इन पर बैठकर चारों ओर देखने का आनन्द लेती हैं। धनी की ये अँगनायें संसार में उनके चरणों के बिना रह ही नहीं सकतीं।

रूहें रेहेवें अर्स में, जो सुख झरोखों भोगवत।

सो क्यों रहें हक कदम बिना, जाकी असल हक निसबत॥१५॥

सखियाँ रंगमहल में रहती हैं। जो रंगमहल के झरोखों का अपार आनन्द प्राप्त करती हों, वे संसार में धनी के चरणों के बिना कैसे रह सकती हैं। इनका तो धाम धनी से अखण्ड प्रिया-प्रियतम का सम्बन्ध है।

भावार्थ- झरोखों से चारों तरफ के सुन्दर दृश्य देखती

हैं, शीतल सुगन्धित हवा का आनन्द लेती हैं। ठण्ड में धूप का आनन्द लेती हैं। इस प्रकार अनेक तरह से झरोखों का सुख प्राप्त करती हैं।

हक हादी रूहें सुख अर्स चांदनी, अर्स अंबर जोत होवत।
 सो क्यों रहें हक कदम बिना, जाकी असल हक निसबत॥१६॥

रंगमहल की दसवीं चाँदनी में गोल चबूतरा आया है , जिस पर सिंहासन तथा कुर्सियों की शोभा है। इन पर सखियाँ युगल स्वरूप के साथ विराजमान होती हैं। इनकी नूरी ज्योति परमधाम के आकाश में चारों ओर फैलती रहती है। धनी की अर्धांगिनी ये आत्मायें उनके चरणों के बिना संसार में भला कैसे रह सकती हैं।

सकल भोम सुख लेवहीं, रूहें हक कदम पकरत।

सो क्यों रहें इन कदम बिना, जाकी असल हक निसबत॥१७॥

सखियाँ श्री राज जी के चरण पकड़कर, अर्थात् उनके सम्बन्ध से, रंगमहल की सभी भूमिकाओं में आनन्द लेती हैं। धनी की वही अँगनायें इस संसार में उनके चरणों के बिना क्यों रहेंगी, कदापि नहीं।

भावार्थ— चरण पकड़ना एक आलंकारिक कथन है, जिसका तात्पर्य है— स्वरूप की सान्निध्यता में रहना या मेहर की छाँव तले होना। यद्यपि परमधाम की वहदत में श्री राज जी एवं सखियाँ एक ही हैं, किन्तु चरणों को पकड़कर सुख लेने का कथन मूल सम्बन्ध की सामीप्यता एवं एकत्व को लौकिक भावों में प्रस्तुत करना है।

आई नजीक जागनी, पीछे तो उठ बैठत।

हांसी होसी भूली पर, जाकी असल हक निसबत॥१८॥

अब आत्म-जाग्रति का समय नजदीक है। बाद में तो सभी जाग्रत हो जायेंगे। धनी के चरणों से जिनका अखण्ड सम्बन्ध है, यदि वे अपने सम्बन्ध को भूलकर धनी से प्रेम नहीं कर पायीं, तो उनकी बहुत हँसी होगी।

भावार्थ- हृदय में धनी की शोभा का बस जाना ही आत्मा का जाग्रत होना है। सागर तथा श्रृंगार ग्रन्थ के अवतरण से यह लक्ष्य बहुत ही सुगम दिखने लगा है। इसी को संकेत करते हुए "जागनी" को नजदीक कहा गया है।

रूहें हुकम ले दौड़ियो, मूल तन अर्समें उठत।

हक हंससी तुम ऊपर, रूहें क्यों भूली ए निसबत॥१९॥

जो भी परमधाम की आत्मा हो, वह धनी के आदेश (हुक्म) का बल लेकर अपनी आत्म-जाग्रति के पथ पर दौड़ लगाये। जाग्रत होने पर ही आपको अपने परमधाम वाले परात्म के तन का साक्षात्कार होगा। यदि आप ऐसा नहीं कर सके, तो श्री राज जी आपके ऊपर इस बात की हँसी करेंगे कि कैसे आपने मूल सम्बन्ध को भुला दिया।

भावार्थ- परात्म के तनों में जाग्रति तो सबकी एक साथ होगी। आत्म-जाग्रति की प्रक्रिया में आत्मा धनी के जिस-जिस अंग की शोभा को अपने हृदय में बसाती जाती है, उसे परात्म तथा अपनी आत्मा का वह-वह अंग दिखता जाता है। इसे ही परात्म का परमधाम में उठना कहते हैं। सामूहिक रूप से परात्म का उठना एक साथ ही होगा, किन्तु इस चौपाई में परात्म के दिखने को

"उठना" कहा गया है।

आया नजीक बखत मोमिनों, क्यों भूलिए हादी नसीहत।

जो सुपने कदम न भूलिए, हंसिए हकसों ले निसबत॥२०॥

हे साथ जी! अब जागनी का समय बहुत ही निकट है। श्यामा जी के द्वारा दी गई सिखापन को क्यों भूल रहे हैं। इस स्वप्न के ब्रह्माण्ड में भी धनी के चरणों को न भूलिए और अपने मूल सम्बन्ध से अपने धाम हृदय में प्रियतम को बसाकर उनसे हँसी-विनोद कीजिए।

भावार्थ- श्रृंगार ७/४३,४८,७१ से यह स्पष्ट है कि इस चौपाई में श्यामा जी को ही "हादी" कहा गया है। जागनी का मूल उद्देश्य यह है कि हम परमधाम की तरह धाम धनी को अपने सम्मुख अनुभव करें और उनसे प्रेम-विनोद की लीला करें। यह लक्ष्य मात्र चितवनि द्वारा

अपने धाम हृदय में श्री राजश्यामा जी को बसाने से ही सम्भव है।

लाहा लीजे दोनों ठौरका, सुनो मोमिनों कहे महामत।

क्यों सुपने ए चरन छोड़िए, अपनी असल निसबत॥२१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! मेरी बात को सुनिए। धनी के चरणों से हमारा अखण्ड सम्बन्ध है, इसलिये इस स्वप्न के ब्रह्माण्ड में भी प्रियतम श्री राज जी के चरणों को न छोड़िए। अपने धाम हृदय में युगल स्वरूप को बसाकर यहाँ का भी और परमधाम का भी लाभ लीजिए।

भावार्थ- इस संसार में ब्रह्मवाणी द्वारा परमधाम के उन गुह्यतम (मारिफ्त) रहस्यों का बोध हुआ है, जो परमधाम में हमें नहीं था। चितवनि द्वारा हम युगल

स्वरूप सहित सम्पूर्ण परमधाम को प्रत्यक्षतः वैसे ही देख सकते हैं, जैसे परमधाम में देखा करते थे। आत्म – जाग्रति होने पर हम कूटस्थ होकर माया का खेल देख सकते हैं और परमधाम को भी देख सकते हैं। इसे ही दोनों स्थानों का लाभ लेना कहते हैं।

प्रकरण ॥९॥ चौपाई ॥५४८॥

श्री राज जी की इजार

इस प्रकरण में श्री राज जी की चूड़ीदार इजार का वर्णन किया गया है।

असल इजार एक पाचकी, एकै रस सब ए।

कई बेल पात फूल बूटियां, रंग केते कहूं इनके॥१॥

श्री राज जी की इजार हरे रंग की है। सम्पूर्ण इजार की शोभा एक समान है। इसमें अनेक प्रकार की लतायें, पत्तियाँ, फूल, और बूटियाँ बनी हुई हैं। इनके रंगों की सुन्दरता का मैं कितना वर्णन करूँ।

भावार्थ— इजार (बिर्जीश) फारसी का शब्द है। इसे अंग्रेजी और बोलचाल में पाजामा (pyjama) कहते हैं। गोलाईदार छोटे-छोटे फूलों की बनावट को बूटी कहते हैं।

बेल मोहोरी इजार की, जानों एही भूखन सुन्दर।

अतंत सोभा सबसे, एही है खूबतर॥२॥

इजार की मोहरी में बहुत ही सुन्दर लताओं का चित्रांकन है। ये इतनी सुन्दर लग रही हैं कि जैसे आभूषण जगमगा रहे हों। इनकी शोभा सबसे अधिक है। शब्दों में इसे मात्र "अनन्त" कह सकते हैं।

इजार बंध नंग कई रंग, कई बूटी कई नकस।

निरमान न होए इन जुबां, ए वस्तर अजीम अर्स॥३॥

इजारबन्द (नाड़े) में कई रंगों के नग जड़े हुए हैं। इसमें अनेक प्रकार की बूटियाँ और तरह-तरह की चित्रकारी भी है। परमधाम के इन वस्त्रों की अद्वितीय शोभा का वर्णन शब्दों में हो पाना सम्भव नहीं है।

अति सोभा अति नरमाई, नंग सोभित नरम पसम।

अर्स चीज न आवे सब्दमें, ए नेक केहेत हुकम॥४॥

इजार में अत्यधिक कोमलता भरी शोभा है। इसके नगों की शोभा रेशम की तरह कोमल है। मैं तो धाम धनी के आदेश से थोड़ा बहुत कह रही हूँ, अन्यथा परमधाम की किसी भी वस्तु की शोभा का वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता।

बेल पात फूल कई विधके, कई विध कांगरी इत।

जोत न नरमाई सुमार, जुबां क्या कहे सिफत॥५॥

इजार में अनेक प्रकार की लताओं, पत्तियों, तथा फूलों के चित्रांकन हैं। इसमें अनेक प्रकार की काँगरी भी बनी हुई है। इजार की जगमगाती हुई ज्योति और कोमलता की कोई सीमा नहीं है। इसकी प्रशंसा शब्दों में हो पाना

सम्भव नहीं है।

नेफा रंग कसूंबका, अति खूबी अतलस।

बेल भरी मोती कांगरी, जानों ए भूखन से सरस॥६॥

नेफे का रंग लाल है और अति सुन्दर रेशमी कपड़े का बना हुआ है। इसमें बनी हुई बेलें (लतायें) मोतियों की काँगरी से भरी हुई हैं। ऐसा लगता है जैसे ये आभूषणों से भी अधिक सुन्दर हैं।

भावार्थ- नाड़ा डालने की जगह को "नेफा" कहते हैं। परमधाम की वहदत में सबकी शोभा समान है। एक को दूसरे से अधिक सुन्दर कहने का तात्पर्य उसके सौन्दर्य को उजागर (प्रकाशित) करना होता है। वस्तुतः परमधाम में सबकी सुन्दरता समान है।

ताना बाना रंग रेसम, जवेर का सब सोए।

बेल फूल बूटी तो कहूं, जो मिलाए समारे होए॥७॥

इजार में प्रयुक्त होने वाले धागों की बुनाई रंग और रेशम आदि सभी नूरमयी जवाहरातों के हैं। इसमें जड़ी हुई लताओं, फूलों, तथा बूटियों की शोभा का वर्णन तो मैं तब करूँ, जब किसी वस्तु से इन्हें मिलाकर बनाया गया हो।

भावार्थ— कपड़ा बुनने के लिये धागों को आड़ी-खड़ी समायोजित किया (लगाया) जाता है। इन्हें ही ताना-बाना कहते हैं।

प्रकरण ॥१०॥ चौपाई ॥५५५॥

खुले अंग सिनगार छबि छाती

इस प्रकरण में श्री राज जी के वक्षस्थल सहित पेट और कमर आदि खुले अंगों की शोभा का वर्णन किया गया है।

रूह मेरी क्यों न आवे तोहे लज्जत, तोको हकें कही अर्स की।
अर्स किया तेरे दिल को, तोहे ऐसी बड़ाई हकें दर्ई॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरी आत्मा! धाम धनी ने तुम्हें इतनी बड़ी शोभा दी है कि तुम्हारे हृदय को अपना धाम बनाकर उसमें विराजमान हो गये हैं और परमधाम की गुह्यतम बातों को तुमसे कह भी दिया है, फिर भी तुम्हें उसका स्वाद क्यों नहीं आ रहा है।

भावार्थ- "हो मेरी वासना, तुम चलो अगम के पार" (किरंतन ७/१) तथा "देख तूं निसबत अपनी, मेरी रूह तो आंखां खोल" (खिलवत ९/१) के कथन से यह

पूर्णतया स्पष्ट है कि यह कथन महामति जी ने अपने नाम से कहकर दूसरे सुन्दरसाथ को सिखापन दिया है। क्या महामति जी की सुरता निराकार से परे नहीं गयी थी या उन्हें अपने मूल सम्बन्ध की पहचान नहीं थी। इस चौपाई से एक सिखापन यह भी है कि अध्यात्म के चरम लक्ष्य को प्राप्त करने के पश्चात् भी अपने मन में "पूर्णता" की भावना नहीं रखनी चाहिए।

जो कदी तैं आई नहीं, तोमें हक का है हुकम।

हुजत दई तोको अर्सकी, दिया बेसक अपना इलम॥२॥

कदाचित यह मान भी लिया जाये कि तू परमधाम से नहीं आयी है, तो भी तुम राज जी के आदेश (हुकम) से जुड़ी हुई तो हो। धाम धनी ने तुम्हें परमधाम की आत्मा कहलाने का दावा लेने की शोभा तो दी है। इसके साथ

ही तुम्हें संशय रहित तारतम ज्ञान भी दिया है।

भावार्थ- जिस प्रकार स्वप्न देखने वाले व्यक्ति का मूल तन वहाँ पड़ा रहता है, किन्तु मन की क्रियाशक्ति से जो नया शरीर धारण किया जाता है, उसका नाम-रूप भी पहले जैसा ही होता है। यद्यपि वह वास्तविक नहीं होता है, किन्तु स्वप्न टूटने के पश्चात् उस लीला को पूर्व शरीर के साथ ही जोड़ा जाता है।

उसी प्रकार परात्म का नूरी तन तो इस ब्रह्माण्ड में किसी भी स्थिति में नहीं आ सकता, लेकिन श्री राज जी के आदेश (हुक्म) से परात्म की सुरता इस संसार में जीव के ऊपर बैठकर माया का खेल देख रही है। इस प्रकार यह निश्चित है कि सुरता का भी नाम परात्म वाला ही होगा। इसे ही परात्म का दावा लेना कहा गया है।

बिन जामें देखों अंगको, आसिक सब सुख चाहे।

बागा पेहेने हमेसा देखिए, कछू ए छबि और देखाए॥३॥

धाम धनी के प्रेम में डूबी रहने वाली (आशिक) मेरी आत्मा! तू अपने प्रियतम के सभी सुखों को चाहती है, इसलिये अब जामे के बिना ही उनके अंगों की शोभा को देखो। बागे के साथ तो हमेशा ही उनका दर्शन होता है, किन्तु बिना बागे के उनकी शोभा कुछ और ही मनोहर दिखायी देती है।

आसिक इन मासूक की, नए सुख चाहे अनेक।

निरखे नए नए सिनगार, जानें एक से दूजा विसेक॥४॥

श्री राज जी से प्रेम करने वाली आत्मायें प्रेम के अनेक प्रकार के नये-नये सुखों की इच्छा करती हैं। वह अपने प्रियतम को नित्य नये-नये श्रृंगारों में देखती हैं। उसमें

प्रत्येक श्रृंगार दूसरे से कुछ विशेष ही प्रतीत होता है।

भावार्थ- प्रेम रूपी "वृक्ष" सौन्दर्य के ही जल से सिंचित होकर वृद्धि को प्राप्त होता है और उसका फल आनन्द होता है। परमधाम में प्रेम, सौन्दर्य, और आनन्द तीनों ही शाश्वत्, अखण्ड, और नित्य नवीन हैं। यद्यपि इनका लीला रूप में पल-पल परिवर्तन हो सकता है, किन्तु कल्पना में भी ह्रास (कमी) नहीं हो सकता। सौन्दर्य के सम्बन्ध में महाकवि कालिदास जी का यह कथन बहुत उचित है- "क्षणे क्षणे यत् नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः" अर्थात् सौन्दर्य का स्वरूप ही ऐसा होता है, जिसमें पल-पल नवीनता तो दृष्टिगोचर होती है, किन्तु उसमें क्षीणता नहीं होती।

जुदे जुदे सुख ले हक के, रूह आसिक क्योंए न अघाए।
ताथें जुदा जुदा बरनन, सुख आसिक ले दिल चाहे॥५॥

श्री राज जी के अलग-अलग श्रृंगारों को देखकर अलग-अलग प्रकार के सुख प्राप्त करने पर भी आत्मा को किसी प्रकार से तृप्ति नहीं होती, इसलिये वह अपनी इच्छानुसार अलग-अलग वर्णन करके ही आनन्दित होती है।

भावार्थ- प्रेम, सौन्दर्य, और आनन्द का सागर अथाह होता है। इनमें जितना गोता लगाया जाता है, उतना ही यह अनुभव होता है कि अभी भी कुछ है, किन्तु वाणी द्वारा व्यक्त कर देने पर सन्तोष (तृप्ति) का अनुभव होता है। इस चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है।

खाना पीना खिन खिन लिया, प्यार अर्स रुहन।

पल पल मासूक देखना, एही आहार आसिकन॥६॥

परमधाम की आत्माओं द्वारा क्षण-क्षण धनी से प्रेम करना ही भोजन करना और जल पीना है। श्री राज जी का पल-पल दीदार (दर्शन) ही आत्माओं का आहार है।

भावार्थ- भोज्य पदार्थ को ग्रहण करना और जल पीना आहार के अन्तर्गत आता है। इस प्रकार श्री राज जी का दर्शन करना भोजन करना है तथा प्रेममयी लीला में डूब जाना पानी पीना है। निम्नलिखित चौपाई इसकी पुष्टि करती है-

खाना दीदार इनका, या सों जीवे लेवे स्वांस।

दोस्ती इन सरूप की, तिनसें मिटत प्यास॥

सिनगार ५/९०

हक बैठे अपने अर्स में, सो अर्स मोमिन का दिल।

तो अनेक खूबी खुसालियां, हम क्यों न लेवें मिल॥७॥

श्री राज जी जिस परमधाम में विराजमान हैं, वह परमधाम ब्रह्ममुनियों का हृदय (दिल) कहा गया है। इस प्रकार उस धाम हृदय में अनेक प्रकार की विशेषतायें और आनन्द के स्रोत भरे हुए हैं। ऐसी स्थिति में हम सभी आत्मायें मिलकर उस आनन्द का रसपान क्यों न करें।

भावार्थ- अपने धाम हृदय में छिपे हुए आनन्द के भण्डार को पाने के लिये स्वयं को प्रेम में डुबाना पड़ेगा और चितवनि द्वारा युगल स्वरूप को अपने धाम हृदय (अर्श दिल) में बसाना पड़ेगा।

ए जो हक वस्तरकी खूबियां, सो हक अंग परदा जहूर।
 बारीक ए सुख जानें रूहें, जिनपे अर्स सहूर॥८॥

श्री राज जी के वस्त्रों में जो चेतनता, कोमलता, और नूरमयी शोभा आदि की विशेषतायें हैं, वे उनके अंगों की शोभा का ही प्रकट रूप हैं, और ये वस्त्र मात्र लीला रूप में पर्दे के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। आनन्द की ये बहुत ही सूक्ष्म बातें हैं, जिनको मात्र परमधाम का चिन्तन करने वाली आत्मायें ही जानती हैं।

भावार्थ- श्री राज जी के वस्त्र और आभूषण लौकिक वस्त्र और आभूषणों की तरह नहीं हैं, जिन्हें किसी ने बनाया हो। श्री राज जी के दिल का प्रकट रूप ही उनके अंगों की शोभा के रूप में है और वही वस्त्रों एवं आभूषणों के रूप में है।

वस्तर भूखन सब पूरन, सुख बिन जामें और जिनस।

देख देख देखे जो आसिक, जो देखे सोई सरस॥९॥

यद्यपि वस्त्र और आभूषण शोभा , सौन्दर्य, कोमलता आदि सभी गुणों से पूर्ण हैं , किन्तु बिना जामे के उनके अंगों की शोभा को देखने का सुख कुछ और ही है। श्री राज जी के इन खुले अंगों की शोभा को देख-देखकर आत्मायें उसमें इतना अधिक डूब जाती हैं कि वे जिस अंग को देखती हैं, उसी में उन्हें आनन्द का अखण्ड स्रोत दृष्टिगोचर होता है।

भावार्थ- इस लौकिक जगत में जब आशिक (प्रेमी) अपने माशूक (प्रियतम) के अंग-अंग की शोभा को वस्त्रहीन अवस्था में देखता है, तो वह विशेष आनन्द प्राप्त करता है। इस चौपाई में इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति धाम धनी को लक्ष्य करके कही गयी है।

कटि कोमल अति पतली, सुन्दर छाती गौर।

देख देख सुख पाइए, जो होवे अर्स सहूर॥१०॥

श्री राज जी की कमर बहुत ही कोमल और पतली है। छाती (वक्षस्थल) अति सुन्दर गौर वर्ण की है। हे साथ जी! यदि आप चितवनि रूप परमधाम का चिन्तन करते हैं, तो आप धनी के इन अंगों की शोभा को देख-देखकर अपार आनन्द प्राप्त करेंगे।

भावार्थ- इस चौपाई में "सहूर" शब्द का तात्पर्य बौद्धिक या मानसिक चिन्तन से नहीं लेना चाहिए, बल्कि आत्मिक दृष्टि से परमधाम के लीला रूप पदार्थों को देखना ही परमधाम का चिन्तन (सहूर) है। जब इस नश्वर जगत के मन, बुद्धि, और चित्त की पहुँच परमधाम में है ही नहीं, तो बौद्धिक या मानसिक चिन्तन को स्थान कहाँ दिया जा सकता है। जिन चौपाइयों में ज्ञान के

किसी भी विषय पर चिन्तन की बात आती है, वहाँ "सहूर" शब्द का प्रयोग अवश्य ही बौद्धिक या मानसिक चिन्तन के रूप में किया जाता है, जैसे—

एता मता तुमको दिया, सो जानत है तुम दिल।

बेसक इलमें न समझे, तो सहूर करो सब मिल॥

श्रृंगार २७/१

कटि कोमल कही जो पतली, कछु ए सलूकी और।

ए जुबां सोभा तो कहे, जो कहूं देखी होए और ठौर॥११॥

यद्यपि श्री राज जी की कमर को कोमल और पतली कहकर अवश्य वर्णित किया गया है, किन्तु इसकी सुन्दरता तो कुछ निराली है। इसकी शोभा का वर्णन तो यह जिह्वा तभी कर सकती है, जब ऐसी सुन्दरता कहीं और देखी गयी हो।

और पेट पांसली हककी, ए कौन भांत कहूं रंग।

रूह देखे सहूर अर्स के, और कौन केहेवे हक अंग॥१२॥

श्री राज जी के पेट और पसलियों के भाग की सुन्दरता इतनी अधिक है कि यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि उसके सौन्दर्य (रंग) का वर्णन मैं कैसे करूँ। परमधाम की चितवनि में ही आत्मा इसे यथार्थ रूप में देख सकती है, अन्यथा अक्षरातीत के अंगों की शोभा का वर्णन भला दूसरा कोई भी कैसे कर सकता है।

पांसे पांखड़ी बगलें, सोभित बंधो बंध।

अंग रंग खूबी खुसालियां, पार ना सुख सनंध॥१३॥

दोनों बगल की पसलियाँ फूलों की पँखुड़ियों के समान गूँथी हुई शोभा दे रही हैं। इन अंगों का सौन्दर्य और प्रफुल्लित करने वाली विशेषतायें अनन्त आनन्द को देने

वाली हैं।

भावार्थ- पसलियाँ मेरुदण्ड से जुड़ी होती हैं। उस जोड़ को ही बन्ध कहा गया है। वक्षस्थल से लेकर मेरुदण्ड तक का पसलियों वाला भाग अति सुन्दर है। इसको देखने से इतना अखण्ड (वास्तविक) आनन्द प्राप्त होता है, जिसकी कोई सीमा नहीं है।

ज्यों बरनन सुपन सरूपकी, ए भी होत विध इन।

ए चारों चीज उत हैं नहीं, ना अर्स में ख्वाब चेतन॥१४॥

जिस प्रकार स्वप्न के स्वरूपों का वर्णन होता है, उसी प्रकार मैंने श्री राज जी के स्वरूप का वर्णन किया है। परमधाम में वायु, अग्नि, जल, और पृथ्वी तत्व है ही नहीं और वहाँ स्वप्न का चेतन तत्व (जीव) भी नहीं है।

भावार्थ- श्री राज जी के वक्षस्थल, पेट, पसलियों

आदि का वर्णन पढ़कर यह कदापि नहीं समझ लेना चाहिए कि उनका शरीर भी हमारे जैसा है। यहाँ के शरीर तो त्रिगुणात्मक एवं पञ्चभूतात्मक हैं, जबकि परमधाम के तन चेतन एवं नूरमयी हैं। वहाँ का कण-कण चेतन है, किन्तु इस संसार में जिसको चेतन कहा जाता है, वस्तुतः वह स्वाप्निक चेतन है, मूलतः अनादि चेतन नहीं। आदिनारायण की चेतना का प्रतिभास (चिदाभास) ही जीव चेतन है, जबकि स्वयं आदिनारायण अव्याकृत (सुमंगला पुरुष) की चेतना का प्रतिबिम्बित (स्वाप्निक) रूप है।

ए बरनन अर्स अंग होत है, ले मसाला इतका।

तार्थे किन बिध रूह कहे, ना जुबां पोहोंचे सब्द बका॥१५॥

परमधाम के इन अंगों का वर्णन यहाँ के दृष्टान्तों से ही

किया जा रहा है। इस जिह्वा के द्वारा कहे हुए शब्द परमधाम तक जा नहीं सकते, इसलिये यह प्रश्न खड़ा होता है कि मेरी आत्मा श्री राज जी के श्रृंगार का वास्तविक वर्णन किस प्रकार करे?

जो अरवा होए अर्सकी, सो कीजो इलम सहूर।

इलम सहूर जो हकें दिया, लीजो इनसे रूहें जहूर॥१६॥

हे साथ जी! आपमें जो भी परमधाम की आत्मा हो, वह तारतम वाणी के ज्ञान द्वारा इस विषय पर चिन्तन करे। धाम धनी ने ब्रह्मवाणी के आधार पर चिन्तन करने की जो शक्ति दी है, उससे ब्रह्मसृष्टियाँ अवश्य धाम धनी की शोभा को समझ जायेंगी।

भावार्थ— सहूर (चिन्तन) दो प्रकार का होता है— १. आत्म-दृष्टि द्वारा होने वाला चिन्तन (सहूर), जो मन—

बुद्धि से परे चितवनि की अवस्था में होता है। २ . ज्ञान द्वारा चिन्तन, जो जीव के शुद्ध अन्तःकरण द्वारा किया जाता है।

इस प्रकरण की चौपाई १२ में पहले प्रकार का चिन्तन है, जिसमें प्रत्यक्ष दर्शन होता है। इस चौपाई में स्पष्ट कहा गया है कि "रूह देखे सहूर अर्स के"। इसी प्रकार चौपाई १६ में ज्ञान द्वारा चिन्तन का प्रसंग है, जिसमें ज्ञान द्वारा शोभा का अनुभव होता है।

हकको जेता रूह देखहीं, सुध तेती ना बुध मन।

तो सुपन जुबां क्या केहेसी, अंग हक बका बरनन॥१७॥

श्री राज जी के अंगों की शोभा को आत्मा जितना देखती है, उतनी सुध बुद्धि या मन को नहीं हो पाती। ऐसी स्थिति में इस स्वप्न की जिह्वा से श्री राज जी के

अखण्ड अंगों की अनन्त शोभा का वर्णन कैसे हो सकता है।

नरम नाजुक पेट पांसली, क्यों कहूं खूब रस रंग।

देत आराम आठों जाम, हक बका अर्स अंग॥१८॥

श्री राज जी का पेट बहुत कोमल है और पसलियाँ भी अत्यन्त मुलायम हैं। इन अंगों के अत्यन्त प्रेम भरे सौन्दर्य की विशेषताओं का मैं कैसे वर्णन करूँ। जब आत्मायें परमधाम में विराजमान श्री राज जी के इन अखण्ड अंगों की नूरमयी शोभा को अपने हृदय में बसा लेती हैं, तो वे अष्ट प्रहर आनन्द की अमृत धारा का रसपान करती रहती हैं।

भावार्थ— आत्मा के धाम हृदय में जब एक बार भी प्रियतम की छवि बस जाती है, तो वह हमेशा के लिये

अखण्ड हो जाती है। जीव भले ही निद्रा आदि क्रियाओं में प्रियतम अक्षरातीत को भूल जाये, किन्तु आत्मिक-दृष्टि उसे अष्ट प्रहर पल-पल देखती रहती है और उसके आनन्द में डूबी रहती है।

छाती निरखों हककी, गौर अति उज्जल।

देख हैड़ा खूब खुसाली, तो मोमिन कहा अर्स दिल॥१९॥

अब मैं प्रियतम अक्षरातीत की छाती (वक्ष स्थल) को देख रही हूँ, जो बहुत अधिक उज्ज्वलता मिश्रित गौर वर्ण की है। अत्यधिक आनन्द की वर्षा करने वाले इस हृदय कमल को देखने के कारण ही तो ब्रह्ममुनियों के हृदय को धाम कहा जाता है।

द्रष्टव्य- गौर वर्ण में गुलाबी रंगत मिली होती है, किन्तु उज्ज्वल वर्ण का तात्पर्य उस दूधिया रंग से है, जिससे

अत्यधिक स्वच्छता हो।

जिन देख्या हक हैड़ा, क्यों नजर फेरे तरफ और।

वाको उसी सूरत बिना, आग लगे सब ठौर॥२०॥

जिसने श्री राज जी के वक्षस्थल (हृदय कमल) की शोभा को देख लिया है, वह अपनी दृष्टि को कहीं और भटकने नहीं देगा। उसे तो उस शोभा के अतिरिक्त और सब कुछ अग्नि के समान कष्टकारी लगता है।

जो हक अंग देख्या होए, हक जमाल न छोड़े तिन।

जाके अर्स की एक रंचक, त्रैलोकी उड़ावे त्रैगुन॥२१॥

जिस नूरमयी परमधाम का एक कण चौदह लोक के इस सम्पूर्ण त्रिगुणात्मक ब्रह्माण्ड को समाप्त (लय) कर देता है, उस परमधाम में विराजमान श्री राज जी के इन अंगों

की शोभा को जिन आत्माओं ने देख लिया होता है, उन्हें श्री राज जी का अनन्त सौन्दर्य छोड़ता नहीं है अर्थात् उनके हृदय में धनी की शोभा अखण्ड रूप से बस जाती है।

द्रष्टव्य— तीन गुणों से युक्त होने के कारण चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड को "त्रिलोकी" कहते हैं। पौराणिक मान्यता में आकाश या वैकुण्ठ, पृथ्वी, और पाताल है। इसी प्रकार वैदिक दृष्टि से पृथ्वी, अन्तरिक्ष, और द्युलोक को त्रिलोकी कहा जाता है। आत्माओं ने धनी के जिन अंगों की शोभा को देख लिया है, वह किसी भी स्थिति में उनसे नहीं छूटना चाहिए।

वह देख्या अंग क्यों छूटहीं, हक परीछा एही मोमिन।

ए होए अर्स अरवाहों सों, जिनके अर्स अजीम में तन॥२२॥

श्री राज जी द्वारा ब्रह्मसृष्टियों की यही परीक्षा ली जा रही है। शोभा को अखण्ड रूप से बसाये रखने का कार्य एकमात्र परमधाम की वे आत्मायें ही कर सकती हैं , जिनके परमधाम में मूल तन होते हैं।

भावार्थ- यदि जीव सृष्टि को श्री राज जी के सौन्दर्य की एक झलक मिल जाये तो कुछ समय के पश्चात् वह भूल भी सकती है, किन्तु ब्रह्मसृष्टियाँ अपने प्राणवल्लभ की शोभा को देखने के पश्चात् किसी भी स्थिति में नहीं भूल सकतीं। भूलने का तात्पर्य है- प्रेम की परीक्षा में पूर्णतया असफल हो जाना।

हक जात अर्स उन तनसे, बीच रहेत मोमिनके दिल।

अर्स मोमिन दिल तो कह्या, यों हिल मिल रहे असल॥२३॥

परमधाम में ब्रह्मसृष्टियाँ श्री राज जी के साक्षात् तन हैं

और इस माया के खेल में धाम धनी आत्माओं के हृदय में विराजमान हैं। इसलिये उनके हृदय को धाम कहलाने की शोभा प्राप्त है। इस प्रकार ब्रह्मसृष्टियाँ और श्री राज जी आपस में ओत-प्रोत (एकाकार) हैं।

भावार्थ- जब अक्षरातीत का हृदय ही श्यामा जी, सखियों, और सम्पूर्ण २५ पक्षों के रूप में लीला कर रहा है, तो उनसे अलग रूप में सखियों के स्वरूप की कल्पना भी नहीं की जा सकती। लीला रूप में श्री राज जी सखियों की परात्म के हृदय में और आत्मा के हृदय में भी विराजमान हैं।

दिल हक का और हादी का, ए दोऊ दिल हैं एक।

एकै मता दोऊ दिलमें, ए अर्स रूहें जाने विवेक॥२४॥

एकमात्र परमधाम की आत्मायें ही इस रहस्य को

जानती हैं कि श्री राज जी और श्यामा जी का हृदय एक ही है। दोनों हृदयों में एक ही विचारधारा रहती है।

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय होता है कि जब दोनों दिल एक हैं और दोनों में एक ही विचारधारा रहती है, तो इस खेल में आने से पहले श्यामा जी इस मायावी जगत के बारे में कुछ भी क्यों नहीं जानती थीं?

जिस प्रकार किसी व्यक्ति के बायें हाथ पर बर्फ का टुकड़ा या आग का अँगारा रख देने पर बायें हाथ को ही हटाना पड़ता है, दाहिने को नहीं, उसी प्रकार अक्षर ब्रह्म की स्वाप्निक लीला का ज्ञान श्यामा जी को नहीं था। जैसे दोनों हाथ एक ही जीव के हैं, फिर भी एक हाथ के सुख-दुःख का प्रभाव दूसरे पर नहीं पड़ता, वैसे ही सत् अंग के सपने की लीला को आनन्द अंग नहीं जानता था। यद्यपि परमधाम स्वलीला अद्वैत है, फिर भी अक्षर

ब्रह्म सत् की वहदत (एकत्व) में हैं और श्यामा जी आनन्द की वहदत में हैं। अक्षर ब्रह्म को आनन्द की लीला का ज्ञान नहीं था और सखियों सहित श्यामा जी को सत् या उसके स्वप्न की लीला का ज्ञान नहीं था।

जो गंज हक के दिलमें, सो पूरन इस्क सागर।

कोई ए रस और न ले सके, बिना मोमिन कोई न कादर॥२५॥

अक्षरातीत के हृदय में इश्क (प्रेम) का अनन्त (पूर्ण) सागर लहरा रहा है, किन्तु ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त इस रस को अन्य कोई भी नहीं ले सकता। उनके अतिरिक्त अन्य किसी में भी उसका पान कर सकने का सामर्थ्य नहीं है।

तो अर्स कहा दिल मोमिन, जो इन दिलमें हक बैठक।
तो इत जुदागी कहां रही, जहां हकै आए मुतलक॥२६॥

ब्रह्ममुनियों के हृदय में अक्षरातीत विराजमान होते हैं, इसलिये इनके हृदय को धाम कहा जाता है। जब हृदय में स्वयं अक्षरातीत श्री राज जी ही आ गये हों, तो उनसे वियोग हो जाने की बात कैसे की जा सकती है।

ए क्यों होए बिना निसबतें, इतहीं हुई वाहेदत।
निसबत वाहेदत एकै, तो क्यों जुदी कहिए खिलवत॥२७॥

बिना मूल सम्बन्ध के ऐसा नहीं हो सकता, अर्थात् धाम धनी किसी के हृदय में अचानक ही विराजमान नहीं हो सकते। धाम धनी के विराजमान हो जाने से आत्मा और श्री राज जी में इस संसार में ही एकदिली (एकत्व) की स्थिति हो गयी। जब मूल सम्बन्ध (निस्बत) और एकत्व

(वहदत) एक ही हो गये, तो अब खिल्वत को अलग कैसे किया जा सकता है।

भावार्थ- जब एक अक्षरातीत का हृदय ही श्यामा जी, सखियों, एवं पच्चीस पक्षों के रूप में लीला कर रहा है, तो स्वाभाविक है कि निस्बत के स्वरूपों (श्यामा जी व सखियों), वहदत (युगल स्वरूप तथा सखियों के बीच एकदिली), तथा खिल्वत (हृदय या लीला स्थल) के रूप में मात्र वह ही है। इस चौपाई में यही बात मुख्य रूप से दर्शायी गयी है कि निस्बत, वहदत, और खिल्वत की मारिफत के स्वरूप श्री राज जी या उनका हृदय ही है। ये कभी भी अलग नहीं हो सकते।

जिस प्रकार फूल की सुगन्धि को फूल से और शक्कर की मिठास को शक्कर से अलग नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार मारिफत (निरपेक्ष सत्य) से प्रकट होने वाले

हकीकत (सत्य) के स्वरूपों – निस्बत, वहदत, और खिल्वत – को एक दूसरे से अलग करना सम्भव नहीं है।

इतहीं हक मेहेरबानगी, इतहीं हुकम इलम।

तो इत जोस इस्क क्यों न आवहीं, जो हकें दिल में धरे कदम॥२८॥

उस धाम हृदय में ही धनी की पूर्ण मेहर बरसती है। उनके हुक्म (आदेश) और ज्ञान की लीला भी उसी हृदय से होती है। जिसके हृदय में स्वयं श्री राज जी के चरण कमल विराजमान हों, वहाँ धनी का जोश और इश्क क्यों नहीं होंगे अर्थात् अवश्य होंगे।

भावार्थ- जब आत्मा धनी से एकाकार हो जाती है, तो धनी की इच्छा ही उसकी इच्छा हो जाती है और उसकी इच्छा धनी की इच्छा हो जाती है। इसी को हुक्म (आदेश शक्ति) की लीला कहते हैं।

उसके हृदय से प्रवाहित होने वाला ज्ञान भी उसके मन-बुद्धि से प्रकट नहीं होता, बल्कि धनी के आवेश से उजागर होता है। यह ज्ञान की लीला है।

सोई सहूर अर्स का, जो कह्या हक इलम।

सोई मोमिन पे बेसकी, यों अर्स रूहें जुदे ना खसम॥२९॥

जिसका हृदय ही धाम हो जाता है, उसके सारे संशय समाप्त हो जाते हैं। एकमात्र उसी के पास परमधाम का चिन्तन होता है, जो श्री राज जी का ज्ञान कहलाता है। इस प्रकार परमधाम की आत्मायें धाम धनी से अलग नहीं हैं।

भावार्थ- जिस ब्रह्ममुनि के धाम हृदय में प्रियतम अक्षरातीत के चरण कमल बस जाते हैं, उसके द्वारा होने वाले चिन्तन में लौकिक मन-बुद्धि का प्रवेश नहीं होता,

बल्कि ब्राह्मी ज्ञान (खुदाई इल्म) के सागर की लहरें उसमें प्रवाहित होने लगती हैं। वस्तुतः इस कथन का संकेत श्री महामति जी की ओर है, जिनके धाम हृदय से परमधाम की यह ब्रह्मवाणी अवतरित हुई है।

जुबां क्या कहे बड़ाई हक की, पर रूहें भूल गई लाड़ लज्जत।

एक दम न जुदे रहे सकें, जो याद आवे हक निसबत॥३०॥

इस जिह्वा से धाम धनी की महिमा को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। माया के इस खेल में आकर ब्रह्मसृष्टियों ने श्री राज जी के प्रेम के रसास्वादन का मार्ग भुला दिया, अर्थात् प्रेम की राह पर चलना बन्द कर दिया, अन्यथा यदि उन्हें धनी से अपने मूल सम्बन्ध की याद आ जाती तो एक पल के लिये भी वे अलग नहीं रह सकती थीं।

हक हैड़े के अन्दर, मता अनेक अलेखे।

उपली नजरों न आवहीं, जो लों रूह अंदर ना देखे॥३१॥

श्री राज जी के हृदय में अनेक प्रकार के ज्ञान की अनन्त निधियाँ हैं, किन्तु आत्मा जब तक आत्मिक दृष्टि से हृदय के अन्दर नहीं देखती है, तब तक बाह्य दृष्टि से उसका अनुभव नहीं हो पाता।

भावार्थ— श्री राज जी के वक्षस्थल की अद्वितीय शोभा को जब आत्मा देखती है, तो वह उसमें इतना डूब जाती है कि स्वयं को भूल जाती है। ऐसी स्थिति में उसके लिये मारिफत का दरवाजा खुल जाता है। उसके अन्दर अक्षरातीत के हृदय में लहराने वाले ज्ञान के अनन्त सागरों की लहरें प्रवाहित होने लगती हैं, किन्तु यदि वह चितवनि से दूर रहकर मात्र शब्द ज्ञान द्वारा श्री राज जी के वक्षस्थल की शोभा का चिन्तन करती है तो यह

उसकी बाह्य दृष्टि कही जायेगी, और इसके द्वारा प्रियतम के हृदय में लहराने वाले ज्ञान के सागरों का अनुभव नहीं हो सकता।

क्यों छूटे हक हैयड़ा, मोमिन के दिलसें।

अर्स मता जो मोमिन का, सब हक हैड़े में॥३२॥

इस प्रकार ब्रह्ममुनियों के हृदय से श्री राज जी के वक्षस्थल की शोभा नहीं छूट सकती, अर्थात् वे हमेशा उसमें डूबी रहती हैं। अक्षरातीत के हृदय में ही तो ज्ञान की वे सभी निधियाँ विद्यमान हैं, जिनसे ब्रह्मसृष्टियाँ आनन्द के सागर के रहस्यों को जान जाती हैं।

भावार्थ— इस चौपाई में यह बात विशेष रूप से दर्शायी गयी है कि अक्षरातीत के वक्षस्थल (हृदय, छाती) की शोभा को बसा लेने पर सर्वोपरि विज्ञान (मारिफत के

इल्म) की प्राप्ति हो जाती है।

सब अंग देखत रस भरे, प्रेम के सुख पूरन।

रूह सोई जाने जो देखहीं, ले हिरदे रस मोमिन॥३३॥

श्री राज जी के सभी अंगों में सौन्दर्य, एकत्व, और मूल सम्बन्ध का रस भरा हुआ है। अंग-अंग में प्रेम का पूर्ण आनन्द दृष्टिगोचर हो रहा है। इस रहस्य को मात्र वही आत्मा जानती है, जिसने अपने प्राणवल्लभ के वक्षस्थल की शोभा को आत्म-चक्षुओं से प्रत्यक्ष देखा हो और उसके आनन्द का रसपान भी अपने हृदय में कर चुकी हो।

ए जो बातून गुन हक दिलमें, सो क्यों आवे मिने हिसाब।

ए दृष्ट मन जुबां क्या कहे, ए जो मसाला ख्वाब॥३४॥

अक्षरातीत के दिल में प्रेम, आनन्द, सौन्दर्य, एकत्व, और मूल सम्बन्ध आदि के जो गुण गुह्य (बातिनी) रूप से छिपे हुए हैं, वे इतने अनन्त हैं कि उनका आँकलन (हिसाब) नहीं किया जा सकता। इस झूठे संसार के दृष्टान्तों से मेरी दृष्टि, मन, और जिह्वा उन गुणों का वर्णन नहीं कर सकते।

भावार्थ- लौकिक आँखों से इस ब्रह्माण्ड में ऐसा कोई पदार्थ नहीं देखा गया है, जिसकी उपमा अक्षरातीत के किसी गुण, सौन्दर्य, प्रेम, एकत्व आदि से दी जा सके। सौन्दर्य के लिये किसी गुलाबी फूल का दृष्टान्त, प्रेम के लिये जल और मछली का दृष्टान्त, तथा एकत्व (वहदत) के लिये बीज से उत्पन्न होने वाले वृक्षों का दृष्टान्त भी मात्र समझ में आने के लिये है, वास्तविक नहीं। इसी प्रकार मन के द्वारा उसका मनन हो पाना और

जिह्वा (वाणी) के द्वारा उसको व्यक्त कर पाना असम्भव है।

छाती मेरे खसम की, जिन का नाम सुभान।

जो नेक देखूं गुन अन्दर, तो तबहीं निकसे प्रान॥३५॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती है कि मेरे प्राणवल्लभ का नाम ही सुब्हान है। यदि मैं उनके वक्षस्थल (छाती) में स्थित हृदय में छिपे हुए गुणों के सागर में से थोड़े से भी गुणों का अनुभव कर लूँ, तो मेरा यह पञ्चभौतिक तन छूट जायेगा।

भावार्थ— "सुब्हान" शब्द का अर्थ आशिक या माशूक (प्रिय या प्रिया) होता है। यह दोनों में प्रयुक्त होता है।

जिस प्रकार किसी कक्ष (कमरे) में जलने वाले दीपक या बल्ब का प्रकाश सम्पूर्ण कक्ष में दृष्टिगोचर होता है ,

उसी प्रकार वक्षस्थल में स्थित हृदय में जो अनन्त गुणों का सागर लहरा रहा है, वह वक्षस्थल पर सौन्दर्य, प्रेम, और आनन्द आदि गुणों के रूप में प्रकट होता है। श्री राज जी के वक्षस्थल की शोभा को आत्मसात् करने पर इन गुणों का अनुभव होने लगता है। अधिक अनुभूति से विरह-प्रेम की अग्नि इतनी बढ़ जायेगी कि उसके लिये शरीर और संसार का नाम मात्र भी मोह नहीं रह जायेगा। यद्यपि विरह की अधिकता शरीर का त्याग करा सकती है, किन्तु प्रायः धनी के हुक्म से ऐसा नहीं होता।

जो निध हक हैड़े मिने, सो कई अलेखे अनेक।

सो सुख लेसी अर्स में, जिन बेवरा लिया इत देख॥३६॥

अक्षरातीत के हृदय में जो गुणों के भण्डार विद्यमान हैं, वे इतने अधिक (अनन्त) हैं कि उन्हें किसी भी प्रकार से

व्यक्त नहीं किया जा सकता। इस जागनी ब्रह्माण्ड में जिन आत्माओं ने इन गुणों का विवरण जान लिया है, वे परमधाम में उसका आनन्द लेंगी।

भावार्थ- ब्रह्मवाणी के ज्ञान और चितवनि के प्रकाश में ही धाम धनी के दिल में डूबा जाता है और परम सत्य (मारिफत) के उन रहस्यों को जाना जाता है जिन्हें परमधाम में रहकर भी आज तक जाना नहीं जा सका था। खेल समाप्त होने के पश्चात् परमधाम में इस दुर्लभ ज्ञान का आनन्द मिलेगा।

हक हैडे में जो हेत है, रूहों सों प्रेम प्रीत।

जिन मेहेर होसी निसबत, सोई ल्यावसी परतीत॥३७॥

अपनी आत्माओं को प्रेम में डुबोने के लिये अक्षरातीत के हृदय में अद्वितीय प्रेम (लाड) का अनन्त सागर

हिलोरे मारता रहता है, किन्तु इस पर विश्वास मात्र वे आत्मायें ही लायेंगी जिनका परमधाम से मूल सम्बन्ध होगा और जिन पर धनी की पूर्ण मेहर होगी।

हक हैड़े में इस्क, सब अंगों सनेह।

रूह देखसी हक मेहेर से, निसबती होसी जेह॥३८॥

श्री राज जी के हृदय में अनन्य प्रेम (मारिफत के इश्क) का सागर लहरा रहा है। वही इश्क अंग-अंग में फूट रहा है (प्रकट हो रहा है)। परमधाम से जिनका अखण्ड सम्बन्ध है, वे ही श्री राज जी की मेहर से इस इश्क के सागर की पहचान कर सकेंगी।

भावार्थ- हृदय में लहराते हुए प्रेम के सागर का अंग-प्रत्यंग से प्रकट होने की बात लोकरीति के अनुसार है। वस्तुतः श्री राज जी के रोम-रोम में प्रेम के सागर भरे

हुए हैं, किन्तु ऐसा कहे बिना यह बात बुद्धिगम्य नहीं होती।

हक हैडे में एही बसे, मैं लाड़ पालों रूहों के।

ए हक हुज्रत आवे तिनों, तन असल अर्स में जे॥३९॥

श्री राज जी के हृदय में हमेशा यही भावना रहती है कि मैं आत्माओं को बहुत (अनन्त) प्यार करूँ। धाम धनी से इस प्रकार के प्रेम का दावा भी मात्र वे ही ले सकते हैं, जिनके मूल तन परमधाम में हैं।

भावार्थ— संसार में प्रायः मुक्ति पाने के लिये दास भक्ति, वात्सल्य भक्ति, या सखा भाव की भक्ति की जाती है, जिसमें तरह-तरह की उपासना-पद्धतियाँ अपनायी जाती हैं। इन मार्गों पर चलने वालों को यह पता ही नहीं होता कि परब्रह्म अनन्त प्रेम का सागर है, और वह

उनकी अपेक्षा उनसे करोड़ों गुना अधिक प्रेम करता है। जन्म-जन्मान्तरों के पापों की गठरी बाँधे हुए जीव वस्तुतः प्रेम की राह पर नहीं चल पाते। उनका सारा जीवन ही भय के साये में स्तुति-प्रार्थना करते हुए व्यतीत हो जाता है। परमधाम की आत्मायें इनके विपरीत प्रेम की राह अपनाती हैं और अपना सर्वस्व न्योछावर करके अपने प्राणवल्लभ को पा लेती हैं। उनके अतिरिक्त, प्रेम का इस प्रकार दावा अन्य कोई कर ही नहीं सकता।

हक हैड़े में निस दिन, सुख देऊं रूहों अपार।

जिन रूह लगी होए अन्दर, सो जानेगी जाननहार॥४०॥

श्री राज जी के हृदय में अपनी अँगनाओं को दिन-रात अनन्त प्रेम की लहरों में आनन्दित करने की जो भावना रहती है, उसे मात्र परमधाम की आत्मायें ही जान पाती

हैं, जिनके अन्दर स्वयं भी प्रेम का अँकुर फूट गया होता है।

द्रष्टव्य- इस चौपाई के तीसरे चरण में कथित "लगी होए अन्दर" का भाव है- हृदय में प्रेम की चिंगारी का प्रस्फुटित होना और विरह के झोंकों से प्रज्वलित होते रहना।

एक नुकता इलम हक दिल से, आया मेरे दिल माहें।

इन नूर नुकते की सिफत, केहे न सके कोई क्याहें॥४१॥

श्री राज जी का हृदय शाश्वत ज्ञान का अनन्त सागर है। उसकी एक ही बूँद मेरे धाम हृदय में आयी है, किन्तु इसकी ज्योति की महिमा का वर्णन भी संसार में कोई किसी प्रकार से नहीं कर सकता।

ले नूर नुकते की रोसनी, मैं ढूँढे चौदे भवन।

इनमें कहूं न पाइया, माहें त्रैलोकी त्रैगुन॥४२॥

बिन्दु रूप तारतम ज्ञान के प्रकाश को लेकर मैंने खोजा, लेकिन इन त्रिगुणात्मक पृथ्वी, स्वर्ग, और वैकुण्ठ में भी अखण्ड ज्ञान का प्रकाश नहीं मिला।

इन इलम नुकते की रोसनी, नहीं कोट ब्रह्मांडों कित।

सो दिया मोहे सुपने दिलमें, जो नहीं नूर अछर जाग्रत॥४३॥

चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड की बात तो क्या, करोड़ों ब्रह्माण्डों में कहीं भी इस अलौकिक तारतम ज्ञान का उजाला नहीं है। अक्षर ब्रह्म को जाग्रत अवस्था में भी जिस ज्ञान का प्रकाश नहीं है, उसे धाम धनी ने इस संसार में मेरे हृदय में प्रकट कर दिया।

भावार्थ— युगल स्वरूप की शोभा—श्रृंगार, लीला, तथा

खिल्वत, वहदत, निस्बत, इश्क आदि के परम सत्य (मारिफत) के रहस्यों का बोध अक्षर ब्रह्म को नहीं था, जो इस ब्रह्मवाणी के द्वारा उजागर हुआ है। इस चौपाई में यही भाव प्रकट किया गया है।

खाक पानी आग वाएको, ए चौदे तबक हैं जे।

सो मेरे दिल कायम किए, बरकत नुकते इलम के॥४४॥

धाम धनी ने मेरे हृदय में जिस तारतम ज्ञान का प्रकाश किया है, उसके द्वारा ही पृथ्वी, जल, अग्नि, और वायु तत्व से बने हुए चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड को अखण्ड मुक्ति प्राप्त हुई।

एक बूंद आया हक दिल से, तिन कायम किए थिर चर।

इन बूंद की सिफत देखियो, ऐसे हक दिलमें कई सागर॥४५॥

अक्षरातीत के हृदय से आयी हुई ज्ञान की एक बूँद ने ही इस ब्रह्माण्ड के चर-अचर सभी प्राणियों को अखण्ड कर दिया। जब इस एक बूँद की इतनी महिमा है, तो श्री राज जी के दिल में तो ज्ञान के अनन्त (कई) सागर विद्यमान हैं।

एक बूँद ने बका किए, तो होसी सागरों कैसा बल।

तो काहूँ न पाई तरफ किने, कई चौदे तबक गए चल॥४६॥

जब एक बूँद ने ब्रह्माण्ड के सभी प्राणियों को अखण्ड मुक्ति प्रदान कर दी, तो धाम धनी के दिल में लहराने वाले ज्ञान के अनन्त सागरों की शक्ति कितनी होगी। अब तक असंख्य चौदह लोक के ब्रह्माण्ड उत्पन्न होकर लय को प्राप्त हो चुके हैं, किन्तु इनमें किसी को भी तारतम ज्ञान का उजाला प्राप्त न होने से यह बोध नहीं हो सका

था कि अक्षरातीत का परमधाम किस ओर (कहाँ पर) है।

ऐसे कई सुख हक हैड़े मिने, सो ए जुबां कहे क्योंकर।

हैड़े बल तो नेक कह्या, जो इत बूंद आई उतर॥४७॥

श्री राज जी के हृदय में इस प्रकार के अनन्त सागरों के सुख छिपे हुए हैं, जिनका वर्णन इस जिह्वा से हो पाना सम्भव नहीं है। उनके हृदय में निहित ज्ञान की शक्ति का तो मैं थोड़ा सा ही वर्णन इसलिये कर पायी, क्योंकि तारतम ज्ञान के रूप में एक बूँद मेरे धाम हृदय में (उनके हृदय से) आ चुकी है, अन्यथा यह कदापि सम्भव नहीं था।

कोट ब्रह्मांड का केहेना क्या, जिमी झूठी पानी आग वाए।

ए चौदे तबक जो मुरदे, नुकते इलमें दिए जिवाए॥४८॥

अखण्ड परमधाम के समक्ष पृथ्वी, जल, अग्नि, और वायु तत्व से बने हुए करोड़ों मिथ्या (नश्वर) ब्रह्माण्डों का क्या अस्तित्व है। मृत्यु को प्राप्त होने वाले चौदह लोक के इन सम्पूर्ण प्राणियों को इस तारतम ज्ञान ने अखण्ड मुक्ति प्रदान की है।

द्रष्टव्य— यद्यपि धर्मग्रन्थों के अनुसार तत्व पाँच ही होते हैं, किन्तु आकाश तत्व के अति सूक्ष्म होने के कारण इस चौपाई में कुरआन के अनुसार चार तत्वों का वर्णन किया गया है।

क्यों कहिए सोभा हककी, ना कछू झूठ में आए हम।

लेहेजे हुकमें झूठे बैराटको, सांचे किए नुकते इलम॥४९॥

हम अपनी सुरता द्वारा जिस मिथ्या जगत में आये हैं, इसका तो कुछ अस्तित्व ही नहीं है। इसलिए अक्षरातीत की इस अलौकिक शोभा का वर्णन इस नश्वर जगत में करने की आवश्यकता ही क्या है। धाम धनी ने तो अपने आदेश से तारतम ज्ञान द्वारा इस नश्वर ब्रह्माण्ड को पल भर में ही अखण्ड हो जाने की कृपा कर दी है।

कही न जाए झूठमें, हक हैड़े की सिफत।

हक सोभा छल में तो होए, जो सांच जरा होए इत॥५०॥

श्री राज जी के वक्षस्थल की शोभा का यथार्थ वर्णन इस झूठे जगत में नहीं हो पाता। धाम धनी की अखण्ड शोभा का वर्णन इस मायावी जगत में तब हो पाता, यदि यहाँ एक कण भी सत्य (अखण्ड) होता।

भावार्थ— जड़ रूप प्रकृति से बना हुआ यह सम्पूर्ण

जगत नश्वर तो है ही, चेतन कहा जाने वाला जीव भी आदिनारायण की चेतना का प्रतिभास मात्र है, जबकि स्वयं आदिनारायण अव्याकृत के स्वप्न स्वरूप हैं। यही कारण है कि केवल आभास मात्र प्रतीत होने वाले इस झूठे संसार में श्री राज जी के वक्षस्थल की वास्तविक शोभा का वर्णन कर पाना पूर्णतया असम्भव है।

तो कह्या वेद कतेबमें, ए ब्रह्मांड नहीं रंचक।

तो क्यों कहिए आगे इनके, ए जो सिफत दिल हक॥५१॥

वेद और कतेब में ऐसा कहा गया है कि यह ब्रह्माण्ड तो कुछ है ही नहीं, इसलिये सांसारिक प्राणियों के सामने अक्षरातीत के दिल की महिमा का वर्णन करने से कोई लाभ नहीं है।

भावार्थ— ज्ञान का कथन चेतन प्राणियों के सामने ही

होगा, संसार के जड़ पदार्थों के सामने नहीं। यही कारण है कि इस चौपाई के तीसरे चरण में "इनके" शब्द का प्रयोग प्राणियों के लिये किया गया है। प्रायः जीवों की रुचि ब्रह्मज्ञान में नहीं होती, इसलिये उनके सामने इसके कथन का विशेष लाभ नहीं होता, किन्तु जो जीव इसे ग्रहण कर लेंगे, अवश्य ही भवसागर से पार हो जायेंगे। वस्तुतः जीव सृष्टि ब्रह्मज्ञान के बाह्य अंशों से ही अपना कल्याण कर लेती है। अक्षरातीत की शोभा एवं उनके हृदय की गुह्यतम बातें मात्र ब्रह्मसृष्टियों के लिये ही होती हैं।

कहूं सुन्दर सोभा सलूकी, कहूं केते गुन उपले।

ए सुख न आवे हिसाब में, ए जो गिरो देखत है जे॥५२॥

अब मैं श्री राज जी की छाती की संरचना की सुन्दर

शोभा का वर्णन करती हूँ। मैं इसके बाह्य गुणों का कितना वर्णन करूँ। ब्रह्मसृष्टियाँ श्री राज जी के वक्षस्थल की शोभा को देखकर जिस आनन्द की प्राप्ति करती हैं, उसकी कोई सीमा नहीं है।

हक छाती सलूकी सुनके, रूह छाती न लगे घाए।

धिक धिक पड़ो तिन अकलें, हाए हाए ओ नहीं अर्स अरवाए॥५३॥

श्री राज जी के वक्षस्थल (छाती) के अद्वितीय सौन्दर्य का वर्णन सुनकर भी यदि जीव की छाती में विरह की चोट नहीं लगती है, तो यही कहा जा सकता है कि उसकी बुद्धि को धिक्कार है। हाय! हाय! वह परमधाम की ब्रह्मसृष्टि ही नहीं है।

भावार्थ— इस चौपाई में "रूह" शब्द का तात्पर्य जीव से है, आत्मा से नहीं। आत्मा परात्म का प्रतिबिम्ब है। उसमें

प्रेम की एकरसता है, किन्तु विरह का रसास्वादन तो जीव ही करता है, आत्मा नहीं। ज्ञान का श्रवण-मनन भी जीव का अन्तःकरण ही करता है। चितवनि की गहन स्थिति में ही आत्मा का अन्तःकरण क्रियाशील होता है, अन्यथा वह द्रष्टा होकर जीव के सुख-दुःख के भोग को देखता रहता है।

एक सुन्दरसाथ का विरह में डूबना और दूसरे का न डूबना यही सिद्ध करता है कि विरह का सम्बन्ध जीव से है। जिस तन में जीव के ऊपर आत्मा होगी, वह प्रेम की राह पर अवश्य चलेगी, किन्तु उसकी प्रगति जीव के त्याग पर निर्भर करती है। जीव की पहचान के सन्दर्भ में श्रीमुखवाणी का कथन है—

ए बानी सुनते जिनको, आवेस न आया अंग।

सो नहीं नेहेचे वासना, ताको करुं जीव भेले संग॥

कलस हिंदुस्तानी २३/६०

यही स्थिति इस चौपाई में भी है, जिसमें कहा गया है कि श्री राज जी के वक्षस्थल के सौन्दर्य का वर्णन सुनने के पश्चात् भी जिसके हृदय में विरह नहीं होता, निश्चित रूप से उसके अन्दर परमधाम की आत्मा नहीं होती है।

हक छाती नरम कोमल, रूह सदा रहे सूर धीर।

पाए बिछुरे पिउ परदेस में, हाए हाए सो रही ना कछू तासीर॥५४॥

धाम धनी का वक्ष बहुत ही कोमल है। सर्वदा ही एक धैर्यशाली वीर की तरह आत्मा इस शोभा के दीदार (दर्शन) में प्रयत्नशील रहती है। यद्यपि इस मायावी जगत् में उसने बिछुड़े हुए प्रियतम को पा लिया है, किन्तु हाय! हाय! अब परमधाम जैसे प्रेम का प्रभाव (बल) नहीं रह गया है।

भावार्थ- युद्ध में धैर्यपूर्वक कष्टों को सहन करते हुए अपनी वीरता प्रदर्शित करने वाले वीर को "सूरधीर" कहते हैं। आत्मा का माया से भयानक युद्ध होता है, जिसमें वह धैर्यपूर्वक युद्ध करती है और अपने प्रियतम का दीदार करती है, इसलिये इस चौपाई में उसे "सूरधीर" कहा गया है।

छाती मेरे खसम की, देखी जोर सलूक।

न्यारे होत निमखमें, हाए हाए जीवरा न होत टूक टूक॥५५॥

मैंने अपने प्राणवल्लभ के वक्षस्थल की सुन्दरता को बहुत ही गहराई से (नजर भरकर) देखा, किन्तु यह कितने आश्चर्य की बात है कि उस शोभा से अलग हो जाने के पश्चात् भी मेरा जीव टुकड़े-टुकड़े नहीं हो पाया। हाय! हाय! उसे तो एक क्षण के लिये भी अलग होने पर

अपना अस्तित्व मिटा देना चाहिए था।

छाती मेरे मासूक की, चुभी मेरी छाती माहें।

जो रूह अर्स अजीम की, तिनसे छूटत नाहें॥५६॥

प्राणप्रियतम श्री राज जी (माशूक) की छाती मेरी छाती (वक्ष) में चुभ रही है। परमधाम की जो भी आत्मा होगी, उससे धनी के वक्षस्थल की शोभा और उससे प्रवाहित होने वाली प्रेम की धारा का रसास्वादन नहीं छूट सकता।

भावार्थ- अक्षरातीत के वक्षस्थल की शोभा को देखते-देखते आत्मा प्रेम में इस प्रकार भावविभोर हो जाती है कि ऐसा प्रतीत होता है, जैसे वह स्वयं ही धनी से प्रगाढ़ आलिंगन में बन्ध गयी है। इस अवस्था में उसे अपने पञ्चभौतिक तन या संसार का कुछ भी भान (आभास)

नहीं रहता। ऐसी स्थिति में परात्म का प्रतिबिम्ब लिये हुए उसका निज स्वरूप होता है, जो श्री राज जी के प्रगाढ़ आलिंगन के आनन्द में डूबा होता है। इसे ही अपने वक्ष में धनी के वक्ष (छाती) का चुभना कहते हैं।

बिछुरे पाए परदेस में, देखी पिउ अंग छाती।

अब पलक पड़े जो बिछोहा, हाए हाए उड़े ना करे आप घाती॥५७॥

ब्रह्मवाणी के ग्यान द्वारा आत्माओं ने इस मायावी जगत में भी अपने उस प्रियतम को पा लिया जिनसे वियोग हो गया था। चितवनि द्वारा उन्होंने उनकी खुली हुई सुन्दर छाती का भी दीदार कर लिया। अब यदि एक पल के लिये भी उनसे वियोग होता है और आत्मा विरह में अपना शरीर नहीं छोड़ देती तो हाय! हाय! कष्ट के साथ कहना पड़ता है कि वह आत्मघात कर रही है अर्थात्

अपने आत्मिक कर्तव्य से च्युत होकर अपने छवि को कलंकित कर रही है।

भावार्थ- आत्मा के अन्दर बसी हुई शोभा हमेशा के लिये अखण्ड हो जाती है, इसलिये कहा गया है-

खाते पीते उठते बैठते, सोवत सुपन जागृत।

दम न छोड़े मासूक को, जाको होए हक निसबत॥

सिनगार २०/३

किन्तु इस अनुभूति के पश्चात् भी यदि जीव माया के विकारों में फँस जाये, तो आत्मा को मिलने वाले आनन्द का जो अंश प्राप्त करके वह आनन्दित होता था, वह उससे वंचित हो जाता है। इसे ही वियोग कहा गया है। इस जागनी लीला में बाह्य रूप से जीव के सभी कार्यों को आत्मा के साथ जोड़कर कहा जाता है, क्योंकि आत्मा ने उस जीव के तन को धारण किया होता है।

वास्तविकता यह होती है कि आत्मा अपने प्रियतम का दीदार कर लेने के पश्चात् एक पल के लिये भी कभी धनी से अलग नहीं हो पाती, किन्तु जीव द्वारा होने वाला अपराध आत्मा के नाम से जुड़ जाता है। आनन्द के सागर अक्षरातीत की शोभा को विषय-सेवन एवं आलस्य में डूबकर खोना अक्षभ्य अपराध है। इसलिये प्रायश्चित के रूप में शरीर और संसार के मोह से पूर्णतया अलग हो जाने की बात कही गयी है। यही शरीर को उड़ा देना है।

प्रियतम को पाये बिना मृत्यु को प्राप्त कर लेने पर तो पुनर्जन्म भी सम्भव है। यदि विषयों में फँसकर धनी से विमुख हुए जीव को पुनः विरह की अग्नि में जलाकर प्रायश्चित की राह पर नहीं चलाया जाता है, तो यह आत्मा के लिये कलंक है और उसके उज्ज्वल प्रेम पर

अमिट दाग है। इसे ही आत्मघात (स्वयं को मारना) कहते हैं।

मासूक छाती रूह थें ना छूटहीं, अति मीठी रंग भरी रस।

ए क्यों कर छोड़े मोमिन, जो होए अरवा अर्स॥५८॥

श्री राज जी की छाती आनन्द और मधुर प्रेम के रस से भरी हुई है। आत्मा से उसकी शोभा कभी भी अलग नहीं हो सकती। परमधाम की जो भी आत्मा होगी, वह किसी भी स्थिति में धनी के वक्षस्थल की शोभा को नहीं छोड़ सकती।

ए अंग मेरे मासूक के, मीठे अति मुतलक।

ए लज्जत असल याद कर, ए लें अरवा आसिक॥५९॥

मेरे प्रियतम श्री राज जी (माशूक) के ये अंग निश्चित

रूप से बहुत ही मधुर (मीठे) हैं। धनी के प्रेम में डूबी हुई परमधाम की आत्मायें (आशिक) अपने मूल सम्बन्ध को याद कर इसका रसास्वादन करती हैं।

मुख न फेरें मोमिन, छाती इन सुभान।

ए करते याद अनुभव, क्यों न आवे असल ईमान॥६०॥

श्री राज जी की छाती की शोभा से ब्रह्ममुनियों की दृष्टि कभी भी हटती नहीं है। इस अनुभव को याद करने पर परमधाम जैसा ईमान क्यों नहीं आता है।

भावार्थ— चितवनि की अवस्था में आत्मा शरीर , संसार, और जीव भाव से परे हो जाती है, किन्तु चितवनि के टूटते ही वह लौकिक भावों में खो जाती है, अर्थात् चितवनि में आत्मा के अन्तःकरण की लीला चल रही होती है, जबकि टूटने के पश्चात् जीव के अन्तःकरण

तथा इन्द्रियों की लीला शुरू हो जाती है। इस चौपाई में यह बात दर्शायी गयी है कि श्री राज जी की छाती को देखते समय, जिस प्रकार उसे श्री राज जी एवं अपनी परात्म का नूरी तन दिख रहा था और वह अपनी आत्मा के स्वरूप को भी परात्म के प्रतिबिम्बित स्वरूप में देखकर प्रियतम से एकाकार हो रही थी, वही स्थिति अखण्ड रूप से क्यों नहीं बनी रहती?

चितवनि वाली स्थिति का अखण्ड रूप से बने रहना ही असल ईमान में बने रहना है, जो इस संसार में सम्भव नहीं है। इस चौपाई में प्रश्नवाचक रूप में यही बात कही गयी है।

मासूक छाती निरखते, क्यों याद न आवे अर्स।

विचार किए आवे अनुभव, जाको दिल कह्यो अरस-परस॥६१॥

श्री राज जी की छाती की शोभा को देखते समय तो आत्मा परमधाम के भावों में डूबी रहती है , किन्तु चितवनि टूटने के पश्चात् परमधाम की वैसी याद क्यों नहीं आती? जिन ब्रह्ममुनियों के हृदय को श्री राज जी के हृदय से एकाकार हुआ माना गया है, उनको तो परमधाम का विचार करने मात्र से ही अनुभव आना चाहिए?

भावार्थ- चितवनि में जो आत्मा इस पञ्चभौतिक शरीर, जीव, और संसार को भूलकर एकमात्र परमधाम की शोभा और आनन्द में डूबी होती है, वही चितवनि के टूटते ही जीव के माध्यम से माया की लीला को देखने लगती है। यही कारण है कि प्रेम-विह्वल होकर चिन्तन करने मात्र से जिन आत्माओं को परमधाम का आभास होने लगता है, उनका जीव यदि मायावी कार्या में ज्यादा लिप्त हो जाता है तो आत्मा भी उसी को देखने लग

जाती है, फिर भी उसके धाम हृदय में युगल स्वरूप की शोभा अखण्ड रूप से बसी रहती है।

हकें अर्स कह्या दिल मोमिन, अर्स में मता हक सब।

अजूं हक आड़े पट रहे, ए देख्या बड़ा तअजुब॥६२॥

श्री राज जी ने ब्रह्ममुनियों के हृदय को ही अपना धाम कहा है। उस धाम हृदय में श्री राज जी की सम्पूर्ण निधियाँ विद्यमान होती हैं, किन्तु इतना होने के बाद भी यह बहुत आश्चर्य की बात है कि आत्मा और धाम धनी के बीच माया (फरामोशी) का पर्दा पड़ा हुआ है।

भावार्थ— परमधाम के सभी पक्षों की शोभा, लीला, एकत्व, अनन्त प्रेम, निरपेक्ष ज्ञान (मारिफत का इल्म) आदि सभी कुछ धाम धनी की निधियों के अन्तर्गत है और ये सभी निधियाँ ब्रह्ममुनियों के धाम हृदय में

विद्यमान होती हैं। इस चौपाई में यही प्रश्न किया गया है कि जब सम्पूर्ण निधियाँ ही धाम हृदय में विद्यमान हो गयी हैं, तो यहाँ परमधाम जैसी स्थिति क्यों नहीं हो जाती? आत्मा और धाम धनी के बीच यह माया का पर्दा क्यों है, अर्थात् यह नश्वर शरीर और संसार क्यों दिखायी दे रहे हैं?

पट एही अपने दिलको, हकें सोई दिल अर्स कह्या।

हक पट अर्स सब दिलमें, अब अंतर कहां रह्या॥६३॥

हे साथ जी! धाम धनी ने हमारे जिस दिल को अपना धाम कहा है, उस दिल के ऊपर ही यह माया का पर्दा है। इसी आत्मा के दिल में सम्पूर्ण परमधाम सहित श्री राज जी विराजमान हैं तथा माया का पर्दा भी है। इस प्रकार इसमें और परात्म के दिल में कोई भी अन्तर

(भेद) नहीं रह गया है।

भावार्थ- जिस प्रकार परात्म के दिल में युगल स्वरूप सहित सम्पूर्ण परमधाम बसा होता है, उसी प्रकार जाग्रत हो जाने पर आत्मा के धाम हृदय में भी युगल स्वरूप सहित सम्पूर्ण परमधाम बस जाता है। परमधाम में जिस प्रकार परात्म श्री राज जी के दिल रूपी पर्दे पर उनके हुक्म से माया का खेल देख रही है, उसी प्रकार आत्मा भी श्री राज जी के हुक्म से जीव के ऊपर विराजमान होकर माया का खेल देख रही है। इस प्रकार जाग्रत हो जाने पर आत्मा के दिल की भी वही स्थिति होती है, जो परात्म की होती है। इस सम्बन्ध में सागर ग्रन्थ ११/४४ का यह कथन बहुत महत्वपूर्ण है—

अन्तस्करन आतम के, जब ए रह्यो समाए।

तब आतम परआतम के, रहे न कछु अन्तराए॥

जो विचार विचार विचारिए, तो हक छाती न दिल अंतर।

ए पट आड़ा क्यों रहे, जब हुकमें बांधी कमर॥६४॥

यदि तारतम वाणी से इस बात का बार-बार विचार किया जाये, तो यही निष्कर्ष निकलता है कि श्री राज जी की छाती में और आत्मा के हृदय (दिल) में कोई भी अन्तर नहीं है। यह प्रश्न होता है कि जब श्री राज जी के हुक्म ने आत्मा को जाग्रत करने के लिये कमर कस ली है अर्थात् पूर्ण रूप से तैयार है, तो आत्मा और धनी के बीच यह माया का पर्दा क्यों है?

ए क्यों रहे पट अर्समें, पूछ देखो हक इलम।

ओ उड़ाए देसी पट बीच का, जब रूह हुकमें आई कदम॥६५॥

हे मेरी आत्मा! अब तू इस तारतम वाणी से पूछकर देख कि जब आत्मा धनी के हुक्म से ही उनके चरणों में आयी

है, तो उसके धाम हृदय में यह माया का पर्दा क्यों है ? निश्चित रूप से यह ब्रह्मवाणी ही आत्मा और धनी के बीच में स्थित माया के इस पर्दे को हटायेगी।

भावार्थ- श्रीमुखवाणी से पूछने का तात्पर्य है- वाणी के ज्ञान से सत्य का निर्णय करना। अन्तःकरण (हृदय) लीला का कारक है, किन्तु इसका भी मूल जीव-चैतन्य या आत्मा है। परमधाम में ब्रह्मसृष्टियों ने माया का खेल देखने की इच्छा की थी और धनी ने कहा था कि मैं तुमसे एक पल के लिये भी दूर नहीं रहूँगा। यही कारण है कि जब आत्मा अपनी दृष्टि परमधाम की ओर मोड़ती है तो उसे युगल स्वरूप सहित परमधाम दिखायी पड़ता है, और जब उसे भुला देती है तो माया की लीला दिखायी पड़ने लगती हैं। मूल सम्बन्ध से धाम धनी उसके धाम हृदय में विराजमान हैं ही। इस प्रकार धनी के हुक्म से

वह अपने प्राणवल्लभ, परमधाम, और माया तीनों को ही देख रही है।

एही पट फरामोस का, दिलमें रही अंतर।

जब हुकमें बंधाई हिम्मत, तब होस में न आवे क्यों कर॥६६॥

यह माया (फरामोशी) का ही पर्दा है जिसके कारण आत्मा और धाम धनी के बीच भेद (अन्तर) बना हुआ है। किन्तु प्रश्न यह है कि जब श्री राज जी का आदेश (हुक्म) ही ब्रह्मसृष्टियों को जाग्रत होने के लिये साहस (हिम्मत) दिला रहा है, तो भी आत्मा होश में क्यों नहीं आती अर्थात् जाग्रत क्यों नहीं हो जाती?

दिल अर्स कह्या याही वास्ते, परदा कह्या जहूर।

दोऊ दिलके बीचमें, जो दिल देखे कर सहूर॥६७॥

यदि ब्रह्मवाणी के प्रकाश में गहन चिन्तन (सहूर) किया जाये, तो यही निर्णय होता है आत्मा के हृदय में धाम धनी के विराजमान होने से इसे धाम कहा जाता है। इसी प्रकार दिल की दृष्टि माया की ओर है, इसलिये दिल में माया रूपी पर्दे का भी प्रत्यक्ष अस्तित्व माना गया है। आत्मा के दिल और धनी के दिल में जो भेद प्रतीत हो रहा है, वह माया (फरामोशी) रूपी पर्दे के कारण ही है।

हक छाती निपट नजीक है, सेहेरग से नजीक कही।

हक सहूर किए बिना, आड़ी अंतर तो रही॥६८॥

श्री राज जी की छाती तो आत्मा के बहुत निकट है, प्राणनली शाहरग से भी अधिक निकट। धाम धनी की चितवनि (सहूर) न होने से ही माया रूपी पर्दे के कारण आत्मा और धनी की छाती के बीच में भेद बना हुआ है।

भावार्थ- सामान्यतः हृद-बेहृद के अनन्त ब्रह्माण्ड से परे परमधाम में विराजमान श्री राज जी की छाती का ध्यान किया जाता है, किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर वह परमधाम हमारी आत्मा के लिये उतना ही निकट है, जितना जीव के लिये प्राणनली (शाहरग) नजदीक होती है।

हृद भी कहे दिलमें, अर्स भी कहा दिल।

परदा भी कहा दिलको, आया सहूरें बेवरा निकल॥६९॥

श्रीमुखवाणी के चिन्तन और चितवनि (सहूर) से यह निर्णय हो गया है कि आत्मा के हृदय को धाम कहा गया है, जिसमें श्री राज जी विराजमान हैं। इसी प्रकार दिल को पर्दा भी कहा गया है।

भावार्थ- जिस प्रकार चितवनि में आत्मा का दिल

परमधाम को देखता है तो उसे "धाम" की शोभा प्राप्त होती है, उसी प्रकार आत्मा का दिल जीव की मायावी लीला को भी देखता है इसलिये उसे "पर्दा" भी कहा गया है।

पर्दे के दो रूप हैं— १. जिसके होने से द्रष्टा और दृश्य के बीच में भेद बन जाये और दृश्य दिखायी न पड़े, २. जिसके ऊपर द्रष्टा दृश्य को देख सके, जैसे— टी.वी. या चित्रपट का पर्दा।

परात्म का दिल श्री राज जी के दिल रूपी पर्दे पर सम्पूर्ण जागनी लीला को देख रहा है। इसी प्रकार आत्मा अपने दिल रूपी पर्दे पर सम्पूर्ण लीला को देख रही है, किन्तु मायाग्रस्त जीव का दिल वह पर्दा है, जिसके कारण आत्मा के दिल रूपी पर्दे पर परमधाम या युगल स्वरूप की छवि नहीं आ पाती, बल्कि माया दिखने

लगती है। जीव के दिल रूपी पर्दे पर केवल माया ही माया है। ब्रह्मवाणी के प्रकाश में कभी-कभी माया का धुँधलका हटता है, किन्तु पूर्ण रूप से तभी हट पायेगा जब धाम धनी की मेहर होगी और जीव विरह की अग्नि में स्वयं को जलायेगा।

जो पीठ दीजे ब्रह्माण्ड को, हुआ निस दिन हक सहूर।

तब परदा उड़या फरामोस का, बका अर्स हक हजूर॥७०॥

हे साथ जी! यदि आप इस ब्रह्माण्ड को पीठ दे दीजिए अर्थात् अपनी आत्मिक दृष्टि को इस ब्रह्माण्ड से परे परमधाम में ले चलिये, तो माया का यह पर्दा हट जायेगा। इसके साथ ही दिन-रात अखण्ड परमधाम एवं श्री राज जी का दीदार (दर्शन) होता रहेगा और उनसे वार्ता होती रहेगी।

भावार्थ- इस चौपाई से यह निर्विवाद रूप से स्पष्ट होता है कि माया के बन्धनों को काटकर अपनी आत्मा को जाग्रत करने के लिये एकमात्र चितवनि ही वास्तविक मार्ग है।

इस प्रकरण में "सहूर" शब्द के कई अर्थ स्पष्ट होते हैं-

१. चितवनि २. चिन्तन या आत्म मन्थन ३. वार्ता।

मेहेबूब छाती की लज्जत, देत नहीं फरामोस।

फरामोस उड़े आवे लज्जत, सो लज्जत हाथ प्रेम जोस॥७१॥

यह माया की नींद ही प्रियतम श्री राज जी के वक्षस्थल के सौन्दर्य और आनन्द का रसास्वादन नहीं करने देती। नींद के हटते ही प्रियतम की छाती के आनन्द का स्वाद आने लगेगा और उनका प्रेम तथा जोश भी आ जायेगा।

इस्क जोस और इलम, ए हक हुकम के हाथ।

तब हक हैड़ा ना छूटहीं, ए सब सुख हैड़े साथ॥७२॥

श्री राज जी के हुक्म से ही उनका प्रेम, जोश, और परमसत्य ज्ञान (मारिफत का इल्म) प्राप्त होता है। इसके साथ ही हृदय कमल (वक्षस्थल) की शोभा भी कभी आत्मा से अलग नहीं होती, और ज्ञान, प्रेम, तथा जोश का सम्पूर्ण आनन्द भी प्राप्त होता है।

ए मेहेर करें जो मासूक, तो रूह हुकमें बाधें कमर।

तब फरामोसी दूर दिलसे, हक हैड़े चुभी नजर॥७३॥

जब धाम धनी की मेहर होती है, तभी उनके आदेश का बल पाकर आत्मा अपनी जाग्रति के लिये पूर्ण रूप से तैयार होती है। इसके पश्चात् आत्मा के हृदय से माया की नींद (फरामोशी) हट जाती है और उनके वक्ष की शोभा

को आत्मा देखने लगती है।

ए होए हक निसबतें, रूहों हुकम देवे हिंमत।

तब फरामोसी रहे ना सके, दे हक छाती लाड़ लज्जत॥७४॥

परमधाम से मूल सम्बन्ध होने पर ही ऐसा होता है कि धनी का हुकम आत्मा को जाग्रत होने के लिये साहस देता है (प्रेरित करता है)। जब प्रियतम के आदेश से उनके वक्षस्थल की शोभा एवं प्रेम का स्वाद आत्मा को मिलता है, तब माया की नींद (फरामोशी) जरा भी उसके अन्दर नहीं रह पाती।

इन विध छाती न छूटहीं, रूहों सों निस दिन।

असल सुख हक हैड़े के, ए लज्जत लगे अर्स तन॥७५॥

इस प्रकार श्री राज जी की छाती की शोभा कभी भी

आत्माओं की दृष्टि से अलग नहीं होती। आत्मा श्री राज जी के वक्षस्थल के जिन अखण्ड सुखों का स्वाद लेती है, उसका रस परात्म तक भी पहुँचता है।

भावार्थ- परात्म इस दुःखमयी मायावी खेल को आत्मा के द्वारा ही श्री राज जी के दिल रूपी पर्दे पर देख रही है और आत्मा जीव के द्वारा माया के संसार में देख रही है। धाम धनी के अनुग्रह (मेहर) से यदि उसकी दृष्टि परमधाम पहुँच जाती है और श्री राज जी के वक्षस्थल की शोभा को देखने लगती है, तो परात्म भी श्री राज जी के दिल रूपी पर्दे पर इस लीला को देखने लगती है। परात्म के लिये यह स्थिति वैसी ही होती है, जैसे तपते रेगिस्तान में मधुर जल की सरिता बहने लगती हो अथवा अत्यधिक गर्म मौसम में शीतल, मन्द, और सुगन्धित हवा की बयार बहने लगी हो। यही परात्म के द्वारा

रसास्वादन करना है।

जोस इस्क सुख अर्स के, ए लगें रूह मोमिन।

जब ए सबे मदत हुए, तब क्यों रहे पट रूहन॥७६॥

धनी के जोश, प्रेम, और परमधाम के सुखों की अनुभूति यदि ब्रह्ममुनियों की आत्माओं को होने लगे और ये सभी आत्म-जाग्रति में सहायक बन जायें , तो ब्रह्मसृष्टियों के सामने यह माया का पर्दा नहीं रह पायेगा।

भावार्थ- धनी का प्रेम या जोश मिल जाने पर माया के विकार पास भी नहीं फटकते। यही आत्म-जाग्रति में सहायक हैं। मायावी विकारों का त्याग किये बिना आत्म-जाग्रति सम्भव नहीं है। इस सम्बन्ध में किरंतन ४१/४ में कहा गया है-

इन इन्द्रियन की मैं क्या कहूँ, ए तो अवगुन की ही काया।
इन से देखूँ क्यों साहेब, एही भई आड़ी माया॥

असल नींद सो फरामोसी, फरामोसी सोई अंतर।

जो अर्स लज्जत आवहीं, तो इलमें तबहीं जुड़े नजर॥७७॥

अपने मूल तन, मूल घर, और अपने प्राणवल्लभ को भूल जाना ही वास्तविक (असल) नींद या फरामोशी है। इसी को पर्दा कहा गया है, जिससे आत्मा और धनी में भेद प्रतीत हो रहा है। ब्रह्मवाणी के ज्ञान द्वारा ही परमधाम का स्वाद आता है। इसके साथ ही यदि प्रेम का रस आत्मा को मिल जाता है, तो उसकी दृष्टि अपने प्राणप्रियतम से मिल जाती है।

भावार्थ— लौकिक क्रियाकलापों में किसी बात को भूलना या रात्रि में गहरी निद्रा लेना वास्तविक नींद नहीं

है, क्योंकि यह सारा ब्रह्माण्ड ही स्वप्नवत् है। मूल तन, मूल घर, और मूल प्रियतम को भूलना ही वास्तविक नींद है, क्योंकि ये तीनों ही अखण्ड हैं।

इलम सहूर मेहेर हुकम, ए चारों चीजें होएं एक ठौर।

तिन खैंच लिया मता अर्स का, पट नहीं कोई और॥७८॥

ब्राह्मी ज्ञान (खुदाई इल्म), चितवनि द्वारा आत्मिक दृष्टि का खुला होना, धनी की मेहर, और हुकम – ये चारों वस्तुएँ जिस आत्मा के धाम हृदय में विद्यमान होती हैं, उसमें परमधाम की सम्पूर्ण निधियाँ विराजमान हो जाती हैं। उसके और धाम धनी के बीच किसी भी प्रकार का भेद (पर्दा) नहीं रह जाता है।

भावार्थ- इस चौपाई में श्री महामति जी की ओर संकेत किया गया है। हब्से में विरह-प्रेम द्वारा श्री महामति जी

का हृदय धाम बन गया। उसमें युगल स्वरूप प्रत्यक्ष रूप से विराजमान हो गये और परमधाम की ब्रह्मवाणी का अवतरण भी होने लगा। धाम धनी ने उन्हें जागनी का उत्तरदायित्व सम्भालने के लिये आदेश (हुक्म) भी दिया। श्री महामति जी के अन्दर परमधाम की सम्पूर्ण निधियाँ विद्यमान हो गयीं। उनमें और धाम धनी में अब किसी प्रकार का भेद नहीं रह गया, इसलिये तो श्रृंगार में कहा गया है—

तुम हीं उतर आए अर्स से, इत तुम ही कियो मिलाप।

तुम हीं दई सुध अर्स की, ज्यों अर्स में हो आप॥

सिनगार २३/३१

नाम सिनगार सोभा सारी, मैं भेख तुमारो लियो।

किरन्तन ६१/१५

अर्स तन दिल में ए दिल, दिल अन्तर पट कछू नाहें।

सुख लज्जत अर्स तन खैंचहीं, तब क्यों रहे अन्तर माहें॥७९॥

परमधाम में विराजमान परात्म के दिल से आत्मा का दिल जुड़ा हुआ है। जाग्रत हो जाने के पश्चात् दोनों दिलों में किसी प्रकार का भेद (पर्दा) नहीं रह जाता। जाग्रत अवस्था में जब आत्मा परात्म की तरह ही परमधाम के सुखों का रसास्वादन करने लगती है, तो फिर उसमें और परात्म में अन्तर ही क्या रह जाता है, कुछ भी नहीं।

सुपन होत दिल भीतर, रूह कहूं ना निकसत।

ए चौदे तबक जरा नहीं, ए तो दिल में बड़ा देखत॥८०॥

श्री राज जी के दिल के भीतर ही स्वप्न चल रहा है। परात्म का नूरी तन परमधाम से बाहर कहीं नहीं गया है।

यद्यपि चौदह लोक का यह ब्रह्माण्ड कुछ भी नहीं है , किन्तु परात्म एवं आत्मा को अपने दिल में बहुत बड़ा दिखाई दे रहा है।

भावार्थ- श्री राज जी के दिल से ही सम्पूर्ण खेल का नियन्त्रण हो रहा है। परात्म श्री राज जी के दिल रूपी पर्दे पर इस खेल की सारी लीला को देख रही है। वह जैसा धनी के दिल रूपी पर्दे पर देख रही है, आत्मा वैसा ही यहाँ पर कर रही है। इसी को कहा गया है- "जैसा उत ओ देखत, तैसा करत हैं हम" (खिलवत ४/४२)। धनी के चरणों में बैठे-बैठे परात्म इस खेल को देख रही है, इसलिये यह बात कही गयी है कि "रूह कहूं ना निकसत।"

यद्यपि परात्म और आत्मा इस ब्रह्माण्ड को बहुत बड़ा समझ रही हैं, किन्तु जाग्रत हो जाने पर इस ब्रह्माण्ड का

कोई भी अस्तित्व नहीं प्रतीत होता , क्योंकि यह स्वप्नवत् है।

हक छाती रूहथें न छूटहीं, नजर न सके फेर।

जो कोई रूह अर्स की, ताए हक बिना सब अन्धेर॥८१॥

अक्षरातीत के वक्षस्थल की शोभा से आत्मा की दृष्टि कभी भी हटती नहीं है और आत्मा उसे छोड़ नहीं पाती। परमधाम की आत्माओं के लिये तो इस संसार में धाम धनी के बिना सब कुछ अन्धकारमय है।

भावार्थ- आत्मा की नजर जब एक बार भी संसार से हटकर परमधाम में पहुँच जाती है, तो युगल स्वरूप की शोभा को अपने धाम हृदय में अखण्ड कर लेती है। इस प्रकार सोते-जागते तथा लौकिक क्रियाओं में भी पल-पल उसकी दृष्टि धाम हृदय में युगल स्वरूप की ओर

बनी रहती है। सागर ग्रन्थ ७/४० में "पलक न पीछी फेरिए, ज्यों इस्क अंग उपजत" का कथन इसी सन्दर्भ में है। ब्रह्मसृष्टियों के लिये धाम धनी का सुख ही सर्वोपरि है। उसके बिना उन्हें करोड़ों वैकुण्ठ का राज्य भी निरर्थक एवं कष्टकारी प्रतीत होता है।

हक छाती में लाड़ लज्जत, और छाती में असल आराम।

ए सब सुख को रस पूरन, तो रूह लग रही आठों जाम॥८२॥

श्री राज जी की छाती के दीदार में ही आत्माओं को प्रेम का रसास्वादन मिलता है। उसी में उन्हें परमधाम के अखण्ड आनन्द की अनुभूति भी होती है। धनी के वक्षस्थल की शोभा में ही तो सभी सुखों का पूर्णातिपूर्ण रस भरा हुआ है। यही कारण है कि आठों प्रहर आत्मा धनी के वक्षस्थल की शोभा को देखती रहती है।

रुहों हक छाती चुभ रही, सो देवे लज्जत अरवाहों को।

असल सुख सागर भयो, देखें अर्स आराम सबमों॥८३॥

आत्माओं के धाम हृदय में श्री राज जी की छाती की शोभा बसी रहती है, इसलिये धाम धनी उसका रस (स्वाद) आत्माओं को देते रहते हैं। इस प्रकार आत्मा का दिल अखण्ड सुख का सागर बन जाता है। आत्म-जाग्रति की इस अवस्था में पहुँची सभी आत्माओं में परमधाम का यही आनन्द पाया (देखा) जाता है।

ए जो हक हैड़े की खूबियां, सो क्या केहेसी बुध माफक।

पर ए कहे हक हुकम, और हक इलम बेसक॥८४॥

श्री राज जी के हृदय कमल (वक्षस्थल) की शोभा की जो अद्वितीय विशेषतायें हैं, उसका वर्णन यहाँ की बुद्धि नहीं कर सकती, किन्तु यह जो कुछ भी वर्णन हो रहा

है, वह श्री राज जी का हुक्म (आदेश) और संशयरहित तारतम ज्ञान ही कह रहा है।

रूह खड़ी करे हुक्म, और बेसक लदुन्नी इलम।

ना तो रूह कहे क्यों नींद में, हक हैड़ा बका खसम॥८५॥

श्री राज जी के आदेश का बल और संशयरहित तारतम ज्ञान ही आत्मा को जाग्रत करते हैं, अन्यथा इस मायावी जगत में भला आत्मा श्री राज जी के वक्षस्थल की अखण्ड शोभा का वर्णन कैसे कर सकती है।

महामत कहे बोलूं हुकमें, अर्स मसाला ले।

दरगाही रूहन को, सुख असल देने के॥८६॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती है कि मैं परमधाम की इस ब्रह्मवाणी से धनी के आदेश द्वारा यह सम्पूर्ण

वर्णन कर रही हूँ, ताकि परमधाम की आत्माओं को
निजधाम के अखण्ड सुखों का रसास्वादन हो सके।

प्रकरण ॥११॥ चौपाई ॥६४१॥

खभे कण्ठ मुखारविन्द सोभा समूह

इस प्रकरण में श्री राज जी के कन्धों से लेकर गले और मुखारविन्द आदि भिन्न-भिन्न अंगों की शोभा का वर्णन किया गया है।

॥ मंगलाचरन ॥

मुख मेरे मेहेबूब का, रंग अति उज्जल गुलाल।

क्यों कहूं सलूकी नाजुकी, नूर तजल्ली नूरजमाल॥१॥

मेरे प्रियतम अक्षरातीत श्री राज जी के मुखारविन्द का रंग अत्यधिक उज्ज्वलता में लालिमा लिए हुए है। मैं अपने प्राणवल्लभ के मुखारविन्द की शोभा, कोमलता, और आभा का कैसे वर्णन करूँ।

बाहें मेरे मासूक की, प्यारी लगें मेरी रूह।

हक हुकम यों कहावत, सो वाही जाने हकहू॥२॥

मेरे प्रियतम श्री राज जी की अति सुन्दर बाहें मेरी आत्मा को बहुत प्यारी लग रही हैं। श्री राज जी का हुकम मेरे से बस इतना ही कहलवा रहा है, अन्यथा बाहों की अद्वितीय शोभा को तो मात्र हुकम (आवेश स्वरूप) ही यथार्थ रूप में जानता है।

अंग रंग सलूकी सुभान की, चकलाई उज्जल गौर।

नाम सुनत इन अंग के, जीवरा न होत चूर चूर॥३॥

प्रियतम श्री राज जी के अंगों का रंग अत्यन्त उज्ज्वल है और अत्यधिक गोरे रंग की सुन्दर शोभा है। बहुत ही आश्चर्य की बात है कि अलौकिक शोभा वाले इन अंगों का नाम सुनने के बाद भी मेरा जीव चूर-चूर नहीं हो पा

रहा है, अर्थात् प्रेम और समर्पण की सरिता में डुबकी लगाकर अपने अस्तित्व को मिटा नहीं पा रहा है।

ए छबि अंग अर्स के, जोत अंग हक मूरत।

ए केहेनी में आवे क्यों कर, जो कही अमरद सूरत॥४॥

श्री राज जी के स्वरूप के सभी अंग परमधाम की नूरमयी ज्योति से परिपूर्ण हैं। श्री राज जी का स्वरूप अति सुन्दर किशोर है, जिसकी शोभा का वर्णन किसी भी प्रकार से शब्दों में नहीं किया जा सकता।

खभे देत दोऊ खूबियां, रूह देख देख होए खुसाल।

जो नेक आवे अर्स की लज्जत, तो रोम रोम लगे रूह भाल॥५॥

श्री राज जी के दोनों कन्धों से अद्वितीय सुन्दरता छिटक रही है, जिसे देख-देखकर आत्मा बहुत

आनन्दित होती है। यदि परमधाम की इस अलौकिक शोभा का थोड़ा सा भी रसास्वादन आत्मा को मिल जाये, तो ऐसा प्रतीत होता है कि शरीर के रोम-रोम में विरह के भाले चुभ रहे हैं।

खभे मच्छे कोनिया, और कलाइयां काड़न।

पोहोंचे हथेली अंगुरी, नूर क्यों कर कहूं नखन॥६॥

मैं श्री राज जी के दोनों कन्धों, डौलों, कोहनियों, कलाइयों में सुशोभित कड़ों तथा पोहोंचों, हथेलियों, अँगुलियों, और उनके नखों के नूर की शोभा का कैसे वर्णन करूँ।

जोत नखन की क्यों कहूं, अवकास रह्यो भराए।

तामें जोत नखन की, नेहेरें चलियां जाए॥७॥

मैं अपने प्रियतम अक्षरातीत के नखों की ज्योति का कैसे वर्णन करूँ। नखों से इतनी नूरी ज्योति निकल रही है कि ऐसा प्रतीत हो रहा है, जैसे नूरमयी जल की नहरें बह रही हैं। नखों के नूर से सम्पूर्ण आकाश आच्छादित हो रहा है।

ज्यों ज्यों हाथ की अंगुरी, होत है चलवन।

त्यों त्यों नख जोत आकास में, नेहेरें चीर चली रोसन॥८॥

धाम धनी जैसे-जैसे अपने हाथों की अँगुलियों को हिलाते हैं, वैसे-वैसे नखों से नहरों के समान निकलने वाली नूरी ज्योति जगमगाहट के साथ आकाश को चीरते हुए चली जाती है।

एक अंग जो निरखिए, तो निकस जाए उमर।

एक अंग बरनन ना होवहीं, तो होए सरूप बरनन क्यों कर॥९॥

यदि प्राणवल्लभ श्री राज जी के किसी एक अंग की शोभा को देखा जाये तो सम्पूर्ण उम्र बीत सकती है , किन्तु उस अंग की वास्तविक शोभा का वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है। जब सारी उम्र में एक अंग की शोभा का यथार्थ वर्णन नहीं हो पाता , तो सभी अंगों की शोभा का कैसे वर्णन होगा।

अति गौर हस्त कमल, अति नरम अति सलूक।

ए हस्त चकलाई देख के, जीवरा होत नहीं टूक टूक॥१०॥

धाम धनी के दोनों हस्त कमल बहुत गौर वर्ण के हैं। उनमें अद्वितीय कोमलता और सुन्दरता है, किन्तु यह कितने आश्चर्य की बात है कि हाथों की इस अलौकिक

सुन्दरता को देखकर भी मेरा जीव प्रेम में टुकड़े-टुकड़े नहीं हो पा रहा है।

भावार्थ- टुकड़े-टुकड़े हो जाने का अर्थ है - इस प्रकार न्योछावर हो जाना कि स्वयं का अस्तित्व ही मिट जाये अर्थात् नाम मात्र के लिये भी (मैं) की गन्ध न रह जाये।

काड़े कलाई कोनियां, इन अंग रंग सलूक।

फेर मच्छे खभे लग देखिए, रूह क्यों न होए भूक भूक॥११॥

श्री राज जी की कलाईयों में अति सुन्दर कड़े शोभायमान हो रहे हैं। कोहनी आदि अंगों का रंग और सुन्दरता अद्वितीय है। पुनः दोनों डौलों तथा कन्धों की अनुपम सुन्दरता को देखकर भी आत्मा स्वयं को न्योछावर करने में टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं करेगी, अर्थात्

अवश्य करेगी।

ए अंग सारे रस भरे, सब संधों संध इस्क।

सहूर किए जीवरा उड़े, अर्स अंग वाहेदत हक॥१२॥

इन सभी अंगों में सौन्दर्य का मधुर रस भरा हुआ है। प्रत्येक अंग के जोड़ (सन्धि) में प्रेम ही प्रेम झलक रहा है। परमधाम के एकत्व (एकदिली) में विराजमान इन अंगों की अलौकिक शोभा का यदि जीव चिन्तन करने लगे, तो प्रेम में अपने अस्तित्व को समाप्त कर लेगा अर्थात् अपने को पूर्णतया भुला देगा।

भावार्थ- इस चौपाई में "जीवरा उड़े" का तात्पर्य शरीर को छोड़ देना नहीं, बल्कि प्रेम में शरीर को पूर्णतया भुला देना है।

जीवरा न समझे अर्स को, ना सहूर करे वाहेदत।

रुहें भूल गई लाड़ लज्जत, ना सुध रही निसबत॥१३॥

इस मायावी खेल में आत्माओं ने अपने प्रियतम के प्रेम का स्वाद लेना भुला दिया है। उन्हें तो अब अपने मूल सम्बन्ध की भी सुध नहीं रह गयी है। जीव भी परमधाम की महिमा को समझ नहीं पा रहा है। यहाँ तक कि वह परमधाम की वहदत की लीला का चिन्तन भी नहीं करता है।

भावार्थ- आत्म-जाग्रति के पथ पर जीव और आत्मा की भूमिका अलग-अलग, किन्तु साथ-साथ है। यदि जीव परमधाम का चिन्तन-मनन न करे, तो आत्मा भी जाग्रति के शिखर पर नहीं पहुँच सकेगी।

॥ मंगलाचरन तमाम ॥

यह मंगलाचरण पूर्ण हुआ।

अब कहूं कण्ठ सोभा मुख की, और इस्क सबों अंग।

आसिक दिल छबि चुभ रही, मासूक रूप रस रंग॥१४॥

अब मैं श्री राज जी के गले और मुखारविन्द की शोभा का वर्णन कर रही हूँ। अंग-अंग में लबालब इश्क ही इश्क (प्रेम ही प्रेम) पूर्ण रूप से भरा हुआ है। प्रेम और आनन्द से भरे हुए धाम धनी (माशूक) के इस अलौकिक रूप की शोभा आत्माओं (आशिकों) के हृदय में अखण्ड हो रही है।

ए जो कोमलता कण्ठ की, क्यों कहूं चकलाई गौर।

नेक कह्या जात ख्वाब में, जो हकें दिया सहूर॥१५॥

मैं धाम धनी के गले की कोमलता तथा अति गौर वर्ण वाली सुन्दरता का वर्णन कैसे करूँ। धाम धनी ने मुझे जितना विवेक दिया है, उससे इस सपने के संसार में

थोड़ा सा वर्णन हो पा रहा है।

गौर केहेती हों मुख से, सो देख के अंग इतका।

ए जुबां दृष्ट इत फना की, सोभा क्यों कहे कण्ठ बका॥१६॥

मैंने इस संसार में गौर वर्ण के अंगों का अति मनोहर सौन्दर्य देखा है, इसलिये मात्र समझ में आने के लिये ही श्री राज जी के सौन्दर्य-वर्णन में अपने मुख से "गौर" वर्ण कह रही हूँ। मेरी जिह्वा और दृष्टि इस नश्वर संसार की है, इसलिये यह अक्षरातीत के अखण्ड कण्ठ की शोभा का वर्णन नहीं कर पा रही है।

कण्ठ गौर कई सुख देवहीं, जो कछू खोले रूह नजर।

सो होत हक के हुकमें, जिनने करी नजीक फजर॥१७॥

यदि जरा सी भी आत्मिक-दृष्टि खुल जाती है तो श्री

राज जी के इस अति सुन्दर गौर गले से अनेक प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं, किन्तु ऐसा धाम धनी के उस आदेश (हुकम) से ही होता है जिसने ब्रह्मसृष्टियों को निजधाम के ज्ञान के उजाले के निकट कर दिया है अर्थात् प्राप्त करा दिया है।

भावार्थ- थोड़ी सी दृष्टि के खुलने का भाव है- श्री राज जी के गले की शोभा की हल्की सी झलक मिलने लगना।

ए जो लज्जत लाड़ की, सोभी हुई हाथ इजन।

जिन निसबतें बेसक करी, ताए क्यों न आवे लज्जत तन॥१८॥

धनी के प्रेम का स्वाद मिलना भी उनके हुकम (आदेश) के हाथ में है। जिस मूल सम्बन्ध के कारण आत्मा इस संसार में ब्रह्मवाणी का ज्ञान पाकर पूर्णतया संशयरहित हो जाती है, वह अपने मूल तन का रसास्वादन क्यों नहीं

करेगी।

भावार्थ- अपनी परात्म का श्रृंगार सजकर परमधाम के भावों में खोये रहना , तथा अष्ट प्रहर की लीला , २५ पक्षों, एवं युगल स्वरूप की शोभा में स्वयं को डुबोये रखना ही परात्म का स्वाद लेना है। जिनके मूल तन (परात्म) परमधाम में हैं, एकमात्र वे ही पूर्ण रूप से संशय रहित हो पाते हैं।

ना तो बेसक जब निसबत, तब रूह क्यों करे फरामोस।

ए देह जो सुपन की, खिन में उड़ावे हक जोस॥१९॥

अन्यथा आत्मा जब पूर्णतया संशय रहित हो जाती है, तो भी वह माया की नींद में क्यों पड़ी रहती है? धनी के प्रेम का जोश आ जाने पर तो माया का यह तन रहना ही नहीं चाहिए।

भावार्थ- इस चौपाई में प्रेम के जोश का वर्णन है, आवेश स्वरूप के जोश का नहीं। यद्यपि विरह-प्रेम की अधिकता इस पञ्चभौतिक तन से आत्मा को अलग कर सकती है, किन्तु धनी के आदेश से यह तन प्रेम की अधिकता में भी सुरक्षित रहता है, क्योंकि उससे जागनी लीला की सेवा लेनी होती है।

**ए जो देखो सहूर करके, भई आड़ी हक आमर।
ना तो बल करते धनी बेसक, ए देह ख्वाब रहे क्यों कर॥२०॥**
हे साथ जी! आप इस बात का विचार करके देखिए तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि धाम धनी का हुक्म शरीर के छूटने में बाधक बन जाता है, अन्यथा धनी के प्रेम का बल बढ़ते ही यह स्वप्न का शरीर रह नहीं सकता।

प्रीत रीत इस्क की, इस्कै सहज सनेह।

निस दिन बरसत इस्क, नख सिख भीगे सब देह॥२१॥

परमधाम में प्रेम-प्रीति की ही रीति है। प्रेम के स्वाभाविक स्नेह का ही साम्राज्य है। श्री राज जी के द्वारा दिन-रात अनन्य प्रेम (इश्क) की वर्षा होती है, जिसमें आत्मा और परात्म का नख से शिख तक सम्पूर्ण स्वरूप भीग जाता है।

भावार्थ- प्रेम अनन्त सागर है, जो अव्यक्त है। उसका व्यक्त स्वरूप प्रीति है, जो अन्तःकरण एवं इन्द्रियों द्वारा व्यक्त होती है। रीति का तात्पर्य है - ढंग, परम्परा, व्यवहारिकता इत्यादि। स्नेह और प्रीति में वही अन्तर है जो पवन और वायु, प्रकाश और ज्योति, तथा यश एवं कीर्ति में होता है। धनी के प्रेम का रसपान परात्म तो करती ही है, जाग्रत होकर आत्मा भी उसका रसास्वादन

करती है।

भौं भृकुटी पल पापण, मुसकत लवने निलवट।

इन विध जब मुख निरखिए, तब खुलें हिरदे के पट॥२२॥

हे साथ जी! यदि आप धाम धनी की तिरछी भौंहों, भृकुटी, सुन्दर बरौंनियों वाली दोनों पलकों, घुँघराले बालों से युक्त सुन्दर माथे, एवं मुस्कराते हुए मुख की शोभा को देख लेते हैं, तो हृदय के ऊपर पड़ा हुआ माया का पर्दा हट जायेगा।

भावार्थ— पलकों के किनारे के बालों को बरौंनी (पांपण) या बरुनी कहते हैं। जब आत्मा श्री राज जी के मुखारविन्द की अलौकिक शोभा को देख लेती है, तो माया का पर्दा (बन्धन) हट जाता है।

छब फब नई एक भांत की, श्रवन गाल मुसकत।

लाल अधुर मुख नासिका, जानों गौर हरवटी हंसत॥२३॥

श्री राज जी की यह शोभा एक नये रूप में शोभा दे रही है। उनके कानों एवं गालों से इतनी प्रसन्नता छिटक रही है कि ऐसा प्रतीत होता है जैसे कान एवं गाल मुस्करा रहे हैं। उनके होंठ लालिमा से भरपूर हैं। मुख, नासिका, एवं टुड्डी अत्यधिक गौर वर्ण के हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे ये सभी अंग आनन्द में हँस रहे हैं।

भावार्थ— हँसी अन्दर के आनन्द को प्रकट करती है। अक्षरातीत का स्वरूप अनन्त आनन्द का सागर है, इसलिये श्री राज जी के अंग-अंग को हँसते हुए दर्शाया गया है।

हाथ पांउं पेट हैयड़ा, कण्ठ हार भूखन वस्तर।

ए सब अंग हक के मुसकत, और नाचत हैं मिलकर॥२४॥

श्री राज जी के हाथ, पैर, पेट, वक्षस्थल, गले में जगमगाते हुए हार, तथा अन्य अंगों में सुशोभित होने वाले वस्त्र एवं आभूषण प्रसन्नतापूर्वक मुस्कराते हैं तथा आनन्द में मग्न होकर नाचते हैं।

बल बल जांउं मुख हकके, सोभा अति सुन्दर।

ए छबि हिरदे तो आवहीं, जो रूह हुकमें जागे अंदर॥२५॥

प्रियतम अक्षरातीत का मुखारविन्द अति सुन्दर है। मैं उसकी अद्वितीय शोभा पर बलिहारी जाती हूँ। श्री राज जी की यह मोहिनी शोभा तभी हृदय में आ सकती है, जब उनके आदेश से आत्मा आन्तरिक रूप से जाग्रत हो गयी हो।

भावार्थ- ज्ञान-दृष्टि से जाग्रति बाह्य-जाग्रति कहलाती है, किन्तु यदि युगल स्वरूप की शोभा आत्मा के धाम हृदय में बस जाती है, तो इसे आन्तरिक रूप से जागना कहते हैं।

हक मुख छब हिरदे मिने, जो आवे अंतस्करन।

तिन भेली लज्जत लाड़ की, आवे अर्स के अंग वतन॥२६॥

यदि आत्मा के धाम हृदय (अन्तःकरण) में धाम धनी के मुखारविन्द की अद्वितीय शोभा बस जाती है, तो उसके साथ ही अक्षरातीत के अंगों में विद्यमान प्रेम का स्वाद भी आत्मा के हृदय में आने लगता है।

भावार्थ- हृदय और अन्तःकरण समानार्थक शब्द हैं। केवल रचना-विन्यास की दृष्टि से दोनों चरणों में समानार्थक शब्दों का प्रयोग किया गया है।

गौर मुख लाल अधुर, ए जो सलूकी सोभित।

एह जुबां तो केहे सके, जो कोई होए निमूना इत॥२७॥

श्री राज जी का मुखारविन्द अत्यन्त गौर है और होंठ लालिमा से भरपूर हैं। इनकी यह सुन्दरता अद्वितीय शोभा को धारण कर रही है। इस अद्वितीय शोभा का वर्णन तो इस जिह्वा से तभी हो सकता है, यदि इसके समान कोई और सौन्दर्यशाली वस्तु हो।

कहे जाएं न गौर गलस्थल, और अधुर लालक।

मुख चकलाई हक की, सब रस भरे नूर इस्क॥२८॥

श्री राज जी के गोरे-गोरे गालों एवं लाल-लाल होंठों की सुन्दरता का वर्णन नहीं हो सकता। धाम धनी के मुखारविन्द का सौन्दर्य अनुपम है। सभी अंगों में नूर, प्रेम, और आनन्द का अखण्ड रस भरा हुआ है।

लाल जुबां दंत अधुर, हरवटी गौर हंसत।

जब बातून नजरों देखिए, तब रूह सुख पावत॥२९॥

धाम धनी की जिह्वा लाल रंग की है और अति सुन्दर है। उनके चमचमाते हुए दाँत, होंठ, एवं अति गौर वर्ण की तुड्डी आदि अंग हँसते हुए प्रतीत हो रहे हैं। जब इस अलौकिक शोभा को आत्मिक दृष्टि से देखते हैं, तो आत्मा के हृदय में अपार आनन्द होता है।

अधुर हरवटी बीच में, क्यों कहूं लांक सलूक।

एही अचरज मोहे होत है, दिल देख न होत भूक भूक॥३०॥

होठों और तुड्डी के बीच गहराई वाले भाग का सौन्दर्य इस प्रकार अद्वितीय है कि उसका वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है। मुझे इस बात का बहुत आश्चर्य हो रहा है कि इस अनुपम शोभा को देखने के पश्चात् भी मेरा दिल

टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो जाता।

भावार्थ- विरह-प्रेम में दिल का टुकड़े-टुकड़े होना, समर्पण में टुकड़े-टुकड़े होना, तथा किसी के कठोर वचनों या दुःख और अपमान की स्थिति में हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो जाने के भावों में अन्तर होता है। इस चौपाई में विरह-प्रेम में दिल के टुकड़े-टुकड़े हो जाने का प्रसंग है, जिसका अर्थ होता है, प्रेम में अस्तित्व विहीनता के शिखर पर पहुँच जाना।

दोऊ छेद्र चकलाई नासिका, गौर रंग उज्जल।

तिलक निलाट कई रंगों, नए नए देखत माहें पल॥३१॥

नासिका के दोनों छिद्रों की सुन्दरता अद्वितीय है। नासिका का रंग अत्यधिक गौर और उज्ज्वल है। श्री राज जी के मस्तक पर सुशोभित होने वाला तिलक पल-पल

अनेक रंगों में बदलता रहता है।

नैन रस भरे रंगीले, चंचल चपल भरे सरम।

ए अरवाहें जानें अर्स की, जो मेहेरम बका हरम॥३२॥

धाम धनी के आनन्दमयी नेत्रों में प्रेम का रस भरा हुआ है। वे चञ्चल हैं, चपल हैं, और प्रेम की लज्जा से भरपूर हैं। अखण्ड परमधाम के रंगमहल में रहने वाली आत्मायें ही इसके रहस्य को यथार्थ रूप से जानती हैं।

भावार्थ— धाम धनी के हृदय में उफान लेता हुआ प्रेम और आनन्द नेत्रों से छलकने लगता है, जिसे इस चौपाई के पहले चरण में "रंगीले" कहकर व्यक्त किया गया है।

प्रेम लेने या देने वाले की आँखें वैसे ही शान्त नहीं रह सकतीं, जैसे बर्तन में रखे हुए जल के गतिमान होने से बर्तन भी हिलता रहता है। निष्क्रियता के मूल आलस्य

और प्रमाद हैं, जो तमोगुण से उत्पन्न होते हैं। इसके विपरीत गुणातीत प्रेम में सर्वदा ही सक्रियता दिखायी देती है, इसलिये श्री राज जी के नेत्रों को "चपल" कहा गया है।

लज्जा ही प्रेम की सुगन्धि है। यही कारण है कि नीति ग्रन्थों में "लज्जा हि नारीणां भूषणं" कहकर "लज्जा" की महत्ता को दर्शाया गया है। निर्लज्जता प्रेम के नाम पर विकृति और कलंक है। प्रेम एवं समर्पण की सुवास लज्जा से ही फैलती है, इसलिये श्री राज जी के नेत्रों को लज्जाशील कहा गया है।

नेत्र अनियां अति तीखियां, रस इस्क भरे पूरन।

ए खैंचें जिन रूह ऊपर, ताए सालत हैं निस दिन॥३३॥

नेत्रों के कोने बहुत नुकीले हैं। इनमें प्रेम का पूर्ण रस

भरा हुआ है। जिस आत्मा को ये अपने प्रेम के आकर्षण से खींच लेते हैं, उसे दिन-रात विरह-प्रेम में तड़पाते रहते हैं।

भावार्थ- प्रेम के संकेत-बाण नेत्रों के कोने वाले भाग से ही चलाये जाते हैं। अनन्त प्रेम के सागर, स्वयं अक्षरातीत ही जिससे प्रेम करें और अपने नेत्रों से प्रेम के बाण चलाकर घायल करें, वह इस संसार में भला नींद के वशीभूत कैसे रह सकता है। उसे तो प्रियतम के प्रेम में पल-पल तड़पना ही पड़ता है।

स्याम सेत भौंह लवने, नेत्र गौर गिरदवाए।

स्याह पुतली बीच सुपेतमें, जंग जोर करत सदाए॥३४॥

धाम धनी के नेत्र कालिमा और श्वेतता (सफेदी) से युक्त हैं। उनकी भौंहों के बाल काले हैं और नेत्रों के चारों

ओर का बाहरी भाग बहुत ही गौर वर्ण का है। नेत्रों की सफेदी के बीच वाले भाग में काली पुतली शोभायमान है। हमेशा श्री राज जी के नेत्रों एवं ब्रह्मसृष्टियों के नेत्रों के बीच में प्रेम के बाणों से युद्ध होता रहता है।

भावार्थ— पलकों के किनारे, तथा भौंहों के काले-काले बालों, एवं तारों के काले रंग के कारण नेत्रों को काला (कजरारा) कहते हैं। काला या भूरा गोलाकार भाग तारा कहलाता है। उसके अन्दर स्थित छोटे-छोटे दो बिन्दुओं के रूप में पुतलियाँ होती हैं। पुतलियों का रंग काला होता है।

सोभा धरत अति श्रवनों, मोती उज्जल बीच लाल।

ए मुख रूह जब देखहीं, बल बल जाऊं तिन हाल॥३५॥

कानों में धारण किये हुए आभूषण (बाले) की बहुत

अधिक शोभा हो रही है। इसमें श्वेत मोती के बीच में लाल रंग का माणिक जड़ा हुआ है। इस शोभा से युक्त मुखारविन्द को जब मेरी आत्मा देखती है, तो उस अवस्था में हृदय में इतना प्रेम और आनन्द प्रकट होता है कि मेरी आत्मा इस स्वरूप पर बार-बार न्योछावर होती है।

प्यारी बातें करे जब आसिक, हेतें सुनत हक कान।

क्यों कहूं सुख तिन रूह के, जो प्यार कर सुनें सुभान॥३६॥

धनी के प्रेम में डूबी रहने वाली आत्मायें जब अपने प्राणवल्लभ से बहुत मीठी-मीठी बातें करती हैं, तो श्री राज जी के कान उन्हें बहुत प्रेम से सुनते हैं। उस समय धाम धनी के द्वारा बहुत प्रेम से बात सुनने के कारण आत्माओं को इतना अधिक आनन्द आता है कि मेरे

द्वारा उसका वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है।

रूह बात करे एक हक सों, हक देत पड़उत्तर चार।

कुरबान जाऊं हक हादीकी, जासों हक करें यों प्यार॥३७॥

जब कोई ब्रह्मसृष्टि श्री राज जी से एक बात कहती है, तो धाम धनी उसके चार उत्तर देते हैं। युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी की इन अँगरूपा ब्रह्मात्माओं के प्रति मैं बलिहारी जाती हूँ, जिनसे स्वयं अक्षरातीत इतना प्रेम करते हैं।

द्रष्टव्य— इस चौपाई में विशेष रूप से यह शिक्षा मिलती है कि जब स्वयं श्री महामति जी सुन्दरसाथ के प्रति इतनी ऊँची भावना रखते हैं, तो वर्तमान समय में समाज के अग्रगण्य महानुभावों को भी सभी सुन्दरसाथ के प्रति प्रेम भरी दृष्टि रखनी चाहिए। पद या पैसे के अहम् में

किसी को छोटा समझकर अपमानित करना बहुत बड़ा अपराध है।

ए छबि अंग अर्स के, जो अंग हक मूरत।

ए केहेनी में आवे क्यों कर, जो कही अमरद सूरत॥३८॥

शोभा का यह वर्णन परमधाम के उन नूरमयी अंगों का है, जो श्री राज जी के स्वरूप के अंग हैं। धाम धनी के इस किशोर स्वरूप की सुन्दरता का वर्णन भला शब्दों में कैसे आ सकता है, कदापि नहीं।

कांध केस पेच पगरी, पीठ लीक रूप रंग।

हाए हाए जीवरा ना उड़े, केहेते अर्स रहेमानी अंग॥३९॥

धाम धनी के कँधों पर उनके घुँघराले बाल झूल रहे हैं। पाग के पेंचों तथा पीठ की गहराई का रूप-रंग अद्वितीय

है। श्री राज जी के इन नूरमयी अंगों का वर्णन करते हुए हाय! हाय! मेरा जीव उड़ क्यों नहीं जाता।

भावार्थ- "लीक" शब्द का अर्थ रेखा या चिह्न होता है। गर्दन के नीचे से मेरूदण्ड कमर तक गया है। इस भाग में गहराई होती है, जो रेखा या चिह्न की तरह प्रतीत होती है। इसे ही लीक कहा गया है। इस चौपाई में जीव के उड़ जाने का तात्पर्य मरना नहीं, बल्कि प्रेम में अपने अस्तित्व को पूर्णतया समाप्त कर देना है। यदि अक्षरातीत से प्रेम करने पर शरीर ही छोड़ना पड़ता है, तब तो यह भयावह मार्ग है। इस सम्बन्ध में सिनगार २४ / ९५ का यह कथन देखने योग्य है-

जो पेहेले आप मुरदे हुए, तो दुनियां करी मुरदार।

हक तरफ हुए जीवते, उड़ पोहोंचे नूर के पार।।

स्पष्ट है कि जीव के उड़ जाने का तात्पर्य शरीर और

संसार के मोह-बन्धन से पूर्णतया अलग हो जाना है।

पाग सोभित सिर हक के, बनी हक दिल चाहेल।

सो इन जुबां क्यों केहे सके, जाकी दृष्ट अंग इन खेल॥४०॥

धाम धनी के सिर पर पाग सुशोभित हो रही है। उसकी बनावट धाम धनी के दिल की इच्छा के अनुसार है। पाग की इस अलौकिक शोभा का वर्णन भला यह जिह्वा कैसे कर सकती है। इस पञ्चभौतिक तन की दृष्टि भी तो माया की ही है।

भावार्थ- इस चौपाई में यह बात दर्शायी गयी है कि हम अपने इन भौतिक नेत्रों से प्रकृति मण्डल के स्थूल पदार्थों को ही देख सकते हैं। स्वप्नवत् पदार्थों की उपमा अक्षरातीत के अंगों से नहीं दी जा सकती।

दुगदुगी सोभा तो कहूं, जो पगड़ी सोभा होए और।

जोत करे हक दिल चाही, कोई तरफ बनी इन ठौर॥४१॥

दुगदुगी की शोभा का मैं अलग से वर्णन तो तब करूँ,
जब पाग की शोभा दुगदुगी से अलग हो। पाग की शोभा
ही कुछ ऐसी है कि वह श्री राज जी के दिल की
इच्छानुसार ही नूरी ज्योति फैला रही है।

ए क्यों आवे जुगत जुबां मिने, क्यों कहूं एह सलूक।

जो ए तरह आवे रूह दिल में, तो तबहीं होवे टूक टूक॥४२॥

दुगदुगी की संरचना तथा सुन्दरता का वर्णन इस जिह्वा
से हो पाना सम्भव नहीं है। यदि आत्मा के धाम हृदय में
यह शोभा आ जाये, तो आत्मा उसी समय अपना सर्वस्व
न्योछावर कर देगी (टूक-टूक हो जायेगी)।

इन पागै में है दुगदुगी, बनी पागै में कलंगी।

ए जंग करे जोत जोत सों, ए बनायल हक दिल की॥४३॥

पाग के अन्दर ही दुगदुगी तथा कलंगी की शोभा आयी है। इनकी बनावट भी श्री राज जी के हृदय की इच्छानुसार है। दुगदुगी और कलंगी से निकलने वाली नूरी ज्योतियाँ आपस में टकराकर युद्ध करने जैसा मनोरम दृश्य प्रकट कर रही हैं।

कई जिनसें कई जुगतें, कई तरह भांत सलूकी ए।

कई रंग नंग तेज रोसनी, नूर छायो अंबर जिमी जे॥४४॥

पाग में अनेक प्रकार की मनोहर वस्तुएँ अनेक प्रकार की संरचना में जड़ी हुई हैं। इस प्रकार पाग की शोभा अनेक रूपों में दृष्टिगोचर हो रही है। इसमें अनेक रंगों के नंग भी जड़े हुए हैं, जिनसे निकलने वाली तेजोमयी

ज्योति का नूर धरती से लेकर आकाश तक फैल रहा है।

जित चाहिए ठौर दुगदुगी, सब बनी पाग पर तित।

ठौर कलंगी के कलंगी, सिफत न जुबां पोहोंचत॥४५॥

पाग में जहाँ पर दुगदुगी होनी चाहिए, वहाँ पर दुगदुगी की बनावट है। इसी प्रकार जहाँ कलंगी होनी चाहिए, वहाँ कलंगी दिखायी दे रही है। इस पाग की सुन्दरता की प्रशंसा में जिह्वा कदापि समर्थ नहीं हो सकती।

कई सुख सलूकी इन पाग में, मैं तो कहूं बिध एक।

दिल चाही रूह देखत, एक खिन में रूप अनेक॥४६॥

धाम धनी की पाग में अनेक प्रकार की सुन्दरता का सुख है। मैंने तो एक ही प्रकार की (थोड़ी सी ही) शोभा का वर्णन किया है। आत्मा तो अपने हृदय की

इच्छानुसार शोभा देखती है। एक ही क्षण में पाग के अनेक (करोड़ों) रूप हो जाते हैं।

ना कछू खोली ना फेर बांधी, इन पागै में कई गुन।

पल पल में सुख दिल चाहे, नए नए देत रूहन॥४७॥

इस पाग में अनेक गुण हैं। इसको न तो कभी खोलना पड़ता है और न कभी बाँधना पड़ता है। यह पाग पल-पल आत्माओं को उनके दिल की इच्छानुसार नये-नये सुख देती है।

या विध के सुख देत हैं, वस्तर या भूखन।

सुख हक सरूप सिनगार के, किन विध कहूं मुख इन॥४८॥

परमधाम के वस्त्र या आभूषण इस प्रकार के अलौकिक सुख देते हैं। श्री राज के श्रृंगार के अद्वितीय सुख को मैं

इस मुख से कैसे व्यक्त करूँ, यह पूर्णतया असम्भव है।

तिलक नासिका नेत्र की, केस लवने कांन गाल।

मुख चौक देख नैन रूह के, रोम रोम छेदे ज्यों भाल॥४९॥

जब आत्मा अपने नेत्रों से श्री राज जी के अति सुन्दर तिलक, नासिका, नेत्रों, घुँघराले बालों, कानों, गालों, तथा मुखारविन्द की शोभा को देखती है, तो विरह की ऐसी अग्नि पैदा होती है जिसमें ऐसा प्रतीत होता है जैसे शरीर के रोम-रोम में भाले चुभ रहे हैं।

भावार्थ- "लवने" शब्द का तात्पर्य घुँघराले बालों से लिया जाता है। नासिका से लेकर टुड्डी तक और मुख के दोनों किनारों को लेकर जो चतुष्कोण बनता है, उस भाग को "मुख का चौक" कहते हैं।

आत्मा जब प्रियतम की अद्वितीय शोभा को देखकर

आनन्दमग्न हो जाती है, तो उसका कुछ अंश जीव को भी प्राप्त होता है, जिसके कारण वह विरह की अग्नि में जलने लगता है कि इस अद्वितीय सौन्दर्य को मैं लगातार क्यों न देखूँ। विरह की यह पीड़ा इतनी बढ़ जाती है कि ऐसा प्रतीत होता है जैसे शरीर के रोम-रोम में भाले चुभ रहे हैं। यद्यपि "विरहा नहीं ब्रह्माण्ड में, बिना सोहागिन नार" (क. हि. ९/२३) का कथन ब्रह्मसृष्टियों के ही लिये है, किन्तु इसका भाव ब्रह्मसृष्टि के जीव से है। सामान्य जीव विरह-प्रेम से कोसों दूर रहते हैं, किन्तु आत्मा के सम्बन्ध से जीव भी इश्क-ईमान (प्रेम-विश्वास) की राह पर चलने का प्रयास करता है, जिससे उसमें विरह की अग्नि धधकने लगती है। विरह में तड़पना आत्मा का नहीं, बल्कि जीव का लक्षण है। रोम-राम में भाले चुभने का भाव पञ्चभौतिक शरीर में ही होता है,

नूरमयी शरीरों में नहीं।

मुख सुन्दरता क्यों कहूं, नूरजमाल सूरत।

ए बयान दुनी में क्यों करूं, ए जो आई अर्स न्यामत॥५०॥

मैं श्री राज जी के मुखारविन्द की अद्वितीय सुन्दरता को कैसे व्यक्त करूँ। श्रृंगार के रूप में तो यह परमधाम की अनमोल निधि है। इसे मैं मायावी लोगों के बीच क्यों कहूँ।

द्रष्टव्य— महामति जी का यह कथन "श्रृंगार" की वाणी की महत्ता को दर्शा रहा है। वस्तुतः इसका वास्तविक लाभ मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही उठा पाती हैं। जीव सृष्टि के लिये कर्मकाण्डों का बन्धन तोड़ पाना बहुत कठिन होता है।

ए मुख देख सुख पाइए, उपजत है अति प्यार।

देख देख जो देखिए, तो रूह पावे करार॥५१॥

हे साथ जी! यदि आप श्री राज जी के मुखारविन्द की इस अलौकिक शोभा को देखते हैं, तो आपको अनन्त आनन्द का अनुभव होगा। यदि आप इस शोभा को बारम्बार देखते हैं, तो हृदय में बहुत प्रेम प्रकट होता है और आत्मा को आराम (शुकून) प्राप्त होता है।

जो देखूं मुख सलूकी, तो चुभ रहे रूह माहें।

ए सुख मुख अर्स का, केहे ना सके जुबांए॥५२॥

जब मैं धाम धनी के मुखारविन्द की शोभा को देखती हूँ, तो वह शोभा मेरी आत्मा के धाम हृदय में अखण्ड हो जाती है (बस जाती है)। परमधाम में विराजमान श्री राज जी के इस नूरी मुखारविन्द की शोभा को देखने पर मेरे

हृदय में इतना आनन्द आता है कि मैं अपनी जिह्वा से उसे व्यक्त नहीं कर सकती।

गौर निलवट रंग उज्जल, जाऊं बल बल मुखारबिंद।

ए रस रंग छबि देखिए, काढ़त विरहा निकन्द॥५३॥

माथे का रंग उज्ज्वल और अत्यन्त गौर है। मैं धाम धनी के मुखारविन्द की शोभा पर न्योछावर होती हूँ। हे साथ जी! यदि आप श्री राज जी की इस प्रेम की माधुर्यता एवं आनन्द से भरपूर शोभा को देख लेते हैं, तो आपके विरह की पीड़ा समाप्त हो जायेगी।

जो मुख सोभा देखिए, तो उपजत रूह आराम।

आठों पोहोर आसिक, एही मांगत है ताम॥५४॥

हे साथ जी! यदि आप इस मुखारविन्द की शोभा को

देखते हैं, तो आत्मा में बहुत आनन्द प्रकट होता है। धनी के प्रेम में डूबी रहने वाली ब्रह्मसृष्टियों के लिये धनी का दीदार ही भोजन है और उनकी एकमात्र यही इच्छा होती है कि उन्हें आठों प्रहर (दिन-रात) पल-पल दीदार (दर्शन) का सुख मिलता रहे।

जो गौर रंग देखिए, जुबां कहा कहे हक मान।

और कछू न देवे देखाई, आगूं अर्स सुभान॥५५॥

यदि परमधाम में विराजमान श्री राज जी के गोरे रंग को देखा जाये, तो उसकी उपमा में संसार में अन्य कोई भी सुन्दर पदार्थ नहीं है जिसका वर्णन मेरी जिह्वा से हो सके।

हंसत सोभित मुख हरवटी, अति सुन्दर सुखदाए।

हाए हाए रूह नजर यासों बांध के, क्यों टूक टूक होए न जाए॥५६॥

जब प्राणवल्लभ अक्षरातीत हँसते हैं, तो उनके मुख और टुड्डी की अति (अनन्त) सुन्दर शोभा होती है। हँसता हुआ यह स्वरूप आत्मा को अनन्त आनन्द देने वाला होता है। हाय! हाय! यह कितने आश्चर्य की बात है कि इस सौन्दर्य के सागर को देखकर भी आत्मा प्रेम में अपना सर्वस्व क्यों नहीं लुटा देती (टूक-टूक क्यों नहीं हो जाती)।

भावार्थ- इस संसार में हँसते हुए चेहरे का सौन्दर्य स्वाभाविक रूप से बढ़ जाता है। इस चौपाई में यही भाव व्यक्त किया गया है। अन्यथा, परमधाम में विराजमान धनी के अनन्त सौन्दर्य का तो संसार में कोई माप ही नहीं है।

अति गौर सुन्दर हरवटी, और अतंत सोभा सलूक।

बड़ा अचरज ए देखिया, जीवरा सुनत न होए टूक टूक॥५७॥

गोरे रंग की तुड़ी बहुत ही सुन्दर है। इसकी शोभा-सुन्दरता अनन्त है। मैं यह बहुत आश्चर्य की बात देख रही हूँ कि इस अनन्त सौन्दर्य का वर्णन सुनकर भी मेरा जीव दर्शन करने के लिये अपने अस्तित्व को विलीन नहीं कर पा रहा है।

भावार्थ- श्री इन्द्रावती जी के जीव ने तो हृषे में अपने अस्तित्व को विरह की ज्वाला में जला दिया था। वस्तुतः यह कथन तो उन सुन्दरसाथ के जीव के लिये है, जो श्रीमुखवाणी का चिन्तन-मनन तो करते हैं, किन्तु "मैं" का बन्धन तोड़कर प्रेम में सर्वस्व न्योछावर नहीं कर पाते।

हरवटी अधुर बीच लांक जो, मुख अधुर दोऊ लाल।

ए लाली मुख देखे पीछे, हाए हाए लगत न हैड़े भाल॥५८॥

ठुड्डी तथा होंठों के बीच की गहराई वाले भाग, मुख, तथा दोनों लाल-लाल होंठों का सौन्दर्य अद्वितीय है। हाय! हाय! लालिमा से भरपूर धनी के मुखारविन्द की शोभा को देखने के पश्चात् भी जीव के हृदय में भाले की तरह विरह की चोट क्यों नहीं लगती।

भावार्थ- दुखतें विरहा उपजे, विरह प्रेम इस्क।

इस्क प्रेम जब आइया, तब नेहेचे मिलिए हक॥

किरंतन १७/१६

इस कथन से स्पष्ट है कि बिना विरह-प्रेम के धनी का दीदार हो ही नहीं सकता, किन्तु इस चौपाई के इस कथन पर यह संशय होता है कि जब श्री राज जी के मुखारविन्द का दर्शन ही हो गया तो विरह के भाले न

चुभने की बात क्यों कही जा रही है? क्या बिना विरह के ही मुखारविन्द का दर्शन हो गया?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि ऐसा कहने का मुख्य कारण है— विरह—प्रेम की निरन्तरता दीदार के पश्चात् भी बनी रहनी चाहिए, अन्यथा आलस्य और प्रमाद का जीवन आध्यात्मिक उन्नति में बाधक है।

वस्तुतः दीदार होने के पश्चात् आत्मा के धाम हृदय में वह शोभा तो अखण्ड हो जाती है और आत्मा को आनन्द भी मिलता रहता है, किन्तु यदि जीव ने विरह—प्रेम के तारतम्य को बनाये नहीं रखा तो पूर्व सुख का अनुभव भूला भी जा सकता है।

सोभित हंसत हरवटी, बड़ी अचरज सलूकी मुख।

रुह देखे अन्तर आंखां खोल के, तो उपजे अर्स सुख॥५९॥

हँसते समय ठुड्डी की शोभा बहुत अधिक होती है। उस समय मुखारविन्द की शोभा अत्यधिक आश्चर्य में डालने वाली होती है। यदि आत्मिक नेत्रों से इस शोभा को देखा जाये, तो हृदय में परमधाम के सुखों का अनुभव होता है।

भावार्थ- "अन्तर आंखां" का तात्पर्य है अन्तःदृष्टि, अर्थात् शारीरिक और मानसिक दृष्टि से भी परे वह आत्मिक दृष्टि जिससे परमधाम को देखा जाता है। मानसिक दृष्टि का भाव है, अन्तःकरण की ज्ञान दृष्टि।

क्यों कहूं गौर गालन की, सोभित अति सुन्दर।
जो देखूं नैना भर के, तो सुख उपजे रूह अन्दर॥६०॥
मैं श्री राज जी के गालों के गोरेपन का कैसे वर्णन करूँ।
दोनों गाल बहुत ही सुन्दर शोभा को धारण किये हुए हैं।

यदि मैं जी भरकर (नेत्र भरकर) इस अलौकिक सुन्दरता को देख लूँ, तो मेरी आत्मा के हृदय में अखण्ड सुख का प्रकटन हो जाये।

क्यों कहूँ गाल की सलूकी, क्यों कहूँ गाल का रंग।

अनेक गुण गालन में, ज्यों जोत किरन रंग तरंग॥६१॥

मैं गालों के रंग और उनकी अद्वितीय सुन्दरता का कैसे वर्णन करूँ। जिस प्रकार ज्योति से किरणें निकलती हैं, उन किरणों में अनेक प्रकार के रंग विद्यमान होते हैं और उन रंगों की अलग-अलग तरंगें होती हैं, उसी प्रकार श्री राज जी के गालों में अनेक प्रकार के गुण छिपे हुए हैं।

भावार्थ- गालों में विद्यमान अनन्त सौन्दर्य उस ज्योति के समान है, जिससे अनन्त प्रकार की किरणें निकलती हैं। सौन्दर्य (ज्योति) से आकर्षण की लहरें (किरणें)

उठती रहती हैं। आकर्षण की उन लहरों में प्रेम (रंग) की विद्यमानता (उपस्थिति) होती है, जिससे आनन्दमयी अनुभूतियों की तरंगें जीवन में अमृत की बहार लाती हैं। इस प्रकार गालों के सौन्दर्य में आकर्षण , प्रेम, और आनन्द के रूप में हम सभी सागरों की अनुभूति भी कर सकते हैं, किन्तु केवल मारिफत (सर्वोच्च आध्यात्मिक अवस्था) में ही ऐसा सम्भव है।

बारीक सुख सरूप के, कोई जाने रूह मोमिन।

इस्क इलम जोस याही को, जाके होसी अर्स में तन॥६२॥

सौन्दर्य के सागर अक्षरातीत के स्वरूप से मिलने वाले सुख अति सूक्ष्म हैं। इन्हें मात्र परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ ही जानती हैं, जिनकी परात्म मूल मिलावा में बैठी है। उन आत्माओं को ही धनी का अनन्य प्रेम (इश्क),

ब्राह्मी ज्ञान (खुदाई इल्म), और जोश प्राप्त होता है।

भावार्थ- संसार के सुखों का रसपान आँख, कान, नाक, जिह्वा, और त्वचा रूपधारी स्थूल इन्द्रियों द्वारा किया जाता है, किन्तु परब्रह्म का आनन्द तो इन्द्रिय + अन्तःकरण + जीव की परिधि से भी परे शुद्ध आत्मिक दृष्टि द्वारा अनुभूत किया जाता है। इसलिये धनी से प्राप्त होने वाले सुखों को अति सूक्ष्म (बारीक) कहा गया है।

ए मुख अचरज अदभुत, गुन केते कहूं गालन।

ए रूहें जाने सुख बारीक, हर गुन अनेक रोसन॥६३॥

श्री राज जी के मुख की दिव्य शोभा अत्यधिक आश्चर्य में डालने वाली है। गालों के अद्भुत गुणों को मैं कैसे व्यक्त करूँ। प्रत्येक गुण में सूक्ष्म रूप से अनेक प्रकार के सुख दृष्टिगोचर होते हैं, जिन्हें मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही जानती हैं।

रूह के नैना खोल के, देखूं दोऊ गाल।

आसिक को मासूक का, कोई भेद गया रंग लाल॥६४॥

मेरी एकमात्र यही इच्छा है कि मैं अपने आत्मिक नेत्रों से श्री राज जी के दोनों गालों की शोभा को देखती रहूँ। मेरे दिल में तो अब प्रेमास्पद (माशूक) श्री राज जी के गालों का अति मनोहर लाल रंग अखण्ड भी हो गया है।

गाल रंग अति उज्जल, गेहेरा अति कसूँबाए।

मेहेबूब मुख देखे पीछे, रूह खिन न सहे अंतराए॥६५॥

प्रियतम अक्षरातीत के गालों का रंग अत्यधिक उज्ज्वलता में बहुत गहरी लालिमा लिये हुए हैं। प्रियतम के मुखारविन्द की अद्वितीय शोभा को देख लेने के पश्चात् तो अब मेरी आत्मा एक क्षण का भी वियोग सहन नहीं कर पा रही है।

द्रष्टव्य- श्वेत रंग में लाल रंग मिलाने पर गुलाबी रंग बन जाता है। इस प्रकार श्री राज जी के नूरी मुखारविन्द का रंग इस संसार के शब्दों में "गहरा गुलाबी" कहा जा सकता है।

ए अंग अर्स सरूप के, क्यों होए बरनन जिमी इन।

ए अचरज अदभुत हकें किया, वास्ते अरवा अर्स के तन॥६६॥

जिन अंगों का यह वर्णन हो रहा है, वे अंग श्री राज जी के परमधाम के स्वरूप के हैं। इनकी शोभा का वास्तविक वर्णन इस झूठे संसार में भला कैसे हो सकता है। सबको आश्चर्य में डालने वाला यह अद्भुत कार्य धाम धनी ने आत्माओं को जाग्रत करने के लिये किया है। परमधाम के स्वरूपों की शोभा का वर्णन इस संसार में कर दिया है, जो कभी सम्भव नहीं था।

महामत हुकमें केहेत हैं, हक बरनन किया नेक।

और भी कहूं हक हुकमें, अब होसी सब विवेक॥६७॥

धाम धनी के आदेश से श्री महामति जी कहते हैं कि मैंने श्री राज जी की शोभा का यह थोड़ा सा वर्णन किया है। प्रियतम अक्षरातीत के आदेश से अब आगे और वर्णन करने जा रहा हूँ, जिसको आत्मसात् करने पर आत्म-जाग्रति का विवेक पैदा होगा।

प्रकरण ॥१२॥ चौपाई ॥७०८॥

हक मासूक के श्रवण अंग

अक्षरातीत श्री राज जी ब्रह्मसृष्टियों के प्रेमास्पद (माशूक) हैं। इस प्रकरण में उनके कानों की शोभा एवं विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है।

श्रवन की किन विध कहूं, लेत आसिक इत आराम।

देख सुन सुख पावहीं, आसिक रूह इन ठाम॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती है कि मैं कानों की महिमा (विशेषताओं) को किस प्रकार कहूँ। इन कानों से ब्रह्मसृष्टियों को अपार आनन्द मिलता है। धनी के प्रेम में डूबी हुई आत्मायें कानों की अलौकिक शोभा को देखकर तथा उनकी विशेषताओं को जानकर (सुनकर) बहुत आनन्दित होती हैं।

कानन के गुन अनेक हैं, सुख आसिक बिना हिसाब।

आठों जाम इत पीवहीं, अर्स अरवाहें ए सराब॥२॥

धनी के कानों में अपार (अनेक) गुण विद्यमान हैं। इससे ब्रह्मात्माओं को अथाह सुख प्राप्त होता है। परमधाम की आत्मायें इन कानों के माध्यम से अष्ट प्रहर प्रेम रूपी अमृत का पान करती हैं।

भावार्थ- सखियाँ श्री राज जी से प्रेम भरी बातें कहकर आनन्दित होती हैं। आनन्द के प्रवाह में प्रेम की उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है। इसे ही इस चौपाई में प्रेम का रसपान करना कहा गया है।

वस्तुतः प्रेम और आनन्द एक-दूसरे के पूरक हैं। जिस प्रकार बर्फ से जल और जल से बर्फ में रूपान्तरण होता रहता है किन्तु मूलतः दोनों एक ही हैं, उसी प्रकार प्रेम और आनन्द का एक-दूसरे में रूपान्तरण होता रहता है।

देख कोमलता कान की, नैनों सीतलता होए।

आसिक इन सरूप के, ए सुख जानें सोए॥३॥

श्री राज जी के कान इतने कोमल हैं कि उन्हें देखकर आत्माओं के नेत्र तृप्त (आनन्दमग्न) हो जाते हैं। इस आनन्द को मात्र वे ब्रह्ममुनि ही जानते हैं जो धनी के स्वरूप में खोये रहते हैं।

भावार्थ— "नेत्रों का शीतल होना" एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है – देखकर अत्यधिक आनन्दित होना। अत्यधिक घृणा, क्रोध, व दुःख के कारण आँखों की भंगिमा बदल जाती है। उस समय आँखों के लिये "लाल-लाल आँखें" और "आँखों से दहकते अँगारे" जैसे कथन प्रयोग किये जाते हैं। अपनी प्रिय वस्तु को देखकर नेत्रों के शीतल हो जाने की बात कही जाती है। उस समय देखी हुई प्रिय वस्तु का आनन्द हृदय में

उफान ले रहा होता है।

मासूक का मुख सोभित, देख लवने केस कान।

पेहेचान वाले सुख पावहीं, देख अर्स अजीम सुभान॥४॥

कानों तक आये हुए घुँघराले बालों से युक्त श्री राज जी का मुखारविन्द अनन्त शोभा को धारण किये हुए है। हे मेरी आत्मा! तू इसे देख। जिन आत्माओं ने इस नश्वर संसार में भी परमधाम में विराजमान अपने प्राणप्रियतम अक्षरातीत को पहचान लिया है, वे ही निजधाम एवं युगल स्वरूप का दीदार कर आनन्दित होती हैं।

कानों सुनें आसिक की, दिल दे गुझ मासूक।

कहे आधा सुकन इस्क का, आसिक होए जाए भूक भूक॥५॥

धाम धनी बहुत ही प्रेमपूर्वक (दिल से) आत्माओं की

गुह्य (प्रेम के रहस्य से भरपूर) बातों को सुनते हैं। प्रत्युत्तर में जब वे आधी बात भी कहते हैं, तो उसमें प्रेम (इश्क) की ऐसी मधुर-मिठास होती है कि उसे सुनकर आत्मायें अपना सर्वस्व समर्पित कर देती हैं अर्थात् उस समय केवल "तू" की स्थिति रह जाती है।

मुख जुबां मासूक की, सो भी कानों के ताबीन।

रूह देखे गुन कानन के, जासों हक जुबां होत आधीन॥६॥

श्री राज जी के मुख से निकली हुई वाणी उनके कानों के अधीन होती है, अर्थात् कानों से सखियों की बातें सुनकर ही धाम धनी उसका उत्तर देते हैं। ब्रह्मसृष्टियाँ श्री राज जी के उन कानों के अलौकिक गुणों का चिन्तन करती हैं, जिन्होंने धनी की वाणी (कथन) को भी अपने अधीन कर रखा है।

हकें आसिक नाम धराइया, वाको भी अर्थ ए।

मासूक उलट आसिक हुआ, सो भी बल कानन के॥७॥

श्री राज जी (माशूक) ने जो स्वयं को आशिक (प्रेमी) कहा है, उसका भी यही अर्थ है। यह कानों की ही अलौकिक शक्ति का प्रभाव है कि सखियों के माशूक (प्रेमास्पद) श्री राज जी अब आशिक (प्रेमी) कहलाने लगे हैं।

भावार्थ- सखियाँ आशिक के रूप में अपने माशूक श्री राज जी को प्रेम भरी बातों से रिझाती हैं। श्री राज जी उनकी प्रेम भरी बातों को कानों से सुनकर अमृत से भी करोड़ों गुना मीठी वाणी से सखियों को उत्तर देते हैं, ताकि वे अपनी अँगनाओं को रिझा सकें।

इस प्रकार वे आशिक के रूप में हो जाते हैं। इस चौपाई में यही बात लौकिक रीति से दर्शायी गयी है कि यदि

कानों से न सुना जाये, तो प्रत्युत्तर कैसे दिया जायेगा, अर्थात् इन कानों ने श्री राज जी की वाणी (कथन) को भी अपने अधीन कर रखा है। यद्यपि कानों में भी देखने, बोलने, और स्वाद लेने आदि का सारा गुण है, किन्तु यहाँ लीला रूप में लोक रीति से कानों की महत्ता दर्शायी गयी है।

हक कहे मेरा नाम आसिक, सो भी सुनके गुझ मोमिन।

ए जानें अरवा अर्स की, कहूं केते कानों गुन॥८॥

ब्रह्मसृष्टियों से प्रेम की गुह्य बातें सुनकर माशूक श्री राज जी कहते हैं कि मेरा नाम आशिक है अर्थात् मैं आशिक हूँ। श्री राज जी के द्वारा ऐसा कहने का क्या कारण है? इस रहस्य को मात्र परमधाम की आत्मायें ही जानती हैं। कानों में गुण तो अनन्त हैं। मैं उनको कितना (कैसे)

व्यक्त करूँ।

खावंद अर्स अजीम का, गुझ सुनत रात दिन।

ए जो अरवाहें अर्स की, कई सुख लेवें कानन॥९॥

धाम के धनी श्री राज जी अपनी अँगनाओं से दिन-रात उनकी गुह्य बातें सुनते रहते हैं। इसी प्रकार परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ भी धनी के कानों के कई प्रकार के सुखों को प्राप्त करती हैं।

भावार्थ- सखियों के द्वारा श्री राज जी से अपनी बातें कहना तथा श्री राज जी के द्वारा उनका प्रत्युत्तर दिया जाना लीला मात्र हैं। वस्तुतः परमधाम में तो श्री राज जी का हृदय (दिल) ही सभी रूपों में लीला कर रहा है। इस प्रकार श्री राज जी के कानों में और ब्रह्मसृष्टियों के कानों में कोई भी अन्तर नहीं है।

हक आसिक हुआ याही वास्ते, सो रूहें क्यों न सुनें हक बात।
 ए कौन जाने अर्स रूहों बिना, कान गुन अंग अख्यात॥१०॥
 सखियों को अपनी बातों द्वारा रिझाने के लिये ही तो श्री
 राज जी को आशिक होना पड़ा। ऐसी स्थिति में
 ब्रह्मसृष्टियाँ उनकी प्रेम भरी बातों को क्यों नहीं सुनेंगी।
 वर्णन में न आने वाले कानों के अद्भुत गुणों को परमधाम
 की आत्माओं के अतिरिक्त भला और कौन जान सकता
 है।

बोहोत बड़े गुन कानके, बिना आसिक न जाने कोए।
 कई गुझ गुन श्रवनके, और कोई जाने जो दूसरा होए॥११॥
 धनी के कानों में बहुत बड़े - बड़े गुण हैं, जिन्हें
 ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं जान
 सकता। परमधाम में धनी की अँगरुपा ब्रह्मसृष्टियों के

अतिरिक्त और कोई दूसरा है ही नहीं, इसलिये कानों के अनन्त (कई) गुह्य गुणों को ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं जानता।

और देखो गुन काननके, जब हक देत रूहों कान।

वाको ले अपने नजरमें, देखें सनकूल दृष्ट सुभान॥१२॥

हे साथ जी! कानों के अन्य गुणों को भी देखिए। जब धाम धनी अँगनाओं की बात को बहुत प्रेमपूर्वक सुनते हैं, तो उस बात को ध्यान में रखते हुए उन अँगनाओं की ओर बहुत प्रेम भरी दृष्टि से देखते हैं।

भावार्थ— इस चौपाई में दो मुहावरे हैं— कान देना और नजर में लेना। कान देने का तात्पर्य है सुनना, और नजर में लेने का भाव है दृष्टि या मन में धारण करना।

सब सुख पावे रूह तिनसों, हुए नेत्र भी कानों तालूक।
शीतल दृष्टें देखत, ए जो मासूक मलूक॥१३॥

श्री राज जी के द्वारा प्रेममयी दृष्टि से देखे जाने से आत्माओं को सभी प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है। इस प्रकार नेत्र भी कानों से सम्बन्धित रहते हैं। अक्षर धाम के माशूक (प्रेमास्पद) श्री राज जी अपनी प्रेम भरी शीतल दृष्टि से अपनी अँगनाओं को देखते हैं।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण में "मलूक" शब्द का तात्पर्य उस अक्षर धाम से है, जिसमें अक्षर ब्रह्म रहते हैं। अक्षर ब्रह्म श्री राज जी का दर्शन करने जाते हैं, इसलिये वे आशिक हुए और श्री राज जी माशूक हुए। इस प्रकार अक्षर धाम के माशूक श्री राज जी हैं।

ए सब बरकत कानों की, सो सुन सुन रूहकी बान।

दिल भी हक तहां देत हैं, मेहेर करत मेहेरबान॥१४॥

ब्रह्मसृष्टियों के मुख से प्रेम की गुह्य बातें सुनकर मेहर के सागर श्री राज जी उन पर अपार मेहर करते हैं। उनके प्रति अपने हृदय का सारा प्रेम उड़ेल देते हैं। यह सारा सौभाग्य कानों के कारण ही प्राप्त होता है।

ए गुन सब कानन के, कई गुझ सुख रूह परवान।

रूहें कई सुख कानों लेत हैं, रहेमत इन रहेमान॥१५॥

ये सभी गुण कानों के अन्दर निहित हैं। निश्चित रूप से कानों में आत्माओं के अनन्त गुह्य सुख विद्यमान हैं। मेहर के सागर अक्षरातीत के अनुग्रह (मेहर) से आत्मायें अनन्त प्रकार के सुखों को कानों से प्राप्त करती हैं।

हक इस्क जो करत है, सो सब कानों की बरकत।

अनेक सुख हैं इनमें, सो जानें हक निसबत॥१६॥

धाम धनी अपनी अँगनाओं से जो प्रेम करते हैं, वह कानों के ही कारण। इन कानों में आत्माओं के अनन्त प्रकार के सुख छिपे हुए हैं, जिन्हें मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही जानती हैं।

भावार्थ— सखियाँ अपने प्राणवल्लभ को रिझाने के लिये जिस अमृतमयी वाणी से कानों में प्रेम की मिठास घोलती हैं, धाम धनी उसे सुनकर उससे भी अधिक प्रेम से सखियों को रिझाना चाहते हैं। इस प्रक्रिया में कान ही माध्यम बनते हैं, इसलिये इस चौपाई में कहा गया है कि इन कानों की बरकत से ही धाम धनी अपनी अँगनाओं से इतना प्रेम करते हैं।

आसिक जाए कहूं ना सके, छोड़ सुख हक श्रवन।

हिसाब नहीं गुन कानोंके, कोई सके न ए गुन गिन॥१७॥

धाम धनी के कानों से मिलने वाले सुख को छोड़कर ब्रह्मसृष्टियाँ और कहीं भी नहीं जा सकती हैं। प्रियतम अक्षरातीत के कानों में अनन्त गुण छिपे हुए हैं। कोई भी उन गुणों को गिनने का सामर्थ्य नहीं रखता है।

खोल देखो एक इस्क को, तो कई सुख अर्स अपार।

सो सुख लेसी कर बेवरा, जो होसी निसबती हुसियार॥१८॥

यदि धाम धनी के एकमात्र प्रेम (इश्क) की ही विवेचना की जाये, तो उसमें परमधाम के अनन्त सुखों का अस्तित्व मिलेगा। जो परमधाम की बुद्धिमती आत्मा होगी, वह ही प्रेम का पूर्ण विवरण जानकर धनी के अखण्ड सुखों को प्राप्त करेगी।

भावार्थ- यह खेल ही इश्क रब्द के कारण बना। इश्क की मारिफत (प्रेम का विज्ञान या परम यथार्थता) जाने बिना इस खेल का लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता। जिन आत्माओं ने ब्रह्मवाणी के ज्ञान में डुबकी लगाकर इस रहस्य को जान लिया है, उन्हें ही बुद्धिमती (होशियार) कहा गया है। वे आत्मायें ही चितवनि में डूबकर इसके सुख का प्रत्यक्ष अनुभव करेंगी।

दिल के सुख केते कहूं, जो हक दिल दरिया पूरन।

सब अंग ताबे दिल के, होसी अर्स में हिसाब इन॥१९॥

जब अक्षरातीत का हृदय (दिल) ही प्रेम का अनन्त (पूर्ण) सागर है, तो मैं उस दिल में विद्यमान आनन्द का वर्णन कैसे कर सकती हूँ। धनी के सभी अंग उनके हृदय के अधीन हैं। परमधाम में जाग्रत होने के पश्चात् इसका

सम्पूर्ण विवरण प्राप्त हो जायेगा।

भावार्थ- शरीर के सभी अंगों का नियन्त्रक हृदय ही होता है। सम्पूर्ण परमधाम श्री राज जी के हृदय का ही व्यक्त (प्रकट) रूप है, जिसे हकीकत कहा जाता है। यही सिद्धान्त उनके नख से शिख तक के स्वरूप पर भी घटित होता है, किन्तु केवल मानवीय बुद्धि में समझ में आने के लिये ही ऐसा कहा गया है, अन्यथा परमधाम की हकीकत के कण-कण में मारिफत का स्वरूप छिपा हुआ है।

अंग-अंग में वहदत (एकदिली) है, इसलिये किसी भी अंग को किसी से छोटा, बड़ा, या कम महत्व का नहीं कह सकते। परमधाम में सौन्दर्य, आनन्द आदि के क्षेत्र में किसी प्रकार की विषमता हो ही नहीं सकती। यही कारण है कि श्रृंगार ग्रन्थ के प्रकरण ६, ७, ८, ९ में चरणों

की, प्रकरण ११ में वक्षस्थल की, प्रकरण १२ में मुखारविन्द की, और प्रकरण १३ में कानों की महत्ता दर्शायी गयी है। इसी प्रकार प्रकरण १४ में नेत्रों, प्रकरण १५ में नासिका, प्रकरण १६ में जिह्वा की महिमा बतायी गयी है, किन्तु वहदत (एकदिली) के कारण सबकी महत्ता समान है।

तो इन जुबां क्यों होवहीं, हक हादी सागर सुख।

ए बारीक सुख बीच अर्स के, होसी मूल मेलेके मुख॥२०॥

इस प्रकार श्री राजश्यामा जी के हृदय में उमड़ने वाले आनन्द के अनन्त सागर का वर्णन इस जिह्वा से हो पाना कदापि सम्भव नहीं है। परमधाम के मूल मिलावा, जहाँ सबकी परात्म विद्यमान है, उसमें जाग्रत होने के पश्चात् इन गुह्य सुखों पर चर्चा होगी।

भावार्थ- इस जागनी ब्रह्माण्ड में ब्रह्मवाणी के ज्ञान और चितवनि द्वारा जाग्रत होकर आत्मा मारिफत के जिन गूढ़ रहस्यों को जान रही है, उसका बोध परात्म को भी होता जा रहा है। परात्म में जाग्रत होने के पश्चात् इन सुखों का यथार्थ रूप से वह आनन्द प्राप्त हो जायेगा, जो पहले अनुभव में नहीं था। यद्यपि परमधाम में आनन्द में घट - बढ़ नहीं हो सकती, किन्तु मारिफत (परम यथार्थता) के रहस्यों को जान जाने से अनुभूति का रस कुछ न्यारा ही होगा। इस चौपाई में इसी तथ्य की ओर संकेत किया गया है।

जो अर्थ ऊपरका लेवहीं, सो सुख जानें एक हक श्रवन।
 एक एक के कई अनेक, सो कई गुन मगज लेवें मोमिन॥२१॥
 जो सुन्दरसाथ इस प्रकरण में वर्णित चौपाइयों का

केवल बाह्य (शाब्दिक) अर्थ लेते हैं, वे यही समझते हैं कि श्री राज जी के कानों से मात्र कानों का ही सुख प्राप्त होता है। परमधाम में तो एक-एक अंग में कई-कई अंगों की लीला होती है और उनके सभी (कई) गुण छिपे रहते हैं। इस गुह्य भेद को मात्र परमधाम की आत्मायें ही जानती हैं।

भावार्थ- परिक्रमा ९ / ३० में कहा गया है-

पूरन पांचों इन्द्री सरूपें, एक एक में पांच पूरन।

हर एक में बल पांच का, हर एक में पांच गुन॥

अर्थात् एक-एक इन्द्रिय में पाँचों इन्द्रियों के गुण छिपे होते हैं। इस प्रकार श्री राज जी के कानों में आँख, नासिका, जिह्वा, और त्वचा आदि अंगों की भी लीला होती है और इन इन्द्रियों के सभी गुण कानों में विद्यमान होते हैं।

कई अंग ताबे कानके, कान अंग सिरदार।

कोई होसी रूह अर्स की, सो जानेगी जाननहार॥२२॥

श्री राज जी का श्रवण अंग सभी अंगों में प्रमुख है। इसके अधीन कई अंग होते हैं। जो परमधाम की आत्मा होगी, वही इस रहस्य को जान सकेगी और एकमात्र उसी में जानने की सामर्थ्य है, शेष अन्य सृष्टियों में नहीं।

भावार्थ— जिस प्रकार सागर में श्री राज जी के पाँच हारों के वर्णन में प्रत्येक हार को अन्य सबसे सुन्दर और तेजोमयी कहा गया है, जबकि सभी हार समान हैं। उसी प्रकार इस प्रकरण में भी श्री राज जी के श्रवणों का वर्णन है और इस अंग को शरीर के सभी अंगों का प्रमुख कहा गया है। वस्तुतः परमधाम में वहदत होने के कारण सभी अंगों की शोभा, सुन्दरता, और महत्ता समान है, किन्तु इस प्रकार का वर्णन वर्णित विषय की महत्ता को दर्शाने

के लिये किया जाता है।

इलम भी ताबे कानों के, जो इलम कहा बेसक।

ए झूठी जिमिएं सेहेरा से नजीक, इन इलमे पाइए इत हक॥२३॥

जिस तारतम ज्ञान (ब्रह्मवाणी) को संशय से पूर्णतया रहित कहा जाता है और जिसके द्वारा इस झूठे संसार में अक्षरातीत को अपनी प्राणनली से भी अधिक निकटवर्ती अनुभूत किया जाता है, वह तारतम ज्ञान भी कानों के अधीन है।

भावार्थ— परमधाम में जब आत्मायें अपने हृदय की बात श्री राज जी से कहती हैं, तो धाम धनी उन्हें रिझाने के लिये अति मीठे शब्दों में बोलते हैं। ऐसा कानों के कारण ही होता है। इसी प्रकार माया में भटकती हुई आत्माओं ने जब अपने प्रियतम को पुकारा, तो उन्हें जाग्रत करने

के लिये धाम धनी ने अपने हृदय का प्रेम ब्रह्मवाणी (तारतम ज्ञान) के रूप में अवतरित कर दिया। तारतम ज्ञान को कानों के अधीन कहने का यही कारण है।

कई गुन हैं कानन के, जाके ताबे दिल खसम।

क्यों सिफत कहूं इन दिलकी, जिन दिल ताबे हुकम॥२४॥

इन कानों में बहुत (अनन्त) गुण हैं। श्री राज जी का दिल भी इन्हीं कानों के अधीन है। मैं उस दिल की महिमा का वर्णन कैसे करूँ, जिसके अधीन श्री राज जी का हुक्म भी है।

भावार्थ— इस चौपाई में यह संशय उत्पन्न होता है कि जब इसी प्रकरण की व्याख्या में पहले कहा जा चुका है कि श्री राज जी के मारिफत स्वरूप दिल का ही व्यक्त

स्वरूप सम्पूर्ण परमधाम सहित श्री राज जी का नख से शिख तक का श्रृंगार भी है, तो दिल को भी कानों के अधीन क्यों कहा गया है?

इसका उत्तर इस प्रकार दिया जा सकता है, जिस प्रकार किसी रंगमंच पर राजा का अभिनय करने वाला व्यक्ति अचानक किसी परिस्थितिवश भिखारी का अभिनय करने लगे तो उसे पहचान जाने वाले लोग आश्चर्य करने लगते हैं, उसी प्रकार का प्रसंग यहाँ है। यद्यपि दिल का ही व्यक्त स्वरूप कान है, किन्तु धाम धनी अपने कानों से सुनकर ही तो अपने दिल का प्रेम सखियों के ऊपर उड़ेलते हैं। इस दिल की लीला कानों की लीला के बाद होती है और उनके निर्देशानुसार होती है, इसलिये दिल को भी कानों के अधीन (अनुकृति) कहा गया है।

हुकम इलम ताबे कान के, मेहेर दिल ताबे इस्क के।

क्यों कहूं इनसे आगे वचन, कानों ताबे भए सागर ए॥२५॥

हुकम और इल्म (आदेश और ज्ञान) कानों के अधीन हैं। इसी प्रकार मेहर और दिल इश्क (प्रेम) के अधीनस्थ हैं। इनसे अधिक मैं और क्या कहूँ। कानों के अधीन तो ये सागर (इश्क, इल्म, मेहर आदि) हो गये हैं।

भावार्थ— जिस प्रकार शक्तिमान के अन्दर ही शक्ति विद्यमान होती है, किन्तु लीला रूप में यही कहा जाता है कि यदि शक्ति ही न हो तो शक्तिमान के अस्तित्व पर प्रश्न खड़ा हो जायेगा। इसी प्रकार श्री राज जी का मारिफत स्वरूप दिल ही हकीकत के रूप में मेहर सागर है। श्री राज जी के दिल या मेहर सागर में गंजानगंज इश्क ही इश्क भरा हुआ है। ऐसी स्थिति में यदि कल्पना की जाये कि इश्क न हो तो मेहर सागर या दिल की पूर्णता पर प्रश्न

चिन्ह खड़ा होगा या नहीं? यही कारण है कि लीला रूप में इश्क के अधीन मेहर के सागर या दिल को कहा गया है। ब्रह्मसृष्टियों से इश्क (प्रेम) होने के कारण ही श्री राज जी मेहर करते हैं। इस कारण भी मेहर को इश्क के अधीनस्थ मानना पड़ता है। वस्तुतः परमधाम में अधीनता वाली कोई बात नहीं है, किन्तु लीला रूप में कानों की महत्ता दर्शाने के लिये ही ऐसा कहा जा रहा है। इसका मुख्य उद्देश्य है मारिफत में हकीकत को और हकीकत में मारिफत को ओत-प्रोत सिद्ध करना।

निकस न सके आसिक, हक के एक अंग से।

तिन अंग ताबे कई सागर, अर्स रूहें पड़ी इनमें॥२६॥

ब्रह्मसृष्टियाँ श्री राज जी के किसी भी अंग की शोभा से निकल नहीं सकतीं। श्री राज जी के प्रत्येक अंग के

अधीन (अन्तर्गत) कई सागर हैं। परमधाम की आत्मायें इनमें ही डूबी रहती हैं।

जो सागर कहे ताबे कान के, तिन सागरों ताबे कई सागर।

जो गुन देखूं हक एक अंग, यार्थें रूह निकसे क्यों कर॥२७॥

कानों के अधीनस्थ जिन सागरों का वर्णन किया गया है, उन सागरों के भी अधीन कई सागर हैं। यदि मैं श्री राज जी के एक अंग के गुणों को भी देखूँ, तो ब्रह्मसृष्टियाँ उससे बाहर नहीं निकल सकतीं अर्थात् गुणों की थाह नहीं पा सकतीं।

भावार्थ— स्वलीला अद्वैत परमधाम के कण-कण में युगल स्वरूप सहित सम्पूर्ण परमधाम वैसे ही समाहित है, जैसे छोटे से दर्पण में पृथ्वी से १३ लाख गुना बड़ा सूर्य दृष्टिगोचर होता है। इसी प्रकार धाम धनी के अंग-

अंग में अनेक सागर और अनन्त गुण समाये हुए हैं,
जिनका आँकलन मानवीय बुद्धि के आधार पर कदापि
नहीं हो सकता।

जो गुन मैं केहेती हों, हक अंग गुन अपार।

अर्स रूहें गिनैं गुन अंग के, सो गुन आवे न कोई सुमार॥२८॥

अब तक मैं धाम धनी के अंगों के गुणों का वर्णन करती
रही हूँ। श्री राज जी के अंग-अंग में अनन्त गुण भरे हुए
हैं। परमधाम की आत्मायें अपने प्राणवल्लभ के अंगों के
गुणों को गिनना चाहती हैं, किन्तु गुणों की तो कोई सीमा
ही नहीं है।

सुनो मोमिनोँ एक ए गुन, एक अंग ऊपर के कान।

अंग अपार कहे कई बातून, अजूं जुदे भूखन सुभान॥२९॥

हे साथ जी! धनी के स्वरूप का एक यह भी गुण सुनिये। अभी तो श्री राज जी के स्वरूप के ऊपर के एक श्रवण अंग का ही वर्णन हो रहा है। बातिनी रूप में तो श्री राज जी के अंग भी अनन्त कहे गये हैं। अभी तो धाम धनी के आभूषणों को वर्णन हुआ ही नहीं है।

भावार्थ- परमधाम में श्यामा जी, सखियाँ, महालक्ष्मी, तथा खूब खुशालियाँ सभी उनकी अँगरूपा हैं। सखियों की संख्या अनन्त होने के कारण श्री राज जी के अंगों की संख्या भी अनन्त मानी गयी है।

जैसी सोभा देखों साहेब की, तैसे कानों पेहेने भूखन।

आसमान जिमी के बीचमें, हो रही सबे रोसन॥३०॥

मैं श्री राज जी की जैसी नूरमयी शोभा देख रही हूँ, वैसी ही शोभा कानों में धारण किये हुए आभूषणों की भी है।

उन आभूषणों से निकलने वाली नूरमयी ज्योति धरती और आकाश के बीच में चारों ओर जगमगा रही है।

भावार्थ— इस चौपाई में वह वहदत (एकत्व) के सिद्धान्त के आधार पर श्री राज जी के स्वरूप और आभूषणों की शोभा को समरूप करके दर्शाया गया है।

एक अंग में कई खूबियां, सो एक खूबी कही न जाए।

तिन खूबी में कई खूबियां, गिनती होए न ताए॥३१॥

श्री राज जी के प्रत्येक अंग में अनेक प्रकार की विशेषताएँ विद्यमान हैं, जिनमें से किसी एक विशेषता (खूबी) का भी वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है। उस एक विशेषता में कई और विशेषतायें हैं, जिनकी गणना होना असम्भव है।

भावार्थ— सच्चिदानन्द परब्रह्म के अंगों की विशेषतायें तो

अनन्त हैं। उसे गणना की सीमा में बाँधना कदापि सम्भव नहीं है।

सो खूबियां भी अर्स की, जाके कायम सुख अखंड।

सो कायम सुख इत क्यों कहूं, ए जो जुबां इन पिंड॥३२॥

ये विशेषतायें परमधाम के उस नूरमयी स्वरूप की हैं, जिनके सुख अनादि और अखण्ड हैं। मेरी यह जिह्वा पञ्चभौतिक तन की है। भला इसके द्वारा धनी के अंगों की विशेषताओं के सुखों को कैसे व्यक्त किया जा सकता है।

क्यों बरनों अर्स अंग को, एक अंग में अनेक रंग।

जो देखों ताके एक रंग को, तिन रंग रंग कई तरंग॥३३॥

मैं परमधाम के अंगों का वर्णन कैसे करूँ। एक-एक अंग

में अनेक प्रकार के रंग हैं। उन रंगों में से यदि किसी एक रंग को मैं देखती हूँ, तो उनमें से प्रत्येक रंग में अनेक प्रकार की तरंगे दिखायी देती हैं।

भावार्थ- परमधाम के तनों का रंग इस नश्वर जगत् के शरीर के रंग जैसा काला, पीला, सफेद, या गुलाबी नहीं है। वहाँ के नूरमयी अंगों से अनेक प्रकार के मनमोहक रंग प्रकट होते रहते हैं।

सो एक तरंग ना केहे सकों, एक तरंगे कई किरन।

जो देखूं एक किरनको, तो पार ना पाऊं गुन गिन॥३४॥

मैं उन तरंगों में से एक तरंग की शोभा का भी वर्णन नहीं कर सकती। हर तरंग में अनेक प्रकार की किरणें निकलती हैं। जब मैं एक किरण की ओर देखती हूँ, तो उसके इतने गुण हैं कि उनको गिन पाना मेरे लिये सम्भव

नहीं है।

एह निमूना देत हों, सो रूहें जानें जो सिफत करत।

जथार्थ सब्द न पोहोंचहीं, तो जुबां पोहोंचे क्यों हक सिफत॥३५॥

श्री राज जी के अंगों की शोभा का वर्णन करने के लिये ही मैंने रंगों, तरंगों, और किरणों का दृष्टान्त (उपमा) दिया है। इस बात को परमधाम की वे आत्मायें ही जानती हैं, जो धाम धनी की अद्वितीय शोभा का बखान (गुणगान) करती हैं। प्रियतम की शोभा का वास्तविक वर्णन करने के लिये जब यथार्थ शब्द ही नहीं हैं, तो यहाँ की जिह्वा से प्रियतम अक्षरातीत की शोभा का गुणगान कैसे हो सकता है।

जो कबूं कानों ना सुनी, सो सुन जीव गोते खाए।

दम ख्वाबी बानी वाहेदत की, सुनते ही उड़ जाए॥३६॥

अक्षरातीत की शोभा का वर्णन करने वाली इस ब्रह्मवाणी को सुनकर जीव आश्चर्य के सागर में डूबने – उतराने लगता है। सपने के ब्रह्माण्ड के जीव जब परमधाम की वहदत की शोभा का बखान करने वाली इस ब्रह्मवाणी को सुनते हैं, तो वे अपने अस्तित्व को मिटा देते हैं।

भावार्थ- साकार-निराकार की भ्रान्तियों में भटकने वाले जीव जब अक्षरातीत की इस अलौकिक नूरमयी शोभा का वर्णन सुनते हैं, तो उन्हें कभी गहन आश्चर्य होता है तो कभी अविश्वास। उनके मन में द्वन्द्वों का तूफान चलने लगता है कि क्या ऐसा भी सम्भव है कि अक्षरातीत की आकृति हो और एक ही नख के अन्दर

करोड़ों सूर्यों का प्रकाश हो ? इसे ही गोते खाना कहा गया है।

"उड़ जाए" का अर्थ है— अस्तित्व का समाप्त हो जाना। यह दो रूपों में होता है— १. ज्ञान दृष्टि से २. मूल रूप से। श्रीमुखवाणी में इस प्रकार का कथन बहुत बार आया है—

नींद उड़े रहे न सुपना, और सुपने में देखना हक।

श्रृंगार ४/८

ना तो इन प्याले की बोए से, तबहीं अरवा उड़ जाए॥

श्रृंगार २४/८०

सोई मामिन जानियो, जो उड़ावे चौदे तबक।

श्रृंगार १/३०

कंकरी उड़ावे अर्स की, ए जो चौदे तबक।

श्रृंगार १७/१८

जिस प्रकार "पेहेले पी तूं सरबत मौत का" (खिलवत २/३१), "जो पेहेले आप मुरदे हुए, तो दुनियां करी मुरदार" (श्रृंगार २४/९५) में मरने का भाव ज्ञान दृष्टि से है, यथार्थतः नहीं, उसी प्रकार उड़ने का भी भाव ज्ञान दृष्टि से शरीर और संसार से परे हो जाना है। यदि ब्रह्मवाणी सुनने मात्र से किसी की मृत्यु हो जाये, तो यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का कल्याण करने वाली कैसे कही जा सकती है। वस्तुतः श्रृंगार १३/३६ में जीव के उड़ जाने का तात्पर्य शरीर का त्याग करना नहीं, बल्कि शरीर के मोह-जाल से हटकर अपने चेतन अस्तित्व को भी श्री राज जी के प्रेम में विलीन करना है।

श्रवन गुन गंज क्यों कहूं, जाके ताबे हुए कई गंज।

इन गंजों गुन सुख सो जानहीं, जिन बका हक समझ॥३७॥

कान तो गुणों के भण्डार हैं। उनका मैं कैसे वर्णन करूँ।
इनमें प्रत्येक गुण के अधीन सुखों के अनन्त भण्डार हैं।
इन गुणों के भण्डारों के सुख को मात्र वे ब्रह्मसृष्टियाँ ही
जानती हैं, जिन्हें अक्षरातीत तथा परमधाम की
वास्तविक पहचान होती है।

गुन एक अंग कह्यो न जावहीं, जो देखों दिल धर।

तो गंज अलेखे अपार के, सुख कहूं क्यों कर॥३८॥

हे साथ जी! यदि आप अपने दिल में विचार कीजिए तो
यह स्पष्ट हो जायेगा कि जब श्री राज जी के किसी भी
अंग के गुणों का वर्णन नहीं हो सकता, तो धनी के अंग
अपार हैं और उनके गुणों के कितने भण्डार हैं, इसे तो

व्यक्त किया ही नहीं जा सकता। ऐसी स्थिति में अनन्त गुणों के अनन्त सुख को किसी भी स्थिति में नहीं कहा जा सकता।

भावार्थ- इस चौपाई में धनी के अंगों को अपार कहने का भाव वही है, जो चौपाई २९ में कहा गया है, अन्यथा यदि बाह्य रूप से देखा जाये तो किसी भी दृश्यमान शरीर में अंगों की संख्या सीमित ही होती है, अनन्त नहीं।

जब देखों गुन श्रवना, जानों कोई न इन सरभर।

सहूर करों एक गुन सुख, तो जाए निकस उमर॥३९॥

जब मैं कानों के गुणों की ओर देखती हूँ, तो ऐसा प्रतीत होता है कि इनके समान कोई है ही नहीं। यदि कानों के एक गुण के सुख का भी चिन्तन किया जाये, तो उसमें

इस मानव तन की सारी उम्र बीत जायेगी, फिर भी चिन्तन पूर्ण नहीं हो पायेगा।

ताथें सुख और अंगों के, सो भी लिए दिल चाहे।

ना तो श्रवन ताबे कई गंज हुए, ताको एक गुन दिल न समाए॥४०॥

इसलिये मेरी आत्मा के दिल में अन्य अंगों के सुखों का रसपान करने की भी इच्छा होती है, अन्यथा कानों के अधीनस्थ तो गुणों के बहुत से भण्डार हैं, जिसके एक गुण के सुख को भी आत्मसात् कर पाना हृदय (दिल) की शक्ति से परे है।

भावार्थ— अक्षरातीत के अंगों के अनन्त गुणों के अथाह सुख सागर का रसपान द्वारा माप कर पाना इस संसार की आयु में सम्भव नहीं है। इसका केवल स्वाद मात्र ब्रह्मवाणी की ज्ञान-दृष्टि से ही लिया जा सकता है।

उपरोक्त दोनों चौपाइयों में यही भाव दर्शाया गया है।

ए सुख बिना हिसाब के, ए जानें मोमिन दिल अर्स।

ए रस जिन रूहों पिया, सोई जानें दिल अरस-परस॥४१॥

धनी के अंगों के सुख अनन्त हैं। इन्हें मात्र वे ब्रह्ममुनि ही जानते हैं, जिनके हृदय में श्री राजश्यामा जी की शोभा विराजमान हो चुकी है, और उनका हृदय धाम बन चुका है। जिन आत्माओं ने इन सुखों का रसास्वादन किया होता है, केवल उनके ही दिल और धाम धनी के दिल को आपस में इसका ज्ञान होता है।

जो देखी सारी कुदरत, सो भी इन श्रवन की बरकत।

जो विचार करें इन तरफको, तो देखों सबमें एही सिफत॥४२॥

ब्रह्मसृष्टियों ने यह जो माया का सारा खेल देखा है, वह

इन कानों की कृपा से ही देखा है। हे साथ जी! यदि आप इस सम्बन्ध में विचार करें, तो आपको चारों ओर कानों की ही महिमा दिखायी पड़ेगी।

भावार्थ— धाम धनी की प्रेरणा से अक्षर ब्रह्म को देखकर ब्रह्मसृष्टियों ने माया का खेल माँगा और धाम धनी ने उसे बहुत प्यार से सुना। अपने स्वरूप की पूर्ण पहचान देने के लिये ही धाम धनी ने यह माया का खेल दिखाया है। इसमें भी उनका अथाह प्रेम छिपा हुआ है। श्रीमुखवाणी के शब्दों में—

सुख हक इस्क के, जिनको नहीं सुमार।

सो देखन की ठौर इत है, जो रूह सों करो विचार॥

सागर १२/३०

इस प्रकार खेल दिखाने में कानों की विशेष भूमिका दर्शायी गयी है।

जो सहूर कीजे हक सिफतें, तो ए तो हक बका श्रवन।
 ए सुख क्यों आवें सुमार में, कछू लिया अर्स दिल मोमिन॥४३॥

हे साथ जी! यदि आप धाम धनी की महिमा के बारे में विचार करें तो श्री राज जी के इन अखण्ड स्वरूप वाले कानों की महिमा अनन्त है। कानों के सुखों को भला सीमा में कैसे बाँधा जा सकता है। जिनका हृदय धाम हो चुका है, एकमात्र वे ब्रह्ममुनि ही इसका कुछ रसास्वादन ले पाते हैं।

जेता सहूर जो कीजिए, सब सिफतें सिफत बढ़त।
 जो कदी आई बोए इस्क, तो मुख ना हरफ कढ़त॥४४॥

आप धाम धनी की महिमा के बारे में जितना चिन्तन करेंगे, प्रियतम की महिमा उतनी ही बढ़ती जायेगी। यदि कदाचित् हृदय में प्रेम की सुगन्धि आ जाती है, तो मुख

से एक शब्द भी निकल पाना सम्भव नहीं है।

कहे हुकमें महामत मोमिनों, क्यों कहे जाए गुन कानन।
जाके ताबे कई गंज सागर, ए सुख सेहे सकें अर्स के तन॥४५॥

श्री राज जी के आदेश से श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! प्रियतम अक्षरातीत के जिन कानों के अधीन गंजानगंज सुखों के अनेक सागर भरे पड़े हैं, उन कानों के गुणों का वर्णन शब्दों में कैसे कहा जा सकता है। इस सुख की सुगन्धि को मात्र वे आत्मायें ही सहन (आत्मसात्) कर पाती हैं, जिनके मूल तन परमधाम में विद्यमान हैं।

प्रकरण ॥१३॥ चौपाई ॥७५३॥

हक मासूक के नेत्र अंग

श्री राज जी के नेत्रों का वर्णन

इस प्रकरण में श्री राज जी के नेत्रों की सुन्दरता एवं उनकी विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है।

देखों नैना नूरजमाल, जो रूहों पर सनकूल।

अरवा होए जो अर्स की, सो जिन जाओ खिन भूल॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे साथ जी ! प्रियतम श्री राज जी के उन नेत्रों की ओर देखिए, जो ब्रह्मसृष्टियों पर हमेशा ही प्रेम की वर्षा करते हैं। जो भी परमधाम की आत्मा हो, उसे एक क्षण के लिये भी इन नेत्रों को नहीं भूलना चाहिए।

दिल अर्स नाम धराए के, नैना बरनों नूरजमाल।

हाए हाए छेद न पड़े छाती मिने, रोम रोम लगे ना रूह भाल॥२॥

मेरे हृदय में मेरे प्राणवल्लभ अक्षरातीत विराजमान हो चुके हैं, इसलिये मेरे हृदय को धाम कहलाने की शोभा प्राप्त हो चुकी है। अब मैं श्री राज जी के आदेश से उनके नेत्रों की अद्वितीय शोभा का वर्णन कर रही हूँ। हाय! हाय! इस शोभा को कहते समय मेरे छाती में छेद क्यों नहीं हो जाता। मेरी आत्मा के द्वारा धारण किये गये इस शरीर के रोम-रोम में भाले क्यों नहीं लग जाते।

भावार्थ- प्रेम में बेसुधि होने से कुछ भी कह पाना सम्भव नहीं होता। अनन्त सौन्दर्य से परिपूर्ण श्री राज जी के नेत्रों को देखकर उसमें डूब जाने के बदले बोलने का आशय यही है कि हृदय में कठोरता है, जिसके कारण अप्रतिम सौन्दर्य को देखकर भी बोला जा रहा है।

यद्यपि यह सब कुछ धाम धनी के आदेश से ही सम्भव हो रहा है, अन्यथा वर्णन कर पाना कदापि शक्य नहीं है।

छाती में छेद पड़ने तथा रोम-रोम में भालों के चुभने की बात कठोर हृदय को फटकार लगाने के लिये कही गयी है। यद्यपि महामति जी का हृदय कठोर नहीं है , बल्कि दूसरे सुन्दरसाथ को शिक्षा देने के लिये ही ऐसा कहा गया है, ताकि अन्य सुन्दरसाथ इसे पढ़कर मात्र कथन का विषय न बनायें, बल्कि मूक प्रेम की राह पर चलना भी सीखें।

जो अरवा कहावे अर्सकी, सुने बेसक हक बयान।

हाए हाए ए झूठी देहको छोड़के, पोहोंचत ना तित प्रान॥३॥

जो परमधाम की आत्मायें हैं, वे निश्चित रूप से संशय रहित होकर धाम धनी की शोभा का वर्णन सुना करती

हैं। किन्तु हाय! हाय! यह कितने आश्चर्य की बात है कि इस अद्वितीय शोभा का वर्णन सुनने के पश्चात् भी मेरे प्राण इस शरीर को छोड़ वहाँ (प्रियतम के पास) नहीं पहुँच पा रहे हैं।

भावार्थ— इस चौपाई में जीव को विरह की राह पर चलने के लिये प्रेरित किया गया है। यद्यपि परमधाम में मन, प्राण, एवं जीव का प्रवेश नहीं है, किन्तु यहाँ प्राणों के परमधाम में पहुँचने की बात भावात्मक अभिव्यक्ति है। इसमें अन्दर की छटपटाहट को दर्शाया गया है कि धनी के अद्वितीय सौन्दर्य को देखने के पश्चात् इस संसार में फँसे रहने का कोई भी औचित्य (सार्थकता, महत्व) नहीं है।

सिफत पाई हक नैन की, हक नैनों में गुन अपार।

सो गुन अखंड अर्स के, ए रंग हमेसा करार॥४॥

मैंने अपने प्रियतम के नेत्रों की अद्वितीय महिमा को देखा है। उनके नेत्रों में अनन्त गुण भरे हुए हैं। ये गुण भी अखण्ड परमधाम के हैं और इनसे मिलने वाला आनन्द हृदय को परम शान्ति देने वाला होता है।

गुन नैनों के क्यों कहूं, रस भरे रंगीले।

मीठे लगें मरोरते, अति सुन्दर अलबेले॥५॥

मैं श्री राज जी के नेत्रों की महिमा का वर्णन कैसे करूँ। प्रेम के रस से लबालब भरे हुए ये नेत्र बहुत ही आनन्दमयी हैं। जब धाम धनी अपने नेत्रों को घुमाते हैं, तो ये बहुत ही सुन्दर, अद्वितीय, और माधुर्यता के सागर से प्रतीत होते हैं।

सोभावंत कई सुख लिए, तेजवंत तारे।

बंके नैन मरोरत मासूक, सब अंग भेदत अनियारे॥६॥

इन नेत्रों में अनेक प्रकार के आनन्द भरे हुए हैं। तेजोमयी तारों से युक्त ये नेत्र बहुत ही अलौकिक शोभा को धारण कर रहे हैं। जब धाम धनी अपने टेढ़े-तिरछे नेत्रों को ब्रह्मसृष्टियों की ओर लक्ष्य करके घुमाते हैं, तो उनके प्रेम रूपी बाणों से सभी अंग बिन्ध जाते हैं (विरह में तड़पने लगते हैं)।

मेहेर भरे मासूक के, सोहें नैन सुन्दर।

भृकुटी स्याम सोभा लिए, चुभ रहेत रूह अंदर॥७॥

मेहर से भरे हुए धनी के ये सुन्दर नेत्र बहुत ही अलौकिक शोभा को धारण कर रहे हैं। उनकी काली-काली भौंहें बहुत ही सुन्दर शोभा से युक्त हैं। आत्मा के

हृदय में नेत्रों की यह अद्वितीय सुन्दरता बसी ही रहती है
(चुभी रहती है)।

जोत धरत कई जुगतें, निहायत मान भरे।

लज्या लिए पल पांपण, आनंद सुख अगरे॥८॥

प्रियतम के नेत्रों में अनेक प्रकार की नूरमयी ज्योति समायी हुई है। इन नयनों में प्रेम का बहुत मान भरा हुआ है। पलकों की बरौनियों से प्रेम भरी लज्जा झलकती रहती है। निश्चित रूप से इन नेत्रों में अतिशय आनन्द भरा हुआ है।

भावार्थ— नेत्रों के तारों, पुतलियों, तथा अन्य भागों में नूरी ज्योति का आभास अलग-अलग रूपों में हो रहा है। प्रेम के उल्लास की चमक कुछ दूसरे ही प्रकार की है। इसे ही अलग-अलग ज्योतियों को धारण करना कहा गया

है। प्रेमास्पद (माशूक) के हृदय में प्रेमी (आशिक) के लिये यद्यपि अथाह प्रेम होता है, किन्तु वह स्वयं पहले प्रेम नहीं करता। उसकी यही इच्छा होती है कि पहले मेरा आशिक मुझे चाहे। जब प्रेमी (आशिक) प्रेम में अपने कदम बढ़ाता है, तभी माशूक अपने हृदय का प्रेम उसे लुटाने या सौंपने के लिये तैयार होता है, इसे ही प्रेम का मान या स्वाभिमान कहते हैं।

यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि अभिमान जहाँ विनाश की गर्त में धकेलता है, वहीं स्वाभिमान हमें सफलता के शिखर पर पहुँचाता है। स्वाभिमान से रहित व्यक्ति किसी भी प्रकार की शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, और आर्थिक उन्नति नहीं कर सकता।

नैनों की गति क्यों कहूं, गुनवंते गंभीर।

चंचल चपल ऐसे लगें, सालत सकल सरीर॥९॥

धाम धनी जब अपने नेत्रों से प्रेम के संकेत करते हैं, तो उस समय नेत्रों की जो अलौकिक शोभा होती है, उसका मैं कैसे वर्णन करूँ। प्रियतम अक्षरातीत के दोनों नैन गहन प्रेम के गुणों से भरपूर हैं। प्रेम के बाण चलाते समय इनकी चञ्चलता और चपलता देखने योग्य होती है। इन नेत्रों से चले हुए प्रेम के बाण जिसको भी लग जाते हैं, उसके सम्पूर्ण शरीर में प्रेम की अनोखी अग्नि जलने लगती है।

भावार्थ— धनी के नेत्रों के बाण परमधाम में तो चलते ही हैं, इस संसार में भी चितवनि की गहन अवस्था में उसका अनुभव किया जा सकता है।

नूर भरे नैना निरमल, प्रेम भरे प्यारे।

रस उपजावत रंगसों, मानों अति कामन-गारे॥१०॥

श्री राज जी के ये नूरी नैन अत्यधिक स्वच्छ हैं। प्रेम से भरे हुए ये नेत्र बहुत ही प्यारे लगते हैं। आत्मा के हृदय में ये बहुत आनन्दपूर्वक प्रेम-रस का संचार करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे ये अनन्त प्रेम के भण्डार हैं।

भावार्थ- जब श्री राज जी के नेत्र आत्मा के नेत्रों से मिलते हैं, तो आत्मा के हृदय में प्रेम और आनन्द दोनों की वृद्धि होती है। नेत्रों के दीदार से जितना प्रेम बढ़ता है, उतना अधिक आनन्द प्रकट होता है, और जितना आनन्द बढ़ता है, उतना ही प्रेम प्रकट होता है। इस प्रकार दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। इसे ही इस चौपाई में आनन्दपूर्वक प्रेम को सञ्चारित करना कहते हैं।

जब खँचत भर कसीस, तब मुतलक डारत मार।

इन विध भेदत सब अंगों, मूल तन मिटत विकार॥११॥

जब प्राणवल्लभ अक्षरातीत अनन्त प्रेम की दृष्टि से अपनी अँगनाओं को देखते हैं तो निश्चित रूप से उन्हें मार डालते हैं, अर्थात् ब्रह्माँगनायें धनी के प्रेम में अपने को पूर्णतया भूल जाती हैं। श्री राज जी के प्रेम के बाण सखियों के सभी अंगों को भेद देते हैं और मूल तन का विकार भी नष्ट हो जाता है।

भावार्थ- सभी अंगों के भेदने का तात्पर्य है— अंग-अंग में प्रेम का ओत-प्रोत हो जाना। परात्म की सुरता जितने समय के लिये दुःखमयी संसार की लीला से परे धनी को देख रही होती है, उतने समय के लिये वह नेत्रों के अनन्त सौन्दर्य और प्रेम में डूब जाती है, अर्थात् वह उतने समय के लिये मायावी विकारों को देखने से

पूर्णतया रहित हो जाती है। इसे ही मूल तन का विकार मिटना कहते हैं। यद्यपि यह स्थिति हमेशा नहीं रहती , क्योंकि आत्मा को किसी न किसी रूप में माया का दुःखदायी खेल देखना ही पड़ता है।

निपट बंकी छबि नैन की, नूर के तारे कारे।

सोभें सेत लालक लिए, नूर जोत उजियारे॥१२॥

श्री राज जी के नेत्रों की छवि बहुत ही तिरछी (बाँकी) है। नूर भरे नेत्रों के तारे काले-काले हैं। आँखों की सफेदी में हल्की सी लालिमा छायी हुई है। आँखों से नूरमयी ज्योति का उजाला फैल रहा है।

भावार्थ- नेत्रों के कोनों का तिरछा होना उनके सौन्दर्य का द्योतक है। इसी प्रकार सफेदी में लालिमा जहाँ आँखों में प्रेम के उफान को दर्शाती है , वहीं आँखों में

भरी हुई नूरी ज्योति आँखों में छाये आनन्द (प्रेम के विलास) को प्रकट करती है। इसके विपरीत बुझी हुई आँखें प्रेम और आनन्द से रहित होने का संकेत देती हैं।

बड़े लम्बे टेढ़क लिए, अति अनियां सोभे ऊपर।

शीतल करुणा अमी झरे, मद रंग भरे सुन्दर॥१३॥

धनी के नेत्र बड़े-बड़े हैं, लम्बे हैं, और टेढ़े आकार में हैं। नयनों के दोनों ओर की नोंक बहुत ही सुन्दर शोभा को धारण कर रही है। नेत्रों में शीतलता दृष्टिगोचर हो रही है। उनसे करुणा और प्रेम का झरना प्रवाहित हो रहा है। आनन्द के नशे (मस्ती) से भरपूर ये दोनों नेत्र अति सुन्दर दिख रहे हैं।

सोहत छैल छबीले, कहा कहूं सलूक।

एह नैन निरखे पीछे, हाए हाए जीव न होत भूक भूक॥१४॥

सौन्दर्य से सजे-धजे इन नेत्रों की अलौकिक शोभा हो रही है। इनकी सुन्दरता का मैं कैसे वर्णन करूँ। इन नयनों के अद्वितीय सौन्दर्य को देखने के पश्चात् भी यह जीव धनी के प्रति पूर्णरूप से समर्पित क्यों नहीं हो जाता (टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो जाता)? हाय! हाय! यह बहुत ही आश्चर्य की बात है।

दयासिंधु सुख सागर, इस्क गंज अपार।

सराब पिलावत नैन सों, साकी ए सिरदार॥१५॥

दुःखों की अग्नि में जलने वाले प्राणियों के लिये प्रियतम अक्षरातीत दया के सागर हैं। परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों के लिये वे सुख के अथाह सागर हैं। उनके हृदय में प्रेम

(इश्क) का अनन्त भण्डार भरा हुआ है। वे ब्रह्मसृष्टियों के प्रियतम हैं और उन्हें प्रेम का रस पिलाने वाले हैं। अपने अति सुन्दर नेत्रों से वे अपनी अँगनाओं को प्रेम रूपी शराब पिलाया करते हैं।

भावार्थ- इस मायावी जगत में जीव सृष्टि, ईश्वरीय सृष्टि, तथा ब्रह्मसृष्टि तीनों को ही कष्ट देखना पड़ रहा है। उससे निवृत्त होने के लिये धाम धनी की दया की आवश्यकता होती है। यद्यपि परमधाम में दया की लीला नहीं है, किन्तु इस नश्वर जगत में ब्रह्मसृष्टियों के जीव और पञ्चभौतिक तन को धनी की दया की छाँव तले अवश्य रहना पड़ता है।

कलश हिन्दुस्तानी में "धनी की दया" का एक प्रकरण ही है। उस प्रकरण की निम्नलिखित चौपाइयों से यह स्पष्ट होता है कि इस संसार में श्री राज जी की दया का

हमारे से भी सम्बन्ध है—

अब गली मैं दया मिने, सागर सरूपी खीर।

दया सागर भर पूरन, एक बूंद नहीं मिने नीर॥

कलस हिंदुस्तानी २१/२

छब फब इन नैनों की, जो रूह देखे खोल नैन।

आठों पोहोर न निकसे, पावे आसिक अंग सुख चैन॥१६॥

श्री राज जी के नेत्रों में अद्वितीय शोभा झलकार कर रही है। यदि आत्मा अपने नेत्रों से धनी के इन नयनों की शोभा को देख ले, तो आठों प्रहर (दिन-रात) उसी में डूबी रहेगी। उससे निकल पाना उसके लिये सम्भव नहीं हो सकेगा। इन नेत्रों के दीदार से आत्मा के दिल में आनन्द की बहार आ जाती है।

प्रेम पुंज गंज गंभीर, नेत्र सदा सुखदाए।

जो रूह मिलावे नैन नैनसों, तो चोट फूट निकसे अंग ताए॥१७॥

धनी के ये नेत्र प्रेम के पुञ्ज हैं। इनमें बहुत गहरा प्रेम भरा हुआ है। ये हमेशा आत्मा को अखण्ड आनन्द देने वाले हैं। जब आत्मा धनी के नेत्रों से अपने नेत्र मिलाती है, तो उसके अंग-अंग से विरह की चोट फूट-फूटकर निकलने लगती है।

भावार्थ- श्री राज जी के नेत्रों में प्रेम का अनन्त सागर उमड़ा करता है। उन नेत्रों को देख लेने पर हृदय में लगातार देखते रहने की प्रबल इच्छा रहती है। उसे ऐसा प्रतीत होता है, जैसे उसके अंग-अंग से विरह की अग्नि फूटकर बाहर निकल रही है।

शीतल दृष्ट मासूक की, जासों होइए सनकूल।

होए आसिक इन सरूप की, पाव पल न सके भूल॥१८॥

श्री राज जी की प्रेम भरी शीतल दृष्टि आत्मा को अखण्ड आनन्द में डुबो देती है। धनी से शाश्वत प्रेम करने वाली आत्माएँ उनके नेत्रों की शोभा को चौथाई पल के लिये भी नहीं भूल सकती हैं।

नैन देखें नैन रूह के, तिनसों लेवे रंग रस।

तब आवें दिल में मासूक, सो दिल मोमिन अरस-परस॥१९॥

जब आत्मा अपने नयनों से प्रियतम श्री राज जी के नयनों को देखती है, तो वह अनन्त प्रेम और आनन्द का रसपान करने लगती है। इसके पश्चात् आत्मा के धाम हृदय में श्री राज जी की शोभा अखण्ड रूप से विराजमान हो जाती है, अर्थात् स्वयं श्री राज जी ही उस

धाम हृदय में विराजमान हो जाते हैं। उस स्थिति में आत्मा के दिल और श्री राज जी के दिल दोनों एकाकार हो जाते हैं।

भावार्थ- इस चौपाई से यह पूर्णतया स्पष्ट है कि आत्म-जाग्रति के लिये चितवनि पूर्णरूपेण अनिवार्य है। प्रियतम के दर्शन का अधिकार प्रत्येक सुन्दरसाथ को है। इसमें वर्ग, प्रान्त, और स्थान विशेष के आधार पर किसी भी प्रकार की विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती।

रूह देखे हक नैन को, नेत्र में गुन अनेक।

सो गुन गिनती में न आवहीं, और केहेने को नैन एक॥२०॥

जब आत्मा धनी के नेत्रों की ओर देखती है, तो उनमें अनेक गुण दिखायी देते हैं। ये गुण इतने अधिक (अनन्त) हैं कि इनको गिना ही नहीं जा सकता, जबकि

कहने के लिये तो नेत्र मात्र एक (युगल) ही होता है।

कई गुन देखे छब फब में, कई गुन मांहें सलूक।

गुन गिनते इन नैनों के, हाए हाए अजूं न होए दिल भूक॥२१॥

धाम धनी के नेत्रों की शोभा-सुन्दरता इस प्रकार दृष्टिगोचर हो रही है कि उसमें अनेक प्रकार के गुणों की अनुभूति होती है। हाय! हाय! धनी के नेत्रों के गुणों को गिनते समय मेरा हृदय अभी भी टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो जा रहा है।

मेरी रूह नैनकी पुतली, तिन नैन पुतली के नैन।

मासूक राखूं तिन बीचमें, तो पाऊं अर्स सुख चैन॥२२॥

मेरी आत्मा उस परात्म रूपी नैन की पुतली है। उस पुतली (आत्मा) का नैन उसका हृदय है, जिसमें यदि मैं

अपने प्राण प्रियतम अक्षरातीत को बसा लेती हूँ तो अपने परमधाम का आनन्द ले सकती हूँ।

भावार्थ- आत्मा के हृदय में धनी की शोभा को बसाने का कथन सागर ११/४६ में किया गया है-

ताथें हिरदे आतम के लीजिए, बीच साथ सरूप जुगल।

सूरत न दीजे टूटने, फेर फेर जाइए बल बल॥

यह हृदय जीव के स्थूल और सूक्ष्म हृदय से पूर्णतया भिन्न है। वस्तुतः यह परात्म के दिल का प्रतिबिम्ब है।

दिल मोमिन अर्स तन बीच में, उन दिल बीच ए दिल।

केहेने को ए दिल है, है अर्से दिल असल॥

श्रृंगार २६/१४

अर्स तन दिल में ए दिल, दिल अन्तर पट कछू नांहे।

श्रृंगार ११/७९

इस चौपाई में स्वयं अपने ऊपर कहकर श्री महामति जी ने सुन्दरसाथ को शिक्षा दी है कि यदि परमधाम का आनन्द पाने की इच्छा है, तो युगल स्वरूप को अपने धाम हृदय में बसाना ही होगा।

प्रेम प्रीत रस इस्क, सब नैनों में देखाई देत।

ए रस जानें रूहें अर्सकी, जो भर भर प्याले लेत॥२३॥

अक्षरातीत के हृदय में जो प्रेम(इश्क)–प्रीति का अनन्त रस प्रवाहित होता है, वह इनके नयनों में दिखायी देता है। इस प्रेमरस की यथार्थता को मात्र परमधाम की वे आत्मायें ही जानती हैं, जो अपने दिल रूपी प्यालों में भर-भरकर उसका पान करती हैं।

देख देख जो देखिए, तो अधिक अधिक अधिक।

नैन देखे सुख पाइए, जानों सब अंगों इस्क॥२४॥

प्रियतम के अति मनोहर इन नयनों को जितना अधिक देखा जाता है, उतनी अधिक इनकी शोभा बढ़ती हुई प्रतीत होती है। इन नयनों को देखने से आत्मा के हृदय में अथाह आनन्द प्रकट होता है और ऐसा अनुभव होता है कि धाम धनी के अंग-अंग में मात्र इश्क ही इश्क (प्रेम ही प्रेम) भरा हुआ है।

ए नैन देख मासूक के, आसिक के सब अंग।

सुख सीतल यों चुभत, सब अंग बढ़त रस रंग॥२५॥

श्री राज जी के इन नयनों को देखकर आत्माओं के अंग-अंग में आनन्द की अति शीतल धारा बस जाती है। उनके अंग-अंग में प्रेम और आनन्द प्रवाहित होने लगता

है।

भावार्थ- शीतलता अखण्ड शान्ति को दर्शाती है, तो उद्विग्नता (व्याकुलता) अशान्त मन की भावनाओं को व्यक्त करती है। प्रियतम श्री राज जी के अति मनोरम नेत्रों को देखने से मायावी कष्टों से व्याकुल आत्माओं के हृदय में अपार शान्ति की शीतल धारा प्रवाहित होती है।

कई गुन बड़े नैन के, और कई गुन नैन टेढ़ाए।

कई गुन तेज तारन में, कई गुन हैं चंचलाए॥२६॥

नेत्रों के बड़े होने में अनेक गुण छिपे हैं। इसी प्रकार उनका टेढ़ा होना अपने अन्दर अनेक गुणों को समेटे हुए है। आँखों के तारों का तेज से भरपूर होना अनेक गुणों को दर्शाता है। नेत्रों की चञ्चलता भी अनेक गुणों को प्रकट करती है।

भावार्थ- बड़े-बड़े नेत्र सौन्दर्य का प्रतीक हैं। नेत्रों का टेढ़ा होना प्रेम और सौन्दर्य की गहनता को दर्शाता है। यदि नेत्र गोल, चौकोर, या आयताकार होते, तो उनसे प्रेम के बाण (संकेत) चलाने में कठिनाई होती है और उनके सौन्दर्य पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है।

आँखों के तारों का तेज से भरा होना प्रेम की अग्नि को दर्शाता है। बुझी हुई आँखें यही प्रकट करती हैं कि हमारे अन्दर प्रेम करने का उल्लास नहीं है। चञ्चल नेत्रों में प्रेम लीला की सक्रियता देखी जा सकती है, जबकि सुस्त आँखें तमोगुण से उत्पन्न प्रमाद, निद्रा, व आलस्य को प्रकट करती हैं।

कई गुन हैं तिरछाई में, कई गुन पांपण पल।

कई गुन सीतल कई मेहेरमें, कई तीखे गुन नेहेचल॥२७॥

नेत्रों का तिरछा होना कई गुणों को प्रकट करता है। पलकों की बरौनियों में भी अनेक गुण छिपे हुए हैं। इसी प्रकार आँखों की शीतलता में जहाँ कई गुण निहित हैं, वहीं धनी की मेहर भरी तीक्ष्ण आँखों में परमधाम के कई महान गुण विद्यमान हैं।

भावार्थ— तिरछे नेत्रों में प्रेम और सौन्दर्य का मिश्रण होता है। पलकों की बरौनियाँ माधुर्यता का संकेत करती हैं। इनके द्वारा प्रेम के बाण चलाने में तेजी व शक्ति आती है। इनसे प्रेम व सौन्दर्य में चार चाँद लग जाते हैं अर्थात् सुन्दरता में वृद्धि होती है। शीतल दृष्टि यह संकेत देती है कि हृदय अब प्रेम और आनन्द की लीला से तृप्त हो चुका है। मेहर भरी आँखों में परमधाम के सभी सुख विद्यमान होते हैं।

कई गुन सोभा सुन्दर, कई गुन प्रेम इस्क।

कई गुन नैन रंग में, कई गुन नैन रस हक॥२८॥

श्री राज जी के नयनों की शोभा और सुन्दरता में अनेक (अनन्त) गुण छिपे हुए हैं। नेत्रों से छलकने वाले प्रेम (इश्क) में भी अनन्त गुण विद्यमान हैं। कई गुण आँखों के रंग (वर्ण) में निहित हैं, तो नयनों के रस में भी बहुत से गुण स्थित हैं।

भावार्थ- हृदय की सभी भावनाओं का प्रकटीकरण नेत्रों से ही होता है। श्री राज जी के नख से शिख तक के अंगों में जो भी शोभा और सौन्दर्य है, उसकी झलक नेत्रों में देखी जा सकती है। इसी प्रकार उनके हृदय में लहराने वाले प्रेम का सागर भी उनके नेत्रों से प्रकट होता है। काली-काली भौंहें तथा काली-काली पुतलियाँ प्रेम के घनीभूत स्वरूप को दर्शाती हैं। ये भौंहों प्रेम के बाण

चलाने के लिये धनुष का काम करती हैं।

श्वेत रंग शान्ति को प्रकट करता है, तो आँखों की लालिमा प्रेम के विलास का प्रमाण देती हैं। नेत्रों का रसीला होना अनन्त घनीभूत (जमे हुए) प्रेम के द्रवीभूत (बहने) होने का संकेत देता है।

कई गुन नैनों के नूरमें, कई गुन नैनों के हेत।

कई गुन तीखे कई सील में, गुन मीठे कई सुख देत॥२९॥

श्री राज जी के नयनों के नूर में अनन्त गुण विद्यमान हैं। इसी प्रकार आँखों से उड़ले जाने वाले लाड-प्यार में भी अनन्त गुण समाहित हैं। नेत्रों के तीखेपन तथा शीलता में अनन्त गुण निहित हैं। इस प्रकार धाम धनी अपने नेत्रों में विद्यमान अनन्त मीठे गुणों से अँगनाओं को सुख देते हैं।

भावार्थ— श्री राज जी के हृदय का नूर आँखों से प्रकट

होता है, जिसका विस्तार सम्पूर्ण परमधाम के रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है। नेत्रों के दोनों ओर के कोनों तथा भौंहों का नुकीला (तीखा) होना गहन प्रेम के आकांक्षी होने का सन्देश देता है। नेत्रों से शील की झलक मिलना प्रेम के अन्दर छिपी हुई माधुर्यता एवं विनम्रता का द्योतक है।

कई गुन केते कहूँ, गुन को न आवे पार।

ए भूल देखो अपनी, ए सोभा गुन गिनूँ माहें सुमार॥३०॥

श्री राज जी के नेत्रों में विद्यमान गुणों का मैं कितना वर्णन करूँ, इनकी तो कोई सीमा ही नहीं है। ये अनन्त हैं। धाम धनी के नेत्रों की मनोहारिता में विद्यमान गुणों को यदि मैं गिनती हूँ, तो यह मेरी बहुत बड़ी भूल मानी जायेगी।

कई गुन नेत्र सुभान के, सो क्यों कहूं चतुराई इन।

इत जुबां बल न पोहोंचहीं, हिस्सा कोटमा एक गुन॥३१॥

श्री राज जी के नयनों में अनन्त गुण छिपे हुए हैं। इन नेत्रों की प्रेम भरी चतुराई का वर्णन शब्दों में हो पाना सम्भव नहीं है। प्रियतम अक्षरातीत के अनन्त गुणों में से किसी एक गुण के करोड़वें भाग का भी वर्णन करने की शक्ति मेरी जिह्वा में नहीं है।

प्यारे मेरे प्राण के, नैना सुख सागर सलोने।

रेहे ना सकों बिना रंगीले, जो कसूंबड़ी उजलक में॥३२॥

धाम धनी के ये अति मनोहर (सलोने) नयन आनन्द के अनन्त सागर हैं और मेरे प्राणों को बहुत प्यारे हैं। उज्ज्वलता में केशरिया मिश्रित अद्भुत रंग वाली इन आँखों की शोभा को देखे बिना तो मैं रह ही नहीं सकती।

भावार्थ- प्रेम भरी (मदहोश) आँखों में केशरिया रंग की झलक दिखने लगती है। इस अलौकिक शोभा को अपने धाम हृदय में बसाने की दृढ़ प्रेरणा श्री महामति जी ने हमें इन चौपाई में दी है।

जब देखों शीतल नजरों, सब ठरत आसिक के अंग।

सब सुख उपजे अर्स में, हक मासूक के संग॥३३॥

जब मेरी दृष्टि परमधाम में विराजमान श्री राज जी के अति मनोहर नयनों की शीतल दृष्टि से जुड़ती (देखती) है, तो मेरे सभी अंगों में प्रेम की शीतलता व्याप्त हो जाती है और स्वयं को धाम धनी के साथ पाकर मुझे सभी प्रकार के आनन्द की प्राप्ति हो जाती है।

भावार्थ- इस चौपाई में उस स्थिति का वर्णन है, जब आत्मा की दृष्टि परात्म का श्रृंगार सजकर परमधाम में

पहुँचती है और अपने प्राणवल्लभ के नेत्रों में देखती है।
आगे की चौपाई ३४, ३५ और ३६ में यही स्थिति दर्शायी गयी है।

मैं नैनों देखूं नैन हक के, हुई चारों पुतली तेज पुन्ज।

जब नैन मिलें नैन नैन में, नूरै नूर हुआ एक गन्ज॥३४॥

जब मैं अपनी आत्मा के नयनों से श्री राज जी के नयनों को देखती हूँ, तो हम दोनों की चारों पुतलियों का तेज-पुञ्ज आपस में मिल जाता है। जब मेरे नयनों की दृष्टि परात्म के नयनों और श्री राज जी के नयनों की दृष्टि से मिलती है, तो चारों ओर नूर ही नूर का भण्डार दृष्टिगोचर होता है।

भावार्थ- जब आत्मा की दृष्टि परात्म का श्रृंगार सजकर युगल स्वरूप के सामने उपस्थित होती है, तो कभी वह

श्री राज जी के नेत्रों की ओर देखती है तो कभी अपनी परात्म के नेत्रों की ओर देखती है। इसे ही इस चौपाई के तीसरे चरण में "नैन मिलें नैन नैन में" कहा गया है।

हक देखें पुतली अपनी, मैं देखूं अपनी पुतलियां।

मैं हक देखूं हक देखें मुझे, यों दोऊ अरस-परस भैयां॥३५॥

धाम धनी अपनी पुतलियों से मुझे देखते हैं तथा मैं अपनी पुतलियों से उन्हें देखती हूँ। मैं श्री राज जी को देखती हूँ तथा श्री राज जी मुझे देखते हैं। इस प्रकार हम दोनों एकाकार से हो जाते हैं।

हक देखें मेरे नैन में, पुतली जो अपनी।

मैं अपनी देखूं हक नैन में, यों दोऊ जुगलें जुगल बनी॥३६॥

जब श्री राज जी मेरे नेत्रों में देखते हैं, तो मेरी पुतलियों

में उन्हें अपना स्वरूप दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार में श्री राज जी के नेत्रों की पुतलियों में अपना स्वरूप देखती हूँ। इस प्रकार मेरी पुतलियों में प्रियतम अक्षरातीत के दो स्वरूप और धाम धनी की पुतलियों में मेरे दो स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं।

भावार्थ- पुतलियाँ दर्पण की तरह कार्य करती हैं। जिस प्रकार दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखा जाता है, उसी प्रकार नेत्रों की पुतलियों में अपने प्रतिबिम्ब को देखा जाता है। आशिक और माशूक (प्रिया-प्रियतम) का एक-दूसरे की पुतलियों में स्वयं को देखना यह सिद्ध करता है कि दोनों ही एक-दूसरे के दिल (हृदय) में समाये हुए हैं। हृदय में विराजमान स्वरूप को पुतली प्रतिबिम्ब के रूप में प्रकट कर देती है।

अति गौर पांपण नैन की, पल वालत देखत सरम।

गुन गरभित मेहेरें पाइए, रूह हुकमें देखे ए मरम॥३७॥

श्री राज जी के नेत्रों की पलकें बहुत गोरे रंग की हैं। पलकों को झपकाते समय उनमें प्रेम भरी लज्जा दृष्टिगोचर होती है। नेत्रों में छिपे हुए गुणों को धनी की मेहर से ही पहचाना जा सकता है और इस रहस्य को भी आत्मा श्री राज जी के हुक्म से ही जान सकती है।

स्याम बंके भौंह नैनों पर, रंग गौर जुड़े दोऊ आए।

निपट तीखी अनियां नेत्र की, मारे आसिकों बान फिराए॥३८॥

आँखों के ऊपर काले रंग की दो तिरछी भौंहें हैं, जो गोरे रंग के ललाट के निचले हिस्से में आकर मिल जाती हैं। नेत्रों के कोने बहुत ही नुकीले हैं। धाम धनी इन्हीं नेत्रों से प्रेम के बाण निकालकर आत्माओं को घायल कर देते

हैं, अर्थात् प्रेम की अग्नि में जला देते हैं।

जब खँचत नैना जोड़ के, तब दोऊ बान छाती छेदत।

अंग आसिक के फूट के, वार पार निकसत॥३९॥

जब धाम धनी अपने दोनों नेत्रों से प्रेम के दो बाण चलाते हैं, तो दोनों बाण आत्माओं की छाती को छेद देते हैं। ये बाण आत्माओं के हृदय को छेदकर शरीर के भी बाहर निकल जाते हैं।

भावार्थ- दोनों भौंहें धनुष के ऊपरी भाग का कार्य करती हैं। नेत्रों की पलकों का निचला हिस्सा धनुष की प्रत्यन्चा (डोरी) की भूमिका निभाता है। इसी प्रकार हृदय रूपी तरकश में प्रेम के अनन्त बाण रखे होते हैं, जो आँखों के माध्यम से प्रकट होते हैं और पलकों की डोर पर चढ़ाये जाते हैं।

जिस प्रकार छाती में तीर लग जाने पर मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार श्री राज जी के प्रेम रूपी बाण लगने से आत्मायें शरीर और संसार से मर जाती हैं, अर्थात् इनके मोह जाल से अलग हो जाती हैं। जो संसार की ओर से मर जाता है, वही परमधाम की तरफ अपनी दृष्टि कर पाता है। श्रृंगार २४ / ९५ का यह कथन इसी तथ्य की ओर संकेत करता है—

जो पेहेले आप मुरदे हुए, तो दुनियां करी मुरदार।

हक तरफ हुए जीवते, उड़ पोहोंचे नूर के पार॥

छाती छेदकर प्रेम के बाण का शरीर से बाहर निकलने का तात्पर्य है— प्रेम में इतना डूब जाना कि मारिफत का दरवाजा खोल लेने में समर्थ हो जाना।

दमानक ज्यों कहूं कहूं, यों पीछली देत गिराए।

ए चोट आसिक जानहीं, जो होए अर्स अरवाए॥४०॥

जिस प्रकार बन्दूक से निकली हुई गोली शिकार को पिछले पावों पर गिरा देती है, उसी प्रकार धाम धनी के नेत्रों से निकले हुए प्रेम के बाण आत्माओं को संसार से मृतक की तरह पूर्णतया अलग कर देते हैं। जो परमधाम की आत्मायें होती हैं, एकमात्र वे ही धनी के प्रेम-बाणों की चोट की शक्ति को जानती हैं।

भावार्थ- धाम धनी के प्रेम-बाणों से घायल आत्मायें संसार की ओर से पूरी तरह मुँह फेर लेती हैं, जबकि सांसारिक जीव ब्रह्मवाणी को पढ़कर या चर्चा सुनकर भी संसार में ही उलझे रहते हैं। जिस प्रकार पत्थर पर लगा हुआ तीर गिर जाता है किन्तु उसमें धँस नहीं पाता , उसी प्रकार जीवों के ऊपर ब्रह्मवाणी के कथनों का कोई

प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि उनका हृदय भी पत्थर की तरह कठोर होता है। उनके मन में युगल स्वरूप को अपने हृदय में बसाने की तड़प ही पैदा नहीं होती।

भौंह बंके नैन कमान ज्यों, भाल बंकी सामी तीन बल।

बान टेढ़े मारत खँच मरोर के, छाती छेद न गया निकल॥४१॥

श्री राज जी के नेत्रों की तिरछी भौंहें धनुष के समान हैं। धनुष की तरह ही माथे के निचले भाग में तिरछी भौंहों में तीन स्थानों पर टेढ़ापन है। जब धाम धनी इन नेत्रों से प्रेम के टेढ़े बाण भौंहों रूपी धनुष पर चढ़ाकर मारते हैं, तो वे बाण टेढ़े होने के कारण छाती को छेद तो देते हैं किन्तु उसके पार नहीं निकल पाते।

भावार्थ— नासिका के ऊपर तथा दोनों भौंहों का मिलन स्थान धनुष का मध्य भाग है। भौंहों के दोनों किनारे और

मध्य भाग ये तीन मुख्य स्थान हैं, जहाँ धनुष की तरह टेढ़ापन है।

तीर कह्या तीन अंकुड़ा, छाती छेद न गया चल।

रह्या सीने बीच आसिक के, हुआ काढ़ना रूहों मुस्किल॥४२॥

धाम धनी के नेत्रों से निकला हुआ बाण तीन कोनों वाला है, जो हृदय को छेद तो देता है, किन्तु उसी में फँस जाता है और निकलता नहीं है। छाती में धँसे हुए उस तीर को निकाल पाना आत्माओं के लिये बहुत ही कठिन है।

भावार्थ— धाम धनी के नेत्रों से छूटे हुए प्रेम रूपी बाण की नोंक के तीन भाग हैं। आगे वाला भाग मूल सम्बन्ध (निस्वत) का है। दायाँ भाग शोभा और सौन्दर्य का है तथा बायाँ भाग आनन्द का है। प्रेम के बाण केवल

ब्रह्मसृष्टियों की ओर ही फेंके जाते हैं।

सौन्दर्य के बिना आकर्षण नहीं होता और दर्शन (दीदार) या विरह की अवस्था में ही आनन्द होता है। इस प्रकार निस्वत, सौन्दर्य, और आनन्द से प्रेम रूपी तीर की नोंक बनती है। यह प्रेम रूपी तीर जिस आत्मा की छाती में धँस जायेगा, वह इसलिये नहीं निकल पायेगा, क्योंकि प्रेम ही ब्रह्मसृष्टियों का जीवन है।

केहेर कह्या तीर त्रगुड़ा, रही सीने बीच भाल।

रोई रात दिन आसिक, रोवते ही बदल्या हाल॥४३॥

तीन नोकों वाला प्रेम का यह तीर (बाण) आत्माओं के हृदय में भाले की तरह चुभकर प्रेम का दर्द (मीठा) दे रहा है। इस तीर के चुभ जाने के पश्चात् आत्मा विरह में दिन-रात रोती रहती है। रोते-रोते उसकी रहनी बदल

जाती है, अर्थात् वह परमधाम की रहनी को आत्मसात कर लेती है।

भावार्थ- प्रेम के तीर लग जाने पर आत्मा एक पल भी प्रियतम से अलग नहीं होना चाहती। ऐसी स्थिति में वह विरह की अग्नि में जलने लगती है। इसे ही भाले के समान चुभना कहा गया है। कलश हिन्दुस्तानी ५/४ में इसे इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

रोम रोम सूली सुगम, खंड खंड खांडा धार।

पूछ पिया दुख तिनको, जो तेरी विरहिन नार॥

धाम धनी की शोभा को अपने दिल में बसाने की तरफ जब कदम बढ़ाया जाता है, तो धनी की मेहर से प्रेम का तीर हृदय में चुभ जाता है अर्थात् धनी की एक हल्की सी झलक का आभास होता है। यह स्थिति ही विरह को प्रकट करती है, क्योंकि ऐसी अवस्था में न तो संसार में

लिप्त हुआ जा सकता है और न परमधाम को छोड़ा जा सकता है। धीरे-धीरे विरहाग्नि बढ़ती जाती है और प्रेम का दरिया (सागर) हृदय में बहने लगता है। अब उसे अनुभव होने लगता है कि वह संसार में नहीं है, बल्कि वह और श्री राज जी एकाकार हो चुके हैं। यही संसार की रहनी से हटकर परमधाम की रहनी में लगना है।

अर्स बका तीर त्रगुड़ा, रह्या अर्स रूहों हिरदे साल।

ना पांच तत्व तीर त्रिगुन, ए नैन बान नूरजमाल॥४४॥

अखण्ड परमधाम का यह प्रेम रूपी बाण तीन नोकों (सम्बन्ध, सौन्दर्य, और आनन्द) वाला है। परमधाम की आत्माओं के हृदय में यह विरह-प्रेम का मीठा दर्द देता रहता है। यह कोई पाँच तत्व और तीन गुणों से बना हुआ माया का तीर नहीं है, बल्कि यह श्री राज जी के नेत्रों से

निकला हुआ प्रेम का बाण है।

भावार्थ- विरह में तड़पने के पश्चात् मिलन में जब आँसू आते हैं, तो वे खुशी के आँसू होते हैं। धाम धनी के प्रेम के बाणों से हृदय जब छलनी होता है या जब बाण हृदय में चुभते हैं, तो उसका दर्द भी इतना मीठा होता है कि उसे छोड़ा नहीं जा सकता।

ए बलवान सेहेज के, जो कदी मारें दिलमें ले।

न जानों तिन आसिक का, कौन हाल होवे ए॥४५॥

प्रेम के ये बाण स्वाभाविक ही शक्तिशाली हैं। यदि कभी धाम धनी अपने दिल में लाड लेकर इन बाणों को चला दें, तो पता नहीं आत्माओं का क्या हाल होगा।

भावार्थ- उस समय धनी के प्रेम रूपी सागर के बहाव में सखियाँ इस प्रकार बह जायेंगी कि उन्हें अपने

अस्तित्व का भी बोध नहीं रहेगा।

ए बान टेढ़े अव्वल के, और टेढ़े लिए चढ़ाए।

खैंच टेढ़े मारें मरोर के, सो क्यों न आसिक टेढ़ाए॥४६॥

धनी के ये प्रेम रूपी बाण शुरु से (परमधाम से) ही तिरछे हैं। वे अपनी भौंहों रूपी धनुष पर इन्हें तिरछा रखकर चढ़ाते हैं। पलकों रूपी प्रत्यन्चा (डोरी) को भी तिरछा खींचकर बाण मारते हैं। ऐसी स्थिति में जिस आत्मा को ये बाण लगेंगे, वह भी तिरछी (टेढ़ी) क्यों नहीं हो जायेगी।

भावार्थ— इस चौपाई में धनी के प्रेम रूपी बाण को टेढ़ा कहने का कारण यह है कि जब वह अन्दर प्रवेश कर जाता है, तो निकलता नहीं है। सीधा बाण तो शरीर से बाहर निकल जाता है, किन्तु टेढ़ा नहीं निकलता।

इसी प्रकरण की चौपाई ३९ में बाण को शरीर के पार निकल जाने का वर्णन किया गया है तथा चौपाई ४१, ४२, ४३ में छाती (सीने) में ही धँसे रहने की बात कही गयी है।

इसका मुख्य कारण यह है कि चौपाई ३९ में बाण की गति की तीव्रता का वर्णन है। उसकी गति इतनी तीव्र है कि यदि किसी का शरीर सामने आता है, तो वह अपनी तीव्रता से छेदकर निकल जायेगा अर्थात् प्रेम की आँधी में माया की हर वस्तु उड़ जायेगी (सारा संसार सारहीन लगने लगेगा)।

इसी प्रकार टेढ़े बाण का सीने से न निकल पाने का भाव यह है कि जो धनी के प्रेम रूपी बाणों से बिंध जाता है, वह उसके मीठे दर्द में इतना खो जाता है कि उसे अपने शरीर और संसार का जरा भी ध्यान नहीं रहता।

वह पल-पल युगल स्वरूप की शोभा में डूबा रहता है। समस्त संसार उसके लिये अग्नि की लपटों के समान कष्टकारी लगता है। इसे सागर ५/९२ में इस प्रकार कहा गया है—

कोई खाली न गया इन खिलवतें, कछु लिया हक का भेद।
सो कहूं जाए न सके, पड़या इस्क के कैद।।

प्रेम रूपी बाण को टेढ़ा कहने का यही आशय है। अपने इश्क के दरिया (प्रेम के सागर) में आत्माओं को डुबो देने की भावना जो धाम धनी के दिल में पैदा होती है, वह ही धनुष पर बाणों को तिरछा रखना है।

अपने अनन्त सौन्दर्य से आत्माओं की दृष्टि को इस तरह से बाँध लेना कि वे पल भर के लिये भी संसार की ओर न देख सकें, प्रत्यन्चा को तिरछे खींचकर बाण छोड़ना है।

धनी के प्रेम बाणों से बिंधी हुई आत्मा रूपी मछली प्रेम के सागर में क्रीड़ा करने लगती हैं। अब वह किसी भी स्थिति में संसार रूपी खारे जल में नहीं घुसना चाहती। इसे ही आत्मा का टेढ़ा होना कहा गया है, अर्थात् संसार के कर्मकाण्डों (शरियत) का परित्याग करके प्रेम की राह पर चलना।

कहें गुन महामत मोमिनों, नैना रस भरे मासूक के।

अपार गुन गिनती मिने, क्यों कर आवें ए॥४७॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! श्री राज जी के ये अति मनोहर नेत्र अनन्त प्रेम के रस से भरे हुए हैं। मैंने तो इनके गुणों का नाम मात्र ही वर्णन किया है। धनी के नेत्रों के गुण तो अनन्त हैं। इन्हें किसी प्रकार से गणना की परिधि में नहीं रखा जा सकता, अर्थात् इन्हें किसी

प्रकार से गिना नहीं जा सकता।

प्रकरण ॥१४॥ चौपाई ॥८००॥

हक मेहेबूब की नासिका

इस प्रकरण में श्री राज जी की नासिका के अलौकिक सौन्दर्य का वर्णन किया गया है।

गौर निरमल नासिका, सोभा न आवे माहें सुमार।

आसिक जाने मासूक की, जो खुले होंए पट द्वार॥१॥

श्री राज जी की नासिका अत्यधिक स्वच्छ है और गौर वर्ण की है। इसकी शोभा की कोई सीमा नहीं है। धाम धनी की इस नासिका की शोभा को मात्र वे आत्मायें ही जानती हैं, जिनके ऊपर से माया का पर्दा हट चुका होता है और उनके आत्मिक नेत्र खुल गये होते हैं।

भावार्थ- मलिनता से युक्त कोई भी अंग गोरा होते हुए भी सुन्दर नहीं हो सकता, इसलिये श्री राज जी के किसी भी अंग के सौन्दर्य-वर्णन में गोरेपन के साथ -

साथ स्वच्छता का भी वर्णन किया गया है। जिन्होंने अपने आत्मिक नेत्रों से श्री राज जी की अति सुन्दर नासिका की शोभा को देखा है, एकमात्र वे ही इसके वास्तविक स्वरूप को जान सकते हैं।

निपट सोभा है नासिका, सोहे तैसा ही तिलक।

और नहीं इनका निमूना, ए सरूप अर्स हक॥२॥

प्रियतम अक्षरातीत की नासिका की शोभा अनन्त है। इसी के अनुरूप तिलक की भी अद्वितीय शोभा हो रही है। परमधाम में विराजमान श्री राज जी के इस सौन्दर्य की किसी से उपमा नहीं दी जा सकती।

कई खसबोए अर्स की, लेवत है नासिका।

दोऊ नैनो के बीच में, सोभा क्यों कहूं सुन्दरता॥३॥

यह नासिका परमधाम की अनेक प्रकार की सुगन्धों का रसपान करने वाली है। दोनों नेत्रों के बीच सुशोभित होने वाली इस नासिका की सुन्दरता का वर्णन मैं कैसे करूँ। मेरे लिये यह सम्भव नहीं है।

रंग उजलाई अर्स की, झाँई झलके कसूँब बका।

देत सलूकी कई सुख, रूह नैन को नासिका॥४॥

धाम धनी की नासिका में परमधाम के नूरमयी गोरेपन की उज्ज्वलता है। इस रंग में लालिमा भरी आभा अखण्ड रूप से झलकार कर रही है। नासिका का यह अलौकिक सौन्दर्य आत्मा के नेत्रों को अनेक प्रकार से आनन्दित करता है।

भावार्थ— जब पञ्चभौतिक तन की उज्ज्वलता में लालिमा का मिश्रण इतना सुन्दर होता है, तो श्री राज जी की उस

नूरी नासिका के उस अनन्त सौन्दर्य की सहज ही कल्पना की जा सकती है, जिस नूर के एक कण के तेज में करोड़ों सूर्य छिप जाते हैं।

ए छब फब कोई भांत की, निलाट तिलक बीच नैन।

ए आसिक नासिका देख के, पावत हैं सुख चैन॥५॥

श्री राज जी के मस्तक पर आया हुआ यह तिलक दोनों नेत्रों के बीच तक आया है। यह शोभा कुछ अलग ही तरह की है अर्थात् सबसे न्यारी है। धाम धनी की नासिका के अद्वितीय सौन्दर्य को देखकर परमधाम की आत्माओं को अनन्त आनन्द की मिठास का अनुभव होता है।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण में "सुख-चैन" शब्द प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ होता है- सुख या

आनन्द का आराम अर्थात् सुख या आनन्द की मिठास का अनुभव।

भौंह भासत भली भांतसों, पांपण पलकों पर।

ए नैन सोभा नूर जहूर, ए जाने मोमिन अन्तर॥६॥

श्री राज जी की भौंहों तथा पलकों के किनारे ऊपर आयी हुई बरौनियों की बहुत अधिक शोभा हो रही है। नेत्रों की यह शोभा श्री राज जी के नूर का ही फैलाव (प्रकट हुआ व्यक्त स्वरूप) है। इस रहस्य को मात्र ब्रह्ममुनि ही जानते हैं।

भावार्थ— धाम धनी के हृदय में जो प्रेम, सौन्दर्य, आनन्द, आह्लाद, कान्ति आदि (नूर) के सागर लहरा रहे हैं, वे ही नेत्रों के माध्यम से प्रकट होते हैं, इसलिये नेत्रों को श्री राज जी के नूर का व्यक्त स्वरूप कहा गया

है।

अर्स फूल सुगन्ध अनगिनती, हिसाब नहीं कहूं कोए।

रसांग चीज सब अर्स की, कोई जरा न बिना खुसबोए॥७॥

परमधाम में अनन्त फूल हैं, जिनकी सुगन्धि की कोई सीमा नहीं है। वहाँ की प्रत्येक वस्तु सुगन्धि से भरपूर है। एक कण भी बिना सुगन्धि के नहीं है।

सो खुसबोए सब लेत है, रस प्रेमल सुगन्ध सार।

सब भोग विवेकें लेत है, हक नासिका भोगतार॥८॥

इस प्रकार श्री राज जी की नासिका इस सम्पूर्ण सुगन्धि का रसपान करती है। परमधाम के सभी नूरमयी पदार्थों में प्रेम और आनन्द से ओतप्रोत जो सुगन्धि भरी हुई है, धनी की नासिका उसका विवेकपूर्वक भोग करती है।

भावार्थ- इस भौतिक जगत में भी यह देखा जाता है कि बहुत दूर की सुगन्धित वस्तुएँ जो अदृश्य होती हैं, उनकी सुगन्धि का आनन्द नासिका द्वारा ले लिया जाता है। इसी प्रकार निजधाम के कण-कण में सुगन्धि का सागर लहरा रहा है। धाम धनी की नासिका में सुगन्धि लेने के साथ-साथ देखने, सुनने, और बोलने तक का गुण है। इसी प्रकार सुगन्धि में प्रेम, आनन्द, और एकत्व (वहदत) आदि का भी योग है। उसके रसपान को विवेकपूर्वक लेने का यही आशय है।

ए को जानें रस सबन के, को जाने भोग सबन।

ए सब भोगी हक नासिका, हक सुख लेत देत रुहन॥९॥

परमधाम के लीला रूप सभी पदार्थों में प्रेम भरी सुगन्धि का जो रस छिपा हुआ है, उसके रहस्य को तथा रसपान

करने की लीला को श्री राज जी की नासिका के अतिरिक्त भला और कौन जान सकता है। धाम धनी की नासिका इन सभी पदार्थों की सुगन्धि का भोग करने वाली है। श्री राज जी अपनी नासिका से ही प्रेम भरी सुगन्धि का सुख लेते हैं तथा श्यामा जी सहित अन्य आत्माओं को देते हैं।

भावार्थ- जब श्री राज जी के दिल का नूर ही सभी रूपों में लीला कर रहा है , तो उनकी नासिका के अतिरिक्त अन्य किसको पता चल सकता है कि इस सम्पूर्ण सुगन्धि का मूल कहाँ छिपा हुआ है? धाम धनी इस सुगन्धि के रस में सभी आत्माओं को डुबोये रखते हैं। इस रहस्य का बोध ब्रह्मवाणी के अवतरण के पश्चात् ही हुआ है। इस चौपाई के पहले चरण में कथित "को जानें" का यही भाव है।

चित्त चाह्या नासिका भूखन, खुसबोए लेत चित्त चाहे।

चित्त चाही जोत सोभा धरे, सुख आसिक अंग न समाए॥१०॥

श्री राज जी के चित्त की इच्छानुसार नासिका के आभूषण दृष्टिगोचर होते हैं। नासिका भी दिल की इच्छानुसार ही सुगन्धि का रसपान करती है। धाम धनी के हृदय की इच्छा के अनुसार ही नासिका की नूरमयी शोभा दिखायी देती है, जिसके दीदार से मिलने वाला सुख आत्माओं के दिल में नहीं समाता अर्थात् अथाह होता है।

हक सुख खुसबोए के, कई नए नए भोग लेत।

ले ले हक विवेक सों, नए नए रूहों सुख देत॥११॥

धाम धनी अपनी नासिका से सुगन्धि के नए-नए सुखों का रसपान करते हैं। उन नये-नये सुखों को लेकर धाम

धनी अपनी अँगनाओं को विवेकपूर्वक देते हैं।

भावार्थ- सम्पूर्ण परमधाम सच्चिदानन्दमयी है और पूर्ण रूप से जाग्रत है। श्री राजश्यामा जी और ब्रह्मसृष्टियों की दृष्टि अनन्त परमधाम के कण-कण को देख रही होती है।

सौन्दर्य की अपेक्षा गन्ध सूक्ष्म होती है। सौन्दर्य को तो आँखों से देखा जाता है, किन्तु सुगन्धि को न देखने पर भी उसका आनन्द लिया जा सकता है। दूर से दूर की सुगन्धित वस्तु भी पूर्णतया निकट प्रतीत होती है। धाम धनी अलग-अलग वस्तुओं की अपने हृदय की इच्छानुसार लीला रूप में सुगन्धि लेते हैं और अपनी अँगनाओं को देते हैं। यह सुख आत्माओं को मूलतः प्राप्त हो जाता है। इसे ही परमधाम में विवेकपूर्वक सुख देना कहा गया है।

जिसकी आत्मा जाग्रत हो जाती है, वह इस खेल में भी धाम धनी की मेहर से कुछ अनुभूति कर सकती है। यह उपलब्धि उसकी अपनी श्रद्धा, विश्वास, समर्पण, और प्रेम पर निर्भर करती है। अपनी-अपनी करनी-रहनी के अनुकूल आत्माओं को इसका अनुभव होता है, जिसे धाम धनी द्वारा विवेकपूर्वक खेल में सुख देना कहते हैं।

कई कई लाड रूहन के, लेत देत अरस-परस।

नित नए सुख देत सनेह सों, जानों नया दूजा लिया सरस॥१२॥

धाम धनी अपनी अँगनाओं से आपस में अनेक प्रकार से प्रेम लेते हैं और देते हैं। इस प्रकार वे हमेशा ही प्रेमपूर्वक नये-नये प्रकार के आनन्द देते हैं, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है जैसे दूसरा आनन्द पहले वाले की अपेक्षा अधिक आनन्दमयी है।

भावार्थ- प्रेमी (आशिक) बनकर प्रेम (इश्क) किया जाता है, अपने प्रेमास्पद (माशूक) को रिझाने के लिये और उससे प्रेम (इश्क) प्राप्त करने के लिये। इसी प्रकार माशूक चाहता है कि मेरा आशिक मुझसे इश्क करे और मैं उसे अपने दिल का इश्क दूँ। इस लीला में दोनों ही एकाकार हो जाते हैं और किसी भी प्रकार का भेद नहीं रहता। दोनों ही एक-दूसरे के आशिक और माशूक बन जाते हैं। इसे ही इस चौपाई में प्रेम (लाड) का लेना और देना कहा गया है।

परमधाम में नित्य नवीनता होने से प्रत्येक वस्तु दूसरे की अपेक्षा नवीन लगती है। यद्यपि निजधाम में प्रत्येक वस्तु समान रूप से नयी है, क्योंकि वहाँ "जीर्ण" शब्द की कल्पना भी नहीं की जा सकती। लीला रूप में जहाँ अनेक श्रृंखलाबद्ध वस्तुओं का रसपान करना होता है,

वहाँ प्रत्येक को दूसरे की अपेक्षा नवीन ही कहा जाता है। सौन्दर्य और आनन्द का यही रहस्य है। यद्यपि वहदत में समानता ही प्राण है, फिर भी मानवीय बुद्धि के लिये ग्राह्य बनाने हेतु ऐसा कहा जाता है।

**नित लेत प्रेम सुख अर्स में, जानों आज लिया नया भोग।
यों हक देत जो हम को, नित नए प्रेम संजोग॥१३॥**

हम आत्मायें परमधाम में नित्य ही प्रेम का आनन्द लेती रहती हैं, किन्तु हमेशा हमें ऐसा प्रतीत होता है जैसे आज हमने नये प्रकार के आनन्द का रसपान किया है। इस प्रकार धाम धनी हमें नित्य ही नये-नये प्रकार के प्रेम के आनन्द का रसास्वादन कराते रहते हैं।

जिमी जल तेज वाए बन, जो कछू बीच आसमान।

सब खुसबोए नूर में, सुख देत रूहों सुभान॥१४॥

परमधाम में धरती और आकाश के बीच में जो कुछ भी जल, तेज, वायु, वन आदि सामग्री है, सभी कुछ नूरमयी है और सुगन्धि से भरपूर है। इसका सुख धाम धनी अपनी अँगनाओं को देते हैं।

महामत कहे हक नासिका, याकी सोभा न आवे सुमार।

कछू बड़ी रूह मोमिन जानहीं, जाको निस दिन एही विचार॥१५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! धाम धनी की नासिका इतनी सुन्दर है कि उसकी कोई सीमा नहीं है। इसकी सुन्दरता के विषय में थोड़ा सा श्यामा जी और वे आत्मायें ही जानती हैं जो दिन-रात इसी के चिन्तन (मानसिक चिन्तन एवं चितवनि) में लगी रहती हैं।

प्रकरण ॥१५॥ चौपाई ॥८१५॥

हक मासूक की जुबान की सिफत

श्री राज जी की रसना की महिमा

इस प्रकरण में श्री राज जी की रसना की महिमा वर्णित की गयी है। जिह्वा, रसना, वाणी, वाक्, जबान आदि सभी शब्द एकार्थवाची हैं।

जाको नामै रसना, होसी कैसी मीठी हक।

जिनकी जैसी बुजरकी, जुबां होत है तिन माफक॥१॥

यह सहज ही जाना जा सकता है कि अक्षरातीत के जिस अंग का नाम रसना है, वह कितनी मीठी होगी। जिसकी जैसी महानता होती है, उसकी वाणी भी उसके अनुकूल होती है।

भावार्थ— अक्षरातीत का हृदय अनन्त प्रेम, माधुर्यता, सौन्दर्य, और आनन्द आदि रसों का सागर है। उस रस

को बाहर प्रवाहित करने वाले अंग में कितनी मिठास होगी, इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है। किसी भी गुण की दृष्टि से श्री राज जी से श्रेष्ठ और कोई नहीं है। इसलिये इस पाताल से लेकर परमधाम तक धाम धनी से अधिक मीठा बोलने वाला न तो कोई है और न ही कोई होगा।

केहेनी में न आवहीं, विचार देखें मोमिन।

होए जाग्रत अरवा अर्स की, कछू सो देखे रसना रोसन॥२॥

यदि सुन्दरसाथ इस बात का विचार करें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि धाम धनी की वाणी (जबान) की मिठास को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। परमधाम की जो भी आत्मा इस संसार में जाग्रत हो जाती है, वही रसना की मिठास का थोड़ा सा अनुभव कर सकती है।

भावार्थ- इस जागनी ब्रह्माण्ड में भी आत्मा के कानों से प्रियतम की अति मीठी आवाज का अनुभव किया जा सकता है। श्रीमुखवाणी के शब्दों में-

रूह नैनों दीदार कर, रूह जुबां हक सों बोल।

रूह कानों हक बातें सुने, एही पट रूह का खोल॥

श्रृंगार २५/६८

इस प्रकार आत्म-जाग्रति की अवस्था में जिन्होंने प्रियतम के शब्दों को सुना है, केवल वे ही उस अमृत वाणी की मिठास को अनुभव में ला सकते हैं, शेष नहीं।

अति मीठी जुबां मासूक की, देत आसिक को सुख।

कछू अर्स सहूरें सुख लीजिए, पर कह्यो न जाए या मुख॥३॥

धाम धनी की बोली बहुत मीठी है। वह अँगनाओं को अपार आनन्द देती है। परमधाम के चिन्तन से इसकी

मिठास के सुख का थोड़ा सा अहसास (अनुभव) तो हो सकता है, किन्तु इस संसार के मुख से (शब्दों द्वारा) उसका वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

द्रष्टव्य- जिह्वा (जबान) शब्द का प्रयोग कहीं वाक् इन्द्रिय के लिये है, तो कहीं बोली (भाषा) के लिये। वाक् इन्द्रिय की क्रियाशीलता ही बोली (वाणी) के रूप में अनुभूत होती है।

ए याद किए हक रसना, आवत है इस्क।

जिन इस्कें अर्स देखिए, सुख पाइए हक मुतलक॥४॥

अमृत से भी अनन्त गुनी मीठी धनी की वाणी (बोली) को याद करने मात्र से हृदय में प्रेम (इश्क) प्रकट हो जाता है। इस अनन्य प्रेम के द्वारा ही तो निजधाम का साक्षात्कार होता है और प्रियतम के आनन्द की निश्चित

रूप से प्राप्ति होती है।

भावार्थ- मीठी वाणी वशीकरण का अचूक साधन है। धनी की बोली की मिठास का चिन्तन करने पर यह स्वाभाविक है कि हृदय में प्रियतम के प्रति प्रेम पैदा होगा।

और सुख हक दिल में, जाहेर होत रसनाए।

एह सिफत किन बिध कहूं, जो रेहेत हक मुख माहें॥५॥

धाम धनी के दिल में आनन्द का जो अनन्त सागर लहरा रहा है, वह उनकी रसना (जिह्वा) से ही प्रकट होता है। धनी के मुख में रहने वाली इस जिह्वा की महिमा को मैं किन शब्दों में व्यक्त करूँ?

बोहोत सुख हक तन में, जाहेर करें हक नैन।

सब पूरा सुख तब पाइए, जब कहे रसना मुख बैन॥६॥

धाम धनी के स्वरूप (तन) में अनन्त सुख भरा हुआ है जिसे वे अपने नेत्रों के माध्यम से प्रकट करते हैं, किन्तु उस सुख का पूर्ण बोध तब होता है जब श्री राज जी अपने मुख से वाणी (जिह्वा) द्वारा व्यक्त करते हैं।

भावार्थ- श्री राज जी के हृदय में आनन्द की जो अथाह राशि उमड़ रही है, उसका कुछ अंश मात्र ही नेत्रों से प्रकट हो सकता है, किन्तु वाणी द्वारा तो सब कुछ कहा जा सकता है।

हर अंग सुख दें हक के, ऊपर जाहेर सुख जुबान।

बड़ा सुख रूहों होत है, जब हक मुख करें बयान॥७॥

यद्यपि श्री राज जी के सभी अंग सुख देने वाले हैं,

किन्तु धाम धनी द्वारा अपनी रसना से उन्हें व्यक्त कर देना अधिक सुखकारी होता है। जब श्री राज जी अपने मुख से उन सुखों का वर्णन करते हैं, तो आत्माओं को बहुत अधिक आनन्द होता है।

भावार्थ— जब इस संसार में बीन की मधुर ध्वनि से सर्प एवं बासुरी की मीठी ध्वनि से हिरन बेसुध हो जाते हैं, तो धाम धनी की इनसे अनन्त गुना मधुर ध्वनि को सुनकर ब्रह्मसृष्टियों का क्या हाल होता होगा, इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। यद्यपि परमधाम में वहदत के कारण प्रत्येक इन्द्रिय और अंग का सुख समान होता है, किन्तु इस प्रकरण में "रसना" की विशेषताओं को दर्शाने के लिये ही ऐसा कहा गया कि रसना से मिलने वाला सुख सबसे अधिक होता है। वस्तुतः परमधाम की वहदत में कम या अधिक शब्द की कल्पना ही नहीं है।

ए बेवरा पाइए बीच खेल के, कम ज्यादा अर्स में नाहें।

समान अंग सब हक के, ए विचार नहीं अर्स माहें॥८॥

परमधाम में किसी भी अंग का सुख कम या अधिक नहीं होता। अंगों से कम या अधिक सुख मिलने की बात मात्र इस संसार में ही होती है। धाम धनी के सभी अंगों का सुख समान है। परमधाम में तो कम या अधिक जैसी कोई बात है ही नहीं।

बोहोत बातें सुख अर्स के, सो पाइयत हैं इत।

सुख उमत को अर्स में, ए जानती न थीं निसबत॥९॥

परमधाम के आनन्द की ऐसी बहुत सी बातें हैं, जिनका अनुभव मात्र इस संसार में ही होता है। इस जागनी ब्रह्माण्ड में धनी की अँगरूपा ब्रह्मसृष्टियों को जिन सुखों का रसास्वादन हो रहा है, उसे तो वे परमधाम में भी

नहीं जानती थीं।

भावार्थ- परमधाम में श्री राज जी ने हमें अनन्त सुखों में इतना डुबो रखा था कि हमें उन सुखों की अहमियत का कोई बोध नहीं था। इस जागनी ब्रह्माण्ड में वाणी द्वारा उन सुखों का स्वाद मिलने से वास्तविक बोध हुआ है।

सुख जानें न हक पातसाही, सुख जानें न हक इस्क।

सुख जानें ना रूहें लाड़ के, तो इत इलम दिया बेसक॥१०॥

परमधाम में ब्रह्मसृष्टियाँ न तो श्री राज जी के स्वामित्व (साहिबी) के सुख को जानती थीं और न प्रेम के सुख को जानती थीं। धाम धनी अपनी अँगनाओं से कितना लाड करते हैं, इस सुख को भी वे नहीं जानती थीं। यह बोध कराने के लिये ही धाम धनी ने हमें इस संसार में यह ब्रह्मवाणी (श्रीमुखवाणी, कुल्जुम स्वरूप) दी है।

भावार्थ- सागर की अथाह जलराशि ही प्रेम (इश्क) है और लहराने वाली लहरों का जल ही लाड-प्यार है, अर्थात् घनीभूत प्रेम का बहता हुआ क्रियात्मक रूप लाड कहलाता है।

तो हक अंग सुख खेल में, बेवरा करत हुकम।

अजुं न आवे नजरों सरूप, ना तो क्यों वरनवाए खसम॥११॥

इस प्रकार धाम धनी का हुक्म (आदेश) ही उनके अंगों के सुख का वर्णन इस संसार में कर रहा है। यद्यपि आत्माओं को अभी भी श्री राज जी के स्वरूप का दर्शन नहीं हो रहा है, फिर भी इस ब्रह्मवाणी द्वारा उसका रसपान कर रही हैं, अन्यथा अन्य सृष्टि के लिये तो धाम धनी अपने श्रृंगार का वर्णन कर ही नहीं सकते।

भावार्थ- सागर-श्रृंगार ग्रन्थ के चिन्तन मात्र से ही ऐसा

आभास होता है, जैसे युगल स्वरूप हमारे सामने हैं। प्रत्यक्ष दर्शन न होने पर भी ब्रह्मवाणी के द्वारा इस प्रकार का सुख तो प्राप्त हो ही जाता है। आत्मिक दृष्टि से प्रत्यक्ष दर्शन के लिये तो चितवनि की गहराइयों में उतरना ही पड़ेगा।

हकें हम रूहों वास्ते, अनेक वचन कहे मुख।

सो रूहें जागे हक इस्क का, आपन लेसी अर्स में सुख॥१२॥

श्री राज जी ने हम आत्माओं के लिये इस ब्रह्मवाणी में बहुत सी बातें कही हैं। खेल समाप्त होने के पश्चात् जब हम परमधाम में अपनी परात्म में जाग्रत होंगी, तब प्रेम के विशेष सुख का अनुभव होगा।

भावार्थ— इस जागनी लीला में ब्रह्मवाणी के द्वारा इस्क की मारिफत (प्रेम के सर्वोपरि स्वरूप) का बोध हो गया

है, जो परमधाम में प्रेम में डूबे रहने के कारण नहीं था। अब परात्म में जाग्रत होने के पश्चात् इश्क की पूर्ण पहचान होने से मिलने वाला आनन्द कुछ न्यारा ही होगा।

**सुख अनेक दिए हक रसनाएं, और सुख अलेखे अनेक।
सो जागे रूहें सब पावहीं, तार्थें रसना सुख विसेक॥१३॥**

यद्यपि धाम धनी की रसना ने अनेक प्रकार का सुख दिया है, किन्तु अभी भी ऐसे बहुत से सुख बाकी हैं जो अव्यक्त हैं। इन सुखों को परात्म में जाग्रत होने के पश्चात् ही अँगनायें प्राप्त कर सकेंगी। इस प्रकार रसना के सुख सबसे विशेष हैं।

भावार्थ— इस जागनी ब्रह्माण्ड में धाम धनी की रसना रूपी इस ब्रह्मवाणी द्वारा खिल्वत, वहदत, निस्बत,

इश्क, और इल्म की मारिफत का ज्ञान हुआ है। यह ज्ञान आत्मा के साथ ही परात्म को भी प्राप्त हो जायेगा। मूल तन में जाग्रत होने के पश्चात् उस अद्वितीय आनन्द की अनुभूति होनी है, जो कभी पहले नहीं हो सकी थी। यही कारण है कि धाम धनी की रसना की महिमा सर्वोपरि है।

हकें खेल देखाया याही वास्ते, सुख देखावने अपने अंग।

सुख लेसी बड़ा इस्क का, रूहें ले विरहा मिलसी संग॥१४॥

श्री राज जी ने अपनी अँगनाओं को अपने अंगों का सुख दिखाने के लिये ही यह माया का खेल दिखाया है। अँगनारें इस ब्रह्मवाणी से प्रियतम का विरह लेकर उनसे मिलेंगी और प्रेम का आनन्द लेंगी।

भावार्थ— ब्रह्मवाणी के ज्ञान से जाग्रत होने के पश्चात्

हृदय में विरह पैदा होता है, जिससे युगल स्वरूप का साक्षात्कार होता है। यही आत्म-जाग्रति है। इसके पश्चात् आत्मा प्रियतम के प्रेमरस का निरन्तर ही रसास्वादन करती रहती है।

दायम इस्क सबों अपना, रूहें केहेती अपनी जुबान।

याही रसना बल वास्ते, खेल देखाया सुभान॥१५॥

परमधाम में ब्रह्मसृष्टियाँ हमेशा अपने मुख (रसना) से अपने इश्क को बड़ा कहती थीं। उनके द्वारा कही हुई इस बात का निर्णय करने के लिये ही धाम धनी ने यह माया का खेल दिखाया है।

भावार्थ— "दायम" और "कदीम" शब्द समानार्थक है। "बीच अर्स खिल्वत में, होत दायम विवाद" (खिलवत १/१८) तथा "होत वचन कदीम" (सिनगार १६/१८)

से यह बात स्पष्ट है। इस चौपाई के तीसरे चरण में कथित "रसना बल" का तात्पर्य है— सखियों के इस कथन के कारण।

एक हुकम जुबां के सब हुआ, तिन हुकमें चले कई हुकम।

सो जेता सब्द दुनीय में, ए सब हम वास्ते किया खसम॥१६॥

धाम धनी की रसना (जिह्वा) से निकले हुए हुकम (आदेश) से ही सब कुछ हो गया। उनके आदेश से अनेकों आदेश हुए। इस प्रकार धर्मग्रन्थों में जो शब्द रूपी ज्ञान दिखायी पड़ रहा है, वह सब कुछ धाम धनी ने हमारे लिये ही किया है।

भावार्थ— धाम धनी ने इस खेल को बनाने के लिये अपने हृदय में जैसे ही लिया, वैसे ही उनके सत् अंग अक्षर ब्रह्म के अन्दर सृष्टि रचना की इच्छा हुई। मूल

अक्षर ब्रह्म की वह इच्छा सत्स्वरूप में प्रकट हुई। इसके पश्चात् बुद्धि स्वरूप केवल ब्रह्म में आयी। तत्पश्चात् सबलिक ब्रह्म में। वहाँ से यह चिदानन्द लहरी पुरुष से होते हुए सुमंगला पुरुष में आयी। इसके पश्चात् मोह सागर में आदिनारायण का प्रकटन हुआ, जिन्होंने "एकोऽहम् बहुस्याम" का कथन किया। उनके इस कथन मात्र से असंख्य नक्षत्रों से युक्त यह कालमाया का ब्रह्माण्ड दृष्टिगोचर होने लगा। "तिन हुकमे चले कई हुकम" का यही भाव है।

यह सृष्टि पहली बार नहीं बनी है, बल्कि इसके पहले भी असंख्य बार सृष्टि बनकर लय हो चुकी है। इस खेल के पश्चात् भी सृष्टि की उत्पत्ति-प्रलय का चक्र चलता रहेगा। अनादि अक्षर ब्रह्म की विभूतियाँ (सत्स्वरूप, केवल, सबलिक, और अव्याकृत) भी अनादि हैं तथा

उनके द्वारा होने वाली लीला भी अनादि है। अव्याकृत के स्वप्न से होने वाली यह जगत की लीला प्रवाह से तो अनादि है, किन्तु इसका स्वरूप स्वप्नवत् नश्वर है।

हक जुबान की बुजरकी, किया खेल में बड़ा विस्तार।

सो सुख लेसी हम अर्स में, जिनको नहीं सुमार॥१७॥

धाम धनी की रसना से निकले हुए शब्दों ने इस खेल का इतना विस्तार कर दिया। इस प्रकार धनी की रसना की महिमा अद्वितीय है। परमधाम में अपने मूल तनों में जाग्रत होने के पश्चात् हम इस खेल का अपार आनन्द लेंगे।

जेती चीज जरा कोई खेल में, सो हक हुकमें हलत चलत।

सो सुख दिए हक रसनाएं, हम केती करें सिफत॥१८॥

इस मायावी जगत की प्रत्येक वस्तु धाम धनी के आदेश से ही क्रियाशील है। श्री राज जी की रसना ने ही ब्रह्मवाणी द्वारा हमें इस खेल में भी परमधाम के सुखों की अनुभूति करायी है। इस रसना की अद्वितीय महिमा का हम कैसे वर्णन करें।

द्रष्टव्य— यद्यपि क्षर जगत का संचालन आदिनारायण के द्वारा होता है, किन्तु वे भी अक्षर ब्रह्म के मन अव्याकृत के स्वाप्निक स्वरूप होने के कारण श्री राज जी के ही आदेश (हुक्म) के अन्तर्गत है। यही कारण है कि इस ब्रह्माण्ड की सम्पूर्ण लीला को श्री राज जी के हुक्म के अधीन कहा गया है।

कलाम अल्ला या हदीसें, सास्त्र पुरान या वेद।

ए सब सुख लेवे मोमिन, हक रसना के भेद॥१९॥

कुरआन-हदीसों, वेद-शास्त्रों, तथा पुराण आदि की साक्षियों से ब्रह्ममुनि ब्रह्मवाणी के रहस्यों को जान जाते हैं और अत्यधिक आनन्दित होते हैं।

खेल किया याही वास्ते, हकें सुख दिए जुबान।

सो मेरी इन जुबान सों, क्यों कर होए बयान॥२०॥

अपनी रसना द्वारा अपने हृदय के भेद बताने के लिये ही धाम धनी ने माया का यह खेल बनाया है। इस जागनी ब्रह्माण्ड में धाम धनी ने अपनी रसना का सुख अपनी आत्माओं को दिया है। इन सुखों का वर्णन मेरी इस जिह्वा से हो पाना सम्भव नहीं है।

ए बयान होसी बीच अर्स के, हम रूहें मिल जासी जब।

हक जुबान का बेवरा, हम लेसी अर्स में तब॥२१॥

जब हम सभी आत्मायें परमधाम में जाग्रत होंगी , तब इन सब बातों की चर्चा होगी। उस समय हमें श्री राज जी की रसना की यथार्थता का बोध हो जायेगा।

भावार्थ- श्री राज जी की रसना के द्वारा इस ब्रह्माण्ड में हमें जो गुह्य बातें मालूम हुई हैं, उसकी चर्चा परमधाम में भी होगी। उस समय भी हमें धाम धनी की रसना की महिमा का बोध होगा।

बड़े बयान बातें कई, जो हक जुबाएं दिए इत।

इत बेवरा कर जाए अर्स में, लेसी लज्जत बीच खिलवत॥२२॥

धाम धनी की रसना ने इस ब्रह्मवाणी द्वारा हमें परमधाम के गुह्यतम रहस्यों वाली जो बातें बतायी हैं, उसका पूर्ण विवरण प्राप्त करके हम अपने मूल तनों में जाग्रत होंगे। इन सारी गुह्यतम बातों का रसास्वादन हमें खिल्वत में

मिलेगा।

भावार्थ- इस चौपाई के अन्तिम चरण में "खिलवत" में जो रसास्वादन करने की बातें कही गयी हैं, उसमें खिलवत का तात्पर्य केवल मूल मिलावा ही नहीं है, बल्कि लीला रूपी २५ पक्षों का कोई भी स्थान या आशिक (प्रेमी) का हृदय भी खिलवत का ही स्वरूप है। मूल मिलावा में जाग्रत होने के बाद पूर्व लीला के अनुसार हमें पाट घाट जाना है। मारिफत (परम सत्य) के रहस्यों को जान लेने के पश्चात् तो कहीं भी होने वाली लीला में विशेष आनन्द का अनुभव होगा।

ए बारीक सुख अर्स के, हक जुबांएं दई न्यामत।

और न कोई पावहीं, बिना हक निसबत॥२३॥

परमधाम के रहस्यमयी सुखों की ये बातें हैं। इन

निधियों को धाम धनी ने अपनी रसना से दिया है।
ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त इन निधियों को अन्य कोई पा
ही नहीं सकता।

हक रूहों को बुलाए के, नजीक बैठाई ले।

ए जाहेर करत है रसना, ए जो अन्तर का सनेह॥२४॥

परमधाम में धाम धनी सखियों को अपने पास बुलाकर
बैठा लेते हैं। प्रियतम अक्षरातीत के हृदय में अपनी
अँगनाओं के लिये लहराने वाले प्रेम को उनकी रसना
रूपी यह ब्रह्मवाणी प्रकट (जाहिर) कर रही है।

भावार्थ— इस चौपाई में "अन्तर" शब्द का तात्पर्य है—
पिण्ड—ब्रह्माण्ड से परे परमधाम या अक्षरातीत।

मीठी जुबां बोलत मासूक, रूहें प्यारी आसिक सों।

ऐसा मीठा अर्स खावंद, जाके बोल चुभें हिरदे मों॥२५॥

श्री राज जी अपनी प्यारी अँगनाओं से बहुत मीठे शब्दों में बातें करते हैं। धाम धनी के हृदय में इतनी मिठास है कि उनके मुख से निकले हुए शब्द हृदय में चुभ जाते हैं।

भावार्थ— हृदय में चुभ जाने का भाव है— हृदय के द्वारा ग्रहण कर लिया जाना। मीठे और कटु दोनों ही प्रकार के शब्द हृदय में चुभा करते हैं, अन्तर केवल इतना है कि मीठे शब्द हृदय में प्रसन्नता देते हैं जबकि कटु शब्द व्यथित करते रहते हैं।

प्यारी रसना सों अनेक, प्यारी बातें करें बनाए।

प्यारे प्यारी रूह बीच में, ए गुन जुबां किने न गिनाए॥२६॥

धाम धनी अपनी प्यारी रसना से, अपनी अँगरूपा

अँगनाओं से, बहुत प्यारी-प्यारी बातें किया करते हैं। सखियों के लिये श्री राज जी बहुत प्यारे हैं तथा उनके लिये सखियाँ बहुत प्यारी हैं। इनके बीच में होने वाली वार्ता में रसना के गुणों को कोई भी नहीं गिन सकता।

मीठी जुबां मीठे वचन, मीठा हक मीठा रूहों प्यार।

मीठी रूह पावे मीठे अर्स की, जो मीठा करे विचार॥२७॥

श्री राज जी की रसना बहुत मधुर है। उससे निकलने वाले वचन भी बहुत मीठे हैं। अक्षरातीत स्वयं ही माधुर्यता के अनन्त सागर हैं। उनका अपनी अँगनाओं से प्रेम भी बहुत मीठा है। इसी प्रकार ब्रह्मसृष्टियाँ भी माधुर्यता के रस से ओत-प्रोत हैं। परमधाम की इस मिठास का अनुभव इस संसार में उसी आत्मा को होता है, जिसके चिन्तन में भी परमधाम की मिठास बसी होती

है।

भावार्थ- "मोमिन दिल कोमल कह्या, तो अर्स पाया खिताब" (सिनगार २०/१५) के कथन से यह स्पष्ट है कि जब तक हृदय में कोमलता और माधुर्यता का वास नहीं होता, तब तक आत्म-जाग्रति नहीं हो सकती और परमधाम की मिठास का अनुभव भी नहीं हो सकता।

प्यारी खिलवत में प्यारी रसना, होत वचन कदीम।

सो इन जुबां प्यार क्यों कहूं, जो हक हादी रूहें हलीम॥२८॥

अनादि काल से परमधाम की प्यारी खिल्वत में श्री राजश्यामा जी और सखियों के बीच प्यारी रसना से बातचीत होती रही है। उनके बीच में जिस प्रकार अनन्त प्रेम से भरी हुई मीठी बातें होती रही हैं, उसका वर्णन मैं इस जिह्वा से कैसे करूँ।

सब अंग जिनके इस्क के, तिनकी कैसी होसी जुबान।

अर्स रूहें जानें जाग्रत, जो रहें सदा कदमों सुभान॥२९॥

जिस अक्षरातीत के अंग-अंग में अनन्त प्रेम भरा हुआ है, उनकी रसना (वाणी) कितनी मीठी होगी। इस बात को यथार्थ रूप से मात्र परमधाम की वे आत्मायें ही जानती हैं, जो जाग्रत हैं और जिनके मूल तन हमेशा धनी के चरणों में विद्यमान रहते हैं।

मेरी रूह देखे सहूर कर, जाके नख सिख लग इस्क।

जुबां कैसी तिन होएसी, और बानी बका अर्स हक॥३०॥

मेरी आत्मा परमधाम की चितवनि (चिन्तन) द्वारा प्रियतम की शोभा को देख रही है और यह विचार कर रही है कि जिस अखण्ड परमधाम में धाम धनी के नख से शिख तक अनन्त प्रेम ही प्रेम भरा हुआ है, उनकी

रसना और उससे प्रकट होने वाली वाणी में कितनी प्रेम
भरी मिठास होगी।

हक रसना बोले जो अर्स में, जिन किन को वचन।

सो सब कारन जानियो, वास्ते सुख रुहन॥३१॥

धाम धनी की रसना परमधाम में जिस किसी से कोई
बात करती है, तो उसका मुख्य कारण अपनी अँगनाओं
को आनन्दित करना होता है।

खेलावत हक बोलाए के, या पंखी या पसुअन।

सो सब रुहों वास्ते, सब को एह कारन॥३२॥

श्री राज जी पशु-पक्षियों को प्रेमपूर्वक बुलाकर जो
तरह-तरह के खेल खिलाते हैं, उसका भी मुख्य कारण
सखियों को आनन्दित करना ही होता है।

खेलते बोलते नाचते, या देखें खेल लराए।

सो सब वास्ते रूहन के, कई विध खेल कराए॥३३॥

पशु-पक्षियों का खेलना, बोलना, या नाचना ब्रह्मात्माओं को रिझाने के लिये ही होता है। धाम धनी इन पशु-पक्षियों को लड़ाकर (प्रेमपूर्वक) जो तरह-तरह के खेल खेलाते हैं और स्वयं देखते-दिखाते हैं, सब कुछ अँगनाओं को आनन्दित करने के ही लिये। इनके लिये ही अनेक प्रकार के खेल कराये जाते हैं।

कहूं केती बातें हक रसना, निपट बड़ो विस्तार।

क्यों कहूं जो किए रूहोंसों, हक जुबां के प्यार॥३४॥

श्री राज जी की रसना के गुणों की कितनी बातें मैं कहूँ। निश्चित रूप से ये बहुत अधिक (अनन्त) हैं। धाम धनी ने अपनी मीठी बोली से अपनी अँगनाओं से कितना प्रेम

किया है, उसे मैं कैसे व्यक्त करूँ।

हक रसना गुन खेलमें, पाव हरफ को होए न सुमार।

तो जो गुन रसना अर्स में, ताको क्यों कर पाइए पार॥३५॥

इस खेल में भी श्री राज जी की रसना के गुण इतने अनन्त हैं कि इस रसना से निकले हुए शब्दों के चौथाई भाग के गुणों को भी सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति में परमधाम में रसना के जो गुण हैं, उनको शब्दों की सीमा में कैसे रखा जा सकता है।

भावार्थ— इस संसार में ब्रह्मवाणी ही श्री राज जी की रसना का स्वरूप है। इसके चौथाई शब्दों में भी निहित ज्ञान की महिमा इतनी अधिक है कि उसका वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है। रसना रूपी वाणी के शब्दों में निहित ज्ञान में प्रेम छिपा हुआ है, जबकि परमधाम में श्री

राज जी की नूरी रसना से प्रत्यक्ष प्रेम की लीला होती है।

ए बेवरा जानें रूहें अर्सकी, जाको हुआ हक दीदार।

जाए सिफायत हुई महंमद की, याको जाने सोई विचार॥३६॥

परमधाम की जिन आत्माओं को श्री राज जी का साक्षात्कार हुआ होता है, वे ही धाम धनी की रसना का विवरण जानती हैं। इन्हीं ब्रह्ममुनियों के लिये मुहम्मद साहिब ने भी अनुशंसा की है। यही ब्रह्ममुनि श्री राज जी की रसना के बारे में जानते हैं और उसके बारे में विचार करते हैं।

हक रसना गुन जानें रूहें, जाको निस दिन एही ध्यान।

ए खेल कबूतर क्या जानहीं, हक रसना के बयान॥३७॥

श्री राज जी की रसना के गुणों को एकमात्र ब्रह्मसृष्टियाँ

ही जानती हैं, क्योंकि वे ही दिन-रात युगल स्वरूप के ध्यान में खोयी रहती हैं। धाम धनी की रसना के बारे में भला ये माया के जीव (खेल के कबूतर) क्या जान सकते हैं।

जो कछू बोले हक रसना, सो सब वास्ते रूहन।

और जरा हक दिलमें नहीं, ए जानें दिल अर्स मोमिन॥३८॥

धाम धनी की रसना से जो अमृतमयी मधुर शब्द निकलते हैं, वे केवल ब्रह्मसृष्टियों को आनन्दित करने के लिये ही निकलते हैं। श्री राज जी के हृदय में अपनी अँगनाओं को आनन्दित करने के अतिरिक्त और कुछ होता ही नहीं है। इस रहस्य को मात्र वही सुन्दरसाथ जानते हैं, जिनका हृदय धाम बन चुका है।

जो कछू बोलें हक जुबांन, सो सब रूहों के हेत।

अर्स बोल खेल या चलन, या जो कछू लेत देत॥३९॥

श्री राज जी की रसना जो कुछ भी कहती है, वह आत्माओं को प्रेम से रिझाने के लिये कहती है। परमधाम में जो कुछ भी आपस में बोलना, खेलना, या लेन-देन का व्यवहार होता है, वह मात्र आत्माओं को आनन्दित करने के लिये होता है।

भावार्थ- खुलासा १८/११ का यह कथन अक्षरशः सत्य है कि "असल अर्स के बीच में, हक का नाम आसिक।" धाम धनी ने अपनी अँगनाओं को रिझाने के लिये ही पशु-पक्षियों, बन्दरों, खूब खुशालियों, तथा २५ पक्षों का रूप धारण किया हुआ है। सभी लीलाओं के केन्द्र में अँगनाओं को रिझाना ही है। वहदत की मारिफत के रहस्य को न समझने के कारण सखियों ने

अपने को धाम धनी से अलग समझ लिया था और स्वयं को ही आशिक कहने लगी थीं।

हुकम कहावे मेरी रूह पे, जो हुई मुझमें बीतक।

सो कहूं अर्स रूहों को, जो दिए सुख रसना हक॥४०॥

धाम धनी का हुकम मुझसे उन बातों को कहलवा रहा है, जो मेरे साथ आपबीती (घटित हुई) हैं। श्री राज जी की रसना ने मुझे जो आनन्द दिया है, उसे मैं परमधाम की आत्माओं से कह रही हूँ।

भावार्थ— इस चौपाई में हब्सा के उस प्रसंग की ओर संकेत किया गया है, जिसमें श्री राज जी ने श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय में विराजमान होकर परमधाम की वाणी का अवतरण किया। यही रसना का सुख है।

हक रसना के सुख जो, आवे ना गिनती माहें।

कई सुख अलेखे अपार, क्यों कहे जाए जुबांए॥४१॥

श्री राज जी की रसना के सुख इतने अधिक हैं कि उनकी गिनती हो पाना सम्भव ही नहीं है। इसके अनेक प्रकार के अनन्त सुख हैं, जिन्हें इस नश्वर जगत की जिह्वा से व्यक्त नहीं किया जा सकता।

मीठी मीठी माहें मीठी मीठी, रस रसीली रसना बान।

सुख सुखके माहें कई सुख, सुख क्यों कहूं रसना सुभान॥४२॥

श्री राज जी की रसना से निकली हुई वाणी प्रेम-रस से भरी हुई रसीली है। उसमें इतनी मिठास है कि मिठास रूपी सागर की प्रत्येक तरंग के अन्दर भी अनेक प्रकार की माधुर्यता (मिठास) भरी हुई है। इस प्रकार इस माधुर्यता से प्रकट होने वाले सुख के सागर की प्रत्येक

लहर में भी अनेक प्रकार के सुख समाये हुए हैं। इस प्रकार मैं प्रियतम अक्षरातीत की रसना के सुख को कैसे कह सकती हूँ।

मोहे इलम दिया आए अपना, तासों प्यार दिया मुझको।
चौदे तबक कायम किए, केहेलाए मेरी रसना सों॥४३॥

मेरे प्राणवल्लभ अक्षरातीत ने मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर मुझे ब्रह्मवाणी का ज्ञान दिया और मुझसे भरपूर प्रेम किया। मेरी रसना से इस ब्रह्मवाणी को कहलाकर चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड को अखण्ड मुक्ति देने की कृपा की।

एक नुकते इलम अपने, दुनी बका कराई मुझसे।
तो गंज अंबार जो सागर, कैसे होसी हक दिल में॥४४॥

जब धाम धनी ने अपने बिन्दु-मात्र तारतम ज्ञान द्वारा मुझसे इस ब्रह्माण्ड को अखण्ड मुक्ति दिलायी है, तो उनके हृदय में ज्ञान (इल्म) के जो अथाह सागर भरे हैं, उनका सुख कैसा होगा?

जो कोई सब्द बीच दुनियां, सो उठे हुकम के जोर।

ए गुझ सुख हक रसना, कछू मोमिन जानें मरोर॥४५॥

इस संसार में धर्मग्रन्थों के रूप में जो भी शब्द - ज्ञान विद्यमान है, वह धाम धनी के आदेश (हुकम) की शक्ति से ही प्रकट हो सका है, किन्तु श्री राज जी की रसना में जो गुह्य सुख छिपे हुए हैं, उसे मात्र कुछ ब्रह्ममुनि ही जानते हैं।

भावार्थ- यद्यपि श्रीमुखवाणी के अतिरिक्त अन्य सभी धर्मग्रन्थ स्वप्न की बुद्धि के ग्रन्थ माने गये हैं, किन्तु इन्हें

धनी के हुक्म से प्रकट होने का कथन इसलिये किया गया है कि क्योंकि जब ब्रह्माण्ड ही धनी के आदेश (हुक्म) से बना हुआ कहा गया है, तो उसमें तत्त्व-बोध की दिशा निर्देशित करने वाले धर्मग्रन्थ धनी के हुक्म से प्रकट होने वाले क्यों नहीं कहे जायेंगे।

बका करी जो दुनियां, दिया सबको हक इलम।

सो इलम सिफत करे हमारी, हुकमें किया वास्ते हम॥४६॥

धाम धनी के आदेश से सबको ब्राह्मी ज्ञान (तारतम ज्ञान) प्राप्त हुआ, जिससे सारे संसार को अखण्ड मुक्ति पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस ब्रह्मवाणी में भी हमारी महिमा गायी गयी है। यह सब कुछ धाम धनी ने अपने हुक्म से हमारे लिये ही किया है।

द्रष्टव्य— यहाँ पर तो कुछ भाग्यशाली जीव ही तारतम

ज्ञान को स्वीकार करेंगे, शेष योगमाया के ब्रह्माण्ड में तारतम ज्ञान के द्वारा यथार्थ सत्य को जानेंगे और अखण्ड मुक्ति को प्राप्त करेंगे।

ए जो बका किए हम वास्ते, जाने कायम होए सिफत।

सिफत फना की ना रहे, ए हुकमें हम को दर्ई न्यामत॥४७॥

धाम धनी ने इस ब्रह्माण्ड को ब्रह्मसृष्टियों के लिये ही अखण्ड किया, ताकि ये जीव अखण्ड मुक्ति को प्राप्त करके अनन्त काल तक ब्रह्ममुनियों की महिमा गाते रहें। कालमाया के ब्रह्माण्ड में किसी की महिमा स्थिर नहीं रहती, इसलिये धाम धनी ने हमें (ब्रह्मसृष्टियों को) अपने हुक्म से अखण्ड महिमा रूपी यह निधि प्रदान की है।

मेहेर करी हक रसनाएं, सो किन विध कहूं विस्तार।

बका सब्द जो उचरे, सो देने रूहों सुख अपार॥४८॥

श्री राज जी की रसना ने जो मेहर की है, उसका विस्तारपूर्वक वर्णन मैं किस प्रकार करूँ। अखण्ड परमधाम का ज्ञान देने वाली यह ब्रह्मवाणी जो उतरी है, वह आत्माओं को अनन्त आनन्द देने के लिये ही उतरी है।

सब के हक हमको किए, हक रसनाएं बीच बका।

ए सुख इन मुख क्यों कहूं, जो दिया हादी रूहोंको भिस्तका॥४९॥

श्री राज जी की रसना ने हमें बेहद मण्डल में सभी जीवों के लिये अक्षरातीत का स्वरूप बना दिया है। श्यामा जी सहित सभी आत्माओं को जो बहिश्त का सुख प्राप्त हुआ है, उसे मैं इस मुख से कैसे व्यक्त करूँ।

भावार्थ- अक्षरातीत की रसना रूपी इस वाणी का ज्ञान प्राप्त होने से ब्रह्मसृष्टियाँ जाग्रत होंगीं और महाप्रलय के पश्चात् उनके जीवों को सत्स्वरूप की पहली बहिश्त में ब्रह्मसृष्टियों का रूप मिलेगा। इसमें श्री मिहिरराज जी का जीव श्री राज जी का स्वरूप धारण करेगा तथा श्री देवचन्द्र जी का जीव श्यामा जी का स्वरूप धारण करेगा। शेष सभी ब्रह्मसृष्टियों के जीव अँगनाओं का रूप धारण करके परमधाम जैसी लीला करेंगे और आठों बहिश्तों के जीव इसे परब्रह्म की लीला मानकर आनन्दित हुआ करेंगे। इसे ही ब्रह्मसृष्टियों की अखण्ड महिमा की लीला कहा गया है। इस चौपाई के चौथे चरण में सुख मिलने का भी यही भाव है।

कलस हिंदुस्तानी २३/१०४ के कथन "मेरे गुन अंग सब खड़े होसी, अरचासी आकार" के आधार पर तो यह

निश्चित हो जाता है कि श्री मिहिरराज जी का जीव ही सत्स्वरूप की पहली बहिःशत में श्री राज जी का स्वरूप बनेगा, किन्तु श्यामा जी का स्वरूप कौन जीव बनेगा?

इस पर मतभेद है। कुछ लोगों का कथन है कि महाराजा छत्रसाल जी ने श्री जी के साथ श्री बाई जी को भी श्यामा जी मानकर आरती की थी और "तेज कुंवारी श्यामा युगल" के कथन से भी बाई जी के जीव का श्यामा जी बनना सिद्ध होता है।

किन्तु बीतक साहेब के कथनों के आधार पर हबसे में श्री मिहिरराज जी के अन्दर विराजमान इन्द्रावती जी ने अपने सामने सिंहासन पर श्री राज जी के साथ श्री देवचन्द्र जी को बैठे हुए देखा।

यह विचार करते, श्री देवचन्द्र जी बैठे दिल पर।

ठौर एकान्त पर करके, दिल हुआ विचार पर॥

लगे चरचा करने, बरनन बानी सरूप।

यों करते दिल खुला, बैठे दिल सुन्दर रूप अनूप॥

बी. सा. १७/४६,४७

इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों तनों (श्री देवचन्द्र जी तथा श्री मिहिरराज) में श्यामा जी ने जिस जीव पर विराजमान होकर लीला की है, उसी जीव को सत्स्वरूप में श्यामा जी बनने का सौभाग्य प्राप्त होगा। श्री बाई जी के अन्दर तो अमलावती जी की वासना थी। श्रीमुखवाणी के कथनों से भी श्री देवचन्द्र जी के जीव का श्यामा जी बनना सिद्ध होता है—

मेरे धनी धाम के दुल्हा, मैं कर ना सकी पेहेचान।

सो रोऊं मैं याद कर कर, जो मारे हेत के बान॥

किरंतन ७५/१

इसमें भी हब्से के प्रसंग की ओर संकेत किया गया है।

अर्स के सुख तो हमेसा, घट बढ़ इत नाहें।

पर ए नया सुख नई साहेबी, कायम कर दिया भिस्त माहें॥५०॥

परमधाम के सुख तो हमेशा एकरस हैं। उनमें कभी कमी या अधिकता नहीं हो सकती, किन्तु सत्स्वरूप की पहली बहिश्त में एक नये प्रकार का सुख और नये प्रकार का स्वामित्व धाम धनी ने प्रदान कर दिया है।

अर्स सुख और भिस्तका सुख, ए खेल में दिए सुख दोए।

इन दोऊ में दिए सुख खेलके, ए हक रसना बिना क्यों होए॥५१॥

इस माया के खेल में धाम धनी ने हमें, परमधाम के तथा बहिश्तों के, दोनों सुखों का अनुभव कराया है। इसी प्रकार परमधाम में तथा बहिश्त में इस माया के खेल का सुख दिया है। यह सब धाम धनी की रसना से ही सम्भव हो सका है।

भावार्थ- इस जागनी ब्रह्माण्ड में श्री राज जी ने ब्रह्मवाणी द्वारा हमें परमधाम के २५ पक्षों का जो ज्ञान दिया है, उसका आनन्द हम ध्यान (चितवनि) द्वारा प्राप्त कर रहे हैं। इसी प्रकार हम ब्रह्मवाणी के ज्ञान से ध्यान द्वारा बेहद की आठों बहिशतों का भी अनुभव प्राप्त कर सकते हैं। इसी को खेल में परमधाम और बहिशत का सुख प्राप्त करना कहते हैं।

इस जागनी लीला में हमारी आत्मा के साथ जो कुछ भी घटित हो रहा है, उसे धाम धनी के दिल रूपी पर्दे पर हमारी परात्म देख रही है। परमधाम में जाग्रत हो जाने के पश्चात् परात्म उस लीला को याद करके आनन्दित होगी।

इसी प्रकार सत्स्वरूप की पहली बहिशत में हमारे जीवों को इस खेल की सारी बातें याद आ जायेंगी। ब्रह्मात्मा का रूप धारण किया हुआ जीव ब्रज, रास, और जागनी

लीला की घटनाओं को याद करके आनन्दित हुआ करेगा। इसे ही बहिश्त में खेल का आनन्द लेना कहा गया है। इस सम्बन्ध में सिन्धी १६ / १५, १६ में कहा गया है—

इन विध सब हुकमें कर, खेल देखाया खिलवत अंदर।
 बातें खिलवत की करीं खेल में, जो गुझ हक के दिल भीतर॥
 और खेल की बातें सब, होसी बीच खिलवत।
 लेसी खेल का सुख खिलवत में, लिया खेल में सुख निसबत॥

दर्ई भिस्त चौदे तबक को, सबों पूरा इस्क इलम।

सो सब सेवें हम को, सबों बल रसना खसम॥५२॥

धाम धनी ने चौदह लोक के सभी प्राणियों को बहिश्तों में अखण्ड मुक्ति प्रदान की है। उस समय उन मुक्ति स्थानों (बहिश्तों) में अखण्ड होने वाले सभी जीवों में

इश्क और इल्म भरपूर होगा। मुक्त होने वाले ये सभी जीव हम ब्रह्मात्माओं के जीवों को ही ब्रह्माँगना मानकर सेवा करेंगे। यह सब कुछ धाम धनी की रसना के बल से ही सम्भव हुआ है।

भावार्थ- इस मायावी ब्रह्माण्ड में सभी जीव न तो प्रेम की राह पर चल सकेंगे और न ब्रह्मवाणी के ज्ञान को ग्रहण कर पायेंगे। साम्प्रदायिक कट्टरता और धर्माधता के इस युग में जब पृथ्वीवासी ही ब्रह्मवाणी के सिद्धान्तों को नहीं मान रहे हैं, तो स्वर्ग-वैकुण्ठ वाले भला क्यों मानेंगे? यह सारी लीला योगमाया के ब्रह्माण्ड में होगी, जहाँ जाग्रत बुद्धि होने से सबके पास ब्रह्मज्ञान और प्रेम का अमृत होगा।

पेहेले प्यार दिया मुझे इलम सों, सो मुझपे इलम दिवाए।

सब दुनियां को आरिफ कर, मुझ आगे सबपे कथाए॥५३॥

प्रियतम अक्षरातीत ने मेरे हृदय में तारतम ज्ञान का प्रकाश कर अपने प्रेम को प्रकट किया। इस प्रकार उन्होंने मुझसे दूसरों को ब्रह्मवाणी का ज्ञान दिलवाया। धनी ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को मेरे द्वारा ज्ञान दिलवाकर ज्ञानवान बना दिया।

भावार्थ- इस ब्रह्माण्ड में पाँचवें दिन से लेकर योगमाया में अखण्ड होने तक की लीला में सारी शोभा महामति जी की है। यद्यपि इस छठें दिन की लीला में भिन्न-भिन्न आत्माओं के द्वारा जागनी लीला चलती रही है और इसमें प्रत्यक्ष रूप से श्री मिहिरराज जी के तन की लीला नहीं दिखायी देती, फिर भी इन सभी लीलाओं के मूल में महामति जी ही हैं। प्रत्येक ब्रह्ममुनि को जागनी लीला की

प्रेरणा, शक्ति, तथा ज्ञान की प्राप्ति महामति जी के चरणों में ही होती है तथा देह त्याग के पश्चात् भी उन्हीं के चरणों में गुम्मत जी पहुँचना पड़ता है। धाम धनी ने उन्हें सारी शोभा दे रखी है। इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी के ये कथन देखने योग्य हैं—

नाम सिनगार शोभा सारी, मैं भेख तुमारो लियो।

किरंतन ६२/१५

सुख देऊं सुख लेऊं, सुख में जगाऊं साथ।

इंद्रावती को उपमा, मैं दई मेरे हाथ॥

कलस हिंदुस्तानी २३/६८

महाप्रलय के पश्चात् भी बेहद मण्डल में ब्रह्माण्ड के सभी प्राणियों को जाग्रत ज्ञान का जो प्रकाश मिलेगा, उसमें भी श्री महामति जी का ही निर्देशन रहेगा, क्योंकि उन्हीं के धाम हृदय में इस्राफिल फरिश्ता (बुद्ध जी) विद्यमान

होगा। इसे ही श्री महामति जी के द्वारा सारे ब्रह्माण्ड को ज्ञान देना कहा गया है।

ए सब हक रसनाएं किया, इलम प्यारा लग्या सबन।

सो इलमें आरिफ पूजें मोहे, असल अर्स में हमारे तन॥५४॥

यह सारी लीला श्री राज जी की रसना की है। धाम धनी की रसना रूपी ब्रह्मवाणी का यह ज्ञान सबको बहुत प्यारा लग रहा है। इस ब्रह्मवाणी से ज्ञान प्राप्त करने वाले ज्ञानीजन मेरे स्वरूप की पहचान करके मेरी पूजा कर रहे हैं, जबकि मेरा मूल तन तो परमधाम में है।

भावार्थ— श्रीमुखवाणी को आत्मसात् करने वाला निश्चित रूप से श्री महामति जी के धाम हृदय में अक्षरातीत श्री राज जी (श्री प्राणनाथ जी) का स्वरूप विराजमान हुआ मानेगा और उसी भाव से अपना सर्वस्व

न्योछावर करेगा। इस सम्बन्ध में किरंतन १०९/२१ का यह कथन देखने योग्य है—

नर नारी बूढ़ा बालक, जिन इलम लिया मेरा बूझ।

तिन साहेब कर पूजिया, अर्स का एही गुझ।।

प्यार लग्या मोहे जिनसों, हकें बड़ा किया सोए।

सो सबपे केहेलाए हुकमें, सब विध सुख दिया मोहे।।५५।।

जिन ब्रह्ममुनियों के प्रति मेरे हृदय में प्रेम था, धाम धनी ने उन्हें इस खेल में बहुत बड़ी शोभा दी। श्री राज जी ने अपने आदेश (हुक्म) से उन सभी ब्रह्ममुनियों से मेरी महिमा गवाई। इस प्रकार धाम धनी ने मुझे हर प्रकार का सुख दिया है।

भावार्थ— कलस हिंदुस्तानी २३/६६ का कथन है—

इंद्रावती के मैं अंगे संगे, इंद्रावती मेरा अंग।

जो अंग सौंपे इंद्रावती को, ताए प्रेमें खेलाऊं रंग॥

इस प्रकार श्री लाल दास जी, मुकन्द दास जी, भीम भाई, तथा महाराजा छत्रसाल आदि ने श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान अक्षरातीत के स्वरूप को पहचाना और उसी भाव से सेवा की। परिणाम स्वरूप श्री राज जी ने उन्हें इस खेल में बहुत बड़ी शोभा दी। महाराजा छत्रसाल जी ने तो यहाँ तक कह दिया—

साथ समस्त के बीच में, जुगल धनी बैठाए।

कही तुम साक्षात् अक्षरातीत हो, हम चीन्हा तुमें बनाए॥

श्री ठकुरानी जी संग साथ ले, पधारे मेरे घर।

धनी बिना तुम्हें और देखे, सो नहीं मिसल मातबर॥

बी. सा. ६०/५७,५८

इस जागनी ब्रह्माण्ड में श्री महामति जी के चरणों से दूर

रहकर या उन्हें सन्त, कवि, और महापुरुष मानकर न तो कोई अपनी आत्मा को जाग्रत कर सकता है और न खेल में कोई शोभा प्राप्त कर सकता है।

ए सुध नहीं अजूं मोमिनो, जो सुख दिए हक रसनाएं।
 हकें सुख दिए आप माफक, सो कहा जाए न इन जुबांएं॥५६॥
 अक्षरातीत की रसना ने इस खेल में हमें जो सुख दिया है, उसकी सुध अभी भी ब्रह्मसृष्टियों को नहीं है। धाम धनी ने तो अपनी अनन्त महिमा के अनुकूल हमें अनन्त सुख दिया है, जिसका वर्णन इस जिह्वा से नहीं हो सकता।

कर कायम हक रसना रस, सचराचर दिए पोहोंचाए।
 यों रसना के रस हम को, सुख कई विध दिए बनाए॥५७॥

तारतम वाणी अक्षरातीत की रसना से प्रवाहित होने वाला अमृत-रस है। इस तारतम वाणी ने ब्रह्माण्ड के सभी चर-अचर प्राणियों को बेहद मण्डल में अखण्ड मुक्ति प्रदान की है। इस प्रकार धाम धनी की रसना की रस स्वरूपा इस ब्रह्मवाणी ने हमें अनेक प्रकार के सुखों का रसास्वादन कराया है।

सबों इलम पढ़ाए आलम किए, जिनसों था मेरा प्यार।
 सो सुख हक रसनाएं दिया, करके बका विस्तार॥५८॥
 जिन ब्रह्मसृष्टियों से मेरा प्रेम था, धाम धनी ने उन्हें ब्रह्मवाणी का ज्ञान देकर ज्ञानवान बना दिया। इस प्रकार श्री राज जी की रसना ने अखण्ड परमधाम का ज्ञान देकर वहाँ के सुखों का अनुभव कराया है।

भावार्थ- इस चौपाई से भी यही बात स्पष्ट होती है कि

श्री प्राणनाथ जी के चरणों से विमुख होकर न तो किसी को ब्रह्मवाणी का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो सकता है और न परमधाम का सुख प्राप्त हो सकता है।

ए कायम सुख हक तरफके, हक इलम इस्क हुकम।

सुख लाड़ लज्जत हुज्जत के, दिए कायम मेरे खसम॥५९॥

श्री राज जी के इल्म (तारतम ज्ञान), प्रेम, और हुक्म (आदेश शक्ति) में परमधाम के अखण्ड सुख निहित हैं। मेरे प्रियतम अक्षरातीत ने हमें प्रेम के अखण्ड सुखों का रसास्वादन कराया है और इन्हें प्राप्त करने का दावा भी दिया है।

सुध न हुती हक साहेबी, ना सुध इलम वाहेदत।

सुध ना हुज्जत निसबत, सो सुध दर्ई जुबां खिलवत॥६०॥

धनी की रसना स्वरूपा इस ब्रह्मवाणी के अवरतण से पूर्व न तो हमें धाम धनी के स्वामित्व (साहिबी) की सुध थी और न एकत्व (वहदत) के ज्ञान की सुध थी। यहाँ तक कि खिल्वत और धनी से अपने मूल सम्बन्ध का दावा लेने की भी सुध नहीं थी, किन्तु धनी की रसना ने हमें यह सारी सुध दे दी है।

हक बका सुख कई विध, अर्स में नहीं सुमार।

बिन बूझे सुख हम लेते, हुते न खबरदार॥६१॥

परमधाम में श्री राज जी के अखण्ड सुख इतने प्रकार के हैं कि उनकी कोई सीमा नहीं है। उन सुखों का रसपान हम बिना पूर्ण ज्ञान के ही कर रहे थे। हम सुखों के मूल परमसत्य (मारिफत) को जानने के प्रति सावधान नहीं थे।

भावार्थ- लीला में हकीकत का ही स्वरूप होता है। परमधाम में सखियाँ प्रेम (इश्क) और आनन्द में इतनी डूबी हुई थीं कि उन्हें उसके परमसत्य (मारिफत) स्वरूप की पहचान ही नहीं थी। वहदत होने के कारण इश्क का निरूपण सम्भव नहीं था। इसी को खुलासा १७/४६ में कहा गया है कि "रुहें बेनियाज थीं, बीच दरगाह बारे हजार।" इस चौपाई में सावधान (खबरदार) न रहने का भाव यही है।

सो आठों भिस्त कायम कर, दिए अर्स पट खोल मारफत।
 तिनमें पुजाए सुख दिए, कर जाहेर हक निसबत॥६२॥
 इसलिये धाम धनी ने अपनी रसना रूपी ब्रह्मवाणी से माया का पर्दा हटाकर परमधाम का दरवाजा खोल दिया तथा मारिफत की पहचान करायी। उन्होंने बेहद मण्डल

में आठों बहिश्तों को अखण्ड कर दिया। उन बहिश्तों में अँगनाओं से अपने मूल सम्बन्ध को प्रकट (जाहिर) कर मुक्त जीवों से हमारी पूजा करवायी तथा हमें सुख दिया।

भावार्थ— सत्स्वरूप में ब्रह्मसृष्टियों की जीवों को परमधाम की अँगनाओं का रूप प्राप्त हो जाने से अन्य बहिश्तों वाले यही मानेंगे कि ये ही ब्रह्माँगनायें हैं। इसे ही बेहद मण्डल में मूल सम्बन्ध (निस्बत) को जाहिर करना कहा गया है। जिस प्रकार लौकिक जगत में किसी व्यक्ति के चित्र या मूर्ति के प्रति किया गया सम्मान उस व्यक्ति के हर्ष का कारण होता है, उसी प्रकार सत्स्वरूप में ब्रह्मसृष्टियों के प्रतिबिम्ब स्वरूप तनों की पूजा (श्रद्धा, सम्मान) परमधाम में रहने वाली ब्रह्मात्माओं के हर्ष का कारण होगा। इस चौपाई के तीसरे चरण का यही भाव है।

हक रसना सुख दिए देत हैं, और सुख देंगे आगूं जे।

सो इतथें सब हम देखत, सुख केते कहूं रसना के॥६३॥

धाम धनी ने अपनी रसना से हमें अनेक प्रकार का सुख दिया है, वर्तमान में दे रहे हैं तथा भविष्य में भी देते रहेंगे। इस सारी लीला को हम खेल में बैठे हुए देख रहे हैं। मैं प्रियतम अक्षरातीत की रसना के सुखों का कितना वर्णन करूँ।

हक रसनाएं ऐसी सुध दर्ई, हुआ है होसी बका माहें।

यों खोली अंतर रूह नजर, ऐसी हुई ना रूहों सों क्याहें॥६४॥

धाम धनी की रसना रूपी इस ब्रह्मवाणी ने हमारी आत्मिक दृष्टि को इस प्रकार खोल कर ऐसी सुध दे दी है कि परमधाम में जो कुछ भी अब तक हुआ है या होगा, उसका सम्पूर्ण ज्ञान हमें हो गया है। आत्माओं को आज

दिन तक इस प्रकार सर्वोपरि (मारिफत) का ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ था।

भावार्थ- श्रीमुखवाणी श्री राज जी की रसना का रस है। इसे आत्मसात् करने से ईमान (श्रद्धा, विश्वास) परिपक्व होता है। धनी की मेहर से विरह-प्रेम की राह अपनाने पर आत्मिक दृष्टि माया से परे हटकर परमधाम को देखने लगती है और मारिफत के उन सम्पूर्ण रहस्यों को जान जाती है, जो पहले नहीं जानती थी। वस्तुतः यह सब बताने के लिये ही धाम धनी ने यह खेल बनाया है।

कहूं केते सुख हक रसना, जैसे आप अलेखे अपार।

सो सब सुख बका में रूहों, जाको होए न काहूं सुमार॥६५॥

मैं अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत की रसना के कितने

सुखों का वर्णन करूँ। जैसे अक्षरातीत की महिमा अनन्त है, वैसे ही उनकी रसना के सुख भी अनन्त हैं जिन्हें किसी भी प्रकार से शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। धाम धनी की रसना के ये सभी सुख ब्रह्मसृष्टियों को स्वाभाविक रूप से प्राप्त हैं। इन सुखों की कोई सीमा नहीं है।

ए नेक कह्या बीच खेल के, हक रसना के गुन।

ए सब बातें मिल करसी, आगूं हक बका वतन॥६६॥

मैंने तो इस संसार में श्री राज जी की रसना के गुणों का बहुत थोड़ा सा वर्णन किया है। जब हम निजधाम में अपने मूल तनों में जाग्रत होंगे, तो सभी आपस में मिलकर रसना के गुणों के विषय में चर्चा करेंगे।

सुनो महामत रसना रस, और सुनाइयो मोमिन।

जो हुक्म कहे तोहे हेत कर, हक रसना के गुन॥६७॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरी आत्मा! धाम धनी का आदेश (हुक्म) तुझे बहुत प्यारपूर्वक प्रियतम की रसना के गुणों को सुना रहा है। उसे तुम सुनो और दूसरे ब्रह्ममुनियों को भी सुनाओ।

प्रकरण ॥१६॥ चौपाई ॥८८२॥

हक मासूक के वस्तर

प्रेमास्पद श्री राज जी के वस्त्रों की शोभा

इस प्रकरण में श्री राज जी के नूरमयी वस्त्रों की शोभा का वर्णन किया गया है।

देत निमूना बीच नासूत, जानों क्योंए आवे माहें दिल।

आगूं मेला बड़ा होएसी, लेसी मोमिन ए विध मिल॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि मैं इस मृत्युलोक के वस्त्रों का नमूना देकर धाम धनी के वस्त्रों का वर्णन कर रही हूँ, ताकि किसी भी तरह से आत्माओं के धाम हृदय में यह शोभा बस जाये। आगे जब परमधाम में हम अपने मूल तनों में जाग्रत होंगे तो इनकी वास्तविक शोभा को जान जायेंगे।

भावार्थ— यद्यपि धाम धनी के वस्त्रों और आभूषणों की

वास्तविक शोभा को चितवनि में भी देखा जा सकता है, किन्तु उसका रसपान केवल आत्मा ही कर पाती है। इस नश्वर जगत में जीव के लिये यह सम्भव नहीं हो पाता कि आत्मा के माध्यम से उसे जिस शोभा का थोड़ा सा अनुभव हुआ है, उसे यथार्थ रूप में व्यक्त कर सके। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिये ही यह बात कही गयी है कि परमधाम में जाग्रत होने पर वस्त्रों की वास्तविक शोभा को जाना जा सकता है, यद्यपि वहाँ इस जीव की उपस्थिति नहीं रहेगी।

एक देऊं निमूना दुनी का, जो पैदा दुनी में होत।

धागा होत है रूई का, और जवेरों जोत॥२॥

इस संसार में जिस प्रकार वस्त्र बनाये जाते हैं, मैं उनका दृष्टान्त देकर श्री राज जी के वस्त्रों का वर्णन कर

रही हूँ। इस मायावी जगत में तो वस्त्रों के धागे रुई से बनाये जाते हैं और ज्योति की जगमगाहट के लिये जवाहरातों का उपयोग किया जाता है।

धागा असल रुई तांतसा, जवेर जैसी जोत नंग ।

हुकमें बनें ताके वस्तर, होए कैसा पेहेनावा अंग॥३॥

लीला रूप में परमधाम का नूरमयी धागा रुई के धागे जैसा ही दिखता है और उसमें जवाहरातों के नगों जैसी ज्योति भी झलकती है। धाम धनी के आदेश मात्र से ऐसे नूरमयी धागे से इच्छानुसार वस्त्र बने होते हैं। अब इस बात को सहज में सोचा जा सकता है कि परमधाम के नूरमयी अंगों में किस प्रकार के नूरमयी वस्त्र पहने जाते हैं।

पैदा निमूना दुनी का, अर्स जिमिएं नहीं पोहोंचत ।

दुनी निमूना हक को, ए कैसी निसबत॥४॥

इस संसार में उत्पन्न होने वाली किसी भी वस्तु का दृष्टान्त परमधाम की किसी वस्तु से नहीं दिया जा सकता। इस झूठे संसार के वस्त्रों से श्री राज जी के नूरी वस्त्रों की उपमा देने का कोई प्रश्न ही नहीं है। इन दोनों में किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं है।

जामा कहूं मैं सूत का, के कहूं कपड़ा रेसम।

के कहूं हेम नंग जवेर का, के कहूं अव्वल पसम॥५॥

श्री राज जी के नूरमयी जामे के विषय में मैं यह निर्णय नहीं कर पा रही हूँ कि उसे किस रूप में कहूँ। उसे मैं सूती कपड़े से बना हुआ कहूँ या रेशमी कपड़े से? उसे अति श्रेष्ठ पश्म (सनील) से बना हुआ मानूँ या सोने के

तारों में जड़े हुए जवाहरातों के नगों से सुशोभित वस्त्र मानूँ?

द्रष्टव्य— सूती और रेशमी धागों की तरह सोने और चाँदी के तारों (धागों) से भी वस्त्र बनाये जाते हैं, जिनमें तरह-तरह के जवाहरातों के नग जड़े हुए होते हैं।

ए पाँचों उत पोहोंचे नहीं, जो कर देखो सहूर ।

क्यों पोहोंचे फना जड़ निमूना, ए हक बका चेतन नूर॥६॥

हे साथ जी! यदि आप विचार करके देखें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि इस जगत की ये पाँचों वस्तुएँ – सूत, रेशम, सोना, जवाहरात, और पश्म (सलीन)– उस परमधाम में नहीं हैं। श्री राज जी के वस्त्र तो चेतन , नूरमयी, एवं अखण्ड हैं। भला इस संसार की नश्वर जड़ वस्तुओं से परमधाम के वस्त्रों की उपमा कैसे दी जा

सकती है।

जो कहूं बका जिमीय के, जवेर या वस्तर।

सो भी रूह के अंग को, सोभा कहिए क्यों कर॥७॥

यदि मैं अखण्ड परमधाम के जवाहरातों या वस्त्रों की शोभा का वर्णन करती हूँ तो उनका यथार्थ वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है, क्योंकि ये वस्त्र एवं आभूषण तो आत्माओं के अंग रूप हैं अर्थात् उनके नूरी अंगों के समान हैं।

जो चीज पैदा जिमी की, सो दूसरी कही जात।

चीज दूसरी वाहेदत में, कैसे कर समात॥८॥

इस नश्वर जगत में जब किसी नयी वस्तु की उत्पत्ति होती है तो उसे दूसरी वस्तु के रूप में सम्बोधित

(नामकरण) किया जाता है, किन्तु परमधाम की वहदत (एकदिली) में भला किसी नयी वस्तु का अस्तित्व कैसे सम्भव है।

भावार्थ- कालमाया के ब्रह्माण्ड में नयी वस्तुओं की उत्पत्ति और विनाश का चक्र चलता रहता है। योगमाया के ब्रह्माण्ड में किसी नूरमयी वस्तु का प्रकटीकरण तो हो सकता है, किन्तु उसका विनाश सम्भव नहीं है। इनके विपरीत परमधाम में न तो किसी वस्तु की उत्पत्ति हो सकती और न विनाश हो सकता है। वहाँ के कण-कण में मात्र सच्चिदानन्द अक्षरातीत का स्वरूप क्रीड़ा कर रहा है।

हक इलमें चुप कर न सकों, और सब्द में न आवे सिफत।
ताथें हुकम केहेत है, सुनो जामें की जुगत॥९॥

मेरे अन्दर धाम धनी का दिया हुआ ज्ञान है, इसलिये मैं चुप भी नहीं रह सकती और शब्दों में शोभा का वर्णन भी हो पाना सम्भव नहीं है। इसलिये अब जो कुछ भी कहा जा रहा है, वह श्री राज जी का हुक्म ही कह रहा है। हे साथ जी! अब आप जामे की बनावट का वर्णन सुनिए।

पर कछुक निमूने बिना, नजरोँ न आवे तफावत।

तो चुप से तो कछू कह्या भला, रूह कछू पावे लज्जत॥१०॥

लेकिन बिना किसी उपमा (दृष्टान्त) के वर्णन करने पर परमधाम के वस्त्रों में तथा संसार के वस्त्रों में कोई भेद प्रतीत नहीं होगा। इसलिये पूर्णतया चुप रहने से तो कुछ कहना ही अच्छा है, ताकि आत्मा को उसका कुछ तो रसास्वादन हो सके।

भावार्थ— इस चौपाई में यह बात दर्शायी गयी है कि

परमधाम के नूरमयी वस्त्रों को इस संसार में प्रकाशमयी, चेतन, और अंगों के समान ही शोभायमान कहकर वर्णन करना पड़ता है। उसमें जड़े हुए चेतन जवाहरातों को इस संसार के जवाहरातों से तुलनात्मक दृष्टि में करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान कहकर वर्णन किया जाता है। यदि ऐसा न किया जाये, तो भी ऐसा प्रतीत होगा जैसे किसी पञ्चभौतिक वस्त्र की शोभा का वर्णन किया जा रहा है। यद्यपि परमधाम के वस्त्रों की वास्तविक शोभा तो कुछ और ही है, करोड़ों सूर्यों के तेज की उपमा तो मात्र अंश रूप ही कही जा सकती है।

ए दिल में ले देखिए, अर्स धागा और नंग।

जोत न माए आकास में, जो सोभें पेहेने हक अंग॥११॥

हे साथ जी! आप इस बात को अपने दिल में लेकर

परमधाम के धागे और नगों से रचित प्रियतम अक्षरातीत के उन वस्त्रों की शोभा को देखिए, जिन्हें धाम धनी ने अपने अंगों में धारण कर रखा है। इन वस्त्रों की नूरी ज्योति इतनी अधिक है कि वह अनन्त आकाश में भी नहीं समा पा रही है।

वस्तर नहीं जो पेहेर उतारिए, ए हक अंग नूर रोसन।

दिल चाह्या रंग जोत पोत, अर्स अंग वस्तर भूखन॥१२॥

धनी के ये वस्त्र संसार के वस्त्र नहीं हैं, जिन्हें पहनना या उतारना पड़ता है। ये तो धाम धनी के अन्य अंगों की तरह ही जगमगाते हुए नूरी अंग हैं। श्री राज जी के अंगों में शोभायमान परमधाम के ये वस्त्र एवं आभूषण इस प्रकार के हैं कि दिल की इच्छा मात्र से इनकी ज्योति तथा रंगों की शोभा बदल जाती है।

ए जो कही जुगत जामे की, हक अंग का रोसन।

और भांत सुख आसिकों, पेहेने तन वस्तर भूखन॥१३॥

यह जो मैंने धाम धनी के जामे की बनावट की शोभा का वर्णन किया है, वह तो श्री राज जी के अंगों का ही नूर है। प्रियतम ने अपने तन में जो वस्त्र एवं आभूषण धारण कर रखे हैं, वे अँगनाओं को अनेक प्रकार (तरह-तरह) से आनन्द देते हैं।

नीला रंग इजार का, मिहीं चूड़ी घूटी ऊपर।

तिन पर झलके दावन, हरी झाँई आवत नजर॥१४॥

श्री राज जी की इजार का रंग नीला है। इसमें घुटनों के ऊपर बारीक चुन्नटों की शोभा आयी है। इसके ऊपर श्वेत रंग के जामे का दावन (घेरा) आया है, जिससे इजार का रंग हरा दिखायी दे रहा है।

भावार्थ- गुजराती भाषा में हरे रंग को नीला अवश्य कहा जाता है, किन्तु श्रृंगार ग्रन्थ की भाषा हिन्दुस्तानी है जिसमें नीला और हरा रंग अलग-अलग बताये गये हैं। नीले रंग में सफेद रंग को मिलाने से हरा रंग वैसे ही बन जाता है, जैसे लाल रंग में सफेद रंग मिलाने से वह गुलाबी हो जाता है।

रंग नंग बूटी कछुए, लगत नहीं हाथ को।

ए सुख बारीक अर्स के, इन अंग का नूर अर्स मौं॥१५॥

इन वस्त्रों के रंगों, जड़े हुए जवाहरातों के नगों, एवं बूटियों की शोभा कुछ ऐसी है कि इन्हें पकड़ने या छूने का प्रयास करने पर हाथ में नहीं आते। परमधाम के सुखों की ये सूक्ष्म (गुह्य) बातें हैं। प्रियतम श्री राज जी के इन अंगों का नूर ही सम्पूर्ण परमधाम में दृष्टिगोचर हो

रहा है।

जोत करे दिल चाहती, जैसी नरमाई अंग चाहे।

सोभा धरे दिल चाहती, जुबां खुसबोए कही न जाए॥१६॥

श्री राज जी के वस्त्र दिल की इच्छानुसार जगमगाया करते हैं। अंगों की इच्छानुसार इन वस्त्रों में कोमलता होती है। हृदय की चाहना के अनुसार ही इन वस्त्रों में सारी शोभा दिखायी देती है। इस जिह्वा से धनी के वस्त्रों की मनोरम सुगन्धि का वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

भावार्थ- सागर और श्रृंगार ग्रन्थ में जहाँ भी दिल की इच्छानुसार लीला होने का वर्णन है, वहाँ दिल (हृदय) का तात्पर्य श्री राजश्यामा जी और सखियों के दिल से है। वहदत (एकत्व) में सबका हृदय एक ही होता है। मारिफत की दृष्टि से परमधाम का एक-एक कण श्री राज

जी के दिल का ही स्वरूप है।

चोली अंग को लग रही, सेत जामा अंग गौर।

चीन से कुसादी दावन, ताको क्योंकर कहूं जहूर॥१७॥

प्राणवल्लभ श्री राज जी के गोरे अंग पर श्वेत रंग का जामा झलझला रहा है। जामे की (चोली) वक्षस्थल से सटी हुई है। चोली से नीचे घेरे में खुली हुई चुन्नटों की शोभा आयी है, जिनकी नूरमयी शोभा का वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

भावार्थ- गले से नीचे वक्ष तक के भाग को "चोली" कहते हैं। इसके पतले कटाव को "चीन" कहते हैं।

पेहेनावा अर्स अजीम का, क्यों कहिए माहें सुपन।

कंकरी एक अर्स की, उड़ावे चौदे भवन॥१८॥

जिस परमधाम की एक कंकड़ी के तेज के सामने चौदह लोक का यह ब्रह्माण्ड ही समाप्त हो जाता है (अस्तित्व विहीन हो जाता है), उस परमधाम के पहनावे का वर्णन भला इस झूठे संसार में कैसे हो सकता है।

वस्त्रों में कई रंग हैं, सो हाथ को लगत नाहें।

और भी हाथ लगें नहीं, जो जवेर वस्त्रों माहें॥१९॥

श्री राज जी के वस्त्रों में अनेक प्रकार के रंग हैं, जिनको हाथ से नहीं छुआ जा सकता। इसी प्रकार वस्त्रों में जड़े हुए जवाहरातों के नगों को भी हाथ से पकड़ना (छू पाना) सम्भव नहीं है।

रंग रेसम जवेर जो देखत, सो सब मसाला नंग।

वस्तर भूखन सब नंगों के, माहें अनेक देखावें रंग॥२०॥

धाम धनी के वस्त्रों में अनेक प्रकार के रंग, रेशम, और जवाहरात रूपी जो सामग्री दिखायी देती है, वह नगों का ही स्वरूप है। परमधाम के वस्त्र और आभूषण सभी नगों के होते हैं। इनमें अनेक प्रकार के रंग दृष्टिगोचर होते हैं।

कई बेली किनार में, और कई विध बेली चीन।

बीच बूटी छापे कई नक्स, इन जल की जाने जल मीन॥२१॥

जामे के किनारे वाले भागों में तथा चोली के भाग में अनेक प्रकार की बेलों (लताओं) की चित्रकारी है। इनके बीच-बीच में अनेक प्रकार की बूटियों और छापों की चित्रकारी (नक्शकारी) है। परमधाम के सौन्दर्य रूपी सागर के जल में रहने वाली मछलियाँ (ब्रह्मसृष्टियाँ) ही इस शोभा को यथार्थ रूप से जानती हैं।

द्रष्टव्य— केवल दावन के किनारों पर ही लताओं के चित्र

नहीं बने हैं, बल्कि गले और काँख के पास बाँहों के घेरे वाले किनारे के भाग में भी बेलियों का चित्राँकन है।

रंग कंचन कमर कस्या, पटुका जो पूरन।

केते रंग इनमें कहूं, जानों एही सबे भूखन॥२२॥

धाम धनी की कमर में कञ्चन रंग का पटुका बँधा हुआ है। इसकी शोभा पूर्णातिपूर्ण है। इसके कितने रंगों का मैं वर्णन करूँ, अर्थात् इसमें इतने रंग हैं कि इनका वर्णन हो पाना सम्भव ही नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे इस पटुके के अन्दर सभी आभूषण समाहित (विद्यमान) हो गये हैं।

सो रंग सारे जवेरन के, कई रंग छेड़े किनार।

हर धागे रंग कई विध, नहीं रंग जोत सुमार॥२३॥

ये सभी रंग जवाहरातों के हैं, अर्थात् पट्टके में इतने जवाहरात जड़े हुए हैं कि उनके रंगों ने अलौकिक शोभा धारण कर रखी है। दोनों पल्लों की किनार पर अनेक प्रकार के रंग आये हैं। प्रत्येक नूरमयी धागे में अनेक प्रकार के रंग दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इस प्रकार रंगों से निकलने वाली ज्योति की कोई सीमा नहीं है।

दोऊ बगलों केवड़े, किन विध कहूं रोसन।

कई रंग नंग माहें झलकत, जामा क्यों कहूं अर्स तन॥२४॥

जामे की दोनों बगल (तरफ) में केवड़े के फूलों की शोभा आयी है। उनकी जगमगाहट भरी शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ। जामे में अनेक रंगों के नंग झलकार कर रहे हैं। परमधाम के इस नूरमयी तन में धारण किये गये जामे की शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ।

ए सोभा देख सुख उपजे, हक वस्तर या भूखन।

और इनकी मैं क्यों कहूं, जो रहेत ऊपर इन तन॥२५॥

धाम धनी के इन वस्त्रों और आभूषणों की शोभा को देखकर हृदय में आनन्द प्रकट होता है। श्री राज जी के तन से हमेशा लिपटे रहने वाले इन वस्त्रों और आभूषणों के अद्वितीय सौभाग्य के विषय में मैं क्या कहूँ।

गिरवान दोऊ देखत, अति सुन्दर अनूपम।

मुख आगे मासूक के, निरखत अंग आतम॥२६॥

जामे के दोनों बन्ध (गिरवान) अति सुन्दर हैं। इनकी शोभा की उपमा किसी से भी नहीं दी जा सकती। ये दोनों बन्ध धाम धनी के मुख के आगे वक्षस्थल पर आये हुए हैं। इनकी शोभा को आत्मा अपने अंगों (नेत्रों) से देखा करती है।

भावार्थ- जामें के दोनों हिस्सों को जोड़ने के लिये छोटी-छोटी डोरियों (वर्तमान में बटनों) का प्रयोग किया जाता है। इन्हें गिरवान या बन्ध कहते हैं। जिस प्रकार हाथ, पैर, मुख, नेत्र, और नासिका आदि परात्म के अंग कहे जाते हैं, उसी प्रकार परात्म की प्रतिबिम्ब स्वरूपा आत्मा के नेत्र भी उसके अंग माने जायेंगे, जिनके द्वारा वह अपने प्राणवल्लभ की मनोहारिणी शोभा को निरखा करती हैं।

बातें करें सलोनियां, मासूक सलोंने मुख।

नैन सलोंने रस भरे, कई देत आसिकों सुख॥२७॥

धाम धनी अपने सुन्दर मुख से बहुत मीठी-मीठी प्रेम भरी बातें करते हैं। उनके अति सुन्दर नेत्र अनन्त प्रेम के रस से भरे हुए हैं। वे आत्माओं को अनेक प्रकार के

आनन्द देते हैं।

दोऊ बेल दोऊ बगलों पर, जानों कुन्दन नंग जड़तर।

नीले पीले लाल जवेर, सुख पाऊं देत नजर॥२८॥

जामे के दोनों बगल (तरफ) दो बेलें इस प्रकार शोभा दे रही हैं, जैसे सोने में नग जड़े गये हो। जब मैं जामे में जड़े हुए नीले (नीलम आदि), पीले (पुखराज आदि), और लाल आदि (प्रवाल, माणिक आदि) रंग वाले जवाहरातों के नगों को देखती हूँ, तो मुझे बहुत अधिक आनन्द आता है।

दोऊ बांहें चूड़ी अति सुन्दर, मिहीं मिहीं से लग मोहोरी।

कई रंग नंग चूड़ियों, जवेर जवेर बीच जरी॥२९॥

जामे की दोनों बाहों में बनी हुई चुन्नटें बहुत सुन्दर लग

रही हैं। ये चुन्नटें बहुत ही बारीक (महीन, पतली) हैं और दोनों बाहों की सम्पूर्ण मोहरी में आयी हैं। चुन्नटों में अनेक रंग के जवाहरातों के नग जड़े हुए हैं, जिनके बीच में सोने के तारों से कढ़ाई (जरी) की गयी है।

मोहोरी जड़ाव फूल बने, जानों के एही नंग भूखन।

बेल जामें जो जुगतें, सबथें सोभा अति घन॥३०॥

बाहों की मोहरी में जो फूल बने हैं, उन्हें देखने पर ऐसा प्रतीत होता है जैसे ये नगों के आभूषण हैं। जामे के ऊपर जो बेलों (लताओं) की बनावट आयी है, उनकी शोभा सबसे अधिक प्रतीत हो रही है।

किन विध जामा लग रह्या, ए जो अंग का जहूर।

कई नकस बूटी मिहीं बेलियां, रूह कर देखे अर्स सहूर॥३१॥

हे साथ जी! यह देखिए कि धाम धनी का अंग रूप यह नूरमयी जामा किस प्रकार से अलौकिक शोभा को धारण कर रहा है। यदि आत्मा परमधाम की चितवनि करती है, तो वह जामे के ऊपर बनी हुई बूटियों तथा बारीक लताओं आदि की अनेक प्रकार की अति सुन्दर चित्रकारी को देख सकती है।

पार न जामें सलूकी, ना कछू नरमाई पार।

इन मुख गुन केते कहूं, खूबी तेज न सुगंध सुमार॥३२॥

न तो जामे की सुन्दरता की और न उसकी कोमलता की कोई सीमा है। इसके नूरमयी तेज और सुगन्धि की भी कोई सीमा नहीं है। जामे के अद्वितीय गुणों का वर्णन मैं इस नश्वर जगत के मुख (जिह्वा, वचनों) से कैसे करूँ।

इन ऊपर जो भूखन, नेक इनकी कहूं विगत।

क्यों नूर कहूं अर्स अंग का, पर तो भी कहूं नेक मत॥३३॥

जामे के ऊपर जो आभूषण आये हैं, उनकी शोभा का भी थोड़ा सा कथन करती हूँ। प्रियतम श्री राज जी के परमधाम के इन अंगों के नूर की शोभा का वर्णन भला मैं क्या कर सकती हूँ। फिर भी थोड़ा सा वर्णन तो करना ही पड़ेगा।

धागे बराबर नकस, झीने बारीक अतंत।

ए फूल बेल तो आवें नजरों, जो अंग अंग खुलें वाहेदत॥३४॥

आभूषणों में एक धागे की मोटाई के बराबर चित्रकारी आयी है। यह सूक्ष्म चित्रकारी अनन्त प्रकार की है। इस चित्रांकन का कोई फूल या लता तब दृष्टि में आ सकते हैं, जब धाम धनी का प्रत्येक अंग समान रूप से दिल में

अखण्ड हो (बस) जायें।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण का तात्पर्य है – धनी के प्रत्येक अंग का समान रूप से दिल में बस जाना। धनी के किसी एक अंग की मात्र झलक पा लेने से इस स्थिति का अनुभव नहीं किया जा सकता।

ए नकस सो जानहीं, नैनों देखें जो होए निसबत।

ए देखें याद आवहीं, पेहेले बातें हुई खिलवत॥३५॥

इस अति सूक्ष्म चित्रकारी को मात्र वे ब्रह्ममुनि ही जानते हैं, जिन्होंने अपने आत्म-चक्षुओं से अपने मूल तन (परात्म) को देखा होता है। अपने मूल तन को देखने के बाद तो मूल मिलावा में होने वाले इश्क रब्द की बातों का याद आना स्वाभाविक है।

हक पाग जो निरखते, होए अचरज माहें सहूर।

ए याद किए क्यों जीव ना उड़े, देख नूरजमाल मुख नूर॥३६॥

श्री राज जी की पाग को देख लेने के पश्चात् जब उसका चिन्तन किया जाता है, तो इस बात पर बहुत आश्चर्य होता है कि धाम धनी के मुखारविन्द की नूरी शोभा को देखने के पश्चात् उसकी स्मृति होने पर जीव अपने अस्तित्व को क्यों नहीं गँवा (छोड़) देता है।

भावार्थ- जब आत्म-चक्षुओं से श्री राज जी के मुखारविन्द के अद्वितीय सौन्दर्य का रसपान किया जाता है, तो जीव को भी उसका आनन्द प्राप्त होता है। इस चौपाई में धाम धनी के हुक्म की लीला के सन्दर्भ में यह बात दर्शायी गयी है कि यदि श्री राज जी का हुक्म न होता, तो जीव दीदार की उस मधुर स्मृति से अपने को पूर्णतया भुला देता (अपना अस्तित्व पूर्णतया समाप्त कर

देता)। इस स्थिति में पहुँचने के बाद तो उसे अपनी नित्य क्रियाओं या शरीर का भी आभास नहीं रहना चाहिए।

हुकमें पाव पल में, पाग कई कोट होत।

रंग नंग फूल कई नकस, दिल चाही धरे जोत॥३७॥

धाम धनी के दिल की इच्छा (हुकम) मात्र से चौथाई पल में ही पाग के करोड़ों रूप बन जाते हैं, जिनमें उनके दिल की इच्छानुसार अनेक प्रकार के रंगों, जवाहरातों के नगों, फूलों, तथा चित्रकारी से युक्त पाग की नूरी शोभा दृष्टिगोचर होने लगती है।

हक पाग बनावें हाथ अपने, अर्स खावंद दिल दे।

ए देखें रूह सुख पावत, जब हाथ गौर पेच ले॥३८॥

इतना होने पर भी प्राणवल्लभ अक्षरातीत लीला रूप में अपने हाथों से बहुत प्रेमपूर्वक पाग बाँधते हैं। जब धाम धनी अपने गोरे-गोरे हाथों से पाग के पेंच फिराते हैं, तो उसे देखकर आत्माओं को अनन्त आनन्द होता है।

द्रष्टव्य— वहदत होने के कारण इस चौपाई में "रूह" (आत्मा) शब्द को एक वचन या बहुवचन दोनों में प्रयुक्त कर सकते हैं।

आसिक चाहे मैं देखों, हक यों पेच लेत हाथ माहें।

कई विध फेरें पेच को, कोई इन सुख निमूना नाहें॥३९॥

धनी के प्रेम में निरन्तर डूबी रहने वाली आत्माओं की यह इच्छा होती है कि मैं अपने प्रियतम को अपने हाथों से पाग बाँधते हुए देखूँ। यद्यपि पल भर में करोड़ों पाग स्वतः बँध सकती हैं, किन्तु उनकी इस इच्छा को पूर्ण

करने के लिये धाम धनी अपने हाथों से पाग के पेंच घुमाने (फिराने) लगते हैं। जब वे कई प्रकार पेंच घुमाकर पाग को बाँधते हैं, तो उसे देखकर आत्माओं को इतना सुख प्राप्त होता है कि उसकी किसी से तुलना नहीं की जा सकती।

जो रंग चाहिए जिन मिसलें, सो नंग धरत तित जोत।

फूल नकस कटाव कई, ए कछू अचरज पाग उद्धोत॥४०॥

पाग में जहाँ पर भी जिस प्रकार के रंग की आवश्यकता होती है, वहाँ उसी रंग के जवाहरातों के नगों की नूरी ज्योति दृष्टिगोचर होने लगती है। पाग में तरह-तरह के फूलों के चित्र और बेल-बूटे दिखायी देने लगते हैं। पाग की यह नूरी शोभा कुछ विशेष आश्चर्य में डालने वाली होती है।

मध्य चौक जित चाहिए, ऊपर चाहिए चौकड़ी जित।

बेल पात सब रंग नंग, सोई बनी पाग जुगत॥४१॥

उस पाग की बनावट इस प्रकार की हो जाती है कि जहाँ पाग के मध्य में "चौक" की आवश्यकता होती है, वहाँ चौक दिखायी देने लगता है। इसी प्रकार शोभा में जहाँ चौकड़ी की आवश्यकता होती है, वहाँ चौकड़ी दिखायी पड़ने लगती है। इसी प्रकार पाग में तरह-तरह की पत्तियों से युक्त बेलें, सभी प्रकार के रंग, तथा जवाहरातों के नग भी दिखायी पड़ने लगते हैं।

ताथें हक लेत पेच हाथ में, कोमल अंगुरियों।

गौर अंगुरियां पतली, मीठा सोभें मुंदरियों॥४२॥

जब धाम धनी इस प्रकार अपने हाथों से पाग के पेंच घुमाते हैं, तो उनकी अति कोमल एवं गोरी-गोरी पतली

अँगुलियों में मुद्रिकाओं की बहुत मधुर शोभा होती है।

पोहोंचे देखूँ के अंगुरी, नरमाई देखूँ के गौर।

मुंदरी देखूँ के हथेलियां, लीकें देखूँ के नख नूर॥४३॥

मेरे प्राणप्रियतम श्री राज जी जब अपने हाथों से पाग बाँधते हैं, तो उनके हाथों के अनन्त सौन्दर्य में मेरी आत्मा इस प्रकार डूब जाती है कि उस स्थिति में मैं यह निर्णय ही नहीं कर पाती हूँ कि मैं पहले पोहोंचे की सुन्दरता को देखूँ या अँगुलियों की? मैं उनकी कोमलता को पहले देखूँ या गोरेपन को? अँगुलियों की मुद्रिकाओं को पहले देखूँ या हथेलियों के मनमोहक सौन्दर्य को? इसी प्रकार मैं पहले हथेलियों एवं अँगुलियों की पतली – पतली सुन्दर रेखाओं को देखूँ या अँगूठे तथा अँगुलियों के नखों के नूर को?

चलवन करते हाथ की, नैनों देखत सब सलूक।

यों देखत मासूक को, अजुं होत न आसिक टूक॥४४॥

जब धाम धनी अपने हाथों से पाग बाँधते हैं तो ब्रह्मसृष्टियाँ उनके सम्पूर्ण सौन्दर्य का रसपान अपने आत्मिक नेत्रों से करती हैं, किन्तु यह महान आश्चर्य की बात है कि इस सौन्दर्य-सुधा-सागर में अपने को डुबो देने के बाद भी आत्माओं ने इस संसार में अपने अस्तित्व को अभी भी क्यों बनाया हुआ है।

द्रष्टव्य- इस चौपाई में स्वयं को टुकड़े-टुकड़े करने का तात्पर्य देहाभास (शरीर की प्रतीति) से अलग होना है।

महामत निमूना ख्वाब का, क्यों दीजे हक वस्तर।

हक नूर न आवे सब्द में, पर रह्या न जाए क्योंए कर॥४५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! श्री राज जी

के वस्त्रों की उपमा इस झूठे संसार के पदार्थों से कैसे दी जाये। यद्यपि धाम धनी की नूरी शोभा को इस संसार के शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता , किन्तु क्या करूँ, थोड़ा भी वर्णन किये बिना नहीं रहा जाता।

प्रकरण ॥१७॥ चौपाई ॥१२७॥

हक मेहेबूब के भूखन

प्रियतम श्री राज जी के आभूषणों का वर्णन

इस प्रकरण में श्री राज जी के आभूषणों की शोभा को दर्शाया गया है। माशूक और महबूब समानार्थक शब्द हैं।

भूखन सब्दातीत के, क्यों इत बरनन होए।

सोभा अर्स सरूप की, इत कबहूँ न बोल्या कोए॥१॥

सच्चिदानन्द अक्षरातीत का नूरमयी स्वरूप शब्दों की सीमा से परे है। उनके आभूषणों का वर्णन भला इस झूठे संसार में कैसे हो सकता है। परमधाम में विराजमान श्री राजश्यामा जी की शोभा का वर्णन आज तक इस जगत में कोई भी नहीं कर सका है।

भावार्थ— पुराण संहिता तथा माहेश्वर तन्त्र में जो युगल स्वरूप का वर्णन किया गया है, वह केवल ब्रह्म तथा

उनकी स्वामिनी का वर्णन है। यद्यपि वर्णन करते समय लक्ष्य अक्षरातीत का ही लिया गया था, किन्तु बिना श्री राज जी के आवेश और आदेश (हुक्म) के परमधाम और मूल स्वरूप का वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

तो क्यों माने बीच दुनियां, ए जो हक जात भूखन।

रैन अंधेरी क्यों रहे, जब जाहेर हुआ बका दिन॥२॥

यही कारण है कि इस नश्वर संसार के लोग युगल स्वरूप तथा सखियों के आभूषणों की बात को स्वीकार नहीं करते हैं (नकार देते हैं)। जब तारतम ज्ञान रूपी सूर्य के उदय होने से सम्पूर्ण परमधाम का वर्णन हो गया है, तो अज्ञान रूपी रात्रि का अन्धकार भला कैसे रह सकता है।

भावार्थ— यह असत्, जड़, और दुःखमय जगत उस

घने अन्धकार से पूर्ण रात्रि की तरह है, जिसमें हाथ को हाथ नहीं सूझता अर्थात् परब्रह्म के विषय में कोई भी यथार्थ रूप से नहीं जानता। इसके विपरीत सच्चिदानन्दमय परमधाम उस अखण्ड दिन के समान है जहाँ पल भर के लिये भी अन्धकार नहीं होता, अर्थात् ब्रह्मवाणी के अवतरित हो जाने के पश्चात् परमधाम के विषय में किसी प्रकार का संशय नहीं रह गया है।

अनेक गुन नंग इनमें, रूह दिल चाह्या जब।

जिन जैसा दिल उपजे, सो होत आगूं से सब॥३॥

आत्माओं के हृदय में जब भी इच्छा होती है, जवाहरातों के नगों में अनेक प्रकार के गुण प्रकट हो जाते हैं। किसी आत्मा के दिल में जो इच्छा (भाव) उत्पन्न होती है, वह उत्पन्न होने से पहले ही पूर्ण हो जाती है।

भावार्थ- जहाँ किसी वस्तु की कमी होती है, वहाँ ही इच्छा प्रकट होती है। स्वलीला अद्वैत परमधाम में किसी भी वस्तु की न्यूनता नहीं है, इसलिये वहाँ किसी प्रकार की इच्छा नहीं होती। परमधाम के अनन्त आनन्द को दर्शाने के लिये ही यह कथन किया गया है कि वहाँ इच्छा से पहले ही वह पूर्ण हो जाती है।

जिस प्रकार वाणी के चार स्तर - परा, पश्यन्ति, मध्यमा, बैखरी - होते हैं। उसमें हृदय में स्थित वाणी को दिव्य दृष्टि से ही जाना जा सकता है, जबकि बैखरी को सामान्य प्राणी भी जान जाते हैं। इसी प्रकार परमधाम में प्रेम और आनन्द की लीला में इच्छा स्वाभाविक है, किन्तु हृदय में प्रकट होने से पूर्व ही वह आत्मिक धरातल पर पूर्ण हो जाती है। यद्यपि वहदत में आत्मा और हृदय को भी अलग नहीं किया जा सकता,

किन्तु इस संसार में इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिये और कोई साधन नहीं है। लीला रूप में होने वाली इच्छा और कमी के कारण होने वाली इच्छा में कोई भी समानता नहीं है। आगे की चौपाई में यही बात स्पष्ट रूप से दर्शायी गयी है।

जेती अरवाहें अर्स में, ताए मन चाह्या सब होए।

दिल चितवन भी पीछे करे, आगे बनि आवे सोए॥४॥

परमधाम में जो भी आत्मायें हैं , उनके हृदय की इच्छानुसार ही सब कुछ होता है। हृदय में इच्छा तो बाद में होती है, वह पहले ही पूर्ण हो जाती है।

द्रष्टव्य- विज्ञान (मारिफत) की दृष्टि में स्वलीला अद्वैत में इच्छा, इच्छुक, और इच्छित तथा परात्म, आत्मा, और हृदय सभी एक ही स्वरूप हैं, किन्तु लीला रूप में

इनकी अलग-अलग विवेचना अवश्य की जाती है। जिस प्रकार फूल में सुगन्धि और शक्कर में मिठास स्वाभाविक रूप से विद्यमान होते हैं, उसी प्रकार लीला रूप में आत्मा में इच्छा तो होती है किन्तु इस संसार की तरह तरह नहीं होती।

जैसा मीठा लगे मन को, भूखन तैसा ही बोलत।

गरम ठंढा सब अंग को, चित्त चाह्या लगत॥५॥

सखियों के मन को जिस प्रकार भी अच्छा लग सके, आभूषणों से वैसी ही ध्वनि मुखरित होती है (आती है)। दिल की इच्छानुसार ही ये आभूषण शरीर के अंगों को गर्मी या ठण्डक का अनुभव कराते हैं।

हक बरनन करत हों, कहूं नया किया सिनगार।

ए सब्द पोहोंचे नहीं, आवत न माहें सुमार॥६॥

धाम धनी के श्रृंगार-वर्णन में यदि मैं कहती हूँ कि श्री राज जी ने नया श्रृंगार धारण किया है, तो ये शब्द परमधाम तक पहुँच नहीं पाते हैं। प्रियतम की शोभा तो इतनी अनन्त है कि उसे शब्दातीत ही कहना पड़ता है।

भावार्थ- अनन्त को कभी भी शब्दों की परिधि (सीमा) में नहीं बाँधा जा सकता। यदि धाम धनी की शोभा को किसी सीमा में बाँधा जाये, तब तो यह कहा जा सकता है कि यह श्रृंगार पहले वाले की अपेक्षा नया है और कुछ विशेष है, किन्तु परमधाम में ऐसा होना असम्भव है। वहाँ नया-पुराना या कम-अधिक जैसे शब्दों की गति ही नहीं है।

वस्तर और भूखन, ए हक अंग का नूर।

सो निमख न जुदा होवहीं, ज्यों सूरज संग जहूर॥७॥

श्री राज जी के वस्त्र और आभूषण तो उनके अंगों के ही नूर के स्वरूप हैं। वे उसी प्रकार उनके अंगों से अलग नहीं हो सकते, जैसे सूर्य से उसका प्रकाश अलग नहीं हो सकता।

इन जिमी आसिक क्यों रहे, बिना किए अपनों आहार।

खाना पीना एही आसिकों, अर्स रूहों एही आधार॥८॥

इस मायावी संसार में भी परमधाम की आत्मायें अपने आहार के बिना कैसे रह सकती हैं। प्रियतम की शोभा का दीदार एवं उनके अन्तरंग प्रेम में डुबकी लगाना ही तो ब्रह्मसृष्टियों के लिये भोजन करना और पानी पीना है। यही उनके जीवन का आधार है। इसके बिना तो वे रह

ही नहीं सकतीं।

सोई कलंगी सोई दुगदुगी, सोभे पाग ऊपर।

केहे केहे मुख एता कहे, जोत भरी जिमी अंबर॥९॥

प्रियतम श्री राज जी की पाग के ऊपर वही कलंगी और वही दुगदुगी झलझला रही है। इनकी अद्वितीय शोभा को कहने के प्रयास में इस मुख से तो बस इतना ही कहा जा सकता है कि इनसे निकलने वाली ज्योति धरती से लेकर आकाश तक चारों ओर फैली हुई है।

कई विध के सुख जोत में, और कई सुख सुन्दरता।

कई सुख तरह सलूकियां, सिफत पोहोंचे न हक बका॥१०॥

कलंगी और दुगदुगी की शोभा, सुन्दरता, तथा ज्योति में आत्माओं के अनन्त (कई) सुख छिपे हुए हैं। धाम

धनी की इस अखण्ड शोभा के विषय में यहाँ के शब्दों से की गई महिमा परमधाम तक नहीं पहुँच पाती है, अर्थात् यहाँ के शब्दों से उस शोभा का वर्णन नहीं हो पाता है।

भावार्थ- कलँगी या दुगदुगी की शोभा में डूब जाने पर आत्मा अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत से एकाकार हो जाती है और हृदय में उमड़ने वाले आनन्द के अनन्त सागर में नहाने लगती है। इसी को इन शब्दों में कहा गया है कि इस शोभा, सुन्दरता, एवं ज्योति में आत्माओं के अनन्त सुख छिपे हुए हैं। ऐसा किसी भी अंग की शोभा में डूब जाने पर हो जायेगा।

मोतिन की जोत क्यों कहूं, इन जुबां के बल।

सोभा लेत दोऊ श्रवनों, अति सुन्दर निरमल॥११॥

श्री राज जी के दोनों कानों में दो बाले आये हैं, जिनमें

अति सुन्दर और स्वच्छ मोती जगमगाते हुए शोभा ले रहे हैं। इस संसार की जिह्वा से मैं इन मोतियों की अलौकिक ज्योति का कैसे वर्णन करूँ।

मोती जोत अचरज, और अति उत्तम दोऊ लाल।

जो रूह देखे नैन भर, तो अलबत बदले हाल॥१२॥

इन मोतियों की ज्योति तो आश्चर्य में डालने वाली है ही, इन बालों में दो अति उत्तम शोभा वाले लाल (माणिक) भी जड़े हुए हैं। यदि आत्मा इस शोभा को गहराई से (ध्यानपूर्वक) देख ले, तो निश्चित रूप से उसकी स्थिति (हाल) बदल जायेगी।

भावार्थ— नैन भर कर देखना एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है— ध्यान से देखना, गहराई से देखना। जब धाम धनी की शोभा को गहराई से देखकर हृदय में

अखण्ड कर लिया जाता है, तो माया के संसार में जरा भी मन नहीं लगता। इसे ही हाल (रहनी) का बदल जाना कहते हैं, अर्थात् माया की रहनी हट जाती है और परमधाम की रहनी आ जाती है।

कहे जुबां जोत आकास लों, जोतें सोभा कई करोर।

सो बोल न सके जुबां बेवरा, इन अकल के जोर॥१३॥

यद्यपि इनकी शोभा के विषय में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि इनकी ज्योति आकाश तक फैली हुई हैं, किन्तु वास्तविकता यह है कि इस ज्योति में करोड़ों प्रकार की ऐसी अद्वितीय शोभा छिपी हुई है, जिसका यहाँ की बुद्धि से वर्णन कर पाने का सामर्थ्य मेरी जिह्वा (रसना) में नहीं है।

ए तो मोती लाल कुन्दन, वाहेदत खावंद श्रवन।

आकास जिमी भरे जोत सों, तो कहा अचरज है इन॥१४॥

यदि यह कहा जाये कि धाम धनी के कानों में जो सोने के बाले आये हैं, उनमें जड़े हुए मोती और लाल (माणिक) की ज्योति से सम्पूर्ण धरती और आकाश भर गये हैं, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है।

भावार्थ— धाम धनी वहदत की मारिफत के स्वरूप हैं। उनकी हकीकत की वहदत का स्वरूप परमधाम के कण-कण में लीला कर रहा है, इसलिये उन्हें "वहदत के खावन्द" कहकर इस चौपाई में वर्णित किया गया है।

चोली अंग सों लग रही, ज्यों अंग नूर जहूर।

ए लज्जत दिल तो आवहीं, जो होवे अर्स सहूर॥१५॥

जामे की चोली धाम धनी के शरीर से इस प्रकार सटी

हुई है, जैसे वह उनके अंगों की नूरी आभा हो। इसका रसास्वादन तो हृदय में तभी हो सकता है, जब परमधाम की चितवनि (सहूर) में डूबा जाये।

एक देख्या हार हीरन का, कई कोट सूरज उजास।

इन उजास तेज बड़ा फरक, ए सुख सीतल जोत मिठास॥१६॥

मैं अपने प्राणवल्लभ के हृदय कमल पर हीरों का एक जगमगाता हुआ हार देख रही हूँ, जिसमें करोड़ों सूर्यों का उजाला भरा हुआ है। इसके उजाले और तेज तथा संसार के उजाले और तेज में बहुत अन्तर है। संसार से पूर्णतया विपरीत इसकी ज्योति पूर्णतया शीतल , माधुर्यता से परिपूर्ण, और आनन्दमयी है।

भावार्थ— इस संसार के सूर्य का तेज ज्वलनशील एवं दाहकारक है, किन्तु धाम धनी के हार में इस सूर्य का

करोड़ों गुना तेज होते हुए भी अनन्त चन्द्रमाओं की शीतलता है, जिससे हमेशा माधुर्यता और शीतलता की बयार बहती है। संसार के सूर्य की ओर तो नंगी आँखों से देखना कष्टकारी होता है, किन्तु इन हारों की ज्योति आँखों को शीतलता एवं सुख पहुँचाती है।

हार दूजा मानिक का, जानों उनथें अति सोभाए।

जब लालक इनकी देखिए, जानों और सबे ढंपाए॥१७॥

दूसरा हार माणिक का है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी शोभा हीरे के हार से भी अधिक है। जब इसकी लालिमा को देखा जाता है तो ऐसा अनुभव होता है, जैसे सभी हार सुन्दरता में इससे पीछे हैं।

भावार्थ— सौन्दर्य-वर्णन की यह रीति है कि वर्णित वस्तु को सबसे अधिक सुन्दर कहा जाये। यही कारण है

कि यहाँ सभी हारों को एक-दूसरे से (अन्यों से) अधिक सुन्दर कहा गया है, जबकि वास्तविकता यह है कि परमधाम में एकत्व (वहदत) होने के कारण सभी हारों की शोभा बराबर है।

तीसरा हार अंग देखिया, अति उज्जल जोत मोतिन।

जानों सबथें ऊपर, एही है रोसन॥१८॥

अत्यन्त उज्जवल ज्योति से परिपूर्ण मोतियों का यह हार तीसरा हार है, जिसे मैं धाम धनी के वक्षस्थल पर सुशोभित होते हुए देख रही हूँ। इसे देखने पर ऐसा प्रतीत हो रहा है, जैसे इसकी आभा सबसे अधिक है।

जब हार चौथा देखिए, जानों नीलक अति उजास।

जानों के सरस सबन थें, ए देत खुसाली खास॥१९॥

अब मैं चौथे हार "नीलम के हार" को देख रही हूँ।
नीलिमा भरी अत्यन्त मोहक उजास के कारण यह हार
ऐसा प्रतीत हो रहा है, जैसे यह सबसे अधिक प्यारा है
और विशेष प्रकार का आनन्द देने वाला है।

हार लसनियां पांचमा, कछू ए सुख सोभा और।
जानों जोत जिमी आकास में, भराए रही सब ठौर॥२०॥
पाँचवां हार लहसुनिया के नगों का है। इसकी शोभा
और सुख कुछ अलग ही (विचित्र) प्रकार के हैं। ऐसा
प्रतीत होता है जैसे इससे निकलने वाली ज्योति धरती
से लेकर आकाश तक सर्वत्र फैली हुई है।

जब नंग देखूं नीलवी, जानों एही सुख सागर।
जोत मीठी रंग सुन्दर, जानों के सब ऊपर॥२१॥

जब मैं नीलम के नगों के हार की ओर देखती हूँ, तो ऐसा लगता है कि एकमात्र यही सुख का सागर है। इसकी मधुर ज्योति तथा सुन्दर रंग सबसे अधिक आकर्षक है।

हारों बीच जो दुगी दुगी, माहें नव रतन।

नव जोत नव रंग की, जानों सब ऊपर ए भूखन॥२२॥

हारों के बीच में जो दुगदुगी है, उसमें नौ प्रकार के रत्न जड़े हुए हैं। उनसे नौ रंगों की नौ प्रकार की ज्योतियाँ निकलती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस आभूषण (दुगदुगी) की शोभा सबसे अधिक है।

ए जोत सब जुदी जुदी, देखिए माहें आसमान।

सब जोत जोत सों लड़त हैं, कोई सके न काहूं भान॥२३॥

यदि आप आकाश में देखें, तो आपको ये नौ रंग की

ज्योतियाँ आकाश में अलग-अलग फैलती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। ये सभी ज्योतियाँ क्रीड़ा रूप में आपस में युद्ध सी करती हुई प्रतीत होती हैं, किन्तु कोई भी किसी को नष्ट नहीं कर पाती, क्योंकि सभी अखण्ड और चेतन हैं।

भूखन सामी न देखिए, जो देख्या चाहे जंग।

पेहेले देखिए आकास को, तो जुध करें नंग सों नंग॥२४॥

हे साथ जी! यदि आप इन ज्योतियों की लड़ाई देखना चाहते हैं, तो आभूषणों (दुगदुगी) की ओर मत देखिए। आप केवल आकाश की ओर ही देखिए, जहाँ सभी नगों से निकलने वाली ज्योतियाँ आपस में टकराकर युद्ध सी करती हुई दिखाई (शोभा) दे रही हैं।

जो कदी पेहेले हार देखिए, तो वाही नजर भरे जोत।

या बिन कछू न देखिए, सबमें एही उद्योत॥२५॥

यदि आप कभी हीरे के हार को देखें, तो एकमात्र वही ज्योति से भरा हुआ दृष्टिगोचर होता है। उसकी ज्योति इतनी अधिक होती है कि उसके अतिरिक्त अन्य कुछ दिखायी नहीं देता। वही सबसे अधिक प्रकाशमान दिखता है।

द्रष्टव्य— यही स्थिति अन्य सभी हारों और आभूषणों के साथ भी है।

नेक कहूं बाजू बन्ध की, जोत न जामें सुमार।

तो जो नंग बाजू बन्ध के, सो क्यों आवें माहें विचार॥२६॥

अब मैं श्री राज जी के दोनों हाथों में सुशोभित बाजूबन्दों के विषय में थोड़ा सा वर्णन करती हूँ। इनकी

ज्योति अनन्त है। इस प्रकार बाजूबन्दों में जवाहरातों के जो नग जगमगा रहे हैं, उनकी अलौकिक ज्योति की छटा के विषय में यहाँ की बुद्धि से भला क्या सोचा जा सकता है (निर्णय लिया जा सकता है), कदापि नहीं।

नंग पटली दस रंग की, माहें कई विध के नकस।

ए सलूकी बेल बूटियां, एक दूजे पे सरस॥२७॥

दोनों बाजूबन्दों में नगों से जड़ी हुई दस –दस रंग की पटलियाँ हैं। इनमें अनेक प्रकार की चित्रकारी है। इनमें बनी हुई बेलों और बूटियों की सुन्दरता एक –दूसरे से अधिक अच्छी (प्यारी) लगती है।

लटके बाजू बन्ध फुन्दन, झलकत झाबे अपार।

कई नंग रंग एक झाबे में, सो एक एक बाजू चार चार॥२८॥

बाजूबन्दों में फुन्दन लटक रहे हैं। इनमें लगे हुए झब्बों की अपार झलझलाहट हो रही है। एक-एक बाजूबन्द में चार-चार झब्बे लटक रहे हैं और एक-एक झब्बे में अनेक रंगों के नग जड़े हुए हैं।

तामें नंग कहूं केते जरी, तिन फुन्दन में कई रंग।

रंग रंग में कई किरने, किरन किरन कई तरंग॥२९॥

बाजूबन्द के फुन्दनों में सोने के तारों में अनेक रंगों के नग जड़े हुए हैं, जिनकी शोभा का मैं कितना वर्णन करूँ। प्रत्येक रंग से अनेक किरणे निकलती हैं और प्रत्येक किरण से अनेक प्रकार की प्रकाश की तरंगें निकलती हैं।

बाहें हलते फुन्दन लटके, हींचे फुन्दन जोत प्रकास।

बाहें हलते ऐसा देखिए, मानों हींचत नूर आकास॥३०॥

जब श्री राज जी की बाँहें हिलती हैं, तो बाजूबन्दों में लटकने वाले फुन्दन झूला झूलने की तरह शोभा देते हैं। इन फुन्दनों से नूरमयी ज्योति का प्रकाश छिटक रहा है। बाँहों के हिल जाने पर तो ऐसा दिखायी देता है, जैसे आकाश में नूर ही झूला झूल रहा है।

जो पटलियां पोहोंची मिने, सात पटली सात नंग।

सो सातों नंग इन भांत के, मानों चढ़ता आकासे रंग॥३१॥

पोहोंची में सात पटलियाँ आयी हैं। इन पटलियों में सात प्रकार के नगों की शोभा है। ये सातों नग इस प्रकार के हैं कि इनका रंग आकाश में चढ़ता हुआ प्रतीत होता है।

द्रष्टव्य— पोहोंची में सात प्रकार की पटलियाँ हैं और इनमें अलग-अलग रंग के नग आये हैं। इस प्रकार प्रत्येक पटली में एक ही रंग के नग आयेंगे।

स्याम सेत नीली पीली, जांबू आसमानी लाल।

हाए हाए करते पोहोंची बरनन, अजूं होस लिए खड़ा हाल॥३२॥

नग-जड़ित ये पोहोंचियाँ काले, श्वेत, नीले, पीले, जाम्बू, आसमानी, और लाल रंग में शोभायमान हैं। हाय! हाय! यह कितने आश्चर्य की बात है कि पोहोंची की अद्वितीय सुन्दरता का वर्णन करते हुए भी स्थिति यह है कि यह तन अभी भी सुध (होश) में खड़ा है।

जो एक नंग नीके निरखिए, तो रोम रोम छेदत भाल।

जो लों देखों उपली नजरोँ, तो लों बदलत नाहीं हाल॥३३॥

यदि पटली के एक नग को भी अच्छी तरह से देख लिया जाये, तो शरीर के रोम-रोम में विरह के भाले चुभने लगते हैं। जब तक हम मात्र बाह्य दृष्टि से देखते रहेंगे, तब तक हमारी रहनी नहीं बदल सकती।

भावार्थ- जब आत्मा किसी नग की शोभा को देख लेती है, तो उसका कुछ रस जीव को भी प्राप्त होता है। चितवनि टूटने के पश्चात् जीव उस शोभा को देखने के लिये व्याकुल रहने लगता है। उसकी विरहावस्था बहुत गहन हो जाती है। उसे ऐसा आभास होता है जैसे विरह की पीड़ा शरीर के रोम-रोम में भालों के चुभने के समान कष्ट दे रही है।

बाह्य (उपली) दृष्टि से देखने का तात्पर्य है - केवल पढ़कर कुछ देर के लिये भावों में खो जाना। जब तक शरीर, अन्तःकरण, और जीव के क्रियाकलाप स्थिर नहीं होते और आत्मिक दृष्टि नहीं खुलती, तब तक उसे चितवनि की संज्ञा नहीं दी जा सकती। युगल स्वरूप के भावों में डूब जाना भावलीनता है, इसे चितवनि कदापि नहीं कहा जा सकता। चितवनि का आशय है - आत्म-

दृष्टि से देखना , जबकि भावलीनता से तात्पर्य है –
अन्तःकरण के द्वारा चिन्तन, मनन, विवेचन, और
अहंपना करना।

कड़ियां कांडों सोभित, तिनकी और जुगत।

बल ल्याए कई दोरी नंग, रूह निरखें पाइए विगत॥३४॥

धाम धनी के हाथ की कलाइयों में कड़ियाँ और कड़े
सुशोभित हो रहे हैं। उनकी बनावट कुछ अलग प्रकार की
है। इनमें नगजड़ित धातुओं की कई डोरियों की ऐंठनें
आयी हैं। इसकी वास्तविक शोभा को आत्म-दृष्टि से
देखकर ही जाना जा सकता है।

ए नजरों नंग तो आवहीं, जो आवे निसबत प्यार।

ना तो भूखन हाथ हक के, दिल करसी कहा विचार॥३५॥

यदि परमधाम के मूल सम्बन्ध का प्रेम आत्मा के अन्दर आ जाता है तो इन नगों की शोभा को देखा जाता है, अन्यथा श्री राज जी के हाथों में सुशोभित होने वाले आभूषणों के विषय में इस दिल द्वारा कितना विचार किया जा सकता है।

भावार्थ— इस चौपाई में वह बात विशेष रूप से स्पष्ट की गयी है कि परमधाम या युगल स्वरूप के साक्षात्कार के लिये प्रियतम का प्रेम होना अनिवार्य है। दिल द्वारा होने वाली मात्र बौद्धिक विवेचना या चिन्तन-मनन से आत्मा को अध्यात्म के इस स्तर तक नहीं ले जाया जा सकता।

जुदे जुदे जवेरन की, दस विध की मुंदरी।

दोऊ अंगूठों अंगूठिएं, और मुंदरी आठ अंगुरी॥३६॥

धाम धनी के दोनों हाथों की दसों अँगुलियों में अलग –

अलग जवाहरातों की दस प्रकार की मुद्रिकायें हैं। दोनों अँगूठों में दो अँगूठियां हैं तथा आठ अँगुलियों में मुद्रिकायें हैं।

द्रष्टव्य— मुद्रिकायें सामान्यतः अँगुलियों में पहनी जाती हैं और आकार-प्रकार की दृष्टि से अँगूठियों से कुछ हल्की होती हैं। आकृति में समानता के कारण इस चौपाई के दूसरे चरण में अँगूठियों की गणना भी मुद्रिकाओं में की गयी है।

मानिक मोती नीलवी, पाच पांने पुखराज।

लसनिएं और मनी, रहे कुंदन मांहे बिराज॥३७॥

माणिक, मोती, नीलम, पाच, पन्ना, पुखराज, लहसुनिया, और हीरे (मणि) की अँगूठियां स्वर्ण धातु में सुशोभित हो रही हैं।

ए दसे अंगुरियों मुंदरी, नूर नख अंगुरी पतलियां।

पोहोंचे हथेली उज्जल लीकें, प्रेम पूरन रस भरियां॥३८॥

इन दसों अँगुलियों में मुद्रिकायें शोभायमान हैं। पतली – पतली अँगुलियों के नख नूर से जगमगा रहे हैं। हाथों के पोहोंचों, हथेलियों, तथा उसकी अति सुन्दर (उज्ज्वल) रेखाओं में प्रेम का पूर्ण रस भरा हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है।

अब चरनो चारों भूखन, चारों में जुदे जुदे रंग।

जानो के रस जवेर के, जैसे जोत अर्स के नंग॥३९॥

अब मैं धाम धनी के चरणों के चारों आभूषणों – झांझरी, घूंघरी, कांबी, कड़ी – का वर्णन करती हूँ। इन चारों में अलग-अलग रंगों की शोभा आयी है। जिस प्रकार परमधाम के नगों से हमेशा नूरी ज्योति छिटकती रहती

है, उसी प्रकार जवाहरातों के इन आभूषणों से प्रेम का अलौकिक रस प्रवाहित होता रहता है।

दस रंग नंग माहें झांझरी, ए बानी जुदी झनकार।

ए सोभा अति अनूपम, अर्स के अंग सिनगार॥४०॥

झांझरी में दस रंगों के नग जुड़े हुए हैं। इसकी झनझनाती हुई आवाज अति मधुर है और कुछ अलग प्रकार से आनन्दित करती है। परमधाम की अँगरूपा इस झांझरी की शोभा-श्रृंगार अनन्त है और उपमा से परे है।

यामें बेल पात नकस कई, कई करकरी फूल कांगरी।

बानी सोभा सुख देत है, घाट अचरज ए झांझरी॥४१॥

झांझरी में अनेक प्रकार की लताओं तथा पत्तियों की चित्रकारी है। इसके अतिरिक्त कई प्रकार के छोटे-छोटे

बूटों, फूलों, एवं काँगरियों की भी शोभा आयी है। इस झाँझरी की अलौकिक शोभा आश्चर्य में डाल देती है तथा इससे निकलने वाली मधुर ध्वनि हृदय में आनन्द उत्पन्न करती है।

और बेली कई नकस, मिहीं मिहीं जुगत जिनस।

जब नीके कर देखिए, जानों सब थें एह सरस॥४२॥

दोनों चरणों की झाँझरियों में अनेक प्रकार की लताओं की बहुत सूक्ष्म चित्रकारी है। यदि आत्म-दृष्टि से इन्हें अच्छी प्रकार से देखा जाये, तो ऐसा प्रतीत होता है कि ये सबसे अधिक अच्छी (प्यारी) हैं।

जो सोभावत चरन को, सो केते कहूं गुन इन।

कोई घायल अरवा जानहीं, जो होसी अर्स के तन॥४३॥

प्रियतम अक्षरातीत के चरणों में शोभायमान होने वाली झांझरी के गुणों का मैं कितना वर्णन करूँ। धनी के प्रेम रूपी बाणों से जो आत्मा घायल हो चुकी है और परमधाम में जिनके मूल तन हैं, एकमात्र वे ही झांझरी के गुणों को यथार्थ रूप में जानती हैं।

भूखन अंग अर्स के, जानसी कोई आसिक।

अनेक सुख गुन गरभित, ए अर्स सूरत अंग हक॥४४॥

परमधाम के अँगरूप इन आभूषणों के गुणों को मात्र प्रेम में डूबी रहने वाली ब्रह्मसृष्टियाँ ही जान सकेंगी। धाम धनी के नूरमयी स्वरूप के अँगरूप इन आभूषणों में अनन्त (अनेक) प्रकार के सुख और गुण छिपे हुए हैं।

दोऊ मिल मधुरे बोलत, लेऊं खुसबोए के सुनों बान।

सोभा कहूं के नरमाई, ए भूखन चरन सुभान॥४५॥

श्री राज जी के दोनों चरणों के आभूषण आपस में मिलकर बहुत मधुर ध्वनि करते हैं। धनी के चरणों में सुशोभित होने वाले ये आभूषण इतने आश्चर्य में डालने वाले हैं कि मैं यह निर्णय ही नहीं कर पा रही हूँ कि मैं पहले इनकी सुगन्धि का रसास्वादन करूँ या इनकी अमृतमयी मीठी वाणी को सुनूँ? मैं इनकी अनुपम शोभा का वर्णन करूँ या इनकी कोमलता का वर्णन करूँ?

बान मधुरी घूँघरी, ए जुदे रूप रंग रस।

पांच रंग नंग इनमें, जानो उनपे एह सरस॥४६॥

घूँघरी की आवाज बहुत ही मधुर है। इसका रूप अत्यधिक मोहक है। इससे आनन्द (रंग) और प्रेम

(रस) की धारा प्रवाहित होती है। इसमें पाँच रंग के नग जड़े हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह झांझरी से भी अधिक अच्छी है।

कई करड़े कई बूटियां, नकस नाके रंग और।

ए सोभा कहूं मैं किन मुख, जाको इन चरनो है ठौर॥४७॥

धनी के चरणों से हमेशा लिपटी रहने वाली इन घुंघरियों की शोभा को मैं किस मुख से कहूँ। इन घुंघरियों में अनेक प्रकार के नग (करड़े) जड़े हुए हैं। इनके ऊपर अनेक प्रकार की बूटियों की चित्रकारी है। इनके छिद्रों का रंग भी कुछ अलग प्रकार का है।

मानो लाल कड़ी मानिक की, माहें कई रंग बेल अनेक।

सिर पतलियों लग रहीं, ए सोभा अति विसेक॥४८॥

ऐसा लगता है जैसे घुंघरियों की कुण्डियाँ (कड़ियाँ) लाल रंग के माणिक की हैं। इन कड़ियों में अनेक रंग की बहुत सी लतायें अंकित हैं। ये कड़ियाँ घुंघरियों के पतले-पतले शिरों से जुड़ी हुई हैं। यह बहुत ही विशेष प्रकार की शोभा है।

इन कड़ी के रूप रंग, मिहीं बेली गिनी न जाए।

मानों पुतली वाही की कांगरी, ए जुगत अति सोभाए॥४९॥

इन कड़ियों के रूप-रंग अद्वितीय हैं। इन पर बनी हुई सूक्ष्म आकार वाली लताओं की गिनती कर पाना सम्भव नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे ये बेलियाँ (लतायें) पुतलियों की काँगरी के रूप में हैं। विचित्र प्रकार की यह संरचना बहुत शोभायमान हो रही है।

अब कहूं रंग कांबीय के, पेहेरी जंजीर ज्यों जुगत।

जुदे जुदे रंग हर कड़ी, नैना देख न होंए तृपित॥५०॥

अब मैं कांबी के रंग का वर्णन करती हूँ। यह धनी के चरणों में जंजीर की तरह पहनी जाती है। इसकी प्रत्येक कड़ी में अलग-अलग रंग आये हैं। इनकी शोभा को भले कितना भी क्यों न देखा जाये, किन्तु आँखों को तृप्ति नहीं होती।

भावार्थ- नैनों के तृप्त न होने का कथन अपने में गहन रहस्य छिपाये हुए है। किसी घृणित या गन्दी वस्तु को देखने की इच्छा ही नहीं होती। यदि भूलवश दृष्टि पड़ भी जाये तो उससे अपनी नजर हटा लेनी पड़ती है। सामान्य वस्तु को भी कुछ देर देखने के पश्चात् उससे मन हट (उब) जाता है। इसके विपरीत परमधाम या युगल स्वरूप के अनन्त सौन्दर्य से दृष्टि नहीं हटती। इसका

मुख्य कारण यह है कि आँखों में सौन्दर्य को देखने की अमिट प्यास होती है। अक्षरातीत को देखने के पश्चात् यदि जी भर जाये (नेत्र तृप्त हो जायें) तो इसका तात्पर्य यह है कि उनके सौन्दर्य की अनन्तता पर प्रश्न चिह्न खड़ा हो गया है।

यद्यपि परब्रह्म को पूर्णकाम अवश्य कहा गया है, किन्तु उसका आशय यह है कि उसको देखने के पश्चात् उससे भिन्न संसार की किसी अन्य वस्तु को देखने की इच्छा नहीं होती। जिस प्रकार श्री राज जी (माशूक) का सौन्दर्य अनन्त है, उसी प्रकार आत्मा (आशिक) में उन्हें देखने की चाहत भी अनन्त मानी जायेगी। उसमें कमी का तात्पर्य है, प्रेम में कमी होना या कहीं न कहीं से हृदय में माया की इच्छाओं का प्रवेश कर जाना। यही कारण है कि प्रियतम के दीदार में नेत्रों को हमेशा अतृप्त

ही कहा जाता है।

अनेक कड़ियां जंजीर में, गिनती होए न ताए।

कई रंग नंग एक कड़ीय में, बेल जंजीर गिनी न जाए॥५१॥

जंजीर में इतनी कड़ियाँ हैं कि उनकी गिनती हो पाना सम्भव नहीं है। प्रत्येक कड़ी में कई रंगों के नंग जड़े हुए हैं। इसी प्रकार जंजीर में बनी हुई बेलों (लताओं) की गणना भी नहीं हो सकती।

ए विचार कीजे जब दिल से, रूह की खोल नजर।

कड़ी कड़ी के रंग देखिए, गिनते होए जाए फजर॥५२॥

हे साथ जी! यदि आप अपनी आत्मिक दृष्टि खोलकर प्रत्येक कड़ी के रंग को देखते हैं और अपने अन्तःकरण में उसका विचार करते हुए कड़ियों के रंगों को गिनना

प्रारम्भ करते हैं, तो गिनते-गिनते उजाला हो जाता है (माया का अन्धकार मिट जाता है)।

भावार्थ- यद्यपि आत्म-दृष्टि से केवल देखा जाता है और ज्ञान रूप में उसका अनुभव आत्मा के अन्तःकरण द्वारा किया जाता है। यहाँ जीव के अन्तःकरण का कोई प्रसंग नहीं है। जीव का अन्तःकरण तो जीव को होने वाले अनुभव का ही मात्र चिन्तन-मनन करता है। "आत्म अन्तस्करण विचारिये, अपने अनुभव का जो सुख" (सागर) का कथन इसी ओर संकेत कर रहा है।

कड़ियों के रंगों को गिनने का तात्पर्य है, चितवनि की गहराई में पहुँचना। इस स्थिति में आत्मा का जाग्रत हो जाना स्वाभाविक है, जिससे हृदय में ब्रह्मवाणी के परम गुह्य रहस्यों का उजाला हो जाता है और माया का अन्धकार समाप्त हो जाता है। इसे ही इस चौपाई के चौथे

चरण में फजर होना कहा गया है।

ऊपर खजूरा कड़ियन का, और कई बेल कड़ियों माहें।
 तिन बेलों रंग वेली कड़ियों, ए खूबी क्यों कर कहे जुबांए॥५३॥
 कड़ियों के ऊपर खजूर की पत्तियों का अति मनोहर
 चित्रांकन है। इसी प्रकार कड़ियों में अनेक प्रकार की
 बेलियों के भी चित्र हैं। कड़ियों में बनी हुई बेलियों के रंग
 तथा लताओं सहित कड़ियों के सौन्दर्य की विशेषताओं
 को इस जिह्वा से भला कैसे व्यक्त किया जा सकता है।

तेज जोत सोभा सलूकी, रूह केताक देखे ए।
 खुसबोए नरम स्वर माधुरी, और कई सुख गुझ इनके॥५४॥
 इन कड़ियों में अनन्त तेज , ज्योति, शोभा, और
 सुन्दरता विद्यमान है, आत्मा इन्हें कहाँ तक देखे। इन

कड़ियों में सुगन्धि , कोमलता, और स्वर की माधुर्यता ओत-प्रोत है। इनके अतिरिक्त इनके अन्दर कई प्रकार के अन्य गुह्य सुख विद्यमान हैं।

भावार्थ- इस चौपाई के दूसरे चरण में कथित "आत्मा कितना देखे" का तात्पर्य कड़ियों के अनन्त सौन्दर्य को दर्शाना है। सौन्दर्य के सागर में तैरने वाली मछली (आत्मा) भला कैसे उसका पार पा सकती है।

पाँच रंग नंग हर कड़ी, कई बेल फूल पात।

कई कटाव कई बूटियां, इन जुबां गिने न जात॥५५॥

प्रत्येक कड़ी में पाँच-पाँच रंग के नग जड़े हुए हैं। इन कड़ियों में अनेक प्रकार की लताओं , फूलों, पत्तियों, बेल-बूटों, और बूटियों के चित्र अंकित हैं, जिन्हें गिनकर इस जिह्वा से व्यक्त नहीं किया जा सकता।

हर कड़ी कई करकरी, सो देखत ज्यों जड़ाव।

नंग जोत नजरों आवहीं, कई नकस कई कटाव॥५६॥

प्रत्येक कड़ी में छोटे-छोटे नगों से जड़ी हुई अनेक प्रकार की करकरियाँ (चूड़े) हैं। ये जड़ाव की तरह दिखायी देती हैं। इनके नगों की ज्योति स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ रही है। इन करकरियों में अनेक प्रकार के चित्र और बेल-बूटे अंकित हैं।

सखती न देवें चरन को, ना बोझ देवें पाए।

गुन सुख एक भूखन, इन मुख गिने न जाए॥५७॥

यह कांबी धनी के चरणों में कठोरता या बोझ का अनुभव नहीं होने देती। धाम धनी के किसी एक आभूषण में इतने गुण और सुख भरे हुए हैं कि उनका आँकलन (गणना) करके इस मुख से व्यक्त नहीं किया जा सकता।

ए देखत अचरज भूखन, बैठे अंग को लाग।

ए सोभा कही न जावहीं, कोई देखे जिन सिर भाग॥५८॥

यह बहुत ही आश्चर्य की बात देखने में आ रही है कि सभी आभूषण धनी के अंगों से लिपटे हुए हैं। इस शोभा को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। श्री राज जी की मेहर से जिसे सौभाग्य प्राप्त होता है, वही इस अलौकिक शोभा को देख पाता है।

भावार्थ- सभी आभूषणों का श्री राज जी के अंगों से लिपटा होना परमधाम के प्रेम और एकत्व (वहदत) को दर्शाता है। सभी आभूषण चेतन, आत्म-स्वरूप हैं। वे भी सखियों की तरह अपने प्राण प्रियतम को रिझाते हैं और उनके अंगों से लिपट कर प्रेम तथा आनन्द का रसपान करते हैं।

सरूप पुतलियों मोतियों, हैं ऊपर हर जंजीर।

सोभित सनमुख चेतन, क्यों कहूं इन मुख नीर॥५९॥

प्रत्येक जंजीर के ऊपर मोतियों की पुतलियों का स्वरूप विराजमान है। ये सभी चेतन हैं और प्रत्यक्ष रूप से सामने ही सुशोभित हो रही हैं। इनकी शोभा का वर्णन मैं संसार के इस मुख से कैसे करूँ।

हक चाही बानी बोलत, हक चाही जोत धरत।

खुसबोए नरमाई हक चाही, हक चाह्या सब करत॥६०॥

मोतियों की ये पुतलियाँ श्री राज जी की इच्छानुसार अमृत से भी मीठी वाणी बोलती हैं और उनकी इच्छानुसार ही नूरी ज्योति से परिपूर्ण दिखायी देती हैं। प्रियतम अक्षरातीत के भावों के अनुसार ही इनके अन्दर अद्वितीय सुगन्धि और कोमलता के दर्शन होते हैं। इस

प्रकार इनकी सारी लीला धाम धनी को रिझाने के लिये उनकी इच्छानुसार ही होती है।

जैसे सरूप रूहन के, चरनों लगे गिरदवाए।

त्यों पुतलियां मोतिन की, कदमों रही लपटाए॥६१॥

जिस प्रकार मूल मिलावा में सखियाँ युगल स्वरूप के चरणों के चारों ओर घेर कर बैठी हैं, उसी प्रकार मोतियों की पुतलियाँ भी धाम धनी के चरणों से लिपटकर (घेरकर) बैठी हुई हैं।

भावार्थ— झांझरी, घूंघरी, कांबी, और कड़ी के आभूषण युगल स्वरूप के चरणों में हैं। इस प्रकार यह प्रसंग श्री राज जी के साथ-साथ श्यामा जी के ऊपर भी घटित होगा।

सब समूह भूखन जब देखिए, अदभुत सोभा लेत।

जुबां खूबी क्यों केहे सके, हक दिल चाही सोभा देत॥६२॥

जब सभी आभूषणों को सामूहिक रूप से देखा जाता है, तो उनकी अद्भुत शोभा दृष्टिगोचर होती है। सभी आभूषण धाम धनी के हृदय की इच्छानुसार ही शोभा देते हैं। इन आभूषणों की विशेषताओं को भला इस रसना (जिह्वा) से कैसे कहा जा सकता है।

हाथ दीजे भूखन पर, सो हाथों लगत नाहें।

पेहेने हमेसा देखिए, ऐसे कई गुन हैं इन माहें॥६३॥

यदि आप इन आभूषणों को हाथों से पकड़ना चाहें तो ये हाथों में नहीं आते हैं, किन्तु हमेशा धाम धनी के अंगों में सुशोभित होते रहते हैं। इनमें इस प्रकार के अनेक (अनन्त) गुण विद्यमान हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में यह जिज्ञासा होती है कि जब इसी प्रकरण की चौपाई ३,४ में यह कहा गया है कि हृदय में इच्छा होते ही (पहले ही) वह पूर्ण हो जाती है, तो यदि हम परमधाम में धाम धनी के आभूषणों को छूने की इच्छा करें तो क्यों नहीं छू सकते?

इसी प्रकार प्रकरण १९ चौपाई ४९ में कहा गया है कि धाम धनी भोजन करते समय अपने मुख में से मेवे निकालकर श्री इन्द्रावती जी के मुख में डाल देते हैं और कहते हैं कि यह बहुत मीठा मेवा है।

इस कथन से यह स्पष्ट है कि श्री राज जी एवं श्री इन्द्रावती जी के शरीरों का स्पर्श होता है। ऐसी स्थिति में धाम धनी के आभूषणों का छू जाना स्वाभाविक है। यही स्थिति अष्ट प्रहर की लीलाओं में भी है। क्या यमुना जी में स्नान करते समय, वनों की सैर में, पश्चिम की चौगान

में, या पाँचवी भूमिका में सखियों के हाथों से धाम धनी के वस्त्रों का स्पर्श नहीं होता होगा ? इसका समाधान आगे की चौपाइयों में दिया गया है।

अर्स तन हाथ अर्स तने, एक दूजे परस होए।

हाथ वस्तर या भूखन, दूजा अर्स तने लगे न कोए॥६४॥

परमधाम में नूरमयी तनों के हाथ परमधाम के दूसरे नूरमयी तनों को छू लेते हैं, किन्तु कहीं और के हाथ परमधाम के इन तनों के हाथों, वस्त्रों, या आभूषणों को नाम मात्र भी नहीं छू सकते।

भावार्थ— इस चौपाई के चौथे चरण में "दूजे" शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसका भाव परमधाम के अतिरिक्त अन्य कहीं के हाथों से है।

परमधाम की वहदत (एकदिली) में योगमाया के एक

कण का भी प्रवेश सम्भव नहीं है। ऐसी स्थिति में कालमाया की किसी वस्तु के प्रवेश की तो कल्पना भी नहीं हो सकती। इस प्रकार यह प्रश्न उठता है कि यहाँ धनी के आभूषणों को हाथों से छूने की बात क्यों कही गयी है?

अगली चौपाई में इसका समाधान प्रस्तुत किया गया है।

और हाथ कोई है नहीं, कहा वास्ते भूखन के।

और वस्तर ना कछू भूखन, जो इत निमूना लगे॥६५॥

परमधाम में किसी और हाथ की बात ही नहीं है। यह कथन तो धाम धनी के आभूषणों के वास्तविक स्वरूप को दर्शाने के लिये ही कहा गया है। सच पूछा जाये तो परमधाम में अन्य किसी भी ऐसे वस्त्र या आभूषण का अस्तित्व नहीं है, जिसको इस संसार के किसी दृष्टान्त

या उपमा से समझाया जा सके।

भावार्थ- परमधाम का कण-कण सच्चिदानन्दमयी है, इसलिये वहाँ के वस्त्र और आभूषणों को भी परब्रह्म के अखण्ड स्वरूप से भिन्न नहीं माना जा सकता। इसी बात को दर्शाने के लिये उपरोक्त चौपाइयों में यह बात कही गयी है कि परमधाम के वस्त्र और आभूषण इस संसार के नश्वर वस्त्र और आभूषण नहीं हैं, जिन्हें यहाँ की तरह हाथों से पकड़ा जा सके। हाथों से वस्त्रों या आभूषणों को न पकड़े जाने का कथन इनकी ब्रह्मरूपता, चेतनता, अखण्डता, अलौकिकता, तथा त्रैगुण्यरहितता को दर्शाने के लिये किया गया है।

है एक हमेसा वाहेदत, दूजा जरा न काहूं कित।

ए देखत सो भी कछुए नहीं, और कछू नजरों भी न आवत॥६६॥

परमधाम में हमेशा एकमात्र स्वलीला अद्वैत या एकत्व (वहदत) का साम्राज्य है। इसके अतिरिक्त वहाँ कहीं भी किसी अन्य कण मात्र का अस्तित्व नहीं है। ये जो वस्त्र, आभूषण, या अन्य लीला रूपी पदार्थ दिखायी दे रहे हैं, वस्तुतः ये भी कुछ नहीं हैं। धाम धनी के अतिरिक्त अन्य कुछ भी वहाँ दिखायी नहीं देता।

भावार्थ— परमधाम के सभी पक्ष एवं श्यामा जी, सखियाँ, खूब खुशालियाँ, अक्षर ब्रह्म, तथा महालक्ष्मी के स्वरूप भी श्री राज जी के दिल रूपी मारिफत (परमसत्य हृदय) से प्रकट हुए हैं। ये सभी स्वरूप हकीकत (सत्य) के हैं। इन सबमें एकमात्र धाम धनी का दिल (हृदय) ही लीला कर रहा है। इसलिये इस चौपाई में कहा गया है कि परमधाम में श्री राज जी के अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं। खिलवत १६/८३ में भी यह बात

कही गयी है—

ना अर्स जिमिएं दूसरा, कोई और धरावे नाउ।
ए लिख्या वेद कतेब में, कोई नहीं खुदा बिन काहूं॥

वाहेदत का वाहेदत में, वस्तर भूखन पेहेनत।

ए नूर है इन अंग का, ए सुन्य ज्यों ना नासत॥६७॥

परमधाम (वहदत) के वस्त्र और आभूषणों को युगल स्वरूप तथा सखियों (वहदत) के तनों में धारण किया जाता है। ये वस्त्र और आभूषण तो धाम धनी के अंगों के नूर स्वरूप हैं। ये शून्य-निराकार से उत्पन्न होने वाले मायावी पदार्थों की तरह नश्वर नहीं हैं।

भावार्थ— परमधाम में लीला रूपी सभी स्वरूप वहदत (एकत्व) के स्वरूप हैं, इसलिये इस चौपाई के प्रथम चरण में दो बार "वाहेदत" शब्द का प्रयोग हुआ है।

ए मिहीं बातें अर्स सुखकी, सो जानें अर्स अरवाए।

इन जिमी सो जानहीं, जिन मोमिन कलेजे घाए॥६८॥

परमधाम के सुखों की ये सूक्ष्म बातें हैं, जिन्हें मात्र परमधाम की आत्मायें ही जानती हैं। इस संसार में मात्र वे ही आत्मायें इन सुखों को जानती हैं, जिनके हृदय (कलेजे) में प्रियतम की शोभा एवं प्रेम-बाणों से चोट लगी होती है।

भावार्थ- यद्यपि कलेजे को भावात्मक रूप से ही हृदय (स्थूल) कहा जाता है, किन्तु इसका मूल अर्थ यकृत (liver) होता है।

इन जिमी आसिक क्यों रहे, वह खिन में डारत मार।

तो लों रहे सहूर में, जो लों रखे रखनहार॥६९॥

धनी के प्रेम में डूबी हुई आत्मा भला इस संसार के

क्षणिक सुखों में कैसे फँसी रह सकती है। वह तो अपने प्रियतम की शोभा में डूबकर स्वयं को क्षण भर में ही मार डालती है, अर्थात् अपने शरीर और संसार के मोह से परे हो जाती है। जब तक धाम धनी अपने आदेश से उसके शरीर को रखते हैं, तब तक वह अपने प्रियतम की शोभा के चिन्तन-मनन या चितवनि में लगी रहती है।

एही काम आसिकन के, फेर फेर करे बरनन।

विध विध सुख सरूप के, सुख लेवें सिनगार भिन भिन॥७०॥

धनी के प्रेम में खोई हुई आत्माओं का यही मुख्य काम होता है कि वे युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार का बार-बार वर्णन करती हैं। इस प्रकार वे अपने जीव के अन्तःकरण में श्री राजश्यामा जी के अनेक प्रकार के सुखों का अनुभव करती हैं। पुनः चितवनि में डूबकर

अपने प्राण-प्रियतम के भिन्न-भिन्न श्रृंगारों को आत्मसात् करके आनन्दित होती हैं।

भावार्थ- जिस प्रकार चितवनि में आत्मा को अनुभूत होने वाले आनन्द का अंश मात्र ही जीव को अनुभव में आता है, उसी प्रकार जीव द्वारा ब्रह्मवाणी के चिन्तन-मनन से जो आनन्द प्राप्त होता है, वह मात्र उसके लिये ही होता है, आत्मा के लिये नहीं। आत्मा अपने मूल स्वरूप में आनन्दमय है, और जीव के ऊपर विराजमान होकर इस खेल को देख रही है। जीव द्वारा ग्रहण किए गए ज्ञान या सुख-दुःख को वह अवश्य जान जाती है, किन्तु मात्र द्रष्टा होने के कारण वह स्वयं कुछ भी नहीं कर सकती और न चिन्तन-मनन से मिले हुए जीव के आनन्द को प्राप्त कर पाती है। इस स्थिति में आत्मा के ऊपर जीव भाव हावी रहता है।

अक्षरातीत की मेहर से चितवनि की गहन स्थिति में जब आत्मा जीव भाव से परे हो जाती है, तो वह अपने को परात्म के श्रृंगार में पाती है और अपने प्रियतम से एकरूप हो जाती है, किन्तु मात्र ज्ञान की अवस्था में उसे यह उपलब्धि नहीं हो पाती। यह स्थिति वैसे ही होती है, जैसे सामने स्थित हिमालय को भी आँखों के सामने पर्दा होने के कारण नहीं देखा जा सकता।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि युगल स्वरूप की शोभा – श्रृंगार के पठन या श्रवण से जीव और उसके अन्तःकरण को आनन्द मिलता है, तथा चितवनि में आत्मा को प्रत्यक्ष एवं जीव को अंशमात्र आनन्द मिलता है।

एही आहार आसिकन का, एही सोभा सिनगार।

झीलें सागर वाहेदत में, मेहेर सागर अपार॥७१॥

प्रियतम की शोभा-श्रृंगार का दीदार (दर्शन) ही ब्रह्मसृष्टियों का आहार है। इसे प्राप्त करके वे अपने धाम धनी की अपार मेहर एवं वहदत के सागर में क्रीड़ा (स्नान) करती हैं।

भावार्थ- जब युगल स्वरूप की छवि आत्मा के धाम हृदय में बस जाती है, तो उसे अपने परात्म स्वरूप का भी साक्षात्कार हो जाता है। ऐसी स्थिति में वह वहदत के स्वरूपों को प्रत्यक्ष देखती है। प्रेममयी चितवनि की गहराइयों में डूबने पर वह विज्ञानमयी (मारिफ्त) अवस्था को प्राप्त कर लेती है, जिसमें वह आठों सागरों के रसपान के साथ-साथ परमसत्य (मारिफ्त) के गुह्य रहस्यों को भी जान जाती है। यही वहदत एवं मेहर के सागर में क्रीड़ा करना है।

महामत देखे विवेकसों, हक वस्तर और भूखन।

सब अंग सोभा अंगों की, ज्यों दिल रूह होए रोसन॥७२॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ! अब मेरी आत्मा अपने प्राणवल्लभ के वस्त्रों, आभूषणों, तथा सभी अंग-प्रत्यंगों की शोभा को विवेकपूर्वक देख रही है, ताकि मेरी आत्मा और उसका अन्तःकरण दोनों ही धनी के नूर से प्रकाशमान हो जायें।

भावार्थ- विवेकपूर्वक देखने का तात्पर्य है- पञ्चभौतिक शरीर, अन्तःकरण, जीव, और संसार के मोह से अलग होकर प्रेम की निर्विकारमयी दृष्टि से देखना। इस चौपाई में सुन्दरसाथ को परोक्ष रूप (पर्दे) में यह शिक्षा दी गयी है कि वे अपने धाम हृदय में श्री राज जी के वस्त्रों एवं आभूषणों सहित अंग-प्रत्यंग की शोभा को बसायें, जिससे उस शोभा के नूर से उनकी आत्मा एवं

अन्तःकरण प्रकाशित होते रहें। श्री महामति जी ने तो इस उपलब्धि को हब्शे में ही प्राप्त कर लिया था।

प्रकरण ॥१८॥ चौपाई ॥९९९॥

जोबन जोस मुख बीड़ी छबि

यौवन के जोश तथा पान के बीड़े से सुशोभित श्री राज जी के मुखारविन्द की शोभा।

इस प्रकरण में यह दर्शाया गया है कि किशोरावस्था वाले धाम धनी जब पान का बीड़ा चबाते हैं, तो उनके मुखारविन्द की शोभा कैसी होती है।

फेर फेर पट खोलें हुकम, निसबत जान रूहन।

हक मुख अंग इस्क के, ले देखिए अर्स अंग तन॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! धाम धनी से आत्माओं का अखण्ड (मूल) सम्बन्ध होने के कारण ही उनका आदेश (हुकम) बार-बार माया के पर्दे को हटा रहा है। अब आप अपने हृदय में प्रेम (इश्क) भरकर श्री राज जी के नूरमयी स्वरूप के मुखारविन्द तथा अंग-

प्रत्यंग की शोभा को देखिए।

हक बरनन जिमी सुपने, हुकमें कह्या नेक सोए।

हक इस्क एक तरंग से, रूह निकस न सके कोए॥२॥

श्री राज जी के हुक्म ने उनकी शोभा का वर्णन इस संसार में थोड़ा सा ही किया है। धाम धनी का प्रेम (इश्क) तो अनन्त महासागर है, जिसकी एक तरंग से भी बाहर निकल पाना किसी आत्मा के लिये सम्भव नहीं है।

सुन्दर मुख मासूक का, और अंग सबे सुन्दर।

सो क्यों छूटे आसिक से, जब चुभे हैड़े अन्दर॥३॥

श्री राज जी का मुखारविन्द अतिशय सुन्दर है। उनके अन्य सभी अंग-प्रत्यंग भी बहुत सुन्दर हैं। इनकी शोभा

जब आत्माओं के हृदय में बस जाती है, तो भला वह कभी अलग कैसे हो सकती है।

क्यों कहूं मुख की सलूकी, और क्यों कहूं सुन्दरता।

ए आसिक जाने मासूक की, जिन घट लगे ए घा॥४॥

मैं अपने प्राण-प्रियतम श्री राज जी के मुख की शोभा और सुन्दरता का कैसे वर्णन करूँ। जिन आत्माओं के हृदय में धनी के प्रेम रूपी बाणों से चोट लगी होती है, एकमात्र वे ही अपने प्रियतम के मुखारविन्द की शोभा को वास्तविक रूप से जानती हैं।

मुख चौक सलूकी क्यों कहूं, कछू जानें रूह के नैन।

ए सुख सोई जानहीं, जासों हक करें सामी सैन॥५॥

मैं धाम धनी के सम्पूर्ण मुखारविन्द (चौक) की शोभा

को कैसे कहूँ। आत्मा के उन नेत्रों को ही कुछ पता है जिन्होंने देखा होता है। इस आनन्द को मात्र वही आत्मायें जानती हैं, जिनके नेत्रों में धाम धनी प्रेम के संकेत किया करते हैं।

भावार्थ- मुख का सम्पूर्ण अग्र भाग "चौक" कहलाता है। देखने के पश्चात् वचनों द्वारा उस शोभा का यथार्थ वर्णन हो पाना सम्भव नहीं होता, इसलिये श्री महामति जी ने कहा है कि जिन नेत्रों ने प्रियतम की शोभा को देखा है, एकमात्र वे ही थोड़ा सा जानते हैं।

सुख पाइए देखें हरवटी, मुख लांक लाल अधुर।

दन्त जुबां बीच तंबोल, मुख बोलत मीठा मधुर॥६॥

हे साथ जी! जब प्रियतम श्री राज जी अपने दाँतों तथा जिह्वा के बीच में पान का बीड़ा रखकर चबाते हुए अपने

मुख से माधुर्यता से भरी हुई अति मीठी बातें करते हैं, तो उस समय यदि आप उनकी टुड्डी, लाल-लाल होंठों, मुख, तथा लाँक (टुड्डी एवं निचले होंठ के बीच की गहराई वाले भाग) की शोभा को देखें, तो आपको अनन्त आनन्द प्राप्त होगा।

मुख मूँदे अधुर बोलत, बानी प्रेम रसाल।

आसिक को छबि चुभ रही, जानों हैड़े निस दिन भाल॥७॥

जब धाम धनी अपने मुख को बन्द रखकर होठों के इशारों से प्रेम के रस में भीनी हुई वाणी बोलते हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे उनकी यह सम्मोहिनी छवि आत्माओं के हृदय में भाले के समान चुभ जाती है और दिन-रात अखण्ड बनी रहती है।

भावार्थ— स्पष्ट उच्चारण के लिये मुख का थोड़ा सा

खुला होना आवश्यक है। इसी प्रकरण की चौपाई ४४ में कहा गया है कि "नेक मुख मूंदे बोलत", किन्तु इस सातवीं चौपाई में मुख को थोड़ा सा ही खोला गया है। दूर से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है, जैसे मुख को पूरा ही बन्द किया गया है। इस स्थिति में होंठों को हिलाते हुए अति प्रेम भरे शब्दों में बातें की जाती हैं।

यह दृश्य इतना मनमोहक होता है कि जिस प्रकार भाला किसी भी कोमल वस्तु में छेद करके उसमें प्रविष्ट हो जाता है, उसी प्रकार श्री राज जी की यह छवि आत्माओं के हृदय में बस जाती है और दिन-रात अखण्ड बनी रहती है।

सहूर कीजे हक अंग रंग, कई तरंग लाल उज्जल।

देत गौर सुख सलूकी, सोभा क्यों कहूं बिना मिसल॥८॥

हे साथ जी! यदि आप अपनी आत्मिक दृष्टि से धाम धनी के अंगों के रंग का चिन्तन करें, तो आपको यह अनुभव होगा कि उनके अंगों से लाल और उज्ज्वल रंग की अनेक (अनन्त) तरंगें निकल रही हैं। उनके गौर वर्ण की यह शोभा आत्मा को अखण्ड आनन्द का रसपान कराने वाली है। बिना किसी उपमा के उनकी इस शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ।

भावार्थ— जिस प्रकार समुद्र में असंख्य लहरें (तरंगें) उठती रहती हैं, उसी प्रकार धाम धनी का स्वरूप भी सौन्दर्य का अनन्त सागर है। उज्ज्वलता में लालिमा मिश्रित उनका रंग है। इस प्रकार इन दोनों रंगों की अनेक तरंगें उनके स्वरूप से उठती रहती हैं। इस नश्वर जगत में इस शोभा की उपमा किसी भी पदार्थ से नहीं दी जा सकती।

हक मुखथें बोलें वचन, स्वर मीठा निकसत।

सो सुनत अर्स रूहों को, दिल उपजे हक लज्जत॥९॥

जब श्री राज जी बोलते हैं, तो उनके मुख से बहुत मीठे स्वरों में शब्द निकलते हैं। जब परमधाम की आत्मायें अमृत से भी मीठे उनके शब्दों को सुनती हैं, तो उनके हृदय में धाम धनी का स्वाद उत्पन्न होता है, अर्थात् उन्हें ऐसा प्रतीत होता है जैसे उनके रोम-रोम में श्री राज जी बैठे हुए हैं।

हक स्वर कैसा होएसी, और कैसी होसी मुख बान।

सुख बातें क्यों कहूं रसना, चाहे दिल सुनने सुभान॥१०॥

आत्माओं के हृदय में धाम धनी के मुखारविन्द से निकले हुए शब्दों को सुनने की चाहना रहती है। वे यह जानना चाहती हैं कि उनके मुख से निकला हुआ स्वर

कैसा होगा तथा उनके मुख से निकली हुई वाणी भी कैसी होगी। उनकी रसना से निकली हुई अमृतभरी बातों का सुख मैं कैसे व्यक्त करूँ।

भावार्थ- मुख से निकले हुए स्वरों का सम्बन्ध ध्वनि से होता है, जैसे- मधुर, गम्भीर, प्रेम, या कर्कशता से पूर्ण। इसी प्रकार वाणी का सम्बन्ध शब्दों से होता है।

हक नेक नैन मरोरत, होत रूहों सुख अपार।

तो बात कहें सुख हक के, सो क्यों कहूं सुख सुमार॥११॥

जब श्री राज जी अपने नेत्रों को घुमाकर प्रेम के संकेत करते हैं, तो अँगनाओं को अनन्त आनन्द होता है। वे हमेशा धाम धनी से मिलने वाले इस आनन्द की ही बातें करती हैं। उस अनन्त सुख को मैं सीमाबद्ध करके कैसे कहूँ।

एक रोम रोम हक अंग के, सब सुखै के अम्बार।

तो सुख सरूप नख सिखलों, रूहें कहा करें दिल विचार॥१२॥

श्री राज जी के किसी भी अंग के रोम-रोम में जब सुखों के भण्डार भरे हुए हैं, तो उनके नख से सिख तक के स्वरूप में तो सुखों के अनन्त भण्डार भरे हुए हैं। आत्मायें अपने दिल में भला उनके विषय में क्या विचार कर सकती हैं।

ज्यों रोम सुपन के अंग को, त्यों रोम न अर्स अंग पर।

सब अंग इस्क वास्ते, रोम रोम कहे यों कर॥१३॥

जिस प्रकार इस संसार के शारीरिक अंगों पर रोम होते हैं, उस तरह के रोम परमधाम के नूरमयी शरीरों के अंगों पर नहीं होते। युगल स्वरूप तथा सखियों के तनों से प्रेम और आनन्द की जो लीला होती है, उसे सीमाबद्ध करके

दर्शाने के भाव से ही "रोम रोम" कहकर वर्णित किया गया है।

अर्स पसु या जानवर, रोम होत तिन अंग।

रोम न रूहों अंग पर, रूहें अंग जानें अर्स नंग॥१४॥

यद्यपि लीला रूप में परमधाम के पशुओं (जानवरों) के शारीरिक अंगों पर रोम होते हैं, किन्तु ब्रह्मसृष्टियों के अंगों पर रोम नहीं होते। ब्रह्माङ्गनाओं के अंग तो ऐसे होते हैं, जैसे परमधाम के जवाहरातों के नग।

भावार्थ- "पशु" शब्द संस्कृत और हिन्दी का है, तथा "जानवर" शब्द फारसी का है। "पश्यतीति पशुः" अर्थात् जो मात्र देख सकता है किन्तु गहन विचार नहीं कर सकता, वह पशु है। जिसमें जान अर्थात् प्राण तो हो, किन्तु बुद्धि की तीव्र क्रियाशीलता न हो, वह जानवर

कहलाता है।

जवेर पैदा जिमीय से, यों अर्स में पैदा न होत।

ए खूबी हक जहूर की, सो किए खड़ी सदा जोत॥१५॥

इस संसार में जवाहरात (हीरा, माणिक, मोती आदि) जिस प्रकार पैदा होते हैं, उस प्रकार परमधाम में पैदा नहीं होते। श्री राज जी के स्वरूप के प्रकटीकरण की यह विशेषता है, जिसमें हमेशा ही नूरी ज्योति जगमगाती रहती है।

भावार्थ- श्यामा जी सहित सभी सखियों का स्वरूप श्री राज जी के नूर से ही प्रकट हुआ है। इस प्रकार सखियों का नख से शिख तक का सम्पूर्ण स्वरूप नूरी आभा से जगमगाता रहता है।

याको नंग निमूना न दीजिए, अर्स रूहें वाहेदत।

इने मिसाल न कोई लागहीं, जाकी हक हादी जात निसबत॥१६॥

सखियों के स्वरूप की तुलना जवाहरातों के नगों से भी नहीं करनी चाहिए। परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ श्री राज जी की एकदिली (वहदत) में हैं। युगल स्वरूप से जिन अँगनाओं का अखण्ड सम्बन्ध है, उनके स्वरूप की उपमा किसी भी पदार्थ से नहीं दी जा सकती।

भावार्थ- ब्रह्मसृष्टियाँ युगल स्वरूप की अँगरूपा हैं। जब अक्षरातीत को सौन्दर्य का अथाह सागर कहा जाता है, तो वहदत के सिद्धान्त से उनकी अँगरूपा सखियों को भी सौन्दर्य का अनन्त सागर ही कहा जायेगा। इस प्रकार उनके सौन्दर्य वर्णन में किसी भी पदार्थ से उनकी उपमा नहीं दी जा सकती।

जो देऊं निमूना अर्स का, तो रूहों लगत न कोई बात।

रूहें अंग हादीय को, हादी अंग हक जात॥१७॥

यदि ब्रह्मसृष्टियों के स्वरूप की तुलना परमधाम के नगों या अन्य किसी पदार्थ से दूँ, तो भी बात नहीं बनती अर्थात् उचित नहीं है। ब्रह्मसृष्टियाँ श्यामा जी की अँगरूपा हैं और श्यामा जी श्री राज जी की अँगरूपा हैं।

तिरछा नेक जो मुसकत, तो मार डारत मुतलक।

जो कदी सनमुख होए यों रूह सों, तो क्यों जीवे रूह आसिक॥१८॥

परमधाम में जब श्री राज जी ब्रह्मसृष्टियों की ओर प्रेम भरी (तिरछी) दृष्टि से थोड़ा भी देखकर मुस्करा देते हैं, तो निश्चित रूप से वे अपने प्रेम बाणों से मार डालते हैं अर्थात् सखियाँ उनके प्रेम में अपने अस्तित्व को समाप्त कर देती हैं। यदि कभी (कदाचित्) इस संसार में भी

धाम धनी साक्षात् प्रकट होकर किसी आत्मा के सामने इसी प्रकार प्रेम भरी (तिरछी) दृष्टि से देखकर मुस्करा दें, तो यह निश्चित है कि धनी के प्रेम में डूबी रहने वाली वह आत्मा इस संसार में उनका वियोग सहन नहीं कर पायेगी और उनके बिना अपना शरीर छोड़ देगी।

आसिक अटके सब अंगों, देख देख रूप सलूक।

एक नेक अंग के सुख में, रूह हो जात टूक टूक॥१९॥

श्री राज जी के सभी अंगों का सौन्दर्य एवं शोभा अनन्त है, जिन्हें देखकर आत्मायें अटक जाती हैं अर्थात् उनकी दृष्टि उनमें ठहर (स्थिर हो) जाती है। धाम धनी के किसी एक छोटे से अंग के दीदार से भी इतना सुख प्राप्त होता है कि आत्मा उसमें स्वयं को समाप्त कर देती है।

भावार्थ— परमधाम के वहदत (एकत्व) के सिद्धान्त के

अनुसार सभी अंगों में समान सुख है, किन्तु उस रस में आत्मा के साथ जीव भी सहभागी बनता है जो वहदत की लीला से अनजान होता है। वह छोटे-छोटे अंगों (अँगुली, नख इत्यादि) में छिपे हुए सम्पूर्ण आनन्द के रहस्य को नहीं जान पाता। इस भाव को दर्शाने के लिये ही इस चौपाई में छोटे अंग को लक्ष्य करके वर्णित किया गया है। टुकड़े-टुकड़े हो जाना एक मुहाविरा है, जिसका तात्पर्य होता है— अपने अस्तित्व को समाप्त कर देना।

सब अंग देखे रस भरे, प्रेम के सुख पूरन।

रूह सोई जाने जो देखहीं, ए पीवत रस मोमिन॥२०॥

मैंने धाम धनी के सभी अंगों को प्रेम के रस से ओत-प्रोत (भरा हुआ) देखा है। उनमें प्रेम का पूर्ण आनन्द विद्यमान है। इस बात को वही आत्मा जानती है, जिसने

अपने आत्म-चक्षुओं से प्रियतम का दीदार किया है। प्रेम और आनन्द के इस रस का पान मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही करती हैं।

गौर गाल मुख उज्जल, माहें गेहेरी लालक ले।

ए जुबां सुख सोभा क्यों कहे, अर्स अंग हक के॥२१॥

श्री राज जी के गालों का रंग अत्यन्त गोरा है और मुखारविन्द उज्ज्वलता में गहरी लालिमा लिये हुए है। परमधाम में विराजमान श्री राज जी के इन अंगों के दीदार से मिलने वाले सुख को भला इस जिह्वा से कैसे कहा जा सकता है, कदापि नहीं।

रूह आसिक जिन अंग अटकी, छूटत नहीं क्यों ए सोए।

ए किसी बातों आसिक सों, अंग मासूक जुदे न होए॥२२॥

प्रियतम के प्रेम में खोयी रहने वाली आत्मा जिस अंग की शोभा में अटक जाती है, तो किसी भी तरह से वह उस शोभा से अलग नहीं हो पाती। श्री राज जी का वह अंग भी किसी प्रकार (बाधा) से आत्मा के धाम हृदय से निकल नहीं पाता।

भावार्थ- चितवनि की गहराइयों में डूब जाने के पश्चात् आत्मा के धाम हृदय में धनी की जो शोभा एक बार भी बस (अखण्ड हो) जायेगी, वह किसी भी स्थिति में उसके हृदय से नहीं निकल सकती, भले ही माया अपनी सारी शक्ति क्यों न लगा दे।

जेते अंग मासूक के, रूह आसिक रहे तिन माहें।

रूह आसिक और कहूं ना टिके, अपने अंग में भी नाहें॥२३॥

श्री राज जी के जितने अंग हैं, आत्मा उन्हीं की शोभा

में डूबी रहती है। अपने प्राणवल्लभ के प्रेम में लीन रहने वाली आत्मा की दृष्टि अन्य कहीं भी नहीं ठहरती। यहाँ तक कि वह अपने अंगों को भी भूली रहती है।

करते बातें प्यारी मासूक, हाथ करें चलवन।

नेत्र भी वाही तरह, चूभ रहेत रूह के तन॥२४॥

परमधाम में श्री राज जी जब अपनी अँगनाओं से बहुत ही प्रेम भरी मीठी-मीठी बातें कर रहे होते हैं, उनके हाथ भी स्वाभाविक रूप से चलते रहते हैं। उस समय हाथों की गति के अनुसार दोनों नेत्र भी अपने प्रेम संकेतों से गतिमान रहते हैं। परात्म के दिल में प्रेम भरे ये नेत्र हमेशा ही बसे (चुभे) रहते हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में परमधाम का प्रसंग है। आत्मा का मूल तन परात्म है, जिसके हृदय में धनी के नेत्र

अखण्ड रूप से बसे होते हैं।

सब अंग हक के इस्क भरे, क्यों कर जाने जाएं।

होए रूह जाग्रत अर्स की, ताए हुकम देवे बताए॥२५॥

प्रियतम अक्षरातीत के सभी अंगों में अनन्त प्रेम (इश्क) भरा हुआ है। प्रेम से ओत-प्रोत इन अंगों को कैसे जाना जाये। परमधाम की जो भी आत्मा जाग्रत हो जाती हैं, उसे ही धाम धनी का हुक्म (आदेश) इन प्रेम भरे अंगों की यथार्थता को दर्शा देता है।

भावार्थ- श्री राज जी के प्रेम भरे नूरी अंग कैसे हैं, इसे बुद्धि की दौड़ लगाकर नहीं जाना जा सकता। यह तो मात्र धाम धनी की मेहर से ही जाना जा सकता है।

जब बात करें हक रूह सों, तब अंग सबे उलसत।

करते बातें छिपे नहीं, हक अंगों इस्क सिफत॥२६॥

परमधाम में जब राज जी अपनी अँगनाओं से प्रेम भरी बातें करते हैं, तो उन आत्माओं के सभी अंगों में उल्लास (आनन्द) भर जाता है। बातें करते समय धाम धनी के अंग-अंग में उमड़ने वाला प्रेम छिपा नहीं रहता। वह उनसे फूटकर (निकलकर) प्रवाहित होने लगता है।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण में इश्क की सिफत (महिमा) का प्रसंग है। वस्तुतः प्रेम की निरन्तर क्रियाशीलता और अखण्डता ही उसकी विशेषता (महिमा) है।

नेत्र कहे और नासिका, हाथ कहे और मुख।

और अंग सबे याही विध, केहेते बातें दे सब सुख॥२७॥

उस समय सभी अंगों की भाव-भंगिमा ऐसी होती है, जैसे वे बोल रहे हों। धाम धनी के नेत्र आत्मा के नेत्रों से मूक भाषा में बातें करते हुए प्रतीत होते हैं। नासिका की भी यही स्थिति होती है। जिस प्रकार मुख से शब्दों का अमृत घोला जाता है, उसी प्रकार हाथ की गति से प्रवाहित (प्रस्फुटित) होता हुआ प्रेम अपने संकेतों से प्रेम भरी बातों की झड़ी लगा देता है। इसी प्रकार धाम धनी के सभी अंग अपनी प्रेम भरी बातें कहते हैं और हर प्रकार का आनन्द देते हैं।

भावार्थ- जिस प्रकार फूल के प्रत्येक भाग में मधुर सुगन्धि भरी होती है या शक्कर के प्रत्येक भाग में मिठास भरी होती है, उसी प्रकार श्री राज जी का नख से शिख तक का स्वरूप अनन्त प्रेम, आनन्द, सौन्दर्य, और एकत्व आदि से ओत-प्रोत होता है। वस्तुतः इनका मूल

निवास भी श्री राज जी के स्वरूप में ही निहित है। परिकरमा ९/३० में स्पष्ट रूप से कहा गया है – "हर एक में बल पांच का, हर एक में पांच गुन।"

इससे यह स्पष्ट है कि धाम धनी के सभी अंगों में बोलने का गुण है। उसी की क्रियात्मक अभिव्यक्ति इस चौपाई में की गयी है।

सब अंग करत इसारतें, हक अंग रुह सों लगन।

ए बारीक बातें अर्स की, कोई जाने जाग्रत मोमिन॥२८॥

श्री राज जी के सभी अंग उस ब्रह्मसृष्टि की ओर अपने प्रेम के संकेत देते हैं। इन अंगों में उस ब्रह्मात्मा के लिये अनन्त प्रेम प्रवाहित होता रहता है। परमधाम की ये गुह्य बातें हैं, जिन्हें कोई जाग्रत आत्मा ही जानती है।

हक अंग जोत की क्यों कहूं, जो नूर नूर का नूर।

अंग मीठे प्यारे सुख सलूकी, दे हक हुकम सहूर॥२९॥

धाम धनी का स्वरूप नूर के नूर का भी नूर है। उनके नूरी अंगों की ज्योति का मैं क्या वर्णन करूँ ? ये अंग बहुत ही मधुर और प्यारे हैं तथा अनन्त सुख एवं शोभा से परिपूर्ण हैं। श्री राज जी के आदेश से ही इनकी चितवनि होती है।

भावार्थ- सनंध ३९/४८ में कहा गया है-

नूरजमाल अंग का नूर जो, बड़ी रूह रूहों सिरदार।

बड़ी रूह के अंग का नूर जो, रूहें बुजरक बारे हजार॥

इस कथन के आधार पर यह अवश्य कहा जा सकता है कि सखियों का नूर श्यामा जी के नूर से है और श्री राज जी के नूर से ही श्यामा जी का नूर है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि सखियों के नूर के मूल में

श्यामा जी का नूर है तथा श्यामा जी के नूर के मूल में श्री राज जी का नूर है, अर्थात् श्री राज जी का नूर सखियों एवं श्यामा जी के नूर से परे है।

किन्तु परमधाम में वहदत होने से वहाँ कार्य-कारण की लीला नहीं है, बल्कि श्यामा जी, सखियों, एवं पच्चीस पक्षों के रूप में श्री राज जी का ही नूर सर्वत्र लीला कर रहा है। परमधाम में श्री राज जी, श्यामा जी, एवं सखियों के नूर में नाम मात्र के लिये भी कहीं भेद नहीं है। सबमें समान ज्योति, सौन्दर्य, प्रेम, एवं आनन्द है, अन्यथा वहदत का सिद्धान्त झूठा हो जायेगा।

कलस हिंदुस्तानी १/२ में कहा गया है— "कलस होत सबन को, नूर पर नूर सिर नूर।" इससे यह सिद्ध होता है कि योगमाया (बेहद) के नूर से परे अक्षर धाम का नूर है तथा उनसे भी परे परमधाम का नूर है।

एक जरा तिन जिमी का, ताके तेज आगे सूर कोट।

सो सूरज दृष्टें न आवहीं, इन जिमी जरे की ओट॥

कलस हिंदुस्तानी २०/१८

इस रास मण्डल (योगमाया के ब्रह्माण्ड) से परे अक्षर धाम और परमधाम हैं।

रास भिस्त लेहेरें कहीं, कही नूर मकान की बिध।

आगे तो नूर तजल्ला, सो ए देऊं नेक सुध॥

सनंध ३९/४५

नूर के इस तुलनात्मक कथन के आधार पर श्रृंगार १९/२९ का आशय समझा जा सकता है। परमधाम की वहदत में किसी की किसी से तुलना या कम-अधिक कहने का प्रश्न नहीं है। "नूर को नूर जो नूर है, कौन तिनको सिनगारे" (श्रृंगार २१/२६) का कथन भी इसी आशय के अनुकूल है।

कैसी मीठी बानी हक की, कहे प्रेम वचन श्री मुख।

निसबत जान रमूज के, देत रूहों को सुख॥३०॥

अहा! प्राणवल्लभ अक्षरातीत अपने श्रीमुख से जब अपनी अँगनाओं से प्रेम भरी बातें करते हैं, तो उस समय उनकी वाणी (बोली) कितनी मीठी होगी, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। धाम धनी मूल सम्बन्ध के कारण ही प्रेममयी बातों से अपनी अँगनाओं को सुख देते हैं।

हक प्रेम वचन मुख बोलते, जोर आवत है जोस।

ए बानी रूह को विचारते, हाए हाए अजूं उड़े ना फरामोस॥३१॥

जब श्री राज जी अपने मुख से प्रेम भरे अमृत वचन बोलते हैं, तो उनके अन्दर प्रेम का बहुत अधिक जोश भरा होता है। हाय! हाय! यह कितने खेद की बात है कि

ब्रह्मवाणी द्वारा परमधाम की इस लीला का बोध होने पर भी आत्माओं के ऊपर से माया की नींद (फरामोसी) नहीं हट पा रही है।

भावार्थ- इस चौपाई में आत्माओं को इस बात के लिये प्रेरित किया गया है कि जब धाम धनी हमसे इतना प्रेम करते हैं, तो हम उनसे पीठ मोड़कर माया में क्यों फँसे हुए हैं। हमें तो संसार को पीठ देकर अपने हृदय में प्राणवल्लभ को बसा लेना चाहिए। यही जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य है।

जब जोस आवे हक बोलते, प्रेम सों गलित गात।

तिन समें मुख मासूक का, मार डारत निघात॥३२॥

बोलते समय जब श्री राज जी को प्रेम का जोश आता है, तो सखियाँ भी धनी के प्रेम में गलितगात हो जाती हैं।

उस समय श्री राज जी के मुख में इतना आकर्षण होता है कि वह अपने प्रेम रूपी बाण से सखियों को निश्चित रूप से मार डालता है।

भावार्थ- जोश का तात्पर्य शक्ति से या बल से है। परमधाम में प्रेम और आनन्द के जोश की लीला होती है, जबकि योगमाया में सत् के जोश की लीला होती है। यद्यपि परमधाम में सत्, चित्, और आनन्द तीनों हैं, किन्तु लीला रूप में प्रेम और आनन्द को ही दर्शाया जाता है।

सत् का जोश जिबरील है, जिसका निवास सत्स्वरूप माना गया है। "जबराईल जोस धनीय का" (खुलासा १२/४५) का कथन स्पष्ट करता है कि धाम धनी के सत् (अक्षर ब्रह्म) की शक्ति (जोश) ही जिबरील के रूप में लीला करती है।

"गलित गात" का तात्पर्य है – प्रेम में इस प्रकार डूब जाना कि अपने शरीर की जरा भी सुध न रह जाये और प्रेम का ऐसा रोमाञ्च हो जाये कि ऐसा लगने लगे जैसे शरीर के रोम-रोम से प्रेम का झरना फूट रहा है।

हक अंग सब नाचत, जोस आवत है जब।

करें बातें रूह सों उमंगें, मुख छबि देखी चाहिए तब॥३३॥

जब धाम धनी में प्रेम का जोश आता है (प्रकट होता है), तब उनके सभी अंग प्रेम में नाचने लगते हैं और अत्यधिक उमंग में ब्रह्मसृष्टियों से बातें करने लगते हैं। उस समय श्री राज जी के मुख की शोभा देखने योग्य (अनन्त) होती है।

भावार्थ- श्री राज जी के शरीर में प्रेम का जोश कहीं बाहर से नहीं आता है, बल्कि लीला रूप में उनके हृदय

का प्रेम ही अंग-अंग से दृष्टिगोचर होने लगता है। इसे ही प्रेम का जोश आना कहते हैं।

प्रेम के अन्दर आनन्द छिपा होता है। जब अंग-अंग से प्रेम की रसधारा बहने लगती है, तो फूल की सुगन्धि की तरह उसमें निहित आनन्द की सुगन्धि भी बहने लगती है। परिणाम स्वरूप, अंगों में आनन्द का स्पन्दन (थिरकन) सा होने लगता है। इसे ही अंगों का नाचना कहते हैं। यह स्थिति प्रेम, आनन्द, और उल्लास की अधिकता में होती है। इस लीला को लौकिक नृत्य नहीं समझना चाहिए।

जोस हमेसा हक को, रहेत सदा पूरन।

पर आसिक देखे इन विध, रंग चढ़ता रस जोबन॥३४॥

यद्यपि श्री राज जी के स्वरूप में प्रेम का पूर्ण जोश

हमेशा बना रहता है, किन्तु आत्माओं को ऐसा प्रतीत होता है कि धनी के अनन्त सौन्दर्य वाले स्वरूप में प्रेम का रंग पल-पल बढ़ता ही जा रहा है। फिर भी, आश्चर्य की बात यह है कि उसका आनन्द नित्य यौवन की तरह ही रहता है।

भावार्थ- परमधाम में प्रेम (इश्क) सर्वदा अखण्ड है, किन्तु वह नित्य क्रियाशील है और नवीन है। इसलिये सखियों को ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेम का रस पल-पल बढ़ रहा है। यद्यपि कालमाया के ब्रह्माण्ड में किसी वस्तु के बढ़ने के पश्चात् हास अवश्यम्भावी है, किन्तु परमधाम में ऐसा नहीं है। परमधाम में वह पल-पल बढ़ता रहता है, फिर भी चिर यौवन की तरह (अखण्ड) बना रहता है।

सरूप मुख नख सिखलों, जोबन जिनस जुगत।

ए आसिक अंग अर्सके, चढ़ती जोत देखत॥३५॥

मुखारविन्द सहित नख से शिख (सिर) तक श्री राज जी का पूर्ण स्वरूप शाश्वत तरुणाई के रस में ओत-प्रोत है। परमधाम की आत्मायें धनी के अंगों के प्रेम, सौन्दर्य, और आनन्द को पल-पल बढ़ते हुए ही देखती हैं।

भावार्थ- प्रेम, सौन्दर्य, आनन्द, उल्लास आदि को ही अंगों की ज्योति (नूर) कहकर वर्णित किया गया है।

जोत तेज धात रंग रस, रूह बढ़ता देखे दायम।

अंग अर्स इसी रवेस, यों देखे सूरत कायम॥३६॥

ब्रह्मसृष्टियाँ धाम धनी के अंगों के तेज, ज्योति, धातुओं, प्रेम के रंग, तथा शोभा-सौन्दर्य के रस को अखण्ड रूप से पल-पल बढ़ते हुए ही देखती हैं। इसी

क्रम में वे मुखारविन्द को भी अखण्ड रूप से शोभायमान होते हुए देखती हैं।

भावार्थ- इस पञ्चभौतिक शरीर में रस, रक्त, माँस, मज्जा, मेद, अस्थि, शुक्र, और ओज ये आठ धातुएँ होती हैं। यद्यपि परमधाम में कोई भी धातु नहीं होती, किन्तु अन्य अंगों में निहित शोभा-सौन्दर्य का वर्णन होने के कारण "धातु" शब्द का भी प्रयोग कर दिया गया है। सच्चिदानन्दमयी परमधाम में "नूर" तत्व के अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं।

वैसे तो रंग और रस का तात्पर्य अधिकतर प्रेम और आनन्द से लिया जाता है, किन्तु यहाँ पर सौन्दर्य वर्णन का प्रसंग होने से रस का भाव श्रृंगार रस से है, जिसके अन्तर्गत शोभा और सौन्दर्य आते हैं।

चढ़ता रंग रस तो कहूँ, जो होए नहीं पूरन।

पर आसिक जाने मासूक की, नित चढ़ती देखे रोसन॥३७॥

धनी के स्वरूप में मैं प्रेम और सौन्दर्य की नित्य वृद्धि तो तब कहूँ, यदि उसमें किसी प्रकार की कोई कमी हो। किन्तु यह बात उन अँगनाओं की है, जो अपने प्राणवल्लभ की शोभा, सौन्दर्य, और प्रेम को पल-पल बढ़ते हुए देखना चाहती हैं।

भावार्थ- आशिक (प्रेमी) अपने माशूक (प्रेमास्पद) के सौन्दर्य और प्रेम में रञ्जमात्र भी हास होना सहन नहीं कर पाता। उसकी इच्छा उसमें पल-पल वृद्धि की होती है, क्योंकि माशूक ही उसके जीवन का आधार होता है। उसके सौन्दर्य और प्रेम की नित्य नवीनता ही आशिक को आनन्दित करती है।

इसी तथ्य के अनुसार श्री राज जी की शोभा, सौन्दर्य,

और प्रेम में पल-पल वृद्धि होती रहती है। यद्यपि परमधाम और श्री राज जी पूर्णातिपूर्ण हैं, किसी भी दृष्टि से उनमें न्यूनता नहीं है, फिर भी लीला रूप में ही वृद्धि होती है, मूलतः नहीं। वहाँ प्रत्येक वस्तु एकरस है।

एही लछन आसिक के, सब चढ़ते देखे रंग।

तेज जोत रस धातु गुण, और सब पख इंद्री अंग॥३८॥

धनी के प्रेम में डूबी हुई आत्माओं के यही लक्षण हैं कि वे अपने प्राणप्रियतम के सभी अंगों, इन्द्रियों, एवं पक्षों के तेज, ज्योति, सौन्दर्य, धातुओं, गुणों, तथा प्रेम को नित्य बढ़ते हुए देखना चाहती हैं।

भावार्थ- अक्षरातीत के स्वरूप के दो पक्ष हैं- १. बाह्य २. आभ्यान्तर। बाह्य पक्ष में नख से शिख तक का उनका सम्पूर्ण स्वरूप आता है, जबकि आभ्यान्तर पक्ष

में उनका विज्ञानमय हृदय (मारिफत रूपी दिल) आता है। आभ्यान्तर पक्ष ही बाह्य पक्ष के रूप में दृष्टिगोचर होता है, अर्थात् उनका दिल ही बाह्य स्वरूप में प्रकट हुआ माना जाता है।

हक रस रंग जोस जोबन, चढ़ता सदा देखत।

अर्स अरवा रूहन को, हक प्रेमें देत लज्जत॥३९॥

ब्रह्मसृष्टियाँ सर्वदा अपने धाम धनी के सौन्दर्य, प्रेम के जोश, तथा तरुणाई को नित्य वृद्धि रूप में देखना चाहती हैं। इसी प्रकार धाम धनी भी अपनी अँगनाओं को प्रेमपूर्वक इस खेल में इन गुणों का रसास्वादन कराते हैं।

भावार्थ— परमधाम में तो प्रेम, आनन्द, और सौन्दर्य में विलास (डूबना) है। धाम धनी की मेहर रूपी प्रेम की वर्षा को जो आत्मा आत्मसात् कर लेती है, उसे इस

संसार में ही धनी के अनन्त सौन्दर्य और प्रेम से पूर्ण किशोर स्वरूप के दर्शन होते हैं। यही खेल में रसास्वादन करना (लज्जत लेना) है।

घट बढ़ अर्स में है नहीं, हक पूरन हमेसा।

हम इस्कें लें यों अर्स में, सब सुख पूरनता॥४०॥

श्री राज जी पूर्णातिपूर्ण हैं। परमधाम में किसी वस्तु की घट-बढ़ नहीं है। इस प्रकार हम आत्मायें धनी का प्रेम लेकर परमधाम में सभी प्रकार के आनन्द का पूर्ण रूप से रसपान करती हैं।

बीड़ी लई जिन हाथ सों, सोभित पतली अंगुरी।

तिन बीच जोत नंगन की, अति झलकत हैं मुंदरी॥४१॥

श्री राज जी जब अपने हाथ से पान का बीड़ा पकड़ते

हैं, तो उस समय उनके हाथ की पतली-पतली अँगुलियां बहुत ही सुन्दर शोभा देती हैं। धाम धनी ने अपनी अँगुलियों में जो मुद्रिकायें पहन रखी हैं, उसमें जड़े हुए नगों की ज्योति बहुत झलकार करती है।

बीड़ी मुख में मोरत, सुन्दर हरवटी हंसत।

सोभा इन मुख क्यों कहूं, जो बीच में बात करत॥४२॥

जब प्रियतम श्री राज जी अपने मुख में पान का बीड़ा चबाते हैं, तो उनकी अति सुन्दर तुड्डी हँसती हुई प्रतीत होती है। पान चबाते समय जब वे बातें करते हैं, तो उस समय उनके मुख की अद्वितीय सुन्दरता को मैं इस मुख से नहीं कह सकती।

भावार्थ- सामान्यतः मुखारविन्द (चेहरे) को ही हँसते हुए दर्शाया जाता है। किन्तु जब किसी अन्य उपांग

(टुड्डी, आँख) आदि को हँसते हुए आलंकारिक भाषा में कहा जाता है तो इसका आशय अत्यधिक सौन्दर्य एवं प्रसन्नता के आवेश को व्यक्त करना होता है। कहीं-कहीं आलंकारिक रूप में जड़ पदार्थों को भी हँसते हुए प्रस्तुत किया जाता है, जैसे- वह भवन हँस रहा था, या सारा गाँव हँस रहा था। परमधाम में वहदत होने से सभी अंगों को हँसने की शोभा प्राप्त है।

एक लालक तंबोल की, क्यों कहूं अधुर दोऊ लाल।

दंत सोभित मुख मोरत, खूबी ना इन मिसाल॥४३॥

पान की लालिमा के साथ-साथ श्री राज जी के दोनों होंठ भी लाल हैं। मैं इनकी अलौकिक शोभा का वर्णन कैसे करूँ। जब धाम धनी अपने मुख में पान चबाते हैं, तो उस समय उनके दाँत इतने सुन्दर लगते हैं कि

उनकी शोभा की उपमा किसी से भी नहीं दी जा सकती।

लाल उज्जल दोऊ रंग लिए, बीड़ी लेत मुख अंगुरी नरम।

नेक मुख मूंदे बोलत, अति सुन्दर मुख सरम॥४४॥

पान तथा होंठों का रंग लाल है और दाँतों का रंग उज्ज्वल (श्वेत) है। इन दोनों रंगों से सुशोभित अपने मुख में धाम धनी जब अपनी कोमल अँगुलियों से पान का बीड़ा डालते हैं और मुख को थोड़ा सा बन्द किये हुए बोलते हैं, तो प्रेम भरी लज्जा को समेटे हुए उनका मुखारविन्द बहुत सुन्दर दिखायी देता है।

भावार्थ— कोमलता, लज्जा, और माधुर्यता सौन्दर्य के आधार स्तम्भ हैं। इन्हीं भावों के आधार पर श्री राज जी के स्वरूप का चित्रण किया गया है। पान चबाते समय का यह वर्णन लौकिक भावों को परमधाम में मोड़ने के लिये

है, अन्यथा सौन्दर्य के सागर अक्षरातीत की शोभा पान पर आश्रित नहीं है।

नेक खोलें अधुर मुख बोलत, करें प्यारी बातें कर प्यार।
सो सुख देत आसिकों, जिनको नहीं सुमार॥४५॥

प्रियतम अक्षरातीत अपने होंठों एवं मुख को थोड़ा सा खुला रखते हुए अपनी अँगनाओं से प्रेमपूर्वक बहुत प्यारी-प्यारी बातें करते हैं और उन्हें इतना आनन्द देते हैं, जिसकी कोई सीमा नहीं है।

सुख देत सब अंग मिल, नैन नासिका श्रवन अधुर।
हंसत हरवटी भौं भृकुटी, सब दें सुख बोल मधुर॥४६॥

धाम धनी के नेत्र, नासिका, कान, होंठ, हँसती हुई टुड्डी, भौंहें, और भृकुटी आदि सभी अंग मुख के साथ

मिलकर अपने सौन्दर्य तथा मधुर वचनों से आत्माओं को अपार आनन्द देते हैं।

अदभुत सलूकी इन समें, आसिक पावत आराम।

आठों जाम हिरदे रूह के, जानों नकस चुभ्या चित्राम॥४७॥

धाम धनी की इस समय की अलौकिक शोभा को देखकर ब्रह्मसृष्टियों को अनन्त सुख प्राप्त होता है। उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी आत्मा के हृदय में प्रियतम का यह अद्वितीय स्वरूप अंकित (अखण्ड) हो चुका है।

फेर फेर ए मुख निरखिए, फेर फेर जाऊं बलिहार।

ए खूबी खुसाली क्यों कहूं, इन सुख नहीं सुमार॥४८॥

हे साथ जी! आप प्रियतम अक्षरातीत की इस अनुपम

शोभा को बारम्बार देखिए। मैं तो अपने प्राणवल्लभ श्री राज जी के मुखारविन्द की शोभा पर बार-बार बलिहारी जाती हूँ (न्योछावर होती हूँ)। इस शोभा के दीदार से मिलने वाले आनन्द की कोई सीमा ही नहीं है। इस आनन्द की विशेषताओं का मैं इस मुख से कैसे वर्णन करूँ।

अधबीच आरोगते, मेवा काढ़ देत मुख थें।

सरस मेवा केहे देत हैं, आप हाथ मेरे मुख में॥४९॥

परमधाम की प्रेममयी लीला में धाम धनी भोजन करते समय अपने मुख से मेवा निकालकर मेरे मुख में अपने हाथ से यह कहते हुए डाल देते हैं कि यह मेवा बहुत ही स्वादिष्ट (मीठा) है।

भावार्थ— इस चौपाई में प्रेम की एक हल्की सी झलक

दिखायी गई है, जो हमें यह चिन्तन करने के लिये प्रेरित कर रही है कि हम अक्षरातीत को क्या मानें – पूज्यतम इष्ट या अपना सर्वस्व, प्राणाधार?

रंग रस यों केहेते हों, ए जो मेहेर करत मेहेरबान।

ए भूल गैयां हम लाड़ सबे, ना तो क्यों रहे खिन बिन प्रान॥५०॥

मेहर के सागर अक्षरातीत हमारे ऊपर मेहर करके प्रेम और आनन्द की जो लीलाएँ परमधाम में करते हैं, उसे यहाँ के शब्दों में मैंने इस प्रकार व्यक्त किया है। इस माया के संसार में आकर हमने उनके प्रेम को पूर्णतया भुला दिया है, अन्यथा उनके बिना इस संसार में एक क्षण भी हमारे प्राण रहते ही नहीं, अर्थात् उनके बिना हम इस संसार में क्षण भर भी नहीं रह पाते।

भावार्थ– इस चौपाई में यह स्पष्ट रूप से निर्देश है कि

यदि हम युगल स्वरूप, पच्चीस पक्ष, तथा प्रियतम की लीलाओं को अपने धाम हृदय में आत्मसात् कर लेते हैं, तभी हमें इस संसार में रहने का नैतिक अधिकार है, अन्यथा हम अपने प्रेम को किसी न किसी रूप में कलंकित कर रहे हैं।

और काम हक को कोई नहीं, देत रूहों सुख बनाए।

वाहेदत बिना हक दिल में, और न कछुए आए॥५१॥

धाम धनी की लीलाओं का मात्र एक ही उद्देश्य होता है, अपनी प्राणरूपा अँगनाओं को आनन्दित करना। श्री राज जी के हृदय में ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु नहीं बसती है।

भावार्थ— इस चौपाई को पढ़कर हमें अपनी अन्तरात्मा से पूछना चाहिए कि हम अपने दिल में किसको बसाये

रहते हैं?

सुख देना लेना रूहों सों, और रूहों सों वेहेवार।

ए अर्स बातें इन जिमिएं, कोई बिना रूह न लेवनहार॥५२॥

धाम धनी ब्रह्मसृष्टियों को सुख देते हैं तथा सुख लेते हैं वे उनसे हमेशा मात्र प्रेम की ही लीला करते हैं। परमधाम की इन बातों को इस मायावी जगत में ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त अन्य कोई यथार्थ रूप से मान भी नहीं सकता।

भावार्थ— परमधाम में सभी एक-दूसरे के प्रेमी-प्रेमास्पद (आशिक-माशूक) हैं। वहदत (एकत्व) की इस भूमिका में सबका दिल एक होना स्वाभाविक है। अतः श्री राज जी द्वारा सुख लेने की बात पर आश्चर्य नहीं करना चाहिए।

स्वलीला अद्वैत परमधाम की प्रेममयी लीलाओं को मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही पूर्ण रूप से आत्मसात कर पाती हैं। जन्म-मरण के चक्र में भटकने वाले जीव परमधाम के स्वरूप तथा लीलाओं को संशयात्मक दृष्टि से देखते हैं। तारतम ज्ञान ग्रहण करने के पश्चात् भी उनका संशय पूर्ण रूप से समाप्त नहीं होता।

कोई काम न और रूहों को, एक जानें हक इस्क।

आठों जाम चौसठ घड़ी, बिना प्रेम नहीं रंचक॥५३॥

इसी प्रकार ब्रह्मसृष्टियों को भी श्री राज जी से प्रेम करने के अतिरिक्त और कोई काम नहीं होता। वे एकमात्र धनी के प्रेम से ही अपना सम्बन्ध रखती हैं। अष्टप्रहर चौंसठ घड़ी उनके हृदय में धनी के प्रेम के अतिरिक्त और कुछ होता ही नहीं है।

हक जात वाहेदत जो, छोड़ें ना एक दम।

प्यार करें माहों-माहें, वास्ते प्यार खसम॥५४॥

श्री राज जी की अँगरूपा आत्मायें एक पल के लिये भी अपने प्रियतम को नहीं छोड़तीं अर्थात् उनसे अलग नहीं होती हैं। धनी के प्रेम के लिये वे आपस में एक-दूसरे से प्रेम करती हैं।

भावार्थ- सभी ब्रह्मसृष्टि के रूप में श्री राज जी का दिल ही लीला करता है, इसलिए उन्हें एकत्व (वहदत) का स्वरूप माना जाता है। खुलासा ३/४ में कहा गया है-

तुम माहो माहें रहियो साहेद, मैं केहेता हों तुम को।

याद राखियो आप में, इत मैं भी साहेद हों॥

इस कथन के आधार पर माहों माहें का तात्पर्य सखियों का आपस में प्रेम होने से है। परमधाम में प्रत्येक ब्रह्मसृष्टि दूसरी ब्रह्मसृष्टि को अपने से करोड़ों गुना चाहती है। इस

चौपाई के चौथे चरण से भी यही निष्कर्ष निकलता है कि धनी की प्रेममयी लीला तभी पूर्ण मानी जायेगी, जब सखियों का आपस में भी प्रेम हो। "तुम सब रूहें मेरे तन हों" (सिनगार ११/७) के कथन से यही अभिप्राय है कि ब्रह्मसृष्टियों के रूप में श्री राज जी ही विद्यमान हैं। किरंतन ११८/३ की यह चौपाई भी यही संकेत करती है—

मोमिन रखे मोमिन सो, जो तन मन अपना माल।

सो अरवा नहीं अर्स की, ना तिन सिर नूर जमाल॥

इस जागनी ब्रह्माण्ड में भी एक जाग्रत आत्मा दूसरी आत्मा से अनिवार्य रूप से आत्मिक प्रेम करती है।

हक अंग चलत मुख बोलते, तब जान्या जात गुझ प्यार।

ए अरवा अर्स की जानहीं, जाको निसदिन एह विचार॥५५॥

जब धाम धनी बातें करते हैं, तो उनके सभी अंग चलायमान दिखते हैं। इससे ही श्री राज जी के दिल में विद्यमान (गुह्य) अनन्त प्रेम की पहचान होती है। इस रहस्य को परमधाम की मात्र वही आत्मायें जानती हैं, जो दिन-रात इसी चिन्तन में डूबी रहती हैं।

भावार्थ- किसी से बातें करते समय चेहरे की भाव-भंगिमा हृदय के भावों को प्रकट करती है। उस समय नेत्रों, होंठों, तथा हाथ-पैरों की सक्रियता से यह जाना जा सकता है कि बोलने वाले के मन में क्या है। इसी आधार पर परमधाम की प्रेममयी लीला का चित्रण किया गया है। जब श्री राज जी अपने मुख से शब्दों द्वारा प्रेम की अमृतधारा बहाते हैं, तो उनके सभी अंग भी इस लीला में अपनी सहभागिता दर्शाने लगते हैं। यह प्रसंग इसी प्रकरण की चौपाई २६, २७ में भी प्रकट किया गया

है।

हक नरम पांउं उठाए के, और धरत जिमी पर।

ए अर्स बीच मोमिन जानहीं, जिनको खुसबोए आई फजर॥५६॥

जब श्री राज जी अपने चरण कमल को उठाकर अति प्यार से नूरमयी धरती पर रखते हैं, तो उस समय आनन्द की अखण्ड धारा प्रवाहित होने लगती है। इस रहस्य को मात्र परमधाम की वे आत्मायें ही जानती हैं, जिनको जागनी के प्रकाश की सुगन्धि प्राप्त हो गयी होती है, अर्थात् जिनकी आत्मा में ब्राह्मी ज्ञान का प्रकाश हो चुका होता है।

हक धरत पांउं उठावत, तब जानी जात चतुराए।

सो समझें हक इसारतें, जो होएं अर्स अरवाए॥५७॥

धाम धनी चलते समय जब अपने चरण कमल को उठाकर धरती पर रखते हैं, तब उस समय उनकी कदम रखने की चतुराई जानी जाती है। जो परमधाम की आत्मायें होती हैं, एकमात्र वही इस रहस्य को जानती हैं कि जब श्री राज जी अपने चरणों को धरती पर रखते हैं तो वे धरती से कैसा संकेत करते हैं।

भावार्थ- सागर ६/१२६ में भी इसी तरह श्यामा जी के चलने का प्रसंग है। ठीक वही स्थिति यहाँ भी है। परमधाम में धरती, आकास, तेज, जल, वायु, पशु-पक्षी, या वृक्ष आदि सभी कुछ आत्म-स्वरूप हैं। ये सभी अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत को सखियों की तरह आशिक बनकर रिझाते हैं। इसी प्रकार श्री राज जी भी इनसे वैसा ही प्रेम करते हैं, जैसा सखियों से करते हैं। सागर १/४०, ४१ में कहा गया है-

जिमी जात भी रूह की, रूह जात आसमान।

जल तेज वाए सब रूह को, रूह जात अर्स सुभान॥

पशु पंखी या दरखत, रूह जिनस हैं सब।

हक अर्स वाहेदत में, दूजा मिले न कछुए कब॥

इस मायावी जगत के आशिक अपने माशूक पर किस प्रकार समर्पित होते हैं, उसकी एक झलक वाणी में इस प्रकार है—

दुनी पंखी बिछोहा न सहे, वह आगे ही उड़े अरवा।

गिरत है आकास से, होत है पुरजा पुरजा॥

श्रृंगार २०/८२

आगूं आसिक ऐसे कहे, जो माया थें उतपन।

कोट बेर मासूक पर, उड़ाए देवें अपना तन॥

किरंतन ९१/१

रोम रोम बीच रमि रहया, पिउ आसिक के अंग।

इस्कें ले ऐसा किया, कोई हो गया एकै रंग॥

किरंतन ९१/१७

एकत्व (वहदत) के सिद्धान्त के अनुसार श्री राज जी और धरती एक-दूसरे के आशिक-माशूक हैं। वे अपने चरणों को भला कठोरतापूर्वक धरती पर कैसे रख सकते हैं? क्या उनके प्रेम का स्तर मायावी जीवों के प्रेम से भी छोटा है? इसी प्रकार श्री राज जी के अंगों में लिपटे हुए वस्त्र और आभूषण जब अपने धाम धनी को अति कोमल बनकर रिझा रहे हैं, तो धरती ही इसमें पीछे क्यों रहे?

इसी कशमकश (होड़) में धरती और श्री राज जी के बीच में प्रेम-युद्ध होता है। दोनों एक-दूसरे को अपने प्रेम से हराना चाहते हैं। धाम धनी को रिझाने के लिये धरती अपने को फूलों से भी अधिक (करोड़ों गुना) कोमल,

स्वच्छ, और सुगन्धमयी कर लेती है, तो धाम धनी अपनी अँगरूपा धरती पर अपने चरण कमल वैसे ही रखते हैं जैसे प्रेम में डूबा हुआ प्रेमी (आशिक) अपने प्रेमास्पद को स्पर्श करता है।

कैसे लगें पांउं चलते, वह कैसी होसी भोम।

चलते देखे हक चातुरी, हाए हाए घाए न लगे रोम रोम॥५८॥

प्राणवल्लभ अक्षरातीत जब परमधाम की नूरमयी धरती पर चलते हैं, तो उनके नूरी चरण कमल कैसे लगते हैं! यह विचारणीय तथ्य है। वह धरती भी कैसी होगी जो अपने कोमल स्पर्श का अहसास कराकर प्रियतम के चरणामृत का पान करती है! जिन आत्माओं ने परमधाम में अपने प्रियतम को अत्यधिक चतुराई से चलते हुए देखा है, हाय! हाय! माया के इस संसार में आने पर उस

लीला का वाणी द्वारा बोध होते हुए भी उनके रोम-रोम में विरह के बाणों की चोट क्यों नहीं लगती।

इजार देखत पाउं में, लेत झाँई जामें पर।

हाए हाए खूबी इन चाल की, ए जुबां कहे क्यों कर॥५९॥

श्री राज जी ने अपने पैरों में जो इजार पहन रखी है, उसकी प्रतिबिम्बित शोभा जामे में झलकार कर रही है। हाय! हाय! धनी की प्रेम भरी इस चाल की विशेषताओं को नश्वर जगत की यह जिह्वा भला कैसे कह सकती है।

स्वर भूखन मधुरे सोहे, ए तरह चलत जो हक।

ए जो देखे रूह नजर भर, तो चाल मार डारत मुतलक॥६०॥

श्री राज जी जब इस तरह की प्रेममयी चाल से चलते हैं, तो अत्यधिक मधुर स्वरों की झनकार करने वाले

आभूषण बहुत अधिक सुशोभित होते हैं। इस अनुपम चाल को यदि कोई आत्मा अच्छी तरह से देख ले, तो धनी की यह चाल उसे निश्चित रूप से अपने प्रेम-बाणों से मार डालती है।

भावार्थ- मार डालने का तात्पर्य है- उसे शरीर और संसार के मोहजाल से हटाकर अपने में डुबो लेना। यह प्रसंग इस जागनी ब्रह्माण्ड का है, जिसमें आत्मा चितवनि में डूबकर इस चाल को देख सकती है।

नख अंगूठे अंगुरियां, चलते अति सोभित।

चाल विचारते अर्स की, हाए हाए अरवा क्यों न उड़त॥६१॥

जब धाम धनी चलते हैं, तो उनके पैरों की अँगुलियों तथा अँगूठों के नख बहुत अधिक शोभा देते हैं। हाय! हाय! श्री राज जी की चाल का विचार करने पर भी

आत्मा इस संसार को छोड़कर धनी की चाल की शोभा में क्यों नहीं डूब जाती।

भावार्थ- धाम धनी की शोभा का चिन्तन ही सर्वोपरि लक्ष्य नहीं है, बल्कि चितवनि में डूबकर उसका प्रत्यक्ष साक्षात्कार करना चाहिए। इस चौपाई में यही निर्देश दिया गया है।

अर्स दिल मोमिन कहा, ठौर बड़ी कुसाद।

हक हादी रूहें माहें बसें, असल अर्स जो आद॥६२॥

अक्षरातीत का मूल परमधाम अनन्त विस्तार वाला है। उसमें युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी एवं ब्रह्मसृष्टियों का निवास है। सूक्ष्म रूप से वह अनन्त परमधाम ब्रह्मसृष्टियों के हृदय (दिल) में है।

भावार्थ- जिस प्रकार पानी के एक छोटे से बुलबुले में

पृथ्वी से १३ लाख गुना बड़ा सूर्य प्रतिबिम्बित हो जाता है, उसी प्रकार आत्माओं के अति सूक्ष्म दिल में सम्पूर्ण परमधाम की शोभा दृष्टिगोचर होती है।

जेता मता हक का, सो सब अर्स में देख।

सो सब मोमिन दिल में, पाइए सब विवेक॥६३॥

हे मेरी आत्मा! अक्षरातीत की जो भी निधियाँ हैं, उन सभी को तू परमधाम में देख। आत्म-दृष्टि से (विवेकपूर्वक) उन सम्पूर्ण निधियों को ब्रह्ममुनियों के धाम हृदय में भी देखा जा सकता है।

द्रष्टव्य- श्री महामति जी ने इस चौपाई में प्रत्यक्षतः स्वयं के लिये कहा है, किन्तु परोक्ष में सुन्दरसाथ के लिये सन्देश है। अपनी आत्म-दृष्टि को शरीर और संसार से परे कर लेना ही वास्तविक विवेक है।

हक हादी रूहें खेलैं, उठें बैठें दौड़ें करें चाल।

ए जानें अरवाहें अर्स की, जो रहेत हमेसा नाल॥६४॥

अनादि परमधाम में सखियों के साथ श्री राजश्यामा जी लीला रूप में खेलते हैं, उठते-बैठते हैं, दौड़ते और चलते हैं। इस लीला को मात्र परमधाम की वे आत्मायें ही जानती हैं, जो परमधाम में हमेशा उनके साथ रहती हैं।

भावार्थ- मानव बुद्धि हमेशा संशय से ग्रस्त रहती है। परमधाम की लीलाओं को मानवीय लीला न समझा जाये, इसलिये इस चौपाई में यह कथन किया गया है।

जो तोहे कहे हक हुकम, सो तूं देख महामत।

और कहो रूहन को, जो तेरे तन वाहेदत॥६५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरी आत्मा! यदि धाम धनी का आदेश (हुक्म) तुझसे कहता है अर्थात् तुझे

हुक्म देता है, तो तू अपने प्रियतम की शोभा को देख
और उन आत्माओं को भी इस राह पर चलने के लिये
कह जो परमधाम की एकदिली (वहदत) में तेरे ही समान
श्री राज जी के तन हैं।

प्रकरण ॥१९॥ चौपाई ॥१०६४॥

हक मासूक का मुख सागर – मंगला चरण

श्री राज जी के मुख के सौन्दर्य का सागर

इस सम्पूर्ण प्रकरण में श्री राज जी के मुखारविन्द की अद्वितीय शोभा को ऐसे सागर से उपमा दी गयी है, जिसका कोई थाह नहीं है।

हक इलम के जो आरिफ, मुख नूरजमाल खूबी चाहें।

चाहें चाहें फेर फेर चाहें, देख देख उड़ावे अरवाहें॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि जो ब्रह्मवाणी के ज्ञाता होते हैं, वे श्री राज जी के मुखारविन्द की अद्वितीय शोभा को बारम्बार देखते रहना चाहते हैं। उस शोभा को देख-देखकर वे स्वयं को उसमें डुबो देते हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में सुन्दरसाथ को यह विशेष रूप से शिक्षा दी गयी है कि ब्रह्मवाणी के शब्द-ज्ञान को ग्रहण

कर लेने मात्र से आत्मा पूर्ण रूप से जाग्रत नहीं होगी ,
बल्कि आत्म-जाग्रति के लिये धाम धनी के मुखारविन्द
की शोभा को अपने धाम हृदय में बसाना ही होगा।

एही काम आसिकन का, हक इलम एही काम।

नूरजमाल का जमाल, छोड़ें न आठों जाम॥२॥

अक्षरातीत के मुखारविन्द से अवतरित होने वाली इस
ब्रह्मवाणी तथा ब्रह्मात्माओं का एकमात्र कार्य (लक्ष्य) है—
धाम धनी की शोभा को अष्ट प्रहर अपने हृदय में बसाये
रखना।

भावार्थ— ब्रह्मवाणी प्रियतम की शोभा को हृदय में
बसाने का ज्ञान देती है तथा आत्मा का प्रेम उसे
आत्मसात् कराता है।

खाते पीते उठते बैठते, सोवत सुपन जाग्रत।

दम न छोड़ें मासूक को, जाको होए हक निसबत॥३॥

जिनका धनी के चरणों से अखण्ड सम्बन्ध होता है, वे खाते-पीते, उठते-बैठते, सोते-जागते या स्वप्न में पल भर के लिये भी अपने प्राण प्रियतम को अपने धाम हृदय से अलग नहीं करते।

भावार्थ- आत्मा के धाम हृदय में जो शोभा एक बार भी बस जायेगी, वह निद्रा या स्वप्न की अवस्था में भी उससे पल भर के लिये अलग नहीं हो सकेगी। हाँ! जीव या उसके दिल को वह शोभा विस्मृत रहेगी, क्योंकि नींद की अवस्था में तमोगुण के प्रभाव से जीव का अन्तःकरण क्रियाहीन हो जायेगा। जीव अन्तःकरण के ही माध्यम से ज्ञान का अनुभव करता है। समाधि अवस्था में त्रिगुणातीत अवस्था होती है, जिसमें आत्मा को मिलने

वाले आनन्द का जीव रसपान करता है, किन्तु नींद में वह स्वयं को भूला रहता है। इसके विपरीत आत्मा परात्म का प्रतिबिम्ब होने से तथा खेल की द्रष्टा होने से इन बन्धनों से सर्वदा परे रहती है।

हक बरनन फेर फेर करें, फेर फेर एही बात।

एही अर्स रूहों खाना पीवना, एही वतन बिसात॥४॥

परमधाम की आत्माएँ श्री राज जी की शोभा का बारम्बार वर्णन करती हैं। उनके चिन्तन में बार-बार यही बात गूँजती रहती है। उनका भोजन और जल पीना भी यही है। प्रियतम की शोभा का ज्ञान ही उनके लिये परमधाम की अनमोल निधि है।

भावार्थ— इस चौपाई में यह जिज्ञासा होती है कि ब्रह्मसृष्टियों का भोजन करना और जल पीना क्या है?

इस चौपाई में तो धाम धनी की शोभा का वर्णन और चिन्तन करने को ही भोजन करना और जल पीना कहा गया है, जबकि सागर ५/९० में प्रियतम के दीदार को भोजन करना तथा प्रेम में डूबने को जल पीना कहा गया है, क्या यह विरोधाभास नहीं है?

खाना दीदार इनका, यासों जीवें लेवें स्वांस।

दोस्ती इन सरूप की, तिनमें मिटत प्यास॥

इसका समाधान यह है कि अध्यात्म की प्राथमिक सीढ़ी के रूप में ज्ञान का चिन्तन-मनन ही जीव का आहार एवं पानी पीना है। आत्म-जाग्रति के शिखर पर पहुँचने के लिये जीव के अन्तःकरण द्वारा होने वाले चिन्तन-मनन से भी परे चितवनि की राह अपनानी पड़ेगी, जिसमें आत्मिक दृष्टि अपने प्राण वल्लभ का दीदार करती है और आत्मा के धाम हृदय में वह शोभा अखण्ड हो जाती है।

उस स्थिति में मुख से अधिक बोलना सम्भव नहीं होता। कलस हिंदुस्तानी ९/२१ का यह कथन इस सम्बन्ध में बहुत महत्वपूर्ण है— "जब मैं हुती विरह में, तब क्यों मुख बोल्यो जाए।"

प्रेम की गति तो इससे भी न्यारी है। कलस हिंदुस्तानी ७/६ का कथन है—

नाहीं कथनी इस्क की, और कोई कथियो जिन।

इस्क तो आगे चल गया, सब्द समाना सुन॥

यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि ज्ञान का कथन मात्र जीव के अन्तःकरण एवं इन्द्रियों द्वारा ही होता है, जबकि प्रियतम के दीदार में आत्मा के अन्तःकरण की लीला होती है। आगे की चौपाई में यह बात स्पष्ट कर दी गई है।

जेती रूहें आसिक, रेहेत हक खूबी के माहें।

रूह को छोड़ के वजूद, कोई जाए न सके क्यांहे॥५॥

जो परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ हैं, वे एकमात्र अपने प्राणप्रियतम की शोभा में ही डूबी रहती हैं। वे आत्मा द्वारा होने वाली प्रेम लक्षणा भक्ति को छोड़कर शरीर द्वारा होने वाले कर्मकाण्डों में किसी प्रकार भी नहीं फँसती।

एही हक इलम को लछन, आसिकों एही लछन।

एही इलम इस्क के आरिफ, सोई अर्स रूह मोमिन॥६॥

अक्षरातीत की ब्रह्मवाणी का गुण (लक्षण) है— आत्मा को धनी की शोभा में लगाना। इसी प्रकार आत्मा (आशिक) का लक्षण (गुण) है— प्रियतम की शोभा को अपने हृदय में बसा लेना। इस प्रकार प्रेम और ज्ञान (इश्क और इल्म) को जो यथार्थ रूप से जानते हैं

अर्थात् ज्ञान और प्रेम को जो धाम धनी की शोभा में केन्द्रित कर देते हैं, उनमें ही परमधाम की आत्मा विराजमान होती है।

॥ मंगलाचरण सम्पूर्ण ॥

मंगलाचरण सम्पूर्ण होने के पश्चात् अब श्री राज जी के मुखारविन्द की सागर समान शोभा का वर्णन किया जा रहा है।

बरनन करो रे रूहजी, मासूक मुख सुन्दर।

कोमल सोभा अलेखे, खोल रूह के नैन अंदर॥७॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरी आत्मा ! तू अपने आन्तरिक नेत्रों को खोलकर प्रियतम श्री राज जी के अति कोमल तथा सुन्दर मुख को देख और शब्दों से परे उनकी जो शोभा है, उसका वर्णन कर।

ललित लाल मुख सागर, कहूं अचरज के अदभूत।

क्यों कर आवे बानीय में, ए बका सूरत लाहूत॥८॥

धाम धनी का मुखारविन्द लालिमा से भरपूर अति सुन्दर है। इसकी अद्भुत शोभा अनन्त सागर के समान है, जो विस्मय (आश्चर्य) में डालने वाली है। परमधाम की इस शोभा को भला शब्दों में कैसे कहा जा सकता है।

मुख गौर झरे कसूंबा, सोभा क्यों कहूं बड़ो विस्तार।

रंग कहूं के सलूकी, ए न आवे माहें सुमार॥९॥

श्री राज जी के गोरे मुख पर गहरी गुलाबी आभा झलकार कर रही है। यह शोभा तो अनन्त है, शब्दों में इसे कैसे कहूँ। मैं मुख के गोरे रंग का वर्णन करूँ या उसमें निहित सुन्दरता का वर्णन करूँ? इसकी शोभा की तो कोई सीमा ही नहीं है।

भावार्थ- लाल और श्वेत (उज्ज्वल) रंग मिलाने पर गुलाबी रंग बनता है। धाम धनी के मुख का रंग गहरा गुलाबी है, जिसकी उपमा इस चौपाई में कसूंबा (कुशुम्भ) के फूल के रंग से दी गई है।

कहूं सागर मुख जोत का, के कहूं मेहेर सागर।

के कहूं सागर कलाओं का, जुबां केहे न सके क्योंए कर॥१०॥

धाम धनी के मुखारविन्द को मैं ज्योति का सागर कहूँ, या मेहेर का सागर, या कलाओं का सागर कहूँ? मेरी यह जिह्वा किसी भी प्रकार से मुखारविन्द का वर्णन नहीं कर पा रही है।

भावार्थ- प्रश्नोपनिषद् में षोडश (सोलह) कला वाले पुरुष (जीव) की विवेचना की गयी है। इसी प्रकार का प्रसंग यजुर्वेद ८/३६ में है, जिसमें "स षोडशी" कहकर

वर्णन किया गया है। "कला" शब्द का अभिप्राय यहाँ "दिव्यता" से है। वस्तुतः अक्षरातीत तो दिव्यताओं के सागर हैं।

मुख चौक कहूं के चकलाई, के सीतल सागर सुख।

के कहूं सागर रस का, जो नूरजमाल का मुख॥११॥

मैं श्री राज जी के मुखारविन्द के अग्र भाग (चौक) को सौन्दर्य का सागर कहूँ, या हृदय को शीतल करने वाले सुख का सागर कहूँ, या रस का सागर कहूँ?

भावार्थ— रस के सागर में प्रेम, आनन्द, एकत्व, सौन्दर्य आदि सभी रस समाये होते हैं।

के कहूं सागर तेज का, के कहूं सागर सरम।

के नूर सागर कहूं बिलंद, के चंचल गुन नरम॥१२॥

धाम धनी के मुख को मैं तेज का सागर कहूँ या प्रेम भरी लज्जा का सागर कहूँ? मैं यह निर्णय ही नहीं कर पा रही हूँ कि श्री राज जी के मुख को नूर का अनन्त सागर कहूँ या कोमलता तथा प्रेम की सक्रियता से भरपूर गुण वाला कहूँ?

भावार्थ— प्रेम और सौन्दर्य की शोभा माधुर्य मिश्रित लज्जा से होती है, इसलिये अक्षरातीत के मुख कमल की शोभा में इस गुण को दर्शाया गया है। इस चौपाई के चौथे चरण में प्रयुक्त "चंचल" शब्द को लौकिक चंचलता नहीं समझना चाहिए। वस्तुतः श्री राज जी के मुख कमल में प्रेम, सौन्दर्य आदि गुणों में नित्य निरन्तर वृद्धि की क्रियाशीलता बनी रहती है, इसलिये इसे चंचल गुण वाला कहा गया है। स्थिरता क्रियाविहीनता का सूचक है।

कहूं सज्जनता के सनकूली, दोस्ती कहूं के प्यार।

जो जो देखूं नजर भर, सों सब सागर अपार॥१३॥

मैं जैसे-जैसे श्री राज जी के मुखारविन्द की ओर गहराई से देख रही हूँ, तो ऐसे लग रहा है जैसे उनके मुख पर पतिपना, प्रसन्नता, दोस्ती (मित्रता), और प्रेम के अनन्त सागर उमड़ रहे हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में दोस्त का तात्पर्य लौकिक मित्र या दोस्त नहीं है, बल्कि वह स्वरूप जो पवित्र भाव से प्रेम करे और सर्वदा प्रेम के सम्बन्ध को निभाये, दोस्त (मित्र) कहलाता है।

सागर कहूं पाक साफ का, के कहूं आबदार।

हक मुख सागर क्यों कहूं, सब विध पूरन अपार॥१४॥

प्रियतम के मुखारविन्द को मैं पवित्रता और उज्ज्वलता

का सागर कहूँ या कान्तिमानता का सागर कहूँ? उनके मुखारविन्द के गुणों की मैं सागर से भी उपमा क्यों दूँ? वे तो हर तरह से पूर्ण और अनन्त हैं।

मोमिन दिल कोमल कहा, तो अर्स पाया खिताब।

तो दिल मोमिन रूह का, तिन कैसा होसी मुख आब॥१५॥

ब्रह्मसृष्टियों के दिल को कोमल कहा गया है, इसलिये उसे धाम कहलाने की शोभा मिली है। इस प्रकार जिस ब्रह्मसृष्टि के धाम हृदय में अक्षरातीत ही विराजमान होते हैं, उसके नूरी मुख की कान्ति कैसी होगी।

तिन रूह के नैन को, किन विध कहूं नूर तेज।

जो हक नैनों हिल मिल रहे, जाके अंग इस्क रेजा रेज॥१६॥

जिन ब्रह्मसृष्टियों (परात्म) के नैन धाम धनी के नयनों

से दृष्टि द्वारा एकरस (हिल-मिल) हो गये होते हैं, और जिनके अंगों के कण-कण में प्रेम ही प्रेम भरा होता है, उन ब्रह्मसृष्टियों के नयनों के नूरी तेज का वर्णन मैं किस प्रकार से करूँ।

और हक कदम अति कोमल, पांउं तली जोत अतंत।

सो रहें रूह नैनों बीच में, सो क्या करे जुबां सिफत॥१७॥

धनी के चरण कमल अत्यन्त कोमल हैं। उनके पाँवों की तलियों में अनन्त ज्योति भरी हुई है। प्रियतम के चरणों की यह शोभा ही ब्रह्मसृष्टियों के नयनों अर्थात् हृदय में बसी रहती है। उन नयनों की महिमा का वर्णन यहाँ की जिह्वा से कैसे हो सकता है।

भावार्थ— बाह्य आँखों से जिस वस्तु को अति प्रेमपूर्वक देखा जाता है, वह दिल में अवश्य बसी होती है। आँखों

में दिखने वाला प्रेम भी दिल से ही प्रकट होता है। इस प्रकार बातिनी रूप में, नेत्रों में बसने का तात्पर्य दिल (हृदय) से भी लिया जाता है। संक्षेप में, नेत्र हृदय का और मुख नेत्रों का दर्पण होता है।

केहेवत हुकम इन जुबां, पर ए खूबी कही न जाए।

ए कहे बिना भी ना बने, बिन कहें रूह बिलखाए॥१८॥

यद्यपि मेरी इस जिह्वा से धाम धनी का आदेश (हुकम) ही कह रहा है, किन्तु श्री राज जी की इस अद्वितीय शोभा का यथार्थ वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है। जितना वर्णन हो रहा है, यदि इतना भी वर्णन न हो, तो काम नहीं चलता। यदि मैं इतना भी न कहूँ तो मेरी आत्मा बिलखती है, क्योंकि इसके बिना अन्य आत्माओं की जागनी ही नहीं हो सकती।

भावार्थ- आत्मा परात्म का प्रतिबिम्ब है और परात्म साक्षात् धाम धनी का तन है। आत्मा इस खेल में द्रष्टा के रूप में है। ऐसी स्थिति में आत्मा का बिलखना सम्भव नहीं है।

जीव अपने मूल स्वरूप में हँसने-रोने आदि द्वन्द्वों से परे होता है, किन्तु अन्तःकरण एवं इन्द्रियों के माध्यम से उसे जिस सुख एवं दुःख की अनुभूति होती है, वह प्रकट हो जाती है। इस प्रकार जीव को ही हँसने एवं रोने वाला कहा जाता है। यद्यपि जीव अपने शुद्ध स्वरूप में अन्तःकरण और इन्द्रियों के सुख-दुःख का मात्र द्रष्टा होता है।

इसी प्रकार जीव के ऊपर विराजमान आत्मा भी द्रष्टा के रूप में खेल को देख रही है। जिस प्रकार जीव के द्वारा सुख या दुःख की अनुभूति को इन्द्रियों के द्वारा हँसने-

रोने के रूप में व्यक्त किया जाता है, उसी प्रकार आत्मा के अन्दर धनी की शोभा के अवतरण की अत्यन्त तीव्र इच्छा है, जो इस संसार के भावों में बिलखने के रूप में दर्शायी गयी है। आगे की चौपाई में भी इसी प्रकार की स्थिति है।

इन नैनों सुख बका न देख्या, सुन्या हादियों के मुख।

सुनी बानी जुबां केहे ना सके, जुबां कहे देख्या सुख॥१९॥

मैंने इस संसार के नेत्रों से सुख देने वाली अखण्ड शोभा को नहीं देखा है। उसे केवल युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी के मुख से सुना भर है। सुनी हुई वाणी को यह जिह्वा भला कैसे कह सकती है। इन नयनों से देखी हुई सुखमयी शोभा का ही यह जिह्वा वर्णन कर सकती है।

भावार्थ- इस चौपाई में यह प्रश्न उठता है कि क्या श्री महामति जी ने परमधाम या युगल स्वरूप को नहीं देखा है? यदि नहीं देखा है, तो परिकरमा ३०/१ में ऐसा क्यों कहा गया है कि "अब चितवनि से कहत हों, जो देत साहेदी अकल"? क्या इन दोनों कथनों में विरोधाभास है?

श्रीमुखवाणी में कहीं भी विरोधाभास नहीं है। ब्राह्मी ज्ञान में विरोधाभास का प्रश्न ही कहाँ उठता है, आवश्यकता होती है उचित समायोजन की।

किरंतन ७३/७,८ में कहा गया है कि जो सुख परात्म को होता है, वह आत्मा को पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार जो सुख आत्मा के अनुभव में आता है, वह यथार्थ रूप में जीव तक नहीं पहुँचता। जो सुख जीव को प्राप्त होता है, वह अन्तःकरण तक पूर्ण रूप से नहीं

आता। अन्तःकरण का सुख यथार्थ रूप में वाणी द्वारा पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं होता।

श्री राज जी महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर जो कुछ भी कह रहे हैं, उसे तो आत्मा पूर्ण रूप से अनुभव कर ही रही है (देख रही है)। किरंतन ११७/३,४ में यह बात स्पष्ट रूप से कही गयी है कि आत्मा और धनी— "नांही जुदा कांही जांही अर्स मांहीं, मिले रूह भेले दिल एक हुए।" अरस—परस सभी एक हो गये हैं— "हक अरस परस सरस सब एक रस, वाहेदत खिलवत निसबत न्यामत।"

किन्तु जीव को अनुभव तो आंशिक रूप से ही होगा। बाह्य आँखों द्वारा दृश्य पदार्थों का ही जिह्वा (रसना, वाणी) द्वारा कथन हो सकता है, इन्द्रियातीत पदार्थों का नहीं। जो अनुभव जीव के अन्तःकरण को हो रहा है, वह

श्री मिहिरराज जी (जीव) की जिह्वा से यथार्थ रूप में कैसे कहा जा सकता है।

कहूं नूर तेज रोसनी, याकी जोत गई अंबर लों चल।

माहें गुन गरभित कई सागर, क्यों कहे बिना अंतर बल॥२०॥

अब मैं धाम धनी के मुखारविन्द पर क्रीड़ा करने वाले नूरमयी तेज और ज्योति का वर्णन कर रही हूँ। इसकी ज्योति आकाश तक फैली हुई है। इस नूरी ज्योति में अनेक सागरों के समान अनन्त ज्योति को अपने अन्दर छिपाये रखने का गुण विद्यमान है, अर्थात् धाम धनी के मुखारविन्द की नूरी ज्योति ही अनन्त परमधाम में सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रही है। इसका वर्णन होना धाम धनी की शक्ति (आवेश) के बिना सम्भव नहीं है।

किन विध कहूं मुख मांडनी, कहूं सनकूली के सुख पुंज।
 के कहूं आनंद सागर पूरन, गरुआ गंभीर नूर गंज॥२१॥
 धाम धनी के मुख की स्वच्छता का मैं कैसे वर्णन करूँ।
 उनका मुखारविन्द प्रसन्नता तथा सुख का अनन्त
 भण्डार ही दिख रहा है, उसे कैसे कहा जाये। नूरी आभा
 से परिपूर्ण श्री राज जी का मुख मण्डल अनन्त-गहन-
 गम्भीर आनन्द के सागर की तरह दृष्टिगोचर हो रहा है।

ए सागर सरूपी मुख मासूक, कई खूबी खुसाली अनेक।
 कई रंग तरंग किरने उठें, ए वेही जानें गिनती विवेक॥२२॥
 श्री राज जी का मुख शोभा के अनन्त सागर के समान
 है, जिसके अन्दर आह्लादिता (प्रसन्नता) और
 विशेषताओं की असंख्य लहरें क्रीड़ा करती हैं। धाम धनी
 के मुखारविन्द से अनेक रंगों की तरंगें और किरणें उठती

रहती हैं, जिनकी यथार्थ संख्या मात्र वे ही जानते हैं।

इन मुख सागर में कई सागर, सुख आनंद अपार।

कई सागर सुख सलूकियां, माहें कई गंज अपार अंबार॥२३॥

श्री राज जी के मुखारविन्द के सौन्दर्य रूपी सागर में अनेक सागर विद्यमान हैं, जिनमें अनन्त सुख और आनन्द छिपा हुआ है। इस सौन्दर्य सागर में सुखमयी शोभा के कई सागर हैं, जिनमें गंजानगंज शोभा स्वरूपी सुख के अनन्त भण्डार भरे हुए हैं।

भावार्थ— आनन्द आत्मा का गुण है, जबकि सुख अन्तःकरण का विषय है। परात्म में आनन्द गुण स्वाभाविक है, जबकि इस मायावी जगत् में आत्मा प्रियतम को पाकर ही आनन्दित होती है।

कोई मोमिन केहेसी ए क्यों कहा, हक मुख सोभा सागर।

सुच्छम सरूप अति कोमल, ललित किसोर सुन्दर॥२४॥

कोई सुन्दरसाथ (ब्रह्ममुनि) यह प्रश्न कर सकते हैं कि श्री राज जी के मुख को शोभा का सागर क्यों कहा गया है? श्री राज जी का यह किशोर स्वरूप तो त्रिगुणातीत, अति कोमल, मनमोहक, और अति सुन्दर है।

जो अरवा होए अर्स की, सो लीजो दिल धर।

सुच्छम सूरत सोभा बड़ी, सो सुनियो पड़उत्तर॥२५॥

जो परमधाम की आत्मा हो, वह इस बात को अपने हृदय में धारण कर लेवे कि धाम धनी का स्वरूप त्रिगुणातीत है और उनकी शोभा अनन्त है। अब वह अपने प्रश्न का उत्तर सुने।

कह्या निमूना एक भांत का, अंग खूबी इस्क सागर।

खुसबोए नरम चकलाइयां, सब सागर कहे यों कर॥२६॥

श्री राज जी की शोभा को सागर कहने का आशय उपमा देने से है। उनके नूरी अंगों की विशेषता यह है कि उनमें अनन्त सागर के समान प्रेम, सुगन्धि, कोमलता, और सुन्दरता है। इसलिये इन विशेषताओं को सागर का दृष्टान्त देकर वर्णित किया गया है।

जो रंग कहूं गौर का, तो सागर मेर तरंग।

जो कहूं लाल मुख अधुर, हुए सागर लाल सुरंग॥२७॥

यदि मैं श्री राज जी के गोरे रंग का वर्णन करती हूँ तो ऐसा प्रतीत होता है, जैसे गोरे रंग से सुमेरु पर्वत जैसी ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही हैं। जब मैं उनके मुख और होंठों के लाल रंग का वर्णन करती हूँ, तो चारों ओर

लाल रंग की लहराती हुई अथाह जलराशि सी प्रतीत होती है। इसलिये इन दोनों प्रसंगों में सागर की उपमा दी गई है।

हक के मुख का नूर जो, सो नूरै सागर जान।

तेज जोत या सलूकियां, सोभा सागर भरया आसमान॥२८॥

श्री राज जी के मुख के नूर को तो नूर का सागर ही समझना चाहिए। उनके इस स्वरूप में जो तेज, ज्योति, या सुन्दरता है, उससे शोभा का अथाह सागर लहराया करता है जिसकी नूरी आभा से सम्पूर्ण आकाश भरा हुआ है।

सोभा हक सूरत की, सागर भी कहे न जाए।

ए सोभा अति बड़ी है, पर सो आवे नहीं जुबांए॥२९॥

श्री राज जी के मुखारविन्द की शोभा को सागर कहना भी छोटा लगता है। धनी की शोभा तो अनन्त है, जिसका शब्दों में वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

सागर कहे यों जान के, कहे दुनियां में बड़े ए।

पड़या सागर से ना निकसे, कही अंग सोभा इन वास्ते॥३०॥

इस संसार में सागर का विस्तार बहुत अधिक होता है, इसलिये धाम धनी की शोभा के वर्णन में सागर की उपमा दी गयी है। जिस प्रकार सागर में डुबकी लगाने पर कोई पार नहीं निकल पाता, इसी प्रकार श्री राज जी के किसी अंग की शोभा में दृष्टि डालने पर उससे हट पाना (निकल जाना) सम्भव नहीं होता। यही कारण है कि श्री राज जी की शोभा को सागर कहकर वर्णित किया गया है।

यों लग्या आसिक एक अंग को, सो तहां ही हुआ गलतान।
इनसें कबूं ना निकसे, तो कहे सागर अंग सुभान॥३१॥

इस प्रकार जब आत्मा धनी के किसी एक अंग की शोभा को देखती है, तो वह उसी में डूब जाती है (गलतान हो जाती है)। इस अद्वितीय शोभा से वह स्वयं को कभी निकाल नहीं पाती, इसलिये धाम धनी के अंगों की शोभा को सागर से उपमा दी गयी है।

भावार्थ— जिस प्रकार नमक का टुकड़ा सागर की गहराई को माप नहीं पाता बल्कि उसी में गल जाता है, उसी प्रकार आत्मा भी धनी की शोभा में स्वयं को पूर्णतया भूल जाती है। इसे ही गलतान होना कहते हैं।

ए रस रंग उपले केते कहूं, कई विध जिनस जुगत।
फेर फेर देख देख देखहीं, रूह क्योंए न होए तृपित॥३२॥

प्रियतम अक्षरातीत के मुखारविन्द के बाह्य सौन्दर्य रस का मैं कितना वर्णन करूँ। इसकी शोभा (संरचना) में अनेक प्रकार की सामग्री (स्वच्छता, कोमलता, कान्तिमता, आह्लादिता, माधुर्यता आदि) का योग है। इस अनुपम शोभा को आत्मा बार-बार कितना भी देखती है, तो भी देखने की इच्छा बनी रहती है।

भावार्थ- अथाह सौन्दर्य को देखने पर कभी सन्तोष नहीं हो सकता। अतृप्ति शब्द के प्रयोग का यही भाव है।

सेहेज अन्दर के पाइए, मुख देखे हक सूरत।

रस बस एक हो रहीं, जो रूहें माहें खिलवत॥३३॥

श्री राज जी के मुखारविन्द की शोभा देखने पर सहजता (सरलता) से दिल के अन्दर के गुणों की पहचान हो जाती है। मूल मिलावा में बैठी हुई आत्माएँ धनी की

शोभा के रस में एकरस होकर बैठी हुई हैं।

भावार्थ- परमधाम में सखियों की दृष्टि श्री राज जी की दृष्टि से मिली हुई है। यद्यपि परमधाम में सखियों के तनों में फरामोशी है, फिर भी धाम धनी की शोभा में डूबी रहने वाली आत्माएँ वहदत के रस में डूबी हुई बैठी हैं।

जो गुन हक के दिल में, सो मुख में देखाई देत।

सो देखें अरवाहें अर्स की, जो इत हुई होए सावचेत॥३४॥

धाम धनी के हृदय में जो गुण विद्यमान हैं, वे ही मुख पर प्रकट रूप में दिखायी देते हैं। इसका अनुभव परमधाम की वे ब्रह्मसृष्टियाँ ही करती हैं, जो इस जागनी लीला में सावचेत हो गयी हैं।

भावार्थ- सावचेत (सावधान) होने का अभिप्राय है— ब्रह्मवाणी के ज्ञान से खेल के रहस्य को समझ जाना

और प्रियतम की शोभा में डूबकर स्वयं को संसार से परे मानना।

मुख बोले पीछे पाइए, जो दिल अन्दर के गुन।

पर मुख देखे पाया चाहे, जो अन्दर गुझ रोसन॥३५॥

प्रायः किसी के बोलने पर ही उसके दिल में छिपे हुए गुणों का पता चलता है, किन्तु मेरी आत्मा धाम धनी के मुखारविन्द को देखने मात्र से उनके हृदय में विद्यमान नूर के गुह्य रहस्यों को जानना चाहती है।

भावार्थ— श्री राज जी के विज्ञान स्वरूप हृदय (मारिफत रूपी दिल) में अनन्त प्रेम, आनन्द, सौन्दर्य, कान्ति, एकत्व, और ज्ञान आदि विद्यमान हैं। इन्हें ही नूर कहा गया है। इन सबका प्रकटीकरण श्री राज जी के मुखारविन्द पर हो रहा है। धाम धनी के मुखारविन्द की

शोभा में डूब जाने पर आत्मा प्रियतम के हृदय में प्रवेश कर जाती है और बिना उनके बोल सुने ही उनके दिल के भेदों को जान जाती है। इस चौपाई के चौथे चरण का यही आशय है।

जो गुन हिरदे अन्दर, सो मुख देखे जाने जाए।

ऊपर सागरता पूरन, तार्थें दिल की सब देखाए॥३६॥

धाम धनी के हृदय में जो गुण विद्यमान हैं, उनकी पहचान मुख पर दिखायी देने से हो जाती है। दिल के गुण उनके मुख पर सागर के समान दिखायी देते हैं, इसलिये दिल की सारी बातें मुखारविन्द के दीदार से ही मालूम हो जाती हैं।

मुख मीठा सागर पूरन, मुख मीठा सागर बोल।

मेहेर सागर दृष्ट पूरन, लई इस्क सागर माहें खोल॥३७॥

श्री राज जी के मुख की सुन्दरता में माधुर्यता का पूर्ण सागर लहराया करता है। उनके मुख से निकलने वाले शब्दों में भी माधुर्यता का सागर क्रीड़ा करता है। इसी प्रकार उनकी दृष्टि में मेहर का पूर्ण सागर विद्यमान है। अब ब्रह्मसृष्टियों ने श्री राज जी के नेत्रों में निहित इश्क के सागर में अपनी आत्मिक दृष्टि को खोल लिया है।

भावार्थ- धाम धनी के नेत्रों में प्रेम का अगाध सागर लीला करता है। जब उनके नेत्रों की ओर आत्माओं की दृष्टि जाती है, तो वे जाग्रत हो जाती हैं। यह कथन श्रृंगार १४/१९ में इस प्रकार व्यक्त किया है-

नैन देखें नैन रुह के, तिनसों लेवे रंग रस।

तब आवें दिल में मासूक, सो दिल मोमिन अरस परस॥

यों गुन सागर केते कहूं, जो देखत सुख के रंग।

कई सुख नेहेरें किरना चलें, कई सागर सुख तरंग॥३८॥

इस प्रकार मैं धाम धनी के गुणों के सागरों का कितना वर्णन करूँ। मेरी आत्मा मुख पर दिखायी देने वाले इन सागरों में अनन्त सुख का रस देखती है (अनुभव करती है)। श्री राज जी के मुखारविन्द पर सुख के अनन्त सागर हैं, जिनमें सुख की असंख्य लहरें क्रीड़ा करती हैं। उन सुख के सागरों से प्रवाहित होने वाली नहरों में सुख की अनन्त किरणें उठती रहती हैं।

कई रस रंग एक गौर में, एक रंग माहें कई रस।

क्यों बरनों आगे मोमिनो, ए मुख मासूक अजीम अर्स॥३९॥

अक्षरातीत के मुख कमल के गोरे रंग में अनेक प्रकार के रस और आनन्द हैं। इसी प्रकार एक आनन्द में अनेक

प्रकार के रस भरे पड़े हैं। परमधाम में विराजमान श्री राज जी के इस सुन्दर मुख की शोभा का वर्णन मैं ब्रह्ममुनियों के सामने कैसे करूँ।

भावार्थ- श्री राज जी के गोरे मुखारविन्द की शोभा को देखने पर आत्मा को माधुर्यता, कमनीयता, प्रेम आदि रसों की अनुभूति होती है। इसी प्रकार एकत्व (वहदत), मूल सम्बन्ध (निस्वत), अंतरंग लीला आदि के अनेक प्रकार के आनन्द का अनुभव आत्मा को प्राप्त होता है। परमधाम में तो इनका विलास है ही।

एक सलूकी में कई चकलाइयां, एक चकलाइएँ कई सलूक।
ए सरूप केहेते आगे मोमिन, दिल होत नहीं टूक टूक॥४०॥

श्री राज जी के किसी एक अंग की बनावट में अनेक प्रकार के माप हैं। इसी प्रकार किसी एक माप (विस्तार)

में कई प्रकार की शोभा है। यह बहुत ही आश्चर्य की बात है कि इस अनुपम स्वरूप को ब्रह्ममुनियों से कहने पर भी मेरा हृदय विरह में टुकड़े-टुकड़े नहीं हो पा रहा है।

भावार्थ- "सलूकी" शब्द का भाव बनावट और शोभा आदि से होता है। इसी तरह "चकलाई" से आशय किसी वस्तु की माप, विस्तार (लम्बाई-चौड़ाई) आदि से है। धाम धनी के अपरिमित मनोहर स्वरूप के किसी भी अंग में छोटी-छोटी अनेक प्रकार की माप होती है। इसी प्रकार अति छोटे से अंग में भी सौन्दर्य के अनेक रूप देखे जा सकते हैं।

दोऊ तरफ सोभा कान भूखन, बीच नासिका सोभे दोऊ नैन।
तिलक निलाट अति उज्जल, दोऊ अधुर मधुर मुख बैन॥४१॥
प्राणवल्लभ अक्षरातीत के मुख के दोनों ओर कानों में

आभूषण (बाले आदि) सुशोभित हो रहे हैं। बीच में नासिका है तथा नासिका के दोनों ओर अति मनोहर नेत्रों की शोभा आयी है। अत्यन्त गोरे (उज्ज्वल) माथे पर तिलक शोभायमान है। दोनों होंठों तथा मुख से अति मीठे शब्दों का झरना प्रवाहित होता है।

सिर मुकुट एक भांत का, क्यों कहूं जुबां रंग नंग।

ना देख सकों नूर नजरों, कई किरने उठें तरंग॥४२॥

श्री राज जी के सिर पर एक विशेष प्रकार का मुकुट है। इसमें जड़े हुए नगों के रंग की शोभा का वर्णन मैं इस जिह्वा से कैसे करूँ। इस मुकुट से इतनी नूरी तरंगें और किरणें उठ रही हैं कि मैं उनके नूर को यथार्थ रूप से देख नहीं पा रही हूँ।

केहे केहे जुबां एता कहे, जो जोत भरया अवकास।

आसमान जिमी भर पूरन, अब किन विध कहूं प्रकास॥४३॥

इस जिह्वा से बारम्बार इतना ही कहा जा सकता है कि मुकुट की जो ज्योति आकाश में भर रही है, उससे धरती और आकाश पूर्ण रूप से आच्छादित हो रहे हैं। अब इस नूरी प्रकाश की शोभा को मैं किस प्रकार से व्यक्त करूँ।

इन विध सोभा मुकुट की, ए जुबां क्यों करे बरनन।

सिर सोभे नूरजमाल के, नीके देखें रूह मोमिन॥४४॥

श्री राज जी के मुकुट की इस प्रकार की अनुपम शोभा है। भला यह जिह्वा उस शोभा का क्या वर्णन कर सकेगी। अपने प्रियतम के सिर पर शोभायमान इस मुकुट की शोभा को ब्रह्मसृष्टियाँ बहुत अच्छी तरह से (गहराई से) देखा करती हैं।

ए नंग जवेर केहेत हों, सो सब्द सुपन जिमी ले।

ए अर्स जवेर भी क्यों कहिए, जो सिनगार हक बका के॥४५॥

जिन जवाहरातों के नगों की शोभा का मैं वर्णन कर रही हूँ, वे शब्द इस सपने के संसार के हैं। श्री राज जी के अखण्ड स्वरूप में सुशोभित होने वाले परमधाम के जवाहरातों के नगों को संसार के नगों से उपमा देकर कैसे कहा जाये।

होत जवेर पैदा जिमी से, नंग अर्स में इन विध नाहें।

जोत पूरन अंग ले खड़ी, रूह जैसी चाहे दिल माहें॥४६॥

इस संसार के नग धरती से पैदा होते हैं (निकाले जाते हैं), किन्तु परमधाम में ऐसा नहीं होता। परमधाम में ब्रह्मसृष्टियाँ अपने दिल में जैसी इच्छा करती हैं, ज्योति से परिपूर्ण नगों की वैसी ही शोभा उनके अंगों में प्रकट

हो जाती है।

असल तन जिनों अर्स में, सो कर लीजो दिल विचार।
हक के सिर का मुकुट, सो सोभा क्यों आवे माहें सुमार॥४७॥
हे साथ जी! जिनके मूल तन परमधाम में हैं, वे अपने
हृदय में इस बात का विचार करें कि श्री राज जी के शीश
कमल पर जो मुकुट है, उसकी शोभा को शब्दों में कैसे
व्यक्त किया जा सकता है।

यों ही है बीच अर्स के, जिनों जो सोभा प्यारी लगत।
हर रूह अर्स अजीम की, दिल माफक देखत॥४८॥
परमधाम की वास्तविकता यही है कि वहाँ प्रत्येक
ब्रह्मात्मा को जिस प्रकार की शोभा प्यारी लगती है, उसे
वैसी ही शोभा दिखायी देने लगती है।

भावार्थ- यह स्थिति सभी के लिये है। श्री राजश्यामा जी और सखियाँ स्वयं को या अन्य किसी को भी जिस श्रृंगार में देखना चाहते हैं, उसी रूप में श्रृंगार दिखता है। वहदत के सिद्धान्त के अनुसार खूब-खुशालियों या पशु-पक्षियों को भी इस अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता। परिकरमा २८/४ में स्पष्ट रूप से कहा गया है-

धनी इनों के कारने, सरूप धरें कई करोर।

ले दिल चाह्या दरसन, ऐसे आसिक हक के जोर।।

तुम इत भी माफक इस्क के, देखियो कर सहूर।

हिसाब न सोभा मुकट की, ए जुबां क्या करे मजकूर।।४९।।

हे साथ जी! आप भी इस संसार के अपने प्रेम के अनुकूल चितवनि (सहूर) करके इस शोभा को देखना।

धाम धनी के मुकुट की शोभा की कोई सीमा नहीं है। इस संसार की जिह्वा उसका वर्णन भला कैसे कर सकती है।

हक सूरत सलूकी क्यों कहूं, महंमदें कही अमरद।

किसोर कही मसीय ने, सोभा कही न जाए माहें हद॥५०॥

श्री राज जी के मुखारविन्द की शोभा को मैं कैसे कहूँ। मुहम्मद साहिब ने उसे "अमरद सूरत" कहा है, तो सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने "किशोरावस्था का अति सुन्दर स्वरूप" कहा है। इस संसार में उस शोभा को यथार्थ रूप में किसी प्रकार भी नहीं कहा जा सकता।

अति सुन्दर सूरत अर्स की, ताके क्यों कहूं वस्तर भूखन।

जामा पटुका इजार, माहें सिफत न आवे सुकन॥५१॥

धाम धनी का परमधाम का स्वरूप अति सुन्दर

(अनन्त सौन्दर्य से परिपूर्ण) है। उनके वस्त्रों एवं आभूषणों की शोभा का वर्णन मैं कैसे करूँ। श्री राज जी के जामे, पटुके, और इजार की शोभा इतनी असीमित है कि उसकी महिमा का वर्णन करने के लिये कोई शब्द नहीं है।

केहे केहे मुख एता कहे, नूरै के वस्तर।

मैं केहेती हों बुध माफक, ज्यादा जुबां चले क्यों कर॥५२॥

बार-बार कहने पर भी मेरे मुख से बस इतना ही कहा जा सकता है कि धाम धनी के वस्त्र नूरी हैं। इतना भी मैं अपनी बुद्धि के अनुसार ही कह पा रही हूँ। इससे अधिक मेरी जिह्वा नहीं कह सकती।

सोभा सलूकी मुख की, और सलूकी भूखन।

और सलूकी वस्तर की, ए जानें अरवा अर्स के तन॥५३॥

श्री राज जी के मुखारविन्द, वस्त्रों, तथा आभूषणों की बनावट एवं शोभा को यथार्थ रूप से वे आत्मायें ही जानती हैं, जिनके मूल तन परमधाम में विद्यमान हैं।

रंग वस्त्रों तो कहूं, जो दस बीस रंग होए।

इन सुपन जिमी जो वस्तर, तामें कई रंग देखत सोए॥५४॥

धाम धनी के वस्त्रों के रंगों का वर्णन तो मैं तब करती, यदि दस-बीस रंग होते। जब इस झूठे संसार के वस्त्रों में अनेक रंग होते हैं।

तो अर्स वस्तर क्यों रंग गिनो, और करके दिल अटकल।

बेसुमार ल्याऊं सुमार में, यों मने करत अकल॥५५॥

तो परमधाम के वस्त्रों के रंगों के विषय में दिल के अनुमान से मैं कितनी गिनती कर सकती हूँ। यद्यपि मेरी बुद्धि मना कर रही है, फिर भी मैं अनन्त रंगों को सीमित करके वर्णन कर रही हूँ।

है बड़ी लड़ाई इन बात में, जब सहूर करत अर्स दिल।

रुह तो मेरी इत है नहीं, हुकम केहेवत ऊपर मजल॥५६॥

जब मैं अपने धाम हृदय में इस विषय पर गहन चिन्तन करती हूँ, तो विचारों का संघर्ष शुरू हो जाता है। वस्त्रों की शोभा का यथार्थ वर्णन करने के लिये मेरी परात्म तो इस संसार में है नहीं। धाम धनी का आदेश (हुकम) ही मुझसे वहाँ की शोभा का वर्णन करवा रहा है।

भावार्थ- अन्तःकरण में वैचारिक संघर्ष के प्रमुख कारण ये हैं-

१. परमधाम के वस्त्रों एवं आभूषणों में अनन्त रंग हैं। उनका वर्णन इस संसार में कैसे किया जाये?

२. यदि वर्णन न किया जाये, तो आत्मा की जाग्रति कैसे होगी?

३. श्री राज जी के वस्त्रों एवं आभूषणों को तो यथार्थ रूप से परात्म ने ही देखा है। आत्मा तो यहाँ नींद (फरामोशी) में है। जब परात्म यहाँ है ही नहीं, तो वास्तविक वर्णन कैसे हो सकता है?

४. धाम धनी के आदेश से जो कुछ भी वर्णन हो रहा है, इस सपने के संसार में उसकी उपमा किससे दी जाये?

जामा अंग को लग रह्या, हार दुगदुगी हैड़े पर।

ऊपर अति झीनी झलकत, जुड़ बैठी चादर॥५७॥

श्री राज जी का जामा उनके अंगों से लिपटा हुआ है। उनके वक्षस्थल पर दुगदुगी एवं हारों की शोभा आयी है। जामे के ऊपर बहुत पतली चादर सटी हुई है, जो झलकार कर रही है।

जामें ऊपर जो भूखन, जो कण्ठ पेहेरे हैं हार।

सो कई नंग जंग करत हैं, अवकास न माए झलकार॥५८॥

जामे के ऊपर बाजूबन्द आदि आभूषण हैं तथा गले में हार आये हैं। इनमें जड़े हुए नगों की अनेक रंगों की किरणें आपस में टकराकर युद्ध सी करती हैं। इनकी झलझलाहट आकाश में इतनी फैली हुई है कि वह समा नहीं पा रही है।

याही जिनस बाजू बंध, और फुंदन लटकत।

ए सबे हैं एक रस, पर रंग कई विध जंग करत॥५९॥

इन्हीं जवाहरातों के नगों के बाजूबन्द हैं जिनमें फुन्दन लटक रहे हैं। यद्यपि इन सभी की शोभा एक समान है, किन्तु नगों से अनेक रंगों की किरणें निकल रही हैं जो आपस में टकराकर युद्ध जैसा दृश्य उपस्थित कर रही हैं।

हस्त कमल काड़ों कड़े, माहें कई रंग कई बल।

सो रूह लेवे विचार के, आगूं चले न जुबां अकल॥६०॥

श्री राज जी के दोनों हस्त कमलों में कड़े और कड़ी की शोभा है। इनमें अनेक प्रकार की ऐंठनें (घुमाव) और रंग हैं, जिनका अपने अन्तःकरण में विचार करके आत्मायें आत्मसात् करती हैं।

याही विध हैं पोहोंचियां, तिनमें कई रंग नंग कंचन।

रंग गिनती केहेते सकुचों, जानों क्यों कहूं सुमार सुकन॥६१॥

इसी प्रकार पोहोंचियों की भी शोभा आयी है। इनमें अनेक रंगों के जवाहरातों के नग हैं, जो सोने में जड़े हुए हैं। ये रंग इतने अधिक हैं कि इनकी गिनती करने में मुझे संकोच हो रहा है। अनन्त को भला शब्दों की सीमा में कैसे कहा जा सकता है।

किन विध कहूं हथेलियां, अति उज्जल रंग लाल।

केहेते लीकां दिल लरजत, ए अंग नूरजमाल॥६२॥

मैं हथेलियों की शोभा का वर्णन कैसे करूँ। इनका रंग उज्ज्वलता में लालिमा लिये हुए है। हथेलियों की अति कोमल रेखाओं की सुन्दरता का वर्णन करते समय मेरा जीव घबराने लगता है कि मैं धाम धनी के इन अंगों की

शोभा का वर्णन कैसे करूँ।

अंगुरियां हस्त कमल की, याको दिया न निमूना जाए।

वचन कहूँ विचार के, तो भी रूह पीछे जाए पछताए॥६३॥

धाम धनी के दोनों हाथों की अँगुलियां इतनी सुन्दर हैं कि इनकी उपमा किसी से भी नहीं दी जा सकती। यदि मैं कुछ सोच-विचारकर (किसी से तुलना करके) वर्णन करती भी हूँ, तो बाद में मेरी आत्मा को पश्चाताप होता है कि इस प्रकार की उपमा तो बिल्कुल निरर्थक है।

हर एक अंगुरी मुंदरी, हर मुंदरिएं कई रंग।

सो जोत भरत आकास को, कहूँ किन विध कई तरंग॥६४॥

श्री राज जी की प्रत्येक अँगुली में मुद्रिका आयी हुई है और प्रत्येक मुद्रिका में अनेक प्रकार के रंग हैं। उनसे

निकलने वाली नूरी ज्योति आकाश में सर्वत्र फैली हुई है। मुद्रिकाओं के नगों से प्रकट होने वाली अनेक प्रकार की तरंगों का मैं कैसे वर्णन करूँ।

जो जोत नख अंगुरी, जुबां आगे चल न सकत।

फेर फेर वचन एही कहूं, अंबर जोत भरत॥६५॥

अँगुलियों के नखों में जो ज्योति है , उसकी शोभा का वर्णन करने में मेरी जिह्वा (वाणी) चल नहीं पा रही है। हार मानकर मुझे यही बात कहनी पड़ती है कि आकाश में चारों ओर ज्योति ही ज्योति भर रही है।

याही विध नख चरनों के, नख जोत एही सब्द।

एही खूबी फेर फेर कहूं, क्या करों छूटे न जुबां हद॥६६॥

धनी के चरणों के नखों की भी यही शोभा है। नखों की

नूरी ज्योति की शोभा का वर्णन करने के लिये भी यही शब्द प्रयोग करने पड़ते हैं कि नखों की ज्योति आकाश में भर रही है। उनकी शब्दातीत शोभा की इस विशेषता को मैं बार-बार कह रही हूँ। मैं करूँ भी क्या? इस संसार की जिह्वा (रसना, वाणी) मेरा साथ नहीं छोड़ रही है, अर्थात् यहाँ के शब्दों से चरणों के नखों की शोभा का वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

कोमलता चरन अंगुरी, और चरन तली कोमल।

ए दिल रोसन देख के, हाए हाए खाक न होत जल बल॥६७॥

हाय! हाय! धाम धनी के चरणों की अँगुलियों तथा तलियों की कोमलता एवं नूरी आभा को देखकर यह दिल विरह में जलकर राख क्यों नहीं हो जाता, अर्थात् अपने अस्तित्व को क्यों नहीं मिटा देता।

भावार्थ- "जल कर राख होना" एक मुहावरा है, जिसका अभिप्राय होता है- अपने अस्तित्व को पूर्णतया समाप्त कर देना। धनी के चरणों की अनुपम शोभा को देखने के पश्चात् भी यदि हृदय (दिल) संसार को देखता है, तो उसके लिये यही शिक्षा है कि उस अनमोल निधि को पाने के बाद उनके प्रेम में उसे अपने को मिटा देना चाहिए था।

चारों भूखन चरन के, माहें रंग जोत अपार।

दिल न लगे बिना गिनती, जानों क्यों ल्याऊं माहें सुमार॥६८॥

श्री राज जी के चरणों में झांझरी, घूंघरी, कांबी, और कड़ी ये चार आभूषण हैं। इनमें अनन्त रंगों की ज्योति है। रंगों की गिनती किये बिना दिल नहीं लगता अर्थात् शोभा नहीं बसती। मैं यही सोचती हूँ कि किस प्रकार मैं

रंगों को सीमाबद्ध करूँ।

भावार्थ- श्री महामति जी के धाम हृदय में तो सम्पूर्ण शोभा बसी है। परोक्ष रूप में कथन तो सुन्दरसाथ के लिये है कि यदि रंगों को सीमाबद्ध करके वर्णन नहीं किया जायेगा, तो सुन्दरसाथ इस शोभा को अपने हृदय में कैसे बसायेंगे।

सुमार कहे भी ना बने, दिल में न आवे बिना सुमार।

ताथें मुस्किल दोऊ पड़ी, पड़या दिल माहें विचार॥६९॥

यदि मैं उस शोभा को सीमाबद्ध करती हूँ तो भी काम नहीं चलता क्योंकि वह तो अनन्त है , किन्तु बिना सीमित किये हुए शोभा को दिल में नहीं बसाया जा सकता। इस प्रकार दोनों काम करने में कठिनाई है। अतः इस विषय पर दिल में विचार करना पड़ रहा है कि

क्या करना चाहिए।

चरन हक सूरत के, तिन अंगों के भूखन।

रूह लेसी सोभा विचार के, जाके होसी अर्स में तन॥७०॥

जिन आत्माओं के परमधाम में मूल तन होंगे, वे धाम धनी के मुखारविन्द तथा चरण आदि अंगों के आभूषणों की शोभा का विचार करेंगी और उनको अपने धाम हृदय में बसा लेंगी।

याही वास्ते कहे सागर, सोभा न आवे माहें सुमार।

सागर सोभा भी ना लगे, सब्द में न आवे सोभा अपार॥७१॥

अक्षरातीत की शोभा को किसी सीमा में नहीं बाँधा जा सकता, इसलिये सागर की उपमा देकर वर्णन किया गया है। श्री राज जी की अनन्त शोभा शब्दों की परिधि में

नहीं आती, इसलिए सागर की उपमा देकर भी उस शोभा का वास्तविक चित्रण (वर्णन) नहीं हो सकता।

जो सोभा कही हक की, ऐसी हादी की जान।

हकें मासूक कहा अपना, सो जाहेर लिख्या माहें फुरमान॥७२॥

जिस प्रकार श्री राज जी की शोभा अनन्त है, उसी प्रकार श्यामा जी की शोभा भी असीम है। धर्मग्रन्थों में यह बात स्पष्ट रूप से कही गयी है कि श्री राज जी ने श्यामा जी को अपना प्रेमास्पद (माशूक) कहा है।

भावार्थ— पुराण संहिता २९/७५-८०, माहेश्वर तन्त्र ४७/९-१३, ४९/३-२१ में युगल स्वरूप की समान शोभा तथा प्रेम के ऊपर प्रकाश डाला गया है।

इसी प्रकार कुरआन में सूरः नूर २४ में दो तनों की महिमा का वर्णन है एवं पारः तीन (३) तिल्करसूल में

वर्णन है।

और सोभा जुगल किसोर की, रूह अल्ला ने कही इत।

उसी इलम से मैं केहेत हों, जो कहावत हुकम सिफत॥७३॥

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने युगल किशोर श्री राजश्यामा जी की शोभा का वर्णन किया है। धाम धनी के आदेश से सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र के दिए हुए तारतम ज्ञान के आधार पर मैं उस शोभा का वर्णन कर रही हूँ।

भावार्थ- इस चौपाई से यह संशय होता है कि क्या तारतम ज्ञान को ग्रहण कर कोई भी सुन्दरसाथ युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार का वर्णन कर सकता है, जैसा कि इस चौपाई में कहा गया है?

इसका समाधान यह है कि धाम धनी की मेहर के बिना आज तक कोई भी न तो वर्णन कर सका है और न कर

सकेगा। श्रीमुखवाणी की चौपाई का चिन्तन और मनन करके उसे कोई सुना तो सकता है, किन्तु धाम हृदय में जब तक युगल स्वरूप स्वयं विराजमान होकर न कहें, तब तक का वर्णन मात्र बुद्धि की दौड़ का प्रतिफल कहा जायेगा।

यह ब्रह्मवाणी अक्षरातीत के आवेश स्वरूप से उतरी है और यह शोभा मात्र महामति जी को है। "हिरदे बैठ केहेलाया साख्यात्" का कथन यही सिद्ध करता है। किरंतन ९९/११ में स्पष्ट कहा गया है—

तब हार के धनिएं विचारिया, क्यों छोड़ूं अपनी अरधांग।
फेर बैठे मांहे आसन कर, महामति हिरदे अपंग॥

खिल्वत, परिक्रमा, सागर, तथा श्रृंगार की वाणी को तारतम का तारतम कहते हैं, जिसका विस्तार श्री महामति जी के धाम हृदय से हुआ है। "तारतम का जो

तारतम, अंग इन्द्रावती विस्तार" (कलस हिंदुस्तानी २३/७२) का कथन इस सम्बन्ध में बहुत महत्वपूर्ण है। श्री महामति जी ने तो यह स्पष्ट कह दिया है कि मैंने तो इस वाणी का एक शब्द भी नहीं कहा है—

मेरी बुधें लुगा न निकसे मुख, धनी जाहेर करें अखण्ड घर सुख।

प्रकास हिंदुस्तानी २९/७

ऐसी स्थिति में यह सोचना भी हास्यास्पद है कि कोई अन्य श्री महामति जी की तरह युगल स्वरूप की शोभा—श्रृंगार का वर्णन करेगा। ब्रह्ममुनियों को दीदार करने तथा उसमें डूबकर विज्ञान (मारिफत) की अवस्था में पहुँचने की शोभा तो है, किन्तु उनके द्वारा सागर—श्रृंगार जैसा ग्रन्थ अवतरित नहीं हो सकता। यद्यपि चर्चनी ग्रन्थों की तरह अनुभूति के आधार पर थोड़ा बहुत लिखा जा सकता है, किन्तु सागर—श्रृंगार ग्रन्थ के समानान्तर ग्रन्थ

अवतरित करने का प्रश्न ही नहीं है।

गौर गाल सुन्दर हरवटी, फेर फेर देखों मुख लाल।

अर्स कर दिल मोमिन, माहें बैठे नूरजमाल॥७४॥

मैं अपने प्राणवल्लभ के लालिमा भरे मुखारविन्द के गोरे-गोरे गालों तथा सुन्दर ठुड्डी को बारम्बार देख रही हूँ। अब अक्षरातीत आत्माओं के धाम हृदय में अपनी शोभा सहित आकर विराजमान हो गये हैं।

क्यों कहूं सागर चातुरी, कई सुख अलेखे उत्पन।

कई पैदा होत एक सागरें, नए नए सुख नौतन॥७५॥

मैं धाम धनी के मुखारविन्द में विराजमान इल्म (चतुराई) के सागर की शोभा का कैसे वर्णन करूँ। इस सागर से अनेक प्रकार के अवर्णनीय सुख प्रकट होते हैं।

धाम धनी के एक सागर से भी कई नए-नए सागर प्रकट हो जाते हैं, जिनमें नये ही प्रकार का सुख होता है।

भावार्थ- परमधाम के सागरों को आठ भागों में बाँटना तो केवल हमारी बुद्धि के लिये ग्राह्य बनाने हेतु किया गया है। वस्तुतः परमधाम की किसी भी वस्तु को सीमित संख्या के बन्धन में नहीं रखा जा सकता। अक्षरातीत की लीला में प्रत्येक वस्तु अनन्त का रूप होती है। इस तथ्य को श्रृंगार ग्रन्थ की इस चौपाई से सहज ही समझा जा सकता है-

एक बूंद आया हक दिल से, तिन कायम किये थिर चर।
इन बूंद की सिफत देखियों, ऐसे हक दिल में कई सागर॥

श्रृंगार ११/४५

हक मुख सब विध सागर, सुख अलेखे अपार।

ए सुख जानें निसबती, जिन निस दिन एही विचार॥७६॥

श्री राज जी के मुखारविन्द में सभी सागर विद्यमान हैं, जिनमें अनन्त-अवर्णनीय सुख भरा हुआ है। इस सुख को मात्र वे ब्रह्ममुनि ही जानते हैं, जो दिन-रात इन्हीं विचारों में डूबे रहते हैं।

सब सागर सुख मई, सब सुख पूरन परमान।

अति सोभित मुख सुन्दर, ए जो वाहेदत का सुभान॥७७॥

श्री राज जी वहदत की मारिफत (एकत्व के परमसत्य) के स्वरूप हैं। उनका सुन्दर मुख अनन्त शोभा से युक्त है। सभी सागर सुख स्वरूप हैं। इनमें सभी प्रकार के सुख पूर्ण रूप से विद्यमान हैं।

अंग देखे जेते सूरत के, सो तो सारे इस्क सागर।

गुन हक बाहेर देखावत, इन बातों मोमिन कादर॥७८॥

मैंने धाम धनी के स्वरूप में जितने भी अंगों को देखा है, उन सबमें इश्क का अनन्त सागर लहरा रहा है। धाम धनी अपने दिल में छिपे हुए गुणों को सागरों के रूप में अंगों के माध्यम से प्रकट करते हैं। इस रहस्य को जानने का सामर्थ्य मात्र ब्रह्मसृष्टियों में ही है।

इस्क देखावें चढ़ता, सब कलाओं सुखदाए।

घट बढ़ अर्स में है नहीं, पर इस्कें देत देखाए॥७९॥

श्री राज जी अपने सभी अंगों में इश्क को पल-पल वृद्धि रूप में दर्शाते हैं। उनके स्वरूप में विद्यमान सभी दिव्यतायें (कलायें) अखण्ड सुख देने वाली हैं। यद्यपि परमधाम में घटने-बढ़ने जैसी कोई बात नहीं है, लेकिन

धाम धनी लीला रूप में प्रेम की वृद्धि दिखाते हैं।

भावार्थ- प्रेम की लीला में नित्य नवीनता ही आनन्द का मूल है, इसलिये प्रेम की पल-पल वृद्धि वाली बात कही जाती है, अन्यथा परमधाम में कोई भी वस्तु न तो घटती है और न बढ़ती है।

केहेना सुनना देखना, अर्स चीज न इस्क बिन।

जो कछु सुख अखंड, सो सब इस्क पूरन॥८०॥

परमधाम की लीला रूप वस्तुएँ जिनके विषय में कहा, सुना, या देखा गया है, सभी अनन्त प्रेम (इश्क) से ओत-प्रोत हैं। अखण्ड सुख वाली प्रत्येक वस्तु में पूर्ण प्रेम विद्यमान है।

जो कोई अर्स जिमीय में, पसु या जानवर।

सो सरूप सारे इस्क के, एक जरा ना इस्क बिगर॥८१॥

परमधाम की भूमिका में लीला रूप में जो भी पशु (जानवर) हैं, वे सभी इश्क के स्वरूप हैं। वहाँ का एक कण भी प्रेम के बिना नहीं है।

दुनी पंखी बिछोहा न सहे, वह आगे ही उड़े अरवा।

गिरत है आकास से, होत है पुरजा पुरजा॥८२॥

इस मायावी संसार का एक पक्षी भी प्रेम का वियोग सहन नहीं कर पाता। वह अपने प्रेमास्पद (माशूक) के वियोग में समय से पहले ही आकाश से गिरकर अपने शरीर को टुकड़े-टुकड़े कर देता है और शरीर का त्याग कर देता है।

भावार्थ— बजरीगर (Love birds), चकोर-चकोरी,

या चकवा-चकवी ऐसे पक्षी हैं, जिन्हें अपने माशूक का वियोग सहन नहीं होता। यद्यपि पक्षी आकाश में उड़ते अवश्य हैं, किन्तु यदि वे अपने पंखों से उड़ना बन्द कर दें तो पृथ्वी पर किसी कठोर वस्तु से टकराकर उनका शरीर टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। पूर्वोक्त पक्षियों के जोड़े में से किसी को भी यदि ऐसा आभास हो जाये कि उसका साथी इस संसार में नहीं है (भले ही जीवित हो), तो यह बात उनको सहन नहीं होती और वह पहले ही अपना प्राण त्याग देता है। चातक का चन्द्रमा के प्रति प्रेम संसार में प्रसिद्ध ही है। इस चौपाई के दूसरे चरण का यही भाव है।

ए पंखी प्रीत दुनीय की, होसी अर्स के कैसे जानवर।

ए निमूना इत ना बने, और बताइए क्यों कर॥८३॥

जब इस संसार के पक्षियों में इतना प्रेम है, तो परमधाम के पशु-पक्षी कैसे होंगे। परमधाम के प्रेम का दृष्टान्त इस संसार में दिया ही नहीं जा सकता, तो कहकर कैसे बताया जाये।

पूर असल जिमी बराबर, और उज्जल जोत प्रकास।

कहूं कम ज्यादा न देखिए, और जोत भरयो अवकास॥८४॥

परमधाम की धरती बराबर (सम) है अर्थात् ऊँची-नीची नहीं है। उसमें धनी के प्रेम का शाश्वत प्रवाह है। चारों ओर उज्ज्वल ज्योति का प्रकाश फैला है, जो न तो कहीं पर कम है और न कहीं पर ज्यादा है, बल्कि सर्वत्र समान है। आकाश में चारों ओर नूरी ज्योति फैली हुई है।

पसु पंखी सब में पूरन, दिल चाह्या पूरन बन।

इन जिमी पसु पंखियों, जिकर करे रोसन॥८५॥

इस भूमिका के पशु-पक्षियों में श्री राज जी का पूर्ण प्रेम लीला कर रहा है। इनके दिल की इच्छानुसार वनों में भी पूर्ण प्रेम ओत-प्रोत हो रहा है। इस प्रकार प्रेम के रस में भीने हुए ये पशु-पक्षी हमेशा धाम धनी की ही चर्चा किया करते हैं।

भावार्थ- जिस प्रकार सखियों के दिल की इच्छानुसार रंगमहल का कण-कण प्रेम में डूबा हुआ दिखता है, उसी प्रकार पशु-पक्षियों की इच्छानुसार सभी वनों के कण-कण में अखण्ड प्रेम क्रीड़ा कर रहा है।

और आसिक वाहेदत के, इन हूं बड़ी पेहेचान।

एही खूब खेलौनें हक के, मुख मीठी सुनावें बान॥८६॥

ये पशु-पक्षी युगल स्वरूप तथा सखियों के आशिक (प्रेमी) हैं। इन्हें सखियों की बहुत अच्छी पहचान है। ये धाम धनी के बहुत प्यारे खिलौने हैं। ये सबको अपने मुख से प्रेम भरी मीठी-मीठी बातें सुनाते रहते हैं।

खूबी खुसाली पूरन, सुन्दर सोभा चित्रामन।

नैन श्रवन या चोंच मुख, गान करें निस दिन॥८७॥

इन पशु-पक्षियों में पूर्ण रूप से आनन्द भरा हुआ है। इनके शरीरों पर अति सुन्दर चित्रों की शोभा है। इनके नेत्र, कान, चोंच, या मुख बहुत ही मनमोहक हैं। ये दिन-रात धाम धनी की प्रेममयी लीलाओं का गायन करते हैं।

इस्क इनों के कयों कहूं, जो हक के पिलायल।

कोई केहे न सके इनों बड़ाई, ए अर्स जिमी असल॥८८॥

इन पशु-पक्षियों के हृदय को अक्षरातीत अपने इश्क से सिंचित करते हैं अर्थात् पिलाते हैं। इनके अन्दर उमड़ने वाले प्रेम का वर्णन मैं कैसे करूँ। परमधाम में रहने वाले इन पशु-पक्षियों की महिमा का वर्णन कोई भी नहीं कर सकता।

सब गुन इनों में पूरन, नरम खूबी खुसबोए।

मुख बानी जोत चित्रामन, ए हकें रिझावें सोए॥८९॥

इन पशु-पक्षियों में कोमलता, आनन्द, और सुगन्धि आदि गुण पूर्ण रूप से भरे हुए हैं। इनके शरीर पर ज्योतिर्मयी चित्र बने हुए हैं। ये अपने मुख से अति मीठी वाणी बोलकर धाम धनी को रिझाते हैं।

हाल चाल सब इस्क की, खान पान सब साज।

सोभा सिनगार सब इस्क के, अर्स इस्क को राज॥९०॥

इन पशु-पक्षियों का सम्पूर्ण चाल-चलन (व्यवहार) तथा अवस्था प्रेममयी है। इनका खाना-पीना आदि सभी क्रियाकलाप भी प्रेम के हैं। इन पशु-पक्षियों की शोभा तथा श्रृंगार भी इश्कमयी है। इस प्रकार सम्पूर्ण परमधाम में इश्क (प्रेम) का ही साम्राज्य है।

भावार्थ- पूर्वोक्त चौपाइयों का कथन मननीय है। जब परमधाम के पशु-पक्षियों में इतना प्रेम है, तो ब्रह्ममुनि की शोभा धारण करने वाले सुन्दरसाथ का आध्यात्मिक स्तर कितना ऊँचा होना चाहिए, इसका उत्तर उन्हें स्वयं से पूछना चाहिए।

सोभा क्यों कहूं हक सूरत की, जाको नामै नूरजमाल।
 ए दिल आए इस्क आवत, याको सहूरें बदलें हाल॥९१॥

मैं उस अक्षरातीत के मुखारविन्द की शोभा का क्या
 वर्णन करूँ जिसका नाम ही नूरजमाल है, अर्थात् प्रेम
 और सौन्दर्य का अनन्त सागर। इनके स्वरूप को दिल में
 बसाने मात्र से ही प्रेम आता है। इन अक्षरातीत की
 चितवनि आत्मा को माया से हटाकर परमधाम में लगा
 देती है।

भावार्थ- इश्क के सागर अक्षरातीत को अपने दिल में
 बसाने (चितवनि करने) से ही इश्क आयेगा। इससे ही
 आत्मा माया से परे होकर जाग्रत होगी, जिसे इस चौपाई
 में हाल बदलना कहा गया है।

हक सूरत अति सोहनी, अति सुन्दर सोभा कमाल।

बैठे हक इस्क छाया मिने, दूजे इस्क लगे दिल झाल॥९२॥

श्री राज जी का मुखारविन्द बहुत ही मोहक है। उसकी अति सुन्दर शोभा आश्चर्य में डालने वाली है। जो आत्मा श्री राज जी के प्रेम की छत्रछाया में आ जाती है, अन्य किसी का प्रेम अग्नि की लपटों के समान उसके दिल को पीड़ा देता है, अर्थात् उसे अन्य किसी से भी प्रेम नहीं रह जाता।

भावार्थ- माया के सगे-सम्बन्धियों में प्रेम खोजना एक बहुत बड़ी भूल है। जिसे धाम धनी से सच्चा प्रेम होगा, वह पारिवारिक या सामाजिक मोह-जाल में कभी नहीं फँसेगा, क्योंकि मोह अग्नि की लपटों के समान हृदय को जलाता है (पीड़ा देता है) जबकि धनी का प्रेम आनन्द के सागर में ले जाता है।

और कछुए दिल है नहीं, बिना हक वाहेदत।

और जरा कित कहूं नहीं, वाहेदत इस्क निसबत॥९३॥

परमधाम में ब्रह्मसृष्टियों के दिल में श्री राज जी और एकदिली के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं होता। इसी प्रकार वहाँ पर एकदिली और मूल सम्बन्ध के प्रेम के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

भावार्थ— परमधाम के कण-कण में धनी का प्रेम लीला कर रहा है। सबमें वहदत है और प्रत्येक स्वरूप का प्रेम श्री राज जी से जुड़ा हुआ है।

जित रहे आग इस्क की, तित देह सुपन रहे क्यों कर।

बिना मोमिन दुनी न छूटहीं, दुनी ज्यों बिन जलचर॥९४॥

जिस परमधाम में इश्क (प्रेम) की आग जलती है, वहाँ स्वप्न का तन नहीं रह सकता। दूसरे शब्दों में ऐसा भी

कहा जा सकता है कि जिस आत्मा के धाम हृदय में प्रेम की अग्नि प्रज्वलित हो जाती है, उसे अपने नश्वर तन से कोई मोह नहीं रह जाता। ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त इस झूठे संसार को कोई भी छोड़ नहीं पाता। जिस प्रकार जल के प्राणी जल के बिना जीवित नहीं रह पाते, उसी प्रकार संसार के जीव भी संसार के बिना नहीं रह सकते।

ब्रह्मसृष्ट घर इस्क में, और दुनियां घर कुफर।

मोमिन जलें न आग इस्कें, दुनी जाए जल बर॥९५॥

ब्रह्मसृष्टियों का घर प्रेम के धाम में है, जबकि संसार के जीवों का घर झूठे मोह सागर में है। यही कारण है कि ब्रह्मसृष्टियाँ प्रेम की अग्नि से नहीं जलती, जबकि जीव सृष्टि उसमें जलकर राख हो जाती है।

भावार्थ— इस चौपाई में यही भाव दर्शाया गया है कि

ब्रह्मसृष्टियाँ परमधाम से आयी हैं, इसलिये वे बहुत सहजता से धाम धनी के प्रेम की राह पर चल देती हैं। इसके विपरीत माया से पैदा होने वाली जीव सृष्टि मायावी बन्धनों को छोड़कर प्रियतम के प्रेम की राह को अपना नहीं सकती। यदि वह थोड़ा प्रयास भी करती है, तो कर्मकाण्डों की बाड़ उसको रोक देती है।

आग इस्कें जलें ना मोमिन, आसिकों इस्क घर।

इनों लगे जुदागी आग ज्यों, रूहें भागें देख कुफर॥९६॥

ब्रह्मसृष्टियाँ इश्क की आग में नहीं जलतीं, क्योंकि ये उस परमधाम की रहने वाली हैं जहाँ इश्क ही इश्क है। इश्क (प्रेम) से वियोग होना इन्हें आग की लपटों के समान कष्टकारी लगता है और ये माया के झूठे संसार को देखते ही भागती हैं।

भावार्थ- परमधाम के मूल सम्बन्ध से तारतम ज्ञान का प्रकाश पाते ही आत्मायें सावचेत हो जाती हैं और संसार को झूठा समझने लगती हैं। इसे ही संसार को देखना कहते हैं, अर्थात् ज्ञान-चक्षुओं से देखना।

रुहें आइयां अर्स अजीम से, दर्ई नुकते इलमें जगाए।

और उमेदां सब छोड़ाए के, हकें आप में लैयां लगाए॥९७॥

माया के खेल को देखने के लिये ब्रह्मसृष्टियाँ परमधाम से आयी हैं। श्री राज जी ने इन्हें तारतम ज्ञान द्वारा जाग्रत कर दिया है। धाम धनी ने अपनी मेहर की दृष्टि से इन्हें संसार की आशा-तृष्णाओं से छुड़ा दिया है और अपने चरणों में लगा लिया है।

वस्तर भूखन सब इस्क के, इस्क सेज्या सिनगार।

इस्क हक खिलवत, रुहें हादी हक भरतार॥९८॥

परमधाम में सबके वस्त्र, आभूषण, शैय्या, एवं श्रृंगार सभी प्रेम के स्वरूप हैं। श्री राज जी की खिल्वत का स्वरूप सम्पूर्ण परमधाम प्रेममयी है, जिसमें ब्रह्मसृष्टियाँ, श्यामा जी, तथा उनके प्रियतम अक्षरातीत की प्रेममयी लीला होती है।

भावार्थ- सम्पूर्ण परमधाम में अक्षरातीत श्यामा जी तथा अपनी अँगनाओं के साथ लीला करते हैं, इसलिये सम्पूर्ण परमधाम को खिल्वत का स्वरूप माना जायेगा। खिल्वत का सम्बन्ध केवल मूल मिलावा या पाँचवी भूमिका से ही नहीं है, बल्कि जहाँ भी युगल स्वरूप अपनी आत्माओं के साथ लीला करते हैं, वही खिल्वत का स्वरूप है। बातिनी रूप में आशिक का हृदय ही

खिल्वत है।

जुगल सरूप जब बैठत, इस्क जानें दिल की सब।

इस्क बोल काढ़ें जिन हेत को, उत्तर पावे दूजा दिल तब॥९९॥

युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी जब सिंहासन पर विराजमान होते हैं, तो इश्क उनके दिल की सारी बातों को जानता है अर्थात् इश्क से उनके दिल की सारी बातें ज्ञात होती हैं। धाम धनी जिस आत्मा से बहुत लाड-प्यार से इश्क के शब्द बोलते हैं, तो उसके दिल को सारा उत्तर प्राप्त हो जाता है।

भावार्थ- इश्क (प्रेम) ही परमधाम का प्राण है। परमधाम की सारी लीला इश्क के केन्द्र में होती है। इश्क के कारण ही एकदिली (वहदत) है। इश्क (प्रेम) से ही आशिक-माशूक (श्री राजश्यामा जी एवं सखियाँ) एक

स्वरूप हैं और एक-दूसरे के दिल में डूबकर उसकी सारी बातों को जानते हैं।

जुगल सरूप इत बैठत, दोऊ दिल की पावें मोमिन।

एक वचन मुख बोलते, पावें पड़उत्तर आधे सुकन॥१००॥

जब युगल स्वरूप ब्रह्मसृष्टियों के बीच में बैठते हैं, तो सखियाँ उन दोनों के दिल की बातों को जान जाती हैं। धाम धनी जब अपने मुख से प्रेम भरा एक शब्द भी बोलते हैं, तो मात्र उसके आधे उच्चारण से ही सखियों को उत्तर मिल जाता है।

भावार्थ- परमधाम की वहदत में जब श्री राज जी का दिल ही सखियों के रूप में लीला कर रहा है, तो धाम धनी के दिल की सारी बातें सखियों को मालूम ही होती हैं, किन्तु बुद्धि ग्राह्य होने के लिये लीला रूप में ऐसा

कहा गया है।

यहाँ यह संशय हो सकता है कि यदि ऐसा है , तो सखियाँ मारिफत की बातों को परमधाम की वहदत में क्यों नहीं जानती थीं?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि धाम धनी ने अपने दिल में उनको बताने का भाव लिया ही नहीं था। जब तक धाम धनी स्वयं नहीं बताना चाहें, तब तक अँगनायें कैसे जान सकती थीं।

उन्हें तो श्री राज जी ने अपने प्रेम एवं आनन्द में बेसुध कर रखा था। "रुहें बेनियाज थी, बीच दरगाह बारे हजार" (खुलासा १७/४६) का कथन यही दर्शा रहा है।

इस्क बोले सुनें इस्क, सब इस्कै की बिसात।

जो गुझ दिल मासूक की, सो आसिक से जानी जात॥१०१॥

परमधाम में इश्क ही बोलता है और इश्क ही सुनता है।
वहाँ लीला रूपी सम्पूर्ण सामग्री (२५ पक्ष) इश्क की ही
है। प्रियतम अक्षरातीत के दिल की गुह्य बातें मात्र
ब्रह्मसृष्टियाँ ही इश्क एवं वहदत के कारण जानती हैं।

मोमिन आसिक हक के, सो हक की जानें दें खबर।

हकें तो किया अर्स अपना, जो थे मोमिन दिल इन पर॥१०२॥

ब्रह्मसृष्टियाँ श्री राज जी की आशिक हैं अर्थात् उनसे
प्रेम करती हैं, इसलिये एकमात्र वही धाम धनी के दिल
की बातों को यथार्थ रूप से जानती हैं तथा संसार के
अन्य लोगों – जीव सृष्टि एवं ईश्वरी सृष्टि – को बता
सकती हैं। ब्रह्मसृष्टियाँ श्री राज जी के दिल की अँगरूपा

हैं, इसलिये इस खेल में भी अक्षरातीत ने इनके ही दिल (हृदय) को अपना धाम बनाया है।

आसिक मासूक दो अंग, दोऊ इस्कें होत एक।

तो आसिक मासूक के दिल को, क्यों ना कहे गुझ विवेक॥१०३॥

यद्यपि श्री राज जी और सखियाँ दो स्वरूप हैं, किन्तु इश्क (प्रेम) के द्वारा दोनों एक स्वरूप हो जाते हैं। इस प्रकार ब्रह्मात्मायें अपने धाम धनी के दिल की गुह्य बातों को क्यों नहीं कहेंगी।

भावार्थ— वस्तुतः सभी श्री राज जी के ही अंग हैं। स्वयं श्री राज जी किसी के अंग नहीं हैं, किन्तु प्रेम लीला को दर्शाने के लिये उन्हें लीला का अंग माना गया है।

उदाहरणार्थ— प्रेम लीला में दो अंग होंगे— १. आशिक (प्रेमी), २. माशूक (प्रेमास्पद)। यही भाव व्यक्त करने

के लिये इस चौपाई में "अंग" शब्द का प्रयोग किया गया है।

तो मोमिनों दिल अपना, जीवते अर्स केहेलाया।

जो इस्क मासूक के दिल का, ऊपर सरूपै देखें पाया॥१०४॥

इसलिये तो इस संसार में अपने पञ्चभौतिक तन के रहते ही ब्रह्ममुनियों के दिल (हृदय) को धाम कहलाने की शोभा प्राप्त हो गयी। इस जागनी लीला में ब्रह्मसृष्टियों ने अपने धाम हृदय में श्री राज जी के बाह्य स्वरूप को देखकर उनके हृदय में छिपे गंजानगंज इश्क के भेद को जान लिया।

जो कछुए चीज अर्स में, सो सूरत सब इस्क।

सो लाड़ लज्जत सुख लेत हैं, सब रूहें हादी हक॥१०५॥

परमधाम में जो भी वस्तु है, वह सब कुछ धाम धनी के इश्क का ही स्वरूप है। युगल स्वरूप के साथ-साथ सखियाँ इनसे लीला रूप में प्रेम का स्वाद और आनन्द लेती हैं।

भावार्थ- श्यामा जी और सखियों की तरह परमधाम के २५ पक्ष भी श्री राज जी के ही दिल के स्वरूप हैं, किन्तु लीला रूप में श्री राज जी इन्हीं पक्षों में श्यामा जी और सखियों के साथ प्रेममयी क्रीड़ा करते हैं, इसलिये ऐसा प्रतीत होता है कि वे भी इश्क और आनन्द का स्वाद लेते हैं। वस्तुतः सम्पूर्ण प्रेम और आनन्द के मूल में तो वे ही हैं। अगली चौपाई से यही बात स्पष्ट होती है।

इस्क सुख अर्स बिना, कहूं पैदा दुनी में नाहें।

तो हकें नाम धराया आसिक, जो इस्क आपके माहें॥१०६॥

प्रेम और आनन्द परमधाम के अतिरिक्त अन्य कहीं भी इस संसार में नहीं पैदा होता। एकमात्र अक्षरातीत श्री राज जी के अन्दर ही अनन्त प्रेम का सागर लहराता है, इसलिये उन्होंने स्वयं को आशिक (प्रेमी) कहा है।

भावार्थ- परमधाम के सभी रूपों में एकमात्र श्री राज जी ही लीला कर रहे हैं, इसलिये उन्हें आशिक कहा गया है। जब मारिफत की दृष्टि से उनके अतिरिक्त और कोई है ही नहीं, तो भला और कोई आशिक कैसे कहला सकता है। यह भेद ब्रह्मवाणी के अवतरित होने के पश्चात् इस जागनी ब्रह्माण्ड में ही पता चला है।

या तो इस्क हादी मिने, जाको हकें कहा मासूक।

हक का सुकन सुन आसिक, हाए हाए होत नहीं टूक टूक॥१०७॥

श्री राज जी के अतिरिक्त श्यामा जी के अन्दर प्रेम है,

जिन्हें धाम धनी ने अपना माशूक (प्रेमास्पद) कहा है। हाय! हाय! यह कितने आश्चर्य की बात है कि धनी के इस प्रकार के वचनों को सुनकर भी आत्मायें उनके प्रेम में स्वयं को टुकड़े-टुकड़े नहीं कर पा रही हैं, अर्थात् अपना लौकिक अस्तित्व भुला नहीं पा रही हैं।

भावार्थ- आत्माओं के लिये यह बात चिन्तन करने योग्य है कि जिस श्यामा जी की वे अङ्गरूपा हैं, उन्हीं श्यामा जी को श्री राज जी अपना माशूक कहते हैं। ऐसी स्थिति में तो आत्माओं को धनी के प्रेम में अपना सर्वस्व समर्पित कर देना चाहिए और उनके प्रेम के अतिरिक्त अन्य सब कुछ भुला देना चाहिए।

सुकजीएं भी यों कह्या, प्रेम चौदे भवन में नाहें।

ब्रह्मसृष्ट ब्रह्म निसबती, प्रेम जो है तिन माहें॥१०८॥

शुकदेव जी ने भी श्रीमद्भागवत् में कहा है कि चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में प्रेम नहीं है। अक्षरातीत की अङ्गरूपा आत्माओं में ही एकमात्र प्रेम का स्वरूप विद्यमान है।

भावार्थ- श्रीमद्भागवत् १०/४७/५८ में कहा गया है-

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो गोविन्द एव निखिलात्मनि रुढभावाः।

वाञ्छन्ति यद् भवभियो मुनयो वयं च किं ब्रह्मजन्मभिश्चान्तकथारसस्य॥

अर्थात् इस पृथ्वी पर केवल इन गोपियों का ही शरीर धारण करना सार्थक है, क्योंकि ये श्री कृष्ण के परम प्रेममय दिव्य महाभाव में स्थित हो गयी हैं। प्रेम की इस उच्च स्थिति को बड़े-बड़े मुनिजन भी प्राप्त करना चाहते हैं। यदि परब्रह्म की कथा का रस नहीं मिला, तो अनेक बार ब्रह्मा होने से भी क्या लाभ?

और इस्क माहें रुहन, हकें अर्स कह्यो जाको दिल।

हकें दिल दे रूहों दिल लिया, यों एक हुए हिल मिल॥१०९॥

प्रेम तो मात्र उन ब्रह्माँगनाओं के अन्दर है, जिनके हृदय को श्री राज जी ने अपना धाम कहा है। धाम धनी ने अपना दिल आत्माओं को दे दिया और उनका दिल ले लिया। इस प्रकार वे एकाकार (एक स्वरूप) हो गये।

भावार्थ- दिल देने का तात्पर्य है – अपने हृदय का सम्पूर्ण प्रेम अपने माशूक को दे देना। प्रत्युत्तर में माशूक भी अपने हृदय का सारा प्रेम आशिक को दे देता है। इसे आशिक द्वारा प्रेम लेना कहते हैं। इस प्रकार प्रेम के आदान-प्रदान में दोनों ही स्वयं को भूल जाते हैं। उस समय केवल प्रेम ही प्रेम रह जाता है, जिसे एकाकार (एक स्वरूप) हो जाना कहते हैं।

ना तो हक आदमी के दिल को, अर्स कहें क्यों कर।

पर ए आसिक मासूक की वाहेदत, बिना आसिक न कोई कादर॥११०॥

अन्यथा श्री राज जी किसी मानव तन में स्थित दिल को अपना धाम कैसे कह सकते हैं? किन्तु यह तो ब्रह्मसृष्टियों और श्री राज जी के एकत्व (एकदिली) की बात है। ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त अन्य किसी में भी यह सामर्थ्य नहीं है कि वे अपने हृदय को अक्षरातीत का धाम कहने का दावा कर सकें।

भावार्थ- मानव तन में जीव का निवास होता है, जिसके ऊपर विराजमान होकर आत्मा इस खेल को देख रही है। जीव का स्थूल शरीर पञ्चभूतात्मक होता है, जबकि उसका सूक्ष्म एवं कारण शरीर त्रिगुणात्मक एवं अदृश्य होता है। आत्मा का स्वरूप परात्म के प्रतिबिम्ब के रूप में होता है, किन्तु उसे पञ्चभौतिक या

त्रिगुणात्मक नहीं कह सकते। जिस प्रकार स्वप्न का शरीर मात्र संकल्पात्मक होता है, उसी प्रकार आत्मा का स्वरूप भी संकल्पात्मक होता है, जिसे त्रिगुणात्मक नहीं कहा जा सकता। चितवनि की गहराइयों में यह हुबहू परात्म जैसा उसी प्रकार प्रतीत होता है, जैसे स्वप्नमयी शरीर दृष्टा को अपने मूल शरीर जैसा प्रतीत होता है।

जीव का अन्तःकरण (हृदय, दिल) अलग है और आत्मा का दिल (हृदय) अलग है। धाम धनी का स्वरूप आत्मा के हृदय में ही विराजमान होता है, इसलिये उसे धाम कहलाने की शोभा प्राप्त होती है।

ए जाहेर लिख्या फुरमान में, रूहें उतरी लाहूत से।

अहेल अल्ला तो कहे, जो इस्क है इनों में॥१११॥

धर्मग्रन्थों में यह बात स्पष्ट रूप से लिखी है कि

परमधाम से ब्रह्मसृष्टियाँ इस माया के खेल में आयी हैं। इनके अन्दर प्रेम होता है, इसलिये इनको ही परब्रह्म के ज्ञान का उत्तराधिकारी (खुदा के वारिस) कहते हैं।

भावार्थ- आत्माओं को उत्तराधिकारी कहने का आशय यह है कि एकमात्र यही अपने धाम हृदय में परब्रह्म का स्वरूप बसा पाते हैं। सर्वोच्च आध्यात्मिक ज्ञान को यथार्थ रूप से ग्रहण करने का सामर्थ्य भी इन्हीं में होता है।

पुराण संहिता २९/७५-८० तथा माहेश्वर तन्त्र ४७/९-१३, ४९/३-२१ में आत्माओं के परमधाम से इस मायावी जगत में आने का वर्णन है। इसी प्रकार कुरआन पारा ३० में यही प्रसंग वर्णित है।

इस्क है वाहेदत में, कहूं पाइए न दूजे ठौर।

दूजे ठौर तो पाइए, जो होवे कोई और॥११२॥

परमधाम के एकत्व (एकदिली) में अनन्य प्रेम है। परमधाम के अतिरिक्त अन्य कहीं भी इश्क (अनन्य प्रेम) नहीं है। परमधाम के अतिरिक्त अन्य कहीं (इस संसार) प्रेम तो तब होता, जब यहाँ भी वैसा अखण्डता और एकत्व (एकदिली) का साम्राज्य होता।

भावार्थ- यद्यपि योगमाया के ब्रह्माण्ड में भी प्रेम है, किन्तु परमधाम के परम प्रेम रूपी सागर की मात्र लहर रूप है। ब्रह्मसृष्टियों के इस संसार में आने का प्रसंग होने के कारण यहाँ केवल कालमाया एवं परमधाम का ही वर्णन किया गया है। योगमाया को अक्षर ब्रह्म के हृदय रूप में समाहित (छिपा हुआ) मान लिया गया है। योगमाया में वहदत (एकदिली) न होने से परमधाम के

परम प्रेम (मारिफत के इश्क) से उपमा देने का प्रश्न ही नहीं है। योगमाया के स्वामी स्वयं अक्षर ब्रह्म भी तो परमधाम की प्रेम लीला को देखने के इच्छुक थे। इसलिये तो कहा गया है—

अछरातीत के मोहोल में, प्रेम इस्क बरतत।

सो सुध अछर को नहीं, जो किन विध केलि करत॥

इस्क निसानी हक की, सो पाइए सांच के माहें।

सांच अर्स आगूं वाहेदत के, ए झूठ जरा भी नाहें॥११३॥

श्री राज जी के प्रेम का प्रत्यक्ष स्वरूप अखण्ड परमधाम में ही विद्यमान है। अखण्ड परमधाम में वहदत (एकत्व) की लीला है, जिसके सामने स्वप्न का यह झूठा ब्रह्माण्ड कुछ भी नहीं है।

ए झूठा फरेब कछुए नहीं, जामें आए अहमद मोमिन।

एह निसानी इस्क की, जाके असल अर्स में तन॥११४॥

छल प्रपञ्च से भरा हुआ यह नश्वर संसार कुछ है ही नहीं। इसमें श्यामा जी के साथ ब्रह्मसृष्टियाँ माया का खेल देखने के लिये आयी हुई हैं। श्यामा जी सहित इन ब्रह्मसृष्टियों को ही एकमात्र प्रेम स्वरूपा कहा गया है। परमधाम में इन्हीं के मूल तन विद्यमान हैं।

इस्क नाम अर्स से, खेल में ल्याए महंमद।

ए क्या जानें नसल आदम, जो खाकीबुत सब रद॥११५॥

परमधाम से इश्क की पहचान इस संसार में रसूल मुहम्मद (सल्ल.) ही लेकर आये। भला यह मानवीय जीव सृष्टि, जिसके तन पञ्चभूतात्मक हैं और नष्ट हो जाने वाले हैं, परमधाम के ब्राह्मी प्रेम (खुदाई इश्क) को क्या जान

सकती है।

भावार्थ- इस चौपाई में "नाम" शब्द का तात्पर्य पहचान से है। इश्क शब्द का उच्चारण तो मुहम्मद साहिब के अवतरण से पहले भी होता था, किन्तु किसी को भी इसके वास्तविक स्वरूप की पहचान नहीं थी। जब से अरबी भाषा का अस्तित्व है, तभी से इश्क शब्द है। कतेब परम्परा में आदम (मनु) को सृष्टि का प्रारम्भिक पुरुष माना जाता है, जिनकी सन्तानें आज आदमी (मानव) कहला रही हैं।

ए जाने अरवाहें अर्स की, जिनकी इस्क बिलात।

ए क्या जाने पैदा कुंन की, हक आसिक मासूक की बात॥११६॥

मात्र परमधाम की आत्मायें ही इश्क की वास्तविक पहचान को जानती हैं, क्योंकि ये प्रेम (इश्क) के धाम में

ही रहने वाली हैं। मोह सागर से पैदा होने वाली यह जीव सृष्टि आशिक (श्री राज जी) और माशूक (श्यामा जी तथा सखियों) की प्रेम भरी बातों को क्या जान सकती हैं।

अर्स इस्क हक हादी रूहें, याकी दुनी न जाने कोए।

इस्क अर्स सो जानहीं, जो कायम वतनी होए॥११७॥

परमधाम के प्रेम के विषय में मात्र श्री राजश्यामा जी एवं सखियों को ही ज्ञान है। संसार में कोई भी व्यक्ति परमधाम के प्रेम के विषय में नहीं जानता। परमधाम के विषय में तो वही जान सकता है, जो अखण्ड धाम का रहने वाला हो।

भावार्थ— यद्यपि इस संसार में मीरा और रसखान आदि भक्तों, ऋषि-मुनियों, योगियों, एवं सूफी फकीरों का

परमात्मा के प्रति प्रेम प्रशंसनीय रहा है, किन्तु इनका ज्ञान और लक्ष्य कालमाया तथा योगमाया ही रहा है। सूफी फकीरों ने अक्षरातीत का लक्ष्य तो लिया, किन्तु तारतम ज्ञान न होने से वे लक्ष्य तक नहीं पहुँच सके। बिना तारतम ज्ञान के स्वलीला अद्वैत परमधाम के प्रेम के विषय में यथार्थ रूप से कोई भी नहीं जान सकता।

दुनियां चौदे तबकों, किन निरने करी न सूरत हक।

तिन हक के दिल में पैठ के, करुं जाहेर हक इस्क॥११८॥

चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में आज तक किसी ने भी निर्णय करके यह नहीं बताया है कि सच्चिदानन्द परब्रह्म का स्वरूप क्या है? अब मैं अक्षरातीत के हृदय में बैठकर उनके अखण्ड प्रेम को ज्ञान द्वारा प्रकट कर रही हूँ।

तो अर्स हुआ दिल मोमिन, जो जाहेर किया गुझ ए।

हक हादी गुझ मोमिन, कोई और न कादर इनके॥११९॥

ब्रह्मसृष्टियों के हृदय को "धाम" इसलिये कहा गया है, क्योंकि इन्होंने परमधाम के छिपे हुए प्रेम को इस संसार में प्रकट किया है। श्री राजश्यामा जी के हृदय की गुह्य बातों को जानने में ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त अन्य कोई भी समर्थ नहीं है।

तो पाया खिताब अर्स का, ना तो दिल आदमी अर्स क्यों होए।

ए हक हादी मोमिन बातून, और बूझे जो होवे कोए॥१२०॥

इसलिये ब्रह्ममुनियों के हृदय को धाम कहलाने की शोभा प्राप्त हुई है, अन्यथा किसी मानव तन में स्थित दिल (हृदय) को भला अक्षरातीत का धाम कैसे कहा जा सकता है? श्री राजश्यामा जी और सखियों की ये गुह्य

बातें हैं। परमधाम की इन गुह्य बातों को मात्र यही जानते हैं, क्योंकि वहाँ पर इनके अतिरिक्त और कोई नहीं है।

भावार्थ- अक्षर ब्रह्म और महालक्ष्मी भी श्री राज जी के ही अंग हैं। ये पाँच स्वरूप मिलकर ही श्री राज जी का पूर्ण स्वरूप कहलाते हैं।

मुखारबिंद मेहेबूब का, सुख देत हक सूरत।

जुगल किसोर सोभा लिए, दोऊ बैठे एक तखत॥१२१॥

युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी जब सिंहासन पर अपनी पूर्ण शोभा के साथ विराजमान होते हैं, तो श्री राज जी का मुखारविन्द उनके पूर्ण स्वरूप का ही आनन्द देता है।

दोऊ सरूप अति उज्जल, कई जोत खूबियों में खूब।

इस्क कला सब पूरन, रस इस्क भरे मेहेबूब॥१२२॥

युगल स्वरूप का रंग अत्यधिक उज्ज्वलता लिये हुए है। यह अनेक प्रकार की ज्योतिर्मयी शोभा की आश्चर्यजनक विशिष्टताओं में युक्त है। दोनों स्वरूपों में प्रेम की सभी लतायें पूर्ण रूप से दृष्टिगोचर हो रही हैं। प्रियतम के ये स्वरूप इश्क के अनन्त रस से भरपूर हैं।

नैन श्रवन मुख नासिका, चारों अंग गेहेरे गंभीर।

अर्स आकास सिंध तेज का, ताए चारों नेहेरें चलियां चीर॥१२३॥

युगल स्वरूप के इन चारों अंगों— नेत्र, कान, मुख, और नासिका— में सौन्दर्य रूपी सागर की गहराई और गम्भीरता विद्यमान है। इन चारों अंगों से नूरी तेज की नहरें आकाश को चीरती हुई दिखायी पड़ रही हैं, जिसमें

आकाश में चारों ओर तेज ही तेज का अनन्त समुद्र लहराता हुआ प्रतीत हो रहा है।

भावार्थ- कृत्रिम सौन्दर्य उथला होता है , जबकि वास्तविक सौन्दर्य गहरा होता है। युगल स्वरूप के सौन्दर्य को सागर के समान गहरा कहने का आशय है कि जिस प्रकार समुद्र में जितनी गहराई में हम जाने का प्रयास करते हैं, वह उतना ही गहरा प्रतीत होता है, उसी प्रकार श्री राज जी के सौन्दर्य का जितना भी माप किया जाये, वह उतना ही अनन्त नजर आता है। जल जहाँ जितना गहरा होता है, वहाँ उतना ही शान्त दिखता है।

"गंभीर" शब्द युगल स्वरूप की शोभा की अनन्तता एवं आकर्षणशीलता को दर्शाने के लिये प्रयुक्त हुआ है।

एक मुख के सुख में कई सुख, और कई सुख माहें नैन।

सुख केते कहूं नैन अंग के, मुख गिनती न आवे बैन॥१२४॥

युगल स्वरूप के मुखारविन्द के एक सुख में अनेक प्रकार के सुख छिपे हुए हैं। इसी प्रकार नेत्रों में भी अनेक प्रकार के सुख विद्यमान हैं। नेत्रों के सुखों का मैं कितना वर्णन करूँ। न तो उनकी गिनती हो सकती है और न उन्हें मुख से निकलने वाले शब्दों से व्यक्त किया जा सकता है।

श्रवन अन्दर सुख क्यों कहूं, जो सुख सागर आराम।

क्यों निकसे रूह इनसे, ए अंग सुख स्यामा स्याम॥१२५॥

युगल स्वरूप के कानों में छिपे हुए सुख, शान्ति, और आह्लाद (हर्ष) के सागरों का मैं कैसे वर्णन करूँ। श्री राजश्यामा जी के इन अंग के सुखों के सागर से भला

आत्मा कैसे बाहर निकल सकती है।

भावार्थ- "आराम" के तीन भेद होते हैं- १. शारीरिक २. मानसिक ३. आत्मिक। वस्तुतः जिस वस्तु से शान्ति और हर्ष की अनुभूति हो, वह आराम है।

अंग रूह अर्स की नासिका, ए बल जानत रूह को कोए।

चौदे तबक सुन्य फोड़ के, इत लेत अर्स खुसबोए॥१२६॥

परमधाम से आने वाली आत्माओं की नासिका की शक्ति को भला कौन जानता है, जो चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड और निराकार मण्डल को पार करके यहीं पर परमधाम की सुगन्धि का अनुभव कर रही है।

भावार्थ- बिना किसी स्थान पर गये या उसे देखे, नासिका द्वारा वहाँ की स्थिति का अनुमान कर लिया जाता है। कुत्ते आदि पशुओं की नासिका में सूँघने की

शक्ति इतनी अधिक होती है कि वे बहुत गोपनीय बातों का भी पता लगा लेते हैं।

परात्म की प्रतिबिम्ब स्वरूपा आत्मा की नासिका की शक्ति भी ऐसी है कि वह चौदह लोक और निराकार – बेहद से परे परमधाम की अनुभूतियों में खोयी रहती है। इस चौपाई में नासिका के दृष्टान्त से आत्मा की उस विलक्षण शक्ति का वर्णन किया गया है, जो पच्चीस पक्षों और अष्ट प्रहर की लीलाओं की सुगन्धि (अनुभूति) लेती रहती है। कलस हिंदुस्तानी ११/१ के कथन "जो कदी भूली वतन, तो भी नजर तहां निदान" का भी यही संकेत है।

ऐसा बल रूह अर्स के, तो बल हक होसी किन विध।
ए बेवरा जानें पाक मोमिन, जिन हक अर्स दिल सुध॥१२७॥

जब परमधाम की आत्माओं की नासिका में इतनी शक्ति है, तो स्वयं अक्षरातीत की नासिका में कितनी शक्ति होगी? इस रहस्य को वे पवित्र हृदय वाले ब्रह्ममुनि ही जानते हैं, जिनके धाम हृदय में अक्षरातीत की पूर्ण पहचान हो चुकी है।

भावार्थ— परमधाम की वहदत में सबकी शक्ति बराबर है, किन्तु इस संसार में ब्रह्मसृष्टियाँ सुरता द्वारा आयी हैं, जबकि अक्षरातीत अपने आवेश द्वारा आये हैं। धाम धनी तो सर्वत्र पूर्ण (अनन्त शक्ति वाले) हैं, किन्तु इस खेल में आत्मा जाग्रत होकर जो आत्मिक बल प्राप्त करती है, उसकी एक सीमा है और वह आत्मिक शक्ति धाम धनी के द्वारा ही निर्देशित होती है।

सुख कहूं मीठी जुबान के, के सुख कहूं लाल अधुर।
 के सुख कहूं रस भरे वचन, जो बोलत माहें मधुर॥१२८॥

मैं युगल स्वरूप की मीठी रसना के सुखों का वर्णन करूँ या उनके लाल-लाल होंठों का वर्णन करूँ? बोलते समय श्री राजश्यामा जी की मधुर रसनाओं से जो प्रेमरस से भरे हुए अमृतमयी वचन निकलते हैं, उनके सुखों का मैं कैसे वर्णन करूँ।

दोऊ माहों माहें जब बोलहीं, तब मीठे कैसे लगत।
 कोई रूह जानें अर्स की, जित हक हुकम जाग्रत॥१२९॥

श्री राजश्यामा जी जब आपस में प्रेम भरी बातें करते हैं तो वे कितने प्यारे लगते हैं, इसका वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है। इस सुख को तो परमधाम की कोई आत्मा ही जान सकती है, जो धाम धनी के आदेश से

जाग्रत हो गयी है।

जानों के जोबन चढ़ता, ऐसे नित देखत नौतन।

गुन पख अंग इंद्रियां, बढ़ता नूर रोसन॥१३०॥

ऐसा प्रतीत होता है, जैसे युगल स्वरूप का यौवन पल-पल बढ़ता ही जा रहा है। वे हमेशा ऐसे नित्य तरुण के रूप में दिखायी देते हैं। उनके सच्चिदानन्दमयी गुणों, बाह्य एवं आभ्यान्तर (आन्तरिक) पक्षों, अन्तःकरण एवं इन्द्रियों में नूर (सौन्दर्य और आह्लाद) आदि में पल-पल वृद्धि दिखायी देती है।

जानों के पल पल चढ़ता, तेज जोत रस रंग।

पूरन सरूप एही देखहीं, इस्क सूरत के संग॥१३१॥

ऐसा लगता है कि युगल स्वरूप के तेज, ज्योति, प्रेम,

एवं आनन्द में अबाध गति से पल-पल वृद्धि होती जा रही है। अनन्त प्रेम के स्वरूप में श्री राजश्यामा जी का यही पूर्ण स्वरूप हमेशा दृष्टिगोचर होता है।

बन्ध बन्ध सब इस्क के, और इस्कै अंगों अंग।

गुन पख सब इस्क के, सोई इस्क बोलें रस रंग॥१३२॥

युगल किशोर के अंग-अंग में इश्क ही इश्क समाया हुआ है। अंगों के सभी जोड़ों (घुटनों, कमर, तथा कन्धों इत्यादि) में भी वही प्रेम क्रीड़ा कर रहा है। श्री राजश्यामा जी के सच्चिदानन्दमयी गुणों तथा पक्षों आदि में भी वही प्रेम विद्यमान है। वही प्रेम अनन्त सौन्दर्य तथा आनन्द आदि के रूप में अंग-अंग से प्रकट हो रहा है (बोल रहा है)।

सब इंद्रियां इस्क की, इस्क तत्व रस धात।

पिंड प्रकृत सब इस्क के, इस्क भीगे अंग गात॥१३३॥

युगल स्वरूप की सभी इन्द्रियाँ इश्कमयी हैं। नूरमयी तत्वों, रसों, तथा धातुओं से युक्त सम्पूर्ण शरीर भी प्रेममयी है। उनका स्वभाव भी इश्कमयी है और उनके शरीर के सभी अंग प्रेम रस में भीगे हुए हैं।

भावार्थ- यद्यपि परमधाम में एकमात्र नूरमयी तत्व है , किन्तु इस संसार के पञ्चभौतिक तन का दृष्टान्त देकर तत्वों, रसों, धातुओं, तथा इन्द्रियों आदि का वर्णन किया गया है। वहाँ तो सब कुछ सच्चिदानन्दमयी ही है। परमधाम के नूरी तनों में त्रिगुणात्मक रस , धातु, तत्व आदि का अस्तित्व नहीं है।

बात विचार सब इस्क के, इस्कै गान इलम।

अंग क्यों कहूं इन जिमिएं, एता भी केहेत हुकम॥१३४॥

परमधाम में बातें एवं विचारधारा भी इश्कमयी हैं। संगीत का गायन एवं ज्ञान भी इश्क का ही स्वरूप है। वहाँ के अंगों की शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ। इतना भी श्री राज जी का हुकम ही कह रहा है।

सब चीजें इत इस्क की, इस्कै अर्स बिसात।

रुहें हादी अंग इस्क के, इस्क सूरत हक जात॥१३५॥

परमधाम में प्रत्येक वस्तु प्रेम का ही स्वरूप है। लीलारूपी सभी सामग्रियों में प्रेम की सुगन्धि है। श्री राजश्यामा जी एवं सखियों के सभी अंग तथा मुखारविन्द भी इश्कमयी हैं।

सेहेज सुभाव सब इस्क के, इस्कै की वाहेदत।

हक सरूप सब इस्क के, इस्कै की खिलवत॥१३६॥

निजधाम में सभी का वास्तविक स्वभाव प्रेममयी है।
इश्क की ही वहदत (एकदिली) है और इश्क की ही
खिल्वत है। धाम धनी का सम्पूर्ण स्वरूप इश्क का है।

मोहोल मन्दिर सब इस्क के, ऊपर तले इस्क।

दसों दिस सब इस्क, इस्क उठक या बैठक॥१३७॥

परमधाम के सभी महल एवं मन्दिर परम प्रेम (इश्क) के
स्वरूप हैं। ऊपर-नीचे सर्वत्र अनन्य प्रेम की ही लीला
हो रही है। यहाँ तक कि दशों दिशाओं में भी इश्क ही
इश्क नजर आ रहा है। उठने और बैठने तक में इश्क का
स्वरूप विद्यमान रहता है।

यों अर्स सारा इस्क का, और इस्क रुहों निसबत।

इस्क बिना जरा नहीं, सब हक इस्क न्यामत॥१३८॥

इस प्रकार सम्पूर्ण परमधाम इश्क का ही स्वरूप है। इश्क से ब्रह्मसृष्टियों का अनादि और अखण्ड सम्बन्ध है। परमधाम का एक कण भी इश्क से रहित नहीं है। वहाँ की सम्पूर्ण सम्पदा (निधियाँ) इश्क की हैं।

नेक कही हक इस्क की, पर इस्क बड़ा विस्तार।

इनको बरनन न होवहीं, न आवे माहें सुमार॥१३९॥

परमधाम के इश्क की ये थोड़ी सी बातें मैंने कही हैं, किन्तु इश्क का विस्तार तो बहुत (अनन्त) है। धनी के प्रेम की कोई सीमा नहीं है, इसलिये उसका पूर्ण वर्णन हो पाना सम्भव ही नहीं है।

सुनो मोमिनो इस्क की, नेक और भी देऊं खबर।

अर्स आसिक मासूक की, ज्यों औरों भी आवे नजर॥१४०॥

श्री महामति जी कहती हैं कि हे साथ जी ! मैं प्रेम के सम्बन्ध में थोड़ी सी और बातें बता रही हूँ, उसे सुनिए। परमधाम में श्री राज जी एवं श्यामा जी सहित सखियों के बीच के प्रेम की बातें मैं कह रही हूँ, जिससे अन्य लोगों (ईश्वरी और जीव सृष्टि) को भी पता चल जाये।

रब्द हुआ इस्क का, हक हादी की खिलवत माहें।

इत कम ज्यादा है नहीं, अर्स इस्क बेवरा नाहें॥१४१॥

श्री राजश्यामा जी की खिल्वत में इश्क रब्द हुआ। परमधाम में किसी का प्रेम न तो कम है और न अधिक, इसलिये वहाँ इश्क के विवाद का निर्णय नहीं हो सका।

भावार्थ— कौन आशिक है और कौन माशूक है— इस

सम्बन्ध में इश्क रब्द तो अनादि काल से चल रहा था। "बीच अर्स खिल्वत के, दायम होत विवाद" (खिल्वत ९/१८) से इस कथन की पुष्टि होती है। यही कारण है कि इस चौपाई के दूसरे चरण में युगल स्वरूप की खिल्वत में इश्क रब्द होने का वर्णन किया गया है।

युगल स्वरूप सहित सखियाँ परमधाम में जहाँ पर भी हैं, वहीं खिल्वत का स्वरूप है। तीसरी भूमिका की पड़साल से प्रातःकाल सखियों ने जब अक्षर ब्रह्म को देखा, तो माया का खेल देखने की बातें हुईं। ये बातें तीसरी भूमिका में तीन बजे से शुरू हुई और मूल मिलावा तक चलती रहीं।

ए बेवरा तित होवहीं, जित बिछोहा होए।

सो तो वाहेदत में है नहीं, होए बिछोहा माहें दोए॥१४२॥

यह निर्णय तो वहाँ हो सकता है, जहाँ वियोग हो। स्वलीला अद्वैत परमधाम में एकदिली (वहदत) होने से वियोग होना सम्भव ही नहीं है। वियोग तो द्वैत के (मायावी) संसार में ही हो सकता है।

भावार्थ— कालमाया के ब्रह्माण्ड में द्वैत (जीव+माया) की लीला है और योगमाया के ब्रह्माण्ड में अद्वैत ब्रह्म अपनी अभिन्न स्वरूपा चैतन्य माया (शक्ति) के साथ लीला करता है, इसलिये उसे अद्वैत लीला कहते हैं। परमधाम में सच्चिदानन्द परब्रह्म ही सभी रूपों में लीला करते हैं, इसलिये परमधाम को स्वलीला अद्वैत कहते हैं।

हकें चाह्या करों बेवरा, देखाऊं रूहों को।

इस्क न पाइए बिना जुदागी, सो क्यों होवे वाहेदत मौं॥१४३॥

श्री राज जी ने अपने दिल में यह ले लिया कि मैं अपनी

अँगनाओं को इश्क का पूर्ण विवरण दूँ, किन्तु बिना वियोग के इश्क का निरूपण नहीं हो सकता था और परमधाम की वहदत में ऐसा होना सम्भव नहीं था।

ताथें दई नेक फरामोसी, रूहों को माहें अर्स।

हांसी करने इस्क की, देखें कौन कम कौन सरस॥१४४॥

इसलिये धाम धनी ने परमधाम में ब्रह्मसृष्टियों को थोड़ी सी फरामोशी दी, जिससे उनके इश्क को देखकर इस बात की हँसी की जा सके कि किसका प्रेम कम है और किसका प्रेम अधिक है।

भावार्थ— यद्यपि परमधाम सच्चिदानन्दमयी है और वहाँ पर फरामोसी (नींद) का अस्तित्व नहीं हो सकता, किन्तु धाम धनी ने अपने चरणों में सखियों को बिठाकर इस प्रकार लीला दिखायी है कि उनकी नजर धाम धनी

की ओर खुली हुई हैं, किन्तु वे देख रही हैं संसार को। वे वहाँ पर रहते हुए भी वहाँ का दृश्य नहीं देख पा रही हैं और न धाम धनी से कुछ कह पा रही हैं। इसी को इस चौपाई के पहले चरण में "थोड़ी सी फरामोशी" देना कहा गया है।

ए झूठा खेल देखाइया, ए जो चौदे तबक।

हम जानें आए खेल बीच में, जित तरफ न पाइए हक॥१४५॥

धाम धनी ने हमें चौदह लोक के ब्रह्माण्ड का यह झूठा सा खेल दिखाया है। अब तारतम ज्ञान द्वारा हम यह जान गये हैं कि हम ऐसे झूठे संसार में आये हैं, जिसमें परब्रह्म की पहचान कराने वाला कोई भी नहीं है।

इत इस्क कहाँ पाइए, आग पानी पत्थर पूजत।

ए खेल देख्या एक निमख का, जानों हो गई कई मुद्धत॥१४६॥

इस झूठे संसार में, जहाँ परमात्मा के नाम पर लोग अग्नि, पानी, और पत्थरों की पूजा कर रहे हैं, प्रियतम का प्रेम कहाँ से पाया जा सकता है? यद्यपि परमधाम में खेल देखते हुए अभी एक क्षण ही बीता है, लेकिन लगता है कि जैसे बहुत लम्बा समय बीत गया है।

भावार्थ— मूल मिलावा में धनी के चरणों में बैठे हुए ही सखियों ने ब्रज, रास, और जागनी ब्रह्माण्ड देखा है। ११ वर्ष ५२ दिन की ब्रज लीला के पश्चात् योगमाया के ब्रह्माण्ड में महारास खेली गयी। उस रास रात्रि का समय इस ब्रह्माण्ड के हिसाब से कितना लम्बा होगा, इसका आंकलन मानवीय बुद्धि से नहीं हो सकता। बेहद वाणी में इस तथ्य पर बहुत अच्छा प्रकाश डाला गया है—

रास रात बरनन करी, देखो मन विचार।
 नारायन जी की रात को, कोइक पावे पार॥
 पार नहीं रास रात को, ए तो बेहद कही।
 तामे अखण्ड लीला रास की, पंच अध्याई भई॥
 देखो जाहेर याके माएने, चित ल्याए वचन।
 रात ऐसी बड़ी तो कही, लीला बड़ी वृंदावन॥

प्र. हि. बेहद वाणी ६६, ६७, ६८

रास रात्रि के पश्चात् सखियों की राज जी से पुनः वार्ता
 हुई। इस खेल में पुनः आते समय ही श्री राज जी ने
 "अलस्तो बि रब्ब कुंम" कहा था। अब तक लगभग
 ४०० वर्ष से अधिक हो चुके हैं, किन्तु अभी जागनी
 लीला समाप्त नहीं हुई है, और जब परमधाम में जाग्रत
 होंगे तब भी हमारे कानों में यही आवाज आती रहेगी –
 "अलस्तो बि रब्ब कुम्म" (क्या मैं तुम्हारा प्रियतम नहीं

हूँ)? "कालू वले" (निश्चित रूप से आप ही हमारे प्रियतम हैं)।

झूठ हम देख्या नहीं, झूठ रहे न हमारी नजर।

पट आड़े खेल देखाइया, सो देने इस्क खबर॥१४७॥

हमने अपनी नूरी नजरों से इस ब्रह्माण्ड को नहीं देखा है, क्योंकि हमारी नूरी नजरों के सामने स्वप्न का यह ब्रह्माण्ड रह ही नहीं सकता। अपने इश्क की पहचान देने के लिये धाम धनी ने अपने दिल रूपी पर्दे पर माया का खेल दिखाया है।

भावार्थ— जिस प्रकार जब हम अपने कक्ष में टी.वी. (दूरदर्शन) पर दृष्टि डालते हैं, तो उसमें दूसरे देश में होने वाले खेल का सारा दृश्य आने लगता है। हमारा शरीर और दृष्टि कमरे से बाहर नहीं जाती, किन्तु हमारी

अन्तर्दृष्टि उस देश में पहुँचकर खेल के सारे दृश्य को देख रही होती है।

उसी प्रकार मूल मिलावा में हमारे मूल तन धाम धनी के सम्मुख बैठे हुए हैं और हमारी दृष्टि श्री राज जी की आँखों की तरफ है। आँखों का सम्बन्ध दिल से होता है। इसलिये श्री राज जी के दिल रूपी पर्दे पर हम खेल का सारा दृश्य देख रहे हैं। खेल का सम्पूर्ण संचालन भी श्री राज जी के दिल से ही हो रहा है। किन्तु धनी के आदेश (हुक्म) से हमारी अन्तर्दृष्टि (सुरता, आत्मा, वासना) इस संसार में आकर जीवों के ऊपर विराजमान हो गयी है और इस खेल को देख रही है।

ऐसा खेल देखाइया, जानें हम आए माहें इन।

इस्क हम में जरा नहीं, सुध हक न आप वतन॥१४८॥

श्री राज जी ने हमें माया का ऐसा खेल दिखाया है, जिसमें हमें इस तरह का अनुभव हो रहा है कि हम साक्षात् यहाँ आ गये हैं। इस खेल में धनी के प्रति हमारे पास नाम मात्र का भी प्रेम नहीं रह गया है। न हमें अपनी, न घर की, और न ही धाम धनी की सुध रह गयी है।

इन इस्कें हमारे ऐसा किया, ए जो झूठे चौदे तबक।

तिन सबों कायम किए, ऐसे हमारे इस्क॥१४९॥

इश्क रब्द के कारण ही हमें इस नश्वर जगत में आना पड़ा। इसी कारण धाम धनी ने चौदह लोक के इस स्वप्नवत् ब्रह्माण्ड को अखण्ड मुक्ति प्रदान की। यह सब कुछ हमारे इश्क के कारण ही सम्भव हुआ है।

जलाए दिए सब इस्कें, हो गई सब अग्नि।

एक जरा कोई ना बच्या, बीच आसमान धरन॥१५०॥

हमारे इश्क के कारण ही योगमाया के ब्रह्माण्ड में सभी प्राणियों को ज्ञान और विरह की अग्नि में जलाया गया। चारों ओर विरह की अग्नि धधकने लगी, जिसमें धरती से लेकर आकाश के बीच में एक कण भी ऐसा नहीं रहा, जो विरह की अग्नि में न जला हो।

भावार्थ— वर्तमान समय में विश्व की लगभग तिहाई जनसंख्या नास्तिक है। आस्तिक लोगों में भी लगभग ९०% लोगों को अक्षरातीत का ज्ञान नहीं है। इनमें अधिकतर लोग या तो कर्मकाण्डों के जाल में फँसे हुए हैं, या देवी-देवताओं की कल्पना करके जड़ पदार्थों की पूजा कर रहे हैं। शेष १०% लोगों में अधिकतर संख्या तारतम ज्ञान से रहित होने के कारण अक्षरातीत के धाम,

स्वरूप, तथा लीला को यथार्थ रूप से नहीं जानती। साम्प्रदायिक कट्टरता के अन्धकार में, सारे विश्व का सच्चिदानन्द परब्रह्म के प्रेम की अग्नि में जलना सम्भव नहीं दिखता।

वस्तुतः यह प्रसंग योगमाया के ब्रह्माण्ड का है। महाप्रलय के पश्चात् चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड के सभी जीव योगमाया के अन्दर अखण्ड मुक्ति को प्राप्त करेंगे, किन्तु इसके पूर्व तारतम ज्ञान के प्रकाश में उन्हें अक्षरातीत का ज्ञान प्राप्त हो जायेगा और वे विरह में तड़पेंगे।

विरह की अग्नि में जलकर ही वे निर्मल होंगे और अखण्ड मुक्ति को प्राप्त करेंगे। धरती और आकाश के बीच एक कण का भी विरहाग्नि में जलने से न बचने का तात्पर्य सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से है। प्रकाश हिन्दुस्तानी की

प्रकट वाणी तथा सनन्ध ग्रन्थ में इस पर विस्तृष्ट रूप से प्रकाश डाला गया है—

श्री धनी जी को दीदार सब कोई देख, होए गई दुनियां सब एक।
 किनहूं कछुए ना कह्यो, क्रोध ब्रोध काहू को ना रह्यो॥
 श्री धनी जी को ऐसो जस, दुनियां आपे भई एक रस।
 तेज जोत प्रकास जो ऐसो, काहूं संसे ना रह्यो कैसो॥
 सब जातें मिली एक ठौर, कोई ना कहे धनी मेरा और।
 पिया के विरह सों निरमल किए, पीछे अखंड सुख सबों को दिए॥

प्रकास हिंदुस्तानी प्रकट वाणी ११०-११२
 योगमाया में होने वाले प्रायश्चित (विरहाग्नि में जलने) की
 एक छोटी सी झलक यहाँ प्रस्तुत है—

ज्यों ज्यों दुलहा देखहीं, त्यों त्यों उपजे दुख।
 ऐसे मौले मेहेबूब सों, हाए हाए हुए नहीं सनमुख॥

एता मासूक पुकारिया, तो भी न छूटा फंद।
 दंत बीच जुबां काटहीं, हाए हाए हुए बड़े अंध॥
 बैठे उठे न पर सके, सके न रोए विकल।
 आखिर जाहेर हुए पीछे, आग हुए जल बल॥
 यों आखिर आए सबन को, प्रगट भई पेहेचान।
 तब कहे ए सुध सुनी हती, पर आया नहीं ईमान॥

सनंध २६/८, १०, २३, ३४

हम जानें इस्क न हमपे, हम पर हंससी नूरजमाल।
 हमारे इस्कें ब्रह्मांड का, किया जो ऐसा हाल॥१५१॥
 हम सोचते हैं कि इस खेल में हमारे पास इश्क तो है
 नहीं, इसलिए जब हम परमधाम में जाग्रत होंगे तो श्री
 राज जी हमारे ऊपर हँसी करेंगे, किन्तु हमारे इश्क के

(दावे के) कारण जो रब्द हुआ, उसने ही तो इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अखण्ड होने का सौभाग्य प्रदान कर दिया।

इस वास्ते खेल देखाइया, वास्ते बेवरे इस्क के।

कोई आया न गया हममें, बैठे अर्स में देखें ए॥१५२॥

इसलिये इश्क का विवरण देने के लिये धाम धनी ने हमें माया का यह खेल दिखाया है। हममें से किसी का भी शरीर न तो इस संसार में आया है और न यह शरीर जायेगा। हमने परमधाम में बैठे-बैठे ही सुरता द्वारा इस खेल को देखा है।

कहे महामत हुकमें देखाइया, ऐसी कर हिकमत।

हम देख्या इस्क बेवरा, बैठे बीच खिलवत॥१५३॥

श्री महामति जी कहते हैं कि श्री राज जी ने अपने हुक्म

द्वारा ऐसी युक्ति से हमें माया का खेल दिखाया है कि हमने मूल मिलावा में बैठे-बैठे ही इश्क का निर्णय पालिया।

प्रकरण ॥२०॥ चौपाई ॥१२१७॥

मुखकमल मुकुट छबि

मंगला चरण

इस प्रकरण में श्री राज जी के सिर पर बँधे हुए मुकुट सहित सम्पूर्ण मुखारविन्द की शोभा का वर्णन किया गया है।

याद करो हक मोमिनो, खेल में अपना खसम।

हकें कौल किया उतरते, अलस्तो-बे-ख कुंम॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! इस माया के खेल में अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत को प्रेमपूर्वक याद कीजिए। उन्होंने ही इस खेल में आते समय हमसे पूछा था कि क्या मैं तुम्हारा प्रियतम नहीं हूँ?

तब रूहों वले कहा, बीच हक खिलवत।

मजकूर किया हकें तुमसों, वह जिन भूलो न्यामत॥२॥

तब प्रत्युत्तर में हम आत्माओं ने मूल मिलावा में कहा था कि निश्चित रूप से आप ही हमारे प्रियतम हैं। हे साथ जी! धाम धनी ने उस समय जो आपसे बातें की थीं, उस अनमोल निधि को मत भूलिये।

भावार्थ— कुरआन पार: ९ कालल्म—लऊ सूरत ७ अल आराफ में "अलस्तो बि रब्ब कुंम" का प्रसंग है। इससे इश्क रब्द का सांकेतिक वर्णन प्राप्त होता है। पुराण संहिता में प्रेम विवाद को विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया गया है।

हुकमें ए कुंजी ल्याया इलम, हुकमें ले आया फुरमान।

दई बड़ाई रूहों हुकमें, हुकमें दई भिस्त जहान॥३॥

धाम धनी के आदेश से ही कुरआन तथा पुराण संहिता आदि धर्मग्रन्थों का अवतरण हुआ। सभी धर्मग्रन्थों के रहस्यों को स्पष्ट करने के लिये धनी के हुक्म से तारतम ज्ञान आया। श्री राज जी के आदेश से ही सारे ब्रह्माण्ड को अखण्ड मुक्ति देने की शोभा ब्रह्मसृष्टियों को प्राप्त हुई है।

हुकमें हादी आइया, और हुकमें आए मोमिन।

और फुरमान भेज्या इनपे, हकें कुंजी भेजी बैठ वतन॥४॥

धाम धनी के दिल की इच्छा से ही श्यामा जी और ब्रह्मसृष्टियाँ इस खेल में आयीं। परमधाम में विराजमान श्री राज जी ने इनको प्रबोधित करने के लिये तारतम ज्ञान, माहेश्वर तन्त्र, पुराण संहिता, कुरआन आदि धर्मग्रन्थों को भेजा।

और भी हुकमें ए किया, लिया रूह अल्ला का भेस।

पेहेचान दई सब असों की, माहें बैठे दे आवेस॥५॥

श्री राज जी के आदेश (हुक्म) से यह लीला भी हुई कि श्यामा जी की सुरता ने सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी का तन धारण किया। उस तन में धाम धनी अपने आवेश स्वरूप से विराजमान हुए और सभी धामों की पहचान दी।

भावार्थ- तीन सृष्टियों के तीन धाम है- १. वैकुण्ठ २. योगमाया का ब्रह्माण्ड ३. परमधाम। ईश्वरी सृष्टि का घर अक्षर धाम अवश्य कहा जाता है, किन्तु उसका तात्पर्य बेहद (योगमाया) से ही है।

हुक्म ने श्यामा जी का भेष धारण किया। इस कथन का तात्पर्य यह है कि श्री राज जी की इच्छा (आदेश, हुक्म) से श्यामा जी की सुरता श्री देवचन्द्र जी के जीव

पर विराजमान हुई। खिलवत ५/३९ में इस सम्बन्ध में कहा गया है—

कहे लदुन्नी भोम तलेय की, हक बैठे खेलावत।

तैसा इत होत गया, जैसा हजूर हुकम करत॥

इलम दिया सब असी का, कहूं जरा न रही सक।

हम हादी मोमिन सब मिल, करें जारी वास्ते इस्क॥६॥

श्री राज जी ने मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर तारतम वाणी द्वारा सभी धामों का ज्ञान दिया, जिससे नाममात्र के लिये भी संशय नहीं रह गया। अब हम सब सुन्दरसाथ को श्यामा जी के साथ मिलकर प्रियतम का प्रेम पाने के लिये उनसे प्रेम सम्बन्ध रखना चाहिए।

भावार्थ— "जारी" शब्द का तात्पर्य याराना (दोस्ती, मित्रता) के भाव में है। यार भाव संसार का है। अध्यात्म

जगत् में इसका आशय पूर्ण समर्पित माधुर्य भाव के प्रेम से है।

और जेती किताबें दुनी में, तिन सबों पोहोंची सरत।

सो सब खोली किताबें हुकमें, केहे दई सबों कयामत॥७॥

संसार के सभी धर्मग्रन्थों में अखण्ड मुक्ति देने वाले ज्ञान के प्रकटीकरण (कियामत) का समय आने का वर्णन है। अब उनका कथन सत्य हो गया है। धाम धनी के आदेश से सभी धर्मग्रन्थों के गुह्य रहस्यों का स्पष्टीकरण हो गया है और सबको कियामत की पहचान भी दे दी गयी है।

भावार्थ— माहेश्वर तन्त्र, पुराण संहिता, वृहत्सदाशिव संहिता, भविष्य दीपिका, श्रीमद्भागवत्, कुरआन, हदीस, एवं बाइबल आदि में अखण्ड मुक्ति देने वाले ज्ञान के

अवतरण के समय का प्रसंग है। इन धर्मग्रन्थों में यह भी बताया गया है कि स्वयं परब्रह्म की शक्ति के द्वारा ही यह सारा ज्ञान अवतरित होगा।

फिराए दिए सब फिरके, सब आए बीच हक दीन।

भिस्त दर्ई हम सबन को, ल्याए सब हक पर आकीन॥८॥

तारतम ज्ञान के प्रकाश में सभी मतावलम्बियों ने अपनी मिथ्या मान्यताओं का परित्याग कर दिया और परब्रह्म की दी हुई तारतम वाणी की राह का अनुसरण किया। सबने एक अक्षरातीत पर विश्वास किया, जिसके परिणाम स्वरूप हमने उन्हें बेहद मण्डल में अखण्ड बहिश्तों में मुक्ति दी।

भावार्थ— जड़ पूजा, देव पूजा, साकार-निराकारवाद आदि मिथ्या मान्यतायें हैं, जो प्रायः सभी सम्प्रदायों में

फैली हुई हैं। ब्रह्मवाणी के ज्ञान का अनुसरण करते हुए हजारों व्यक्तियों ने श्री महामति जी की शरण में आकर एक अक्षरातीत को प्रेम लक्षणा भक्ति से रिझाया। इसका बृहत् रूप योगमाया के ब्रह्माण्ड में होगा, जहाँ इस ब्रह्माण्ड के सभी प्राणी परब्रह्म की शरण में आयेंगे और शाश्वत् मुक्ति को प्राप्त करेंगे।

बका तरफ कोई न जानत, ए जो चौदे तबक।

सो रात मेटके दिन किया, पट खोल अर्स हक॥९॥

चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में अखण्ड परमधाम का ज्ञान किसी के पास भी नहीं था। अब धाम धनी ने मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर तारतम वाणी का उजाला कर दिया है, जिससे अज्ञान रूपी रात्रि समाप्त हो गयी है, माया का पर्दा हट गया है, तथा सबको अक्षरातीत एवं

परमधाम की पूर्ण पहचान हो गयी है।

ऐसा खेल इन भांतका, यामें गई ना कबूं किन सक।

ताको साफ किए हम हुकमें, सब जले बीच इस्क॥१०॥

यह मायावी जगत ऐसा है, जिसमें आज दिन तक किसी का भी संशय पूर्ण रूप से नहीं मिट सका था। अब धाम धनी के हुक्म से तारतम ज्ञान द्वारा हमने उनके संशयों को हटाकर उन्हें निर्मल कर दिया है। अब वे लोग एक अक्षरातीत की पहचान करके अक्षरातीत के प्रेम की अग्नि में जल रहे हैं।

हम मांगें इस्क वतनी, आई हमपे हक न्यामत।

हमें ऐसा खेल देखाइया, इत बैठे देखें खिलवत॥११॥

तारतम वाणी के रूप में अक्षरातीत की अनमोल निधि

हमें प्राप्त हुई है, जिससे हम सावचेत होकर परमधाम का प्रेम माँग रहे हैं। धाम धनी ने हमें माया का ऐसा खेल दिखाया है, जिसमें बैठे-बैठे हम मूल मिलावा को देख रहे हैं।

भावार्थ- मूल मिलावा को दो प्रकार से देखा जाता है—
१. ब्रह्मवाणी के चिन्तन से ज्ञान-दृष्टि द्वारा, २. चितवनि में आत्मिक दृष्टि से।

ऐसे किए हमें इलमें, कोई छिपी न रही हकीकत।
जाहेर गुझ सब अर्सों की, ऐसी पाई हक मारफत॥१२॥
तारतम वाणी ने हमें ऐसी स्थिति में पहुँचा दिया है कि आध्यात्मिक ज्ञान की कोई भी बात हमसे छिपी नहीं है। हमने अक्षरातीत के पूर्ण स्वरूप (मारिफत, परम सत्य) की पहचान कर ली है, जिसमें तीनों धामों की गुह्यतम

बातें विदित हो गयी हैं।

भावार्थ— ब्रह्मवाणी द्वारा श्री राज जी के पूर्ण स्वरूप की पहचान हो जाने पर परमधाम की निस्बत (मूल सम्बन्ध), खिल्वत (लीला स्थान), वहदत (एकत्व), इश्क (प्रेम) आदि की हकीकत तथा मारिफत के सभी रहस्य विदित हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त योगमाया के चारों पादों एवं क्षर सृष्टि से सम्बन्धित उन अनसुलझे प्रश्नों का भी वास्तविक समाधान प्राप्त हो जाता है, जो सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर आज दिन तक नहीं हो सका था।

हम झूठी जिमी बीच बैठ के, करें जाहेर हक सूरत।

एही ख्वाब के बीच में, बताए दई वाहेदत॥१३॥

हम ब्रह्मवाणी द्वारा इस नश्वर संसार में रहकर भी

अक्षरातीत के अखण्ड स्वरूप का वर्णन कर रहे हैं। इस ब्रह्मवाणी ने ही हमें इस सपने के संसार में परमधाम की एकदिली की पहचान करायी है।

तो ए झूठी जिमी कायम हुई, ऐसी हक बरकत।

जानें आगूं कह्या रसूलने, देसी हम सबों भिस्त॥१४॥

धाम धनी की ऐसी कृपा हुई कि इस झूठी दुनिया को भी अखण्ड मुक्ति मिल गयी। रसूल मुहम्मद साहिब ने तो बहुत पहले ही कह दिया था कि कियामत के समय मैं अपने भाइयों (मोमिनों, ब्रह्ममुनियों) के साथ आऊँगा और हम सभी मिलकर इस संसार को बहिश्तों में अखण्ड मुक्ति देंगे।

भावार्थ— वैसे तो महाप्रलय के पश्चात् ही सभी जीव अखण्ड होंगे, किन्तु इस चौपाई में भूतकाल का कथन

भविष्य के लिये किया गया है। अक्षरातीत ने अपने दिल में सभी को अखण्ड मुक्ति देने की जो बात ली है, वह शाश्वत सत्य है, इसलिये श्री राज जी के दिल की बात होने से भूतकाल में कथन किया गया है।

इलमें ऐसे बेसक किए, इत बैठे पाइए सुध।

हम इत आए बिना, देखी खेल की सब विध॥१५॥

ब्रह्मवाणी ने हमें इस प्रकार संशयरहित कर दिया है कि इस संसार में रहते हुए भी हमें परमधाम की सारी पहचान है। इसी प्रकार परमधाम से सशरीर हम संसार में नहीं आये हैं, फिर भी धाम धनी के दिल रूपी पर्दे पर हमने इस खेल की सारी वास्तविकता को जान लिया है (देख लिया है)।

हम तेहेकीक रूहें अर्स की, इन इलमें किए बेसक।

ए देख्या खेल झूठा जान के, क्यों छोड़े बरनन हक॥१६॥

हम निश्चित रूप से परमधाम की आत्मायें हैं, इस बात में ब्रह्मवाणी से हम पूर्ण रूप से संशयरहित हो गये हैं। जब हमारी दृष्टि में यह संसार ही झूठा है, तो हम अपने प्राणप्रियतम की शोभा-श्रृंगार का वर्णन क्यों छोड़ दें, अर्थात् हमें सर्वदा ही धाम धनी के स्वरूप के चिन्तन में लगे रहना चाहिए।

कह्या रसूलें फुरमान में, अर्स दिल मोमिन।

हम और क्यों केहेलाइए, बिना अर्स हक वतन॥१७॥

महम्मद साहिब ने कुरआन में कहा है कि मोमिनो (ब्रह्ममुनियों) का दिल ही खुदा का अर्श होता है। श्री राज जी और परमधाम के बिना हम अन्य किसी के कैसे

कहला सकते हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में यह बात दर्शायी गयी है कि आत्माओं के हृदय में मात्र अक्षरातीत और परमधाम की शोभा बसी होती है। इनके अतिरिक्त उनके हृदय में और कोई नहीं होता।

ताथें फेर फेर बरनन, करें हक बका सूरत।

हुकम इलम यों केहेवहीं, कोई और न या बिन कित॥१८॥

इसलिये हमें बारम्बार श्री राज जी की अखण्ड शोभा का वर्णन करना चाहिए। श्री राज जी के आदेश और तारतम ज्ञान (हुकम और इल्म) का यही कथन है कि इन अक्षरातीत के अतिरिक्त (बिना) और कहीं भी कोई हमारा प्रियतम नहीं है।

खिनमें सिनगार बदलें, करें नए नए रूप अनेक।

होत उतारे पेहेने बिना, ए क्यों कह्यो जाए विवेक॥१९॥

एक ही क्षण में श्री राज जी का श्रृंगार बदल जाता है। पल भर में नये-नये प्रकार के अनेक श्रृंगार दिखने लगते हैं। यह सारी लीला बिना पहने या उतारे ही होती रहती है। इस अद्भुत लीला का वर्णन भला किस विवेक से किया जाए।

हक सिनगार कीजे तो बरनन, जो घड़ी पल ठेहेराए।

एक पाव पलमें, कई रूप रंग देखाए॥२०॥

धाम धनी के श्रृंगार का वर्णन तो तब हो सकता है, जब वह एक पल या घड़ी भर के लिये स्थिर हो। एक पल के चौथाई भाग में ही श्रृंगार में अनेक प्रकार के रूप और रंग दिखायी देने लगते हैं।

और भी हक सरूप की, इन विध है बरनन।

रूह देखें नए नए सिनगार, जिन जैसी चितवन॥२१॥

श्री राज जी के स्वरूप-वर्णन की वास्तविकता यह है कि आत्माओं की जैसी इच्छा होती है, उन्हें उसी प्रकार के नये-नये श्रृंगार में धनी का स्वरूप दृष्टिगोचर होता है।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण में "चितवन" का आशय है- देखने की इच्छा। धाम धनी के श्रृंगार को किसी भी देश, प्रान्त, या सम्प्रदाय विशेष के श्रृंगार के बन्धन में नहीं बाँधा जा सकता।

ताथें बरनन क्यों करूं, किन विध कहूं सिनगार।

ए सोभा हक सूरत की, काहूं वार न पार सुमार॥२२॥

इसलिये मेरे सामने यह प्रश्न खड़ा होता है कि मैं धाम धनी का श्रृंगार कैसे कहूँ? पल-पल बदलने वाले इस

श्रृंगार का वर्णन क्यों करूँ? अक्षरातीत के इस नूरी स्वरूप की शोभा ही इतनी अद्भुत है कि उसका कोई माप (उपमा) नहीं हो सकता। वह अनन्तानन्त है।

झूठी जुबां के सब्दसों, और माएने लेना बका।

जो सहूर कीजे हक इलमें, तो कछू पाइए गुझ छिपा॥२३॥

मेरी रसना इस नश्वर संसार की है। इससे निकलने वाले शब्दों से मुझे अखण्ड परमधाम की शोभा एवं लीला सम्बन्धी गुह्य रहस्यों को उजागर करना है। हे साथ जी! यदि आप तारतम वाणी के प्रकाश में चिन्तन करें, तो आप परमधाम के कुछ छिपे हुए रहस्यों को जान सकते हैं।

इलम होवे हक का, और हुकम देवे सहूर।

होए जाग्रत रूह वाहेदत, कछू तब पाइए नूर जहूर॥२४॥

यदि धाम धनी के आदेश (हुकम) से ब्रह्मवाणी के ज्ञान का गहन चिन्तन हो तथा आत्मा चितवनि में डूबकर परमधाम की एकदिली की दृष्टि से जाग्रत हो जाये, तब श्री राज जी के नूरी स्वरूप की आभा का कुछ साक्षात्कार (अनुभव) किया जा सकता है।

भावार्थ- केवल ज्ञान दृष्टि से ही धाम धनी के नूरी स्वरूप का अनुभव होना सम्भव नहीं है। ब्रह्मवाणी के ज्ञान को ग्रहण करने के पश्चात् जब आत्मा चितवनि की गहराइयों में उतरती है, तो उसके अन्तःकरण में युगल स्वरूप की छवि बसने लगती है। यहीं से उसकी आत्म-जाग्रति की वास्तविक राह प्रारम्भ होती है।

जब उसकी आत्मा के अन्तःकरण में परात्म के

अन्तःकरण की तरह युगल स्वरूप की छवि अखण्ड हो जाती है, तो आत्मा वहदत की दृष्टि से जाग्रत हो जाती है। इस अवस्था में उसे युगल स्वरूप सहित अपनी परात्म तथा परमधाम की नूरी शोभा का साक्षात्कार होता है। इस अवस्था को प्राप्त होने वाली आत्मा ही नूरी स्वरूप को यथार्थ रूप से जान सकती है। सागर ११/४४ में इस सम्बन्ध में कहा गया है—

अन्तस्करण आत्म के, जब ए रह्यो समाए।

तब आत्म परआत्म के, रहे ने कछु अन्तराए॥

ए सुपन देह पांच तत्व की, वस्तर भूखन उपले ऐसे हैं।

अर्स रूह सूरत को, मुहकक पेहेनावा क्या कहे॥२५॥

मेरा यह स्वप्नमयी शरीर पाँच तत्व का है। यहाँ के बाह्य वस्त्र और आभूषण भी पञ्चभूतात्मक हैं। मैं परमधाम की

आत्माओं के स्वरूप को जानकर भी उनके द्वारा धारण किये जाने वाले पहनावों का दृढ़तापूर्वक कैसे वर्णन करूँ।

रूह सूरत नहीं तत्व की, जो वस्तर पेहेन उतारे।

नूर को नूर जो नूर है, कौन तिनको सिनगारे॥२६॥

परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों का स्वरूप पाँच तत्व का नहीं है, जो वस्त्रों को पहना और उतारा करें। नूर के नूर का भी जो नूर है, भला उनका श्रृंगार कौन कर सकता है।

भावार्थ— नूर के नूर का नूर के सम्बन्ध में सनन्ध ३९/३०, ३२, ३६, ३७, ५३ में स्पष्ट विवेचना की गयी है—

हृद सद्द दुनी में रह्या, पोहोंच्या नहीं नूर रास।

तो क्यों पोहोंचे असल नूर को, जिनकी ए पैदास॥

नूर रास भी बरन्यो ना गयो, तो भिस्त बरनन क्यों होए।

बोहोत बड़ी तफावत, रास भिस्त इन दोए॥

रास भिस्त या जो कछू, ए सब पैदा असल नूर।

तिन असल नूर की क्यों कहूं, जो द्वार आगूं हजूर॥

ए जो नूर मकान आगूं अर्स के, नूर बका असल।

ए रूहें असलू कानों सुनियो, असल तनों के दिल॥

पेहेले कह्या नूर मकान जो, सो नूर मांहे वाहेदत।

हक हादी रूहें खिलवत, ए वाहेदत सब निसबत॥

इस कथन का यह आशय है कि रास मण्डल का नूर सत्स्वरूप के नूर से है और सत्स्वरूप का नूर अक्षर धाम के नूर की लहर है। अक्षर धाम परमधाम की वहदत के अन्दर है, जिसमें पाँचों स्वरूप श्री राजश्यामा जी , सखियाँ, अक्षर ब्रह्म, और महालक्ष्मी हैं।

इस प्रकार "नूर के नूर का नूर" का आशय है- रास के नूर एवं सत्स्वरूप के भी नूर से परे परमधाम का नूर।

पेहेले दृढ़ कर हक सूरत, ए अंग किन नूर के।

हक जातके निसबती, बका मोमिन समझें ए॥२७॥

हे मेरी आत्मा, सबसे पहले तू इस बात का दृढ़तापूर्वक विचार कर कि श्री राज जी का स्वरूप किस नूर का है? अक्षरातीत के अङ्गरूप वे ब्रह्ममुनि, जिनका परमधाम से अखण्ड सम्बन्ध है, वे ही इस बात को यथार्थ रूप से जानते हैं।

भावार्थ- श्री राज जी का दिल ही उनके नख से शिख तक में सुशोभित हो रहा है। इस प्रकार उनके दिल का नूर (प्रेम, सौन्दर्य, कान्ति, आभा, आनन्द) ही नख से शिख तक दृष्टिगोचर हो रहा है। श्रृंगार २०/३४ में स्पष्ट

रूप से कहा गया है कि "जो गुन हक के दिल में, सो मुख में देखाई देत।"

छान्दोग्योपनिषद ६/१३/१-३७ में श्वेतकेतु को सम्बोन्धित करते हुए उद्यालक मुनि कहते हैं कि जिस प्रकार जल में घुला हुआ नमक समान रूप से सर्वत्र (ऊपर, नीचे, या मध्य में) विद्यमान होता है, उसी प्रकार परब्रह्म का स्वरूप भी एकरस है।

इस आधार पर श्री राज जी का ही नूरी स्वरूप श्यामा जी, सखियों, महालक्ष्मी, अक्षर ब्रह्म आदि के रूप में सर्वत्र लीला कर रहा है। सबकी शोभा समान है, तभी उसे स्वलीला अद्वैत या वहदत कहते हैं।

अनेक सन्तों और परमहंसों के द्वारा अक्षर ब्रह्म की अपेक्षा श्री राज जी को अधिक शोभा और तेज से युक्त कहने का कारण मूल सम्बन्ध का प्रेम है। जिससे प्रेम

होता है, स्वाभाविक रूप से वह सबसे सुन्दर लगता है। सागर-श्रृंगार ग्रन्थ में श्री राज जी के जिस अंग या आभूषण की शोभा का वर्णन किया गया है, उसे ही सबसे अधिक सुन्दर कहा गया है तथा उसकी नूरी ज्योति को आकाश में सर्वत्र फैले हुए दर्शाया गया है। परिक्रमा ३/८ में अक्षर ब्रह्म और अक्षरातीत को समान स्वरूप वाला कहा गया है— "स्वरूप एक हैं लीला दोए।" श्रृंगार २०/४९ में भी कहा गया है कि "सोई सरूप है नूर का, सोई सूरत हादी जान।"

नूर सोभा नूर जहूर, और न सोभा इत।

देखो अर्स तन अकलें, ए सरूप वाहेदत॥२८॥

अक्षरातीत की शोभा नूरमयी है। उनके स्वरूप से सर्वदा नूरी ज्योति चारों ओर फैलती रहती है। नूर के अतिरिक्त

यहाँ अन्य किसी की शोभा नहीं है। हे साथ जी! अपने परात्म के तन तथा वहाँ की बुद्धि से वहदत (एकदिली) के स्वरूप श्री राज जी की शोभा को देखिए।

भावार्थ- परात्म के तन और बुद्धि से धाम धनी की शोभा को देखने का भाव है- परात्म का श्रृंगार सजकर। यह प्रसंग चितवनि का है, जिसमें आत्मा परात्म का श्रृंगार सजती है और अपने प्राण प्रियतम का दीदार करती है। सागर ७/४९ में कहा गया है-

जो मूल सरूप हैं अपने, जाको कहिए परआतम।

सो परआतम संग लेय के, विलसिए संग खसम॥

इस संसार में आत्म-दृष्टि से ही देखा जायेगा, किन्तु परात्म के श्रृंगार में। जब तक जागनी लीला चल रही है, तब तक परात्म से देखना सम्भव नहीं है, क्योंकि परात्म के तनों में फरामोशी है और उनमें जाग्रति एक साथ ही

होगी।

नाजुकी इन सरूप की, और अति कोमलता।

सो इन अंग जुबां क्या कहे, नूरजमाल सूरत बका॥२९॥

श्री राज जी का अखण्ड स्वरूप अत्यन्त सुकुमार और कोमल है। इसकी सुकुमारता और कोमलता का वर्णन यहाँ की बुद्धि और जिह्वा से नहीं हो सकता।

द्रष्टव्य— अंग (अन्तःकरण) से तात्पर्य मन—बुद्धि से है।

जैसी सरूप की नाजुकी, तैसी सोभा सलूक।

चकलाई चारों तरफों, दिल देख न होए टूक टूक॥३०॥

धाम धनी का स्वरूप जिस प्रकार सुकुमार है, उसी प्रकार उसकी शोभा और सुन्दरता भी है। उनके सभी

अंगों की अद्वितीय बनावट को देखकर भी यह दिल टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो जाता, यह बहुत ही आश्चर्य का विषय है।

आसिक अपने सौक को, विध विध सुख चहे।

सोई विध विध रूप सरूप के, नई नई लज्जत लहे॥३१॥

ब्रह्मसृष्टियों (आशिकों) के दिल में यह चाहना होती है कि धाम धनी के प्रेम में हमें अनेक प्रकार के सुख मिलें। उनकी इच्छा को पूर्ण करने के लिये धाम धनी अनेक प्रकार के रूप धारण करके नये-नये सुखों का रसास्वादन कराते हैं।

भावार्थ- सखियाँ आशिक के रूप में अपने प्राण प्रियतम को रिझाती हैं। वे पल-पल अलग-अलग रूपों में उनको देखना चाहती हैं। आशिक की यह स्वाभाविक

प्रवृत्ति ही होती है कि वह अपने माशूक को सौन्दर्य की पराकाष्ठा पर नित्य-नवीन रूप में देखना चाहता है। धाम धनी उनकी इस इच्छा को पूर्ण करके उन्हें आनन्द देते हैं।

दिल रूहें बारे हजार को, रूप नए नए चाहे दम दम।

देँ चाह्या सरूप सबन को, इन विध कादर खसम॥३२॥

बारह हजार सखियों के दिल में यही इच्छा होती है कि वे श्री राज जी को पल-पल नये-नये रूप में देखें। धाम धनी इतने सामर्थ्यवान हैं कि वे सबकी इच्छानुसार रूप धारण करके सुख देते हैं।

रूहें दिल सब एकै, नए नए इस्क तरंग।

पिएं प्याले फेर फेर, माहों माहें करें प्रेम जंग॥३३॥

सभी आत्माओं का दिल एक है अर्थात् सबमें श्री राज जी का ही दिल लीला कर रहा है। उनके हृदय में प्रेम की नई-नई तरंगें उमड़ती रहती हैं। वे बार-बार धाम धनी के प्रेम को अपने हृदय रूपी प्यालों में भर-भरकर पीती हैं तथा अपने प्रियतम को अधिक से अधिक रिझाने के लिये आपस में प्रेम की होड़ रूपी युद्ध करती हैं।

भावार्थ- परमधाम में प्रत्येक स्वरूप श्री राज जी का आशिक है। सभी आत्मायें अपने प्राणवल्लभ पर अपना सब कुछ न्योछावर कर देती हैं और अपना अस्तित्व भी भूल जाती हैं। उनमें आपस में धनी पर अधिक से अधिक न्योछावर होने की होड़ मची रहती है। इसी को प्रेम का युद्ध कहते हैं।

ए बारीक बातें अर्स की, बिन मोमिन न जाने कोए।

मोमिन भी सो जानहीं, जाको आई फजर खुसबोए॥३४॥

परमधाम के प्रेम की ये गुह्य बातें हैं, जिन्हें ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं जानता। इनमें भी मात्र वही आत्मायें जान पाती हैं, जिनके हृदय में तारतम ज्ञान की सुगन्धि आ चुकी होती है अर्थात् उनके हृदय में ब्रह्मवाणी के ज्ञान से उजाला हो चुका होता है।

जो कछू बीच अर्स के, पसु पंखी नंग बन।

सोभा बानी कोमल, खुसबोए रंग रोसन॥३५॥

परमधाम के वनों में जो पशु-पक्षी हैं, वे जवाहरातों के नगों के हैं। ये सभी अनन्त शोभा वाले हैं, सुगन्धि से भरपूर हैं, तथा अलौकिक रंगों से जगमगा रहे हैं। इन पशु-पक्षियों की बोली में बहुत कोमलता है।

मैं नरमाई एक फूल की, जोड़ देखी रूह देह संग।

क्यों जुड़े जिमी सोहोबती, सोहोबत जात हक अंग॥३६॥

मैंने इस संसार के एक अति कोमल फूल की तुलना ब्रह्मसृष्टियों के परमधाम वाले तन से करनी चाही। अक्षरातीत की अँगरूपा अँगनाओं के तन की उपमा भला इस झूठे संसार के फूलों से कैसे दी जा सकती है।

क्यों कर आवे बराबरी, खावंद और खेलौने।

ए मुहकक क्या विचारहीं, जाहेर तफावत इनमें॥३७॥

इसी प्रकार पशु-पक्षी रूपी खिलौनों तथा श्री राज जी की शोभा की बराबरी कैसे की जा सकती है। इनमें जो प्रत्यक्ष रूप से अन्तर है, उसके बारे में संसार के लोग भला दृढ़तापूर्वक क्या विचार कर सकते हैं।

भावार्थ- यद्यपि परमधाम की एकदिली में सभी समान

हैं, किन्तु लीला रूप में धाम धनी की शोभा सर्वोपरि है,
क्योंकि वे मारिफत (परम सत्य) के स्वरूप हैं—

और खेलौने जो हक के, सो दूसरा क्यों केहेलाए।

एक जरा कहिए तो दूसरा, जो हक बिना होए इमदाए॥

खुलासा १६/८४

खुलासा ग्रन्थ के इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि परमधाम में सभी कुछ सच्चिदानन्दमयी है, जिसमें कम या अधिक का प्रश्न नहीं होता। अक्षरातीत लीला रूप में सबके माशूक हैं और सबके दिल के मारिफत स्वरूप हैं, इसलिये उनका स्वरूप सबसे सुन्दर माना जायेगा।

ए चीजें कही सब अर्स की, लीजे माहें सहूर कर।

ए खेलौने रूहन के, नहीं खावंद बराबर॥३८॥

हे साथ जी! आप इस बात का चिन्तन कीजिए कि

परमधाम के जिन पशु-पक्षियों की अनुपम शोभा का वर्णन किया गया है, वे सखियों के खिलौने हैं। इनकी शोभा धाम धनी की शोभा के बराबर नहीं मानी जा सकती।

अर्स चीज भी लीजे सहूर में, जिन अर्स खावंद हक।

इन अर्स की एक कंकरी, उड़ावे चौदे तबक॥३९॥

परमधाम की इन वस्तुओं का चिन्तन कीजिए, जिनके प्रियतम अक्षरातीत हैं। परमधाम की एक कंकड़ी के तेज के समक्ष चौदह लोक का यह ब्रह्माण्ड रहेगा ही नहीं।

भावार्थ— इस चौपाई में यह बात दर्शायी गयी है कि जब परमधाम की एक कंकड़ी में जब इतना तेज है, तो वहाँ के पशु-पक्षी कितने सुन्दर होंगे।

इत बैठ झूठी जिमी में, झूठी अकल झूठी जुबान।

अर्स चीज मुकरर क्यों होवहीं, जो कायम अर्स सुभान॥४०॥

हम इस झूठे संसार में बैठे हैं, जहाँ माया की बुद्धि है और माया की ही रसना है। इनसे धाम धनी के अखण्ड परमधाम के लीला रूपी पदार्थों तथा पशु-पक्षियों की शोभा का वर्णन भला कैसे हो सकता है।

अर्स चीज न आवे इन अकलें, तो क्यों आवे रूह मूरत।

जो ए भी न आवे सहूर में, तो क्यों आवे हक सूरत॥४१॥

जब इस बुद्धि से परमधाम की लीला रूपी वस्तुओं (खिलौनों) की शोभा का वर्णन नहीं हो सकता, तो ब्रह्मसृष्टियों की शोभा का वर्णन कैसे हो सकता है। जब सखियों की शोभा चिन्तन में नहीं आ सकती, तो श्री राज जी की शोभा का निरूपण (वर्णन) कैसे हो सकता

है।

एक रूहें और खेलौने, देख इत भी तफावत।

सूरत हक हादी रूहें, देख जो कहावें वाहेदत॥४२॥

हे मेरी आत्मा! तू सबसे पहले पशु-पक्षी रूपी खिलौनों तथा ब्रह्मसृष्टियों की शोभा में अन्तर देख। पुनः श्री राजश्यामा जी एवं सखियों की शोभा को देख, जो वहदत (एकत्व) के स्वरूप हैं।

भावार्थ- हकीकत की दृष्टि से सखियों तथा पशु - पक्षियों की शोभा में अन्तर अवश्य है, किन्तु मारिफत की दृष्टि से नहीं, क्योंकि इनके अन्दर भी धनी का वही स्वरूप विराजमान है जो सखियों के अन्दर है। इसी प्रकार युगल स्वरूप तथा सखियों में सभी एक-दूसरे को अति सुन्दर दिखायी पड़ते हैं, क्योंकि सभी एक-दूसरे

के आशिक हैं। मारिफत की दृष्टि से इनकी भी शोभा बराबर ही होगी।

बका चीज जो कायम, तिन जरा न कबूं नुकसान।

जेती चीज इन दुनी की, सो सब फना निदान॥४३॥

परमधाम की प्रत्येक वस्तु अखण्ड है। उसके स्वरूप में कभी कोई क्षति नहीं होती। इसके विपरीत इस संसार में जितनी भी वस्तुएँ हैं, निश्चित रूप से नष्ट होने वाली हैं।

जेती चीज अर्स में, न होए पुरानी कब।

नुकसान जरा न होवहीं, ए लीजे सहूर में सब॥४४॥

हे साथ जी! आप सभी इस बात का विचार कीजिए कि परमधाम में जो भी वस्तु है, वह न तो कभी पुरानी होती है और न उसके स्वरूप में कोई क्षति पहुँचती है।

तो हक अर्स है कहा, ए चौदे तबक जरा नाहें।

जो नाहीं सो है को क्या कहे, तार्थें आवत न सब्द माहें॥४५॥

इसलिये अक्षरातीत के परमधाम को अखण्ड कहा गया है। उसके समक्ष (सामने) तो चौदह लोक का यह ब्रह्माण्ड कुछ है ही नहीं। महाप्रलय में लय हो जाने वाले प्राणी (मनुष्य, देवता) भला अखण्ड परमधाम का वर्णन कैसे कर सकते हैं। यही कारण है कि परमधाम का आज तक शब्दों में वर्णन नहीं हो सका है।

भावार्थ- अक्षरातीत का आवेश जीव सृष्टि या ईश्वरी सृष्टि पर नहीं आ सकता। बिना आवेश के परमधाम या युगल स्वरूप का वर्णन हो नहीं सकता। इस प्रकार ब्रह्मसृष्टियों के इस संसार में आये बिना परमधाम के वर्णन का प्रश्न ही नहीं था।

जेती चीजें अर्स की, जोत इस्क मीठी बान।

खूबी खुसबोए हक चाहेल, तहां नजीक ना नुकसान॥४६॥

परमधाम में लीला रूपी जो भी वस्तुएँ हैं, उनमें नूरी ज्योति, प्रेम, और मधुर वाणी का रस भरा हुआ है। धनी की इच्छानुसार उनमें मोहक सुगन्धि की विशिष्टता भी होती है। क्षति (जीर्णता) तो उनके पास भी नहीं फटकती।

नूर और नूरतजल्ला, कहे महंमद दो मकान।

दोए सूरतें जुदी कही, ताकी रूहअल्ला दर्ई पेहेचान॥४७॥

मुहम्मद साहिब ने दो अखण्ड धामों— अक्षर धाम और परमधाम— का वर्णन किया है। इन दोनों धामों में विराजमान अक्षर तथा अक्षरातीत का भी उन्होंने कथन किया है। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने तारतम ज्ञान

द्वारा इन दोनों स्वरूपों तथा धामों की स्पष्ट पहचान करायी है।

नाजुक नरम तेज जोत में, सलूकी सोभा मीठी जुबान।

सुन्दर सरूप खुसबोए सों, पूरन प्रेम सुभान॥४८॥

श्री राज जी का स्वरूप अति सुकुमार, कोमल, नूरी, तेज और ज्योति से भरपूर है। इनकी सुन्दरता, शोभा, और मधुर वाणी अत्यन्त मनमोहक है। श्री राज जी का यह अति सुन्दर स्वरूप सुगन्धि और पूर्ण (अनन्त) प्रेम से भरा हुआ है।

सोई सरूप है नूर का, सोई सूरत हादी जान।

रुहें सूरत वाहेदत में, ए पूरन इस्क परवान॥४९॥

अक्षरातीत की तरह ही अक्षर ब्रह्म का भी वही स्वरूप

है। इसी प्रकार की नूरी शोभा श्यामा जी की भी समझनी चाहिए। सखियों का स्वरूप श्यामा जी की तरह है। निश्चित रूप से श्यामा जी सहित सभी सखियों में पूर्ण प्रेम (इश्क) भरा हुआ है।

भावार्थ- इस चौपाई के पहले चरण में "सोई" शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ होता है "वही" या "वैसा ही"। यदि इस चौपाई में अक्षरातीत के स्वरूप का वर्णन होता, तो "सोई" के स्थान पर "जो" शब्द का प्रयोग होता। इस चौपाई से पूर्व ४८वीं चौपाई में श्री राज जी के स्वरूप का वर्णन किया ही गया है, इसलिये इस चौपाई में सोई शब्द से अक्षर ब्रह्म के लिये ही संकेत है।

इन दोनों चौपाइयों में यही बात दर्शायी गयी है कि श्यामा जी तथा सखियों का स्वरूप समान है। इसी प्रकार अक्षर तथा अक्षरातीत का भी स्वरूप समान है।

अन्तर केवल इतना है कि अक्षर ब्रह्म में प्रेम के स्थान पर सत्ता का रस है। इसी सन्दर्भ में यह भी कहा जा सकता है कि वहदत के सिद्धान्त के अनुसार महालक्ष्मी का स्वरूप भी श्यामा जी जैसा है।

हक सूरत अति सोहनी, दोऊ जुगल किसोर।

गौर मुख अति सुन्दर, ललित कोमल अति जोर॥५०॥

श्री राज जी का स्वरूप अति सुन्दर है। किशोर अवस्था वाले श्री राजश्यामा जी का गौर मुख अत्यधिक रूप से सुन्दर, मनमोहक, और बहुत कोमल है।

और रुहों की सूरतें, जो असल अर्स में तन।

सो सहूर कीजे हक इलमें, देखो अपना तन मोमिन॥५१॥

आत्माओं के मूल तन परात्म हैं, जो परमधाम में

विद्यमान हैं। हे साथ जी! ब्रह्मवाणी के ज्ञान से इसका चिन्तन कीजिए और चितवनि द्वारा परमधाम (मूल मिलावा) में विद्यमान अपने मूल तन को देखिए।

खूबी खुसाली न आवे सब्द में, ना रंग रस बुध बान।

कोई न आवे सोभा सब्द में, मुख अर्स खावंद मेहेरबान॥५२॥

आनन्द और प्रेम से भरे हुए तुम्हारे स्वरूपों के सौन्दर्य, बुद्धि, तथा मधुर वाणी आदि विशिष्टताओं का वर्णन करने की शक्ति यहाँ के शब्दों में नहीं है। ऐसी स्थिति में परमधाम के प्रियतम, मेहर के सागर अक्षरातीत के मुखारविन्द की शोभा का वर्णन भला शब्दों में कैसे हो सकता है।

जैसी है हक सूरत, और तिन वस्तर भूखन।

जो सोभा देत इन सूरतें, सो क्यों कहे जाए जुबां इन॥५३॥

श्री राज जी की जैसी नूरी शोभा है, वैसी ही शोभा उनके वस्त्रों एवम् आभूषणों की भी है। धनी के स्वरूप में शोभा देने वाले इन वस्त्रों तथा आभूषणों की शोभा का वर्णन यहाँ की जिह्वा से कैसे हो सकता है, कदापि नहीं।

दिल में जानों दे निमूना, समझाऊं रूहों को।

खूबी दुनी की देख के, लगाए देखों अर्स सों॥५४॥

मेरे दिल में यह इच्छा होती है कि मैं इस संसार की अच्छी से अच्छी वस्तुओं का चयन करूँ तथा परमधाम की शोभा से उनकी उपमा देकर ब्रह्मसृष्टियों को वहाँ की शोभा बताऊँ।

हक अंग कैसे बरनवूं, इन झूठी जुबां के बल।

बका अंग क्यों कर कहूं, यों फेर फेर कहे अकल॥५५॥

मैं इस झूठी जिह्वा के बल से श्री राज जी के अंगों की अनुपम शोभा का कैसे वर्णन करूँ। बारम्बार मेरी बुद्धि यही कह रही है कि मैं प्रियतम अक्षरातीत के नूरी अंगों की शोभा को कैसे कह सकती हूँ।

रूप रंग इत क्यों कहिए, ले मसाला इत का।

ए सुकन सारे फना मिने, हक अंग अर्स बका॥५६॥

इस संसार की सुन्दर वस्तुओं के दृष्टान्त से श्री राज जी के अंगों के रूप-रंग का कैसे वर्णन किया जा सकता है। शोभा के कथन में प्रयुक्त होने वाले सभी शब्द तो इस नश्वर संसार की वस्तुओं से सम्बन्धित हैं, जबकि श्री राज जी के अंग तो अखण्ड परमधाम के हैं।

रूप रंग गौर लालक, कहूं नूर जोत रोसन।

ए सब्द सारे ब्रह्मांड के, अर्स जरा उड़ावे सबन॥५७॥

यदि मैं धाम धनी के अंगों के रूप -रंग के कथन में लालिमा युक्त गौर वर्ण, नूरी ज्योति, एवं प्रकाश आदि शब्दों का प्रयोग करती हूँ, तो ये सभी शब्द इस नश्वर ब्रह्माण्ड के हैं। परमधाम का एक कण ही इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अपने तेज से ओझल कर देगा।

गौर हक अंग केहेत हों, ए गौर रंग लाहूत।

और कहूं सोभा सलूकी, ए छबि है अदभूत॥५८॥

यदि मैं श्री राज जी के अंगों को गोरा कहती हूँ, तो उसे परमधाम का ही गोरा रंग समझना चाहिए, संसार का नहीं। जिन अंगों की शोभा-सुन्दरता का मैं वर्णन करती हूँ, वह शोभा तो आश्चर्य में डालने वाली है।

चकलाई हक अंगों की, रूप जाने अरवा अर्स।

रूह जागी जाने खेल में, जो हुई होए अरस परस॥५९॥

प्रियतम अक्षरातीत के नूरी अंगों की संरचना और उनके रूप को तो परमधाम की वे आत्मायें ही जानती हैं, जिन्होंने इस संसार में भी अपने धाम हृदय में युगल स्वरूप को बसा लिया है और जाग्रत होकर प्रियतम से एकाकार हो चुकी हैं।

जो रूह जगाए देखिए, तो ठौर नहीं बोलन।

जो चुप कर रहिए, तो क्या लें आहार मोमिन॥६०॥

यदि अपनी आत्मा को जाग्रत करके अर्थात् अपने धाम हृदय में उनकी शोभा को बसाकर उनका दीदार किया जाता है तथा वर्णन करने का प्रयास किया जाता है, तो यह सम्भव नहीं हो पाता। यदि चुप रहा जाता है, तो भी

यह प्रश्न खड़ा होता है कि ब्रह्ममुनियों को आत्मिक आहार कैसे मिले?

भावार्थ- पूर्ण दीदार से पूर्व हृदय में प्रियतम की शोभा को आत्मसात् किया (बसाया) जाता है। यद्यपि दीदार के पश्चात् ही पूर्ण जागनी मानी जाती है, क्योंकि शृंगार ४/७२ में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि "हक आए दिल अर्स में, रुह जागे के एही निसान।" इसलिये इस चौपाई के पहले चरण में आत्मा की जाग्रति का तात्पर्य ज्ञान दृष्टि से जाग्रत होकर अपने हृदय में प्रियतम की शोभा को आत्मसात् करने से है। पूर्ण जागनी दर्शन के पश्चात् ही मानी जायेगी।

मैं देख्या दिल विचार के, सुनियो तुम मोमिन।

देऊं निमूना दुनी अर्स का, तुम देखियो दिल रोसन॥६१॥

हे साथ जी! आप सभी मेरी इस बात को सुनिए। मैंने अपने हृदय में इस बात का विचार करके निर्णय लिया है कि मैं इस संसार की अति सुन्दर वस्तुओं की उपमा देकर परमधाम में विराजमान श्री राज जी के अंगों की शोभा का वर्णन करूँ। उसे आप सभी तारतम ज्ञान के प्रकाश में अपने दिल में देखिए।

कही कोमलता कमलन की, और जोत जवेरन।

रंग सुरंग जानवरों, कई स्वर मीठी जुबां इन॥६२॥

इस संसार में कमल के फूल की बहुत अधिक कोमलता तथा जवाहरातों की ज्योति (चमक) का वर्णन किया जाता है। इसके अतिरिक्त अति सुन्दर रंग-रूप वाले पशु भी हैं, जो अनेक प्रकार के स्वरों में बहुत मीठी वाणी बोलते हैं।

कई खुसबोई माहें पंखियों, कई खुसबोए माहें फूलन।

कई सोभा पसु पंखियों, कई नरमाई परन॥६३॥

इस संसार में अनेक प्रकार की सुगन्धि वाले पक्षी हैं, तो अनेक प्रकार की सुगन्धि वाले फूल हैं। पशु-पक्षियों में अनेक प्रकार की शोभा है। अनेक पक्षियों के पंखों में बहुत कोमलता है।

भावार्थ- गुलाब, चमेली, केवड़ा, रात की रानी आदि के फूल बहुत सुगन्धित होते हैं। इसी प्रकार मोर, ब्राह्मणी बत्तख, पीलक, नवरंग, तोते, राज हंस, नीलकण्ठ, सुल्तान बुल्बल आदि अति सुन्दर पक्षी हैं। हिमालय आदि बर्फीले प्रदेशों में रहने वाले पशु-पक्षियों के बाल बहुत कोमल होते हैं।

फूल कमल कई पसम, कैसी कोमल दुनी इन।

फूल अत्तर चोवा मुस्क, और जोत हीरा जवेरन॥६४॥

इस संसार में कमल आदि अनेक प्रकार के फूलों तथा रेशम आदि को बहुत कोमल माना जाता है। फूलों के इत्र, सुगन्धित तेल (चोवा), तथा कस्तूरी आदि को बहुत सुगन्धित पदार्थ के रूप में देखा जाता है। इसी प्रकार हीरे आदि जवाहरातों को ज्योति की तरह चमकीले पदार्थों में जाना जाता है।

देखो प्रीत पसुअन की, और देखो प्रीत पंखियन।

एक चलें दूजा ना रहे, जीव जात माहें खिन॥६५॥

हे साथ जी! इस झूठे संसार के पशु-पक्षियों की आपसी प्रीति को तो देखिए। इनमें भी आपस में इतना लगाव होता है कि यदि एक तन छोड़ देता है, तो दूसरा

भी उसी क्षण अपने प्राण त्याग देता है।

भावार्थ— बजरीगर (Love birds) ऐसे पक्षी हैं, जिनमें से यदि किसी एक को अलग कर दिया जाये (भले ही वह जीवित हो), तो दोनों ही तड़प-तड़प कर प्राण छोड़ देते हैं। उनकी सारी दिनचर्या साथ ही साथ चलती है और वे थोड़े समय के लिये भी एक-दूसरे से अलग नहीं होते।

छोटे बड़े जीव कई रंग के, जानों के देह कुंदन।

कई नकस कई बूटियां, कई कांगरी चित्रामन॥६६॥

इस संसार में कुछ छोटे तो कुछ बड़े आकार के अनेक रंगों वाले प्राणी रहते हैं। उनके शरीर ऐसे लगते हैं, जैसे वे शुद्ध सोने के बने हुए हैं। उनके शरीर पर अनेक प्रकार के बेल-बूटे, बूटियाँ, काँगरी, और सुन्दर-सुन्दर चित्र

अंकित होते हैं।

भावार्थ- चीतल, काला हिरण, चिंकारा, कस्तूरी मृग, स्वर्ण मत्स्य, सफेद खरगोश आदि बहुत सुन्दर प्राणी हैं। इसी प्रकार समुद्र के जल में भी अनेक प्रकार के बहुत सुन्दर प्राणी (१. तारा मत्स्य २. समुद्र पंखा ३. समुद्र फूल ४. वीनस ५. फूल की टोकरी ६. सागर गोटा ७. मृदुकाय ८. अष्टपद ९. मूँगा १०. डाल्फिन) निवास करते हैं।

इन भांत केती कहूं, कई खूबी बिना हिसाब।

ले खुलासा इन का, छोड़ दीजे झूठा ख्वाब॥६७॥

हे साथ जी! इस प्रकार मैं संसार के पशु-पक्षियों की शोभा का कितना वर्णन करूँ। इनमें अनन्त प्रकार की विशेषताएँ हैं। इनका वास्तविक ज्ञान प्राप्त करके स्वप्न

के इस झूठे संसार को छोड़ दीजिए और परमधाम में अपना ध्यान केन्द्रित कीजिए।

देख दुनी देखो अर्स को, कई रंगों सोभें जानवर।

सुख सनेह खूबी खुसाली, कई मुख बोलत मीठे स्वर॥६८॥

इस संसार को देखने के पश्चात् उस परमधाम को देखिए, जहाँ अनन्त रंगों के जानवर सुशोभित हो रहे हैं। ये अनन्त सुख, स्नेह, प्रसन्नता आदि विशेषताओं से भरपूर हैं और अपने मुख से अनेक प्रकार के मीठे स्वरों में बोला करते हैं।

जीव जल थल या जानवरों, कई केसों परन।

रंग खूबी देख विचार के, ले अर्स मसाला इन॥६९॥

इस संसार में चाहे जल में रहने वाले जीव हों या स्थल

पर रहने वाले प्राणी हों, सभी के बालों और पंखों के रंगों तथा उनकी शोभा की विशेषताओं का विचार करके परमधाम के पशु-पक्षियों की शोभा को देखिए।

इन विध मैं केती कहूं, रंग खूबी खुसबोए।

परों फूलों चित्रामन, कही प्रीत इनों की सोए॥७०॥

इस प्रकार मैं संसार के पशु-पक्षियों के रंगों तथा उनकी सुगन्धि आदि विशेषताओं का कितना वर्णन करूँ। उनके पंखों पर फूलों के सुन्दर-सुन्दर चित्र बने हुए हैं। इनके पारस्परिक गहन प्रेम का भी मैंने वर्णन कर दिया है।

इन विध देखो निमूना, ए झूठी जिमी का विचार।

तो कौन विध होसी अर्स में, जो सोभा वार न पार सुमार॥७१॥

इस प्रकार इस झूठे संसार की सुन्दरता की उपमा से परमधाम की शोभा का विचार कीजिए। जब इस संसार में इतने सुन्दर पशु-पक्षी हैं, तो उस स्वलीला अद्वैत परमधाम में कैसे होंगे। उनकी शोभा-सुन्दरता की तो कोई सीमा ही नहीं होगी।

एक देखी विध संसार की, और विध कही अर्स।

सांच आगे झूठ कछू नहीं, कर देखो दिल दुरुस्त॥७२॥

एक तरफ तो मैंने इस संसार की अति सुन्दर वस्तुओं की शोभा का वर्णन किया है, तो दूसरी ओर परमधाम की शोभा का वर्णन किया है। हे साथ जी! आप अपने दिल में अच्छी तरह विचार करके देखिए, तो यह स्पष्ट होगा कि उस अखण्ड परमधाम के सामने यह नश्वर (झूठा) जगत् कुछ है ही नहीं।

सांच भोम की कंकरी, उड़ावे जिमी आसमान।

कैसी होसी अर्स खूबियां, जो खेलौने अर्स सुभान॥७३॥

अखण्ड परमधाम की एक कंकड़ी भी यदि इस संसार में आ जाये, तो धरती और आकाश का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा। ऐसी स्थिति में यह सहज ही सोचा जा सकता है कि परमधाम में किस प्रकार की अलौकिक विशेषतायें होंगी और धाम धनी के खेलौने रूपी पशु-पक्षियों की शोभा कैसी होगी।

सो खूब खेलौने देखिए, इनों निमूना कोई नाहें।

सिफत इनों ना केहे सकों, मेरी इन जुबाएं॥७४॥

अब आप परमधाम के आनन्दमयी खेलौनों की शोभा को देखिए। संसार में इनकी उपमा किसी से भी नहीं दी जा सकती। मैं अपनी इस जिह्वा से इनकी महिमा का

वर्णन नहीं कर सकती।

कई जुगतेँ खूबियां, कई जुगतेँ सनकूल।

कई जुगतेँ सलूकियां, कई जुगतेँ रस फूल॥७५॥

इनमें कई प्रकार की विशेषतायें भरी हुई हैं। इनके अन्दर अनेक प्रकार की प्रसन्नता और सुन्दरता का निवास है। इनमें फूलों जैसी कोमलता, सुगन्धि, और कमनीयता (मनोहारिता) आदि रसों का भी समावेश है।

कई जुगतेँ चित्रामन, ऊपर पर केसन।

कई मुख मीठी बानियां, स्वर जिकर करें रोसन॥७६॥

इन पशु-पक्षियों के पँखों तथा बालों के ऊपर अनेक प्रकार के सुन्दर-सुन्दर चित्र बने हुए हैं। ये अपने मुख से बहुत ही मीठे स्वरों में धाम धनी की अनेक प्रकार से

चर्चा किया करते हैं।

जेती खूबियां अर्स की, सब देखिए जमाकर।

लीजे सब पेहेचान के, अंदर दिल में धर॥७७॥

हे साथ जी! परमधाम में जो भी विशेषतायें हैं, उन सभी को आप इन पशु-पक्षियों के अन्दर भी देखिए। इन सभी विशेषताओं की पूर्ण पहचान करके अपने धाम हृदय में बसा लीजिए।

भावार्थ- परमधाम के पशु-पक्षी भी उसी स्वलीला अद्वैत परब्रह्म के अंग स्वरूप हैं। यदि मारिफत (विज्ञान) की दृष्टि से देखा जाये, तो इन सभी में श्री राज जी का दिल ही लीला कर रहा है। इन पशु-पक्षियों को सांसारिक दृष्टि से कभी नहीं देखना चाहिए। अगली चौपाई में परमधाम की विशेषताओं का वर्णन किया गया

है।

रंग रस नूर रोसनी, सोभा सुन्दर खूबी खुसबोए।

तेज जोत कोमल, देख नरम नाजुकी सोए॥७८॥

हे मेरी आत्मा! तू परमधाम के आनन्द, प्रेम, नूरी, आभा, सुन्दरता, शोभा, सुगन्धि, तेज, ज्योति, कोमलता, और सुकुमारता आदि विशेषताओं को इन पशु-पक्षियों के अन्दर देख।

दिल अर्स खुलासा लेय के, और देख अर्स रूह अंग।

रूहों सरभर कोई आवे नहीं, खूबी रूप सलूकी रंग॥७९॥

अब तू अपने दिल में परमधाम की इस शोभा का विवरण लेकर परात्म के अंगों की शोभा को देख। इसके पश्चात् तुम्हें विदित हो जायेगा कि सौन्दर्य, रूप, रंग

आदि विशेषताओं में ब्रह्मसृष्टियों के बराबर कोई भी नहीं हो सकता।

खेल खावंद कैसी सरभर, जो रूहें अंग हादी नूर।

हादी नूर हक जातका, मोमिन देखें अर्स सहूर॥८०॥

परमधाम का चिन्तन करके ब्रह्ममुनि यह देखें (जानें) कि श्यामा जी तो श्री राज जी की नूर हैं और ब्रह्मसृष्टियाँ श्यामा जी के अंग (हृदय) की नूर स्वरूपा हैं। ऐसी स्थिति में इस खेल को दिखाने वाले अक्षरातीत श्री राज जी से किसी की तुलना कैसे हो सकती है।

भावार्थ— वहदत की दृष्टि से श्री राज जी, श्यामा जी, और सखियों की शोभा बराबर है, किन्तु मारिफत स्वरूप श्री राज जी के दिल की ही सारी लीला होने से उनसे किसी की भी तुलना नहीं हो सकती। जब उनके

अतिरिक्त परमधाम में और कोई दूसरा है ही नहीं, तो तुलना किससे?

सिफत ऐसी कही मोमिनों, जाके अक्स का दिल अर्स।
हक सुपने में भी संग कहे, रूहें इन विध अरस-परस॥८१॥
ब्रह्मसृष्टि की महिमा इतनी अधिक है कि उनकी प्रतिबिम्ब स्वरूपा आत्माओं के दिल को भी धाम कहा गया है। इस स्वप्न के संसार में भी श्री राज जी उनके धाम हृदय में विराजमान हैं। इस प्रकार आत्मा और धनी एक ही स्वरूप हो गये हैं।

भावार्थ- आत्मा परात्म की प्रतिबिम्ब स्वरूपा है। जिस तरह से परात्म का स्वरूप है, उसी तरह से आत्मा का भी है, किन्तु वह त्रिगुणातीत और संकल्पमय है। उसकी सूक्ष्मता का कोई माप नहीं हो सकता। आत्मा के धाम

हृदय में जब धाम धनी की शोभा विराजमान हो जाती है,
तो वह जाग्रत होकर धनी से एकरस हो जाती है।

ए जो मोमिन अक्स कहे, जानों आए दुनियां माहें।
हक अर्स कर बैठे दिल को, जुदे इत भी छोड़े नाहें॥८२॥
जिन ब्रह्ममुनियों (आत्माओं) के इस संसार में आने की
बात कही जाती है, वे परात्म के प्रतिबिम्ब स्वरूप हैं। श्री
राज जी ने इस झूठे संसार में भी उन्हें अपने से अलग
नहीं किया है और उनकी आत्मा के दिल को अपना धाम
बनाकर (शोभा देकर) उसमें विराजमान हो गये हैं।

अक्स के जो असल, ताए खेलावत सूरत।

सो हिंमत अपनी क्यों छोड़हीं, जामे अर्स की बरकत॥८३॥

इन प्रतिबिम्ब स्वरूपा आत्माओं के मूल तन परात्म हैं,

जो मूल मिलावा में धनी के चरणों में बैठे हैं और श्री राज जी का स्वरूप उन्हें माया का खेल दिखला रहा है। जिनके अन्दर परमधाम की मेहर बरस रही है, वे आत्मायें भला इस संसार में भी अपना साहस कैसे छोड़ सकती हैं।

भावार्थ— जब श्री राज जी आत्मा के धाम हृदय में विराजमान हो जाते हैं, तो उस आत्मा को यही आभास होता है जैसे वह साक्षात् परमधाम में है। उसे आठों सागरों का रसपान होने लगता है। इस चौपाई के चौथे चरण का यही आशय है। इस सम्बन्ध में किरंतन ९/४ में कहा गया है—

लगी वाली और कछु न देखे, पिंड ब्रह्मांड वाको है री नाहीं।
ओ खेलत प्रेमे पार पिया सों, देखन को तन सागर मांहीं॥
इस अवस्था को प्राप्त होने वाली आत्मा सांसारिक

दुःखों से कभी भी नहीं घबरायेगी।

दुनी नाम सुनत नरक छूटत, इनोंपे तो असल नाम।

दिल भी हकें अर्स कहा, याकी साहेदी अल्ला कलाम॥८४॥

संसार के लोग परब्रह्म की बाह्य पहचान (नाम) जान करके दुःखों की अग्नि से छूटकर अखण्ड मुक्ति को प्राप्त कर लेंगे, किन्तु इन ब्रह्मसृष्टियों के पास अक्षरातीत के परम सत्य स्वरूप (मारिफत) की पहचान है। धाम धनी ने इनके ही दिल को अपना धाम कहा है। इसकी साक्षी कुरआन के अन्दर भी है।

भावार्थ— इस चौपाई में "नाम" शब्द से तात्पर्य केवल श्री कृष्ण, श्री प्राणनाथ, या श्री राज शब्द से नहीं है, क्योंकि ये शब्द तो सृष्टि के प्रारम्भ से ही चले आ रहे हैं। वस्तुतः "नाम" शब्द से "पहचान" (महिमा) का भाव

ग्रहण किया जाता है। इस सम्बन्ध में किरंतन ७६ / १ का यह कथन द्रष्टव्य है—

निजनाम सोई जाहिर हुआ, जाकी सब दुनी राह देखत।

मुक्त देसी ब्रह्माण्ड को, आए ब्रह्म आत्म सत॥

किसी भी सम्बोधनात्मक शब्द— श्री कृष्ण, श्री प्राणनाथ, या श्री राज जी— की महत्ता पहचान से ही है, अन्यथा नहीं। ये मात्र लौकिक शब्द हैं। परब्रह्म के धाम, स्वरूप, एवं लीला का बाह्य बोध ही सत्य (नाम) की पहचान है।

तारतम ज्ञान के प्रकाश में संसार के प्राणियों को यह विदित हो जायेगा, जिससे उन्हें अखण्ड मुक्ति की प्राप्ति हो जायेगी। किन्तु मात्र ब्रह्मसृष्टियों को ही श्री राज जी की हकीकत (सत्य)— मारिफत (परम सत्य) के स्वरूप की पहचान होती है। उन्हें ही यह विदित होता है कि

किस प्रकार श्री राज जी का दिल ही परमधाम के २५ पक्षों- श्यामा जी, सखियों, एवं चिद्धन स्वरूप- के रूप में लीला कर रहा है।

इलम भी हकें दिया, इनमें जरा न सक।

सो क्यों न करें फैल वतनी, करें कायम चौदे तबक॥८५॥

श्री राज जी ने ब्रह्मसृष्टियों को ब्रह्मवाणी का वह ज्ञान दिया है, जिसमें थोड़ा भी संशय नहीं है। वे इस संसार में परमधाम के प्रेम मार्ग का अनुसरण करेंगे और चौदह लोक के इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अखण्ड मुक्ति दिलायेंगे।

प्रतिबिंब के जो असल, तिनों हक बैठे खेलावत।

तहां क्यों न होए हक नजर, जो खेल रूहों देखावत॥८६॥

प्रतिबिम्ब स्वरूपा आत्माओं के मूल तन "परात्म" हैं,

जिन्हें धाम धनी अपने चरणों में बैठाकर माया का खेल खेला रहे हैं। जिन ब्रह्मसृष्टियों को श्री राज जी यह माया का खेल दिखा रहे हैं, उनके ऊपर धनी की मेहर भरी नजर क्यों नहीं होगी।

आड़ा पट भी हकें दिया, पेहेले ऐसा खेल सहूर में ले।

जो खेल आया हक सहूर में, तो क्यों न होए कायम ए॥८७॥

श्री राज जी ने अपने दिल में माया का यह खेल दिखाने का विचार पहले ही ले लिया और यह नींद (फरोमोशी, माया) का पर्दा दे दिया। श्री राज जी के दिल में जो खेल आ गया, वह अखण्ड क्यों नहीं होगा।

भावार्थ— माया के इस ब्रह्माण्ड में आत्मा का तन है और परात्म मूल मिलावे में है। दोनों के बीच में यह माया का संसार है, जिसके अन्तर्गत १४ लोक और मोह

सागर है। इनको पार करके आत्मा परमधाम में विराजमान अपने धाम धनी को नहीं देख पा रही है, इसलिये इसे माया या फरामोशी (नींद) का पर्दा कहते हैं। धाम धनी अखण्ड रूप से नित्य जाग्रत हैं। उनके हृदय में जब इस ब्रह्माण्ड को दिखाने का विचार आ गया, तो इसका अखण्ड होना स्वाभाविक है।

हुए इन खेल के खावंद, प्रतिबिंब मोमिनो नाम।

सो क्यों न लें इस्क अपना, जिन अरवा हुज्रत स्यामा स्याम॥८८॥

परमधाम में परात्म के जो नाम हैं, वही नाम प्रतिबिम्ब स्वरूपा आत्माओं के भी हुए। इस प्रकार उसी नाम से ये ब्रह्ममुनि (आत्माएँ) इस खेल के स्वामी बन गये। जिन आत्माओं का यह दावा रहता है कि श्री राजश्यामा जी उनके प्रियतम हैं, वे अपने परमधाम के प्रेम की राह क्यों

न अपनायें।

भावार्थ- परमधाम में शाकुण्डल, शाकुमार, इन्द्रावती, अमलावती, आशबाई इत्यादि नाम नहीं हैं। यहाँ के भावों के आधार पर परात्म को लक्ष्य करके ही ये नाम रखे गये हैं, इसलिये यहाँ के शब्दों में परात्म का भी यही नाम माना जाता है। जो नाम परात्म के लिए प्रयुक्त होते हैं, वही नाम प्रतिबिम्ब स्वरूपा आत्माओं के भी होंगे। तारतम ज्ञान के प्रकाश में प्रतिबिम्ब स्वरूपा आत्माओं ने जब युगल स्वरूप को अपना प्रियतम माना है, तो परात्म की तरह धनी के प्रेम की राह अपनाना उनके लिये अनिवार्य है।

बड़ी बड़ाई इनकी, जिन इस्कें चौदे तबक।

करम जलाए पाक किए, तिन सबों पोहोंचाए हक॥८९॥

इन ब्रह्मसृष्टियों की अपार महिमा है। इश्क रब्द के कारण ही इन्हें इस संसार में आना पड़ा, जिसके कारण तारतम ज्ञान के प्रकाश में विरह की अग्नि में जलकर ब्रह्माण्ड के सभी जीव पवित्र हो जायेंगे। तत्पश्चात् ये सभी धनी की छत्रछाया में बेहद में अखण्ड मुक्ति प्राप्त कर लेंगे।

इनों धोखा कैसा अर्स का, जिन सूरतें खेलावें असल।

खेलाए के खँचे आपमें, तब असलै में नकल॥९०॥

परात्म के तनों की जिन सुरताओं (आत्माओं) को धाम धनी अपने चरणों में बैठाकर माया का यह खेल दिखा रहे हैं, उन्हें परमधाम के विषय में कैसे संशय हो सकता है। माया का यह खेल दिखाकर धाम धनी इन आत्माओं (सुरताओं) को अपने चरणों में निजधाम बुला लेंगे। तब

मूल तन परात्म में आत्मा प्रविष्ट हो जायेगी।

भावार्थ- परात्म की प्रतिबिम्ब स्वरूपा होने के कारण ही आत्मा को "नकल" शब्द से सम्बोधित किया गया है।

नकलें असलें जुदागी, एक जरा है आड़ा पट।

कह्या सेहेरग से नजीक, तिन निपट है निकट॥९१॥

परात्म का तन मूल मिलावा में है और आत्मा का तन इस संसार में है। दोनों के बीच में यह माया (नींद) का जरा सा पर्दा है। श्री राज जी आत्माओं के धाम हृदय में विराजमान हैं। इस प्रकार आत्माओं के अति निकट होने के कारण ही उन्हें शाहरग (प्राणनली) से भी अधिक निकट कहा गया है।

द्रष्टव्य- परामोशी, नींद, माया आदि सभी शब्द एकार्थवाची हैं। आत्मा और धनी के बीच इन्हीं का पर्दा

है, जिसके कारण प्रियतम का दीदार नहीं हो पाता है।

इन सुपन देह माफक, हकें दिल में किया प्रवेस।

ए हुकम जैसा कहावत, तैसा बोले हमारा भेस॥९२॥

मेरे इस स्वप्न के तन के अनुकूल ही धाम धनी दिल में आवेश स्वरूप से विराजमान हुए हैं। उनका हुक्म (आदेश) जैसा कहलाता है, हमारा तन वैसे ही बोलता है।

भावार्थ- सभी आत्माओं के दिल में धाम धनी की शोभा विराजमान होती है, जबकि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी और श्री महामति जी के धाम हृदय में श्री राज जी आवेश स्वरूप से विराजमान हुए थे। महाराजा छत्रसाल जी के साथ भी सात वर्ष तक आवेश लीला हुई थी। शेष सभी परमहंसों के धाम हृदय में अक्षरातीत की

शोभा का स्वरूप ही विद्यमान था। उनके साथ धनी के जोश की लीला होती रही है। आवेश अक्षरातीत का साक्षात् स्वरूप होता है। आवेश लीला को ब्रह्मलीला के अन्तर्गत ही माना जाता है।

अर्स तन का दिल जो, सो दिल देखत है हम को।

प्रतिबिंब हमारे तो कहे, जो दिल हमारे उन दिल मों॥९३॥

परात्म का दिल हमारी आत्मा की जागनी लीला को देख रहा है। हमारी आत्मा का दिल परात्म के दिल के अन्दर है, इसलिये आत्मा को परात्म का प्रतिबिम्ब कहा गया है।

भावार्थ— किरंतन ८२/९३ में कहा गया है—

परआत्म के अन्तस्करण, जेती बीतत बात।

तेती इन आत्म के, करत अंग साख्यात॥

इस कथन से यह स्पष्ट है कि परात्म के दिल के निर्देशन में ही आत्मा का दिल कार्य करता है , अर्थात् आत्मा का दिल भी परात्म के दिल का प्रतिबिम्बित स्वरूप है।

जिस प्रकार स्वप्न में असल तन के दिल के भावों के अनुसार स्वप्न आता है और स्वप्न वाले शरीर का दिल मूल तन के दिल के अनुसार ही कार्य करता है। इसी को असल दिल में स्वप्न के दिल को स्थित हुआ कहा जाता है। इसी प्रकार परात्म के दिल में आत्मा के दिल को स्थित हुआ कहा गया है। इस चौपाई के चौथे चरण का यही आशय है।

ऐसा खेल किया हुकमें, हमारी उमेदां पूरन।

हम सुख लिए अर्स के, दुनी में आए बिन॥९४॥

माया का खेल देखने की हमारी इच्छा को पूर्ण करने के लिये श्री राज जी के हुक्म (आदेश) ने ऐसा खेल बनाया है, जिसमें हम इस संसार में अपने मूल तन से नहीं आये हैं, फिर भी हम इस जगत् में परमधाम के सुखों का रसपान कर रहे हैं।

भावार्थ- ब्रह्मवाणी के ज्ञान के प्रकाश में प्रेम की राह अपनाकर आत्मा जब चितवनि में डूब जाती है, तो परात्म का श्रृंगार सजकर परमधाम के सभी सुखों का रसपान कर लेती है।

ना तो ऐसा बरनन क्यों करें, ए जो वाहेदत नूरजमाल।

ना कोई इनका निमूना, ना कोई इन मिसाल॥९५॥

अन्यथा स्वलीला अद्वैत अक्षरातीत मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर मुझसे अपनी शोभा-श्रृंगार का वर्णन

क्यों करवाते। धाम धनी के स्वरूप की उपमा तो इस संसार में किसी से दी ही नहीं जा सकती।

भावार्थ— नमूना अर्थात् उपमा और मिसाल समानार्थक शब्द है। उनमें मात्र भाषा भेद है। उपमा जहाँ संस्कृत का शब्द है, वही मिसाल अरबी भाषा का शब्द है।

अर्स भोम की एक कंकरी, तिन आगे ए कछुए नाहें।

तो क्यों दीजे बका सुभान को, सिफत इन जुबांए॥९६॥

जब परमधाम की एक कंकरी के सामने चौदह लोक का यह ब्रह्माण्ड कुछ है ही नहीं, तो इस जिह्वा से श्री राज जी की अखण्ड शोभा की महिमा कैसे कही जा सकती है।

अर्स जिमी सब वाहेदत, दूजा रहे ना इनों नजर।

ज्यों रात होए काली अंधेरी, त्यों मिटाए देवे फजर॥९७॥

सम्पूर्ण परमधाम में एकत्व (एकदिली) है। धनी की नूरी नजरों के सामने द्वैत का ब्रह्माण्ड वैसे ही नहीं रह सकता, जैसे प्रातःकाल सूर्योदय होते ही रात्रि का काला अन्धकार समाप्त हो जाता है, अर्थात् वहाँ द्वैत का प्रवेश नहीं है।

है हमेसा एक वाहेदत, एक बिना जरा न और।

अंधेर निमूना न लगत, अंधेर राखत है ठौर॥९८॥

किन्तु परमधाम के लिये अन्धेरे का दृष्टान्त भी उचित नहीं है, क्योंकि अन्धेरे के लिये निवास स्थान (आश्रम, ठहराव) की आवश्यकता होती है। स्वलीला अद्वैत परमधाम में तो श्री राज जी के अतिरिक्त अन्य कोई है ही

नहीं। वहाँ हमेशा एकत्व (एकदिली) की ही लीला होती है।

ए चौदे तबक कछुए नहीं, वेदों कह्या आकास फूल।

झूठा देखाई देत है, याको अंकूर ना मूल॥९९॥

चौदह लोक का यह ब्रह्माण्ड कुछ है ही नहीं। वेदान्त के ग्रन्थों में इसे "आकाश के फूल" की संज्ञा दी गई है। यह संसार स्वप्नवत् झूठा है। इसके प्रकट होने (अंकुरित होने) का कोई अनादि मूल (जड़, कारण) नहीं है।

भावार्थ— आधुनिक वेदान्त के ग्रन्थों (वेदान्त सार, पंचौदेशी, योग वाशिष्ठ, विवेक चूड़ामणि आदि) में कहा गया है कि जिस प्रकार बन्ध्या स्त्री के पुत्र नहीं होता , आकाश का फूल नहीं होता, मृग-तृष्णा का जल नहीं होता, और खरगोश के सींग नहीं होते, उसी प्रकार यह

जगत् भी नहीं है। यह स्वप्नवत् जगत् उसी प्रकार प्रतीत हो रहा है, जैसे अन्धेरे में रस्सी ही सर्प के समान प्रतीत होती है।

जिस प्रकार भूमि से बीज अंकुरित (प्रकट) होता है, उसी प्रकार अविद्या (अज्ञान, माया) से यह जगत् उत्पन्न हुआ है, किन्तु अविद्या या अज्ञान अनादि और अखण्ड नहीं है। जिस प्रकार मृगतृष्णा के जल में मूलतः जल नहीं होता, केवल प्रतीति (अनुभूति) होती है, उसका कोई अनादि कारण नहीं होता, उसी प्रकार अविद्या या अज्ञान में मूलतः अखण्डता और अनादिता नहीं है, क्योंकि मात्र अद्वैत ब्रह्म ही अखण्ड और अनादि है।

यद्यपि आदि शंकराचार्य द्वारा प्रस्तुत यह मान्यता सभी विद्वतजनों को स्वीकार्य नहीं है, किन्तु परमार्थिक दृष्टि से

जगत के मिथ्यात्व को स्वीकार किया जाता है। उसी सन्दर्भ में ब्रह्मवाणी में यह प्रसंग उद्धृत किया गया है।

इत वाहेदत कबूं न जाहेर, झूठे हक को जानें क्यों कर।

सुध वाहेदत क्यों ले सकें, जो उड़ें देखें नजर॥१००॥

इस संसार में आज तक परमधाम के एकत्व का ज्ञान नहीं आया था। स्वप्नवत् जीव भला अक्षरातीत को कैसे जान सकते हैं। जिस प्रकार सूर्य के उगने पर छाया का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार ये अखण्ड ब्रह्म के समक्ष कैसे रह सकते हैं। ऐसे मायाजन्य जीव परमधाम की एकदिली की लीला को कैसे जान सकते हैं।

भावार्थ— आदि शंकराचार्य कृत आधुनिक वेदान्त के अनुसार जीव को आदिनारायण (ईश्वर, विराट् पुरुष)

की चेतना का प्रतिभास माना गया है, इसलिये उसे चिदाभास भी कहते हैं। जब आदिनारायण का स्वरूप स्वाप्निक है, तो उनके प्रतिबिम्ब स्वरूप जीवों का अस्तित्व अद्वैत ब्रह्म के समक्ष कैसे अखण्ड रह सकता है, क्योंकि स्वप्न देखने वाले द्रष्टा (अव्याकृत) के जाग्रत होने पर तो स्वप्न के दृश्य रहते ही नहीं हैं।

असल बात वाहेदत की, अर्स अरवाहें जानें मोमिन।

इत हक सुध मोमिनो, जाके असल अर्स में तन॥१०१॥

एकमात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही परमधाम के एकत्व (एकदिली) की बातों को यथार्थ रूप से जानती हैं। इस संसार में अक्षरातीत की पहचान केवल उन ब्रह्मसृष्टियों को ही है, जिनके मूल तन (परात्म) परमधाम में विद्यमान हैं।

अब तुम सुनियो मोमिनों, अर्स बिने तुमारी बात।

वाहेदत तो कहे मोमिन, जो रूहें असल हक जात॥१०२॥

हे साथ जी! अब आप अपने परमधाम की बातों को सुनिए। जो ब्रह्मसृष्टियाँ अक्षरातीत की अँगस्वरूपा हैं, एकमात्र उन्हीं को एकदिली (वहदत) के स्वरूप में कहा जाता है।

और एक मता रूहन का, देखो अर्स वाहेदत।

लीजो मोमिन दिल में, ए हक अर्स न्यामत॥१०३॥

आप परमधाम की एकदिली की लीला को देखिए कि सभी सखियों में एक ही विचारधारा होती है। हे साथ जी! धाम धनी के द्वारा दी गई परमधाम की इस अनमोल निधि को आप अपने हृदय में बसा लीजिए।

नैन एक रूह के, जो सुख लेवें परवरदिगार।

तिन सुख से सुख पोहोंचहीं, दिल रूहों बारे हजार॥१०४॥

परमधाम में यदि कोई ब्रह्मसृष्टि अपने नेत्रों से प्रियतम के दीदार का सुख लेती है, तो सभी बारह हजार (अनन्त) ब्रह्मसृष्टियों के दिल को वही सुख प्राप्त हो जाता है।

एक रूह बात करे हक सों, सुख लेवे रस रसनाएं।

सो सुख रूहों आवत, दिल बारे हजार के माहें॥१०५॥

इसी प्रकार, यदि एक ब्रह्माँगना श्री राज जी से प्रेम भरी बातें करती है और उनकी रसना से निकलने वाली मीठी बातों की रसधारा का सुख लेती है, तो वही सुख बारह हजार अँगनाओं को भी प्राप्त हो जाता है।

हक बोलावें रूह एक को, सो सुख पावे अतंत।

सो बात सुन रूह हक की, सब रूहें सुख पावत॥१०६॥

जब धाम धनी किसी ब्रह्मात्मा को अपने पास बुलाते हैं, तो उसे अनन्त सुख प्राप्त होता है। श्री राज जी की उस बात को सुनने से उस अँगना को जो सुख प्राप्त हुआ होता है, उस बात के सुख को सभी सखियाँ स्वतः ही प्राप्त कर लेती हैं।

भावार्थ- श्री राज जी का दिल ही श्यामा जी और सखियों के दिल के रूप में लीला कर रहा है, इसलिये सबके दिल में एक ही बात होती है और सभी को समान सुख की अनुभूति होती है। यही एकत्व (एकदिली) का यथार्थ स्वरूप है।

रूह सुख हर एक बात का, हकसों अर्स में लेवत।

सो सुख सुन रूहें सबे, दिल अपने देवत॥१०७॥

परमधाम में यदि कोई ब्रह्मसृष्टि धाम धनी से प्रत्येक बात का सुख लेती है, तो उस बात को सभी ब्रह्मसृष्टियाँ भी सुनती हैं तथा वही सुख अपने दिल को देती हैं अर्थात् प्राप्त करती हैं।

भावार्थ— स्वलीला अद्वैत परमधाम में गोपनीयता की कोई बात नहीं है। जब द्वैत है ही नहीं, तो गोपनीयता क्यों? प्रत्येक बात सभी को मालूम होती है और सभी को बात करते समय सुनायी पड़ती है।

तो हकें कह्या अर्स अपना, मोमिनों का जो दिल।

तो सब ल्याए वाहेदत में, जो यों सुख लेत हिलमिल॥१०८॥

इसलिये श्री राज जी ने ब्रह्मसृष्टियों के दिल को अपना

धाम कहा है। परमधाम की एकदिली में धनी से जो सुख सखियाँ आपस में एक स्वरूप होकर लेती रही हैं, उन सारे सुखों का स्वाद धनी ने इस अर्श दिल रूपी वहदत (एकत्व स्वरूप धाम हृदय) में प्रकट कर दिया है।

इन विध सुख केते कहूं, अर्स अरवा मोमिन।

तो आए वाहेदत में, जो हक कदम तले इनों तन॥१०९॥

इस प्रकार मैं परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों के सुख का कितना वर्णन करूँ। मूल मिलावा में धनी के चरणों में जिनके मूल तन विद्यमान हैं, उनके वहदत स्वरूप धाम हृदय में स्वयं श्री राज जी आकर विराजमान हो गये हैं।

भावार्थ— सम्पूर्ण परमधाम खिल्वत तथा वहदत का स्वरूप है। जब ब्रह्मसृष्टियों का हृदय (दिल) धाम कहा गया है, तो उनके धाम हृदय (अर्श दिल) को ही वहदत

(एकत्व) का स्वरूप माना जायेगा।

हकें अर्स कहा दिल मोमिन, और भेज दिया इलम।

क्यों आवें अर्स दिल झूठ में, इत है हक का हुकम॥११०॥

श्री राज जी ने ब्रह्मसृष्टियों के दिल को अपना धाम कहा है और उन्हें जाग्रत करने के लिये तारतम वाणी का अवतरण किया है। यह आश्चर्य होता है कि जिन अँगनाओं का दिल ही अक्षरातीत का धाम कहलाता है, वे इस झूठे संसार में कैसे आ गयीं? यह तो अक्षरातीत के आदेश (हुकम) की लीला है, जिसने अनहोनी को भी होनी कर दिया, अर्थात् ब्रह्मसृष्टियों की सुरता को इस संसार के खेल में उतार दिया।

तार्थें बरनन इन दिल, अर्स हक का होए।

इस्क हक के से जल जाए, और जरा न रहेवे कोए॥१११॥

इसलिये केवल इन ब्रह्माँगनाओं के ही धाम हृदय से परमधाम और श्री राज जी की शोभा का वर्णन हो सकता है। इन आत्माओं के अतिरिक्त अन्य कोई भी अक्षरातीत के प्रेम की अग्नि का तेज सहन नहीं कर सकता। वह उसमें जलकर पूर्णतया राख हो जाता है, नाम मात्र के लिये भी नहीं बचता।

भावार्थ- पुराण संहिता और माहेश्वर तन्त्र में केवल – धाम तथा केवल-ब्रह्म एवं उनकी आनन्द योगमाया की शोभा का वर्णन है। यद्यपि लक्ष्य अक्षरातीत और परमधाम का रहा है, किन्तु परमधाम का आंशिक रूप से प्रतिबिम्बित रूप होने से अक्षरातीत का ही भाव ले लिया जाता है। यह सामान्य सी बात है कि जब अक्षरातीत के

सत् अंग अक्षर ब्रह्म भी परमधाम के इश्क की लीला का रसपान नहीं कर पाते, तो अन्य ईश्वरी सृष्टि या जीव सृष्टि कैसे कर सकेगी।

ब्रह्मसृष्टियों का भी स्वरूप प्रेम का है, इसलिये वे प्रेमाग्नि में जलती नहीं, बल्कि उसका आनन्द लेती हैं। इसके विपरीत जीव सृष्टि अग्नि में रुई जलने की तरह अपने अस्तित्व को नहीं बचा पाती।

इन दिल को अर्स तो कह्या, जो खोल दिए बका द्वार।

ताथें फेर फेर बरनवूं, हक वाहेदत का सिनगार॥११२॥

इन ब्रह्मसृष्टियों के हृदय को धाम इसलिये कहा गया है, क्योंकि धाम धनी ने इनके (मेरे) हृदय में विराजमान होकर परमधाम के ज्ञान का दरवाजा सबके लिये खोल दिया है। इसलिये मैं बार-बार परमधाम में विराजमान श्री

राज जी के श्रृंगार का वर्णन कर रही हूँ।

भावार्थ- श्री देवचन्द्र तथा श्री महामति जी के अन्दर विराजमान होकर धाम धनी ने परमधाम का ज्ञान अवतरित किया। कालान्तर में श्री छत्रसाल जी, श्री लालदास जी, तथा अन्य ब्रह्ममुनियों द्वारा इसका प्रसार हुआ। इनके दिल को धाम की शोभा मिली, तभी ऐसा हो सका। परमधाम में श्री राजश्यामा जी तथा सखियों का श्रृंगार समान है, इसलिये उसे वहदत का श्रृंगार कहते हैं। इस चौपाई के चौथे चरण का यही भाव है।

किसोर सूरत हादी हक की, सुन्दर सोभा पूरन।

मुख कमल कहूं मुकट की, पीछे सब अंग वस्तर भूखन॥११३॥

श्री राजश्यामा जी का स्वरूप अति सुन्दर और किशोर है। इनकी शोभा अनन्त (पूर्ण) है। मैं सबसे पहले श्री

राज जी के मुखारविन्द और मुकुट की शोभा का वर्णन करूँगी। इसके पश्चात् सभी अंगों, वस्त्रों, एवं आभूषणों का वर्णन होगा।

नख सिख लों बरनन करूं, याद कर अपना तन।

खोल नैन खिलवत में, बैठ तले चरन॥११४॥

हे मेरी आत्मा! तू अपनी परात्म का श्रृंगार सजकर धनी के चरणों में बैठ जा और अपने आत्मिक नेत्रों को खोलकर मूल मिलावा में अपने प्रियतम को देख, ताकि तू अपने प्राणवल्लभ की नख से शिख तक की शोभा का वर्णन कर सके।

जैसा केहेत हों हक को, यों ही हादी जान।

आसिक मासूक दोऊ एक हैं, ए कर दर्ई मसिएं पेहेचान॥११५॥

में श्री राज जी की जैसी शोभा का वर्णन कर रही हूँ, वैसी ही शोभा श्यामा जी की भी जाननी चाहिए। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने इस बात की पहचान करा दी है कि श्री राज जी और श्यामा जी का स्वरूप एक ही है।

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय होता है कि जब युगल स्वरूप का श्रृंगार एक जैसा ही है, तो श्री राज जी का श्रृंगार पुरुष भाव में तथा श्यामा जी का श्रृंगार अँगना भाव में क्यों किया गया है?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि परमधाम में इस संसार के स्त्री-पुरुष जैसी भावना नहीं है। संसार में भी शारीरिक दृष्टि से ही स्त्री-पुरुष में भेद होता है, जीव की दृष्टि से नहीं। विज्ञान की दृष्टि से भी प्रत्येक पुरुष में कुछ स्त्रीत्व होता है तथा प्रत्येक स्त्री में कुछ पुरुषत्व होता है।

सागर ७/३१ में स्पष्ट रूप से कहा गया है—

सोभा स्यामाजीय की, निपट अति सुन्दर।

अन्तर पट खोल देखिए, दोऊ आवत एक नजर॥

जब श्री राज जी का दिल ही श्यामा जी एवं सखियों के रूप में लीला कर रहा है, तो अलग-अलग स्वरूप की कल्पना ही नहीं की जा सकती। इस संसार के भावों के अनुसार ही अँगना भाव या पुरुष भाव का श्रृंगार किया गया है। वस्त्र एवं आभूषण भी इसी संसार के भावों से माने गये हैं। उस त्रिगुणातीत शोभा को शब्दों की परिधि में यथार्थ रूप से बाँध पाना कदापि सम्भव नहीं है।

जुगल किसोर तो कहे, जो आसिक मासूक एक अंग।

हक खिन में कई रूप बदलें, याही विध हादी रंग॥११६॥

आशिक और माशूक (प्रेमी और प्रेमास्पद) का स्वरूप

एक ही होता है, इसलिये अक्षरातीत को युगल स्वरूप के रूप में वर्णित किया गया है। जिस प्रकार एक ही क्षण में अनेक रूप बदल जाते हैं, उसी प्रकार श्यामा जी का भी श्रृंगार बदल जाता है।

भावार्थ- इस चौपाई के दूसरे चरण में "एक अंग" कहे जाने का भाव यह है कि आशिक के अन्दर माशूक विराजमान होता है तथा माशूक के अन्दर आशिक विराजमान होता है, अर्थात् दो शरीर अवश्य दिखते हैं किन्तु दिल (अंग) एक ही होता है।

हमारे फुरमान में, हकें केते लिखे कलाम।

मासूक मेरा महंमद, आसिक मेरा नाम॥११७॥

हमारे धर्मग्रन्थों में श्री राज जी ने बहुत से स्थानों पर यह बात लिखवायी है कि श्यामा जी मेरी प्रियतमा हैं

और मैं उनका प्रेमी (प्रियतम) हूँ।

भावार्थ- पुराण संहिता २९/७५-८० तथा माहेश्वर तन्त्र ४७/९-१३, ४९/३-२१ में उपरोक्त कथन है। इसी प्रकार कुरआन में पारः (२६) सूरः मुहम्मद ४७ एवं हदीस में यह प्रसंग वर्णित है कि "अना नूरुल्लाह व कुल शैईन मिन्नूरी।"

॥ मंगलाचरण सम्पूर्ण ॥

केस तिलक निलाट पर, दोऊ रेखा चली लग कान।

केस न कोई घट बढ़, सोभा चाहिए जैसी सुभान॥११८॥

श्री राज जी के मस्तक पर केशों और ललाट पर तिलक की शोभा है। तिलक में दो रेखायें हैं तथा बाल कानों तक आये हुए हैं। शिर के बालों में कोई भी छोटा-बड़ा नहीं है। जहाँ जैसी शोभा की आवश्यकता है, वहाँ

वैसी ही शोभा दृष्टिगोचर हो रही है।

एक स्याम नूर केसन की, चली रोसन बांध किनार।

दूजी गौर निलाट संग, करे जंग जोत अपार॥११९॥

श्री राज जी के काले-काले बालों से काले रंग की जगमगाती हुई नूरी आभा उठ रही है, जो मस्तक के किनारे-किनारे होते हुए कानों तक चली गयी है। इसके साथ ही ललाट से उठने वाली गोरे रंग की दूसरी आभा है, जो अपार ज्योति कर रही है तथा पहले वाली ज्योति के साथ जंग करती हुई प्रतीत हो रही है।

सोभा चलि आई लवने लग, पीछे आई कान पर होए।

आए मिली दोऊ तरफ की, सोभा केहेवे न समर्थ कोए॥१२०॥

बालों की यह अनुपम शोभा कनपटी और कानों के कुछ

ऊपर से होते हुए पीछे तक आयी है। मस्तक के दायें-बायें दोनों तरफ की शोभा ऐसी आयी है, जिसका वर्णन करने का सामर्थ्य किसी में भी नहीं है।

याही भांत भौंह नेत्र संग, करत जंग दोऊ जोर।

स्याह उज्जल सरभर दोऊ, चली चढ़ि टेढ़ी अनी मरोर॥१२१॥

इसी प्रकार दोनों भौंहों से उठने वाली काली ज्योति तथा आँखों से उठने वाली श्वेत ज्योति आपस में टकराकर बहुत अधिक युद्ध सी करती हुई प्रतीत हो रही हैं। ये दोनों ज्योतियाँ मरोड़ खाकर भौंहों और नेत्रों के कोनों तक बढ़ती चली गयी हैं।

भावार्थ— आँखों और भौंहों की जो आकृति है, नूरी ज्योति भी उसी के अनुकूल आकार धारण करती है।

दोऊ अनियां भौंह केसन की, निलाट तले नैन पर।

रेखा बांध चली दोऊ किनारी, आए अनियां मिली बराबर॥१२२॥

छोटे-छोटे बालों से युक्त भौंहों के दोनों कोने ललाट के नीचे आँखों के सामने तक आये हुए हैं। नेत्रों के ऊपरी पलकों के किनारे बरौनियों के बाल आये हैं, जिनसे बनने वाली दोनों नेत्रों की रेखायें भौंहों के समानान्तर रेखा के समान प्रतीत हो रही हैं। नासिका के दोनों ओर के दोनों नेत्रों के कोने भौंहों के कोनों की (बराबरी) में आये हुए हैं।

दोऊ नेत्र किनारी सोभित, घट बढ़ कोई न केस।

उज्जल स्याह दोऊ लरत हैं, कोई दे ना किसी को रेस॥१२३॥

दोनों नेत्रों की पलकों के किनारे बरौनियों के बालों से सुशोभित हैं। इनका कोई भी बाल एक-दूसरे से छोटा

या बड़ा नहीं है। नेत्रों के सफेदी वाले भाग (कौर्निया) से श्वेत रंग की तथा पुतलियों से काले रंग की आभा निकल रही है। दोनों आपस में टकराकर इस प्रकार युद्ध सी करती हुई प्रतीत हो रही हैं कि कोई भी किसी से हार मानने को तैयार नहीं है।

तिलक निलाट न किन किया, असल बन्यो रोसन।

कई रंग खूबी खिन में, सोभा गिनती होए न किन॥१२४॥

श्री राज जी के ललाट पर किसी ने तिलक लगाया नहीं है। वह तो अनादि रूप से उनके माथे पर बना हुआ चमक रहा है। क्षण-क्षण में इसके अन्दर अनेक रंगों की शोभा की विशेषता दिखती है। इन रंगों की गणना कोई भी नहीं कर सकता।

देह इन्द्री फरेब की, देखत इल्लत फना।

सो क्यों कहे बका सुभान मुख, इन अंग की जो रसना॥१२५॥

इस मायावी शरीर की इन्द्रियों से इस मिथ्या और नश्वर जगत को ही देखा जा सकता है। मेरे इस पञ्चभौतिक तन की रसना श्री राज जी के अखण्ड मुखारबिन्द की शोभा कैसे वर्णन कर सकती है, कदापि नहीं।

नासिका हक सूरत की, ए जो स्वांस देत खुसबोए।

ब्रह्मांड फोड़ इत आवत, इत रूह बास लेत सोए॥१२६॥

प्रियतम अक्षरातीत की नूरी नासिका से श्वास के रूप में प्रेम की सुगन्धि निकलती है। वह सुगन्धि निराकार – वैकुण्ठ को पार करके इस संसार में आ रही है, जिसका रसपान आत्मायें कर रही हैं।

बिन मोमिन कोई ना ले सके, हक नासिका गुन।

कह्या अर्स हक वतन, सो किया दिल जिन॥१२७॥

ब्रह्मसृष्टियों के बिना अन्य कोई भी श्री राज जी की नासिका के गुणों को आत्मसात् नहीं कर सकता है। इन्हीं के हृदय को अक्षरातीत का धाम कहा गया है और धाम धनी भी इन्हीं के हृदय में विराजमान होकर बैठे हैं।

हक सूरत की बारीकियां, ए जानें अर्स अरवाए।

हक सूरत तो जान हीं, जो कोई और होए इतदाए॥१२८॥

श्री राज जी के स्वरूप की सूक्ष्म बातों को मात्र परमधाम की आत्मायें ही जानती हैं। इनके अतिरिक्त परमधाम में कोई और हो तब तो वह धाम धनी के स्वरूप के बारे में जाने भी, अर्थात् परमधाम में श्यामा जी सहित धनी की अर्धांगिनी आत्माओं के अतिरिक्त

अन्य कोई भी नहीं है, इसलिये श्री राज जी के स्वरूप की गुह्यतम बातों को केवल यही जानती हैं।

तीन खूनें तले नासिका, खूना चढ़ता चौथा ऊपर।

ए खूबी जानें रूह अर्स की, ए जो अनी आई नमती उतर॥१२९॥

धाम धनी की नासिका के नीचे वाले भाग में तीन कोने हैं तथा चौथा कोना ऊपर की ओर चढ़ते हुए आया है। चौथे कोने की नोक जो उतरते हुए आयी है, उसकी विशेषताओं को परमधाम की अँगनायें ही जानती हैं।

भावार्थ- नुकीली नासिका सौन्दर्य का प्रतिमान स्वरूप होती है। मुखारविन्द का सौन्दर्य कोमलता के साथ – साथ नेत्रों और नासिका के तीखेपन पर भी निर्भर करता है। धाम धनी की नुकीली नासिका का सौन्दर्य आत्माओं को अपने प्रेम में डुबो लेता है। इस चौपाई में इसी तथ्य

की ओर संकेत किया गया है।

दोऊ छेद्रों के गिरदवाए, यों पांखड़ी फूल कटाव।

बीच अनी आई जो नासिका, ए मोमिन जानें मुख भाव॥१३०॥

नासिका के दोनों छिद्रों के चारों ओर फूलों की पँखुड़ियों जैसी शोभा आयी है। दोनों छिद्रों के बीच में ऊपर की ओर जो नासिका की नोक आयी है, उससे ब्रह्मसृष्टियाँ धनी के मुख के भावों को जानती हैं।

भावार्थ- दिल के सम्पूर्ण भाव मुखारविन्द पर विद्यमान होते हैं, किन्तु नेत्र और नासिका के भाव-संकेतों से उसे सरलतापूर्वक जाना जा सकता है। इस चौपाई में यही आशय व्यक्त किया गया है।

इन अनिएं और अनी मिली, तिन उतर अनी हुई दोए।

किनार तले दो छेद्र के, सोभा लेत अति सोए॥१३१॥

नासिका की नोक वाले कोने से उतरकर आने पर नीचे के दोनों कोने मिल जाते हैं। इन दोनों कोनों की किनार के नीचे दो छेद आये हैं, जिनकी शोभा बहुत अधिक है।

भावार्थ— नासिका की नोक के नीचे आने पर दायें-बायें के दोनों कोने मिल जाते हैं। इस प्रकार नासिका के दोनों कोने तथा मध्य भाग एक रेखा में हो जाते हैं और दोनों ओर दो छिद्र दिखाई देते हैं।

दोऊ छेद्र तले अधुर ऊपर, तिन बीच लांक खूने तीन।

सोई सोभा जाने इन अधुर की, जो होए हुकम आधीन॥१३२॥

नासिका के दोनों छिद्रों के नीचे और ऊपर वाले होंठ के बीच में जो गहराई है, उसमें तीन कोने हैं। धनी के इन

होंठों की शोभा को वही आत्मायें जानती हैं, जो धनी के आदेश (इच्छा) के अधीन होती है।

भावार्थ- दो कोने होंठों पर आये हैं और एक कोना नासिका के दोनों छिद्रों के बीच वाली जगह में आया है। मन के अधीन होकर चलना माया में डूबा होना दर्शाता है, जबकि धनी के हुक्म (इच्छा) पर चलना आत्मा की जाग्रत अवस्था को प्रकट करता है। श्री राज जी के होंठों की इस शोभा का रसपान केवल ऐसी ही जाग्रत आत्मायें कर सकती हैं।

और तले जो अधुर, दोऊ जोड़ सोभित जो मुख।

रेखा लाल दोऊ सोभित, रूह देख पावे अति सुख॥१३३॥

नीचे का होंठ जब ऊपर वाले होंठ से मिलता है, तो दोनों का जोड़ मुख पर बहुत अधिक शोभा देता है। दोनों

होंठ दो लाल रेखाओं के समान सुशोभित हो रहे हैं। इस अद्वितीय सुन्दरता को देखकर आत्मायें बहुत आनन्दित होती हैं।

तले अधुर के लांक जो, मुख बराबर अनी तिन।

सेत बीच बिन्दा खुसरंग, ए मुख सोभा जानें मोमिन॥१३४॥

नीचे वाले होंठ की गहराई में नीचे की ओर जो कोना आया है, वह भाग मुख के बराबर ही दिखायी दे रहा है। धाम धनी के गोरी-गोरी (उज्ज्वल, श्वेत) ठुड्डी के ऊपर और होंठों के नीचे के भाग में गहरे लाल रंग के बंदे के समान शोभा आयी है। श्री राज जी के मुखारविन्द की इस शोभा को मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही जानती हैं।

भावार्थ- इस संसार में भी प्रायः कुछ लोगों के गालों पर हँसते समय गोलाकृति बन जाती है। धाम धनी के

गोरे मुखारविन्द पर ऐसी ही गोलाकृति बनती है, जिसे लाल बेंदे से उपमा दी गयी है।

इन तले गौर हरवटी, जानों मुख सदा हंसत।

ए सोभा जाने अरवा अर्स की, जिन दिल में हक बसत॥१३५॥

इसके नीचे बहुत गोरे रंग की तुड्डी आयी है। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे श्री राज जी का मुख हमेशा हँसता रहता है। इस शोभा को तो केवल परमधाम की वे आत्मायें ही जानती हैं, जिनके दिल में स्वयं धाम धनी विराजमान होते हैं (उनकी शोभा अखण्ड रूप से बसी होती है)।

ए रंग कहे मैं इन मुख, पर किन विध कहूं सलूक।

ए करते मुख बरनन, दिल होत नहीं टूक टूक॥१३६॥

यद्यपि मैंने इस मुख से श्री राज जी के मुखारविन्द के

लालिमा मिश्रित गोरे रंग का तो वर्णन कर दिया है, किन्तु उसकी अनन्त सुन्दरता को मैं कैसे व्यक्त करूँ। यह गहन आश्चर्य की बात है कि प्रियतम के मुख कमल की इस अद्वितीय शोभा का वर्णन करने पर भी यह हृदय टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो रहा है।

फेर कहूं हरवटीय से, ज्यों सुध होए मुख कमल।

हक मुख मोमिन निरखहीं, जिन दिल अर्स अकल॥१३७॥

अब मैं पुनः तुङ्गी से शोभा का वर्णन करती हूँ, जिससे धाम धनी के मुख कमल की पूरी सुध हो जाये। श्री राज जी के मुखारविन्द की शोभा को वही ब्रह्ममुनि देख पाते हैं, जिनके दिल में परमधाम की निज बुद्धि विद्यमान होती है।

भावार्थ— धाम धनी की मेहर से ही निज बुद्धि प्राप्त

होती है। "निज बुध आवे अग्याएं, तोलों ने छूटे मोह" (कलस हिंदुस्तानी १/३६) का कथन यही स्पष्ट करता है। जाग्रत बुद्धि जहाँ हृदय में ज्ञान का प्रकाश करती है, वहीं निज बुद्धि प्रेममयी भावों में डुबोती है। बिना प्रेम में गोता लगाये धनी के मुखारविन्द का दर्शन नहीं हो सकता।

हरवटी गौर मुख मुतलक, खुसरंग बिन्दा ऊपर।

बीच लांक तले अधुर, चार पांखड़ी हुई बराबर॥१३८॥

श्री राज की तुड्डी और मुखारविन्द का रंग निश्चित रूप से अत्यधिक गौर है। इस प्रकार तुड्डी तथा गालों के ऊपर लाल रंग के बेंदे के समान शोभा दृष्टिगोचर हो रही है। होंठों तथा उसके नीचे की गहराई वाले भाग में फूलों की चार पंखुड़ियों की शोभा आयी हुई है।

गौर पांखड़ी दो लांक की, लाल पांखड़ी दो तिन पर।

अधुर अधुर दोऊ जुड़ मिले, हुई लांक के सरभर॥१३९॥

गहराई वाले भाग में दो पँखुड़ियां गोरे रंग की हैं। इनके ऊपर लाल-लाल होंठों की दो पँखुड़ियां लाल रंग की आयी हैं। जब ऊपर और नीचे के दोनों होंठ आपस में सटे होते हैं, तो उनके बीच में भी नीचे वाली गहराई के समान शोभा दिखाई देने लगती है।

भावार्थ- नीचे वाले होंठ के नीचे गहराई वाले भाग की ओर दो पँखुड़ियों की शोभा बनती है। दोनों पँखुड़ियों का शिरा मुख के दोनों कोनों को स्पर्श करता है। इस भाग का रंग गोरा है, इसलिये इन पँखुड़ियों को गोरे रंग की पँखुड़ियां कहते हैं। दोनों होंठ भी पँखुड़ी के समान प्रतीत होते हैं, जिन्हें लाल रंग की पँखुड़ियां कहते हैं। इसके ऊपर भी दो पँखुड़ियों की शोभा आयी है, जो आगे की

चौपाई में वर्णित है।

जोड़ बनी दोऊ अधुर की, निपट लाल सोभित।

तिन ऊपर दो पांखड़ी, हरी नेक टेढ़ी भई इत॥१४०॥

दोनों लाल होंठों की जोड़ी बहुत सुन्दर दिखायी दे रही है। इनके ऊपर दो और पँखुड़ियां आयी हैं, जो टेढ़ाई लिये हुए हैं और थोड़े पीले रंग की शोभा में दिखायी दे रही हैं।

भावार्थ- ऊपर वाले होंठ के ऊपर दो और पँखुड़ियां आयी हैं, जिनके शिरे मुख के दोनों कोनों को स्पर्श कर रहे हैं। नासिका के अग्र भाग की सीध में नीचे की ओर इन पँखुड़ियों का आधार भाग है।

दन्त सलूकी रंग की, इन जुबां कही न जाए।

मुख मुस्कत दन्त देखत, क्या केहे देऊं बताए॥१४१॥

धाम धनी के दाँतों के रंग की सुन्दरता का वर्णन इस जिह्वा से नहीं हो सकता। जब प्राण प्रियतम मधुर-मधुर मुस्कराते हैं, तो उनके अति सुन्दर दाँत दिखायी पड़ते हैं। मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि उस अलौकिक शोभा को किस तरह से कहकर बताऊँ।

क्यों कहूं रंग रसना, मुख मीठा बोल बोलत।

स्वाद लेत रस अर्स के, जुबां केहे ना सके सिफत॥१४२॥

श्री राज जी की जिह्वा के सौन्दर्य (रंग) का मैं क्या वर्णन करूँ। इसी जिह्वा से धाम धनी अमृत से भी अनन्त गुना मीठे शब्द बोलते हैं। यह रसना परमधाम के सभी रसों का स्वाद लेती है। मेरी यह जिह्वा धाम धनी की

रसना की महिमा का वर्णन कदापि नहीं कर सकती।

भावार्थ- इस चौपाई में "रस" शब्द से तात्पर्य खट्टे, मीठे आदि षट रसों, तथा करुण, बीभत्स, और वियोग आदि नव रसों से नहीं है, बल्कि आठों सागरों के उस रस से है जो अक्षरातीत के धाम हृदय से प्रवाहित होकर २५ पक्षों के रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है। इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए तैत्तरीयोपनिषद् ने कहा है कि "रसो वैसः" अर्थात् वह परब्रह्म रस रूप है।

अक्षरातीत के हृदय का रस सम्पूर्ण परमधाम में है, जिसका रसपान लीला रूप में उनकी जिह्वा करती है और वाणी के द्वारा व्यक्त भी करती है। धनी के शब्दों में प्रेम, आनन्द, एकत्व, मूल सम्बन्ध आदि सभी सागरों के रस समाये होते हैं, जिसका आनन्द ब्रह्मसृष्टियाँ लेती रहती हैं।

रस जानत सब अर्स के, रस बोलत रसना बैन।

रुहें एक सब्द सुनें रस का, तो पावें कायम सुख चैन॥१४३॥

यह रसना परमधाम के सभी रसों को जानती है। इस रसना से वाणी के रूप में परमधाम का सम्पूर्ण रस प्रवाहित होता है। यदि उस रस भरी वाणी (बोली) का एक शब्द भी आत्मायें सुन लेती हैं, तो उन्हें अखण्ड आनन्द का अनन्त सागर ही प्राप्त हो जाता है।

नेक अधुर दोऊ खोलहीं, दन्त लाल उज्जल झलकत।

अधुर लाल दो पांखड़ी, जानों के नित्य मुसकत॥१४४॥

जब प्राणवल्लभ अपने होंठों को थोड़ा सा खोलते हैं, तो उनके लालिमा भरे उज्ज्वल दाँत झलकार करने लगते हैं। उनके दोनों लाल-लाल होंठ फूल की अति कोमल पँखुड़ियों के समान प्रतीत होते हैं। ऐसे लगता है जैसे

उनके होंठों पर हमेशा ही मुस्कराहट छायी रहती है।

दन्त उज्जल ऐनक ज्यों, माहें जुबां देखाई देत।

देख दन्त की नाजुकी, अति सुख मोमिन लेत॥१४५॥

दाँत शीशे की तरह उज्ज्वल (श्वेत) हैं। दाँतों के बीच में जिह्वा दिखायी देती है। ब्रह्मसृष्टियाँ दाँतों की कोमलता को देखकर बहुत आनन्दित होती हैं।

कबूँ दन्त रंग उज्जल, कबूँ रंग लालक।

दोऊ खूबी दन्तन में, माहें रोसन ज्यों ऐनक॥१४६॥

कभी दाँतों का रंग उज्ज्वल दिखायी देता है, तो कभी लाल। दाँतों में दोनों प्रकार की विशेषता है। जिस तरह से शीशा चमकता है, उसी तरह से धनी के मुख में दाँत चमकते हैं।

भावार्थ- श्री राज जी की नासिका में आये हुए आभूषण में जड़े हुए माणिक के लाल नग के कारण दाँतों का रंग लाल दिखायी पड़ता है।

दोऊ बीच अधुर रेखा मुख, कटाव तीन तीन तरफ दोए।
पांखें रंग सुरंग दोऊ उपली, चढ़ि टेढ़ी सोभा देत सोए॥१४७॥

श्री राज जी के मुखारविन्द के दोनों होंठों के बीच की रेखा के दोनों ओर तीन-तीन कटाव (बेल-बूटों) जैसी शोभा आयी है। ऊपर की दोनों पाँखें लाल रंग की हैं और चढ़ती हुई टेढ़ी आकृति में शोभायमान हो रही हैं।

भावार्थ- दोनों होंठों के सटने पर बीच में एक रेखा सी प्रतीत होती है। उसके दोनों तरफ – ऊपर और नीचे – दो भाग हो जाते हैं। प्रत्येक भाग के तीन-तीन भाग करने पर ऐसा लगता है, जैसे बेल-बूटे बने हुए हैं। दो

भाग मुख के दोनों किनारों की ओर हैं तथा मध्य वाला भाग नासिका के अग्रभाग की सीध में आया हुआ है। दोनों होंठों के किनारे वाले बाहरी भाग को पाँखें कहा गया है, जिनका रंग लाल आया है।

खुसरंग बीच सिंघोड़ा, तले दो अनी ऊपर एक।

इन दोऊ पाँखें खुसरंग, ए कटाव सोभा विसेक॥१४८॥

धाम धनी के लाल मुखारविन्द के बीच में नासिका की आकृति सिंघाड़े जैसी आयी है, जिसके दो कोने नीचे की ओर हैं तथा एक ऊपर की ओर है। इन दोनों की पाँखें लाल रंग की हैं। नासिका की यह उभरी हुए शोभा विशेष रूप से आकर्षित करने वाली है।

भावार्थ— इस चौपाई में नासिका के तीनों कोनों को जोड़ने वाले बगल के दोनों भागों को "पाँखें" कहा गया

है।

तिन अनी पर दूजी अनी, सोभित सिंघोड़ा सुपेत।

ऊपर पांखें दोऊ फिरवली, बीच छेद्र सोभा दोऊ देत॥१४९॥

नासिका के एक कोने के बगल में दूसरा कोना आया है। इन दोनों के ऊपर (तीसरे कोने) से होते हुए घेरकर पाँखों की शोभा आयी है। इनके बीच में नाक के दो छेद शोभायमान हो रहे हैं। नासिका की छवि अत्यधिक उज्ज्वल (श्वेत) रंग के सिंघाड़े के समान दिखायी पड़ रही है।

भावार्थ— सिंघाड़ा (water chestnut) पानी में उत्पन्न होने वाला एक प्रकार का फल है, इसलिये इसे पानीफल भी कहते हैं। इसके ऊपर का छिलका उतार देने पर यह अति कोमल और श्वेत रंग का दिखायी देता

है। इसकी त्रिकोणात्मक आकृति, कोमलता, तथा उज्ज्वलता के कारण श्री राज जी की नासिका से इसकी उपमा दी गयी है।

इन फूल ऊपर आई नासिका, सो आए बीच अनी सोभाए।
 तिन पर रेखा दोऊ तिलक की, रंग खिन में कई देखाए॥१५०॥

इस सिंघाड़े रूपी फूल के ऊपर नासिका की शोभा आयी है, जिसकी नोक कोने के रूप में दृष्टिगोचर हो रही है। इस नासिका पर तिलक की दो पतली रेखायें दिखायी पड़ रही हैं। इस तिलक में एक ही क्षण में अनेक रंग दिखायी पड़ते हैं।

दोऊ नेत्र टेढ़े कमल ज्यों, अनी सोभा दोऊ अतन्त।
 जब पांपण दोऊ खोलत, जानों कमल दो विकसत॥१५१॥

धाम धनी के दोनों तिरछे नेत्र कमल के समान सुशोभित हो रहे हैं। नेत्रों के दोनों कोनों की छवि अनन्त है। जब श्री राज जी अपनी मनोहर पलकों को खोलते हैं, तो ऐसा लगता है कि अति सुन्दर दो कमल खिले हुए हैं।

नासिका के मूल सें, जानों कमल बने अदभूत।

स्याम सेत झाँई लालक, सोभा क्यों कहूं अंग लाहूत॥१५२॥

प्रियतम के नेत्रों की ओर देखने पर ऐसा लग रहा है, जैसे नासिका के मूल से दो अद्भुत रूप वाले कमल प्रकट हुए हैं। इन नेत्रों से काले, श्वेत, और लाल रंग की आभा झलकार कर रही है। परमधाम के इन नूरी अंगों की शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ।

भावार्थ— भौहों, पलकों के बालों, तथा पुतलियों का रंग काला है। कौर्निया (श्वेत, पटल) का रंग सफेद है। उसमें

प्रेम का संकेत देने वाली हल्की लालिमा का भी मिश्रण है। इस प्रकार नेत्रों से इन तीनों रंगों की आभा झलकार करती रहती है।

और कई रंग दोऊ कमल में, टेढ़े चढ़ते निपट कटाव।

मेहेर भरे नूर बरसत, हक सींचत सदा सुभाव॥१५३॥

इस प्रकार उन दोनों नेत्र कमल में अनेक प्रकार के रंग विद्यमान हैं। तिरछी आकृति वाले इन नेत्रों की शोभा बेल-बूटों की तरह है। अपने इन मेहर भरे नेत्रों से नूर की वर्षा करके सम्पूर्ण परमधाम को सिंचित करना ही धनी का अनादि काल का स्वभाव है।

गौर गलस्थल गिरदवाए, और बीच नासिका गौर।

स्याह पांखड़ी कमल पर, सोभित टेढ़ियां नूर जहूर॥१५४॥

गालों का रंग चारों ओर से बहुत गोरा है। दोनों गालों के बीच में नासिका भी बहुत गौर वर्ण की है। धनी के दोनों नेत्र कमलों के ऊपर पँखुड़ियों के समान काले रंग की तिरछी भौहें आयी हैं, जिनसे प्रकट होने वाली नूरी आभा अद्वितीय छवि को धारण कर रही है।

अनी चार दोऊ कमल की, दो बंकी चढ़ती ऊपर।

अति स्याह टेढ़ी पांखड़ी, कछू अधिक दोऊ बराबर॥१५५॥

दोनों नेत्र कमलों के चार कोने आये हैं। नेत्रों के दोनों कोनों से तिरछापन ऊपर (तथा नीचे) की ओर चढ़ता गया है। तिरछी पलकों के किनारे आयी हुई काली बरौनियाँ (बाल) पँखुड़ियों के समान कुछ अधिक ही शोभा दे रही हैं। दोनों नेत्रों की पलकों की आकृति एवं शोभा बराबर है।

उज्जल निलाट तिन पर, आए मिली केस किनार।

सोहे रेखा बीच तिलक, जुबां कहा कहे सोभा अपार॥१५६॥

श्री राज जी का ललाट बहुत गोरा है। बालों की लटें (केशावलि) ललाट के ऊपरी भाग के किनारे पर आयी हैं। ललाट के मध्य में पतली रेखाओं वाला अति सुन्दर तिलक शोभा दे रहा है। इस तिलक की अनन्त शोभा का वर्णन मेरी इस जिह्वा से नहीं हो सकता।

दोऊ तरफों रेखा हरवटी, आए मिली कानन।

गौर कान सोभा क्यों कहूं, नहीं नेत्र जुबां मेरे इन॥१५७॥

ठुड्डी के दोनों ओर गालों का किनारा रेखा के समान प्रतीत हो रहा है। यह रेखा कानों से आकर मिल गयी है। धनी के इन गोरे-गोरे कानों की शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ। न तो मेरे इन नेत्रों में इतनी शक्ति है कि वे पूरी

तरह इन कानों को देख सकें और न मेरी जिह्वा में इतनी शक्ति है कि कानों की सुन्दरता का वास्तविक वर्णन कर सके।

गौर गाल दोऊ निपट, माहें झलकत मोती लाल।

ए सोभा कान की क्यों कहूं, इन जुबां बिना मिसाल॥१५८॥

श्री राज जी के दोनों गाल बहुत गोरे हैं। कानों में जड़े कर्णफूल में मोती और लाल (माणिक) के नग जड़े हुए हैं, जिनकी झलकार गालों के ऊपर पड़ रही है। मैं अपनी इस जिह्वा से कानों की शोभा का वर्णन कैसे करूँ। इनकी सुन्दरता को व्यक्त करने के लिये कोई भी उपमा नहीं दी जा सकती।

केस रेखा कानों पीछे, बीच में अंग उज्जल।

हक मुख सोभा क्यों कहिए, इन जुबां इन अकल॥१५९॥

बालों की रेखायें कानों के पीछे आयी हैं। इनके बीच का भाग बहुत ही उज्ज्वल (गोरा) है। इस संसार की बुद्धि, यहाँ की जिह्वा से, धाम धनी के मुखारविन्द की शोभा का वर्णन हो पाना कदापि सम्भव नहीं है।

मुकट बन्यो सिर पाचको, रंग नंग तामें अनेक।

जुदे जुदे दसों दिस देखत, रंग एक पे और विसेक॥१६०॥

श्री राज जी के शिर पर पाच का मुकुट आया है। उसमें अनेक रंगों के नग जड़े हुए हैं। दसों दिशाओं में प्रत्येक रंग अलग-अलग रंगों में दिखता है और एक-दूसरे से और अधिक सुन्दर प्रतीत होता है।

भावार्थ- इस कथन का आशय यह है कि पूर्व में जो

पीला रंग दिखता है, वही पश्चिम में किसी और रंग में दिखेगा। इसी प्रकार अन्य दिशाओं में रंग बदलते जायेंगे।

असल नंग पाच एक है, असल रंग तामें दस।

दस दस रंग हर दिसैं, सोभा क्यों कहूं जवेर अर्स॥१६१॥

वास्तव में मुकुट पाच के नगों का है और उसमें मूलतः दस रंग हैं, किन्तु प्रत्येक रंग के अलग-अलग दिशाओं में अलग-अलग रंग दिखने से प्रत्येक रंग दस रंगों में दिखता है। इस प्रकार कुल सौ रंग दिखायी पड़ते हैं। परमधाम के इन नूरी जवाहरातों की शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ।

भावार्थ- इतने रंगों का वर्णन भी केवल बुद्धिग्राह्य होने के लिये है। वस्तुतः इन रंगों की कोई सीमा नहीं है।

और मुकुट सिर हक के, केहेनी सोभा तिन।

सो न आवे सोभा सब्द में, मुकुट क्यों कहूं जुबां इन॥१६२॥

प्रियतम अक्षरातीत के सिर पर जो मुकुट है, मुझे उसकी शोभा का वर्णन करना है। मैं अपनी इस जिह्वा से मुकुट की शोभा का वर्णन कैसे करूँ। वह शोभा किसी भी प्रकार से शब्दों की परिधि में नहीं आ पा रही है।

दस रंग कहे एक तरफ के, दूजी तरफ दस रंग।

सो रंग रंग कई किरने उठें, किरन किरन कई तरंग॥१६३॥

मुकुट के एक ओर दस रंग आये हैं तथा दूसरी ओर भी दस रंग आये हैं। इसमें प्रत्येक रंग से अनेक रंगों की किरणें प्रकट होती हैं तथा प्रत्येक किरण से अनेक प्रकार की तरंगें प्रकट होती हैं।

किन विध कहूं सलूकियां, हर दिस सलूकी अनेक।

देख देख जो देखिए, जानों उनथें एह नेक॥१६४॥

मुकुट की अनेक प्रकार की शोभाओं का मैं कैसे वर्णन करूँ। हर दिशा में अलग प्रकार की शोभा दिखती है। किसी भी शोभा को भले ही कितनी बार क्यों न देखा जाये, किन्तु बार-बार देखने पर भी यही लगता है कि यह शोभा पहले की अन्य शोभाओं से अधिक अच्छी है।

एक दोरी रंग नंग दस की, ऐसी मूल मुकुट दोरी चार।

गिरदवाए निलवट पर, सुख क्यों कहूं सोभा अपार॥१६५॥

दस रंगों के नगों की एक डोरी आयी है। मुकुट में इस प्रकार की चार डोरियाँ दिख रही है, जो ललाट के चारों ओर आयी हैं। इस अनन्त शोभा को देखने से जो सुख मिल रहा है, उसका मैं कैसे वर्णन करूँ।

यामें एक दोरी अव्वल तले, कांगरी दस रंग ता पर।
तिन दोरी पर बनी बेलड़ी, और कहूं सुनो दिल धर॥१६६॥
इनमें एक डोरी नीचे आयी है, जिसमें दस रंगों की काँगरी की शोभा है। इस डोरी के ऊपर जो दूसरी डोरी आयी है, उसमें "बेलड़ी" (लतायें) बनी हुई हैं। हे साथ जी! इसके आगे और शोभा का मैं वर्णन कर रही हूँ। उसे ध्यानपूर्वक सुनकर अपने दिल में धारण कीजिए।

इन पर भी दोरी बनी, ता पर बेल और जिनस।
तिन पर दोरी और कांगरी, जानों उनथें एह सरस॥१६७॥
इसके ऊपर भी एक डोरी (कलाकृति, design) आयी है, जिसमें लताओं तथा अन्य प्रकार की सुन्दर चित्रकारी है। इसके ऊपर एक और डोरी आयी है, जिसमें काँगरी बनी हुई है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे यह डोरी पूर्व की

डोरी से भी अच्छी है।

चारों दोरी के रंग कहे, और दस रंग कांगरी दोए।

और जिनस दो बेल की, रंग बोहोत ना गिनती होए॥१६८॥

मैंने चारों डोरियों के रंगों का वर्णन कर दिया है। दो डोरियों में दस रंगों की काँगरी आयी है। इसी प्रकार दो डोरियों में बेलों आदि की शोभा दिखायी दे रही है। इनमें इतने रंग दिख रहे हैं कि उनकी गिनती हो ही नहीं सकती।

दस रंग कांगरी के कहूं, चार मनके ऊपर तीन।

दो तीन पर एक दो पर, ए जानें दस रंग रूह प्रवीन॥१६९॥

अब मैं काँगरी के दस रंगों का वर्णन करती हूँ। काँगरी में दस रंग के मनके आये हैं। सबसे पहले नीचे चार मनके

हैं, उसके ऊपर क्रमशः तीन तथा दो मनके आये हैं। सबसे ऊपर एक मनका आया है। ये दस रंगों के दस मनके हैं, जिन्हें कोई प्रेम में अग्रणी (प्रवीण) आत्मा ही जानती है।

ए दस रंग के मनके दस, ऊपर एक रंग तले दोए।

दोए रंग तले तीन हैं, तीन रंग तले चार सोए॥१७०॥

ये दस मनके दस रंगों के हैं। सबसे ऊपर वाला मनका एक रंग का है। उसके नीचे दो रंगों के दो मनके हैं। पुनः उसके नीचे तीन रंगों के तीन मनके आये हैं। सबसे नीचे चार रंगों के चार मनके शोभा दे रहे हैं।

इन विध चार दोरी भई, और दोए भई कांगरी।

दोए बेली कई रंगों की, ए गिनती जाए न करी॥१७१॥

इस प्रकार मुकुट में चार डोरियाँ आयी हैं। इनमें दो डोरियों में काँगरी की शोभा है, तो दो डोरियों में अनेक रंग की लतायें आयी हैं। इन बेलों में आये हुए रंगों की गिनती नहीं हो सकती।

ऊपर फिरते फूल कटाव कई, कई बूटियां नकस।

तिन पर कही जो काँगरी, फिरती अति सरस॥१७२॥

इन डोरियों के ऊपर अनेक प्रकार के फूल और बेल-बूटे बने हुए हैं। अनेक प्रकार की बूटियों की भी चित्रकारी अंकित है। उसके ऊपर जो चारों ओर काँगरी आयी है, वह बहुत सुन्दर है।

तिन ऊपर टोपी बनी, ऊपर चढ़ती अनी एक।

तले कटाव कई रंग नंग, ए अनी फूल बन्यो विसेक॥१७३॥

इस काँगरी के ऊपर टोपी बनी है, जिसके ऊपर एक नोक आयी है। उस नोक के नीचे अनेक रंग के नगों के बेल-बूटे बने हुए हैं। इस नोक की बनावट एक बहुत सुन्दर फूल के रूप में आयी है।

तीन खूने तिन ऊपर, दो दोऊ तरफों बीच एक।

दस दस नंग तिनों में, सो मोमिन कहें विवेक॥१७४॥

इसके ऊपर कलङ्गी के रूप में तीन कोने आये हैं— दो तरफ दो और एक बीच में। तीनों में दस-दस नग जड़े हुए हैं। इसका पूर्ण विवरण आत्मायें ही वर्णन करती हैं।

मानिक मोती पांने नीलवी, गोमादिक पाच पुखराज।

और हीरा नंग लसनियां, बीच मनि दसमी रही बिराज॥१७५॥

ये नग इस प्रकार हैं— माणिक, मोती, पन्ना, नीलम,

गोमेद, पाच, पुखराज, हीरा, और लहसुनियाँ। इनके बीच में दसवें नग के रूप में मणि सुशोभित हो रही है।

ए दस रंग नंग तिनों में, फिरते बने तीन फूल।

तले डांडियां रंग अनेक हैं, ए सोभा देख हूजे सनकूल॥१७६॥

इन तीनों कलँगियों में दस –दस रंगों के नग आये हैं। इनको घेरकर तीन फूल बने हुए हैं। इन कलँगी की डण्डियों में भी अनेक प्रकार के रंग दिखायी दे रहे हैं। हे साथ जी! आप इस अनुपम शोभा को देखकर आनन्दित होइए।

दसों दिसा जित देखिए, मन चाह्या रूप देखाए।

बिना निमूने इन जुबां, किन बिध देऊं बताए॥१७७॥

आप दसों दिशाओं में जिधर भी देखिए , उधर ही

आपके दिल की इच्छानुसार मुकुट का रूप दिखायी देता है। मैं इस जिह्वा से इसकी अद्वितीय शोभा का किस प्रकार से वर्णन करूँ। इसकी किसी से उपमा दी ही नहीं जा सकती।

जिन रूह का दिल जिन बिध का, सोई विध तिन भासत।

एक पलक में कई रंग, रूह जुदे जुदे देखत॥१७८॥

आत्माओं के हृदय में जैसी इच्छा होती है, उनको मुकुट उसी रूप में दिखायी देता है। एक ही क्षण में मुकुट के कई रंग बदल जाते हैं और आत्मायें अलग-अलग रूपों में उसे देखती हैं।

एह मुकट इन भांत का, पल में करे कई रूप।

जो रूह जैसा देख्या चाहे, सो तैसा ही देखे सरूप॥१७९॥

धाम धनी का यह मुकुट इस प्रकार का है कि एक ही पल में अनेक रूप धारण कर लेता है। जो आत्मा इसे जिस रूप में देखना चाहती है, उसे उसी रूप में यह दिखायी पड़ता है।

मैं मुकुट कहूँ बुध माफक, ए तो अर्स जवेर के नंग।

नए नए कई भांत के, कई खिन में बदले रंग॥१८०॥

मैं तो अपनी बुद्धि के अनुसार ही धाम धनी के मुकुट की शोभा का वर्णन कर रही हूँ। यह तो परमधाम के उन जवाहरातों के नगों से सुशोभित है, जो एक क्षण में अनेक प्रकार के नये-नये रूपों और रंगों को धारण कर लेते हैं।

और विध मुकुट में, रूहें आवें सब मिल।

सब रूप रंग देखे इनमें, जो चाहे जैसा दिल॥१८१॥

मुकुट में यह भी विशेषता है कि जब सभी सखियाँ मिलकर धनी के पास आती हैं, उस समय उनके दिल में जिस प्रकार के रूप या रंग को देखने की इच्छा होती है, उसी प्रकार का रूप-रंग उन्हें इस मुकुट में दिखायी पड़ता है।

याही भांत सब भूखन, याही भांत वस्तर।

वस्तर भूखन सब एक रस, ज्यों कुन्दन में जड़तर॥१८२॥

श्री राज जी के सभी वस्त्र और आभूषण भी इसी प्रकार के हैं। सोने में जड़े हुए ये वस्त्र और आभूषण एकरस हैं, अर्थात् सबकी शोभा समान हैं और सभी में धनी का स्वरूप लीला करता है।

ए जड़े घड़े किन ने नहीं, ना पेहेर उतारत।

दिल चाहे रंग खिन में, मन पर सोभा फिरत॥१८३॥

इन वस्त्रों और आभूषणों को न तो किसी ने बनाया है और न इनमें सुशोभित होने वाले जवाहरातों के नगों को किसी ने जड़ा है। इन्हें पहनना-उतारना भी नहीं पड़ता। दिल की इच्छानुसार एक पल में इनके रंग बदल जाते हैं। सम्पूर्ण शोभा मन के अनुसार ही दृष्टिगोचर होती है।

जिन खिन रूह जैसा चाहत, सो तैसी सोभा देखत।

बारे हजार देखें दिल चाहे, ए किन विध कहूं सिफत॥१८४॥

कोई भी आत्मा जिस क्षण जैसा रूप देखना चाहती है, उसे उसी क्षण वैसी ही शोभा दिखाई पड़ती है। इसी प्रकार परमधाम की सभी (बारह हजार) सखियाँ अपने हृदय की इच्छानुसार ही सारा श्रृंगार देखती हैं। इन वस्त्रों

तथा आभूषणों की शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ। यह इस चौपाई तथा चौपाई १९५ से पूर्णतया स्पष्ट है।

भावार्थ- चाहे जागनी ब्रह्माण्ड हो या परमधाम हो, आत्मा के भावों के अनुसार ही धनी का श्रृंगार दिखता है।

मोती करन फूल कुंडल, कहूं केते नाम भूखन।

पलमें अनेक बदलें, सुन्दर सरूप कानन॥१८५॥

मोती जड़े कर्णफूल और कुण्डल आदि कितने आभूषणों के नाम कहूँ। ये तो पल भर में ही कानों में अनेक सुन्दर स्वरूप धारण कर लेते हैं।

जवेर कहे मैं अर्स के, और जवेर तो जिमी से होत।

सो हक बका के अंग को, कैसी देखावे जोत॥१८६॥

मैंने परमधाम के जवाहरातों का वर्णन किया है और जवाहरात तो धरती से निकाले जाते हैं। ऐसी स्थिति में यह प्रश्न होता है कि ऐसे जवाहरात धाम धनी के अखण्ड नूरी अंगों को किस प्रकार अपनी ज्योति से सुशोभित करते हैं?

भावार्थ— इस संसार के जवाहरात पञ्चभौतिक तनों की अपेक्षा अधिक सुन्दर होते हैं, इसलिये उन्हें श्रृंगार में प्रयुक्त किया जाता है, किन्तु परमधाम में स्थिति इसके विपरीत है। सम्पूर्ण परमधाम श्री राज जी के ही नूर से है, इसलिये धाम धनी को अन्य कोई भी साधन सुशोभित करने का सामर्थ्य नहीं रखता। परमधाम में सभी वस्त्र और आभूषण उनके अंगों के समान हैं और धनी के आशिक हैं। श्री महामति जी के धाम हृदय से जिन वस्त्रों-आभूषणों का वर्णन हुआ है, वह इस संसार के

भावों के अनुसार है। धनी की शोभा को मात्र इन्हीं के श्रृंगार की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता।

और नई पैदास अर्स में नहीं, ना पुरानी कबूं होए।

या रसांग या जवेर, जिन जानों अर्स में दोए॥१८७॥

परमधाम में कोई भी वस्तु न तो पैदा होती है और न ही पुरानी होती है। परमधाम में चाहे धातुएँ हों या जवाहरात, इन्हें दो नहीं समझना चाहिए। यथार्थता तो यह है कि ये सभी श्री राज जी के ही नूर के स्वरूप हैं।

अर्स साहेबी बुजरक, तिनको नाहीं पार।

ए नूर के एक पलथें, कई उपजे कोट संसार॥१८८॥

परमधाम की गरिमा इतनी बड़ी है कि उसकी कोई सीमा ही नहीं है। श्री राज जी के सत् अंग अक्षर ब्रह्म के

एक पल में करोड़ों ब्रह्माण्ड उनकी इच्छा -मात्र से पैदा हो जाते हैं।

सो नूर नूरजमाल के, नित आवें दीदार।

तिन हक के वस्तर भूखन, ए मोमिन जानें विचार॥१८९॥

वे अक्षर ब्रह्म श्री राज जी का दर्शन करने के लिये प्रतिदिन अक्षर धाम से परमधाम (रंगमहल के चाँदनी चौक में) आते हैं। इस प्रकार अक्षरातीत के वस्त्रों और आभूषणों के विषय में तो केवल आत्मायें ही जानती हैं।

भावार्थ- जब चाँदनी चौक में दूर से खड़े होकर दर्शन करने वाले अक्षर ब्रह्म श्री राज जी का नख से शिख तक का पूर्ण श्रृंगार नहीं जानते , तो उनके अंग रूप (सत्स्वरूप, केवल, सबलिक, और अव्याकृत) कहाँ से जान सकते हैं। ऐसी स्थिति में आदिनारायण या अन्य

ऋषि-मुनियों या पैगम्बरों को इसका बोध होना सम्भव ही नहीं है। श्री राज जी के श्रृंगार के सम्बन्ध में वास्तविक ज्ञान केवल ब्रह्मसृष्टियों को ही होता है, क्योंकि वे पल-पल उनके साथ रहती हैं और उन्हीं की अँगरूपा हैं। यही कारण है कि इस चौपाई में एकमात्र ब्रह्मसृष्टियों को ही धाम धनी के श्रृंगार को जानने वाला कहा गया है।

जिन मोमिन की सिफायत, करी होए मेहेंदी महंमद।

सो जानें अर्स बारीकियां, और क्या जाने दुनी जो रद॥१९०॥

आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिब्बुजमां श्री प्राणनाथ जी ने इन्हीं ब्रह्मसृष्टियों (ब्रह्ममुनियों) की प्रशंसा की है। ये ही परमधाम की गुह्य बातों को जानती हैं। भला इस नश्वर संसार के जीव परमधाम के बारे में

क्या जान सकते हैं।

पेहेनावा नूरजमाल का, वस्तर या भूखन।

ज्यों नूर का जहूर, ए जानत अर्स मोमिन॥१९१॥

श्री राज जी के वस्त्रों तथा आभूषणों के पहनावे के बारे में केवल परमधाम के ब्रह्ममुनि ही जानते हैं। वे ही इस रहस्य को जानते हैं कि धाम धनी का नूर ही उनके वस्त्रों तथा आभूषणों के रूप में झलकार करता है।

ए कबूं न जाहेर दुनी में, अर्स बका हक जात।

सो इन जुबां इत क्या कहूं, जो इन सरूप को सोभात॥१९२॥

अखण्ड परमधाम तथा युगल स्वरूप एवं सखियों की शोभा का वर्णन आज दिन तक इस संसार में नहीं हो सका था। इस प्रकार इन स्वरूपों के अंगों में सुशोभित

होने वाले वस्त्रों तथा आभूषणों की शोभा का मैं इस जिह्वा से कैसे वर्णन करूँ।

वस्तर भूखन हक के, ए केहेनी में ना आवत।

सिनगार करें दिल चाह्या, जो सबों को भावत॥१९३॥

श्री राज जी के वस्त्रों तथा आभूषणों की शोभा का वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता। सभी अँगनाओं के दिल को जो अच्छा लगता है, उसी के अनुसार प्रियतम का श्रृंगार दिखा करता है।

तो ए क्यों आवे बानी में, कर देखो सहूर हक।

ए अर्स तनों विचारिए, तुम लीजो बुध माफक॥१९४॥

हे साथ जी! चितवनि में अपनी परात्म का श्रृंगार सजकर श्री राज जी की शोभा को देखिए तथा अपनी

आत्मा के अन्तःकरण में इसका विचार कीजिए। पुनः जब अपनी बुद्धि द्वारा चितवनि में देखी गयी शोभा के बारे में विचार करेंगे, तो यही निर्णय निकलेगा कि धाम धनी के वस्त्रों तथा आभूषणों की शोभा को शब्दों में व्यक्त किया ही नहीं जा सकता।

भावार्थ- आत्मा के अन्तःकरण द्वारा चिन्तन-मनन केवल चितवनि में होता है तथा सामान्य अवस्था में होने वाला चिन्तन-मनन जीव के अन्तःकरण द्वारा होता है। इस सम्बन्ध में सागर १०/४१ में कहा गया है-

आतम अन्तस्करन विचारिये, अपने अनुभव का जो सुख।
बढ़त बढ़त प्रेम आवहीं, परआतम सनमुख॥

परात्म का तन तो इस समय फरामोशी में है। उसके द्वारा विचार नहीं किया जा सकता। इस चौपाई के तीसरे चरण का आशय यह है कि चितवनि में आत्मा को परात्म

का श्रृंगार सजाकर धनी की शोभा को देखते हुए आत्मा के अन्तःकरण में विचार करना चाहिए। चौथे चरण में जीव की बुद्धि के लिये संकेत किया गया है।

अर्स में भी रूहें लेत हैं, जैसी खाहिस जिन।

रूह जैसा देख्या चाहे, तिन तैसा होत दरसन॥१९५॥

परमधाम में भी ब्रह्मसृष्टियाँ अपने हृदय की इच्छा के अनुसार धनी की शोभा का दीदार करती हैं। वे श्री राज जी के श्रृंगार को जिस रूप में देखना चाहती हैं, उन्हें उसी रूप में दर्शन प्राप्त होता है।

वस्तर भूखन किन ना किए, हैं नूर हक अंग के।

ए क्यों आवें इन केहेनी में, अंग साईं के सोभावें जे॥१९६॥

प्रियतम अक्षरातीत के इन वस्त्रों तथा आभूषणों को

किसी ने बनाया नहीं है। ये श्री राज जी के अंगों के नूर का स्वरूप हैं। धाम धनी के नूरी अंगों में सुशोभित होने वाले वस्त्रों और आभूषणों की शोभा को भला शब्दों में कैसे व्यक्त किया जा सकता है।

अपार सूरत साहेब की, अपार साहेब के अंग।

अपार वस्तर भूखन, जो रहेत सदा अंगों संग॥१९७॥

श्री राज जी के मुखारविन्द की शोभा अनन्त है। इसी प्रकार उनके अंगों की शोभा भी अपार है। धाम धनी के अंगों से सर्वदा लगे रहने वाले वस्त्रों तथा आभूषणों की भी शोभा असीमित है।

जो सोभा हक सूरत की, सो क्यों पुरानी होए।

नई पुरानी तित कहावत, जित कहियत हैं दोए॥१९८॥

श्री राज जी के मुखारविन्द की शोभा कभी पुरानी नहीं होती है। नया और पुराना तो वहाँ होता है, जहाँ दो की लीला होती है।

भावार्थ- स्वलीला अद्वैत परमधाम में प्रत्येक वस्तु अक्षरातीत का ही स्वरूप है। जब वहाँ एक पत्ता भी पुराना नहीं हो सकता, तो स्वयं अक्षरातीत के अंगों की शोभा में जीर्णता कैसे आ सकती है। नया-पुराना तथा उत्पत्ति-विनाश का सिद्धान्त कालमाया के ब्रह्माण्ड में होता है, परमधाम में नहीं।

इत कबूं न होए पुराना, ना पैदा कबूं नया।

दीदार करें रूहें खिन में, खिन खिन दिल चाह्या॥१९९॥

परमधाम में कोई भी नयी वस्तु न तो पैदा होती है और न पुरानी होती है। वहाँ ब्रह्मसृष्टियाँ अपने दिल की

इच्छानुसार क्षण-क्षण में बदले हुए श्रृंगार का दर्शन करती हैं।

जामा पटुका और इजार, ए सबे हैं एक रस।

कण्ठ हार सोभा जामें पर, जानों एक दूजे पे सरस॥२००॥

धाम धनी के अंगों में विद्यमान जामे, पटुके, तथा इजार की शोभा एकरस है। जामे के ऊपर गले में हारों की शोभा आयी है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक हार अन्य दूसरों से अधिक सुन्दर है।

कण्ठ तले हार दुगदुगी, कई विध विध के विवेक।

कई रंग जंग जोतें करे, देखत अलेखे रस एक॥२०१॥

गले में हारों के नीचे अनेक प्रकार की दुगदुगियों की बहुत सुन्दर शोभा आयी है। इनमें अनेक प्रकार के रंगों

की ज्योतियाँ आपस में बुद्धिमतापूर्वक टकराकर युद्ध सी करती हुई प्रतीत होती हैं। इन सबकी शोभा एकरस है और वर्णन से परे है।

जुड़ बैठी जामें पर चादर, सोभा याही के मान।

ए नाम लेत जुदे जुदे, हक सोभा देख सुभान॥२०२॥

जामे के ऊपर चादर इस प्रकार से सटकर (जुड़कर) आयी है कि उसकी शोभा भी जामे जैसी लग रही है। श्री राज जी की शोभा को देखकर मैं उनके वस्त्रों तथा आभूषणों के अलग-अलग नाम लेकर वर्णन कर रही हूँ।

बगलों कोतकी कटाव, और बंध बेल गिरवान।

रंग जुदे जुदे झलकत, रस एकै सब परवान॥२०३॥

जामे की दोनों बगलों में भरत (कशीदाकारी) का काम

किया हुआ है। जामे की तनियों के बाँधने की जगह में लताओं की शोभा है। इन सबमें अलग-अलग रंगों की झलकार हो रही है। निश्चित रूप से सभी की शोभा समान (एकरस) आयी है।

भावार्थ- जामे की दोनों बगलों (दायें-बायें) में कन्धों के साथ बाँहों को घेरकर भरत का काम (कशीदाकारी) किया गया है। इसी प्रकार तनियों के बाँधने के स्थान (हृदय) पर भी बेलों की चित्रकारी के रूप में भरत का काम किया गया है।

बाहें बाजू बंध सोभित, रंग केते कहूं गिन।

तेज जोत लरें आकास में, क्यों असल निरने होए तिन॥२०४॥

दोनों बाँहों पर बाजूबन्द शोभा दे रहे हैं। उनसे प्रकट होने वाले कितने रंगों का मैं गिनकर वर्णन करूँ।

बाजूबन्दों से उठने वाले नूरी तेज की ज्योतियाँ आकाश में टकराकर लड़ती हुई प्रतीत होती हैं। उनकी हार-जीत का निर्णय हो ही नहीं सकता, क्योंकि सभी समान हैं।

क्यों कहूं सोभा फुंदन, लटकत हैं एक जुगत।

आहार देत हैं आसिकों, देख देख न होए तृपित॥२०५॥

बाजूबन्द में लगे हुए फुन्दनों की शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ। वे एक विशेष प्रकार की युक्ति से लटके हुए हैं। इनकी सुन्दरता सखियों को आत्मिक आनन्द रूपी आहार देती है। इनकी मनोहारिता को बार-बार देखने पर भी तृप्ति नहीं होती।

या विध काड़ों पोहोंचियां, या विध कड़ों बल।

कई ऊपर रंग जंग करें, तामें गिने न जाए असल॥२०६॥

इसी प्रकार हाथों की कलाइयों में कड़े और पोहोंची की शोभा है। कड़ों में ऐंठन आयी है। इनसे अनेक रंगों की किरणें आकाश में ऊपर उठकर टकराती हैं और युद्ध सी करती हुई प्रतीत होती हैं। यह दृश्य ऐसा होता है कि उसमें मुख्य-मुख्य रंगों को भी गिन पाना सम्भव नहीं होता।

हस्त कमल अति कोमल, उज्जल हथेली लाल।

केहेते लीकें सलूकियां, हाए हाए लगत न हैड़े भाल॥२०७॥

प्राणवल्लभ अक्षरातीत के दोनों हस्त कमल बहुत कोमल हैं। हथेलियों का रंग उज्ज्वलता में लालिमा लिये हुए है। हथेलियों में दिखायी देने वाली पतली-पतली रेखाओं

की सुन्दरता का वर्णन करते समय हाय! हाय! मेरे हृदय में भाले क्यों नहीं लग जाते।

भावार्थ- जिस प्रकार हीरों से भरी हुई थैली को कोई व्यक्ति निरर्थक ही किसी तालाब में फेंक दे और खुशी मनाता रहे, तो उसके सन्दर्भ में यही कहा जा सकता है कि इस व्यक्ति का हृदय इतना कठोर है कि इसमें भाले से छेदने पर भी पीड़ा नहीं होगी। यद्यपि ऐसा होना सम्भव नहीं है कि भाले से छेदने पर पीड़ा न हो, किन्तु हृदय की कठोरता को व्यक्त करने के लिये इस प्रकार की आलंकारिक भाषा प्रयोग की जाती है।

इसी प्रकार का प्रसंग यहाँ पर भी है। श्री महामति जी की आत्मा का कथन यही है कि क्या मेरा हृदय इतना कठोर हो गया है कि इस झूठे संसार में धाम धनी की हथेली की रेखाओं के सौन्दर्य को मैं बेझिझक वर्णन

करती जा रही हूँ। हाय! हाय! लगता है मेरे इस कठोर हृदय में भाले लगने पर भी पीड़ा नहीं होगी।

पतली पांचों अंगुरियां, पांचों जुदी जुगत।

जुदे जुदे रंग नंग मुंदरी, सोभा न पोहोंचे सिफत॥२०८॥

धाम धनी के प्रत्येक हाथ की पाँचों अँगुलियां पतली-पतली हैं तथा अलग-अलग आकार की हैं। इन अँगुलियों में अलग-अलग रंगों के नगों की मुद्रिकायें आयी हैं। इनकी शोभा की प्रशंसा करने में कोई भी शब्द समर्थ नहीं है।

निरमल अंगुरियों नख, ताकी जोत भरी आकास।

सब्द न इन आगूं चले, क्यों कहूं अर्स प्रकास॥२०९॥

इन अँगुलियों के नख बहुत ही स्वच्छ हैं। इनसे

निकलने वाली ज्योति आकाश में सर्वत्र छायी हुई है।
परमधाम के इस नूरी प्रकाश का मैं कैसे वर्णन करूँ।
इसकी शोभा का वर्णन करने में मेरे से और शब्द नहीं
निकल पा रहे हैं।

अब चरन कमल चित्त देय के, बैठ बीच खिलवत।

देख रूह नैन खोल के, ज्यों आवे अर्स लज्जत॥२१०॥

हे मेरी आत्मा! अब तू प्राणवल्लभ अक्षरातीत के चरण
कमल में अपना चित्त (दिल) लगा। परात्म का श्रृंगार
सजकर अपनी आत्मिक दृष्टि से तू मूल मिलावा में पहुँच
जा और अपने आत्म-चक्षुओं को खोलकर धाम धनी को
देख, जिससे तुझे परमधाम की शोभा और आनन्द का
स्वाद मिल सके।

भावार्थ- चित्त लगाने का तात्पर्य दिल लगाने से होता है, जबकि चितवनि लगाने का भाव होता है – आत्मिक नेत्रों से देखना। चित्त और चित् दोनों अलग हैं। चित् का आशय आत्म-चैतन्य से है।

इत बैठ निरख चरन को, देख चकलाई चित्त दे।

नरम तली अति उज्जल, रूह तेरा सुख दायक ए॥२११॥

अब तू अपने आत्म-स्वरूप से मूल मिलावा में बैठ जा और ध्यानपूर्वक प्रियतम के चरणों की सुन्दरता को देख। हे मेरी आत्मा! तू धाम धनी के चरणों की अति उज्ज्वल कोमल तलियों (तलुओं) को देख। ये कोमल-कोमल तलियाँ ही तो तुझे सारा आनन्द देने वाली हैं।

भावार्थ- परात्म का प्रतिबिम्ब ही आत्मा है। चितवनि आत्मिक दृष्टि से की जाती है। आत्मिक दृष्टि के मूल

मिलावा में पहुँचने को आत्म-स्वरूप का पहुँचना कहते हैं, किन्तु उसका श्रृंगार परात्म का ही होता है।

जोत देख चरन नख की, जाए लगी आसमान।

चीर चली सब जोत को, कोई ना इन के मान॥२१२॥

अब तू चरणों के नखों से उठने वाली नूरी ज्योति को देख, जो आकाश में पहुँची हुई हैं। नखों की ज्योति तो अन्य सभी ज्योतियों को चीरते हुए चली जा रही है। इसके समान कोई भी ज्योति नहीं है।

भावार्थ- श्री राज जी के प्रत्येक अंग की ज्योति को दूसरे अंगों की ज्योति से श्रेष्ठ बताने का आशय सौन्दर्य-वर्णन की काव्यगत विशेषता है। यथार्थता यह है कि परमधाम में सभी अंगों की ज्योति बराबर है।

तेज कोई ना सेहे सके, बिना अर्स रूह मोमिन।

तेजें उड़े परदा अन्धेरी, ए सहे बका अर्स तन॥२१३॥

परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों के बिना नखों के तेज को अन्य कोई भी सहन नहीं कर सकता। इनके नूरी तेज से माया का यह तन रूपी पर्दा छूट सकता है। इसे तो मात्र परमधाम के अखण्ड नूरमयी तन ही सहन कर सकते हैं।

भावार्थ— इस चौपाई को पढ़कर यह कदापि नहीं सोचना चाहिए कि चितवनि करने से या श्री राज जी के दर्शन से यह पञ्चभौतिक तन छूट जायेगा। यदि धनी की शोभा का ध्यान करना इतना अशुभ होता, तो श्रीमुखवाणी में सर्वत्र चितवनि की महत्ता क्यों दर्शायी जाती।

वर्तमान समय में पृथ्वीवासी सूर्य से १४,९८,००,००० कि. मी. दूर हैं। यदि यही पृथ्वी सूर्य

के बहुत नजदीक हो जाये तो कुछ भी नहीं बचेगा, बल्कि सब कुछ अग्नि स्वरूप हो जायेगा। धाम धनी के चरणों के नखों में तो करोड़ों सूर्यों का तेज है। उसे यह पञ्चभौतिक तन कैसे सहन कर सकता है।

इस चौपाई में नूरी तनों और पञ्चभौतिक तनों में भेद दर्शाया गया है कि माया के तन परमधाम की एक कंकड़ी के तेज को भी सहन नहीं कर सकते, क्योंकि ये स्वप्नवत् हैं। इनके विपरीत ब्रह्मसृष्टियों के नूरी तन परमधाम के अनन्त तेज के बीच रहते हैं क्योंकि वे धनी के साक्षात् अंग हैं और उनका भी स्वरूप नूरमयी है।

चितवनि में केवल आत्मिक दृष्टि ही परमधाम जाती है और वही परमधाम तथा युगल स्वरूप का दर्शन करती है। पञ्चभौतिक तन तो इसी संसार में रहता है। जब वह नूरी तेज के सामने आयेगा ही नहीं, तो उसके छूट जाने

की बात दिवास्वप्न के समान मिथ्या है।

अर्स तन की एह बैठक, ए जोतै के सींचेल।

ए अरवा तन सब अर्स के, इनों नजरों रहे ना खेल॥२१४॥

इस मूल मिलावा में परात्म के नूरी तन ही विद्यमान हैं, जो धाम धनी की नूरी ज्योति से सींचे जाते हैं। ब्रह्मसृष्टियों के ये तन परमधाम के हैं। इनकी नूरी नजरों के सामने माया का यह ब्रह्माण्ड रह ही नहीं सकता।

पांउं देख देख भूखन, कई विध सोभा करत।

सो नए नए रूप अनेक रंगों, खिन खिन में कई फिरत॥२१५॥

श्री राज जी के चरणों को बारम्बार देखकर मैं अब उनके आभूषणों की ओर देख रही हूँ, जो अनेक प्रकार की शोभा प्रकट करते हैं। ये आभूषण क्षण-क्षण में अनेक

रंगों के नये-नये रूप धारण करते हैं और बदलते रहते हैं।

चारों जोड़े चरन तो कहूं, जो घड़ी साइत ठेहेराय।

खिन में करें कोट रोसनी, सो क्यों आवे माहें जुबांए॥२१६॥

धाम धनी के दोनों चरणों में झांझरी , घूंघरी, कांबी, और कड़ी के आभूषण शोभायमान हो रहे हैं। यदि एक क्षण के समय के लिये भी इन आभूषणों की शोभा स्थिर हो, तब तो इनकी शोभा का वर्णन हो। क्षण भर में ही इनकी ज्योति करोड़ों सूर्यों के समान चमकने लगती है। ऐसी अवस्था में इस जिह्वा से उस अलौकिक शोभा का वर्णन कैसे हो सकता है।

भावार्थ- इस चौपाई में "घड़ी" शब्द का तात्पर्य समय से है, साढ़े बाईस मिनट से नहीं, क्योंकि इसका प्रयोग

"साइत" सब्द के साथ किया गया है।

हरी इजार माहें कई रंग, ऊपर जामा दावन सुपेत।

कई रंग झाँई देख के, अर्स रूहें सुख लेत॥२१७॥

श्री राज जी की इजार हरे रंग की है, जिसमें अनेक रंग विद्यमान हैं। इजार के ऊपर श्वेत रंग के जामे का घेरा आया है। इस जामे में अनेक रंगों की झलक देखकर परमधाम की आत्मायें आनन्द लेती हैं।

फुन्दन बन्ध अति सोभित, माहें रंग अनेक झलकत।

ए सेत हरे के बीच में, माहें नरम झाबे खलकत॥२१८॥

जामे की तनी के फुन्दन बहुत अधिक सुशोभित हो रहे हैं। इनमें अनेक रंगों की झलकार हो रही है। श्वेत रंग के जामे तथा हरे रंग की इजार के बीच के स्थान में फुन्दनों

के गुच्छे (झाबे) लहराते रहते हैं।

भावार्थ- इजार कमर में बाँधी जाती है तथा जामा लगभग घुटने तक आता है। इस प्रकार घुटने तथा कमर के बीच के स्थान तक झाबे लहराते रहते हैं।

जामें दावन सेत झलकत, जोत उठत आकास।

और जोत चढ़त करती जंग, पीत पटुके की प्रकास॥२१९॥

जामे के दावन से श्वेत रंग झलकता रहता है। इसकी श्वेत ज्योति आकाश में दिखायी देती है। कमर में बन्धे हुए पीले पटुके की नूरी ज्योति भी आकाश में चढ़ती हुई दृष्टिगोचर होती है। दोनों ज्योतियाँ आकाश में टकराकर युद्ध सी करती हुई प्रतीत होती हैं।

हार सोभित हिरदे पर, बाजू बन्ध पोहोंची कड़े।

सुन्दर सरूप सिर मुकट, दिल आसिकों देखत खड़े॥२२०॥

धाम धनी के हृदय कमल (वक्ष) पर हार सुशोभित हो रहे हैं। हाथों में बाजूबन्ध, पोहोंची, और कड़े की शोभा आयी है। सिर पर मुकुट का अति सुन्दर स्वरूप दृष्टिगोचर हो रहा है। आत्माओं का दिल इस अनुपम शोभा को देखकर अटक जाया करता है।

चोली चादर हार झलकत, आकास रह्यो भराए।

तो सोभा मुख मुकट की, किन विध कही जाए॥२२१॥

जामे की चोली, आसमानी रंग की चादर, तथा झलझलाते हुए हारों की ज्योति आकाश में चारों ओर छायी हुई है। ऐसी अवस्था में मुकुट से युक्त श्री राज जी के मुखारविन्द की शोभा को किस प्रकार से कहा जा

सकता है।

मीठी सूरत किसोर की, गौर लाल मुख अधुर।

ए आसिक नीके निरखत, मुख बानी बोलत मधुर॥२२२॥

श्री राज जी का माधुर्यता से परिपूर्ण यह स्वरूप किशोरावस्था का है। उनका मुखारविन्द गौर है तथा होंठ लाल रंग के हैं। सौन्दर्य के सागर रूपी इस मुख से वे अति मधुर वाणी बोलते हैं। मुखारविन्द की इस अद्वितीय शोभा को अँगनायें बहुत अच्छी तरह से देखा करती हैं।

चारों चरन बराबर, सुभान और बड़ी रुह जी।

गौर सब गुन पूरन, सुन्दर सोभा और सलूकी॥२२३॥

युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी के चारों चरण समान रूप से सभी गुणों से पूर्ण हैं। ये अत्यधिक गौर हैं तथा

सुन्दर शोभा को धारण किये हुए हैं। इनकी सुन्दरता अनुपम है।

तेज जोत नूर भरे, लाल तली कोमल।

लाल लांके लीकें क्यों कहूं, रूह निरखे नेत्र निरमल॥२२४॥

युगल स्वरूप के चरण कमल नूरी तेज और ज्योति से भरपूर हैं। इनकी लाल तली बहुत कोमल है। तली की गहराई का स्थान भी बहुत लाल है। उसमें आयी हुई रेखाओं की शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ। इस अलौकिक शोभा को आत्मायें अपने निर्मल (पवित्र) नेत्रों से देखा करती हैं।

चारों तरफों चकलाई, फना अदभुत रूह खँचत।

एड़ियां अति अचरज, इत आसिक तले बसत॥२२५॥

चरणों में चारों ओर सुन्दरता है। पञ्जों का अद्भुत सौन्दर्य आत्माओं को अपनी ओर खींचता है। एड़ियों का सौन्दर्य बहुत ही आश्चर्य में डालने वाला है। परमधाम की आत्मायें इन चरणों के तले निवास करती हैं, अर्थात् उनका ध्यान हमेशा इन चरणों में बना रहता है।

चारों चरन अति नाजुक, जो देखूं सोई सरस।

ए अंग नाहीं तत्व के, याकी जात रूह अर्स॥२२६॥

युगल स्वरूप के चारों चरण बहुत कोमल हैं। जिसे देखती हूँ, वही बहुत सुन्दर लगता है। ये अंग पञ्चभूतात्मक नहीं हैं। परमधाम की आत्मायें इन्हीं अंगों की नूर स्वरूपा हैं।

भावार्थ— परमधाम में एकरसता होने से बाह्य अंगों और दिल में कोई भेद नहीं होता है। इस प्रकार दिल के अंग

या नूर और बाह्य अंगों के नूर के कथन में कोई भेद नहीं है।

ए मेहेर करें चरन जिन पर, देत हिरदे पूरन सरूप।

जुगल किसोर चित्त चुभत, सुख सुन्दर रूप अनूप॥२२७॥

युगल स्वरूप के इन चरणों की जिन पर मेहर हो जाती है, उनके धाम हृदय में श्री राजश्यामा जी का पूर्ण स्वरूप विराजमान हो जाता है। युगल किशोर श्री राजश्यामा जी का यह स्वरूप अति सुन्दर है, सुखदायी है, और अनुपम है, जो आत्माओं के हृदय (चित्त) में अखण्ड हो जाता है।

जुगल किसोर अति सुन्दर, बैठे दोऊ तखत।

चरन तले रूहों मिलावा, बीच बका खिलवत॥२२८॥

मूल मिलावे में सिंहासन पर विराजमान श्री राजश्यामा जी का स्वरूप अत्यन्त सुन्दर है। अखण्ड परमधाम के मूल मिलावा में सभी सखियाँ उनके चरणों में एक साथ मिलकर बैठी हुई हैं।

महामत कहे मेहेबूब की, जेती अर्स सूरत।

सो सब बैठीं कदमों तले, अपनी ए निसबत॥२२९॥

श्री महामति जी कहते हैं कि श्री राज जी की परमधाम में जो भी अँगनायें हैं, वे मूल मिलावा में उनके चरणों में बैठी हुई हैं। इन्हीं धनी के चरणों से हमारा अखण्ड सम्बन्ध है।

प्रकरण ॥२१॥ चौपाई ॥१४४६॥

सिनगार कलस तिन सिनगार बरनन विरहा रस

विरह के भावों में वर्णित किया गया यह श्रृंगार आत्माओं के हृदय में प्रियतम के विरह की अग्नि को प्रज्वलित करता है, इसलिये श्रृंगार के इस प्रकरण को अब तक वर्णित सभी श्रृंगारों के ऊपर कलश के रूप में माना गया है।

क्यों बरनों हक सूरत, अब लों कही न किन।

ए झूठी देह क्यों रहे, सुनते एह बरनन॥१॥

मैं अक्षरातीत की शोभा का इस संसार में कैसे वर्णन करूँ, जिसे आज दिन तक कोई भी नहीं कर सका है। मेरे द्वारा किये हुए इस वर्णन को सुनकर माया का यह तन संसार में नहीं रह सकता।

भावार्थ— इस चौपाई का भाव यह कदापि नहीं समझना

चाहिए कि जो इस प्रकरण को पढ़ लेगा या सुन लेगा, उसकी मृत्यु हो जायेगी। वास्तविकता यह है कि इस प्रकरण के माध्यम से यह दर्शाया गया है कि जो भी सुन्दरसाथ श्रद्धा भाव से इस प्रकरण का चिन्तन-मनन करेंगे, उनका ध्यान हमेशा धाम धनी की शोभा में लगा रहेगा। उनकी विरहाग्नि इतनी बढ़ जायेगी कि वे हमेशा शरीर की उपेक्षा (लापरवाही) करेंगे और इसके मोह बन्धनों से पूर्णतया रहित हो जायेंगे। आगे की चौपाइयों में यही बात प्रकट की गयी है।

**बरनन आसिक कर ना सके, और कोई पोहोंचे न आसिक बिन।
हक जाहेर क्यों होवहीं, देखतहीं उड़े तन॥२॥**

धनी के प्रेम में डूबी हुई आत्मायें अपने प्रियतम की शोभा का वर्णन नहीं कर पातीं। उनके अतिरिक्त अन्य

कोई भी मूल मिलावा में पहुँच ही नहीं पाता। ऐसी स्थिति में अक्षरातीत का स्वरूप कैसे जाहिर होता, क्योंकि यदि इस संसार का कोई प्राणी अक्षरातीत का नूरी स्वरूप देख ले तो उसके शरीर का छूट जाना निश्चित है।

भावार्थ— वेद, उपनिषद, वेदान्त, एवं सन्त वाणियों में अक्षर ब्रह्म की चतुष्पाद विभूति के साक्षात्कार का वर्णन किया गया है—

वेनः तत् पश्यत् परमं गुहां यद् यत्र विश्वं भवति एकरूपम्।

अथर्व २/१/१

गुहां प्रविष्टौ आत्मनौ हि तत्दर्शनात्। वे. द. १/२/११

तत् पश्यति इह एव निहितं गुहायाम्। मु. उ. ३/२

नव द्वारा संसार का, दसवां योगी तार।

एकादश खिड़की खुली, अग्र महल सुखसार॥ स्वर्वेद उपरोक्त कथनों के आधार पर यदि चतुष्पाद ब्रह्म का

साक्षात्कार हो सकता है, तो तारतम ज्ञान के निर्देशन में अक्षरातीत का साक्षात्कार क्यों नहीं हो सकता। अक्षर ब्रह्म की पञ्चवासनाओं ने भी तो विभूति ब्रह्म (अव्याकृत, सबलिक, और केवल) का साक्षात्कार किया था, किन्तु दर्शन से शरीर छूटने का कहीं भी वर्णन नहीं है।

सागर १४/२५, २७ में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि धनी की मेहर से जीव भी अक्षरातीत का साक्षात्कार कर सकता है। "बदले आप देखावत, प्यारी निसबत रखे छिपाए" तथा "लेवे अपनी मेहेर में, तो नेक दीदार कबूँ हक" से यही सिद्ध होता है।

श्रृंगार २१/२ में यह बात कही गयी है कि जिस प्रकार मूल मिलावा में सखियों के तन हैं, उस तरह से सांसारिक प्राणियों का तन अक्षरातीत के नूरी स्वरूप के सामने नहीं ठहर सकता, किन्तु ध्यान द्वारा चैतन्य दृष्टि

से देखने पर कोई भी खतरा नहीं होगा। इतना अवश्य है कि जीव सृष्टि कर्मकाण्ड के बन्धनों को तोड़कर प्रेम की राह पर नहीं चल पाती। आगे की चौपाइयों में यह तथ्य स्पष्ट हो रहा है।

हक देखे वजूद ना रहे, ज्यों दारू आग से उड़त।

यों वाहेदत देखें दूसरा, पाव पल अंग न टिकत॥३॥

जिस प्रकार बारूद आग के स्पर्श मात्र से विस्फोट करके समाप्त हो जाता है, उसी तरह श्री राज जी के नूरी स्वरूप के सामने यह माया का तन नहीं ठहर सकता। इस प्रकार, ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त अन्य कोई भी चौथाई पल के लिये भी धनी के नूरी स्वरूप के सामने नहीं ठहर सकता।

भावार्थ— इस संसार में श्री राज जी के आवेश स्वरूप

का साक्षात्कार तो इन भौतिक आँखों से भी हो सकता है, जैसे सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी को श्याम जी के मन्दिर में हुआ था या नवतनपुरी में आड़िका लीला के समय आवेश स्वरूप का दर्शन होता था। इसी प्रकार श्री पद्मावती पुरी धाम में भी श्री महामति जी के तन से आवेश स्वरूप की लीला होती रही है, जिसका साक्षात्कार सभी सुन्दरसाथ बाह्य आँखों से ही करते थे।

नूरी स्वरूप को देखने के लिये आत्म-चक्षु चाहिए। स्वयं श्री देवचन्द्र जी या श्री महामति जी ने भी आत्म-चक्षुओं से ही परमधाम और अक्षरातीत को देखा है। इस चौपाई के तीसरे चरण में "वाहेदत" शब्द के कथन से यह स्पष्ट है कि यहाँ ब्रह्मसृष्टियों के नूरी तनों का प्रसंग है, पञ्चभौतिक तनों का नहीं।

हक इस्क आग जोरावर, इनमें मोमिन बसत।

आग असल जिनों वतनी, यामें आठों जाम अलमस्त॥४॥

श्री राज जी के प्रेम (इश्क) की अग्नि में बहुत अधिक शक्ति है। ब्रह्मसृष्टियाँ इस प्रेम रूपी अग्नि में निवास करती हैं। जिन आत्माओं के हृदय में परमधाम के प्रेम की अग्नि प्रज्वलित हो जाती है, वे आठों प्रहर उसी में डूबी रहती हैं।

जो निस दिन रहे आग में, ताए आगै के सब तन।

वाको जलाए कोई ना सके, उछरे आगै के वतन॥५॥

जो आत्मायें दिन-रात प्रेम की अग्नि में जलती हैं, उनका सारा शरीर भी प्रेम (इश्क) का ही होता है। उन्हें मायावी विकारों की अग्नि जला नहीं पाती। वे ध्यान द्वारा परमधाम की प्रेममयी अग्नि में उछलती रहती हैं।

भावार्थ- चौथी और पाँचवी चौपाइयों की प्रथम पंक्तियों में परमधाम का प्रसंग है, जबकि दोनों चौपाइयों की नीचे की द्वितीय पंक्ति में इस जागनी ब्रह्माण्ड का प्रसंग है।

आग जिमी पानी आग का, आग बीज आग अंकूर।

फल फूल बिरिख आग का, आग मजकूर आग सहूर॥६॥

परमधाम की धरती और जल प्रेमरूपी अग्नि के हैं। इसी प्रकार वहाँ के बीज, अंकूर, फल, फूल, तथा वृक्ष भी प्रेममयी अग्नि के हैं। वहाँ की बातचीत तथा चिन्तन भी प्रेमाग्नि का है।

भावार्थ- इस चौपाई में रूपक अलंकार के माध्यम से परमधाम की लीला का चित्रण किया गया है। धरती सम्पूर्ण परमधाम के पच्चीस पक्षों का स्वरूप है जिनका धनी के दिल से अखण्ड सम्बन्ध (निस्वत) है। इनके

अन्दर जल रूपी वहदत (एकदिली) का स्वरूप है। धाम धनी के दिल में श्यामा जी सहित सभी सखियों को प्रेम और आनन्द में डुबोने की जो इच्छा होती है, वह बीज है। श्यामा जी के दिल में वह अँकुरित होता है तथा सखियों के दिल में वह वृक्ष का रूप ले लेता है। सखियाँ जब युगल स्वरूप को रिझाती हैं तो प्रेममयी लीला का फूल खिलता है, जिसका फल प्रेम का स्वरूप होता है, किन्तु उसका रस आनन्दमयी होता है।

बिरिख मोमिन आग इस्क, और आग इस्क अर्स।

सब पीवें आग इस्क रस, दिल आगै अरस-परस॥७॥

ब्रह्मसृष्टियों का तन उस वृक्ष के समान है, जो प्रेम रूपी अग्नि का बना हुआ है। सम्पूर्ण परमधाम भी इसी इश्कमयी अग्नि का है। सभी आत्मायें अपने दिल रूपी

प्यालों में प्रेमाग्नि का ही रसपान करती हैं। धाम धनी का हृदय प्रेम रूपी अग्नि का अनन्त भण्डार है। इस प्रकार सखियों के दिल तथा श्री राज जी का दिल आपस में घुले-मिले हैं अर्थात् एकरस हैं।

घर मोमिन आग इस्क में, हक अगनी के पालेल।

सोई इस्क आग देखावने, ल्याए जो माहें खेल॥८॥

ब्रह्मसृष्टियों का अखण्ड निजधाम प्रेमाग्नि में जलता रहता है। धाम धनी के हृदय से प्रज्वलित होने वाली प्रेम की लपटें सम्पूर्ण परमधाम में लीला करती हैं। अपने हृदय की इसी प्रेमरूपी अग्नि की पहचान कराने के लिये ही धाम धनी अपनी अँगनाओं को इस संसार में ले आये हैं।

जो पैदा हुआ आग का, सो आग में जलत नाहें।

वह वजूद आग इस्क के, रहें हमेसा आग माहें॥९॥

जिस प्रकार अग्नि से पैदा हुआ पदार्थ अग्नि में जलता नहीं है, उसी प्रकार ब्रह्मसृष्टियों के तन धनी के हृदय की प्रेम रूपी अग्नि से प्रकट हुए हैं। यही कारण है कि वे हमेशा ही प्रेम की अग्नि में रहते हैं।

सोई बात करें हक अर्स की, सहूर या बेसहूर।

हुए सब विध पूरन पकव, हक अर्स दिन जहूर॥१०॥

इन ब्रह्ममुनियों को चाहे धर्मग्रन्थों या परमधाम का चिन्तन हो अथवा न हो, अक्षरातीत तथा परमधाम की बातें एकमात्र ये ही करते हैं। तारतम ज्ञान रूपी सूर्य के उदित हो जाने पर सभी ब्रह्ममुनि ज्ञान दृष्टि से पूर्णतः परिपक्व (प्रवीण, अग्रणी) हो गये हैं और इन्होंने

अक्षरातीत तथा परमधाम का ज्ञान संसार में प्रकाशित (जाहिर) कर दिया है।

भावार्थ- कलस हिंदुस्तानी ११/१ में कहा गया है कि "जो कदी भूली वतन, तो भी नजर तहां निदान।" इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि तारतम ज्ञान का प्रकाश पाने से पहले भी आत्माओं के दिल में परमधाम का बीज छिपा होता है। यदि उन्हें किसी कारणवश देवी-देवताओं की पूजा करनी पड़ती है या कर्मकाण्डों में लिप्त भी होना पड़ता है, तो भी अन्तरात्मा से यही आवाज आती है कि यह तेरी मन्जिल (लक्ष्य) नहीं है। इस चौपाई के दूसरे चरण में कथित "बेसहूर" शब्द का यही अभिप्राय है।

जो हक देखे टिक्या रहे, सोई अर्स के तन।

सोई करें मूल मजकूर, सोई करे बरनन॥११॥

परमधाम में विद्यमान परात्म के तन ही ऐसे हैं, जो धाम धनी को प्रत्यक्ष देखने या लीला करने पर भी नष्ट नहीं होते। उन्हीं तनों की सुरतायें इस संसार में आने पर परमधाम के इश्क-रब्द का वर्णन करती हैं। एकमात्र उनके द्वारा ही धाम का वर्णन होना सम्भव है।

भावार्थ- इस चौपाई में ऐसा भी माना जा सकता है कि यह प्रसंग इस जागनी ब्रह्माण्ड का है, जिसमें आत्मायें चितवनि के द्वारा सम्पूर्ण परमधाम तथा युगल स्वरूप का दीदार करती हैं, फिर भी उनका तन इसलिये नष्ट नहीं होता क्योंकि उनके मूल तन परमधाम में हैं।

जीवों के मूल तन परमधाम में नहीं हैं, इसलिये यदि वे परमधाम को या श्री राज जी को देखते हैं, तो वे मृत्यु को वैसे ही प्राप्त हो जायेंगे जैसे सूर्य के प्रकाश से छाया नष्ट हो जाती है।

इसके समाधान में इतना ही कहना उचित है कि जब दहकते हुए सूर्य के प्रतिबिम्ब को जल में सरलतापूर्वक आँखों से देखा जा सकता है, तो कोई जीव यदि ब्रह्मवाणी के गहन चिन्तन में डूब जाता है तथा ब्रह्मसृष्टियों के समान ही अटूट विरह-प्रेम द्वारा अँगना भाव से ध्यान द्वारा अपने हृदय में पुकारता है, तो वे कैसे अक्षरातीत हैं जो उसको अपनी एक झलक का भी दर्शन नहीं करा सकते।

जीव का स्वरूप पञ्चभूतात्मक या त्रिगुणात्मक नहीं होता, जो जल जाये। जीव की चेतना भी विशुद्ध प्रेम में अँगना भाव में डूबकर अक्षरातीत का दीदार कर सकती है, किन्तु इसके लिये उसे कर्मकाण्ड की राह छोड़कर ब्रह्मसृष्टियों का प्रेम मार्ग (चितवनि) अपनाना पड़ेगा।

पर ए देख्या अचरज, जो विरहा सब्द सुनत।

क्यों तन रह्या जीव बिना, हाए हाए ए सुनत न अरवा उड़त॥१२॥

लेकिन मैंने यह बहुत ही आश्चर्य की बात देखी है कि विरह के शब्दों को सुनने के पश्चात् प्रियतम के बिना जीव का यह तन क्यों बना हुआ है? हाय! हाय! विरह के शब्दों को सुनकर आत्मा इस तन का परित्याग क्यों नहीं कर देती?

आसिक अरवा कहावहीं, तिन मुख विरहा ना निकसत।

जब दिल विरहा जानिया, तब आह अंग चीर चलत॥१३॥

स्वयं को धनी के प्रेम में डुबोने वाली परमधाम की जो ब्रह्मसृष्टियाँ होती हैं, उनके मुख से विरह की बातें नहीं निकलतीं अर्थात् वे अपने मुख से अपने विरह का बखान नहीं करतीं। जब उनका दिल विरह के रस में डूबा होता

है, तब उनके हृदय से निकलने वाली आहें शरीर के अंग-अंग को चीरती चली जाती हैं।

भावार्थ- दीपक के जलने के पश्चात् पतंगा, पल भर की देर किये बिना, या तो उसे बुझा देता है या स्वयं को समाप्त कर लेता है। वह दीपक का वर्णन नहीं करता। इसी प्रकार परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ अपनी विरहावस्था का बखान नहीं करतीं। कलस हिंदुस्तानी ९/२१ में श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि "जब मैं हुती विरह में, तब मुख बोल्यो न जाय।"

ए हांसी कराई हुकमें, इस्क दिया उड़ाए।

मुरदा ज्यों इस्क बिना, गावत विरहा लड़ाए॥१४॥

धाम धनी के हुक्म ने इस खेल में हँसी की ऐसी लीला की है कि ब्रह्मसृष्टियों के अन्दर से इश्क हटा दिया है।

इश्क के न होने पर माया के अन्धकार में भटकने वाला यह जीव (मुर्दा) विरह की बातों को बहुत प्यार से गाता है।

भावार्थ- इस चौपाई में उन सुन्दरसाथ की ओर संकेत किया गया है जिनकी आत्मा के अन्तःकरण में प्रेम का अँकुर तो नहीं फूटा होता है, किन्तु वे विरह की बातें करके या भजन गाकर अपने को इश्क में डूबा हुआ मान लेते हैं। जल के विरह में तड़पने वाली मछली न तो अपने विरह के गीत गा सकती है और न उसकी चर्चा कर सकती है।

कबूँ अर्स रूहें ऐसी ना करें, जैसी हमसे हुई इन बेर।

अर्स रूहों को विरहा रसें, हुए बेसक न लैयां घेर॥१५॥

इस जागनी ब्रह्माण्ड में हमसे जो भूल हुई है, वैसी भूल

परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ कभी नहीं कर सकती हैं। यद्यपि श्रीमुखवाणी के ज्ञान के प्रकाश में आत्मायें सभी संशयों से रहित हो चुकी हैं, किन्तु विरह के रस में डूब नहीं पायी हैं।

भावार्थ— ब्रज में पूरी नींद होने पर भी धनी के प्रति प्रेम था। रास में भी अधूरी पहचान थी, फिर भी एकमात्र धनी के प्रेम में आत्मायें डूबी रहीं। किन्तु इस जागनी ब्रह्माण्ड में ज्ञान द्वारा सम्पूर्ण पहचान होने पर भी हृदय में विरह—प्रेम का रस नहीं है। यह हमारी बहुत बड़ी भूल है।

चरन तली की जो लीकें, सो एक लीक न होए बरनन।
तो मुख से चरन क्यों बरनवूं, जो नूरजमाल का तन॥१६॥

धाम धनी के चरणों की तली की रेखायें इतनी सुन्दर हैं कि मुझसे एक रेखा की सुन्दरता का भी यथार्थ वर्णन

नहीं हो पा रहा है। ऐसी स्थिति में यह कैसे सम्भव है कि मैं उनके चरण कमल की सम्पूर्ण शोभा का वर्णन कर सकूँगी। धनी के चरण कमल तो उनके तन के ही साक्षात् अंग हैं।

इन चरणों विध क्यों कहूं, नाजुक निपट नरम।

ए बरनन करते इन जुबां, हाए हाए उड़त न अंग बेसरम॥१७॥

मैं इन चरणों की वास्तविक शोभा को शब्दों में कैसे व्यक्त करूँ। ये चरण कमल बहुत कोमल एवं सुकुमार हैं। इस जिह्वा से प्रियतम अक्षरातीत के इन चरण कमलों का वर्णन करते समय हाय! हाय! मेरा यह निर्लज्ज शरीर क्यों नहीं छूटा जा रहा है।

चरन केहेती हों मुखथें, जो निरखती थी निस दिन।

सो समया याद न आवहीं, क्यों न लगे कलेजे अगिन॥१८॥

मुझे अब वह समय क्यों नहीं याद आ रहा है, जब मैं अपने प्राणवल्लभ के चरण कमल को परमधाम में दिन-रात देखा करती थी। अब मैं उन्हीं चरणों की शोभा को शब्दों में कहने बैठ गयी हूँ। इस शोभा को कहते समय भी मेरे हृदय में विरह-प्रेम की अग्नि क्यों नहीं जल पा रही है।

चरन अंगूठे चित्त दे, नैनों नखन देखती जोत।

नजरों निमख न छोड़ती, हाए हाए सो अब लोहू भी ना रोत॥१९॥

मैं परमधाम में अपने नेत्रों से श्री राज जी के चरण के अँगूठों तथा उनके नखों से निकलने वाली ज्योति को बहुत ही ध्यानपूर्वक देखा करती थी। उस शोभा को मैं

एक क्षण के लिये भी छोड़ती नहीं थी। हाय! हाय! मेरे हृदय की इस कठोरता के लिये मेरी आँखों से खून के आँसू क्यों नहीं निकल रहे हैं।

भावार्थ- "खून के आँसू बहाना" एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है - बहुत दुःखी होकर विलाप करना।

नैनों अंगुरियां देखती, कोमलता हाथ लगाए।

सो मेरे नैन नाम धराए के, हाए हाए जल बल क्यों न जाए॥२०॥

मेरे प्राणवल्लभ! आपके चरण कमल की अँगुलियों की कोमलता को हाथों से छू-छूकर अपने नेत्रों से देखा करती थी। अब मेरे वही नेत्र (परात्म के) मेरी हँसी करा रहे हैं कि मैं इस समय उन अँगुलियों को क्यों नहीं देख पा रही हूँ। हाय! हाय! मेरे ये नेत्र (आत्मा के) जलकर

राख क्यों नहीं हो जाते।

चरन तली रेखा देखती, मेरी आंखों नीके कर।

ए कटाव किनार पर कांगरी, हाए हाए नैना जले न नाम धर॥२१॥

हे धनी! आपके चरण की तलियों की रेखाओं को मैं अपनी आँखों से बहुत अच्छी तरह देखा करती थी। तलियों के किनारे जो बेल-बूटों एवं काँगरी के चित्र आये हैं, हाय! हाय! उनको देखकर वर्णन कराने वाले मेरे ये नेत्र जलकर राख क्यों नहीं हो जाते।

भावार्थ- "नाम धरने" का तात्पर्य वर्णन करने से है। श्री महामति जी के धाम हृदय से इन चौपाइयों में विरह की पीड़ा के जो स्वर फूट रहे हैं, उनका आशय यह है कि परमधाम में जिस शोभा को मैं निरन्तर देखा करती थी, अब उसी शोभा को थोड़ा सा देखकर धनी के हुक्म

से वर्णन कर रही हूँ। यदि यह माया का पर्दा नहीं होता , तो मैं पहले की तरह शोभा में दिन-रात डूबी रहती।

रंग लाल कहूँ के उज्जल, के देख खूबियां होत खुसाल।
 सो देखन वाले नाम धराए के, हाए हाए ओ जले न माहें क्यों झाल॥२२॥
 मेरे प्रियतम! आपके चरण कमल के रंग को लाल कहूँ या उज्ज्वल कहूँ। या इनकी शोभा की विशेषताओं को देख-देखकर आनन्दित हुआ करूँ। इस जागनी ब्रह्माण्ड में जिन नेत्रों से मैं देख-देखकर वर्णन कर रही हूँ, हाय! हाय! मेरे ये नेत्र (आत्मा के) अग्नि की लपटों में जलकर राख क्यों नहीं हो जाते।

भावार्थ- इन दोनों चौपाइयों में नेत्रों के लिये इतने कठोर शब्दों का प्रयोग करने का कारण विरह की पीड़ा है। आत्मा परमधाम की तरह लगातार देखना चाहती है,

जो इस ब्रह्माण्ड में सम्भव नहीं है। उसी विरह की यह अभिव्यक्ति है।

नाजुक सलूकी मीठी लगे, नैना देखत ना तृपिताए।

हाए हाए ए अनुभव दिल क्यों भूलै, ए हुकमें भी क्यों पकराए॥२३॥

धनी के चरणों की तलियाँ अति कोमल, सुन्दर, और माधुर्य रस से भरपूर हैं। इनको देखने पर नेत्र कभी भी तृप्त नहीं होते थे। हाय ! हाय! परमधाम में चरणों की तलियों के मधुर अनुभव को मेरा दिल कैसे भूल सकता है। धनी के हुक्म ने भी हमें यह माया का खेल क्यों पकड़ा दिया है अर्थात् भेज दिया है।

भावार्थ- इस खेल में आने के कारण ही अपने परात्म के नेत्रों से धाम धनी की शोभा को नहीं देख पा रहे हैं। यदि धाम धनी के हुक्म से माया के इस खेल में नहीं

आते, तो पहले की तरह आनन्द लेते। इस चौपाई में विरह के भावों में यही बात दर्शायी गयी है।

नाम जो लेते विरह को, मेरी रसना गई ना टूट।

सो विरहा नैनों देख के, हाए हाए गैयां न आंखां फूट॥२४॥

मेरी यह जिह्वा बार-बार विरह का बखान क्यों कर रही है। यह टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो जाती। मेरी ये आँखें विरह की लीला को प्रत्यक्ष देख रही हैं। हाय! हाय! यह दिन देखने से पहले ही ये फूट क्यों नहीं गयीं।

भावार्थ- इस प्रकरण में आँखों, कानों, जिह्वा आदि के लिये विरह के भावों में जो दण्डात्मक बातें कही गयी हैं, वे मात्र आत्मा की रसना, आँखों, कानों आदि इन्द्रियों के लिये हैं, परात्म या पञ्चभौतिक तन की इन्द्रियों के लिये नहीं। महामति जी की आत्मा के हृदय की यही पीड़ा है

कि मैं परमधाम में परात्म के नेत्रों, जिह्वा, कानों आदि से प्रियतम के जिस प्रेम, दर्शन, आनन्द आदि की प्राप्ति करती थी, वह आत्मा के द्वारा क्यों नहीं प्राप्त कर पा रही हूँ। इसी व्यथा में वे अपनी आत्मा को सम्बोधित करके कह रही हैं।

जब तक खेल चल रहा है, तब तक परात्म के द्वारा कोई भी लीला हो नहीं सकती तथा इस पञ्चभौतिक तन की इन्द्रियों की वहाँ पहुँच नहीं है। इस प्रकार यह सारा प्रसंग आत्मा के लिये सम्बोधित है। यद्यपि आत्मा के नेत्रों को अग्नि में जलाया नहीं जा सकता , किन्तु यह भावात्मक अभिव्यक्ति है।

हक बानी कानों सुनती, कानों सुन के करती मैं बात।

सो अवसर हिरदे याद कर, हाए हाए नूर कानों का उड़ न जात॥२५॥

हे धनी! मैं परमधाम में अपने कानों से आपकी अमृत से भी अनन्त गुनी मीठी बातों को सुना करती थी तथा आपसे प्रेम भरी बातें किया करती थी। जब मैं उस अवसर को याद करती हूँ तथा इस संसार में आपसे बातें करने में अपनी असमर्थता देखती हूँ, तो मुझे यही कहना पड़ता है कि हाय!हाय! मेरे कानों की सुनने की शक्ति (नूर) ही क्यों नहीं समाप्त हो जाती अर्थात् मैं बहरी क्यों नहीं हो जाती।

क्यों कहूं चरन के भूखन, अर्स जड़ सबे चेतन।

सोभा सुन्दर सब दिल चाही, बोल बोए नरम रोसन॥२६॥

मैं धाम धनी के चरणों के आभूषणों का कैसे वर्णन करूँ। परमधाम में जड़ समझे जाने वाले ये आभूषण भी चेतन हैं। ये अति सुन्दर हैं तथा इनकी शोभा सबके दिल

की इच्छानुसार होती है। इनकी बोली अत्यन्त मधुर है। ये अलौकिक सुगन्धि, कोमलता, तथा ज्योति से भरपूर हैं।

क्या वस्तर क्या भूखन, असल अंग के नूर।

हाए हाए रूह मेरी क्यों रही, करते एह मजकूर॥२७॥

परमधाम में चाहें वस्त्र हों या आभूषण , सभी मूलतः अंगों का नूर हैं, अर्थात् धाम धनी के अंगों का नूर ही वस्त्रों और आभूषणों के रूप में शोभायमान हो रहा है। हाय! हाय! इस तरह की बातें करते हुए भी मेरी आत्मा इस संसार में कैसे रह पा रही है, यह बहुत आश्चर्य की बात है।

रंग रेसम हेम जवेर, ना तेज जोत सब्द लगत।

एही अचरज अरवाहें अर्स की, ए सुनते क्यों ना उड़त॥२८॥

इस संसार के रंग, रेशम, स्वर्ण, जवाहरात, तेज, तथा ज्योति आदि शब्दों से परमधाम की वास्तविक शोभा का वर्णन नहीं हो सकता। सबसे अधिक आश्चर्य तो इस बात पर हो रहा है कि धाम धनी की इस प्रकार की अलौकिक शोभा का वर्णन सुनकर भी आत्मायें इस झूठे संसार को क्यों नहीं छोड़ पा रही हैं।

याही भांत इजार की, भांत भूखन की सब।

रूप करें कई दिल चाहे, जैसा रूह चाहे जब॥२९॥

जिस तरह से आभूषणों की शोभा है, उसी प्रकार से इजार आदि वस्त्रों की भी शोभा है। परमधाम में ब्रह्मसृष्टियाँ अपने दिल में जैसी इच्छा करती हैं, उसके

अनुसार ही इजार के भी अनेक रूप हो जाते हैं।

इजार बंध याही रस का, भांत भांत झलकत।

देख लटकते फुंदन, हाए हाए अरवा क्यों न कढ़त॥३०॥

इसी प्रकार की अलौकिक शोभा को धारण किए हुए इजारबन्द (चूड़ीदार पाजामे को बाँधने की डोरी) भी है, जो अनेक रूपों में झलकार कर रहा है। हाय ! हाय! उसके लटकते हुए फुँदनों को देखकर भी आत्मायें इस झूठे संसार को क्यों नहीं छोड़ पा रही हैं।

चरन से कमर लग, भूखन या वस्तर।

हेम जवेर या रेसम, सब एकै रस बराबर॥३१॥

धाम धनी के चरण कमल से लेकर कमर तक के वस्त्रों या आभूषणों में स्वर्ण , जवाहरात, या रेशम आदि जो

कुछ भी प्रयुक्त हुए हैं, सभी एक रस हैं अर्थात् नूरमयी हैं
और सबकी शोभा समान है।

दिल चाही नरम सोभित, दिल चाही जोत खुसबोए।

जिन खिन जैसा दिल चाहे, सब विध दें सुख सोए॥३२॥

आत्माओं के हृदय की इच्छानुसार इजार की अत्यन्त कोमल शोभा हो जाती है। दिल की इच्छानुसार ही उसमें ज्योति और सुगन्धि भी दिखायी पड़ती है। ब्रह्मात्माओं के हृदय में जिस क्षण जैसी इच्छा होती है, उसी क्षण इजार उसी प्रकार का सुख देती है।

कई रंग हैं इजार में, उठत जामें में झांई।

अरवा क्यों सखत हुई, दिल देख उड़त क्यों नाहीं॥३३॥

इजार में अनेक प्रकार के रंग हैं, जिनकी झलक जामे

के अन्दर दिखायी पड़ती है। मुझे इस बात पर बहुत आश्चर्य हो रहा है कि मेरी आत्मा का हृदय इतना कठोर क्यों हो गया है, जो इतनी शोभा को देखकर भी इस संसार से नाता नहीं तोड़ पा रहा है।

आसमान जिमी के बीच में, भरी जोत उठें कई रंग।

घट बढ़ काहूँ है नहीं, करें दिल चाही कई जंग॥३४॥

इजार से उठने वाली ज्योति धरती और आकाश के बीच में चारों ओर फैली हुई है। इस ज्योति से अनेक रंगों की किरणें उठ रही हैं। ये सभी किरणें आपस में बराबर हैं। इनमें कोई भी कम या अधिक नहीं है। ये सभी दिल की इच्छानुसार अनेक प्रकार से टकरा रही हैं तथा आपस में युद्ध सी करती हुई प्रतीत हो रही हैं।

ए सब विध दिल देखत, करे जुबां अकल बरनन।

तो भी अरवा ना उड़ी, कोई सखत अंतस्करन॥३५॥

इस सम्पूर्ण शोभा को मेरी आत्मा का हृदय देख रहा है तथा मेरी जिह्वा एवं बुद्धि से धनी के आदेश की छत्रछाया में वर्णन हो रहा है। इतने पर भी यदि मेरी आत्मा इस संसार को नहीं छोड़ पा रही है, तो इसका निष्कर्ष यही है कि मेरा हृदय कहीं न कहीं कठोर हो गया है।

दिल सखत बिना इन सरूप की, इत लज्जत लई न जाए।

ए हुकम करत सब हिकमतें, हक इत ए सुख दिया चाहें॥३६॥

अक्षरातीत के स्वरूप का रसास्वादन इस संसार में बिना दिल के कठोर हुए सम्भव नहीं है। धाम धनी ब्रह्मसृष्टियों को इस संसार में भी परमधाम के सुखों का स्वाद देना चाहते हैं, इसलिये उनके ही हुकम की कला

से ऐसा हो रहा है कि आत्माओं के हृदय में कठोरता आ गयी है।

भावार्थ- यदि इस संसार में आत्माओं का हृदय कठोर न हो, तो प्रियतम के दीदार के पश्चात् एक पल भी वे संसार में नहीं रहना चाहेंगी। ऐसी स्थिति में जागनी का सारा कार्य ही बन्द हो जायेगा। यही कारण है कि धाम धनी के आदेश ने आत्माओं के हृदय में कुछ कठोरता ला दी है, जिसके कारण वे संसार में रहते हुए विरह-प्रेम द्वारा चितवनि में प्रियतम का दर्शन करती हैं। उनका विरह इतना नहीं बढ़ पाता कि शरीर छूट जाये।

ए रूह के नैनों देखिए, नाजुक कमर निपट।

अति देखी सुन्दर चढ़ती, कही जाए न सोभा कटि॥३७॥

हे साथ जी! अपनी आत्मा के नेत्रों से श्री राज जी की

कमर की शोभा को देखिए जो अत्यन्त कोमल है। यह शोभा पल-पल बहुत अधिक बढ़ती हुई दिखती है। कमर की इस अद्वितीय शोभा का शब्दों में वर्णन हो पाना सम्भव नहीं है।

कटि कमर सलूकी देख के, नैना क्यों रहे अंग को लाग।
 ए बातें दिल से विचारते, हाए हाए लगी न दिल को आग॥३८॥

धाम धनी की कमर की इस अद्वितीय सुन्दरता को देखकर भी मेरे ये नेत्र यहाँ के तन में क्यों हैं। हाय! हाय! इस शोभा को अपने दिल में विचारने पर भी इसमें आग क्यों नहीं लग जा रही है।

भावार्थ- आत्मा जीव के ऊपर ही विराजमान होती है तथा जीव का निवास पञ्चभौतिक तन है, इसलिये इस चौपाई में आत्मिक नेत्रों का सम्बन्ध इस पञ्चभौतिक तन

से भी जोड़ दिया गया है।

ए गौर रंग लाल उज्जल, छाती कई विध देत तरंग।

नाहीं निमूना जोत जवेर, जो दीजे अर्स के नंग॥३९॥

छाती का रंग अत्यन्त गौर है। यह लालिमा मिश्रित उज्ज्वलता लिये हुए है। इससे अनेक प्रकार की नूरी तरंगें उठती हैं। छाती की शोभा इतनी अधिक है कि परमधाम के जवाहरातों के नगों की ज्योति से भी उसकी उपमा नहीं दी जा सकती।

भावार्थ- यद्यपि परमधाम में वहदत है , किन्तु ऐसा कहना श्री राज जी की छाती की शोभा की गरिमा को दर्शाना है।

हैड़ा हक का देख कर, मेरा जीव रह्या अंग माहें।

हाए हाए मुरदा दिल मेरा क्यों हुआ, ए देख चलया नाहें॥४०॥

श्री राज जी के वक्षस्थल की सुन्दरता को देखकर मेरा जीव भी उसी अंग की शोभा में डूब गया है। हाय! हाय! इस अनुपम शोभा को देखकर भी मेरा दिल इस प्रकार प्राणहीन (निर्जीव) क्यों बना रहा। इस शोभा को देखकर उसने इस शरीर का परित्याग क्यों नहीं कर दिया।

भावार्थ- इस चौपाई में "मुर्दा" शब्द का भावात्मक अर्थ है- निष्क्रिय होना अर्थात् पत्थर की तरह इस प्रकार शुष्क एवं भावना से रहित होना कि उसके ऊपर सौन्दर्य, प्रेम, और आनन्द आदि का कोई प्रभाव न पड़े। आत्मा को होने वाली अनुभूति जीव को भी प्राप्त होती है। इसी सन्दर्भ में इस चौपाई में जीव का कथन किया गया है।

हक हैड़ा देखकर, मेरे हैड़े रहेत क्यों दम।

मांग्या सुख इत देवे को, सो राखत मासूक हुकम॥४१॥

धाम धनी के हृदय कमल की सुन्दरता को देखकर मेरे सीने (हृदय) में अभी भी सांस क्यों चल रही है। हमने परमधाम में धाम धनी से यह मांग की थी कि संसार में जाने पर भी हमें परमधाम का सुख मिलता रहे। इसलिये श्री राज जी ने अपने आदेश (हुकम) से हमारे तन को जीवित रखा है, अन्यथा उनके हृदय कमल की शोभा को देखने के पश्चात् विरह में अपना यह तन छूट जाता।

हाथ पांउं मेरे क्यों रहे, देख हक हाथ पांउं।

हाए हाए ए जुलम क्यों सह्या, क्यों भूले अवसर दाउ॥४२॥

श्री राज जी के हाथ तथा चरणों की सुन्दरता को देखकर भी मेरे हाथ-पैर अभी क्यों हैं। हाय! हाय! मैंने

अपने प्रेम के ऊपर इस प्रकार का अत्याचार कैसे सहन कर लिया। धनी के प्रेम में तन छोड़ने का यह सुनहरा अवसर मैंने खो दिया।

भावार्थ- श्री महामति जी द्वारा इस चौपाई में यह बात दर्शायी गयी है कि जब इस संसार का Love Bird जैसा पक्षी थोड़ी देर के लिये भी अपने जीवन साथी का वियोग सह नहीं पाता तथा तड़प-तड़प कर प्राण छोड़ देता है, तो मैंने अपने प्राणवल्लभ के हाथों तथा पैरों की अनन्त सुन्दरता को देखा है, फिर भी मेरी नजरों में यह शरीर और संसार दिखायी पड़ रहा है। प्रियतम के वियोग का मेरे शरीर पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा है और मैं प्रसन्नतापूर्वक इस संसार में रह रही हूँ। इसका तात्पर्य यह है कि माया-मोह के द्वारा मेरे आत्मिक प्रेम पर जो अत्याचार हुआ है, उसे मैंने सरलतापूर्वक सहन कर

लिया है। मैंने प्रेम में समर्पण और त्याग का सुनहरा अवसर खो दिया है, क्योंकि प्रियतम के वियोग में भी संसार मुझे अच्छा लग रहा है। क्या मेरा स्तर माया की Love Bird से भी छोटा है?

चकलाई दोऊ खभन की, अंग उतरता सलूक।

देख कमर कटि पतली, हाए हाए दिल होत ना टूक टूक॥४३॥

दोनों कन्धों की संरचना तथा उनके नीचे तक का भाग बहुत सुन्दर है। धाम धनी की अति पतली कमर की सुन्दरता को देखकर हाय! हाय! मेरे इस दिल के टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो जाते।

भावार्थ- दिल के टुकड़े-टुकड़े होने का अर्थ है- प्रेम में इतना डूब जाना कि दिल स्वयं को ही पूर्णतया भूल जाये। उसे प्रियतम के अतिरिक्त अन्य कुछ भी न

दिखायी पड़े।

मैं देख्या अंग जामे बिना, नाजुक जोत नरम।

ए केहेनी में न आवहीं, ए अंग होएं न मांस चरम॥४४॥

मैंने श्री राज जी के अंगों को बिना जामे के भी देखा, तो वह अति कोमल, सुकुमार, तथा नूरी ज्योति से परिपूर्ण दृष्टिगोचर हुआ। धनी के अंग माँस और चमड़े के नहीं हैं। उनकी शोभा को किसी प्रकार से भी शब्दों में नहीं कहा जा सकता।

जामे दावन बांहें चोली, सिंध सागर रल्या मानो खीर।

जोत भरी जिमी आसमान, मानो चलसी ऊपर चीर॥४५॥

जामे का दामन (नीचे का घेरा), बाँहों तथा चोली (वक्ष स्थल) के भाग इस प्रकार दिखायी दे रहे हैं, जैसे दूध

का उज्ज्वल समुद्र बह रहा हो। उससे उठने वाली ज्योति धरती से लेकर आकाश तक फैल रही है। ऐसा लगता है कि यह ज्योति आकाश को चीरते हुए अभी और ऊपर जायेगी।

चीन मोहोरी बगल या बीच, गिरवान कोतकी नकस।

सब जामा जानों के भूखन, ठौर एक दूजे पे सरस॥४६॥

जामे के किनारे, बाँहों की कलाई, दोनों बगलों या बीच में, और गले के भाग में भरत का काम किया गया है। ऐसा लगता है जैसे जामे के ये भाग आभूषणों के समान जगमगा रहे हैं। जामे के सभी भाग एक-दूसरे से अधिक अच्छे लगते हैं।

जब जैसा दिल चाहत, तिन खिन तैसा देखत।

वस्तर भूखन हक अंग के, केहेनी में न आवत॥४७॥

जिसके हृदय में जैसी इच्छा होती है, उसे उसी क्षण वैसी ही शोभा दिखायी देने लगती है। सभी वस्त्र एवं आभूषण धाम धनी के ही अंगों के नूरी स्वरूप हैं। इनकी शोभा को शब्दों में नहीं कहा जा सकता।

ए वस्तर भूखन भांत और हैं, अर्स अंग का नूर।

जो सोभा देत इन अंग को, सो क्यों आवे माहें सहूर॥४८॥

इन वस्त्रों तथा आभूषणों की संरचना संसार से कुछ अलग ही है। ये परमधाम में विराजमान श्री राज जी के अंगों के नूर का स्वरूप हैं। जो वस्त्र एवं आभूषण धाम धनी के अंगों को शोभा देते हैं, उनका चिन्तन भला कैसे हो सकता है।

और क्या चीज ऐसी अर्स में, जो सोभा देवे सरूप को।

हक सरभर कछू न आवहीं, रूह देखे विचार दिल मों॥४९॥

परमधाम में ऐसी और कौन सी वस्तु है, जो श्री राज के अंगों को शोभा दे सकती है? यदि आत्मायें अपने हृदय में इस बात का विचार करें, तो यही निश्चित होगा कि परमधाम में धाम धनी की शोभा के बराबर कोई भी वस्तु नहीं है।

भावार्थ- लौकिक जगत में पञ्चभौतिक तन की अपेक्षा जवाहरात अधिक सुन्दर होते हैं, किन्तु परमधाम में इसके विपरीत है। श्री राज जी के नूर से ही सभी वस्त्र-आभूषण एवं परमधाम के पच्चीस पक्ष हैं, इसलिये इन आभूषणों से श्री राज जी की शोभा का बढ़ना सम्भव नहीं है, किन्तु लीला रूप में ऐसा लौकिक भावों के अनुसार ही कहा गया है। संसार में शरीर की नग्नता को

ढकने के लिये वस्त्रों, एवं अंग विशेष की सुन्दरता को बढ़ाने या दर्शाने के लिये आभूषणों की आवश्यकता पड़ती है। इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति परमधाम के श्रृंगार में भी हुई है।

ए निपट बात बारीक है, अर्स रूहें करना विचार।

और कोई होवे तो करे, बात अलेखे अपार॥५०॥

यह बात बहुत ही गहन है। परमधाम की आत्माओं को इस पर विचार करना होगा। स्वलीला अद्वैत परमधाम में यदि ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त अन्य कोई हो, तब तो इस पर विचार भी करे। अक्षरातीत के अंगों की शोभा से सम्बन्धित इस बात की महत्ता इतनी अनन्त है कि उसे शब्दों में नहीं कहा जा सकता।

सोभा हक के अंग की, सो अंग ही की सोभा अंग।

ऐसी चीज कोई है नहीं, जो सोभे इन अंग संग॥५१॥

श्री राज जी के अंगों में वस्त्रों तथा आभूषणों के रूप में जो शोभा दिखायी पड़ रही है, वह उनके अंगों के नूर (अंग) की ही शोभा है। परमधाम में ऐसी अन्य कोई भी वस्तु नहीं है, जो धाम धनी के अंगों के समान शोभायमान हो सके।

भावार्थ- श्री राज जी के अंगों का नूर ही वस्त्रों तथा आभूषणों के रूप में दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार वे अंग के अंग (नूर) हैं। इस चौपाई के दूसरे चरण में "अंग" शब्द के दो बार प्रयोग करने का यही कारण है।

कहूं पटुके की सलूकी, के ए भूखन कहूं कमर।

ए छब फब दिल देख के, न जानों रूह रहेत क्यों कर॥५२॥

मैं धाम धनी की कमर में सुशोभित होने वाले पटुके की शोभा का वर्णन करूँ या अन्य आभूषणों का वर्णन करूँ। यद्यपि मेरा दिल इस अद्वितीय शोभा को देख रहा है, फिर भी पता नहीं क्यों मेरी आत्मा इस झूठे शरीर और संसार में फँसी हुई है।

ए कहे जाए न वस्तर भूखन, ए चीज दुनियां के।

जो सोभा देत हक अंग को, ताए क्यों नाम धरिए ए॥५३॥

श्री राज जी के नूरी वस्त्रों तथा आभूषणों की शोभा का वर्णन नहीं हो सकता। वस्त्र और आभूषण तो इस संसार के पदार्थ हैं। अक्षरातीत के अंगों में सुशोभित होने वाले पदार्थों को वस्त्र और आभूषण के नाम से नहीं कहा जा सकता।

भावार्थ— स्वलीला अद्वैत परमधाम में इस संसार की

तरह वस्त्रों एवं आभूषणों के नामों की मान्यता नहीं है। यह तो मात्र लीला में अपने भावों की अभिव्यक्ति है। क्या श्यामा जी के श्रृंगार को साड़ी, ब्लाउज, और पेटीकोट वाले हिन्दू श्रृंगार के सीमित बन्धन में बाँधा जा सकता है? इसी प्रकार अनन्त ब्रह्माण्डों के स्वामी अक्षर ब्रह्म के प्रियतम अक्षरातीत को भी इजार, पटुका, चादर, और जामे की सीमा में कदापि नहीं बाँधा जा सकता।

हक के अंग का नूर जो, ए रूहों अर्स में सुध होत।

इत सब्द न कोई पोहोंचहीं, जो कोट रोसन कहूं जोत॥५४॥

परमधाम में मात्र ब्रह्मसृष्टियों को ही इस बात की सुध है कि श्री राज जी के अंगों का नूर ही वस्त्रों एवं आभूषणों के रूप में दृष्टिगोचर होता है। यदि मैं करोड़ों सूर्यों के प्रकाश से इन वस्त्रों एवं आभूषणों की ज्योति की उपमा

दूँ तो भी ये शब्द परमधाम तक नहीं पहुँच सकेंगे।

नख अंगुरीयां अंगूठे, कोई दिया न निमूना जाए।

जोत क्यों कहूँ इन मुख, रहे अंबर जिमी भराए॥५५॥

धाम धनी के अँगूठों तथा अँगुलियों के नखों की ज्योति की उपमा इस संसार में किसी से भी नहीं दी जा सकती। मैं इस मुख से नखों की ज्योतिर्मयी शोभा का कैसे वर्णन करूँ। नखों की ज्योति तो धरती से लेकर आकाश तक सर्वत्र छायी हुई है।

पतली अंगुरियां उज्जल, सोभा क्यों कहूँ मुंदरियों मुख।

ए देखे रूह मोमिन, सोई जानें ए सुख॥५६॥

श्री राज जी के हाथ की अँगुलियां बहुत ही उज्ज्वल एवं पतली हैं। धाम धनी ने उनमें मुद्रिकाएँ धारण कर रखी

हैं, जिनकी शोभा का वर्णन मैं इस मुख से कैसे करूँ।
ब्रह्ममुनियों की आत्मायें ही इस शोभा को देखती हैं और
मात्र वही इस दर्शन के आनन्द को जानती हैं।

लीकें हथेली उज्जल, सलूकी पोहोंचों ऊपर।
ए बेवरा केहेते अकल, हाए हाए अरवा रहेत क्यों कर॥५७॥
हथेली की रेखायें बहुत उज्ज्वल हैं। पञ्जों के ऊपर
पोहोंचों की अति सुन्दर शोभा आयी है। इनकी अनुपम
शोभा का वर्णन मैं यहाँ की ही बुद्धि से कर रही हूँ?
आश्चर्य है कि इस शोभा को देखकर भी आत्मा इस
संसार में फँसी पड़ी है।

पोहोंची काड़ों कड़े झलकत, हेम जवेर कई रंग रस।
दिल चाह्या रूप रंग ल्यावहीं, जो देखिए सोई सरस॥५८॥

हाथों की कलाइयों में पोहोंची , कड़े, और कड़ी की झलकार हो रही है। स्वर्ण में अनेक रंगों के जवाहरातों को जड़कर इनकी संरचना आयी है। इनमें प्रेम, सुगन्धि, कोमलता, तथा आनन्द आदि का रस भरा हुआ है। इन आभूषणों के रूप-रंग दिल की इच्छानुसार बदलते रहते हैं। इन आभूषणों में जिसे भी देखते हैं, वही अन्य की अपेक्षा अधिक अच्छा लगता है।

मोहोरी चूड़ी बाँहे बाजू बंध, सोभा बारीक कई बरनन।
नाम लेत इन चीज का, हाए हाए अरवा उड़त ना मोमिन॥५९॥
 जामे की बाँहों की मोहरी पर चुन्नटे हैं तथा बाजुओं पर बाजूबन्दों की शोभा आयी है, जिनका कई बार सूक्ष्मता (गहराई) से वर्णन किया जा चुका है। अनुपम शोभा वाले इन वस्त्रों तथा आभूषणों का वर्णन करने पर भी हाय !

हाय! आत्मायें इस संसार को नहीं छोड़ पा रही हैं।

हक हुकम राखत जोरावरी, बात आई ऊपर हुकम।

ना तो रहे ना सुन वचन, पर ज्यों जानें त्यों करें खसम॥६०॥

अब सारी बात धाम धनी के हुकम पर आ जाती है।
वस्तुतः धनी के आदेश (हुकम) की शक्ति ने ही
ब्रह्मसृष्टियों के तनों को रोक रखा है, अन्यथा श्री राज
जी के अखण्ड स्वरूप का वर्णन सुनकर यह तन रह ही
नहीं सकता। अन्त में यही कहना पड़ता है कि हे धाम
धनी! अब आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा ही कीजिए।

सोभा लेत हैड़े खभे, कर हेत सुनत श्रवन।

विचार किए जीवरा उड़े, या उड़े देख भूखन॥६१॥

धाम धनी के वक्षस्थल तथा दोनों कन्धों की शोभा

अनुपम है। प्रियतम अक्षरातीत अपनी अँगनाओं की बात बहुत प्रेम से अपने कानों से सुनते हैं। यदि इस प्रेममयी लीला का केवल विचार किया जाये या इन आभूषणों की शोभा की झलक भी देख ली जाये, तो जीव इस संसार को छोड़ देने के लिए तत्पर हो जाता है।

भावार्थ— इस चौपाई में यह संशय होता है कि यहाँ "जीवरा" शब्द का अभिप्राय किससे है— आत्मा से या जीव से?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि विरह जीव का लक्षण है, आत्मा का नहीं। जिन जीवों के ऊपर आत्मा बैठी होती है, प्रायः वही जीव विरह की राह पर चलते हैं। आत्मा परात्म का प्रतिबिम्ब है, इसलिये आत्मा में प्रेम की एकरस स्थिति होती है। कलस हिन्दुस्तानी ९/२३ में अवश्य कहा गया है—

विरहा नहीं ब्रह्माण्ड में, बिना सोहागिन नार।

सोहागिन आत्म पिउ की, वतन पार के पार॥

सामान्य जीव प्रेम-विरह की राह पर नहीं चल पाते। प्रेम और विरह की राह पर मात्र ब्रह्मसृष्टियों के जीव ही चलते हैं। जन्म जन्मान्तरों से दुःखों की अग्नि में जलता हुआ जीव जब आत्मा के सम्बन्ध से ब्रह्मज्ञान का प्रकाश पाता है, तो वह संसार को ठोकर मारकर प्रेम-विरह की राह पर चल पड़ता है। अक्षरातीत, परात्म, तथा आत्मा में प्रेम की एकरस स्थिति होती है। जहाँ भी द्वन्द्वात्मक कथन होता है, वहाँ आत्मा को भी कहीं-कहीं जीव भाव में व्यक्त कर दिया जाता है, जैसे रास लीला में स्वयं अक्षरातीत अपने स्वरूप को जीव कहकर सम्बोधित करते हैं—

एक पल मोहे रे सखियो, कलप अनेक वितीत।
 ए दुख मारो जीव जाणे, सखी प्रेमतणी ए रीत॥
 भीडी ने अंग इंद्रावती, सखी कां करो तम एम।
 जीवन मारा जीवनी, दुख करो एम केम॥
 चित चोरी नीधूं दई चुमन, सखी कहो करूं हूं तेम।
 मारा जीव थकी अलगी नव करूं, जुओ अलवी थैयो जेम॥

रास ४७/३८, ३९, ४०

इसी प्रकार श्रृंगार की इस चौपाई में भी यही भाव व्यक्त किया गया है।

गौर हरवटी अति सुन्दर, या देख के लांक सलूक।
 लाल अधुर देख ना गया, लोहू मेरे अंग का सूक॥६२॥
 श्री राज जी की गोरे रंग की तुड्डी बहुत सुन्दर है। जब मैं

ठुड्डी के ऊपर की गहराई वाले भाग की सुन्दरता को देखती हूँ या उनके लाल-लाल होंठों की मनोहारिता को देखती हूँ, तो मुझे आश्चर्य हो रहा है कि विरह में मेरे अंग-अंग का रक्त क्यों नहीं सूख जा रहा है।

मुख चौक छबि सलूकियां, सुन्दर अति सरूप।

गाल लाल अति उज्जल, सुखदायक सोभा अनूप॥६३॥

श्री राज जी के सम्पूर्ण मुखारविन्द की शोभा और सुन्दरता अद्वितीय है। उनका सम्पूर्ण स्वरूप अति सुन्दर है। लालिमा से भरे हुए दोनों गाल अत्यधिक उज्ज्वलता लिए हुए हैं। अनुपम शोभा को धारण करने वाले दोनों गाल आत्मा को अनन्त सुख देने वाले हैं।

निलवट तिलक नासिका, रंग पल में अनेक देखाए।

दंत बीड़ी मुख मोरत, हाए हाए जीवरा उड़ न जाए॥६४॥

धाम धनी के ललाट पर बना हुआ तिलक नासिका तक आया है, जो एक पल में अनेक रंगों में दिखायी देता है। जब प्रियतम अपने मुख में पान का बीड़ा चबाते हैं, तो उस समय दाँतों तथा मुखारविन्द की जो अद्वितीय शोभा होती है, उसे देखकर हाय! हाय! मेरा यह जीव इस संसार से अपना सम्बन्ध क्यों नहीं तोड़ लेता।

रंग नासिका की मैं क्यों कहूँ, गुन सलूक अदभूत।

सुन्य ब्रह्माण्ड को फोड़ के, अर्स बास लेत बीच नासूत॥६५॥

परमधाम में विराजमान धाम धनी की नासिका के रंग, सुन्दरता, तथा अद्भुत गुणों का मैं कैसे वर्णन करूँ। इस नश्वर संसार में भी मेरे धाम हृदय में विराजमान

अक्षरातीत की नासिका इस ब्रह्माण्ड तथा शून्य-
निराकार को पार करके सम्पूर्ण परमधाम के सुखों
(सुगन्धि) का रसपान कर रही है।

नैन सैन जो करत हैं, सामी रूह मोमिन।

ए सैना दिल लेय के, हाए हाए चिराए न गया ए तन॥६६॥

प्रियतम अक्षरातीत अपनी अँगनाओं के साथ अपने नेत्रों
से जो प्रेम के संकेत करते हैं, उन संकेतों को अपने दिल
में बसाकर भी हाय! हाय! यह तन फटा क्यों नहीं जा
रहा है।

ए नैना नूरजमाल के, देख सलोंने सलूक।

ए सुन नैन बिछोड़ा मोमिन, हाए हाए हो न गए भूक भूक॥६७॥

हे मेरी आत्मा! तू अपने प्राणवल्लभ के अति सुन्दर और

रसीले नेत्रों की ओर देख। प्रियतम के इन मोहक नैनों से वियोग की बातें सुनकर भी हाय! हाय! आत्मायें स्वयं को टुकड़े-टुकड़े करके अर्थात् अपना अस्तित्व मिटाकर न्योछावर क्यों नहीं हो जातीं।

अंबर धरा के बीच में, केस लवने नूर झलकत।

ए सोभा मुख क्यों कहूं, कानों मोती लाल लटकत॥६८॥

लवने तक आये हुए बालों का नूर धरती से लेकर आकाश तक झलकार कर रहा है। कानों में लटकने वाले मोती तथा लाल (माणिक) की आभा गालों पर पड़ रही है। इस अलौकिक शोभा वाले मुख का मैं कैसे वर्णन कर सकती हूँ।

भावार्थ— आँखों की भौंहों के किनारे के सामने तथा कानों के ऊपर का भाग "लवने" कहलाता है।

कानन मोती केहेत हों, पल में बदलत भूखन।

आसिक देखे कई भांतों, सुख देवें दिल रोसन॥६९॥

कानों के आभूषणों की शोभा का वर्णन करते समय मैंने मोतियों का नाम लिया है, किन्तु कानों के आभूषण तो पल-पल बदलते रहते हैं। धनी के प्रेम में डूबी हुई आत्मायें कानों के आभूषणों को कई रूपों में देखती हैं और अपने हृदय को शोभा के प्रकाश से आनन्दित करती हैं।

कानों कड़ी गठौरी-मुरकी, जुगत जिनस नहीं पार।

नाम नंग रंग रसायन क्यों कहूं, रूप खिन में बदलें बेसुमार॥७०॥

श्री राज जी के कानों में कड़ी और गुँथी हुई बालियाँ हैं, जिनकी बनावट की सुन्दरता की कोई सीमा ही नहीं है। जब एक ही क्षण में इन आभूषणों के असंख्य रूप हो

जाते हैं, तो मैं इनके नाम, नगों, रंगों, तथा अलौकिक विशिष्टताओं का कैसे वर्णन कर सकती हूँ।

उज्जल निलाट लाल तिलक, क्यों कहूँ सोभा असल।

सुन्दर सलूकी सरूप की, माहें आवत ना अकल॥७१॥

धाम धनी के उज्ज्वल माथे पर लाल रंग का तिलक लगा हुआ है। इसकी वास्तविक शोभा का मैं कैसे वर्णन करूँ। श्री राज जी के इस सुन्दर स्वरूप की शोभा का वर्णन कर पाना बुद्धि के लिये सम्भव नहीं हो पा रहा है।

पाग कही सिर हक के, और कहा सिर मुकट।

हाए हाए जीवरा क्यों रह्या, खुलते हिरदे ए पट॥७२॥

धाम धनी के सिर पर मैंने पाग और मुकुट की शोभा का वर्णन किया है। अपने हृदय पर पड़े हुए माया के पर्दे को

हटाकर धनी की शोभा को तो मैंने देख लिया है, किन्तु हाय! हाय! आश्चर्य है कि यह जीव अभी भी संसार को छोड़ नहीं पा रहा है।

भावार्थ— हृदय के पट खुलने का आशय है— धाम धनी का स्पष्ट दर्शन। श्रृंगार १२/२२ में कहा गया है—

भौं भृकुटी पल पांपण, मुस्कत लवने निलवट।

इन विध जब हक मुख निरखिए, तब खुलें हिरदे के पट॥

कलंगी दुगदुगी तो कहूं, जो पगरी होए और रस।

वस्तर भूखन या अंग तीनों, हर एक पे एक सरस॥७३॥

धाम धनी की कलंगी और दुगदुगी का वर्णन तो मैं तब करूँ, जब पाग का कोई और स्वरूप हो। चाहे श्री राज जी के वस्त्र हों या आभूषण या उनके अंग, सभी का एक ही नूरमयी स्वरूप है और सभी एक से बढ़कर एक अच्छे

हैं।

ताथें रस तो सब एक है, तामें अनेक रंग।

कलंगी दुगदुगी ठौर अपने, करत माहों माहें जंग॥७४॥

इसलिये श्री राज जी के अंगों, वस्त्रों, तथा आभूषणों में एकरसता है, अर्थात् सभी नूरमयी स्वरूप वाले हैं। इनसे अनेक रंगों का प्रकटीकरण होता रहता है। पाग और कलंगी में लगी हुई दुगदुगी से अनेक रंगों की किरणें उठती रहती हैं तथा आपस में टकराकर युद्ध सी करती हुई दिखायी देती हैं।

मोमिन असल सूरत अर्स में, अबलों न जाहेर कित।

खोज खोज कई बुजरक गए, सो अर्स रुहें ल्याई हकीकत॥७५॥

ब्रह्ममुनियों (मोमिनों) का वास्तविक स्वरूप परमधाम में

श्री राज जी के चरणों में है। आज दिन तक अक्षरातीत का स्वरूप संसार में कोई भी नहीं बता सका था। यद्यपि बड़े-बड़े ऋषि-मुनी, योगी-यति, तीर्थकर, तथा पैगम्बर आदि ने बहुत खोज की थी, किन्तु वे सफल नहीं हो सके। अक्षरातीत के स्वरूप का वास्तविक ज्ञान अब परमधाम से ब्रह्मसृष्टियाँ ही यहाँ लेकर आयी हैं।

नूर खूबी कही केसन की, हक सरूप की इत।

हाए हाए मेरा अंग मुरदा ना हुआ, केहेते बका निसबत॥७६॥

मैंने इस संसार में श्री राज जी के नूरमयी बालों की विशेषताओं का वर्णन किया है। हाय! हाय! धनी से अपने अखण्ड सम्बन्ध का वर्णन करते समय मेरा यह दिल निर्जीव क्यों नहीं हो गया।

भावार्थ— दिल के भाव ही जिह्वा से व्यक्त होते हैं।

संसार में अपने प्रेम का ढिंढोरा पीटना उचित नहीं होता। इस चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है कि ऐसा काम करते समय यदि मेरा दिल निर्जीव हो गया होता, तो मुझसे यह अपराध नहीं हो पाता।

नख सिख लों बरनन किया, और गाया लड़ाए लड़ाए।

मोमिन चाहिए विरहा सुनते, तबहीं अरवा उड़ जाए॥७७॥

मैंने श्री राज जी की नख से सिख तक की शोभा का वर्णन किया तथा सुन्दरसाथ को बहुत ही प्रेमपूर्वक सुनाया। ब्रह्ममुनि तो वही हैं, जो धनी से अपने वियोग (विरह) की बात सुनते ही शरीर और संसार से नाता तोड़ लेवें।

भावार्थ— इस प्रकरण में या जहाँ कहीं भी आत्मा के उड़ जाने का प्रसंग आया है, उसका आशय शरीर और

संसार से पूर्णतया मोह छूट जाने से है, मरने से नहीं। जो जीवित रहते ही संसार और शरीर के मोह-जाल से अलग हो जाता है, वही मरा हुआ कहा जाता है तथा एकमात्र वही धाम धनी को प्राप्त कर पाता है। इसके विपरीत जो लोग मृत्यु को प्राप्त होने के पश्चात् भी संसार के मोह बन्धनों में फँसे रहते हैं, वे जीवित ही माने जाते हैं और उन्हें प्रियतम का साक्षात्कार भी नहीं हो पाता। इस सम्बन्ध में श्रृंगार ग्रन्थ २४ / ९४ में स्पष्ट रूप से कहा गया है—

जो पेहेले आप मुरदे हुए, तिन दुनिया करी मुरदार।
हक तरफ हुए जीवते, उड़ पोहोंचे नूर के पार॥

जो परआतम पोहोंचे नहीं, सो क्यों पोहोंचे हक अंग को।
आसिक और मासूक, कैसी तफावत इनमों॥७८॥

परमधाम के स्वरूपों का वर्णन करते समय इस संसार की जो उपमा परात्म के तनों तक नहीं पहुँचती, भला वह अक्षरातीत के अंगों तक कैसे पहुँचेगी। यथार्थता तो यह है कि परमधाम में प्रिया-प्रियतम का सम्बन्ध है, अर्थात् ब्रह्मसृष्टियों और श्री राज जी में मूलतः किसी प्रकार का भेद नहीं है।

नाजुक सोभा हक की, जो रूह के आवे नजर।

तो अबहीं तोको अर्स की, होए जाए फजर॥७९॥

हे मेरी आत्मा! यदि धाम धनी की अति कोमल शोभा का तुझे साक्षात्कार हो जाये, तो अभी तुम्हारे हृदय में परमधाम के अखण्ड ज्ञान और शोभा का उजाला फैल जायेगा।

भावार्थ- इस चौपाई में श्री महामति जी ने स्वयं को

सम्बोधित कर सुन्दरसाथ को जाग्रत होने के लिये प्रेरित किया है। यही प्रसंग चौपाई ८०-८३ तक में है। परमधाम का उजाला होने का तात्पर्य है— पूर्णतया सत्य ज्ञान तथा सम्पूर्ण परमधाम की शोभा का धाम हृदय में अखण्ड हो जाना।

ज्यों सूरत दिल देखत, त्यों रूह जो देखे सूरत।

बेर नहीं रूह लज्जत, तेरे अंग जात निसबत॥८०॥

हे मेरी आत्मा! जिस प्रकार तेरी परात्म का दिल श्री राज जी की शोभा को देख रहा है, उसी प्रकार यदि तू भी धनी के स्वरूप को देखने लग जाये, तो तुझे प्रियतम के प्रेम, सौन्दर्य, और आनन्द का स्वाद आने में एक पल की भी देर न लगे, क्योंकि तुम्हारे अंग का परात्म और युगल स्वरूप से अखण्ड सम्बन्ध है।

भावार्थ- मूल मिलावा में सखियों की नजरें श्री राज जी की नजरों से मिली हुई हैं और वे धाम धनी के दिल रूपी पर्दे पर माया का खेल देख रही हैं। दिल के निर्देश पर ही इन्द्रियों से कार्य होता है। यद्यपि आँखें धाम धनी की ओर ही खुली हुई हैं, किन्तु श्री राज जी उन्हें दिखायी नहीं पड़ रहे हैं। श्रीमुखवाणी में यह बात इस प्रकार कही गयी है- "नजरों देखें जहान।"

भले ही धाम धनी परात्म के नेत्रों (दिल) को दिखायी नहीं पड़ रहे हैं, परन्तु वे देख तो उन्हीं की ओर रहे हैं। इसी प्रकार, इस चौपाई में कहा गया है कि जैसे परात्म का दिल धाम धनी की ओर देख रहा है, वैसे ही यदि आत्मा का दिल (नेत्र) भी उनकी ओर देखने लगे तो आत्मा जाग्रत हो जायेगी और उसे परमधाम का सारा स्वाद मिलने लगेगा।

अन्तस्करण आत्म के, जब ए रह्यो समाए।

तब आत्म परआत्म के, रहे न कछु अन्तराए॥

सागर ११/४४

ब्रह्मवाणी के ज्ञान के प्रकाश में जीव का दिल श्री राज जी की शोभा का भाव दिल में लेता है और आत्मा का दिल कुछ अंशों में उसे आत्मसात कर लेता है। इस प्रकार आत्मा के दिल में भाव दृष्टि से तो देखना माना जा सकता है, किन्तु यथार्थ दृष्टि से नहीं। चितवनि की गहराइयों में ही आत्मा के दिल द्वारा धनी की शोभा को देखा जाता है, किन्तु इसे आत्मा के द्वारा ही देखा हुआ माना जायेगा।

शृंगार २२/८० में परात्म के दिल द्वारा मात्र देखने की बात कही गयी है, अनुभव करने की नहीं। परात्म का प्रतिबिम्ब आत्मा है और परात्म के दिल का प्रतिबिम्ब

आत्म का दिल है। इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि इस चौपाई में परात्म के दिल (नेत्र) द्वारा ही देखने का प्रसंग है, भले ही वह न दिख रहे हों, जैसा कि खिलवत की इस चौपाई में भी कहा गया है—

बैठी अंग लगाए के, ऐसी करी अन्तराए।

ना कछु नैनों देखत, ना कछु आप ओलखाए॥

खिलवत १/३

परात्म भले ही धाम धनी के दिल रूपी पर्दे पर संसार की लीला को देख रही है, किन्तु उसकी नजर तो श्री राज जी से मिली हुई है। इस चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है कि आत्मा की दृष्टि भी श्री राज जी की नजरों से मिल जाये, तो उसकी जाग्रति में एक पल भी नहीं लगेगा।

फरक नहीं दिल रूह के, ए तो दोऊ रहे हिल मिल।

अर्स में जो रूह है, तो हकें कहा अर्स दिल॥८१॥

परात्म के दिल तथा आत्मा के स्वरूप में कोई भी अन्तर नहीं है। ये दोनों आपस में ओ-प्रोत हैं। परमधाम में जो परात्म का स्वरूप है, उसी की प्रतिबिम्ब स्वरूपा आत्मा है, जिसके दिल को धनी ने अपना धाम बनाया है।

भावार्थ- जिस प्रकार स्वप्न में मन की तरंगें उस व्यक्ति का वास्तविक रूप धारण कर लेती हैं और वह रूप (प्रतिबिम्ब) अपने बिम्ब (मूल स्वरूप) की तरह कार्य करने लगता है, उसी प्रकार आत्मा भी परात्म की प्रतिबिम्ब स्वरूपा है। धाम धनी ने अपने हुक्म से अपने दिल से जुड़ी हुई परात्म की नजर (सुरता) को संसार के जीवों पर डाल दिया है, जो परात्म का प्रतिबिम्ब लेकर

आत्मा के स्वरूप में जीवों के ऊपर विराजमान हैं और द्रष्टा के रूप में खेल को देख रही हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि धनी के हुक्म से परात्म के दिल का स्वप्न में सांकल्पिक व्यक्त रूप होने में आत्मा और परात्म का दिल परस्पर ओत-प्रोत हैं।

जिस प्रकार कोई सिद्धयोगी अपने योगबल से संकल्प द्वारा एक साथ कई शरीर धारण कर लेता है, जो हूबहू वैसे ही होते हैं, उसी प्रकार परात्म का दिल श्री राज जी के हुक्म से स्वप्न में आत्मा के तन के रूप में प्रकट होता है। इस स्वप्न के ब्रह्माण्ड में भी धाम धनी ने आत्माओं के दिल को अपना धाम बना लिया है।

तेरा दिल लग्या ज्यों सूरत को, त्यों जो सूरतें रूह लगे।
तो अबहीं ले रूह लज्जत, एक पलक में जगे॥८२॥

हे मेरी आत्मा! जिस प्रकार तुम्हारी परात्म के दिल की नजरें (दृष्टि) श्री राज जी की नजरों से मिली हुई हैं, उसी प्रकार यदि तुम्हारी दृष्टि भी श्री राज जी से मिल जाये अर्थात् उनको देखने लगे, तो अभी मात्र पल भर में ही तू जाग्रत हो जायेगी और तुझे परमधाम का सारा स्वाद मिलने लगेगा।

रूह तो तेरी दिल बीच में, तो कहा दिल अर्स।

सेहेरग से नजीक तो कहा, जो रूह दिल अरस-परस॥८३॥

मेरी आत्मा! तुम्हारा स्वरूप तो परात्म के दिल में है, इसलिये तो तुम्हारे दिल को श्री राज जी ने अपना धाम कहा है। तुम और तुम्हारी परात्म के दिल आपस में एकरस हैं, इसी से धाम धनी ने कहा है कि मैं तुम्हारी प्राणनली (शाहरग) से भी अधिक निकट हूँ।

भावार्थ- श्री राज जी के मारिफत स्वरूप (दिल) का ही व्यक्त स्वरूप सखियों के तन हैं। सखियों के तनों में स्थित दिल में श्री राज जी ही विराजमान हैं और उसी दिल का प्रकट रूप (हकीकत में) सखियों के तन हैं। इसी प्रकार, इस संसार में भी धनी के हुक्म द्वारा उसी दिल का स्वप्न में सांकल्पिक व्यक्त स्वरूप सुरता , वासना, या आत्मा का तन होता है। पुराण संहिता तथा माहेश्वर तन्त्र में इसे ही चित्तवृत्ति कहा गया है।

दूसरे शब्दों में, परात्म के तन का प्रतिबिम्बित रूप आत्मा का तन है। दिल का सम्बन्ध दोनों तनों से होता है। आत्मा के तन में भी दिल का प्रतिबिम्बित स्वरूप कार्य करता है। इसे श्रृंगार २६ / १४ के इस कथन से समझा जा सकता है—

दिल मोमिन अर्स तन बीच में, उन दिल बीच ए दिल।
 केहेने को ए दिल है, है अर्सें दिल असल॥

सूरत केहेते हक की, आगूं रूह मोमिन।

हाए हाए रूह मुग ना उड़या, बरनन करते अर्स तन॥८४॥
 हे मेरी आत्मा! ब्रह्मसृष्टियों के सामने परमधाम में
 विराजमान श्री राज जी के अखण्ड स्वरूप का वर्णन
 करते समय हाय! हाय! तुम्हारा यह शरीर (मुर्ग) क्यों
 नहीं मिट गया।

आगूं अरवाहें अर्स की, करी बातें हक जुबान।

हाए हाए तन मेरा क्यों रह्या, करते खिलवत बयान॥८५॥
 पहले परमधाम की आत्माओं ने धाम धनी से इश्क—

रब्द के रूप में प्रेम की बातें की हैं। खिल्वत की बात करते समय हाय! हाय! मेरा यह शरीर इस संसार में कैसे रह गया। यह बहुत आश्चर्य का विषय है।

रूहें रहें अर्स दरगाह में, जो दरगाह नूर-जमाल।

ए किया बयान खिलवत का, हाए हाए रूह रही किन हाल॥८६॥

परमधाम के मूल मिलावा में ब्रह्मसृष्टियाँ श्री राज जी के चरणों में बैठी हुई हैं। खिल्वत की इन बातों का वर्णन करने पर भी हाय! हाय! मेरी आत्मा किस स्थिति में (कैसे) इस संसार में रह रही है।

फेर फेर मेहेबूब देखिए, लगे मीठड़ा मुख मासूक।

अंग गौर जोत अंबर लों, छब देख दिल होत न भूक भूक॥८७॥

हे साथ जी! प्रियतम की शोभा को बार-बार देखिए।

धाम धनी का मुखारविन्द कितना प्यारा लगता है। उनके गोरे अंगों की ज्योति आकाश तक फैली हुई है। ऐसी अनुपम शोभा को देखकर दिल टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो जाता।

रूप रंग अंग छबि सलूकी, कहे वस्तर भूखन।

ए केहेते अरवा ना उड़ी, हाए हाए कैसी हुज्रत मोमिन॥८८॥

मैंने श्री राज जी के वस्त्रों और आभूषणों, तथा अंगों के रूप-रंग एवं शोभा-सुन्दरता का वर्णन किया है। किन्तु यह महान आश्चर्य है कि वर्णन करते समय भी मेरी आत्मा इस संसार को नहीं छोड़ सकी। हाय! हाय! ब्रह्मसृष्टि कहलाने का यह कैसा दावा है।

पांउं लीक केहेते अरवा उड़े, क्यों बरनवी हक सूरत।

बंध बंध छूट ना गए, हाए हाए कैसी अर्स हुज्जत॥८९॥

धनी के चरण कमल के तलुओं की अति सुन्दर रेखाओं का वर्णन करते समय आत्मा इस संसार को छोड़ सकती है। फिर भी पता नहीं कैसे मैंने श्री राज जी के मुखारविन्द की शोभा का वर्णन कर दिया। हाय! हाय! परमधाम का यह कैसा दावा है। वर्णन करते समय मेरे शरीर के अंग-अंग के जोड़ (बन्ध) इस शरीर से अलग क्यों नहीं हो गये।

कह्या गौर मुख मासूक का, और निलवट असल तिलक।

हाए हाए ए बयान करते क्यों जिए, हम में रही नहीं रंचक॥९०॥

धाम धनी का मुखारविन्द अत्यधिक गौर वर्ण का कहा गया है। उज्ज्वल ललाट पर अति सुन्दर तिलक की शोभा

आयी है। हाय! हाय! यह वर्णन करके मैं कैसे जीवित हूँ।
ऐसा लगता है कि हम आत्माओं के अन्दर अब परमधाम
का थोड़ा भी प्रेम नहीं रह गया है।

बरनन किया श्रवन का, जाके ताबे दिल हुक्म।

मासूक अंग बरनवते, हाए हाए मोमिन रहे क्यों हम॥९१॥

मैंने धाम धनी के उन कानों की भी शोभा का वर्णन
किया है, जिनके अधीन धनी का दिल और हुक्म रहता
है। श्री राज जी के इन अंगों की शोभा का वर्णन करते
समय हाय! हाय! हम आत्माओं के तन इस झूठे संसार
में कैसे रह गये।

कहे गौर गलस्थल हक के, कई छब नाजुक कोमलता।

हाए हाए रूह इत क्यों रही, मुख देख मासूक बका॥९२॥

प्राणवल्लभ अक्षरातीत के गालों का रंग अत्यधिक गौर कहा गया है। इनमें अनेक प्रकार की सुकुमारता तथा कोमलता की शोभा दिखायी दे रही है। हाय! हाय! श्री राज जी के मुखारविन्द की इस अखण्ड शोभा को देखकर भी मेरी आत्मा इस झूठे संसार में क्यों रह रही है।

बड़ी रूहें देख्या हक को, हकें देख्या सामी भर नैन।

हाए हाए बात करते जीव क्यों रह्या, एह देख नैन की सैन॥९३॥

श्यामा जी ने श्री राज जी की ओर प्रेम भरे नेत्रों से देखा तथा श्री राज जी ने भी श्यामा जी की ओर अपने नेत्रों से प्रेम की दृष्टि डाली। उन दोनों के नेत्रों से होने वाले प्रेम-संकेतों की बात सबको बताते समय हाय! हाय! मेरा यह जीव संसार में किसलिये रह गया। इसे तो विरह में

अपना तन छोड़ देना चाहिए था।

भावार्थ— युगल स्वरूप के प्रेम-संकेतों की बात का वर्णन तो आत्मा करेगी, किन्तु विरह में जीव के द्वारा ही अपना शरीर छोड़ा जाता है।

भौंह स्याह नैन अनियां कही, और कह्या जोड़ गौर अंग।

हाए हाए ए तन हुकमें क्यों रख्या, हुआ कतल न होते जंग॥१४॥

मैंने श्री राज जी की भौंहों को काले रंग का तथा नेत्रों को नुकीला कहकर वर्णन किया है। इसी प्रकार अंगों के जोड़ को अत्यधिक गोरे रंग का कहा है। जब प्रियतम के अति गोरे-गोरे अंगों से नूरी किरणें निकलकर आपस में टकराती हैं और युद्ध करने का सा दृश्य प्रस्तुत करती हैं, तो इस अद्वितीय शोभा का वर्णन करते समय मेरा यह शरीर मृत्यु को प्राप्त क्यों नहीं हो गया। हाय ! हाय !

धाम धनी ने अपने हुक्म से मेरे इस तन को इस झूठे संसार में अब तक क्यों रखा हुआ है।

देखी निरमलता दंतन की, न आवे मिसाल लाल मानिक।
ज्यों देखत बीच चसमों, त्यों देखी जाए जुबां मुतलक॥१५॥
मैंने श्री राज जी के दाँतों की स्वच्छता देखी है। लाल माणिक से भी इन दाँतों की उपमा नहीं दी जा सकती। जिस प्रकार किसी बहते हुए स्वच्छ झरने के मध्य जल में देखने पर नीचे की वस्तुएँ दिखायी पड़ती हैं, उसी प्रकार दाँतों के बीच में जिह्वा दृष्टिगोचर होती है।

कबूं हीरा कबूं मानिक, इन रंग सोभा कई लेत।
दोऊ निरमल ऐनक ज्यों, परे होए सो देखाई देत॥१६॥
दाँत कभी हीरे की तरह सफेद दिखायी देते हैं, तो कभी

माणिक की तरह लाल। इन रंगों की अनेक प्रकार की शोभा मुख के अन्दर दिखायी देती है। बाहर से देखने पर, ऊपर और नीचे, दोनों ओर (जबड़ों) के दाँत शीशे की भाँति चमचमाते हुए दिखते हैं।

द्रष्टव्य— इस चौपाई के तीसरे चरण में "दोऊ" शब्द का प्रयोग दोनों ओर के जबड़ों के लिये किया गया है, जिनमें दाँतों की पंक्तियाँ आयी होती हैं। दाँतों का रंग मूलतः सफेद होता है, किन्तु नासिका में आये हुए बेसर में लाल माणिक का नग आया है, जिसकी लाल आभा से दाँतों का रंग भी लाल दिखता है।

लालक इन अधुर की, हक कबूं दिलों देखावत।

बंध बंध जुदे होए ना पड़े, मेरा हैड़ा निपट सखत॥९७॥

लालिमा भरे अपने होंठों के अनुपम सौन्दर्य को धाम

धनी कभी-कभी ही अपनी हृदय स्वरूपा अँगनाओं को दिखाते हैं। ऐसी मनोहारिणी शोभा को देखकर भी मेरे शरीर के सभी जोड़ अलग-अलग क्यों नहीं हो जाते। लगता है, जैसे मेरा हृदय पूर्णतया कठोर हो चुका है।

हक मुख सलूकी क्यों कहूं, छबि सोभित गौर गाल।

बरनन करते ए सूरत, हाए हाए लगी न हैडे भाल॥९८॥

प्रियतम अक्षरातीत के मुखारविन्द की शोभा-सुन्दरता का मैं कैसे वर्णन करूँ। गोरे-गोरे गालों की अलौकिक शोभा हो रही है। इस अद्वितीय शोभा का वर्णन करते समय हाय! हाय! मेरे इस कठोर हृदय में भाले की चोट क्यों नहीं लग जाती।

भावार्थ- अक्षरातीत के अनन्त सौन्दर्य को देखकर भी यदि उसमें डूबने की अपेक्षा कहने में लग जाया जाये, तो

इसका यही अर्थ है कि हृदय में शुष्कता और कठोरता ने अपनी जड़ें जमा ली हैं। किन्तु श्री महामति जी के साथ धाम धनी के आदेश से ऐसा हो रहा है और इसमें सुन्दरसाथ के लिये सिखापन है कि वे कोरे शुष्क हृदय वाले ज्ञानी बनने की अपेक्षा प्रेम मार्ग का अवलम्बन करें।

मैं कही जो मुख मांड़नी, और कह्या मुख सलूक।

ए केहेते सलूकी मेरा अंग, हाए हाए हो न गया टूक टूक॥९९॥

मैंने धाम धनी के मुखारविन्द की स्वच्छता तथा अनन्त सुन्दरता का वर्णन किया है। धनी की इस अवर्णनीय शोभा का वर्णन करते समय हाय! हाय! मेरा हृदय (अंग, दिल) टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो गया।

कही गौर हरवटी हक की, लांक पर लाल अधुर।

कही दंत जुबां बीड़ी मुख, हाए हाए रूह क्यों रही सुन मधुर॥१००॥

पहले यह वर्णन किया है कि श्री राज जी की तुड्डी बहुत गोरे रंग की है। तुड्डी के ऊपर गहराई वाले स्थान की शोभा बहुत सुन्दर है। इसके ऊपर लाल-लाल अति सुन्दर होंठ आये हैं। यह भी वर्णन किया गया है कि धाम धनी अब अपनी जिह्वा पर पान का बीड़ा रखकर दाँतों से चबाते हैं, तो उनका मुखारविन्द कितना सुन्दर लगता है। हाय! हाय! सौन्दर्य के इस मधुर वर्णन को सुनकर भी मेरी आत्मा इस झूठे संसार में क्यों रह रही है।

भावार्थ- इस चौपाई से पूर्व की अन्य चौपाइयों में श्री महामति जी को श्रृंगार का वर्णन सुनाने वाला कहा गया है। इसका मुख्य कारण यह है धाम धनी श्री महामति जी के अन्दर विराजमान होकर कह रहे हैं, जिसे महामति

जी की आत्मा श्रवण करके सुन्दरसाथ को सुना रही है।

कलस हिंदुस्तानी १/२ में यही स्थिति है—

रास कह्या कछु सुनके, अब तो मूल अंकूर।

कलस होत सबन को, नूर पर नूर सिर नूर॥

लाल अधुर कहे मासूक के, सो दिलें भी देखी लालक।

ए देख लोहू मेरा क्यों रह्या, सूक न गया माहें पलक॥१०१॥

धाम धनी के होंठ लालिमा से भरपूर हैं। मेरे दिल ने भी होंठों की मनोहर लालिमा का अनुभव किया है। मुझे बहुत आश्चर्य हो रहा है कि उस अप्रतिम सौन्दर्य को देखकर भी मेरे इस शरीर में रक्त कैसे रह गया है। इसे तो पल भर में ही सूख जाना चाहिए था।

कंठ खभे बंध बंध का, नख सिख किया बरनन।

हाए हाए जीवरा मेरा क्यों रह्या, टूट्या न अन्तस्करन॥१०२॥

मैंने श्री राज जी के अति सुन्दर गले, मनोहर कन्धों, तथा अंग-अंग के जोड़ सहित नख से शिख तक सम्पूर्ण स्वरूप का वर्णन किया है। सौन्दर्य के अनन्त सागर को देखकर भी मेरा हृदय इतना कठोर है कि वह टूट नहीं सका। हाय! हाय! अब भी मेरा जीव इस मायावी संसार में क्यों रह रहा है।

भावार्थ- अत्यधिक दुःख या अति सुख को जीव का हृदय सहन नहीं कर पाता क्योंकि वह अति संवेदनशील एवं कोमल होता है। इस चौपाई में उलाहने के रूप में श्री महामति जी ने अपनी हृदय को शुष्क एवं कठोर कहा है, जो न तो सौन्दर्य सागर में डुबकी लगा सका और न न्योछावर ही हो सका।

बरनन किया बका हक का, मैं हुकम लिया दिल ल्याए।
 केहेते हैड़े की सलूकी, हाए हाए मेरी छाती न गई चिराए॥१०३॥
 मैंने श्री राज जी के आदेश को अपने दिल में बसाकर
 उनके अखण्ड स्वरूप का वर्णन किया है। उनके हृदय
 कमल (वक्षस्थल) की सुन्दरता का वर्णन करते समय
 हाय! हाय! मेरी यह छाती फट क्यों नहीं गई।

भावार्थ— श्री राज जी की छाती का सौन्दर्य इतना
 अधिक है कि उसकी एक झलक मिलने के पश्चात् किसी
 को भी अपने अस्तित्व का भान रह ही नहीं सकता। श्री
 राज जी के हुक्म (आदेश) की ही चमत्कारिक लीला है
 कि श्री महामति जी के तन से उसका वर्णन हो सका,
 अन्यथा सौन्दर्य के अथाह जल को क्या शब्द रूपी घड़े
 में भरा जा सकता है।

हकें अर्स किया दिल मोमिन, ए मता आया हक दिल से।

हकें दिल दिया किया लिख्या, हाए हाए मोमिन डूब न मुए इनमें॥१०४॥

श्री राज जी ने ब्रह्मसृष्टियों के हृदय को अपना धाम बनाया है। ब्रह्मवाणी का यह सम्पूर्ण ज्ञान भी धाम धनी के दिल से ही मेरे दिल (हृदय) में आया है। धर्मग्रन्थों सहित श्रीमुखवाणी में धाम धनी ने कहलाया है कि मैंने अपनी अँगनाओं को अपना दिल दे दिया है और उनके हृदय को अपना धाम बनाकर उसमें विराजमान हो गया हूँ। हाय! हाय! इस प्रकार का वर्णन पढ़कर भी आत्मायें लज्जा से क्यों नहीं डूब मरतीं।

भावार्थ— परब्रह्म के प्रेम के सम्बन्ध में ऋग्वेद ८/९२/३२ में इस प्रकार का वर्णन है – "वयं तव, त्वम् अस्माकम्" अर्थात् हे परब्रह्म! हम तुम्हारे हैं और तुम हमारे हो।

इसी प्रकार कुरआन-हदीस में "क़ल्ब-ए-मोमिन अर्श अल्लाह" कहा गया है, जिसका अर्थ है – ब्रह्ममुनि का हृदय ही परब्रह्म का निवास स्थल है।

अपना दिल देने के सम्बन्ध में कलस हिंदुस्तानी १/५ में स्पष्ट रूप से कहा गया है—

मासूकें मोहे मिलके, करी सो दिल दे गुझ।

कहे तूं दे पड़ उत्तर, जो मैं पूछत हो तुझ॥

इसी प्रकार धाम धनी ने अँगनाओं को अपना प्राण प्रियतम भी कहा है—

प्रीतम मेरे प्राण के, अँगना आतम नूर।

मन कलपे खेल देखते, सो ए दुख करूँ सब दूर॥

कलस हिंदुस्तानी २३/१७

यह आत्म-चिन्तन की घड़ी है कि अक्षरातीत हमसे कितना प्रेम करते हैं और प्रत्युत्तर में हम उनसे कितना

प्रेम करते हैं। सम्भवतः हमारे लिये यह स्थिति लज्जा से डूब मरने वाली है।

हार कहे हैड़े पर, जोत भरी जिमी आसमान।

हाए हाए ए मुरदा जल न गया, नूर एता होते सुभान॥१०५॥

प्राणवल्लभ अक्षरातीत के हृदय कमल पर हारों की शोभा अद्वितीय है। उनकी दिव्य ज्योति से धरती सहित सम्पूर्ण आकाश भी आच्छादित हो रहा है। हाय! हाय! अक्षरातीत के अनन्त नूरी सौन्दर्य के सामने यह अज्ञानी (मुर्दा) जीव जलकर राख क्यों नहीं हो गया।

भावार्थ— यहाँ पञ्चभौतिक तन का प्रसंग नहीं है, बल्कि जीव के लिये ही यह भाषा प्रयोग की गयी है। आत्मा के सम्बन्ध से जीव को जिस सौन्दर्य का अनुभव होता है, उसको पाकर भी जीव यदि माया को छोड़कर धनी के

प्रेम में नहीं डूब पाता, तो उसी के लिये इस प्रकार की भाषा कही जाती है कि वह धाम धनी के प्रेम रूपी अग्नि में जलकर राख क्यों नहीं हो गया। इसी कारण उसे "मुरदा" शब्द से भी सम्बोधित किया गया है।

कटि पेट पांसे कहे हक के, ले दिल के बीच नजर।

हाए हाए ख्वाबी तन क्यों रह्या, ए दिल को लेकर॥१०६॥

मैंने अपने धाम हृदय में अपनी आत्मिक दृष्टि से श्री राज जी की कमर, पेट, तथा पसलियों के सौन्दर्य को देखा तथा उसका वर्णन किया। मेरी आत्मा का ऐसा धाम हृदय जिस तन में स्थित है, हाय! हाय! वह तन अभी भी इस संसार में किसलिये पड़ा हुआ है।

कांध पीठ लीक सलूकी, कही इलमें दिल दे।

हाए हाए हुकमें ए तन क्यों रख्या, जो हुकम बैठा हुज्जत रूह ले॥१०७॥

मैंने अपना दिल धनी को दे दिया, जिससे मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर उन्होंने मुझे जो अखण्ड ज्ञान की निधि दी है, उससे मैंने उनके कन्धों तथा पीठ की गहराई वाले भाग की सुन्दरता का वर्णन किया है। हाय! हाय! श्री राज जी का हुकम (आदेश) जब मेरी आत्मा के स्वरूप का दावा लेकर बैठा है, तो उसे इस तन को अभी तक इस संसार में क्यों रखा है।

भावार्थ- श्री राज जी के हुकम से ही सारी लीला होती है, इसलिये परात्म की सुरता को हुकम की सुरता या आत्मा कहते हैं। इसे ऐसा भी कहा जाता है कि हुकम ने ही सुरता (आत्मा) का रूप धारण कर लिया है।

अर्स जवेर की क्यों कहूं, देखे बाजू बंध के नंग।

जिमी से आसमान लग, हाए हाए जीव कतल न हुआ देख जंग॥१०८॥

मैं परमधाम के जवाहरातों की शोभा का कैसे वर्णन करूँ। मैंने धाम धनी की दोनों भुजाओं में धारण किये हुए बाजूबन्दों को देखा है। इनमें जड़े हुए जवाहरातों के नगों की ज्योति धरती से लेकर आकाश तक फैली हुई है। इस ज्योति से उठने वाली किरणें आपस में टकराकर जो अलौकिक दृश्य उपस्थित करती हैं, उसे देखकर हाय! हाय! मेरा यह जीव मर क्यों नहीं गया।

भावार्थ— कत्ल हो जाना या मर जाना, एक प्रकार की आलंकारिक भाषा है। इसका तात्पर्य होता है— किसी के सौन्दर्य या प्रेम में इतना डूब जाना कि अपना अस्तित्व पूर्णतया समाप्त हो जाये। यद्यपि इस अवस्था में वह व्यक्ति जीवित तो रहता है, किन्तु उसे मरा हुआ ही कहा

जाता है, क्योंकि उसका अपना अस्तित्व कुछ भी नहीं रहता।

हक हाथों की बरनन करी, मच्छे कोनी कलाई काड़े।

ए सुन जीव क्यों रेहेत है, ले ख्वाब झूठे भांडे॥१०९॥

मैंने धाम धनी के हाथों की कोहनियों, डौलों, और कड़ों से सुशोभित कलाइयों की सुन्दरता का वर्णन किया है। इतने अनुपम सौन्दर्य का वर्णन सुनकर भी, पता नहीं, यह जीव किसलिये इस स्वप्न के झूठे शरीर को लेकर बैठा हुआ है।

भावार्थ— इस चौपाई में "काड़े" (कड़ा) एक आभूषण का नाम है, जो कलाइयों में पहना जाता है। शेष सभी अंगों का वर्णन है।

पोहोंचे लीकें हथेलियां, छबि अंगुरियां नख तेज।

देखो अचरज मुख केहेते, हो न गया रेजा रेज॥११०॥

मैंने धाम धनी के हाथों के पञ्जों, हथेलियों की रेखाओं, अँगुलियों की सुन्दरता, तथा नखों के तेज का वर्णन किया है। आश्चर्य की बात है कि इस दिव्य सौन्दर्य का वर्णन करने पर भी मेरा शरीर टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो गया।

भावार्थ- इस चौपाई में यह बात दर्शायी गयी है कि हृदय की शुष्कता और श्रद्धाहीनता, ये अध्यात्म की राह में बहुत बड़ी बाधा है। इनको छोड़े बिना विरह-प्रेम की राह पर कदापि नहीं चला जा सकता।

रंग सलूकी भूखन, देख काड़े हाथों के।

ए जोत ले जीव ना उड़या, हाए हाए बड़ा अचम्भा ए॥१११॥

हाथ के कड़ों तथा अन्य आभूषणों के रंगों एवं नूरमयी शोभा को देखकर भी यह जीव अपने को धनी के प्रति पूर्णतया समर्पित नहीं कर सका (संसार नहीं छोड़ सका)। हाय! हाय! यह बहुत आश्चर्य की बात है।

कई रंग इजार मासूक की, दावन में झाँई लेत।

छेड़े पटुके दावन पर, हाए हाए दिल अजूं न घाव देत॥११२॥

श्री राज जी की इजार में अनेक प्रकार के रंग आये हैं, जिनकी झलकार जामे के दामन में दिखायी देती है। कमर में बँधे हुए पटुके का किनारा जामे के दामन तक आया हुआ है। हाय! हाय! इस मनोहारिणी शोभा को देखकर भी दिल में विरह की चोट क्यों नहीं लग रही है।

चरन कमल मासूक के, चित्त में चुभें जिन।

ए छबि सलूकी भूखन, क्यों कर छोड़ें मोमिन॥११३॥

जिस आत्मा के हृदय में श्री राज जी के चरण कमल बस (चुभ) जाते हैं, वह आत्मा धाम धनी के चरणों के आभूषणों को किसी प्रकार भी नहीं छोड़ सकती।

ए चरन आवें जिन दिल में, सो दिल अर्स मुतलक।

कई मुतलक बातें अर्स की, दिल सब विध हुआ बेसक॥११४॥

जिसके हृदय में धनी के चरण कमल बस जाते हैं, निश्चित रूप से वह दिल धाम बन जाता है। उस अवस्था में उसका हृदय पूर्ण रूप से संशयरहित हो जाता है तथा परमधाम की मारिफत (विज्ञान) सम्बन्धी अनेक गुह्य बातों का भी बोध हो जाता है।

क्यों कहूं खूबी चरन की, और खूबी भूखन।

अद्भुत सोभा हक की, क्यों न होए अर्स तन॥११५॥

प्रियतम अक्षरातीत के चरणों तथा उसमें शोभायमान होने वाले आभूषणों की विशेषताओं का मैं कैसे वर्णन करूँ। भला श्री राज जी एवं श्यामा जी सहित सखियों के मूल तनों की शोभा अद्भुत क्यों नहीं होगी।

चकलाई इन चरन की, भूखन छबि अनूपम।

दिल ताही के आवसी, जाको मुतलक मेहेर खसम॥११६॥

धाम धनी के चरणों एवं आभूषणों की बनावट तथा शोभा अनुपम है। निश्चित रूप से, जिसके ऊपर धाम धनी की पूर्ण मेहर होती है, मात्र उसी के हृदय में यह अद्वितीय शोभा विराजमान होगी।

जो होवे अरवा अर्स की, सो इन कदम तले बसत।

सराब चढ़े दिल आवत, सो रूह निस दिन रहे अलमस्त॥११७॥

जो परमधाम की आत्मा होती है, वह हमेशा धनी के चरणों में वास करती है, अर्थात् उसका ध्यान हमेशा श्री राजश्यामा जी के चरणों की शोभा में डूबा रहता है। जब उसके हृदय में प्रियतम के प्रेम का नशा छा जाता है, तो दिन-रात अखण्ड आनन्द में डूबी रहती है।

निमख न छोड़े चरन को, मोमिन रूह जो कोए।

निस दिन रहे खुमार में, आवत है चरन बोए॥११८॥

जो परमधाम की आत्मा होती है, वह एक क्षण के लिये भी धनी के चरणों को नहीं छोड़ती। उसे प्रियतम के चरणों से अखण्ड प्रेम की सुगन्धि मिलती है तथा वह दिन-रात आनन्द में डूबी रहती है।

मासूक के चरणों का, किया बेवरा बरनन।

जीव उड़या चाहिए केहेते लीक, हाए हाए क्यों रहे मोमिन तन॥११९॥

अपने प्राणवल्लभ श्री राज जी के चरणों का पूर्ण विवरण देते हुए मैंने उनकी शोभा का वर्णन किया है। प्रियतम के चरणों के तलुवों की सुन्दर रेखाओं का वर्णन सुनकर ही जीव को प्रेम में अपना अस्तित्व मिटा देना चाहिए था। हाय! हाय! ब्रह्मसृष्टियाँ अभी भी शरीर के मोहजाल में क्यों फँसी पड़ी हैं।

हाथ पांउं मुख हैयड़ा, वस्तर भूखन हक सूरत।

ए ले ले अर्स बारीकियां, हाए हाए रूह क्यों न जागत॥१२०॥

मैंने धाम धनी के हाथों, पैरों, मुखारविन्द, वक्षस्थल, तथा वस्त्र-आभूषणों सहित सम्पूर्ण स्वरूप का वर्णन किया है। परमधाम की इन गुह्य बातों को जानकर भी

हाय! हाय! सुन्दरसाथ की आत्मा क्यों नहीं जाग्रत हो पा रही है?

भावार्थ- शृंगार ग्रन्थ में श्री राज जी की शोभा का वर्णन कोई सामान्य वर्णन नहीं है, बल्कि इसमें परमधाम के गुह्यतम रहस्यों का स्पष्टीकरण भी किया गया है। इस चौपाई के तीसरे चरण में यही संकेत किया गया है।

जो जोत कहूं अंग नंग की, देऊं निमूना नरम पसम।
 ए तो अर्स पत्थर या जानवर, सो क्यों पोहोंचे परआतम॥१२१॥

युगल स्वरूप के शृंगार-वर्णन में मैंने अंगों की ज्योति की उपमा जवाहरातों के नगों (पत्थरों) से दी है तथा कोमलता का दृष्टान्त रेशम (पशु) से दिया है। संसार के जवाहरातों (पत्थरों) तथा पशुओं से प्राप्त होने वाले रेशम इत्यादि पदार्थों की उपमा परमधाम में परात्म के

तनों तक कैसे पहुँच सकती है।

भावार्थ- इस चौपाई में खिलौनों का भाव परमधाम के पशु-पक्षी आदि खिलौनों से नहीं है, क्योंकि वहाँ वहदत की लीला है। खुलासा १६/८४ में स्पष्ट रूप से कहा गया है-

खेलौनें जो हकके, सो दूसरा क्यों केहेलाए।

ए जरा कहिए तो दूसरा, जो हक बिना होए॥

इस प्रकार यह निश्चित है कि यहाँ खिलौनों का तात्पर्य इस संसार के सुन्दर पदार्थों से है। बीतक २१/१० में स्पष्ट रूप से यह तथ्य प्रस्तुत है-

तिस वास्ते इण्ड तीसरा, रचियो तुम कारन।

त्रैगुन खिलौने तुम्हारे, तुम हो खास सैंयन॥

जो परआत्म पोहोंचे नहीं, सो क्यों पोहोंचे हक अंग को।
खेलौने और खावंद, बड़ो तफावत इन मों॥१२२॥

जो शोभा परात्म तक नहीं पहुँच पाती, वह धाम धनी के अंगों तक कैसे पहुँच सकती है। संसार के खिलौने रूपी अति सुन्दर पदार्थों तथा श्री राज जी की शोभा में बहुत (अनन्त) अन्तर है।

जित आद अन्त न पाइए, तित तेहेकीक होए क्यों कर।
इत सब्द फना का क्या कहे, जित पाइए न अब्बल आखिर॥१२३॥

जिस परमधाम में किसी भी वस्तु का न तो प्रारम्भ है और न अन्त है, वहाँ कैसे निर्णय हो सकता है। अक्षरातीत की शोभा तो आदि और अन्त से रहित अर्थात् अनादि और अनन्त है। इस नश्वर संसार के शब्दों से वहाँ का कोई माप नहीं हो सकता।

भावार्थ- परमधाम में शोभा, सौन्दर्य, प्रेम, आनन्द आदि की कोई सीमा नहीं है। मानवीय बुद्धि इसके आंकलन (माप, गणना) करने के बारे में सोच भी नहीं सकती। इसके विपरीत इस संसार में युवावस्था का सौन्दर्य वृद्धावस्था में कुरूपता में परिवर्तित हो जाता है। सुन्दर से सुन्दर वस्तु भी कुछ समय के पश्चात् नष्ट हो जाती है। ऐसी स्थिति में इस संसार की कोई भी उपमा परमधाम के लिये नहीं दी जा सकती।

ए निरने करना अर्स का, तिन में भी हक जात।

इत नूर अकल भी क्या करे, जित लदुन्नी गोते खात॥१२४॥

श्री महामति जी कहते हैं कि परमधाम की शोभा – सौन्दर्य आदि का इस संसार की उपमा देकर निर्णय करना बहुत कठिन है, उसमें भी श्री राजश्यामा जी और

सखियों की शोभा एवं सौन्दर्य का आंकलन करना तो असम्भव ही है। ऐसी अवस्था में भला अक्षर ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि कैसे निर्णय कर सकती है, जब मेरी निज बुद्धि भी लड़खड़ा रही है (गोते खा रही है)।

भावार्थ— यह कथन मूल स्वरूप का नहीं, बल्कि श्री महामति जी का है। मूल स्वरूप पूर्णातिपूर्ण हैं। उनके लिये किसी भी दृष्टि से असम्भव शब्द प्रयोग नहीं किया जा सकता। यद्यपि श्री महामति जी के अन्दर से स्वयं श्री राज जी ही अपने आवेश स्वरूप से कह रहे हैं, किन्तु यहाँ के तन, बुद्धि, एवं रसना का प्रयोग होने से यह कथन श्री महामति जी के साथ जुड़ जाता है।

इस चौपाई से पूर्व एवं बाद में प्रकरण की सभी चौपाइयों में श्री महामति जी का कथन है, इसलिये इस चौपाई में भी उन्हीं का कथन माना जायेगा।

सनंध ३९/४ में कहा गया है—

खेल में मेंहेंदी तोतला, जुबां कजा ए ठौर।

आगे तो नूर तजल्ला, तहां जुबां बोल है और॥

इस संसार में युगल स्वरूप एवं सखियों की शोभा – सौन्दर्य का वर्णन करने में जब कोई उपमा नहीं मिल सकती, तो श्री महामति जी कैसे वर्णन करें? इसी कारण उनकी आवाज में लड़खड़ाहट आने लगती है। यह प्रसंग कुरआन के पारा १८ सूरे नूर तथा हदीस में आया हुआ है कि "अना लुकनत इमाम" अर्थात् अस्पष्ट या हकलाहट है।

जवेर पैदा जिमीय से, सो भी नहीं कहा अर्स में।

चौदे तबक उड़ावे अर्स कंकरी, इत भी बोलना नहीं तार्थे॥१२५॥

इस संसार के जवाहरात पृथ्वी से निकाले जाते हैं,

जबकि परमधाम में ऐसा नहीं होता। वहाँ प्रत्येक वस्तु नूरमयी है। परमधाम की एक कंकड़ी चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड को अपने तेज से समाप्त कर सकती है। इसलिये संसार के जवाहरातों से वहाँ की कोई उपमा देने का प्रश्न ही नहीं है।

जित चीज नई पैदा नहीं, ना कबूँ पुरानी होए।

तित सब्द जुबां जो बोलिए, सो ठौर न रही कोए॥१२६॥

जिस परमधाम में न तो कोई नई वस्तु पैदा होती है और न कभी पुरानी होती है, उस परमधाम के लिये इस संसार की वस्तुओं से उपमा देकर, यहाँ की जिह्वा और शब्दों से, यदि कुछ भी कहा जाता है तो उसका कोई महत्व (ठिकाना) नहीं है।

जो कहूं हक दिल माफक, तो इत भी सब्द बंधाए।

ताथें अर्स बारीकियां, सो किसी विध कही न जाए॥१२७॥

यदि मैं श्री राज जी के दिल के अनुसार कहती हूँ, तो इसमें भी शब्द रुक (बन्ध) जाते हैं। इस प्रकार परमधाम की गुह्य बातों को किसी प्रकार से भी नहीं कहा जा सकता।

भावार्थ— श्री राज जी के दिल के अनुसार परमधाम की शोभा वर्णन करने का भाव यह है कि श्री राज जी के परमसत्य (मारिफत) स्वरूप हृदय का ही प्रकट रूप सम्पूर्ण परमधाम है, जिसमें श्यामा जी, सखियाँ, अक्षर ब्रह्म, और महालक्ष्मी समेत खूब-खुशालियाँ और पशु-पक्षी भी हैं। श्री राज जी के दिल में नूर ही नूर है, अर्थात् उनके हृदय में प्रेम, सौन्दर्य, कान्ति, आह्लाद, एकत्व आदि सभी गुण सागर रूप में विद्यमान हैं। ये ही प्रकट

होकर पच्चीस पक्षों वाले परमधाम के रूप में दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

किन्तु, नूर के वास्तविक स्वरूप का चित्रण करते समय भी बन्धना पड़ता है कि नूर के तेजोमय स्वरूप को कैसे दर्शाया जाये? जब श्री राज जी, श्यामा जी, और परमधाम आदि सभी अनादि हैं, तो यह प्रश्न होता है कि अनादि स्वरूप श्री राज जी से अनादि परमधाम कब प्रकट हुआ? इसके पहले श्री राज जी का स्वरूप कहाँ था?

मानव मस्तिष्क में परमधाम से सम्बन्धित ऐसे अनेक संशयात्मक प्रश्न उठा करते हैं, जिनका समाधान धाम धनी की मेहर के बिना सम्भव नहीं है। बौद्धिक सामर्थ्य एवं शब्द की यहाँ कोई भी दाल नहीं गलती है।

चुप किए भी ना बने, हुक्म इल्म आया इत।

और काम इनको नहीं, जो अर्स अरवा लई हुजत॥१२८॥

चुप रहने पर भी काम नहीं चलता है। इस खेल में धनी का हुक्म और इल्म आया है। हुक्म ने ही परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों का दावा ले रखा है, इसलिये इस समय हुक्म के पास इल्म द्वारा परमधाम की शोभा का वर्णन करने के अतिरिक्त और कोई काम नहीं है।

भावार्थ— धाम धनी के दिल की इच्छा से ही यह खेल बना और इसमें ब्रह्मसृष्टियों की सुरतायें आयीं। परात्म के तन इस नश्वर जगत् में साक्षात् नहीं आ सकते, इसलिये धनी के हुक्म ने सुरता रूप में उनका रूप धारण कर लिया। यही कारण है कि इस खेल में आत्माओं को हुक्म की सुरता भी कहते हैं। सिन्धी १६/५, ६ में इस विषय पर बहुत अच्छा प्रकाश डाला गया है—

अरवाहें जो कोई अर्स की, सो सब हक आमर।
 हम हुज्रत लई सिर अर्स की, बैठी आगूं हक नजर॥
 अरवा हमारी आमर, गुन अंग इन्द्री आमर।
 हम देखें सब आमर, खेल देखावत पट कर॥
 इस खेल की सारी लीला धनी के हुक्म से चल रही है।
 ब्रह्मवाणी का ज्ञान भी धनी के हुक्म से ही आया है—
 साहेब के हुकमें ए बानी, गावत हैं महामत।

किरंतन ५९/८

धाम धनी का हुक्म ही ब्रह्मवाणी के द्वारा किसी न
 किसी रूप में परमधाम की शोभा का वर्णन कर रहा है।

इलम कहा जो लदुन्नी, सो तो हक का मुतलक।
 इत मोमिन मिल पूछसी, क्यों रही रूहों को सक॥१२९॥

तारतम वाणी का ज्ञान तो अक्षरातीत का है। ऐसी अवस्था में ब्रह्मसृष्टियाँ आपस में यह पूछ सकती हैं कि ब्रह्मवाणी के चिन्तन-मनन के पश्चात् भी संशय क्यों रह गया है?

भावार्थ- यथार्थतः ब्रह्मवाणी के ज्ञान में कोई संशय नहीं है, किन्तु परमधाम की शोभा तथा लीला को यहाँ की उपमा से जब समझाने का प्रयास किया जाता है, तो मानव मस्तिष्क उसे पूरी तरह समझ नहीं पाता और मनः पटल पर उभरने वाले द्वन्द्वात्मक विचार ही संशयों का रूप ले लेते हैं।

जो अर्स बातें सक हमको, तो हकें क्यों कहा अर्स कलूब।

मोमिन कहे बीच वाहेदत, इन आसिकों हक मेहेबूब॥१३०॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती है कि यदि परमधाम

की बातों में ही हमें शक है, तो यह विचारणीय बात है कि श्री राज जी ने हमारे दिल को ही अपना धाम क्यों कहा है? ब्रह्ममुनियों को परमधाम की एकदिली (वहदत) में रहने वाला कहा गया है। सर्वदा प्रेम में डूबी रहने वाली इन आत्माओं के प्रियतम एकमात्र अक्षरातीत ही हैं।

द्रष्टव्य- इस चौपाई में यह बात दर्शायी गयी है कि आत्माओं को परमधाम की बातों में किसी भी प्रकार का संशय नहीं होना चाहिए।

मेहेबूब आसिक एक कहैं, वाहेदत भी एक केहेलाए।

अर्स भी दिल मोमिन कहा, ए तो मिली तीनों विध आए॥१३१॥

ब्रह्मसृष्टियाँ यदि आशिक (प्रेमी) हैं तो श्री राज जी उनके माशूक (प्रेमास्पद) हैं, दोनों का स्वरूप एक है। वहदत (एकदिली) की दृष्टि से दोनों एक ही हैं।

ब्रह्मसृष्टियों के हृदय (दिल) को ही धाम कहा जाता है। इस प्रकार तीनों तरह से श्री राज जी एवं ब्रह्मसृष्टियों का स्वरूप एक ही है।

भावार्थ- श्री राज जी तथा ब्रह्मसृष्टियों में तीन प्रकार से एकरूपता है-

१. लीला की दृष्टि से।
२. वहदत (एकत्व) की दृष्टि से।
३. ब्रह्मसृष्टियों के हृदय में विराजमान होने से।

और भी कहूं सो सुनो, मोमिन अर्स से आए उतर।

इलम दिया हकें अपना, अब इनों जुदे कहिए क्यों कर॥१३२॥

हे साथ जी! मैं कुछ और बातें कह रही हूँ, उसे सुनिए। ब्रह्मसृष्टियाँ परमधाम से इस माया के संसार में आयी हैं। धाम धनी ने इन्हें अपने तारतम ज्ञान से जाग्रत कर दिया

है। अब इन्हें धाम धनी से अलग नहीं कहा जा सकता।

फुरमान आया इनों पर, अहमद इनों सिरदार।

हक बिना कछुए ना रखें, इनों दुनियां करी मुरदार॥१३३॥

इनके लिये ही तारतम ज्ञान (श्री कुल्जुम स्वरूप) आया है। श्यामा जी इनकी प्रमुख हैं। ये आत्मायें अपने हृदय में एक अक्षरातीत के अतिरिक्त अन्य किसी को भी नहीं रखतीं। इन्होंने सारे संसार को नश्वर समझकर छोड़ दिया है।

भावार्थ— इस चौपाई में फुरमान से तात्पर्य श्रीमुखवाणी से है, क्योंकि इसी में उनके परमधाम का सम्पूर्ण ज्ञान भरा है, जिससे वे जाग्रत होंगी। कुरआन तो कतेब परम्परा का साक्षी ग्रन्थ है। "फुरमान" (फ़रमान) शब्द का प्रयोग परब्रह्म के आदेश से अवतरित धर्मग्रन्थों के

लिये होता है। इसके अन्तर्गत वेद और भागवत् आदि ग्रन्थ भी आयेंगे।

ए सब बुजरकी इनों की, क्यों जुदे कहिए वाहेदत।

इने कुन्नकी दुनी क्या जानही, रूहें अर्स हक निसबत॥१३४॥

इस प्रकार की अनुपम महिमा इन ब्रह्ममुनियों की है। इन्हें परमधाम की एकदिली से अलग नहीं कहा जा सकता। मायावी जीव सृष्टि इनके स्वरूप की पहचान नहीं कर सकती। ब्रह्मसृष्टियों का परमधाम में धाम धनी से अँगना भाव का अखण्ड सम्बन्ध है।

तिन से अर्स मता क्यों छिपा रहे, जो दिल अर्स कहा मोमिन।

एक जरा न छिपे इन से, ए देखो फुरमान वचन॥१३५॥

इन ब्रह्मसृष्टियों के हृदय को अक्षरातीत का धाम कहा

गया है, इसलिये परमधाम की वास्तविकता इनसे नहीं छिप सकती। हे साथ जी! इस सम्बन्ध में कुरआन के वचनों की साक्षी देखिए, जिसमें लिखा है कि मोमिनों (ब्रह्ममुनियों) से परमधाम की कोई भी (छोटी से छोटी) बात छिपी नहीं रह सकती।

बका पट किने न खोलिया, अव्वल से आज दिन।

हाए हाए तन न हुआ टुकड़े, करते जाहेर ए वतन॥१३६॥

सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर आज दिन तक, किसी ने भी अखण्ड परमधाम का ज्ञान इस संसार में नहीं दिया था। हाय! हाय! परमधाम की लीला एवं शोभा के ज्ञान को इस संसार में प्रकट करते समय मेरे इस तन के टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो गये।

अर्स बका द्वार खोल के, करी जाहेर हक सूरत।

अंग मेरा रह्या अचरजें, द्वार खोलते वाहेदत॥१३७॥

श्री राज जी के आदेश (हुक्म) से मैंने अखण्ड परमधाम का दरवाजा खोला और प्रियतम के अनुपम स्वरूप का संसार में वर्णन किया। मुझे इस बात पर बहुत आश्चर्य हो रहा है कि परमधाम की एकदिली की लीला का वर्णन करते समय मेरा हृदय इस संसार में किस प्रकार रह रहा है।

मेरी रूहे कह्या आगे रूहन, सुन्या मैं हक के मुख इलम।

ए बात केहेतें तन ना फट्या, हाए हाए ए देख्या बड़ा जुलम॥१३८॥

मैंने सुन्दरसाथ (ब्रह्मसृष्टियों) से यह बात कही है कि धाम धनी के मुख से मैंने इस ज्ञान को सुना है, अर्थात् श्री राज जी मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर तारतम

वाणी का यह ज्ञान प्रकट कर रहे हैं। हाय! हाय! इस तरह की बात कहकर मैंने अपने प्रेम के ऊपर अत्याचार किया है (कलंक लगाया है)। यह अपराध करते समय मेरा शरीर टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो गया।

भावार्थ- प्रेम और धनी की मेहर का ढिंढोरा पीटना एक अपराध है, जो प्रेम की मर्यादा का उल्लंघन है। इस प्रकार की भूल जहाँ अहम् में वृद्धि कर सकती है, तो दूसरों के लिये ईर्ष्या का कारण भी बन सकती है। इसलिये सभी मनीषियों में प्रेम को गोपनीय रखने की मान्यता है। इसका पालन न करना प्रेम की पवित्र भावना को कलंकित करना है। इस चौपाई के चौथे चरण में यही बात दर्शायी गयी है।

यों चाहिए मोमिन को, रूह उड़े सुनते हक नाम।

बेसक अर्स से होए के, क्यों खाए पिए करे आराम॥१३९॥

परमधाम की आत्माओं को चाहिए कि वे श्री राज जी की शोभा और लीला आदि का वर्णन सुनते ही इस शरीर और संसार के मोहजाल से अपने को पूर्णतया अलग कर लें और धनी के प्रेम में अपने अस्तित्व को मिटा दें। कितने आश्चर्य की बात है कि सुन्दरसाथ ब्रह्मवाणी से संशयरहित तो हो चुके हैं, किन्तु वे अभी भी खाने-पीने और मायावी सुखों में ही आराम कर रहे हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में ज्ञान दृष्टि से मरने (उड़ जाने) का प्रसंग है, शरीर छोड़ने का नहीं। "नाम" शब्द का तात्पर्य पहचान से है, जिसमें उनकी शोभा, सौन्दर्य, और लीला छिपी होती है। खिलवत १५/१ में कहा गया है कि "आसिक मेरा नाम", तो यहाँ यह प्रश्न होता है कि

क्या अक्षरातीत का नाम आशिक है? वस्तुतः यह (नाम) तो सम्बोधनात्मक शब्द है, जिसमें उनकी प्रेममयी लीला की पहचान छिपी हुई है।

हक अर्स याद आवते, रूह उड़ न पोहोंचे खिलवत।

बेसक होए पीछे रहे, हाए हाए कैसी ए निसबत॥१४०॥

अक्षरातीत और परमधाम की याद आते ही यदि आत्मा अपनी आत्मिक दृष्टि से संसार को छोड़कर मूल मिलावा में नहीं पहुँच जाती है, तो हाय! हाय! यही कहना पड़ेगा कि अक्षरातीत से अखण्ड प्रेम का हमारा कैसा सम्बन्ध है। ब्रह्मवाणी से संशयरहित हो जाने पर तो प्रेम में पीछे रहने का प्रश्न ही नहीं रहना चाहिए।

भावार्थ— इस चौपाई में यह बात दर्शायी गयी है कि ब्रह्मसृष्टियों को प्रियतम की याद आने पर केवल नाम या

शब्द जप में ही नहीं रहना चाहिये, बल्कि भाव दृष्टि द्वारा स्वयं को मूल मिलावा में अनुभव करना चाहिए। ऐसा करने पर प्रियतम की शोभा का आभास भी होगा। अभ्यास गहन हो जाने पर प्रेम में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जायेगी, जो परमहंस (ब्राह्मी) अवस्था तक ले जायेगी। नाम-जप केवल उपासना (तरीकत) तक ही सीमित रह जाता है।

क्यों न खेलावें खिलवत में, रूह अपनी रात दिन।

हक इलमें अजूं जागी नहीं, कहावें अर्स अरवा तन॥१४१॥

क्यों न हम अपनी आत्मा को दिन-रात मूल मिलावा की शोभा में ही डुबोये रखें। हम परमधाम में अपना अखण्ड स्वरूप रखने वाली आत्मायें तो कहलाती हैं, किन्तु ब्रह्मवाणी को लेकर भी अभी तक जाग्रत नहीं हो

सकी हैं।

बैठ इन ख्वाब जिमीय में, कहे अर्स अजीम का बातन।

हड्डी हड्डी जुदी होए ना पड़ी, तो कैसी रूह मोमिन॥१४२॥

हे मेरी आत्मा! तू इस नश्वर संसार में रहकर परमधाम के गुह्य रहस्यों को उजागर कर रही है। तू कैसी आत्मा है, जो इतना कहने पर भी धनी के विरह में तुम्हारे शरीर की एक-एक हड्डी तुमसे अलग नहीं हो जाती।

याद न जेता हक अर्स, एही मोमिनों बड़ा कुफर।

हक वाहेदत इलम चीन्ह के, अजूं क्यों देखे दुनी नजर॥१४३॥

जितने समय तक ब्रह्ममुनियों को अक्षरातीत और परमधाम की याद नहीं आती, उतने समय तक उन्हें धनी के प्रति कृतधनता का दोष लगता है। हे मेरी आत्मा!

ब्रह्मवाणी से अक्षरातीत और परमधाम के एकत्व (एकदिली) की पहचान करके भी तू अभी तक इस झूठे संसार की ओर क्यों देख रही है?

भावार्थ- अक्षरातीत ने हमें माया के संसार से पार निकाला है, यह सोचकर हमेशा ही उनके प्रेममयी भावों में डूबे रहना कृतज्ञता है तथा उन्हें भूल जाना कृतघ्नता (कुफ्र) है।

सुनते नाम हक अर्स का, तबहीं अरवा उड़ जात।

हाए हाए ए बल देख्या हुकम का, अजूं एही करावे बात॥१४४॥

अक्षरातीत और परमधाम का नाम सुनते ही आत्माओं का तन विरह के कारण इस संसार में नहीं रह सकता था, किन्तु यह धाम धनी के हुक्म का ही बल है जिसने उनके तनों को संसार में रखा हुआ है (बातें करवा रहा

है)। हाय! हाय! यह कितने आश्चर्य की बात है।

वस्तर और भूखन कहे, हक अंग वाहेदत के।

ए केहते बारीकियां अर्स की, हाए हाए तन उड़या न ख्वाबी ए॥१४५॥

मैंने परमधाम में विराजमान श्री राज जी के अंगों, वस्त्रों, तथा आभूषणों की शोभा का वर्णन किया है। परमधाम की सूक्ष्मता भरी इन गुह्य बातों को कहते समय हाय ! हाय! मेरा यह नश्वर तन क्यों नहीं समाप्त हो गया।

बेसक इलम ले दिल में, बरनन किया बेसक।

हुए बेसक रूह ना उड़ी, हाए हाए पोहोंची ना खिलवत हक॥१४६॥

मैंने इस संशय रहित तारतम ज्ञान को अपने दिल में लेकर धाम धनी की शोभा का निःसन्देह वर्णन किया है। पूर्णतया संशय रहित हो जाने पर भी हाय! हाय! मेरी

आत्मा इस संसार को छोड़कर मूल मिलावा में धनी के चरणों में क्यों नहीं पहुँच जाती।

भावार्थ- इस चौपाई में तारतम ज्ञान का तात्पर्य मात्र छः चौपाइयों से नहीं है , बल्कि सम्पूर्ण श्रीमुखवाणी (कुल्जुम स्वरूप) से है। तारतम ज्ञान रूपी यह ब्रह्मवाणी श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान श्री राज जी के आवेश स्वरूप से प्रवाहित हो रही है।

कहे इलम रुहें इत हैं नहीं, है हुकम तो हक का।

हुए बेसक हुकम क्यों रहे, ले हुज्रत रुह बका॥१४७॥

तारतम ज्ञान कहता है कि इस खेल में ब्रह्मसृष्टियाँ नहीं है। केवल श्री राज जी का हुक्म (आदेश) ही है, जिसने परमधाम की सखियों का दावा ले रखा है। ऐसी स्थिति में यह प्रश्न होता है कि ब्रह्मवाणी से संशय रहित हो जाने

पर भी यहाँ हुक्म किसलिये है? वह पुनः परमधाम क्यों नहीं चला जाता?

भावार्थ- यदि इस खेल में ब्रह्मसृष्टियाँ नहीं आयी हैं, तो ये प्रश्न उपस्थित होते हैं-

१. बिना ब्रह्मसृष्टियों के ब्रह्मलीला कैसे हुई, क्योंकि प्र०हि० प्रकटवाणी ३७/११४ में कहा गया है- "इन तीनों में ब्रह्मलीला भई, ब्रज रास और जागनी कही"?

२. युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार का अवतरण क्यों हुआ? यदि जीवों के लिये हुआ, तो इसके पहले अक्षर ब्रह्म और उनके चतुष्पाद, आदिनारायण, और सतयुग के ऋषि-मुनियों को इससे वंचित क्यों रखा गया?

३. इस जागनी लीला में किसको जगाया जा रहा है?

४. जब परमधाम में ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त अन्य कोई जा ही नहीं सकता, तो यह बार-बार क्यों कहा जाता

है—

जो कोई आतम धाम की, इत हुई होए जाग्रत।

सो इन सरूप के चरन लेय के, चलिये अपने घर॥

५. यदि ब्रह्मसृष्टियाँ नहीं आयीं, तो प्रश्न यह होता है कि श्री प्राणनाथ जी का स्वरूप क्या है? यदि वे अक्षरातीत हैं, तो ब्रह्मसृष्टियों को निजधाम में छोड़कर अकेले यहाँ क्यों आये हैं? यदि वे जीव हैं, तो उनके द्वारा कही हुई वाणी का पूजन क्या पतिव्रता धर्म का खण्डित हो जाना नहीं है?

वास्तविकता यह है कि इस खेल में ब्रह्मसृष्टियों के न आने का तात्पर्य उनके नूरमयी तनों के न आने से है। जिस प्रकार परमधाम में सम्पूर्ण लीला श्री राज जी के दिल से होती है, उसी प्रकार माया के खेल में भी सारी लीला श्री राज जी के दिल से संचालित हो रही है, जिसे

हुक्म या आदेश कहते हैं। धनी का हुक्म ही परमधाम में उनकी इच्छा कहलाता है।

हकें किया हुक्म वतन में, सो उपजत अंग असल।

जैसा देखत सुपन में, ए जो बरतत इत नकल॥

खिल्वत ५/३७

कहे लदुन्नी भोम तलेय की, हक बैठे खेलावत।

तैसा इत होत गया, जैसा हजूर हुक्म करत॥

खिल्वत ५/३९

श्रीमुखवाणी के इन कथनों से यह स्पष्ट है कि जिस प्रकार परमधाम की सारी शोभा, लीला, एवं सखियों के तन श्री राज जी के दिल की इच्छा से हैं, उसी प्रकार इस जागनी लीला में भी सखियों के तन धनी के हुक्म (इच्छा) से हैं। परमधाम की शोभा, लीला, तथा सखियों का स्वरूप अनादि होने से उसे अक्षरातीत का लीला—

विलास माना जाता है, जबकि यह संसार स्वप्नवत् है। इस प्रकार यहाँ के तन, लीला, एवं आनन्द का स्वरूप भी यहाँ की प्रकृति के ही अनुकूल होगा, किन्तु मूल में धनी की ही इच्छा रहेगी।

जिस प्रकार परात्म के तन धनी के अंग हैं, उसी प्रकार आत्मा भी धनी की अँगरूपा है। जाग्रत अवस्था में आत्मा और परात्म में कोई भी भेद नहीं रह जाता। सागर ११/४४ में तो यह स्पष्ट रूप से कहा ही गया है—

तब आत्म परआत्म के, रहे न कछु अन्तराए।

बेसक हुए जो अर्स से, और बेसक हुए वाहेदत।

मुतलक इलम पाए के, हाए हाए हुकम क्यों रह्या ले हुझत॥१४८॥

जब हम ब्रह्मवाणी का परमसत्य ज्ञान पाकर परमधाम एवं वहाँ की एकदिली के प्रति पूर्णतया संशय रहित हो

गये हैं, तो धनी का हुक्म हमारे मूल तनों के नाम का दावा लेकर हाय! हाय! इस संसार में क्यों है?

भावार्थ— परमधाम के इश्क तथा वहदत की मारिफत के स्वरूप की पहचान देने के लिये ही यह माया का खेल बनाया गया है। जब ब्रह्मवाणी से मारिफत के सभी रहस्यों का भेद स्पष्ट हो गया है, तो धनी के हुक्म द्वारा धारण किये तनों को इस संसार में नहीं रहना चाहिए अर्थात् सुरताओं (आत्माओं) को अपने मूल तन (परात्म) में जाग्रत हो जाना चाहिए। इस चौपाई में मुख्यतः यही बात कही गयी है।

नैन रहे नैन देख के, एही बड़ा जुलम।

न जानो क्यों सुरखरू, करसी हक हुकम॥१४९॥

अपने प्राणवल्लभ के अति मनोहर नेत्रों को देखकर भी

हमारी आत्मा के नेत्र अभी इस संसार में ही हैं। यह तो हमसे बहुत बड़ा अपराध हुआ है। पता नहीं, धाम धनी का हुक्म हमें किस प्रकार इस दोष से मुक्त करेगा।

ए विरहा सुन श्रवन रहे, लगी न सीखां कान।

हाए हाए वजूद न गल गया, सुन विरहा हादी सुभान॥१५०॥

प्रियतम के विरह की बातें सुनकर भी ये कान इस संसार में क्यों रह रहे हैं। इन कानों में गर्म – गर्म सलाखें क्यों नहीं पड़ गयी। युगल किशोर श्री राजश्यामा जी के विरह की बातें सुनने पर भी हाय! हाय! यह शरीर गल क्यों नहीं गया।

संध संध टूटी नहीं, सुनते विरहा सुकन।

रोम रोम इन तन के, क्यों न लगी अगिन॥१५१॥

धाम धनी से विरह होने का ज्ञान होते ही मेरे शरीर के सभी जोड़ टूट-टूट कर अलग क्यों नहीं हो गये। प्रियतम के वियोग में मेरे शरीर के रोम-रोम में विरह की अग्नि क्यों नहीं लग गयी।

बातें इन विरह की, मैं गाई अंग अंग कर।

अचरज इन निसबतें, अरवा ना गई जर बर॥१५२॥

श्री राज जी के एक-एक अंग की शोभा का वर्णन करके मैंने विरह की बातें कही हैं। सबसे अधिक आश्चर्य इस बात का है कि स्वयं श्री राज जी की अर्धांगिनी होने पर भी मैं विरहाग्नि में नहीं जल सकी।

भावार्थ- हब्से में श्री महामति जी ने विरह की पराकाष्ठा को प्राप्त कर लिया था, किन्तु इस प्रकार का कथन सुन्दरसाथ को सिखापन देने के लिये है कि अध्यात्म की

गहनतम स्थिति को प्राप्त कर लेने पर भी अपने मन में किसी प्रकार का अहं नहीं पालना चाहिए।

मेरे अंग सबे उड़ ना गए, सब देख हक के अंग।

सेज सुरंगी हक छोड़ के, रही पकड़ मुरदे का संग॥१५३॥

सौन्दर्य के सागर अपने प्राण प्रियतम के अति मनोहर अंगों को देखकर भी मेरे सभी अंग समाप्त क्यों नहीं हो गये। श्री राज जी के साथ सुन्दर सेज्या का सुख छोड़कर मैं इस नश्वर शरीर को ही पकड़ी रही हूँ।

क्यों न उड़ी अकल अंग थें, जो बरनन किया अर्स हक।

ए पूरी हांसी बीच अर्स के, माहें गिरो आसिक॥१५४॥

जब मैं परमधाम तथा अक्षरातीत की शोभा का वर्णन कर रही थी, उस समय मेरी बुद्धि मेरे हृदय से निकल

क्यों नहीं गयी। परमधाम में जाग्रत होने पर ब्रह्मसृष्टियों के बीच मेरे इस कृत्य (काम) की बहुत हँसी होगी।

करी हांसी हकें हम पर, ता विध सों चले न किन।

अब सो क्योंए न बनि आवहीं, जो रोऊं पछताऊं रात दिन॥१५५॥

इस खेल में धाम धनी ने हमारे साथ हँसी की लीला की है, इसलिये किसी का कुछ भी वश नहीं चल पा रहा है। अपनी भूलों पर यदि मैं रात –दिन रोती रहूँ और पछताती भी रहूँ, तो भी क्या हो सकता है। बिगड़ी हुई बात अब कैसे बन सकती है, अर्थात् जो भूल हो गयी, उसकी तो परमधाम में हँसी अवश्य होनी है।

सोई देखी जो कछू देखाई, अब देखसी जो देखाओगे।

हंसो खेलो जानों त्यों करो, बीच अर्स खिलवत के॥१५६॥

मेरे प्रियतम! इस खेल में मैंने वही देखा है, जो आपने दिखाया है। भविष्य में भी आप जो कुछ दिखायेंगे, मैं वही देखूँगी। मूल मिलावा में बैठे-बैठे आपकी जो भी इच्छा हो, वही कीजिए। चाहे आप हमारी भूलों पर हँसी कीजिए या हमसे प्रेम का खेल कीजिए।

भावार्थ— धाम धनी और आत्माओं के बीच में दूरी का कोई बन्धन नहीं है। यदि वे हृद-बेहृद से परे परमधाम के मूल मिलावा में बैठे-बैठे हँसी करते हैं, तो इस संसार में हमारे धाम हृदय में विराजमान होकर अपने प्रेम का आनन्द भी देते हैं। वे इस जगत में हमारी प्राणनली (शाहरग) से भी अधिक निकट हैं।

मोमिन दिल अर्स कर के, आए बैठे दिल माहें।

खुदी रूहों इत ना रही, इत गुनाह मोमिनोँ सिर नाहें॥१५७॥

श्री राज जी ब्रह्मसृष्टियों के हृदय को अपना धाम बनाकर उसमें विराजमान हो गये हैं, जिससे अब उनके अन्दर किसी प्रकार की मैं नहीं रह गयी है। इस प्रकार इस खेल में ब्रह्मसृष्टियों के ऊपर किसी भी प्रकार का गुनाह (अपराध) नहीं लगेगा।

फेर हिसाब कर जो देखिए, तो गुनाह रूहों आवत।

ए बेवरा है कलस में, मोमिन लेसी देख तित॥१५८॥

पुनः यदि विचार करके देखते हैं, तो यह स्पष्ट होता है कि ब्रह्मसृष्टियों को भी गुनाह लगता है। इसका वर्णन "कलश" ग्रन्थ में किया गया है। ब्रह्ममुनि इस प्रसंग को कलश ग्रन्थ में देख लेंगे।

रुहें मोमिन इत आई नहीं, तिन वास्ते नहीं गुना।

पर एता गुनाह लगत है, इनों में जेता हिस्सा अर्स का॥१५९॥

ब्रह्मसृष्टियों को इस खेल में गुनाह इसलिये नहीं लगेगा कि वे इस संसार में अपने तन से नहीं आयी हैं। फिर भी, उनमें परमधाम का जितना भाग है, उतना गुनाह अवश्य लगेगा।

भावार्थ— यद्यपि ब्रह्मात्माओं के मूल तन मूल मिलावा में ही विद्यमान हैं और हुक्म के द्वारा परात्म की सुरतायें इस संसार में आयी हैं, किन्तु नाम तो परात्म के तनों का ही चल रहा है। इस प्रकार, इस खेल में होने वाला गुनाह परात्म के तनों तक पहुँच जायेगा, क्योंकि उनका ही नाम इस खेल में आत्मा के स्वप्न के तनों के साथ जुड़ा हुआ है।

महामत कहे मोमिनोँ पर, करी हांसी हुकमें।

ना तो अरवाहें इत क्यों रहें, बेसक होए हक सें॥१६०॥

श्री महामति जी कहते हैं कि श्री राज जी के हुक्म (आवेश शक्ति) ने ब्रह्माँगनाओं के ऊपर हँसी की लीला की है अन्यथा, तारतम ज्ञान के प्रकाश में प्रियतम के प्रति पूर्ण रूप से संशय रहित हो जाने पर, आत्मायें इस संसार में रह ही नहीं सकती हैं।

प्रकरण ॥२२॥ चौपाई ॥१६०६॥

मोमिन दुनी का बेवरा

ब्रह्मसृष्टि और जीव सृष्टि का विवरण

इस प्रकरण में यह बात दर्शायी गयी है कि ब्रह्मसृष्टियों तथा जीव सृष्टि में क्या अन्तर है।

अरवा आसिक जो अर्स की, ताके हिरदे हक सूरत।

निमख न न्यारी हो सके, मेहेबूब की मूरत॥१॥

जो परमधाम की आत्मायें होती हैं, उनके धाम हृदय में श्री राज जी का स्वरूप विराजमान होता है। उनके हृदय से एक क्षण के लिये भी प्रियतम का स्वरूप अलग नहीं होता है।

भावार्थ- धाम धनी का एक बार भी यदि दर्शन प्राप्त हो जाये, तो आत्मा के धाम हृदय में वह शोभा हमेशा के लिये अखण्ड हो जाती है और एक पल के लिये भी कभी

अलग नहीं होती। भले ही जीव को पल-पल धनी का आभास न हो, किन्तु आत्मा को होता रहता है।

और न पावे पैठने, इत बका बीच खिलवत।

बका अर्स अजीम में, कौन आवे बिना निसबत॥२॥

ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त परमधाम के मूल मिलावा में अन्य कोई भी नहीं आ सकता। बिना मूल सम्बन्ध के अखण्ड परमधाम में भला और कौन आ सकता है।

भावार्थ- केवल परमधाम की आत्मायें ही प्रेम मार्ग पर चलकर चितवनि द्वारा मूल मिलावा में पहुँचती हैं। जीव सृष्टि का रूझान चितवनि द्वारा मूल मिलावा में विराजमान युगल स्वरूप के साक्षात्कार की ओर होता ही नहीं है। शरियत (कर्मकाण्ड) एवं तरीकत के बन्धनों को तोड़ पाना उसके लिये टेढ़ी खीर होती है।

और तो कोई हैं नही, बिना एक हक जात।

जात माहें हक वाहेदत, हक हादी गिरो केहेलात॥३॥

परमधाम में श्री राजश्यामा जी और सखियों के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं है। इनमें एकदिली है अर्थात् श्री राज जी का दिल ही इनके स्वरूप में लीला करता है। इन्हें हक जात भी कहा जाता है, जिसका तात्पर्य होता है— श्री राज जी के अंग स्वरूप श्यामा जी एवं सखियाँ।

वस्तर भूखन पेहेर के, मेरे दिल में बैठे आए।

हकें सोई किया अर्स अपना, रूह टूक टूक होए बल जाए॥४॥

अक्षरातीत श्री राज जी वस्त्रों एवं आभूषणों के श्रृंगार से सुसज्जित होकर मेरे हृदय में आकर विराजमान हो गये हैं। उन्होंने मेरे हृदय को ही अपना धाम बना लिया है। अब

मेरी आत्मा अपने प्राणवल्लभ के प्रति पूर्ण रूप से न्योछावर हो रही है।

दर्ई बड़ाई मेरे दिल को, हक बैठे अर्स कर।

अपनी अंगना जो अर्स की, रूह क्यों न खोले नजर॥५॥

धाम धनी ने मेरे हृदय को यह शोभा दी है और इसे अपना धाम बनाकर इसमें विराजमान हो गये हैं। धनी की अँगनायें जो परमधाम की आत्मायें हैं, वे अपनी आत्मिक दृष्टि को क्यों नहीं खोल रही हैं।

दम न छोड़े मासूक को, मेरी रूह की एह निसबत।

क्यों बातें याद दिए न आवहीं, जो करियां बीच खिलवत॥६॥

मेरी आत्मा का तो श्री राज जी से ऐसा सम्बन्ध है कि वह एक क्षण के लिये भी अपने प्राण प्रियतम को अपने

हृदय से अलग नहीं कर सकती। हे साथ जी! परमधाम के मूल मिलावा में आपने जो धनी से बातें की थीं , उनकी याद दिलाने पर भी आपको क्यों नहीं याद आ रही हैं?

जाको अनुभव होए इन सुख को, ताए अलबत आवे याद।
 अर्स की रूहों को इस्क का, क्यों भूले रस मीठा स्वाद॥७॥
 जिसे परमधाम के इन सुखों का अनुभव होता है , निश्चित रूप से उसे उनकी याद आती रहती है। भला परमधाम की आत्मायें प्रेम रस के मीठे स्वाद को कैसे भूल सकती हैं।

रूह केहेलाए छोड़े क्यों अपना, क्यों याद दिए जाय भूल।
 हकें याही वास्ते, भेज्या अपना नूरी रसूल॥८॥

परमधाम की आत्मायें अपने निज घर की याद कैसे छोड़ सकती हैं। याद दिलाने पर भी वे अपने मूल सम्बन्ध को कैसे भूल सकती हैं। इसलिये तो याद दिलाने के लिये धाम धनी ने सन्देशवाहक के रूप में अपने नूरी रसूल को भेजा।

भावार्थ- कुरआन के बारहवें प्रकरण में लिखा है कि तुम कुरआन को मत छुओ, अर्थात् इसके अर्थों में अपनी बुद्धि से हस्तक्षेप मत करो। मेरे वारिस (उत्तराधिकारी ब्रह्ममुनि) जब आयेंगे, तो वे ही इसके रहस्यों को समझेंगे।

इसी प्रकार कुरआन के सोलहवें (१६वें) सिपारे में सूरः मरियम में आयत १ की व्याख्या में तफ़सीर-ए-हुसैनी में तीन सूरतों का वर्णन है। तीनों को खुदा द्वारा भेजी हुई नूरी सूरतें माना गया है।

बशरी स्वरूप मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम, जो कुरआन लेकर आये, उनको संसार के लोग नहीं समझ सके। इसके भेदों को स्पष्ट करने के लिये सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी (मल्की सूरत) तारतम ज्ञान लेकर आये, और हकी सूरत श्री प्राणनाथ जी ने ब्रह्मवाणी श्री कुल्जम स्वरूप के द्वारा कुरआन की हकीकत एवं मारिफत के भेदों को खोल दिया तथा परमधाम से आयी हुई आत्माओं को जाग्रत कर दिया।

हम अरवाहें जो अर्स की, तिन सब अंगों इस्क।

सो क्यों जावे हम से, जो आड़ा होए न हुकम हक॥९॥

हम जो परमधाम की आत्मायें हैं, उन सबके हृदय में प्रेम भरा होता है। यदि श्री राज जी का हुकम आड़े न आये, तो हमारा इश्क हमसे अलग नहीं हो सकता।

भावार्थ- हुक्म द्वारा हमारी नजर धनी को न देखकर संसार को देखने लगी है, जिसके कारण हमारे अन्दर का प्रेम समाप्त हो गया है। ब्रह्मवाणी के ज्ञान से धाम धनी के स्वरूप की पहचान करके यदि हम अपने आत्मिक नेत्रों से युगल स्वरूप को देखने की तरफ कदम बढ़ायेंगे, तो हमारा प्रेम पुनः हमें प्राप्त हो जायेगा।

ए निसबत नूर जमाल से, जो रूह को पोहोंचे रंचक।

तो लाड़ अर्स अजीम के, क्यों भूलें मुतलक॥१०॥

यदि परमधाम की आत्माओं को इस बात का थोड़ा सा भी ज्ञान मिल जाये कि हमारा अखण्ड सम्बन्ध केवल धाम धनी से है, तो वे निश्चित रूप से परमधाम के प्रेम को नहीं भूल सकती हैं।

भावार्थ- अज्ञानता के अन्धकार में मनुष्य मात्र

पारिवारिक एवं सामाजिक सम्बन्धों को ही सर्वोपरि मान लेता है, तथा प्रेम एवं आनन्द के सागर परब्रह्म से अपना मुख मोड़े रहता है। यदि ब्रह्मवाणी के प्रकाश में किसी को भी शरीर तथा संसार की नश्वरता, सांसारिक सम्बन्धियों के स्वार्थमयी दृष्टिकोण, और परब्रह्म के अखण्ड एवं अनन्त प्रेम का पता चल जाये, तो अक्षरातीत की ओर लगना स्वाभाविक है। ब्रह्मसृष्टियाँ तो विद्युत की तरह संसार से अपनी आसक्ति हटाकर धनी के प्रति समर्पित हो जाती हैं।

पर हुआ हाथ हुकम के, जो हुकम देवे याद।

हुकमें पेहेचान होवहीं, हुकमें आवे स्वाद॥११॥

लेकिन यह सब कुछ धाम धनी के हुकम के हाथ में है। यदि श्री राज जी का हुकम (आदेश) ही हमें परमधाम

की याद दिलाये तो याद आयेगी। हुक्म ही श्री राज जी के स्वरूप की पहचान कराता है तथा इसी से परमधाम के प्रेम का स्वाद भी आता है।

कबूल करी हम हांसी को, और अपनी मानी भूल।

सब सुध पाई कुंजी से, और फुरमान रसूल॥१२॥

हमने इस माया के खेल में अपनी भूल मानकर श्री राज जी की हँसी की लीला को स्वीकार कर लिया है। तारतम वाणी तथा मुहम्मद साहिब के लाये हुए कुरआन से परमधाम की सारी बातों की हमें सुध हो गयी है।

अब हुई पेहेचान हुक्म की, एक जरा न रही सक।

बोझ हम सिर ना रह्या, हक इलमें देखाया मुतलक॥१३॥

तारतम ज्ञान द्वारा अब हमें किसी भी विषय में कोई भी

संशय नहीं रह गया है। हमें श्री राज जी के हुक्म (आदेश) की भी पहचान हो गयी है। श्री राज जी की वाणी ने निश्चित रूप से हमें यह बोध करा दिया है कि इस खेल में होने वाली भूलों का हमारे सिर पर कोई उत्तरदायित्व नहीं है।

अब भूल हमारी जरा नहीं, और हक कर थके हांसी।

बात आई सिर हुक्म के, अब काहे बिलखे रूह खासी॥१४॥

अब तो यह पूर्णतया स्पष्ट हो गया है कि हमारी जरा भी भूल नहीं है, भले ही धाम धनी हमारे ऊपर कितनी भी हँसी क्यों न करें। जब सारा उत्तरदायित्व हुक्म का है, तो फिर हमारी आत्मा अपनी भूलों को याद करके क्यों रोए।

भावार्थ— अक्षरातीत के लिये "थके" शब्द का प्रयोग

उचित नहीं है। इस चौपाई के दूसरे चरण में श्री राज जी के थकने की जो बात कही गयी है, वह मात्र काव्यगत सौन्दर्य है जो प्रेममयी लीला को व्यक्त करने के लिये किया गया है। इसका भाव यह है कि श्री राज जी ने हमारे ऊपर इतनी अधिक हँसी की है कि अब इससे और अधिक नहीं करेंगे।

देखना था सो सब देख्या, हक इस्क और पातसाई।

और हांसी रूहों इस्क पर, सब देखी जो देखाई॥१५॥

हमें इस माया के खेल में आपके प्रेम (इश्क) और प्रभुत्व (बादशाही) को देखना था। वह सब कुछ हमने देख लिया है। आप माया में हमें यह भी दिखाना चाहते थे कि आपका प्रेम न होने पर हम इस प्रकार की भूलें करेंगी, जिनकी हँसी होगी। हमने यह लीला भी देख ली

है।

क्यों न होए हुकम को हुकम, जो पेहेले किया इसदाए।

हुई उमेद सब की पूरन, अब क्यों न दीजे रूहें जगाए॥१६॥

हे धाम धनी! आपने हमें खेल दिखाने के लिये जो हुकम किया था, उसी हुकम को खेल खत्म करने के लिये क्यों नहीं कहते अर्थात् खेल खत्म करने का हुकम कीजिए। अब तो हमारी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो गयी हैं। हमारी परात्म को अब आप क्यों नहीं जाग्रत कर देते?

भावार्थ- यद्यपि बीतक ६२ / ५१ में कहा गया है कि "हुकम खुदाए का, जो है नूरजलाल" अर्थात् अक्षर ब्रह्म को हुकम का स्वरूप कहा गया है। किन्तु श्रृंगार की इस चौपाई में "हुकम" का तात्पर्य दिल की इच्छा से है। इस चौपाई के पहले चरण में यह बात कही गयी है कि हे धाम

धनी! आपने ही खेल दिखाने की पहले इच्छा की थी, इसलिये अब आप ही इस खेल को खत्म करने की इच्छा कीजिए। इस प्रकार की बातें आत्मा के जाग्रत होने पर ही की जा सकती हैं, इसलिये यहाँ परात्म के जागने का प्रसंग है, आत्मा का नहीं।

लाड़ हमारे अर्स के, हम से न छूटें खिन।

अक्स हमारे के अक्स, क्यों लगे दाग तिन॥१७॥

मेरे प्राण प्रियतम! जिस प्रेम से हम आपको परमधाम में रिझाती थीं, वह प्रेम हमसे एक क्षण के लिये भी अलग नहीं हो सकता। इसलिये हमें यह कदापि सहन नहीं होगा कि हमारे प्रतिबिम्ब के प्रतिबिम्ब रूप जो तन हैं, उन पर किसी भी प्रकार का दाग लगे।

भावार्थ— जिस प्रकार भूलवनी के मन्दिर में होने वाली

हँसी की लीला में एक ही सखी के अनेक प्रतिबिम्ब बन जाते हैं, उसी प्रकार इस खेल के शुरु होने से पहले ही श्री राज जी के हृदय में प्रत्येक आत्मा की ब्रज, रास, एवं जागनी में होने वाली लीला का दृश्यांकन हो चुका था।

आड़ा पट भी हकें दिया, पहले ऐसा खेल सहूर में ले।
जो खेल आया हक सहूर में, तो क्यों होए काएम ए॥

श्रृंगार २१/८७

मोमिन आए इतथें ख्वाब में, अर्स में इनों असल।
हुकम करें जैसा हजूर, तैसा होत मांहें नकल॥

खुलासा ४/७१

श्री राज जी के दिल रूपी पर्दे पर जैसा दृश्य चल रहा है, हमारी परात्म के अन्दर वही भावना आती है और हमारी आत्मा भी वैसा ही कार्य करती है—

असल हमारी अर्स में, ताए ख्वाब देखावत तुम।

जैसा उत ओ देखत, तैसा करत हैं हम॥

खिल्वत ४/४२

परआतम के अन्तस्करन, जेती बीतत बात।

तेती इन आतम के, करत अंग साख्यात॥

किरंतन ८१/१३

श्री राज जी के दिल में दो प्रकार की स्थिति है—

एक तो वह, जो धाम धनी ने ब्रज, रास, एवं जागनी लीला का चित्रांकन अपने दिल में कर रखा है, उसके अनुसार उस घटना का जो दृश्य धाम धनी अपने दिल में लेते हैं, उससे सम्बन्धित वही बात परात्म के दिल में आती है, जिसकी प्रेरणा के अनुसार आत्मा इस संसार में कार्य करती है। ऊपर की चौपाइयो में यही बात कही गयी है।

दूसरी स्थिति वह है, जिसमें इस कालमाया में होने वाली जागनी लीला को वह धाम धनी के दिल रूपी पर्दे पर देखती है।

श्री राज जी के दिल में ब्रज, रास, एवं जागनी लीला का जो चित्रांकन है, वह मूलतः भावात्मक है। इस प्रकार उनके दिल में जो परात्म का प्रतिबिम्बित रूप है, वह भी भावात्मक ही माना जायेगा।

इस नश्वर जगत में भी प्रायः यही देखा जाता है कि जाग्रत अवस्था में हमारे दिल में जो रूप या विचारधारा होती है, वही निद्रा अवस्था में स्वप्न के रूप में दिखायी पड़ती है। दूसरे शब्दों में, इसे मार्कण्डेय ऋषि के दृष्टान्त से भी समझा जा सकता है कि थोड़े ही समय में उन्होंने माया का खेल किस प्रकार देख लिया, जबकि वे सोये नहीं थे और न ही सपना देख रहे थे, बल्कि नारायण की

योगमाया से मोहित होकर वे संज्ञा शून्य हो गये थे और स्वयं को दूसरे स्थानों पर दूसरे रूपों में देखने लगे थे।

इसी प्रकार ऐसा नहीं माना जा सकता कि श्री राज जी के दिल में इस खेल से सम्बन्धित जो परात्म का स्वरूप प्रतिबिम्बित हुआ है, वही इस खेल में जीवों के ऊपर प्रतिबिम्बित होकर माया का खेल देख रहा है। इस खेल में स्वप्नद्रष्टा परात्म है, इसलिये परात्म का स्वरूप ही आत्मा के रूप में प्रतिबिम्बित होगा, न कि श्री राज जी के दिल में भावात्मक रूप से होने वाला प्रतिबिम्ब। श्री राज जी स्वप्नद्रष्टा नहीं है, बल्कि स्वप्न को दिखाने वाले हैं। श्रीमुखवाणी के कथनों में भी यही बात कही गयी है—

जो मूल सरूप हैं अपने, जाको कहिए परआतम।

सो परआतम संग लेय, विलसिए संग खसम॥

ब्रह्मवाणी के प्रकाश में विरह में डूबा हुआ जीव जब स्वयं को अक्षरातीत की अर्धांगिनी मानने लगता है और चितवनि की गहराइयों में डूबने लगता है , तो वह भी परात्म का श्रृंगार सजकर युगल स्वरूप को रिझाता है। यदि उस जीव पर आत्मा का स्वरूप विराजमान है, तो अपनी परात्म का साक्षात्कार कर लेने के पश्चात् आत्म-स्वरूप का प्रतिबिम्ब जीव पर पड़ता है, जिससे वह अपने पञ्चभूतात्मक शरीर से जुड़ी हुई जीव भावना को छोड़कर परात्म की भावना करने लगता है। यही भावना (प्रतिबिम्बित स्वरूप) उसे सत्स्वरूप की पहली बहिःशत में परात्म का श्रृंगार कराती है, क्योंकि उसने कालमाया के ब्रह्माण्ड में वैसी ही भावना कर रखी है। इसी को "अक्स का अक्स" कहते हैं, अर्थात् परात्म का अक्स आत्मा और आत्मा का अक्स सत्स्वरूप में अखण्ड होने

वाला तन है। इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी में भी कहा गया है—

सो भी पूजें तुमारे अक्स को, तुम आए असल वतन।
तिन सबकी लज्जत तुमें आवसी, सब तले तुमारे इजन॥

श्रृंगार २९/१२७

आगे हुई ना होसी कबहूँ, धनिए हमें ऐसी शोभा दर्ई।
सब पूजें प्रतिबिम्ब हमारे, सो भी अखण्ड में ऐसी भई॥
इस प्रकार जो कोरे जीव भी अपने जीव भाव तथा कर्मकाण्डों का परित्याग करके युगल स्वरूप के विरह—
प्रेम में डूब जायेंगे तथा परात्म का श्रृंगार सजकर श्री राज जी का साक्षात्कार कर लेंगे, उन्हें भी सत्स्वरूप की पहली बहिस्त में ब्रह्मसृष्टियों के अखण्ड जीवों जैसा ही तन मिलेगा, क्योंकि उन्होंने स्वयं में परात्म का स्वरूप प्रतिबिम्बित कर लिया है। इस सम्बन्ध में कलस

हिंदुस्तानी २३/६४ में कहा गया है—

जो किन जीवे संग किया, ताको करुं न मेलो भंग।

सो रंगे भेलूं वासना, वासना सत को अंग॥

श्रृंगार २३/१७ में जिनके ऊपर दाग लगने की बात कही गयी है, वे सत् स्वरूप में अखण्ड होने वाले तन ही हैं, जो परात्म की प्रतिबिम्ब स्वरूपा आत्माओं के प्रतिबिम्ब हैं। यद्यपि गुनाह इस खेल में आत्माओं के जीवों द्वारा ही हो रहा है, इसलिये यह दाग हमेशा के लिये सत्स्वरूप की पहली बहिश्त में जीवों के साथ रहेगा, किन्तु खेल में नाम परात्म का आया है, इसलिये हँसी परमधाम में परात्म की भी होगी। हमारे परमधाम में पहुँचने से पहले ही हमारा दोष (गुनाह) परमधाम में पहुँच जायेगा, जो हमेशा के लिये हँसी का कारण बनेगा, यद्यपि यह दृष्टिगोचर होगा योगमाया के ब्रह्माण्ड में।

मोमिन बैठे खेल में, अजूं बीच ख्वाब।

गुनाह पेहेले पोहोंच्या अर्स में, करें माशूक रुहें हिसाब॥

श्रृंगार २७/१६

अब जो दिन राखो खेल में, सो याही के कारन।

इस्क दे बोलाओगे, ऐसा हुकमें देखें मोमिन॥१८॥

हमें तो ऐसा लगता है कि अब हमें इस खेल में आप जितने भी दिन रख रहे हैं, तो केवल हमें दोषी (गुन्हगार) बनाने के लिये ही रख रहे हैं। हम तो उस समय की बाट देख रहे हैं कि आप हमें इस्क देकर अपने हुकम से कब परमधाम बुलायेंगे।

एक तिनका हमारे अर्स का, उड़ावे चौदे तबक।

तो क्यों न उड़े रूह अक्सैं, बल इलम लिए हक॥१९॥

हमारे परमधाम के एक तिनके के सामने चौदह लोक का यह ब्रह्माण्ड अपना अस्तित्व खो देगा। आश्चर्यजनक बात यह है कि ब्रह्मवाणी का बल लेकर परात्म की प्रतिबिम्ब स्वरूपा यह आत्मा इस संसार को क्यों नहीं छोड़ देती।

भावार्थ— प्रतिबिम्ब हूबहू बिम्ब जैसा ही दिखता है, इसलिये इस पञ्चभौतिक तन को आत्मा का प्रतिबिम्ब नहीं कहा जा सकता। परात्म का प्रतिबिम्ब आत्मा है, जो तारतम ज्ञान ग्रहण कर प्रेम के द्वारा प्रियतम के चरणों में बैठी हुई अपनी परात्म में पहुँचना चाहती है।

जो कदी कहोगे रूहें इत न हुती, ए तो हुकमें किया यों।

तो नाम हमारे धर के, हुकम करे यों क्यों॥२०॥

हे धाम धनी! यदि आप ऐसा कहें कि ब्रह्मसृष्टियाँ तो यहाँ थी ही नहीं, यह सब कुछ मेरे हुक्म ने ही किया है, तो प्रश्न यह होता है कि हुक्म हमारी परात्म के तनों का नाम रखकर इस प्रकार की लीला क्यों कर रहा है?

भावार्थ— परमधाम में इन्द्रावती, अमलावती आदि नाम भी यहाँ के भावों से हैं। वहाँ पर किसी भाषा विशेष का बन्धन नहीं है। ब्रह्मसृष्टियों के यहाँ न होने का तात्पर्य उनके मूल तन से है।

जो कदी हम आइयां नहीं, तो नाम तो हमारे धरे।

और तिन में हुक्म हक का, हक तासों ऐसी क्यों करे॥२१॥

यदि ऐसा मान लिया जाये कि हम इस खेल में आयी ही नहीं हैं, फिर भी हमारे मूल तनों के नाम तो यहाँ रखे गये हैं। पुनः उन तनों में भी आपका ही हुक्म विद्यमान है,

अर्थात् आपके हुक्म से ही आत्मा का तन खेल देख रहा है। ऐसी स्थिति में आप हमारे इन तनों पर दाग क्यों लगने दे रहे हैं?

भावार्थ- आत्मा के तनों में हुक्म के होने का भाव यह है कि श्री राज जी की इच्छा से ही परात्म की सुरता जीव के ऊपर बैठकर खेल को देख रही है, इसलिये यहाँ के तनों में हुक्म का अस्तित्व माना गया है।

अब तो सब ही करोगे, टालने हमारे दाग।

तुम रखियां ऐसा जान के, ना तो क्यों रहें पीछे हम जाग॥२२॥

यह बात तो निश्चित है कि हमारे ऊपर लगने वाले दाग को मिटाने के लिये आप सब कुछ करेंगे। आपने अब तक हमें इस खेल में रखा ही इसलिये है, अन्यथा ब्रह्मवाणी के ज्ञान से जाग्रत होने के पश्चात् हम इस

संसार में नहीं रह पातीं।

भावार्थ- इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का अखण्ड हो जाना तथा आत्माओं के जीवों द्वारा सत्स्वरूप की पहली बहिस्त में ब्रह्मात्माओं का रूप धारण करना, सभी दागों को मिटाने वाला है।

हुकम पर ले डारोगे, तेहेकीक कराओगे दिल।

दाग अक्सों क्यों मिटे, जो हमारे नामों किए सब मिल।।२३।।

यह भी सम्भव है कि हमारे हृदय को सान्त्वना देने के लिये आप हुकम के ऊपर सारा दोष डाल देंगे। किन्तु आपके हुकम ने हमारी परात्म का जो नाम इन तनों को दिया है, तो इनसे होने वाला गुनाह सत्स्वरूप में हमारे प्रतिबिम्ब के तनों पर हमेशा के लिये अखण्ड रहेगा, उसे आप कैसे मिटा सकते हैं?

जो कदी ए दाग धोए डारोगे, मन वाचा कर करमन।

अक्स हमारे नाम के, कदी रूहें बार्ते तो करसी वतन॥२४॥

कदाचित, यदि आप हमारे मन, वाणी, एवं कर्म से होने वाले दागों को धो भी दें, तो भी हमारे अखण्ड होने वाले प्रतिबिम्ब के तनों के नाम तो परात्म वाले ही रहेंगे। उन तनों से जुड़े हुए गुनाहों की चर्चा तो परमधाम में ब्रह्मसृष्टियाँ करेंगी ही।

भावार्थ- इस चौपाई से यह बात स्पष्ट होती है कि इस जागनी लीला में ही धनी की मेहर से मन, वाणी, एवं कर्म से होने वाले दाग धुल सकते हैं। इस जागनी लीला में जिस तन के साथ जो नाम जुड़ा हुआ है, वही नाम सत्स्वरूप में भी रहेगा।

यहाँ नाम का सम्बन्ध बोधमूलक है और परात्म के जिन नामों को हम यहाँ जानते हैं, वस्तुतः वे नाम परमधाम में

नहीं हैं क्योंकि परमधाम की भाषा को हिन्दी , संस्कृत, अरबी, या अंग्रेजी के बन्धन में नहीं बाँधा जा सकता। इसी प्रकार, सत्स्वरूप की भाषा भी अनुभवजन्य है तथा कालमाया के शब्दों के बन्धन में नहीं है।

इन बात की हांसियां, अक्स नाम भी क्यों सहे।

हक विरहा बात सुन के, झूठी देह पकड़ क्यों रहे॥२५॥

सत्स्वरूप की पहली बहिश्त में अखण्ड होने वाले तनों को भी यह सहन नहीं है कि उनके द्वारा होने वाले (अपराधों) गुनाहों की हँसी होती रहे। यह बहुत ही आश्चर्य की बात है कि धाम धनी के विरह की बातें सुनकर भी आत्मायें इन नश्वर तनों के मोह –बन्धन में फँसी हुई हैं।

सो मैं गाया याद कर कर, कबूँ पाया न विरहा रस।

नाम सहे ना हुकम सहे, ना कछू सहे अक्स॥२६॥

इसलिये मैंने मूल मिलावा में विराजमान धनी के गुणों का बहुत अधिक गान किया, ताकि मुझे विरह का रस प्राप्त हो जाये, किन्तु मुझे अपने प्रियतम का विरह नहीं प्राप्त हो सका। अपने ऊपर लगने वाले दाग को न ही हमारे परात्म के नाम सहन कर सकते हैं और न हमारे अखण्ड होने वाले प्रतिबिम्ब के तन सहन कर सकते हैं। यहाँ तक कि धनी का हुकम भी यह सहन नहीं कर सकता कि उनके ऊपर किसी भी प्रकार का दोष लगे।

और हांसी सब सोहेली, पर ए हांसी सही न जाए।

अक्स भी ना सेहे सकें, जब इलमें दिए पढ़ाए॥२७॥

परमधाम की लीला में होने वाली हँसी सह ली जाती है,

किन्तु प्रतिबिम्ब के तनों पर दाग लगने वाली यह हँसी नहीं सही जा सकती। जब ब्रह्मवाणी के ज्ञान का हृदय में प्रकाश हो जाता है, तो हमारी आत्मा (परात्म की प्रतिबिम्ब स्वरूपा) भी किसी स्थिति में इस प्रकार की हँसी सहन नहीं कर सकेगी।

ना रह्या इस्क अपना, ना रह्या वतन सों।

हक सों भी ना रह्या, तो कहा कहूं हुकम कों॥२८॥

माया के इस खेल में न तो हमारे अन्दर परमधाम वाला प्रेम रह गया है और न परमधाम से कोई सम्बन्ध ही रह गया है। यहाँ तक कि धाम धनी से भी प्रेम नहीं रह गया है। ऐसी स्थिति में मैं धनी के हुकम को क्या कहूँ (कैसे दोष दूँ)।

तुम हीं आप देखाइया, पेहेचान तुम इलम।

तुम हीं दई हिंमत, तुम हीं पकड़ाए कदम॥२९॥

हे धाम धनी! आपने ही हमें अपनी ब्रह्मवाणी का ज्ञान देकर अपने चरण पकड़ाये हैं, अपनी पहचान दी है, तथा अपने स्वरूप का दर्शन भी कराया है। इस माया से लड़ने का साहस भी आप ही देते हैं।

तुम हीं इस्क देत हो, तुम हीं दिया जोस।

सोहोबत भी तुम हीं दई, तुम हीं ल्यावत माहें होस॥३०॥

आप ही अपनी मेहर से हमारे अन्दर परमधाम का प्रेम और अपना जोश देते हैं। आप ही माया की बेहोशी (नींद) से होश में लाकर (जाग्रत करके) हमें अपना सान्निध्य (संग, निकटता) देते हैं।

भावार्थ— यद्यपि श्री राज जी पल-पल हमारी प्राणनली

से भी अधिक निकट हैं, किन्तु इस चौपाई में सान्निध्यता प्राप्त करने का भाव उस प्रत्यक्ष अनुभूति से है, जिसमें हमें ऐसा आभास होता है कि श्री राज जी पूर्णतया हमारे साथ हैं। माया में फँसे रहने पर इस बात पर विश्वास नहीं होता।

तुम हीं उतर आए अर्स से, इत तुम हीं कियो मिलाप।

तुम हीं दई सुध अर्स की, ज्यों अर्स में हो आप॥३१॥

मेरे प्राणवल्लभ! आप हमें जाग्रत करने के लिये अपने आवेश स्वरूप से साक्षात् इस संसार में आये हैं। इस संसार में आपने मुझे दर्शन दिया और मेरे धाम हृदय में आकर विराजमान हो गये हैं। आपने ब्रह्मवाणी द्वारा हमें परमधाम का सारा ज्ञान दिया है तथा यह भी बताया है कि अष्ट प्रहर परमधाम में किस प्रकार से लीला करते हैं।

तुम हीं देखाई निसबत, तुम हीं देखाई खिलवत।

तुम हीं देखाया सुख अखण्ड, तुम हीं देखाई वाहेदत॥३२॥

आपने ही ब्रह्मवाणी द्वारा हमें अपने मूल सम्बन्ध (प्रिया-प्रियतम) की पहचान करायी है। मूल मिलावा की अनुभूति भी आपने ही करायी है। परमधाम के एकत्व (एकदिली) में निहित अखण्ड सुखों का अनुभव भी आपने ही कराया है।

खेल भी तुम देखाईया, दर्ई फरामोसी भी तुम।

तुम हीं जगावत जुगतें, कोई नहीं तुम बिना खसम॥३३॥

माया का यह झूठा खेल भी आपने ही दिखाया है। इसमें बेसुधी भी आपने ही दी है। आप ही अपनी वाणी के द्वारा तरह-तरह की युक्तियों से हमें जगाते हैं। हे धनी! आपके अतिरिक्त हमारा और कोई है ही नहीं।

काहू तरफ न देखाई अपनी, यों रहे चौदे तबक सें दूर।
 सो सेहेरग से नजीक तुम हीं, हमको लिए कदमों हजूर॥३४॥

आपने चौदह लोक के प्राणियों को कभी भी अपनी पहचान नहीं दी कि मैं कहाँ हूँ और कैसा हूँ? इस प्रकार आप हमेशा उनसे दूर ही रहे, किन्तु आपने हमें अपने चरणों में इस प्रकार लिया है कि हमें यही अनुभव होता है कि आप हमारी प्राणनली (शाहरग) से भी अधिक निकट हैं।

मैं भी इत हों नहीं, ए भी कहावत तुम।
 जब दूजे कर बैठाओगे, तब खसम को कहेंगे हम॥३५॥

यह बात भी आप ही कहलवा रहे हैं कि मैं अपने नूरमयी स्वरूप से इस संसार में नहीं हूँ। यदि आप हमें अपने से अलग करके बतायें, तब हम आपसे कहेंगे कि

आप इस संसार में हमारे साथ नहीं हैं।

भावार्थ- अक्षरातीत इस संसार में भले ही अपने नूरमयी स्वरूप से नहीं है, किन्तु आवेश स्वरूप से तो हैं। श्याम जी के मन्दिर में श्री देवचन्द्र जी को दर्शन देने वाला स्वरूप आवेश स्वरूप ही था, जो हुबहू परमधाम के नूरी स्वरूप जैसा दिख रहा था। वही आवेश स्वरूप श्री देवचन्द्र जी के अन्दर विराजमान हुआ। वही कालान्तर में श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर जागनी लीला कर रहा है।

ऐसी स्थिति में यह कैसे कहा जा सकता है कि श्री राज जी हमसे अलग हैं। इसलिये तो श्री महामति जी ने इस चौपाई में यह चुनौती दी है कि यदि आप हमको अपने से अलग (दूसरे) करके दिखाइये कि मैं तुमसे अलग हूँ, तब हम आपको उत्तर देंगे कि आप हमसे किस प्रकार

अलग हो सकते हैं। आपने अपनी वाणी में स्वयं कहा है—

मैं रह न सकूं रूहों बिन, रूहें रह न सकें मुझ बिन।

जब पेहेचान होवे वाको, तब सहे न बिछोहा खिन॥

खिल्वत १५/५

दूजे तो हम हैं नहीं, ए बोले बेवरा वाहेदत का।

ज्यों खेलावत त्यों खेलत, ना तो क्या जाने बात बका॥३६॥

परमधाम की एकदिली का यही निर्णय है कि हमारा स्वरूप आपसे अलग नहीं है। इस खेल में आप हमें जिस प्रकार खेला रहे हैं, हम उसी प्रकार खेल रहे हैं, अन्यथा क्या हम अखण्ड परमधाम की बातें जान सकते थे?

भावार्थ— जब श्री राज जी का दिल ही सखियों के स्वरूप में लीला कर रहा है, तो उनके अलग होने का

प्रश्न ही कहाँ होता है। मूल स्वरूप की प्रेरणा से ही सखियाँ यन्त्रवत् कार्य करती हैं। दोनों का एक ही स्वरूप होता है, इसलिये तो अक्षरातीत को स्वलीला अद्वैत कहते हैं।

ना तो नींद उड़े तन सुपना, ए रहेवे क्यों कर।

देखो अचरज अदभुत, धड़ बोले सिर बिगर॥३७॥

तारतम ज्ञान के प्रकाश में जब माया की नींद समाप्त हो जाती है अर्थात् आत्मा जाग्रत हो जाती है, तो यह स्वप्न का तन नहीं रहना चाहिये था। किन्तु पता नहीं यह शरीर अब तक किस प्रकार रह रहा है? यह तो वैसे ही बहुत आश्चर्यजनक बात है, जैसे कोई यह कहे कि बिना सिर के धड़ बोल रहा है।

भावार्थ— स्वप्न (तन) का अस्तित्व तभी तक होता है,

जब तक नींद है। नींद टूटने के पश्चात् भी आत्मा के तन का बने रहना यही दर्शाता है कि यह धाम धनी के हुक्म की लीला है, जिसने असम्भव को भी वैसे ही सम्भव बना दिया है, जैसे बिना सिर के किसी धड़ का बोलना असम्भव होता है।

धड़ दो एक सुकन कहे, तित अचरज बड़ा होए।

ए तन बिन बोले रूह अर्स की, कहे बानी बिना हिसाबें सोए॥३८॥

यदि बिना सिर के कोई धड़ एक-दो वचन भी बोल दे तो लोगों को बहुत आश्चर्य होता है, किन्तु सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह है कि परमधाम की आत्मा का यहाँ पर मूल तन भी नहीं है, फिर भी ब्रह्मवाणी की रसधारा का असीमित प्रवाह उसके द्वारा बह रहा है।

भावार्थ- इस खेल में आयी हुई आत्मा परात्म की मात्र

प्रतिबिम्ब स्वरूपा है। उसके द्वारा ब्रह्मवाणी का कथन सबसे अधिक आश्चर्यजनक है।

सो भी बानी नहीं फना मिने, अर्स बका खोल्या द्वार।
जो अब लग किने न खोलिया, कई हुए पैगंमर अवतार॥३९॥
मेरे तन से अवतरित होने वाली यह वाणी इस नश्वर जगत् की नहीं है, बल्कि इसने तो अखण्ड परमधाम का दरवाजा खोल दिया है अर्थात् अनादि परमधाम की पहचान करायी है। अब तक इस सृष्टि में अनेक पैगम्बर और अवतार हो चुके हैं, किन्तु अब तक किसी ने भी उस स्वलीला अद्वैत परमधाम का ज्ञान नहीं दिया था।

अर्स रूहें पेहेचान जाहेर, इनों कौल फैल हाल पार।
सोई जानें पार वतनी, जाको बातून रूहसों विचार॥४०॥

परमधाम की आत्माओं की पहचान प्रत्यक्ष है। इनकी कथनी, करनी, और रहनी परमधाम की होती है। उसी को हृद-बेहृद से परे परमधाम का रहने वाला मानना चाहिये, जो आत्मिक दृष्टि से सूक्ष्म विचार करे।

भावार्थ- यद्यपि परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों के तन देखने में सांसारिक जीवों जैसे ही होते हैं, किन्तु इनके बोल-चाल एवं व्यवहार में धनी के प्रति अगाध प्रेम, अटूट श्रद्धा, विश्वास, तथा समर्पण दृष्टिगोचर होता है। ये बाह्य इन्द्रियों एवं शरीर से होने वाले कर्मकाण्डों के बन्धन से परे होते हैं।

सो पट बका खोलिया, और बोले न बका बिन।

इनों पीठ दर्ई चौदे तबकों, करें जाहेर अर्स रोसन॥४१॥

इन ब्रह्ममुनियों ने ही अखण्ड परमधाम का दरवाजा

खोला है। ये परमधाम के अतिरिक्त नश्वर जगत की कोई बात नहीं करते अर्थात् इनके चिन्तन में मात्र परमधाम ही होता है। इन्होंने चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड से मुख मोड़ लिया होता है और अखण्ड परमधाम के ज्ञान को संसार में प्रकाशित करते हैं।

चौदे तबक की दुनी में, बका तरफ न पाई किन।

सो सबों ने देखिया, किया जाहेर बका हक दिन॥४२॥

चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में आज तक कोई भी यह नहीं जान पाया था कि अखण्ड परमधाम कहाँ पर है? तारतम ज्ञान का उजाला होने से अक्षरातीत तथा परमधाम का ज्ञान संसार में प्रकाशित हुआ, जिससे सभी ने उनकी पहचान कर ली।

भावार्थ— इस चौपाई के तीसरे चरण में कथित "सबों"

का तात्पर्य श्री जी के चरणों में आने वाले लोगों से है।
ब्रह्माण्ड के सभी जीव तो योगमाया के ब्रह्माण्ड में ही
पहचान कर पायेंगे।

बेवरा किया फुरमान में, और हदीसों महंमद।

जिने खुली हकीकत मारफत, सोई जाने बातून सब्द॥४३॥

कुरआन तथा हदीसों में भी मुहम्मद साहिब ने अखण्ड
परमधाम तथा अक्षरातीत परब्रह्म का विवरण दिया है।
जिन्हें तारतम ज्ञान से हकीकत एवं मारिफत के भेद
स्पष्ट हो गये होते हैं, एकमात्र वही कुरआन के कथनों के
वास्तविक आशय को जानते हैं।

भावार्थ— ब्रह्मवाणी द्वारा परमधाम की हकीकत एवं
मारिफत (सत्य एवं परमसत्य) का ज्ञान होने पर ही
कुरआन का वास्तविक अभिप्राय जाना जा सकता है।

तारतम ज्ञान (इल्म-ए-लदुन्नी) से अनभिज्ञ होने के कारण ही संसार के मुस्लिमजन शरियत एवं तरीकत से आगे नहीं बढ़ पाये हैं।

महंमद सिखापन ए दई, जो उतरीं अरवाहें सिरदार।

हक बका सिर लीजियो, छोड़ो दुनियां कर मुरदार॥४४॥

श्री प्राणनाथ जी ने अपनी वाणी (श्रीमुखवाणी) में सिखापन के रूप में कहा है कि परमधाम से जो प्रमुख सखियाँ आयी हैं, उनका यह नैतिक कर्त्तव्य है कि वे अपने धाम हृदय में अपने प्रियतम श्री राज जी तथा परमधाम की शोभा को बसायें तथा इस संसार को निरर्थक समझकर इसका मोह छोड़ दें।

महंमद कहे ए मोमिनों, ए अर्स अरवाहों रीत।

हक बका ल्यो दिल में, छोड़ो दुनियां कर पलीत॥४५॥

श्री जी कहते हैं कि हे साथ जी! परमधाम की आत्माओं की यही रहनी है कि वे अपने हृदय में अक्षरातीत तथा परमधाम की शोभा को बसा लेवें तथा इस संसार को बहुत ही गन्दी जगह जानकर इसका परित्याग कर दें।

भावार्थ— संसार को छोड़ने का तात्पर्य है— संसार की प्रतिष्ठा, सुख-सुविधाओं, एवं (पारिवारिक) मोह-जाल से पूर्णतया अलग रहना। इस संसार में वैसे ही रहना चाहिये, जैसे जल में कमल रहता है या कोई यात्री रात्रि को किसी धर्मशाला में ठहरता है तथा प्रातःकाल बिना आसक्ति के उस धर्मशाला का परित्याग कर देता है।

अर्स रूहें मोमिनों, लई महंमद हिदायत।

चौदे तबक को पीठ दे, आए माहें हक खिलवत॥४६॥

परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों ने श्री प्राणनाथ जी की दी हुई शिक्षा (सिखापन) को ग्रहण कर लिया है। उन्होंने चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड से अपना ध्यान हटा लिया है और स्वयं को मूल मिलावा की शोभा में डुबो दिया है।

कहें महंमद अर्स रूहें, तुम मछली हौज कौसर।

जो जीव दुनी मुरदार के, सो रहें ना तिन बिगर॥४७॥

परमधाम की आत्माओं को सम्बोधित करते हुए श्री जी कहते हैं कि तुम परमधाम के हौज कौशर में क्रीड़ा करने वाली मछलियाँ (आत्मायें) हो। जिस प्रकार इस मोहसागर के जीव माया के बिना नहीं रह सकते, उसी प्रकार तुम भी परमधाम के बिना नहीं रह सकती।

अर्स अल्ला दिल मोमिन, और दुनी दिल सैतान।

दे साहेदी महंमद हदीसें, और हक फुरमान॥४८॥

ब्रह्ममुनियों का हृदय ही सच्चिदानन्द परब्रह्म का धाम है, इसी प्रकार सांसारिक जीवों के हृदय में शैतान (झूठ) का निवास होता है। इसकी साक्षी धाम धनी द्वारा भिजवाये हुए कुरआन, वेद आदि धर्मग्रन्थों तथा मुहम्मद साहिब द्वारा हदीसों में दी गयी है।

भावार्थ— यह तो निर्विवाद सत्य है कि एक अद्वैत परब्रह्म के अतिरिक्त जगत रूप यह जड़ संसार मिथ्या है। तारतम ज्ञान के द्वारा जब तक परब्रह्म के धाम-स्वरूप का बोध न हो, तब तक उन्हें अपने हृदय मन्दिर में कैसे विराजमान किया जा सकता है। जब अव्याकृत के स्वप्न स्वरूप स्वयं आदिनारायण को भी सत्य नहीं कहा जा सकता, तो उनके प्रतिबिम्ब स्वरूप जीवों को सत्य कैसे

कहा जा सकता है।

इस सृष्टि में बड़े -बड़े ऋषि, मुनि, योगी-यति, अवतार, तीर्थंकर, एवं पैगम्बर हो चुके हैं, किन्तु वे भी (पञ्चवासनाओं को छोड़कर) जीवसृष्टि के अन्तर्गत ही माने जायेंगे। इन्होंने परमात्मा को या तो साकार रूप में माना है या निराकार रूप में। साकार और निराकार दोनों ही प्रकृति के स्वरूप होने से नश्वर (झूठे) हैं, जिसे कुरआन की भाषा में शैतान कहा गया है। वेद में इसके लिये "स्तेन" का प्रयोग किया गया है।

वेद एवं उपनिषदों तथा सन्त वाणियों का भी यही कथन है कि जब तक जीव अपने हृदय के विकारों को दूर कर पूर्णरूप से शुद्ध एवं निर्विकार अवस्था में नहीं आता, तब तक उसे ब्रह्म का साक्षात्कार भी नहीं हो सकता। जीव के शुद्ध स्वरूप को वेदों एवं उपनिषदों में

वेन, सुपर्ण, तथा हंस शब्द से सम्बोधित किया गया है—

वेनस्तत् पश्चत् परमं गुहा। अथर्ववेद २/१/१

सुपर्णोऽसि गुरुत्मान दिवं गच्छ स्वःपत्॥

यजुर्वेद १२/४

पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः। कठोपनिषद ५/१

तारतम ज्ञान के कारण ब्रह्ममुनियों को यह स्पष्ट रूप से विदित होता है कि परब्रह्म का धाम तथा स्वरूप क्या है। इस प्रकार यदि वे थोड़ी देर भी ध्यान करते हैं, तो परब्रह्म के अखण्ड स्वरूप का ही करते हैं। यही कारण है कि इनके हृदय को परब्रह्म का धाम कहते हैं और सांसारिक जीवों के हृदय को झूठ (माया, शैतान) का धाम कहते हैं।

कहे कुरान दूजा कछुए नहीं, एक हक न्यामत वाहेदत।

और हराम सब जानियो, जो कछु दुनी लज्जत॥४९॥

कुरआन का कथन है कि स्वलीला अद्वैत सच्चिदानन्द परब्रह्म की निधि रूपी ज्ञान और प्रेम के अतिरिक्त इस संसार में और सब कुछ झूठ है। इस संसार में दिखायी देने वाले सभी सुखों को पाप में फँसाने वाला (हराम) समझना चाहिए।

भावार्थ— सांसारिक सुखों में इन्द्रियों के पाँच विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) निहित होते हैं। इनमें फँसकर मनुष्य परब्रह्म के प्रेम से विमुख हो जाता है, इसलिये सांसारिक विषय-सुखों को कुरआन तथा अन्य धर्मग्रन्थों में पाप बताया गया है। इस संसार में वैसे ही रहना चाहिए जैसे महाराजा छत्रसाल एवं जनक जी ने अपना जीवन व्यतीत किया था। कुरआन में यह प्रसंग

इस प्रकार कहा गया है- "अल्लाह बाक़ी मिन कुलफ़ानी।"

दुनी दोजख दरिया मछली, पातसाह सैतान दिल पर।

हराम खात है अबलीस, तिन तले दुनी का घर॥५०॥

इस संसार के जीव नरकों के दुःख-सागर में रहने वाली मछली के समान हैं। इनके दिल पर शैतान (झूठ) की बादशाही (स्वामित्व) होती है। इस शैतान का भोजन ही पाप है।

भावार्थ- जीवों के चित्त में जन्म -जन्मान्तरों की वासनायें भरी होती हैं, जिसके कारण उन्हें चौरासी लाख योनियों के नरकों में भटकना पड़ता है। इनके हृदय में जलने वाली विकार-वासनाओं की अग्नि शान्त नहीं हो पाती, इसलिये इनके अन्दर बैठे हुए विकारग्रस्त मन का

भोजन ही पाप माना गया है। तारतम ज्ञान के प्रकाश में मन का परब्रह्म की ओर झुक जाना ही शैतान (अज्ञान) को मारना है। कुरआन में यही प्रसंग पार: २७ में सूरत नम्ल २७ का है।

ओलिया लिम्ना दोस्त, मोमिन बीच खिलवत।

ए अरवाहें अर्स की, इनों दिल में हक सूरत॥५१॥

मूल मिलावा में धनी के चरणों में जो ब्रह्मसृष्टियाँ बैठी हुई हैं, उन्हें कुरआन की भाषा में औलिया उल्लाह अर्थात् खुदा के दोस्त कहा गया है। इनके हृदय में हमेशा धाम धनी की शोभा विराजमान रहती है।

तो अर्स कह्या दिल मोमिन, सो कायम हक वतन।

रुहें कही दरगाह की, जित असल मोमिनो तन॥५२॥

इसलिये तो इन ब्रह्ममुनियों (मोमिनो) के दिल को अक्षरातीत का धाम कहते हैं। श्री राज जी का परमधम हमेशा अखण्ड रहने वाला है। ब्रह्मसृष्टियाँ इसी परमधाम की रहने वाली हैं, जहाँ धनी के चरणों में इनके अखण्ड तन विद्यमान हैं।

आदम नसल हवा बिना, ज्यों मछली जल बिन।

यों असल न छूटे अपनी, कही जुलमत दुनी वतन॥५३॥

जिस प्रकार मछली जल के बिना नहीं रह सकती, उसी प्रकार जीव सृष्टि भी माया (निराकार, मोहसागर) के बिना नहीं रह सकती। कोई भी अपने मूल को नहीं छोड़ पाता। दुनिया के जीवों का मूल घर ही मोह सागर (निराकार) है।

मोमिन अर्स बका बिना, रहे ना सके एक पल।

जो हौज कौसर की मछली, तिन हैयाती वह जल॥५४॥

ब्रह्मसृष्टियाँ अखण्ड परमधाम के बिना एक पल भी नहीं रह सकतीं। ये हौज कौसर की मछलियाँ हैं। परमधाम का इश्क रूपी जल ही इनका जीवन है।

भावार्थ— इस चौपाई में यह संशय होता है कि यहाँ तो कहा गया है कि ब्रह्मसृष्टियाँ परमधाम से एक पल के लिये भी अलग नहीं होतीं, जबकि इस खेल में उन्हें ४०० वर्ष से भी अधिक समय हो गया है। इस प्रकार का विरोधाभास क्यों है?

वस्तुतः जहाँ अक्षरातीत हैं, वहीं परमधाम है। इस माया के खेल में भी धाम धनी उनके धाम हृदय में विराजमान होकर वाणी और चितवनि द्वारा परमधाम का प्रत्यक्ष अनुभव करा रहे हैं। वे उनकी प्राणनली (शाहरग) से भी

अधिक निकट हैं। दूसरी तरफ, मूल मिलावा में धनी के चरणों में ही सखियों के तन हैं, जिनका एक कण भी एक पल के लिये इस संसार में नहीं आ सकता। यही कारण है कि इस चौपाई में एक पल के लिये भी अलग न होने की बात कही गयी है।

मोमिन और दुनी के, कहा जाहेर बड़ा फरक।

करे दुनी आहार फना मिने, अर्स मोमिन बका हक॥५५॥

ब्रह्मसृष्टियों में और संसार के जीवों में प्रत्यक्ष रूप से भी बहुत अन्तर है। संसार के जीव इस नश्वर ब्रह्माण्ड (स्वर्ग, वैकुण्ठ, निराकार) के सुखों में ही डूबे रहते हैं, जबकि ब्रह्ममुनियों के लिये आनन्द का स्रोत परमधाम में विराजमान युगल स्वरूप के चरण कमल हैं।

आए मोमिन नूर बिलंद से, और दुनियां कही जुलमत।
 यों जाहेर लिख्या फुरमान में, किन पाई न तफावत॥५६॥
 कुरआन, पुराण संहिता, माहेश्वर तन्त्र आदि धर्मग्रन्थों
 में लिखा है कि ब्रह्ममुनि परमधाम से इस संसार में आये
 हैं और संसार के जीव मोह सागर (निराकार) से प्रकट
 हुए हैं। फिर भी इन दोनों में कोई अन्तर नहीं समझ पाता
 है।

ए तो जाहेर कुरान पुकारहीं, और महंमद हदीस।
 ए बेवरा क्या जानहीं, जिन नसलें लिख्या अबलीस॥५७॥
 ब्रह्मसृष्टियों तथा संसार के जीवों में क्या भेद है , इसे
 कुरआन तथा मुहम्मद साहिब द्वारा कही गयी हदीसों में
 स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है। जिन जीवों की उत्पत्ति ही
 झूठ (निराकार, इब्लीश) से हुई है, भला वे इन दोनों

सृष्टियों के भेद को क्या जान सकते हैं।

भावार्थ- कुरआन के व्याख्या ग्रन्थ तफसीर-ए-हुसैनी में तीसरे पार: तिल्करसूल की सूरत आले इमरान की व्याख्या में लिखा है।

जो मोमिन होते इन दुनी के, तो करते दुनी की बात।

चलते चाल इन दुनी की, जो होते इन की जात॥५८॥

यदि ब्रह्मसृष्टियाँ इस संसार की होतीं, तो उनका ज्ञान चौदह लोक और निराकार तक ही सीमित रह जाता। यदि आत्माएँ इन्हीं जीवों की तरह आदिनारायण से प्रकट हुई होतीं, तो ये भी दुनिया वालों की तरह कर्मकाण्ड (शरियत) की राह पर चल रही होतीं।

जो यारी होती मोमिन दुनी सों, तो दुनी को न करते मुरदार।

रुहें इनसे जुदी तो हुई, जो हम नहीं इन के यार॥५९॥

यदि संसार के जीवों से ब्रह्मसृष्टियों की दोस्ती होती, तो ये संसार को निरर्थक मानकर इसका परित्याग नहीं करतीं। संसार के लोगों के रहन-सहन एवं व्यवहार से ब्रह्ममुनियों ने अपना नाता इसलिये ही तोड़ रखा है, क्योंकि इनमें सैद्धान्तिक या व्यावहारिक मित्रता नहीं है।

भावार्थ- इस चौपाई का आशय यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि इसमें सुन्दरसाथ को संसार के लोगों से घृणा करने के लिये कहा गया है। प्रेम स्वरूपा आत्माओं को तो स्वप्न में भी किसी से घृणा नहीं करनी चाहिए, किन्तु व्यवहार निभाने के नाम पर देव पूजा, मूर्ति पूजा, नवग्रह पूजा, पिण्डदान, श्राद्ध-तर्पण, मृतक भोज, मद्य-माँस, एवं नशे का सेवन कदापि नहीं करना

चाहिए। ब्रह्मवाणी के सिद्धान्तों को उन्हें स्नेहपूर्वक समझाकर धनी के चरणों में लाना चाहिए, किन्तु स्वयं उनके वेद-विरुद्ध मिथ्या सिद्धान्तों एवं कर्मकाण्डों का अनुशरण किसी भी स्थिति में नहीं करना चाहिए।

दुनी चलन इन जिमी का, चलना हमारा आसमान।

मोमिन दुनी बड़ी तफावत, ए जानें मोमिन विध सुभान॥६०॥

जीवों का आचरण इस संसार का होता है, जबकि ब्रह्मसृष्टियों की परमधाम वाली प्रेममयी राह होती है। ब्रह्माङ्गनाओं की वास्तविकता को तो केवल श्री राज जी ही जानते हैं। इनमें और संसार के जीवों में बहुत अन्तर है।

भावार्थ— संसार के जीव विषय-वासनाओं से ग्रस्त होने के कारण राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि

विकारों में डूबे होते हैं। अपनी जिह्वा की तृप्ति के लिये मनुष्य प्रतिदिन लाखों की संख्या में मूक पशुओं का वध करता है और उनके माँस का भक्षण कर जाता है। जानवरों को तड़पते हुए देखकर उसके हृदय में दया का लेश भी पैदा नहीं होता। तमोगुण से ग्रसित ये अन्धे जीव दिन-रात पाप कर्मों में ही लिप्त रहते हैं। इनका अधिसंख्य वर्ग तो परमात्मा का अस्तित्व ही नहीं मानता। मनुष्य ने मनुष्य को मारने के लिये जितने संहारक अस्त्र-शस्त्र बनाये हैं, उतने धन से तो इस पृथ्वी को सुख-सुविधाओं से लादा जा सकता है।

परमधाम की आत्मायें इनके पूर्णतया विपरीत होती हैं। इनके हृदय में प्रेम, करुणा, वात्सल्य, ज्ञान, और सौहार्द की निर्मल सरिता बहती है, तभी तो इनके दिल में स्वयं अक्षरातीत निवास करते हैं। इसलिये कहा गया

है- "मोमिन दिल कोमल कहया, तो अर्स पाया
खिताब।"

हादी मिल्या बोहोतों को, कोई ले न सक्या हादी चाल।
चलना हादी का सोई चले, जो होवे इन मिसाल॥६१॥
इस जागनी लीला में श्री प्राणनाथ जी का मिलन बहुत
जीवों से हुआ, लेकिन उनके बताये हुए मार्ग पर कोई भी
जीव नहीं चल सका। जो परमधाम की आत्मायें होंगी,
एकमात्र वही श्री जी द्वारा निर्देशित राह का अनुशरण कर
सकती हैं।

भावार्थ- उदयपुर के राणा, राज दरबार के पण्डित,
रामनगर का राजा, हरिद्वार के कुम्भ मेले के धर्माचार्य
आदि सभी जीव सृष्टि के प्राणी थे, जिन्होंने श्री जी से
भेंट होने पर भी परब्रह्म का सुख पाने का सुनहरा अवसर

खो दिया।

इनके विपरीत महाराजा छत्रसाल जी, जो विगत १२ वर्षों से श्री प्राणनाथ जी बाट देख रहे थे, क्योंकि उन्हें स्वप्न में उनके आने का आभास हो चुका था। श्री जी से मिलन के पश्चात् तो उन्होंने अपना तन, मन, धन, सब कुछ न्योछावर कर दिया। इस सम्बन्ध में श्री बीतक साहिब में कहा गया है—

एही टीका एही पांवड़ो, एही निछावर आए।

श्री प्राणनाथ के चरन पर, छत्ता बलि बलि जाए॥

बीतक ६०/५५

चलना हादी के पीछल, रखना कदम पर कदम।

आदमी चले न चाल रूह की, इत दुनी मार न सके दम॥६२॥

श्री प्राणनाथ जी द्वारा बताये हुए मार्ग का पूर्ण रूप से

अनुशरण तो मात्र ब्रह्मसृष्टियाँ ही करेंगी। जीव सृष्टि कभी भी ब्रह्मसृष्टियों की राह पर पल भर के लिये भी नहीं चल सकती।

भावार्थ- "कदम पर कदम" चलने का भाव है- पूर्णरूप से अनुगमन करना, जिसमें एक कदम भी आगे वाले कदम से हटकर कहीं और न पड़े।

आदमी छोड़ वजूद को, ले न सके रूह की चाल।

दुनियां बंदी हवाए की, मोमिन बंदे नूरजमाल॥६३॥

जीव सृष्टि शारीरिक दृष्टि से परे नहीं हो पाती है। वह आत्माओं की तरह कर्मकाण्डों के जाल से परे होकर आत्म-दृष्टि की प्रेममयी राह पर नहीं चल पाती है। संसार के लोग तो जड़ निराकार की ही भक्ति में लगे रहते हैं, जबकि परमधाम के ब्रह्ममुनि सौन्दर्य के सागर

अक्षरातीत के प्रेम में डूबे रहते हैं।

रुहें आइयां बीच दुनी के, धरे नासूती वजूद।

रुहें चाल न छोड़ें अपनी, जो कदी आइयां बीच नाबूद॥६४॥

परमधाम की आत्माओं ने इस नश्वर जगत् में आकर माया का झूठा तन धारण किया है। भले ही वे इस मायावी संसार में क्यों न आ गई हों, फिर भी वे परमधाम वाली अपनी प्रेम की चाल को नहीं छोड़ सकतीं।

दुनी रुहें एही तफावत, चाल एक दूजे की लई न जाए।

रुह मोमिन पर ईमान के, दुनी पर बिन क्यों उड़ाए॥६५॥

जीव सृष्टि तथा ब्रह्मसृष्टि में यही अन्तर है कि आत्माओं के पास ईमान के पंख हैं, जो जीव सृष्टि के पास नहीं हैं। बिना ईमान (अटूट विश्वास) के वह धाम धनी को कैसे

प्राप्त कर सकती हैं? दोनों एक-दूसरे की चाल पर नहीं चल सकतीं, अर्थात् ब्रह्मसृष्टि प्रेम की राह छोड़कर कर्मकाण्डों की राह पर नहीं चल सकती तथा जीव सृष्टि कर्मकाण्ड को छोड़कर प्रेम की राह पर नहीं चल सकती।

करना दीदार हक का, एही मोमिनो ताम।

पानी पीवना दोस्ती हक की, इनो एही सुख आराम॥६६॥

श्री राज जी का दर्शन ही आत्माओं का भोजन है तथा श्री राज जी से गहन आन्तरिक प्रेम ही पानी पीना है। अँगनाओं को इसी में अखण्ड सुख का अनुभव होता है।

मोमिन तब लग बंदगी, जो लो आया नहीं इस्क।

इस्क आए पीछे बंदगी, ए जाने मासूक या आसिक॥६७॥

ब्रह्मसृष्टियाँ अपने धाम धनी की भक्ति में तभी तक लगी

रहती हैं, जब तक उनमें प्रेम (इश्क) नहीं आ जाता। इश्क आने के पश्चात् बन्दगी समाप्त हो जाती है, क्योंकि दोनों एकाकार (एक स्वरूप) हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में भक्ति करना सम्भव ही नहीं होता।

भावार्थ— ब्रह्मसृष्टियों की भक्ति हृदय से शुरू होती है। वे चितवनि से जब अपने प्रियतम को दिल में बसाने का प्रयास करती हैं, तो उनका भी मन बार-बार भागता है। ऐसी अवस्था में वे दृढ़ संकल्पमय श्रद्धा भाव से अपने मन को धनी की शोभा में लगाती हैं। इसे ही भक्ति कहते हैं।

जैसे-जैसे युगल स्वरूप की शोभा बसने लगती है, वैसे-वैसे विरह-प्रेम भी बढ़ने लगता है। जब विरह-प्रेम अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाते हैं, तो आत्म-चक्षुओं के सामने युगल स्वरूप प्रत्यक्ष हो जाते हैं। आत्मा अपने

निज स्वरूप से धनी की शोभा को देखते-देखते अपने अस्तित्व को भी भूल जाती है और दोनों का स्वरूप एक हो जाता है।

इसके पश्चात् आत्मा के धाम हृदय में युगल स्वरूप की शोभा हमेशा के लिये अखण्ड हो जाती है। अब उसे पहले की तरह भटकते हुए मन को रोकने वाली भक्ति नहीं करनी पड़ती, बल्कि प्रेम (इश्क) का जोश आते ही धाम हृदय में युगल स्वरूप विराजमान हुए नजर आते हैं।

आसिक की एही बंदगी, जाहेर न जाने कोए।

और आसिक भी न बूझहीं, एक होत दोऊ से सोए॥६८॥

ब्रह्मसृष्टियों के द्वारा की जाने वाली भक्ति भी चितवनि से ही शुरू होती है, जिसे प्रत्यक्ष रूप में कोई दूसरा नहीं जान पाता। प्रियतम के प्रेम में डूबी हुई आत्मा को तो

यह भी पता नहीं चल पाता कि वह धनी से एकरूप कैसे हो गयी।

भावार्थ- कर्मकाण्डमयी भक्ति की जानकारी तो सभी को हो जाती है, किन्तु रात के अन्धेरे में अकेले की जाने वाली इस प्रेममयी चितवनि को धाम धनी के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं जान पाता।

ए जाहेर है तफावत, जो कर देखो सहूर।

दुनियां सहूर भी ना कर सके, क्या करे बिना जहूर॥६९॥

हे साथ जी! यदि आप विचार करके देखें तो दोनों की भक्ति में प्रत्यक्ष अन्तर है। संसार के जीव तो इस बात का विचार भी नहीं करते कि उन्होंने जो कर्मकाण्ड की राह अपना रखी है, उसका क्या परिणाम होगा। बेचारे ये जीव करें भी क्या। यदि उनके अन्दर तारतम ज्ञान का

यथार्थ प्रकाश होता, तब तो वे प्रेममयी चितवनि की राह अपनाते।

मोमिन खाना अर्स में, हुआ दुनी जिमी में आहार।

दुनी रोजगार नासूती, जो मोमिनों करी मुरदार॥७०॥

परमधाम के ध्यान से ब्रह्मसृष्टियों को आत्मिक आहार मिलता है, जबकि जीव सृष्टि इस संसार के क्षणिक सुखों के पीछे ही भागती है। इस पृथ्वी लोक के जिन सुखों को ब्रह्मसृष्टियों ने तुच्छ मानकर छोड़ दिया होता है, जीव सृष्टि उसी को पाने में अपना सारा पुरुषार्थ लगा देती है।

भावार्थ— जीव सृष्टि अत्यधिक धनोपार्जन करके भव्य निवास, अच्छे वस्त्र-आभूषण, स्वादिष्ट भोजन, उत्तम वाहन, और सामाजिक प्रतिष्ठा पाना चाहती है। इस लक्ष्य की पूर्ति में उसके जीवन की अधिकतर आयु बीत

जाती है। पारिवारिक और सामाजिक मोह उसे इतना जकड़े होते हैं कि वह उनके जाल से निकल नहीं पाती। अक्षरातीत के ध्यान-चिन्तन के लिये उसके पास समय ही नहीं होता।

मोमिन उतरे नूर बिलंद से, कही दुनी आई जुलमत।

जो देखो वेद कतेब को, तो जाहेर है तफावत॥७१॥

हे साथ जी! यदि आप वेद और कतेब ग्रन्थों को देखें तो दोनों में स्पष्ट अन्तर नजर आता है। ब्रह्मसृष्टियाँ परमधाम से आयी हैं, जबकि जीव सृष्टि मोह सागर (निराकार) से उत्पन्न हुई है।

मोमिन लिखे आसमानी, दुनियां जिमी की कही।

ना तो वजूद दोऊ आदमी, ए तफावत क्यों भई॥७२॥

धर्मग्रन्थों में आत्माओं को परमधाम से आया हुआ कहा गया है तथा जीवों को इसी संसार का। यद्यपि ये दोनों मानव तन में ही हैं, फिर भी इन दोनों में अन्तर होने का कारण क्या है?

भावार्थ— शक्ल-सूरत से दोनों सृष्टियों में भेद नहीं हो सकता। जीव तो सभी मनुष्यों में होता है, किन्तु आत्मा तो किसी-किसी जीव पर ही विराजमान होकर खेल को देख रही है।

कहे पर इस्क ईमान के, सो मोमिन छोड़ें न पल।

सो दुनी को है नहीं, उत पाउं न सके चल॥७३॥

इश्क और ईमान (प्रेम और विश्वास) के दो पँख कहे जाते हैं, जिन्हें आत्माएँ एक पल के भी लिये नहीं छोड़ती हैं। संसार के जीवों के पास ये दोनों पँख है ही नहीं।

परमधाम में पैरों से (कर्मकाण्ड) से चलकर नहीं जाया जा सकता।

भावार्थ- इस चौपाई में आलंकारिक रूप से बताया गया है कि परमधाम की उड़ान भरने के लिये (दर्शन के लिये) प्रेम और विश्वास रूपी पंखों की आवश्यकता होती है। वहाँ कर्मकाण्ड रूपी पैरों से चलकर नहीं पहुँचा जा सकता अर्थात् कर्मकाण्ड (शरियत) की भक्ति अक्षरातीत का साक्षात्कार नहीं करा सकती।

हकें फुरमाया चौदे तबक, है चरकीन का चरकीन।

सो छोड़े एक मोमिन, जिनमें इस्क आकीन॥७४॥

श्री राज जी ने कहा है कि चौदह लोक का यह ब्रह्माण्ड बहुत गन्दा है। इसका परित्याग मात्र वे ब्रह्ममुनि ही करेंगे, जिनके अन्दर प्रेम और विश्वास (इश्क और ईमान) भरा

होगा।

भावार्थ- कुरआन के सूरः ३० पारः अम्मत सालून एवं पारः आठ (८) सूर आराफ़ (७) में वर्णित है कि समस्त ब्रह्माण्ड अजाजील के आधीन है, परन्तु मोमिन उसके चँगुल में नहीं फँसेंगे। ऐसा सूरः १८ मोमिनीन सूरत में लिखा है।

सो दुनी को है नहीं, जासों उड़ पोहोंचे पार।

ईमान इस्क जो होवहीं, तो क्यों रहें बीच मुरदार॥७५॥

संसार के जीवों के पास प्रेम और विश्वास है ही नहीं, जिससे वे निराकार को पार करके परमधाम पहुँच सके। यदि उनके पास इश्क और ईमान होता, तो वे इस नश्वर संसार में क्यों भटकते रहते।

भावार्थ- यद्यपि जीवों में कभी-कभी अन्धश्रद्धा अवश्य

देखने को मिलती है, किन्तु वह क्षणिक होती है और उसमें विवेक की सुगन्धि नहीं रहती। विश्वास का तात्पर्य हैं— भयानक से भयानक कष्ट में भी अक्षरातीत के प्रति हमारी आस्था व विश्वास में रंचमात्र भी कमी न हो। हमें ऐसा प्रतीत हो कि हमारे प्राणवल्लभ हमारी प्राणनली से भी अधिक निकट हैं।

ऊपर तले अर्स ना कहा, अर्स कहा मोमिन कलूब।

ए जानें रूहें अर्स की, जिन का हक मेहेबूब॥७६॥

परमधाम इस ब्रह्माण्ड के कहीं ऊपर या नीचे नहीं है, बल्कि आत्माओं के हृदय (दिल) में है। इस रहस्य को परमधाम की वे आत्मायें ही जानती हैं, जिनके प्रियतम अक्षरातीत होते हैं।

भावार्थ— इस चौपाई में यह संशय होता है कि बेहद

और परमधाम को जब इस ब्रह्माण्ड से परे कहा जाता है, तो वह किधर है? क्या वह ऊपर नहीं है?

इसका समाधान इस प्रकार है— अनन्त आकाश में एक मक्खी उड़कर यह नहीं बता सकती कि इस आकाश से परे क्या है। मानवीय बुद्धि के लिये जब यह त्रिगुणात्मक आकाश ही अनन्त है, तो इससे अधिक विस्तार वाले अहंकार, महत्तत्त्व, और मोहसागर (महाशून्य) का माप कैसे किया जा सकता है? बिना माप का आँकलन (हिसाब) किये ऊपर, नीचे, या दायें-बायें नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकार मानवीय बुद्धि के लिये यह क्षर ब्रह्माण्ड अनन्त है, तो ईश्वरी सृष्टि के लिये यह हद (सीमाबद्ध) है। किन्तु, ईश्वरी सृष्टि के लिये बेहद अनन्त है। मात्र ब्रह्मसृष्टियों के लिये ही हद और बेहद की सीमा है,

जिसके परे परमधाम है।

ऊपर-नीचे की दिशा मानवीय कल्पना की देन है।
वस्तुतः जहाँ आत्मायें हैं, वहीं अक्षरातीत हैं, और वहीं
पर उनका परमधाम है। इस समय माया के खेल में
परमधाम की आत्मायें आयी हैं, जिनके धाम हृदय में
अक्षरातीत विराजमान होकर जागनी लीला कर रहे हैं।
किन्तु, अध्यात्म जगत में श्रेष्ठता का आँकलन ऊँचाई से
किया जाता है, इसलिये ध्यान करते समय हृद से ऊपर
ही बेहद एवं परमधाम को मानकर अपना ध्यान केन्द्रित
करना पड़ेगा।

दुनी दिल मजाजी कहा, मोमिन हकीकी दिल।

बिना तरफ दुनी क्यों पावहीं, जो असें रहे हिल मिल॥७७॥

संसार के जीवों का दिल झूठा तथा आत्माओं का दिल

सच्चा होता है। ब्रह्मसृष्टियों का दिल श्री राज जी के दिल से एकरस (ओत-प्रोत) रहता है। इनके लाये हुए ज्ञान के बिना संसार के लोगों को भला परमधाम के बारे में क्या जानकारी हो सकती है।

वेद कतेब पढ़ पढ़ गए, किन पाई न हक तरफ।

खबर अर्स बका की, कोई बोल्या न एक हरफ॥७८॥

इस संसार में वेद और कतेब ग्रन्थों को पढ़ने वालों की न जाने कितनी पीढ़ियाँ बीत गयी, किन्तु अब तक कोई भी यह नहीं बता सका है कि अक्षरातीत कहाँ पर है? अखण्ड परमधाम कहाँ पर स्थित है? इसके बारे में अब तक कोई भी एक शब्द तक नहीं बोल सका है।

इंतहाए नहीं अर्स भोम का, सब चीजों नहीं सुमार।

ऊपर तले माहें बाहेर, दसों दिसा नहीं पार॥७९॥

परमधाम की भूमिका अनन्त है। वहाँ किसी भी वस्तु की सीमा नहीं है। ऊपर-नीचे, अन्दर-बाहर, दशों दिशायें सभी कुछ असीमित है।

द्रष्टव्य- इस चौपाई में "माहें बाहर" का तात्पर्य परमधाम के अन्दर की शोभा रूप सामग्री तथा बाह्य आकाश आदि की शोभा से है।

तो भी दुनियां अर्स देखे नहीं, यों देखावत कतेब वेद।

पावे न लाम इलम बिना, कोई इन विध का है भेद॥८०॥

वेद-कतेब में इस प्रकार से कहा गया है, फिर भी संसार के लोग परमधाम की पहचान नहीं कर पाते हैं। परमधाम की पहचान का यह रहस्यमयी ज्ञान इतना

गहन है कि सद्गुरु श्री निजानन्द स्वामी के लाये हुए
तारतम ज्ञान के बिना इसे कोई भी नहीं जान सकता।

सुध दर्ई महंमद ने, अर्स पाइए मोमिन बीच दिल।

जिनपे इलम हक का, दिल अर्स रहे हिल मिल॥८१॥

श्री प्राणनाथ जी ने यह बोध कराया है कि आत्माओं के
दिल में ही परमधाम विद्यमान है। इन्हीं के पास
अक्षरातीत का दिया हुआ तारतम ज्ञान है। इनके दिल
और परमधाम में कोई अन्तर नहीं है, दोनों एकरस हैं।

दुनी जाने मोमिन दुनी से, ए नहीं बीच इन खलक।

एता भी न समझै, पुकारत कलाम हक॥८२॥

संसार के लोग यही समझते हैं कि ये ब्रह्ममुनि भी इसी
संसार के हैं। वास्तविकता तो यह है कि आत्मायें इस

मायावी जगत की नहीं हैं। कुरआन में धाम धनी ने लिखवा रखा है, संसार के लोग उसे पढ़कर भी नहीं समझ पाते हैं।

भावार्थ- कुरआन के तीसवें पारः अम-म् की "इन्ना इन्नजुलना.....फ़ज़रि" आयत में परमधाम से आत्माओं के अवतरण का प्रसंग है। इसी प्रकार पुराण संहिता एवं माहेश्वर तन्त्र में विस्तारपूर्वक यह वर्णित है कि परमधाम से किस प्रकार आत्मायें इस नश्वर जगत में आने वाली हैं।

कहे मोमिन उतरे अर्स से, इनों दिल में हक सूरत।

ए अर्स में अर्स इन दिल में, यों हिल मिल बीच खिलवत॥८३॥

कुरआन तथा पुराण संहिता आदि धर्मग्रन्थों में ब्रह्मसृष्टियों को परमधाम से आया हुआ कहा गया है।

इनके हृदय में अक्षरातीत का स्वरूप विराजमान होता है।
इनके मूल तन परमधाम में विराजमान हैं तथा परमधाम
इनके दिल में विद्यमान है। इस प्रकार से परमधाम में
धाम धनी से एकरस हैं।

खुली मुसाफ हकीकत, तिन इतहीं हक वाहेदत।

अर्स बरकत सब इतहीं, इतहीं हक निसबत॥८४॥

इन्हीं आत्माओं के हृदय में धनी की मेहर से तारतम
ज्ञान द्वारा कुरआन के वास्तविक रहस्यों का ज्ञान है।
उन्हें इसी संसार में परमधाम की एकदिली (एकत्व) का
रस प्राप्त होता है। उनके धाम हृदय में अखण्ड परमधाम
की सम्पूर्ण निधियाँ विद्यमान होती हैं। उन्हें यहीं बैठे-बैठे
अपने मूल तन का भी साक्षात्कार होता रहता है, जो मूल
मिलावा में धनी के चरणों में विद्यमान हैं।

इतहीं न्यामत मोमिनो, सब खुली जो इसारत।

इतहीं मेला रूहों असल, इतहीं रूहों कयामत॥८५॥

धर्मग्रन्थों में संकेतों द्वारा जो गुह्य बातें लिखी हुई थीं , उन्हें खोलने (स्पष्ट करने) की शोभा इन ब्रह्ममुनियों को ही है। इस जागनी लीला में सभी आत्माओं का मिलन होना है तथा इनके द्वारा ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अखण्ड मुक्ति देने वाले ज्ञान का प्रसार होना है।

ए बारीक बातें रूह मोमिनो, सो समझें रूह मोमिन।

सो आदमी कहे हैवान, जो इस्क इमान बिन॥८६॥

ब्रह्मसृष्टियों की ये गुह्य बातें हैं , जिन्हें एकमात्र वे (आत्मायें) ही समझ सकती हैं। जिन लोगों के पास धनी के प्रति इश्क और ईमान (प्रेम और विश्वास) नहीं है, उन्हें मनुष्य रूप में पशु ही समझना चाहिए।

दुनी जाने तन मोमिन, बैठे हैं हम माहें।

बोलत हैं बानी बका, ए रूहें तन दुनी में नाहें॥८७॥

संसार के लोग यही समझते हैं कि ब्रह्मसृष्टियों के तन हमारे जैसे हैं और हमारे बीच में ही हैं। अखण्ड परमधाम का ज्ञान कहने वाले इन ब्रह्ममुनियों के वास्तविक तन इस संसार में नहीं हैं।

रूहें तन माहें अर्स बका, और अर्स में बैठे बोलत।

तो नजीक कहे सेहेरग से, देखो मोमिनो हक हिकमत॥८८॥

ब्रह्मसृष्टियों के वास्तविक तन नूरमयी हैं, जो परमधाम के मूल मिलावा में धनी के चरणों में विद्यमान हैं। ये वहीं से बैठे हुए बोल रहे हैं। हे साथ जी! धाम धनी की इस अद्वितीय युक्ति को देखिए कि ब्रह्मसृष्टियों की आवाज इस संसार में सुनायी पड़ रही है। इसलिये तो श्री राज जी

को इनकी प्राणनली से भी अधिक निकट कहा गया है।

भावार्थ- जिस प्रकार आधुनिक युग में हजारों कि.मी. की दूरी पर बैठे हुए व्यक्ति की आवाज दूरदर्शन, दूरभाष, या रेडियों के द्वारा उसी रूप में सुनी जाती है, उसी प्रकार अक्षरातीत की प्रेरणा से परात्म में जो ज्ञानधारा आती है, वह आत्मा के द्वारा इस संसार में प्रकट हो जाती है। इसे ही मूल मिलावा से बोलना कहते हैं।

यद्यपि परात्म के तन में जाग्रति नहीं होने से वह पूर्ववत् बोल नहीं सकती, किन्तु स्वलीला अद्वैत की ज्ञानधारा परात्म के माध्यम से ही आत्मा द्वारा इस संसार में आती है। आगे की चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है।

इनों तन असल अर्स में, इनों दिल में जो आवत।

सोई इनों के अक्स में, सुकन सोई निकसत॥८९॥

इन आत्माओं के मूल तन परमधाम में हैं। धनी की प्रेरणा से इनके दिल में जो भी बात आती है, वह इनकी प्रतिबिम्ब स्वरूपा आत्मा में आती है और वही बात जीव के तन (अन्तःकरण तथा इन्द्रियों) द्वारा प्रकट हो जाती है।

मोमिन तन असल से, अर्स मता कछू न छिपत।

तो बका सूरज फुरमान में, कह्या फजर होसी इत॥९०॥

ब्रह्मसृष्टियों के मूल तन परात्म से परमधाम की कोई बात छिपी हुई नहीं है। इसलिये धर्मग्रन्थों में कहा गया है कि इन ब्रह्ममुनियों के द्वारा ही परमधाम के अखण्ड ज्ञान रूपी सूर्य का अवतरण होगा, जिससे अज्ञानता का अन्धकार मिट जायेगा तथा ज्ञान के प्रातःकाल का उजाला चारों ओर फैल जायेगा।

भावार्थ- आत्माओं द्वारा परमधाम के ज्ञान के अवतरण का प्रसंग पुराण संहिता ३४/१३,१४,४३ तथा ३१/५२,६९ तथा माहेश्वर तन्त्र २२/२७ में है। यही प्रसंग कुरआन के पारः ३ तिलकर्करसूल सूरः आले इम्रान सूरत (३) में तीन प्रकार की सृष्टि एवं पारः ३ अम-म में सूरत "इन्ना इन्नजुलना" में ब्रह्मज्ञान अवतरण का प्रसंग है कि हजार माह अर्थात् ८३ साल एवं ३ माह इल्मे लदुन्नी उतरेगा।

ए बारीक बातें अर्स की, जो गुजरी माहें वाहेदत।

हक हादी और मोमिन, सो जाहेर हुई खिलवत॥९१॥

स्वलीला अद्वैत परमधाम में श्री राजश्यामा जी और सखियों के बीच में इश्क रब्द सम्बन्धी जो बातें हुई थीं, वे अति गुह्य हैं। मूल मिलावा के सम्पूर्ण विवरण के साथ

वे सभी बातें अब ब्रह्मवाणी के प्रकाश में सबको विदित हो गयी हैं।

तो दुनियां होसी हैयाती, ले मोमिनों बका बरकत।

ए बात दुनी क्यों बूझहीं, ओ जात हक निसबत॥९२॥

ब्रह्ममुनियों से अखण्ड परमधाम का ज्ञान ग्रहण कर यह सारा ब्रह्माण्ड अखण्ड हो जायेगा। अक्षरातीत के अङ्गरूप ब्रह्ममुनियों की महिमा को संसार के जीव नहीं समझ सकते।

ए हक मता रूह मोमिन, इनों ताले लिखी न्यामत।

सो क्यों कर दुनियां समझै, कही असल जाकी जुलमत॥९३॥

अक्षरातीत की ब्रह्मवाणी का ज्ञान रूपी अनमोल धन ब्रह्मसृष्टियों को ही यथार्थ रूप में प्राप्त होगा। निराकार से

पैदा होने वाले जीव इसके रहस्यों को वास्तविक रूप में न तो समझ सकेंगे और न इस पर विश्वास ही करेंगे।

आब हैयाती बका मिने, झूठी जिमी आवे क्यों कर।

दिल आवे अर्स मोमिन के, और न कोई कादर॥९४॥

अखण्ड परमधाम का ज्ञान रूपी जल इस झूठी दुनिया में कैसे आ सकता था। यह ज्ञान तो मात्र ब्रह्मसृष्टियों के हृदय में ही आ सकता है। संसार का अन्य कोई भी प्राणी इसके योग्य नहीं है।

ए मोहोरे जो खेल के, झूठे खाकी नाबूद।

आब हैयाती पीय के, क्यों होसी बका बूद॥९५॥

इस खेल में अग्रगण्य ऋषि, मुनि, योगी, पैगम्बर, और अवतार आदि भी महाप्रलय में लय हो जाने वाले हैं।

परमधाम के इस तारतम ज्ञान रूपी अखण्ड जल को पीकर वे भी अखण्ड मुक्ति को प्राप्त कर लेंगे।

भावार्थ- इस चौपाई में खेल के मोहरों का तात्पर्य त्रिदेवा से नहीं है, क्योंकि भगवान शिव और विष्णु अखण्ड मुक्ति प्राप्त हैं। पञ्चवासनाओं के अतिरिक्त अन्य बड़े-बड़े योगी-यतियों, तीर्थकरों, तथा अवतारों को इसके अन्तर्गत माना जायेगा, क्योंकि ये संसार के पथ-प्रदर्शक हैं।

ए मोहोरे पैदा जो खेल के, हक मोमिनों देखावत।

याही बराबर अक्स, मोमिनों के बका बोलत॥९६॥

इस संसार में अग्रगण्य योगी-यतियों, अवतारों, तथा तीर्थकरों के खेल को धाम धनी अपनी अँगनाओं को दिखा रहे हैं। ब्रह्मसृष्टियों की प्रतिबिम्ब स्वरूपा इन

आत्माओं ने इन अग्रगण्य जीवों के समान ही मानव तन धारण कर रखा है, जिनके माध्यम से ये परमधाम का ज्ञान कहती हैं।

जो तन अर्स में मोमिनो, सो मता अक्सों पोहोंचावत।

सो अक्सों से बीच दुनी के, मोमिन मेहेर करत॥९७॥

परमधाम में जो ब्रह्मसृष्टियों के मूल तन (परात्म) हैं, उनके हृदय का ज्ञान प्रतिबिम्ब स्वरूपा आत्माओं तक पहुँचता है। इस प्रकार इन आत्माओं की कृपा से परमधाम का यह अलौकिक ज्ञान संसार के जीवों तक पहुँचता है।

आब हैयाती इन विध, अर्स से रूहें ल्यावत।

ए बरकत रूह अल्लाह की, यों अर्स मता आया इत॥९८॥

इस प्रकार परमधाम के अखण्ड ज्ञान रूपी जल को आत्मायें इस संसार में लाती हैं। इसी प्रकार तारतम ज्ञान भी श्यामा जी की कृपा से ही इस नश्वर संसार में आ सका है।

और बरकत महंमद की, साहेदी देत फुरमान।

तिन साहेदी से ईमान, पोहोंच्या सकल जहान॥९९॥

कुरआन में इस बात की साक्षी है कि श्री प्राणनाथ जी की कृपा से परमधाम का अलौकिक ज्ञान सारे संसार में फैलेगा। कुरआन की इस साक्षी से संसार के सभी लोगों को श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप पर अटूट विश्वास हो जायेगा।

ए इलम जानें रूहें अर्स की, और न काहूं खबर।

खेल मोहोरे तो कछू है नहीं, एक जरे भी बराबर॥१००॥

परमधाम का यह अलभ्य ज्ञान मात्र आत्माओं के ही पास है। इस संसार के अग्रगण्य देवी-देवता, योगी-यति, अवतार, और पैगम्बर आदि तो कुछ हैं ही नहीं। इनका अस्तित्व तो अखण्ड धाम के एक कण के भी बराबर नहीं है।

ए खाकीबुत सब नाबूद, इनको कायम किए मोमिन।

आब हैयाती अर्स की, पिलाए के सबन॥१०१॥

इस संसार के सभी जीव महाप्रलय में लय को प्राप्त हो जाने वाले हैं। ब्रह्मसृष्टियों ने इन सभी जीवों को परमधाम का अखण्ड ज्ञान रूपी जल पिलाकर शाश्वत मुक्ति का सौभाग्य प्रदान किया है।

द्रष्टव्य- संसार के सभी जीव योगमाया में ही परमधाम का ज्ञान ग्रहण करेंगे। इस प्रकार वे आठवीं बहिश्त के अधिकारी होंगे। इस जागनी लीला में तारतम ज्ञान को ग्रहण करने वाले जीव पहली तथा सातवीं बहिश्त को प्राप्त करेंगे।

ऐसा मता मोमिन, अर्स सेती ल्यावत।

बुतखाकी सरभर रुहों की, समझे बिना करत॥१०२॥

आत्मायें परमधाम से ऐसा अलौकिक ज्ञान लेकर आयी हैं, जिसको प्राप्त करने वाले जीव भी बिना सोचे-समझे स्वयं को परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों के बराबर मानने लगते हैं।

अर्स इलम हुआ जाहेर, जब सब हुए रोसन।

तब अंधेरी और उजाला, जुदे हुए रात दिन॥१०३॥

परमधाम का तारतम ज्ञान संसार में फैल जाने से सभी को वास्तविक सत्य का बोध हो गया। तब अज्ञानता के अन्धकार का नाश हो गया और परम सत्य के ज्ञान का प्रकाश फैल गया, जिससे सभी ने माया (रात) और ब्रह्म (दिन) के स्वरूप की वास्तविक पहचान की।

अर्स तो दूर है नहीं, कहें दोऊ कतेब वेद।

अर्स में रूहें दुनी फना जिमी, ए इलम लदुन्नी जानें भेद॥१०४॥

वेद और कतेब दोनों का यही कथन है कि परमधाम कहीं दूर नहीं है। ब्रह्मसृष्टियाँ परमधाम में रहती हैं तथा जीव महाप्रलय में लय हो जाने वाले संसार में रहते हैं। यह भेद मात्र तारतम ज्ञान से ही विदित होता है।

भावार्थ- परमधाम तो दूर से दूर है अर्थात् बेहद से भी परे है, किन्तु तारतम ज्ञान के प्रकाश में जो अपने हृदय में उस अखण्ड परमधाम का ध्यान करते हैं, केवल उन्हीं के लिये अति निकट है। इसी विषय में यजुर्वेद ४०/५ का कथन है- "तत् दूरे तत् उ अन्तिके" अर्थात् वह परब्रह्म दूर से दूर है तथा निकट से निकट भी है।

पर ए सुध दुनी में है नहीं, तो क्या जाने कित अर्स।

क्यों हक क्यों हादी रूहें, क्यों दिल मोमिन अरस-परस॥१०५॥

संसार के जीवों के पास तारतम ज्ञान नहीं है, इसलिये उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं है कि अखण्ड परमधाम कहाँ है? श्री राज जी, श्यामा जी, तथा ब्रह्मसृष्टियों का स्वरूप क्या है? ब्रह्मसृष्टियों तथा श्री राजश्यामा जी के दिल को परस्पर एकरस (ओत-प्रोत) क्यों कहा गया

है?

बका जिमी जल तेज वाए, और बका आसमान।

आपन बैठे वाही अर्स में, पर नजरों देखें जहान॥१०६॥

स्वलीला अद्वैत उस परमधाम में धरती, जल, अग्नि, वायु, और आकाश आदि सभी कुछ अखण्ड हैं। हमारे मूल तन परमधाम में धनी के चरणों में ही बैठे हैं, किन्तु हमें इस समय यह झूठा संसार नजर आ रहा है। परमधाम में रहते हुए भी हम परमधाम को देख नहीं पा रहे हैं।

जहान तो कछू है नहीं, है अर्स बका हक।

हक इलम ले देखिए, तो होइए अर्स माफक॥१०७॥

चौदह लोक का यह ब्रह्माण्ड तो कुछ है ही नहीं। श्री

राज जी का परमधाम ही अखण्ड है। यदि आप तारतम ज्ञान की दृष्टि से देखें, तभी परमधाम के स्वरूप को यथार्थ में जान सकते हैं।

द्रष्टव्य— परमधाम की तरह बेहद भी अनादि और अखण्ड है।

नाबूद कही जो दुनियां, तिनकी नजर भी नाबूद।

अर्स रूहें हक इलमें, ए आसिकै देखे मेहेबूब॥१०८॥

यह सारा संसार नश्वर है, इसलिये इसमें रहने वाले प्राणियों की दृष्टि भी नश्वर ब्रह्माण्ड से परे नहीं देख पाती। परमधाम की आत्माओं के पास तारतम ज्ञान है, इसलिये ये अनन्य प्रेम में डूबकर अपने प्रियतम अक्षरातीत का दर्शन करती हैं।

इत आंखें चाहिए हक इलम की, तो हक देखिए नैना बातन।

नैना बातून खुलें हक इलमें, ए सहूर है बीच मोमिन॥१०९॥

यदि तारतम ज्ञान की दृष्टि मिल जाती है तो आत्म – दृष्टि प्राप्त हो जाती है, जिससे अक्षरातीत का दर्शन होता है। ब्रह्ममुनियों का चिन्तन यही कहता है कि ब्रह्मवाणी के ज्ञान के प्रकाश में ही अन्तर्दृष्टि (आत्म-दृष्टि) खुलती है।

भावार्थ- इस चौपाई से यही निष्कर्ष निकलता है कि अक्षरातीत को पाने के लिये ब्रह्मवाणी का चिन्तन और चितवनि ही दो वास्तविक साधन हैं, जिन्हें ज्ञान और प्रेम का स्वरूप कहते हैं। इसके अतिरिक्त कर्मकाण्ड के अन्य साधनों से प्रियतम परब्रह्म का साक्षात्कार नहीं हो सकता।

जिन बेचून बेचगून नजरों, ताए खबर न इलम हक।

हक इलम देखावे मासूक, इन हाल मोमिन कहे आसिक॥११०॥

संसार के जिन लोगों की दृष्टि में परमात्मा निराकार – निर्गुण दिखायी देता है, उन्हें श्री राज जी की तारतम वाणी की पहचान नहीं है। तारतम ज्ञान (ब्रह्मवाणी) अक्षरातीत का दर्शन कराता है। इसकी राह पर चलने वाली ब्रह्मसृष्टियों को धनी का प्रेमी (आशिक) कहा जाता है।

कहे पांच तत्व ख्वाब के, तामें बुजरक केहेलाए कई लाख।

पर अर्स बका हक ठौर की, कहूं जरा न पाइए साख॥१११॥

पाँच तत्वों का यह संसार स्वप्नमयी है। इसमें लाखों बड़े-बड़े योगी, यति, ज्ञानी, एवं तपस्वी हो चुके हैं, किन्तु इनमें से किसी ने भी इस बात की थोड़ी सी भी

साक्षी नहीं दी है कि अक्षरातीत और अखण्ड परमधाम कहाँ पर है।

भावार्थ— इस चौपाई में यह बात दर्शायी गयी है कि अब तक अनुभूति के धरातल पर किसी ने भी यह नहीं कहा है कि हमने अक्षरातीत या परमधाम को थोड़ा भी देखा है। ज्ञान दृष्टि से अनेक धर्मग्रन्थों— वेद, उपनिषद, पुराण संहिता, तथा माहेश्वर तंत्र— में परमधाम के परब्रह्म के स्वरूप का वर्णन किया गया है।

कतेब परम्परा में मात्र कुरआन एवं हदीसों के अन्दर नासूत, मलकूत, एवं जबरूत से परे लाहूत (परमधाम) का वर्णन किया गया है। यह भी बताया गया है कि मुहम्मद साहिब ने उनका साक्षात्कार किया तथा उनसे बातें भी की हैं। "हुकमें वेद कतेब में, लाखों लिखे निसान" का यही आशय है।

ख्वाब पैदा बका जिमी से, पर देखे न बका को।

एक जरा बका आवे जो ख्वाब में, तो सब ख्वाब उड़े तिनसों॥११२॥

यह स्वप्नमयी जगत अखण्ड बेहद से उत्पन्न हुआ है, किन्तु इस संसार के लोग अखण्ड बेहद (योगमाया के ब्रह्माण्ड) या परमधाम को नहीं देख पाते। यदि बेहद मण्डल का एक भी नूरी कण इस संसार में आ जाये, तो उसके तेज से सारे ब्रह्माण्ड का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा।

भावार्थ- इस त्रिगुणात्मक ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति अव्याकृत से होती है, परमधाम से नहीं। अव्याकृत का स्थूल (प्रणव) ही स्वप्न में आदिनारायण का स्थूल रूप है। उनके अन्दर चेतना अव्याकृत के महाकारण स्वरूप की है तथा मोहसागर रोधिनी शक्ति (प्रणव की आह्लादिनी शक्ति) से उत्पन्न होता है।

ना तो ख्वाब जिमी बका जिमी सों, एक जरा न तफावत।
 पर झूठ न रहे सांच नजरोँ, आंखें खुलतै ख्वाब उड़त॥११३॥

यदि ऐसा नहीं होता तो स्वप्न के इस संसार और
 अखण्ड धाम में कुछ भी अन्तर नहीं होता। जिस प्रकार
 नींद टूटते ही स्वप्न समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार
 अखण्ड धाम के सामने यह झूठा संसार नहीं रह सकता।

भावार्थ— बेहद भूमिका और परमधाम में अखण्डता के
 साथ-साथ चेतनता, आनन्दमयता, और अनादिता के
 भी गुण हैं, जो इस नश्वर जड़ संसार में नहीं हैं।

ए जाहेर दुनी जो ख्वाब की, करे मोमिनोँ की सरभर।
 हक देखे जो ना टिके, ताए दूजा कहिए क्यों कर॥११४॥

इस स्वप्नमयी संसार के जीव ब्रह्मसृष्टियों से अपनी
 बराबरी करने का प्रयास करते हैं। जो स्वप्नमयी होने से

सत्य के सूर्य के सामने ठहर ही नहीं सकता , उसके अस्तित्व को किसी अखण्ड स्वरूप में कैसे माना जा सकता है।

भावार्थ- इस चौपाई में दूसरा न कहलाने का तात्पर्य है- उसके स्वरूप का अखण्ड न होना। आत्मा का स्वरूप अखण्ड है, जबकि आदिनारायण का स्वरूप प्रतिभास होने से स्वप्नवत है। इसलिए उसे आत्मा के समक्ष कदापि नहीं माना जा सकता।

हक देखे जो खड़ा रहे, तो दूजा कहा जाए।

दम ख्वाबी दूजे क्यों कहिए, जो नींद उड़े उड़ जाए॥११५॥

श्री राज जी को देखने पर अर्थात् सामने आने के पश्चात् भी जिसका स्वरूप अखण्ड बना रहे, उसे ही तो दूसरा स्वरूप अर्थात् अखण्ड स्वरूप वाला कहा जा सकता है।

अज्ञान रूपी नींद के उड़ते ही अर्थात् परब्रह्म के समक्ष आते ही जिनका अस्तित्व समाप्त हो जाये, उन स्वप्न के जीवों को अखण्ड स्वरूप वाला कैसे कह सकते हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में श्री राज जी को देखने का प्रसंग है, दर्शन (दीदार) करने का नहीं। दर्शन प्रेम द्वारा होता है, इसलिए उसमें शरीर छूटने का कोई प्रश्न ही नहीं होता। इस चौपाई का कथन शक्ति-परीक्षण के आधार पर है कि परमसत्य के स्वरूप अक्षरातीत के समक्ष यदि स्वप्न का जीव अपनी अखण्डता प्रदर्शित करने का यत्न करता है तो वह सफल नहीं हो सकता, क्योंकि जाग्रत होने पर जिस प्रकार स्वप्न नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार अक्षरातीत के नूरी स्वरूप के सामने जीव का स्वाप्निक स्वरूप नहीं रह सकता।

ए इलमें सुनो अर्स बारीकियां, जो सहें अर्स हक रोसन।
 ताए भी दूजा क्यों कहिए, कहे कुल्ल मोमिन वाहिद तन॥११६॥

हे साथ जी! तारतम ज्ञान से परमधाम की सूक्ष्म बातों को सुनिए। जो आत्मायें अक्षरातीत तथा परमधाम के नूरमयी तेज को सहन कर लेती हैं, उन्हें दूसरा भी कैसे कह सकते हैं। परमधाम में सभी ब्रह्मसृष्टियाँ तो श्री राज जी की ही अँगरूपा (तन) हैं।

हक हादी रूहें मोमिन, ए अर्स में वाहेदत।
 पर ए जानें अरवाहें अर्स की, जो रूहें हक खिलवत॥११७॥

परमधाम में श्री राज जी, श्यामा जी, तथा सखियों का एक ही दिल है, अर्थात् श्री राज जी का दिल ही श्यामा जी एवं सखियों के दिल के रूप में लीला कर रहा है, किन्तु इस रहस्य को परमधाम की वे आत्मायें ही जानती

हैं जो मूल मिलावा में धनी के चरणों में बैठी हुई हैं।

इतहीं कजा होएसी, इतहीं होसी भिस्त।

दोजख इतहीं होएसी, दुनी तले नूर नजर कयामत॥११८॥

अक्षर ब्रह्म की नजरों में, अर्थात् योगमाया के ब्रह्माण्ड में, सबके कर्मों के अनुसार न्याय होगा। सभी को आठ बहिश्तों में अखण्ड किया जायेगा तथा वहीं पर सारी दुनिया श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप की पहचान करके प्रायश्चित (दोजक) की अग्नि में जलेगी और विरह से निर्मल होकर अखण्ड मुक्ति को प्राप्त करेगी।

भावार्थ— यद्यपि "इतहीं" शब्द का अर्थ "यहाँ से" होता है, किन्तु यहाँ पर "योगमाया" का प्रसंग है। उसी के सन्दर्भ में "इतहीं" शब्द का प्रयोग किया गया है।

इस जागनी लीला में तारतम वाणी की ज्ञान दृष्टि से श्री

प्राणनाथ जी ने सारा निर्णय कर दिया है कि किसको किस बहिश्त में जाना है, तथा किसको किस अपराध के कारण प्रायश्चित (दोजक) की अग्नि में कैसे जलना है।

अखण्ड होने सहित पूर्व के सभी कथनों (न्याय, बहिश्त, और दोजक) का क्रियात्मक रूप योगमाया के ब्रह्माण्ड में ही घटित होगा, जहाँ सत्स्वरूप की प्रथम बहिश्त में श्री देवचन्द्र जी तथा श्री मिहिरराज जी का जीव श्यामा जी एवं श्री राज जी के रूप में सभी को दर्शन देंगे, तथा दुनिया उनकी पहचान करके अपनी भूल का प्रायश्चित करेगी और योगमाया के ब्रह्माण्ड में अखण्ड हो जायेगी।

दम ख्वाबी देखें क्यों बका को, कर देखो सहूर।

ख्वाब दुनी तब क्यों रहे, जब हुआ दिन बका जहूर॥११९॥

हे साथ जी! यदि आप विचार करके देखें तो यह स्पष्ट होगा कि स्वप्न के जीव अखण्ड परमधाम को कैसे देख सकते हैं। अखण्ड परमधाम के ज्ञान के उजाले में जब दिन हो गया, तो अज्ञानता के अन्धकार में स्वप्न से उत्पन्न होने वाली यह दुनिया कैसे रह सकती है।

भावार्थ— अखण्ड परमधाम का ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् शाश्वत् मुक्ति का प्राप्त हो जाना अनिवार्य है। इसके लिये प्रलय में संसार को लेना पड़ेगा। यही कारण है कि इस चौपाई में संसार के मिट जाने की बात कही गयी है।

दुनी मगज न जाने मुसाफ का, तो देखे अर्स को दूर।
जो जानें हक इलम को, तो देखें मोमिन हक हजूर॥१२०॥
संसार के लोग धर्मग्रन्थों के रहस्य को नहीं जानते हैं,
इसलिये उनकी दृष्टि में परमधाम बहुत दूर होता है।

जिनके पास तारतम वाणी का ज्ञान है, उन्हें यह स्पष्ट रूप से विदित है कि अक्षरातीत आत्माओं के धाम हृदय में ही विराजमान हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में "मुसाफ" का तात्पर्य मात्र कुरआन से नहीं, बल्कि सभी धर्मग्रन्थों से है। इसके अन्तर्गत वेद, कुरआन, तथा बाइबल आदि सभी धर्मग्रन्थ निहित हैं। इसी प्रकार फुरमान का भी आशय समझना चाहिए।

भिस्त दोजख दोऊ जाहेर, ए लिख्या माहें फुरमान।

तिन छोड़ी दुनियां हराम कर, जिन हुई हक पेहेचान॥१२१॥

धर्मग्रन्थों में यह स्पष्ट रूप से वर्णित है कि संसार को किस प्रकार दोजक (प्रायश्चित) की अग्नि में जलना पड़ेगा और किस प्रकार बेहद मण्डल में अखण्ड बहिश्ते

मिलेंगी। जिन्हें तारतम ज्ञान से अक्षरातीत की पहचान हो जाती है, वे इस दुनिया में रहना अपराध (पाप) समझने लगते हैं और संसार से अपना सारा ध्यान हटाकर प्रियतम के प्रेम में डूब जाते हैं।

भावार्थ— कुरआन के पारः अम्म (३०) अमयत सालून में सूरत नबः आयत १-४ तक में बहिश्त (अखण्ड धाम) तथा २०-२६ में दस प्रकार के दोजख (नर्कों) का वर्णन है।

इस प्रकार पुराण संहिता ३१/१०४ तथा वृहद सदाशिव संहिता श्लोक १८, १९ में भी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के समस्त जीवों को अखण्ड मुक्ति देने की बात कही गयी है। श्री राज जी के प्रति समर्पित होकर दुनिया में रहना पाप नहीं है, अपितु सांसारिक सुखों में डूबकर प्रियतम को भूल जाना महापाप है। इस चौपाई में यह

बात प्रमुखता से दर्शायी गयी है कि संसार में एक भी दिन ऐसा नहीं होना चाहिए, जिसमें कुछ समय प्रियतम की याद में न बिताया गया हो।

तो तरक करी इनों दुनियां, जो अर्स दिल मोमिन।

दुनी जलसी इत दोजख, जब दिन हुआ बका रोसन॥१२२॥

जिन ब्रह्ममुनियों का हृदय अक्षरातीत का धाम होता है, वे इस संसार को निरर्थक समझकर इसके मोहजाल से अलग हो जाते हैं। अखण्ड परमधाम के ज्ञान रूपी उजाले से अज्ञानता का अन्धकार दूर होने पर भी जो जीव संसार में फँसे रहेंगे और परब्रह्म की शरण में नहीं आयेंगे, वे न्याय के दिन अपने अपराधों को याद कर घोर प्रायश्चित की अग्नि में जलेंगे।

हकें दिया लदुन्नी जिनको, सो बैठे अर्स में बेसक।

जब कौल पोहोंच्या सरत का, तब होसी दुनी इत दोजक॥१२३॥

जिन ब्रह्ममुनियों के पास धनी की तारतम वाणी का ज्ञान पहुँच चुका है, वे उससे अपने प्रियतम की पहचान करके परमधाम का रसास्वादन कर रहे हैं। जब धाम धनी के द्वारा समस्त ब्रह्माण्ड को बेहद में अखण्ड करने का समय आ जायेगा, उस समय योगमाया के ब्रह्माण्ड में वे जीव प्रायश्चित की अग्नि में जल रहे होंगे जो परब्रह्म की पहचान करके उनके प्रति श्रद्धा, समर्पण, एवं प्रेम का भाव नहीं लाये होंगे।

भावार्थ— इस चौपाई के दूसरे चरण में आलंकारिक रूप से यह बात कही गयी है कि वे परमधाम में बैठे हैं। यद्यपि उनके मूल तन परमधाम में अवश्य बैठे हैं, किन्तु आत्मायें जब तक इस खेल में हैं, तब तक वे ध्यान द्वारा

परमधाम की अनुभूति करती रहेंगी। इसी को परमधाम में बैठना कहा गया है। किरंतन ग्रन्थ के कई प्रकरणों में इस प्रकार की भावना व्यक्त की गई है—

अब हम धाम चलत हैं, तुम हुजो सबे हुसियार।

किरंतन ९२/१

लगी वाली और कछु न देखे, पिंड ब्रह्मांड वाको है री नाहीं।
ओ खेलत प्रेमे पार पिया सों, देखन को तन सागर माहीं॥

किरंतन ९/४

अर्स नासूत दोऊ इतहीं, होसी जाहेर अपनी सरत।

देखें मोमिन दुनी जलती, बीच बैठे अपनी भिस्त॥१२४॥

तारतम ज्ञान द्वारा परमधाम तथा मृत्युलोक का ज्ञान इस संसार में अपने समय पर प्रकाशित (जाहिर) हो

जायेगा। ब्रह्मसृष्टियाँ (उनके जीव) अपने धाम (बहिश्त) में बैठे-बैठे संसार के जीवों को प्रायश्चित की अग्नि में जलते हुए देखेंगी।

भावार्थ- इस चौपाई में उस समय का प्रसंग है, जब सत्स्वरूप में न्याय की लीला होगी। उस समय श्री मिहिरराज जी का जीव राज जी का स्वरूप बनकर सिंहासन पर विराजमान होगा तथा श्री देवचन्द्र जी का जीव श्यामा जी बनकर सुशोभित होगा। ब्रह्मसृष्टियों के जीव ब्रह्मसृष्टियों जैसा हूबहू रूप धारण कर लेंगे।

आत्मायें परमधाम में अपने मूल तन में जाग्रत हो जायेंगी। वे धनी के हुक्म से परमधाम में बैठे-बैठे योगमाया के दृश्य को तो देख सकती हैं, किन्तु योगमाया के जीव परमधाम की आत्माओं को कदापि नहीं देख सकते।

वे सत्स्वरूप की पहली बहिश्त में विद्यमान ब्रह्मसृष्टियों के जीवों को ही परमधाम की अँगना समझ लेंगे तथा श्री मिहिरराज जी एवं श्री देवचन्द्र जी के जीव को श्री राजश्यामा जी का स्वरूप मान लेंगे। यही कारण है कि इस चौपाई में "भिस्त" शब्द का प्रयोग किया गया है।

काफर देखें मोमिनों भिस्त में, आप पड़े बीच दोजक।

सुख मोमिनों का देख के, जलसी आग अधिक॥१२५॥

प्रायश्चित की अग्नि में जलने वाले नास्तिक लोग जब ब्रह्मसृष्टियों के जीवों को ब्रह्मसृष्टियों के रूप में सत्स्वरूप की बहिश्त में देखेंगे और स्वयं को दोजक की अग्नि में जलते हुए देखेंगे, तो वे प्रथम बहिश्त वालों का सुख देखकर और अधिक दुःख की अग्नि में जलेंगे।

मोमिन दुनी दोऊ आदमी, हुई तफावत क्यों कर।

ए बेवरा है फुरमान में, पर कोई पावे न हादी बिगर॥१२६॥

इस खेल में ब्रह्मसृष्टियों तथा संसार के जीवों की शक्ल एक जैसी है, फिर भी दोनों में इतना भेद क्यों है ? इसका विवरण धर्मग्रन्थों में दिया गया है , किन्तु श्री प्राणनाथ जी की कृपा के बिना कोई भी नहीं जान सकता।

भावार्थ- पुराण संहिता २२/५३-५६ तथा ९/३४, ३७, तथा माहेश्वर तन्त्र २०/४४-४६, ४९/१२-१४, १६/३९,४० में जीव एवं आत्मा में स्पष्ट भेद दर्शाया गया है। इसी प्रकार अथर्व वेद १०/८/३ में भी यह स्पष्ट है। सन्त वाणियों के कथन भी यही सिद्ध करते हैं। इसी प्रकार कुरआन के तीसरे पारे की तफसीर-ए-हुसैनी में दी हुई व्याख्या से जीव एवं आत्मा का भेद

स्पष्ट हो जाता है।

बीते नब्बे साल हजार पर, मुसाफ मगज न पाया किन।

तो गए एते दिन रात में, हुआ जाहेर न बका दिन॥१२७॥

हिजरी सन् १०९० या वि.सं. १७३५ तक कुरआन के गुह्य भेदों को कोई भी नहीं जान सका था। इतने दिनों तक अज्ञानता का अन्धकार बना रहा। उस समय तक कुरआन के वास्तविक रहस्यों को उजागर करने वाले परमधाम के अखण्ड ज्ञान का उजाला नहीं फैल सका था।

भावार्थ— वि.सं. १७३५ के पश्चात् ही खिल्मत, परिक्रमा, सागर, तथा श्रृंगार का ज्ञान अवतरित हुआ है। इसी से कुरआन के वास्तविक आशय का प्रकाश हुआ है।

मोमिन उतरे अर्स से, इनों दिल में हक सूरत।

तो अर्स कहा दिल मोमिन, खोली हक हकीकत मारफत॥१२८॥

ब्रह्ममुनि (मोमिन) परमधाम से आये हैं। इनके हृदय में अक्षरातीत का स्वरूप विराजमान होता है, इसलिये इनके हृदय को धाम कहलाने की शोभा प्राप्त है। इन्होंने तारतम ज्ञान द्वारा श्री राज जी की हकीकत (सत्य, यथार्थता) तथा मारिफत (परमसत्य) के रहस्यों को प्रकट किया है।

दुनी दिल पर अबलीस, और पैदास कही जुलमत।

काम हाल इनों अंधेर में, हवा को खुदा कर पूजत॥१२९॥

दुनिया के जीवों की उत्पत्ति निराकार से हुई है और इनके हृदय पर शैतान (कलियुग) का साम्राज्य होता है। इनकी करनी (आचरण) और रहनी (अवस्था) माया के

अज्ञानमयी अन्धकार से ग्रस्त रहती हैं। ये निराकार (शून्य) को ही परमात्मा मानकर पूजते हैं।

कुलफ हवा का दुनी के, दिल आंखों कानों पर।

ईमान क्यों न आए सके, लिख्या फुरमान में यों कर॥१३०॥

धर्मग्रन्थों में ऐसा लिखा है कि सांसारिक जीवों के दिल, आँखों, एवं कानों पर निराकार का पर्दा लगा हुआ है। यही कारण है कि परब्रह्म के प्रति इनके हृदय में सच्चा विश्वास (ईमान) नहीं हो पाता।

भावार्थ— "महदाख्यमाद्यं कार्यं तन्मनः" (सांख्य दर्शन १/३६) के कथन के आधार पर जीव के मन, चित्त, बुद्धि, तथा अहं आदि की उत्पत्ति महत्तत्त्व (मोह तत्त्व) से हुई है। जब मन-बुद्धि की उत्पत्ति ही माया से हुई है, तो इन साधनों से माया से पार होने की बात कैसे सोची

जा सकती है। यही कारण है कि संसार का प्रायः हर प्राणी कण्ठ तक मायावी विषयों में डूबा रहता है।

कुरआन में पारः तीन (३) तिल्करसूल अल इम्रान (३) में एवं २२वाँ सूरः हज "कुंन, फकुंन" में वह प्रसंग आया है, जिसमें कहा गया है आदम की औलाद (मनुष्यों) पर इब्लीश का राज्य है। उसने उनकी आँखों एवं दिल में अपना राज्य स्थापित कर लिया है।

कौल हाल मोमिन के नूर में, रूह अल्ला आया इनों पर।
दिया इलम लदुन्नी इन को, खोलनें मुसाफ खातिर॥१३१॥

आत्माओं की कथनी और रहनी परमधाम की होती है, अर्थात् वे केवल परमधाम की बातें करती हैं तथा प्रेम में ही स्थित होती हैं। इनके बीच में श्यामा जी आयीं, जिन्होंने वेद-कुरआन आदि सभी धर्मग्रन्थों के रहस्यों

को खोलने के लिये तारतम ज्ञान दिया।

राह तौहीद पाई इनों नें, जो राह मुस्तकीम सिरात।

ए मेहेर मोमिनोँ पर तो भई, जो तले कदम हक जात॥१३२॥

ये ब्रह्मसृष्टियाँ मूल मिलावा में धनी के चरणों में बैठी हुई हैं। इनके ऊपर धाम धनी की ऐसी मेहर हुई है कि इन्होंने इस संसार में परमधाम का साक्षात्कार करने के लिये स्वलीला अद्वैत सिद्धान्त का सर्वश्रेष्ठ मार्ग प्राप्त कर लिया है।

भावार्थ— इस सिद्धान्त के अनुसार क्षर जगत द्वैत है, जिसमें जीव तथा जड़ माया की लीला है। इसके परे अक्षर ब्रह्म का बेहद का धाम है, जहाँ अद्वैत अक्षर ब्रह्म अपनी अभिन्न चेतन प्रकृति के साथ लीला करते हैं। इसके भी परे वह परमधाम है, जहाँ सच्चिदानन्द परब्रह्म

स्वयं अपनी अह्लादिनी शक्ति एवं आत्माओं तथा असंख्य लीला रूप पदार्थों का रूप लेकर लीला करते हैं। इस मान्यता को स्वलीला अद्वैत कहते हैं।

हुई लानत अजाजील को, सो उलट लगी सब जहान।
 अबलीस लिख्या दुनी नसलें, कही ए विध माहें कुरआन॥१३३॥
 कुरआन में लिखा है कि खुदा का हुक्म न मानने के कारण अजाजील फरिश्ते को लानत (दोष, धिक्कार) लगी, किन्तु वह सजा सारी सृष्टि के मानव समुदाय को भोगनी पड़ रही है। उस सजा के रूप में जीव सृष्टि के दिल में शैतान (कलियुग) का साम्राज्य है।

भावार्थ— कुरआन में यह प्रसंग आया है। इसमें बताया गया है कि अब्राहम तआला का हुक्म हुआ कि ऐ अजाजील! तू आदम पर सिज्दा कर। अजाजील ने देखा

कि मैं फरिश्ता होकर भी इस मिट्टी के बने हुए आदम पर सिज्दा क्यों करूँ? उसके अस्वीकार करने पर पुनः खुदा का आदेश हुआ, जिसका उसने पुनः उल्लंघन किया। अतः दण्ड रूप में उसे बहिश्त से निष्कासित किया गया।

देसी पैगंमर की साहेदी, गिरो अदल से उठाई जे।

करी हकें हिदायत इन को, बहत्तर नारी एक नाजी ए॥१३४॥

ब्रह्मसृष्टियाँ श्री महामति जी (आखिरी पैगम्बर) के वचनों की साक्षी देंगी, किन्तु जीव सृष्टि उसे स्वीकार नहीं करेगी। योगमाया में होने वाले न्याय की लीला से पहले ही ब्रह्मसृष्टियों को धाम धनी द्वारा जाग्रत कर दिया जायेगा। इन्हें श्री राज जी (श्री प्राणनाथ जी) का निर्देश प्राप्त होगा। इसी समूह को अखण्ड आनन्द प्राप्त करने

वाला (नाजी फिरका) कहा गया है। इनके अतिरिक्त अन्य सभी पन्थ (बहत्तर फिरके) प्रायश्चित की अग्नि में जलेंगे।

तन मोमिन अर्स असल, आड़ी नींद हुई फरामोस।

सो नींद वजूद ले उड़या, तब मूल तन आया माहें होस॥१३५॥

ब्रह्मसृष्टियों का वास्तविक तन परमधाम के मूल मिलावा में है। इनके और धनी के बीच में माया की नींद का पर्दा आ गया है। महाप्रलय में जब इनके माया के तन लय हो जायेंगे, तब इनके परात्म के तनों में जाग्रति आ जायेगी।

दुनी तन जुलमत से, इन की असल न बका में।

जब फरामोसी उड़ी जुलमत, तब जरा न रह्या दुनी सें॥१३६॥

संसार के जीवों के तन निराकार से उत्पन्न हुए हैं।

अखण्ड धाम (बेहद या परमधाम) में इनका कोई भी अखण्ड तन नहीं है। निराकार सहित जब माया का यह सारा ब्रह्माण्ड लय हो जायेगा, तब इनका भी अस्तित्व समाप्त हो जायेगा।

भावार्थ— महाप्रलय में सभी जीव आदिनारायण में लय हो जाते हैं, क्योंकि ये उनके प्रतिभास स्वरूप हैं। सम्पूर्ण जड़ जगत् निराकार (मोह सागर) में लय हो जाता है। इसके पश्चात् आदिनारायण अपने मूल स्थान (अव्याकृत के महाकारण) को चले जाते हैं तथा मोह सागर भी समाप्त हो जाता है।

अरवाहें जो सुपन की, देखें न जाग्रत को।

जो होए जाग्रत में असल, सो आवे जाग्रत में॥१३७॥

सपने के जीव जाग्रत परमधाम को नहीं देख सकते।

इसके विपरीत आत्माओं के मूल तन परमधाम में हैं,
इसलिये वे परमधाम को प्राप्त हो जायेंगी।

कही दुनियां हुई कुंन सों, सो जुलमत उड़ें उड़त।
ताको भिस्त देसी हादी हुकमें, गिनो मोमिनों की बरकत॥१३८॥
संसार के जीव कुन्न (एकोऽहम् बहुस्याम्) कहने से
उत्पन्न हुए हैं, इसलिये निराकार के लय होते ही इनका
अस्तित्व समाप्त हो जायेगा। इस खेल में जीवों को
ब्रह्मसृष्टियों का आशीर्वाद प्राप्त है। धाम धनी के आदेश से
श्री महामति जी इन सभी जीवों को अखण्ड मुक्ति देंगे।

सिफत करेंगे सब कोई, दुनी भिस्त की जे।

हक हादी रूहें वाहेदत, भिस्त हुई इनों वास्ते॥१३९॥
बहिश्तों मे अखण्ड हो जाने वाले ये जीव ब्रह्ममुनियों की

महिमा गायेंगे। वे यही कहेंगे कि ये ब्रह्मसृष्टियाँ तो अक्षरातीत श्री राजश्यामा जी की हृदय स्वरूपा हैं। इनके कारण हमें अखण्ड मुक्ति प्राप्त हुई है।

खुदाए कर पूजेंगे, बका मिनें बेसक।

पाक होसी हक इलम सों, करें बंदगी होए आसिक॥१४०॥

सत्स्वरूप की पहली बहिश्त में ब्रह्मसृष्टियों के प्रतिबिम्बों (आत्माओं के अखण्ड जीवों) को अन्य सात बहिश्तों के जीव साक्षात् परब्रह्म का स्वरूप मानकर पूजा करेंगे। इस बात में किसी प्रकार का संशय नहीं है। तारतम ज्ञान के प्रकाश में योगमाया में सभी जीव पवित्र हो जायेंगे और सत्स्वरूप में विद्यमान अक्षरातीत युगल स्वरूप के प्रतिबिम्ब स्वरूपों को साक्षात् अक्षरातीत मानकर प्रेमपूर्वक रिझायेंगे।

मोमिन उतरे अर्स अजीम से, दुनी तिन सों करे जिद।

ए अर्स से आए हक पूजत, दुनी पूजना हवा लग हद॥१४१॥

ब्रह्मसृष्टियाँ परमधाम से आयी हैं। दुनिया के जीव उनसे होड़ बाँधकर विवाद करते हैं। परमधाम से आये हुए ब्रह्ममुनि अक्षरातीत की पूजा (भक्ति) करते हैं, जबकि संसार के जीव निराकार को ही परमात्मा का स्वरूप मानकर पूजा करते हैं।

दुनियां दिल अबलीस कह्या, हक अर्स दिल मोमिन।

ए जाहेर किया बेवरा, कुरान में रोसन॥१४२॥

कुरआन में यह विवरण स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है कि संसार के जीवों के हृदय में शैतान (कलियुग) का निवास है तथा आत्माओं का दिल ही धाम है, जिसमें अक्षरातीत का निवास है।

अबलीस सोई बतावसी, जिन सों होसी दोजक।

बोली चाली मोमिन अर्स की, जासों पाइए बका हक॥१४३॥

इब्लीश (कलियुग) तो जीवों को वही मार्ग बतायेगा , जिससे वे दोजक की अग्नि में जलते रहें। इनके विपरीत आत्माओं की कथनी-रहनी सब कुछ परमधाम की है, इसलिये इनका मिलन अक्षरातीत और परमधाम से है।

भावार्थ- वस्तुतः शैतान या कलियुग कोई व्यक्ति नहीं हैं, बल्कि अज्ञान है, जो तमोगुण से उत्पन्न होता है। त्रिगुणात्मक महत्तत्त्व से ही अन्तःकरण (मन, चित्त, बुद्धि, व अहंकार) की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार अन्तःकरण (दिल) में जब तमोगुण जनित अज्ञान की प्रबलता हो जाती है, तो वह जीव को पतन की राह पर ले जाता है। यही शैतान का बहकाना है। यह कहीं बाहर नहीं है, बल्कि सारे ब्रह्माण्ड, सम्पूर्ण शरीर, उसकी

इन्द्रियों, तथा अन्तःकरण में व्याप्त है, क्योंकि यह सारी रचना त्रिगुणात्मिका प्रकृति से ही हुई है।

बैठे बातें करें बका अर्स की, सोई भिस्त भई बैठक।

दुनी बातें करे दुनी की, आखिर तित दोजक॥१४४॥

ब्रह्मसृष्टियाँ आपस में बैठकर जहाँ भी बातें करती हैं, वहाँ वे केवल परमधाम तथा अक्षरातीत की ही बातें करती हैं। इस प्रकार उस बैठक में बहिश्त का आनन्द प्रवाहित होता है। इसके विपरीत जीव सृष्टि के लोग जहाँ भी बैठते हैं, वहाँ पर संसार के राग-द्वेष, काम, क्रोध आदि विकारों की ही चर्चा करते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि उस बैठक में दुःख रूपी अग्नि की लपटें उठा करती हैं।

भावार्थ— जिस प्रकार बेहद मण्डल में कहीं भी दोजक

के अखण्ड होने का वर्णन नहीं है, बल्कि वह एक प्रायश्चित की मानसिक अवस्था है, उसी प्रकार इस चौपाई में यह दर्शाया गया है कि आत्माओं की बैठक में केवल अक्षरातीत का ही चिन्तन होता है, इसलिये वहाँ ब्रह्मानन्द की शीतल, मन्द, एवं सुगन्धित हवा के झोंके हृदय को आनन्दित करते हैं।

इसके विपरीत जीव सृष्टि हमेशा दूसरों की बुराई और अनिष्ट चिन्तन में ही लगी रहती है। उस बैठक में बैठने पर लगता है कि हम किस नरक (दुःख रूपी स्थान) में आ गये हैं।

जब सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही अखण्ड होना है, तो चाहे कहीं जागनी लीला न हो, तब भी वह अखण्ड ही होगा।

ए बोहोत भांत है बेवरा, मोमिन और दुनियां।

मोमिन नजर बका मिने, दुनी नजर बीच फना॥१४५॥

इस प्रकार ब्रह्मसृष्टियों में तथा संसार के जीवों में बहुत भेद है। आत्माओं की दृष्टि परमधाम में रहती है, जबकि संसार के जीव इस ब्रह्माण्ड से परे नहीं जा पाते अर्थात् वे स्वर्ग, वैकुण्ठ, और निराकार से आगे सोच ही नहीं पाते।

कहे महामत अर्स अरवाहें, किया पेहेले बेवरा फुरमान।

जिन हुई हक हिदायत, सोई बातून करे बयान॥१४६॥

श्री महामति जी कहते हैं कि परमधाम की आत्माओं के सम्बन्ध में धर्मग्रन्थों में पहले से ही सारा विवरण दिया जा चुका है। अब जिस आत्मा को धाम धनी का निर्देश प्राप्त होगा, वही परमधाम के गुह्य भेदों को प्रकाशित

करेगी।

प्रकरण ॥२३॥ चौपाई ॥१७५२॥

हकीकत मारफत का बेवरा

इस प्रकरण में परमधाम की हकीकत (सत्यता) एवं मारिफत (परम सत्यता) पर प्रकाश डाला गया है। इसके साथ धाम धनी के हुक्म (आदेश) के स्वरूप पर भी विवेचना की गयी है।

सोई कहूं हकीकत मारफत, जो रखी थी गुझ रसूल।

वास्ते अर्स रूहन के, जिन जावें आखिर भूल॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि अब मैं परमधाम की हकीकत एवं मारिफत के स्वरूप को उजागर करता हूँ, जिसे मुहम्मद साहिब ने संसार के लोगों से छिपाकर रखा था। अब मैं परमधाम की आत्माओं के लिये इस अलौकिक ज्ञान को प्रकट कर रहा हूँ, ताकि वे कियामत के इस समय में अपने प्राणवल्लभ को भूलने न पायें।

भावार्थ- कुरआन में मूलतः शरियत एवं तरीकत का ज्ञान है। हकीकत का ज्ञान हरुफ-ए-मुक्तेआत के रूप में है तथा मारिफत के शब्द तो रसूल मुहम्मद साहिब के मुख से उच्चारित ही नहीं हो सके। उस समय परमधाम की आत्मायें इस संसार में नहीं थीं, इसलिये हकीकत-मारिफत के ज्ञान के अवतरण की सार्थकता ही नहीं थी। सनंध ग्रन्थ में इस सम्बन्ध में कहा गया है-

जो अर्स रुहें आई होती, तो काहे को कौल करत।

सो कहया पीछे आवसी, ए सोई लेसी हकीकत॥

सनंध १९/२२

कछुक नबिएँ जाहेर किए, ए जो बंदगी सरियान।

केतेक हरफ रखे गुझ, सो करसी मेहेंदी बयान॥

और भी केतेक सुने रसूलें, सो चढ़े नहीं फुरमान।

सो मेंहेदी अब खोलसी, इमाम एही पेहेचान॥

सनंध २०/२, ३

फिरके बनी असराईल, हुए पीछे मूसा महत्तर।

एक नाजी नारी सत्तर, कहे फुरमान यों कर॥२॥

इब्राहीम पैगम्बर के पुत्र इस्माईल के वंश में महान मूसा पैगम्बर हुए हैं, जिनके अनुयायियों के एकहत्तर फिरके (पन्थ) माने गये हैं। इनमें ७० फिरके नरक की राह पर जाने वाले कहे गये हैं तथा मात्र एकहत्तरहवाँ फिरका ही अखण्ड मुक्ति को प्राप्त करने वाला माना गया है।

भावार्थ- इब्राहीम पैगम्बर के दो पुत्र थे- १. इस्माईल और २. इस्राईल। इस्माईल के वंशजों में केवल मुहम्मद साहिब प्रकट हुए हैं, शेष सभी पैगम्बर इस्राईल के वंश में ही हुए हैं।

याही भांत ईसा के, फिरके बहत्तर कहे।

एक नाजी तिन में हुआ, और नारी इकहत्तर भए॥३॥

इसी प्रकार ईसा मसीह के अनुयायियों में ७२ फिरके (पन्थ) कहे गये हैं। इसमें मात्र एक फिरके को ही मुक्ति सुख प्राप्त करने वाला माना गया है, शेष सभी एकहत्तर फिरके नरक को जाने वाले कहे गये हैं।

भावार्थ- उपरोक्त दोनों चौपाइयों में मूसा और ईसा के ७१ एवं ७२ फिरकों में मात्र एक फिरके को मुक्तिगामी कहने का भाव यह है कि एकहत्तर या बहत्तर व्यक्तियों में केवल एक ही व्यक्ति सही अर्थों में धर्म की राह पर चलने वाला होगा। शेष, सभी लोग राह से भटक कर अज्ञानता के अन्धेरे में चलने वाले होंगे।

तेहत्तर फिरके कहे महंमद के, बहत्तर नारी एक नाजी।

नारी जलसी आग में, नाजी हिदायत हक की॥४॥

इसी प्रकार मुहम्मद साहिब के भी तिहत्तर (७३) फिरके कहे गये हैं। इनमें ७२ फिरकों को दोजकी (नरकगामी) माना गया है तथा केवल एक ही फिरके को अखण्ड मुक्ति पाने वाला कहा गया है। कुरआन में ऐसा कहा गया है कि सभी ७२ फिरके दोजक की अग्नि में जलेंगे तथा नाजी फिरके को अक्षरातीत के ज्ञान द्वारा निर्देशन प्राप्त होगा।

भावार्थ- उपरोक्त तीनों चौपाइयों में मूसा , ईसा, और मुहम्मद साहिब के आखिरी फिरके को ही एकमात्र अखण्ड मुक्ति प्राप्त करने वाला इसलिये कहा गया है , क्योंकि यह ब्रह्ममुनियों (मोमिनो) का समुदाय है, जो कियामत के समय में प्रकट होगा। ब्रह्मसृष्टियों तथा ईश्वरी

सृष्टियों का यह समूह माया का खेल देखने के लिये संसार में आया हुआ है और धाम धनी की मेहर की छाँव तले उनकी ब्रह्मवाणी से माया के इस संसार से पार होकर अपने निजधाम को प्राप्त करेगा।

इस समय परब्रह्म पर श्रद्धा-विश्वास न रखने वाला विश्व का जीव समुदाय न्याय के दिन योगमाया में प्रायश्चित की अग्नि में जलेगा, जिसे दोजक की अग्नि में जलने वाला कहा गया है। इनकी गणना मूसा, ईसा, और मुहम्मद साहिब के सभी ७०, ७१, और ७२ फिरकों में की गयी है। कुरआन एवं हदीस सही बुखारी के पार: १७ सूर: २१ में यह प्रसंग वर्णित है। आगे की चौपाइयों में इन्हीं ब्रह्मसृष्टियों के विषय में प्रकाश डाला गया है।

जाहेर पेहेचान है तिन की, ले चलत माएने बातन।

कौल फैल चाल रूह नजर, इनों असल बका अर्स तन॥५॥

इन ब्रह्मसृष्टियों की स्पष्ट पहचान यह है कि ये धर्मग्रन्थों (कुरआन, वेद, उपनिषद, भागवत आदि) के मात्र गुह्य अर्थों को ही आत्मसात् (स्वीकार) करते हैं। इनकी कथनी, करनी, और रहनी आत्मिक होती है, अर्थात् शरीर और इन्द्रियों से होने वाले कर्मकाण्डों से ये कोसों दूर होते हैं। इनके मूल तन (परात्म) अखण्ड परमधाम में होते हैं। इस संसार में तो इनके स्वप्न के ही तन होते हैं।

फुरमान आया जिन पर, ए सोई जानें इसारत।

ले मारफत बैठे अर्स में, बीच बका खिलवत॥६॥

वेद, कुरआन, तथा भागवत आदि धर्मग्रन्थ मात्र इन्हीं की साक्षी के लिये हैं। इन धर्मग्रन्थों में संकेत में कही हुई

गुह्य बातों के रहस्यों को एकमात्र यही जानते हैं। तारतम वाणी से अध्यात्म का सर्वोपरि परमसत्य (मारिफत) ज्ञान प्राप्त करके ये स्वयं को अखण्ड परमधाम के मूल मिलावा में ही बैठा हुआ अनुभव करते हैं।

ए इलम कहे खेल उड़ जावे, बका कंकरी के देखे।

तो अर्स रूहों की नजरों, ख्वाब रेहेवे क्यों ए॥७॥

तारतम ज्ञान कहता है कि परमधाम की एक कंकरी के सामने यह ब्रह्माण्ड समाप्त हो जायेगा। इस प्रकार यह आश्चर्य होता है कि परमधाम की आत्माओं की दृष्टि के सामने यह नश्वर ब्रह्माण्ड अभी भी क्यों खड़ा है।

तो मोमिन तन में हुकम, फैल करे लिए रूह हुज्रत।

वास्ते हादी रूहन के, ए हकें करी हिकमत॥८॥

ब्रह्ममुनियों के तनों में श्री राज जी का हुक्म ही आत्मा का दावा लेकर सारा कार्य कर रहा है। श्यामा जी तथा सखियों के लिये ही श्री राज जी ने इस प्रकार की युक्ति (कारीगरी, कला) की है।

भावार्थ- जिस प्रकार आदिनारायण के संकल्प मात्र से असंख्य नक्षत्रों वाला यह कालमाया का ब्रह्माण्ड दृष्टिगोचर होने लगता है, उसी प्रकार श्री राज जी की इच्छा (हुक्म) मात्र से ब्रह्मात्माओं की सुरतायें इस नश्वर ब्रह्माण्ड में जीवों की लीला को देख रही हैं। यह अनहोनी को होनी करने जैसी अलौकिक घटना है। "ब्रह्मसृष्टियों का दावा लेकर हुक्म ही सब कुछ कर रहा है" का भाव धनी के हुक्म की विशिष्टता को दर्शाना है।

तो कह्या अर्स दिल मोमिन, ना मोमिन जुदे अर्स से।
 पर ए जानें अरवाहें अर्स की, जो करी बेसक हक इलमें॥९॥
 इसलिये तो ब्रह्मसृष्टियों के दिल को धाम कहा गया है।
 इस प्रकार ब्रह्मसृष्टियाँ परमधाम से अलग नहीं हैं, किन्तु
 इस रहस्य को मात्र परमधाम की आत्मायें ही जानती हैं,
 क्योंकि वे ब्रह्मवाणी के ज्ञान से पूर्णतया संशयरहित हो
 चुकी होती हैं।

बसरी मलकी और हकी, तीन सूरत महंमद की जे।
 ए तीनों सूरत दे साहेदी, आखिर अर्स देखावें ए॥१०॥
 मुहम्मद की तीन सूरतें कही जाती हैं— बशरी, मलकी,
 और हक्की। ये तीनों सूरतें अक्षरातीत की साक्षी देती हैं
 तथा वक्त आखिरत के समय परमधाम का दीदार करने
 वाली हैं।

भावार्थ- "मुहम्मद" का अर्थ होता है- महिमा से परे। अरब में मुस्तफा के तन में आने वाला स्वरूप अक्षर ब्रह्म की आत्मा का था। इस स्वरूप से अलौकिक कार्य होने के कारण इसे "मुहम्मद" की शोभा मिली। इसी प्रकार मल्की सूरत के रूप में श्यामा जी की आत्मा श्री राज जी के जोश एवं आवेश के साथ प्रकट हुई तथा हक्की सूरत के रूप में श्री इन्द्रावती जी की आत्मा युगल स्वरूप के साथ पाँचों शक्तियों (जोश, श्यामा जी, अक्षर ब्रह्म की आत्मा, हुक्म स्वरूप आवेश, तथा जाग्रत बुद्धि) को लेकर प्रकट हुई। इन तीनों स्वरूपों की अनन्त महिमा है। इन्हें कतेब परम्परा में मुहम्मद (अनन्त महिमा वाला) कहा जाता है।

इनके बताये हुए मार्ग पर चलने से परमधाम और अक्षरातीत का साक्षात्कार होता है। आखिरत के समय में

दीदार कराने का यही आशय है। कुरआन के पार: १६
सूरत मरयम आयत (१) में यह बात कही गयी है।

रूहों हक अर्स नजरों, हुकम नजर खेल माहें।

अर्स नजीक रूहों को खेल से, इत धोखा जरा नाहें॥११॥

ब्रह्मसृष्टियों की नूरी नजरें परमधाम में श्री राज जी की ओर हैं तथा हुक्म की नजर इस मायावी जगत में है। उनके दिल ही धाम हैं, इसलिये उनकी (आत्माओं की) दृष्टि में परमधाम बहुत निकट है। इस बात में उन्हें जरा भी धोखा नहीं है।

भावार्थ— आत्मा या सुरता परात्म की प्रतिबिम्ब स्वरूपा है जो श्री राज जी के आदेश (हुक्म) से इस संसार में प्रकट हुई है, इसलिये आत्मा या सुरता को हुक्म की सुरता या आत्मा कहा जाता है। ब्रह्मवाणी से यह विदित

हो गया है कि आत्माओं के लिये जाग्रत हो जाने पर अक्षरातीत और उनका परमधाम उनकी प्राणनली से भी अधिक निकट है।

तो हक सेहेरग से नजीक, कोई जाने ना लदुन्नी बिन।
 एही लिख्या फुरमान में, यों ही रूह अल्ला कहे वचन॥१२॥
 अक्षरातीत आत्माओं के लिये उनकी प्राणनली (शाहरग) से भी अधिक निकट हैं। इस रहस्य को तारतम ज्ञान के बिना कोई भी नहीं जान सकता। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी तथा कुरआन का इस सम्बन्ध में यही स्पष्ट कथन है।

ज्यों ज्यों होवे अर्स नजीक, खेल त्यों त्यों होवे दूर।
 यों करते छूट्या खेल नजरों, तो रूहें कदमै तले हजूर॥१३॥

चितवनि में डूबने पर जैसे-जैसे हृदय में परमधाम की शोभा बसती जाती है, वैसे-वैसे हृदय से माया का प्रभाव (खेल) दूर होता जाता है। इस प्रकार चितवनि में डूबते रहने पर आत्म-दृष्टि से यह मायावी जगत हट जाता है और ब्रह्मसृष्टियाँ स्वयं को मूल मिलावा में धनी के चरणों में बैठे हुए अनुभव करती हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में यह बात स्पष्ट रूप से दर्शायी गयी है कि आत्म-जाग्रति के लिये प्रेममयी चितवनि के अतिरिक्त अन्य कोई भी मार्ग नहीं है।

नजर खेल से उतरती देखिए, त्यों अर्स नजीक नजर।
 यों करते लैल मिटी रूहों, दिन हुआ अर्स फजर॥१४॥
 जैसे-जैसे आत्मा की दृष्टि माया से हटती जाती है,
 वैसे-वैसे परमधाम नजदीक होता जाता है अर्थात्

आत्मा के धाम हृदय में परमधाम की शोभा बसती जाती है। इस प्रकार आत्माओं के हृदय से माया का अन्धकार समाप्त हो जाता है और दिन के उजाले के समान परमधाम की शोभा का प्रकाश छा जाता है।

ए जो देत देखाई वजूद, रूह मामिन बीच नासूत।

ए दुनी जाने इत बोलत, ए बैठे बोलें माहें लाहूत॥१५॥

इस नश्वर जगत में आत्माओं के जो तन दिखायी पड़ रहे हैं, उनके सम्बन्ध में संसार के लोग यही सोचते हैं कि ये तो इस जगत में बोल रहे हैं, जबकि वास्तविकता यह है कि ये मूल मिलावा में ही बैठे-बैठे बोल रहे हैं।

भावार्थ— यद्यपि इस मायावी जगत में पञ्चभौतिक तन से जो कुछ भी बोला जाता है, उसे व्यक्त करने वाला जीव ही होता है, किन्तु उसके ऊपर विराजमान आत्मा

के अन्दर आने वाली ज्ञानधारा परात्म से ही आती है। इसे ही मूल मिलावा में बैठे-बैठे बोलना कहते हैं। यह ज्ञानधारा केवल अध्यात्म जगत से सम्बन्धित होती है। लौकिक जगत के विकृत राग-द्वेष एवं घृणित विचारों से सम्बन्धित बातों का परात्म से कोई सम्बन्ध नहीं होता है।

तो बातून गुझ लाहूत का, जाहेर सब करत।

ना तो अर्स बका की रोसनी, क्यों होवे जाहेर इत॥१६॥

इस प्रकार परमधाम की सभी गुह्य बातों को आत्मायें इस संसार में प्रकट कर रही हैं, अन्यथा अखण्ड परमधाम की बातों को इस संसार में कैसे प्रकाशित (प्रकट) किया जा सकता है।

अर्स बका हमेसगी, हक हादी रूहें वाहेदत।

ए तीन खेल हुए जो लैल में, ऐसा हुआ न कोई कबूं कित॥१७॥

अखण्ड परमधाम शाश्वत है। उसमें श्री राज जी, श्यामा जी, और सखियाँ एकदिली (एकत्व) के स्वरूप में विराजमान हैं। माया की रात्रि में व्रज, रास, एवं जागनी की जो लीला हुई है, ऐसी लीला तो पहले कभी भी-कहीं भी नहीं हुई थी।

तो खाकीबुत कायम किए, जो किया वास्ते खेल उमत।

रूहों पट दे बका बुलाए के, दर्ई चौदे तबकों भिस्त॥१८॥

माया का यह खेल ब्रह्मसृष्टियों को दिखाने के लिये ही बनाया गया है। इस ब्रह्माण्ड में आत्माओं के आने के कारण ही सम्पूर्ण जीवों को अखण्ड मुक्ति प्राप्त हो सकी है। धाम धनी ने परमधाम की आत्माओं को माया के पर्दे

में यह खेल दिखाया है तथा तारतम ज्ञान से परमधाम की चितवनि कराकर (धाम बुलाकर) चौदह लोक के सभी जीवों को अखण्ड मुक्ति दी है।

भावार्थ- ब्रह्मवाणी द्वारा परमधाम की पहचान करके प्रेम विह्वल होकर चितवनि करना ही परमधाम में पहुँचना है। जो सुरता (आत्मा) इस संसार में आयी है, उसकी दृष्टि का धाम को देखना ही परमधाम जाना है। खेल खत्म होने के पश्चात् ही सभी आत्मायें निजधाम जायेंगी।

सिफत करेंगे सब कोई, दुनी भिस्त की जे।

हक हादी रूहें वाहेदत, भिस्त हुई इनों वास्ते॥१९॥

बेहद मण्डल की आठ बहिश्तों में अखण्ड होने वाले सभी जीव ब्रह्मसृष्टियों की महिमा गायेंगे। उन्हें यह बात पूर्णतया विदित हो जायेगी कि श्री राजश्यामा जी के साथ

परमधाम की वहदत (एकदिली) में रहने वाली आत्माओं का नश्वर जगत में आना हुआ, जिसके कारण ही हमें यह मुक्ति प्राप्त हुई है।

अर्स रूहें हक बिना न रहें, विरहा न सहें एक खिन।

जब इलमें हुई अर्स बेसकी, रूहें रहें न बिना वतन॥२०॥

परमधाम की आत्मायें अपने प्राणवल्लभ के बिना इस संसार में नहीं रह सकतीं। एक क्षण के लिये भी प्रियतम का वियोग सह पाना उनके लिये सम्भव नहीं है। ब्रह्मवाणी के ज्ञान से जब वे पूर्णतया संशयरहित हो जाती हैं अर्थात् परमधाम की यथार्थ पहचान कर लेती हैं, तो चितवनि में डूबकर निजधाम का रस लिए बिना वे नहीं रह पातीं।

भावार्थ— यद्यपि सभी आत्मायें एक साथ ही परमधाम

जायेंगी, किन्तु इस खेल में एक क्षण भी विरह न सह पाने का अर्थ है— अपने धाम हृदय में उनकी अनुभूति करना। इसके बिना आत्माओं के लिये यह संसार निरर्थक है। इसी प्रकार चौथे चरण का भी आशय धाम हृदय में अखण्ड परमधाम की शोभा देखने से है, साक्षात् जाने से नहीं।

जो कदी मोमिन तन में हुकम, तो हुकम भी रहे ना इत।

क्यों ना रहे इत हुकम, हुकम हुकम बिना क्यों फिरत॥२१॥

यदि यह माना जाये कि धाम धनी का हुक्म ही इस संसार में ब्रह्मसृष्टियों के रूप में उनके तन में लीला कर रहा है, तो बाद में वह भी नहीं रहता। ऐसी स्थिति में यह जानने की जिज्ञासा होती है कि तन में (जाग्रति के पश्चात्) हुक्म क्यों नहीं रहता? मूल स्वरूप के हुक्म के

बिना तन में स्थित हुक्म का स्वरूप क्यों अन्तर्धान हो
(फिर) जाता है?

हुक्म आया तन मोमिनो, लई अर्स रूह हुज्जत।

ले इत लज्जत अर्स हक की, क्यों हुक्म रहे सकत॥२२॥

परमधाम की आत्मा का दावा लेकर श्री राज जी का हुक्म ही ब्रह्मसृष्टियों के तन में आया हुआ है। अक्षरातीत तथा परमधाम के आनन्द का रसास्वादन करके भला हुक्म संसार के इस तन में कैसे रह सकता है।

भावार्थ- अक्षरातीत के हुक्म से परात्म का प्रतिबिम्ब ही आत्मा या सुरता के रूप में इस संसार में आया हुआ है, इसलिये इसे हुक्म की सुरता कहते हैं। परात्म का श्रृंगार सजे बिना परमधाम या श्री राज जी का साक्षात्कार होना सम्भव नहीं है। हुक्म रूपी प्रतिबिम्ब यदि परात्म के

भावों में ओत-प्रोत हो जाता है, तो हुक्म का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। इसे ही तन में हुक्म का न रहना कहा गया है।

ए हुक्म सो भी मासूक का, सो क्यों जुदागी सहे।

खिलवत वाहेदत सुध सुन, पल एक ना रहे॥२३॥

परात्म के प्रतिबिम्ब के रूप में प्रकट होने वाला यह हुक्म भी तो श्री राज जी का ही है। भला यह धाम धनी से वियोग कैसे सहन कर सकता है। ब्रह्मवाणी से परमधाम की खिलवत एवं वहदत की पहचान होने पर तो यह हुक्म रूपी प्रतिबिम्ब (परात्म का) एक पल भी इस संसार में नहीं रह सकता।

ए हुकम तिन मासूक का, जो आप उलट हुआ आसिक।

सो हुकम विरहा ना सहे, बिना मासूक एक पलक॥२४॥

यह हुक्म भी तो उस माशूक (प्रेमास्पद) श्री राज जी का है, जो अपनी आत्माओं को जाग्रत करने के लिये इस खेल में आशिक (प्रेमी) के रूप में प्रकट हुए हैं। इस प्रकार परात्म के प्रतिबिम्बित रूप में प्रकट होने वाला यह हुक्म धाम धनी से एक पल का भी वियोग सहन नहीं कर सकता है।

ए अर्स बका बातें सुन के, एक पलक न रहें अरवाहें।

रूहों हुकम राखे आड़ा पट दे, हक इत लज्जत देखाया चाहें॥२५॥

अपने अखण्ड परमधाम की गुह्य बातों को सुनकर परमधाम की आत्मायें एक पल भी इस संसार में नहीं रह सकतीं। धाम धनी इस खेल में आत्माओं को परमधाम

का स्वाद देना चाहते हैं, इसलिये उन्होंने अपने हुक्म से फरामोशी (माया की नींद) का पर्दा देकर आत्माओं को इस संसार में रोक रखा है।

भावार्थ- इस चौपाई में हुक्म का तात्पर्य परात्म के प्रतिबिम्ब रूप में रहने वाला धनी का हुक्म नहीं, बल्कि सम्पूर्ण खेल को नियन्त्रित करने वाला मूल स्वरूप का हुक्म है।

रूहों हक पे मांगी लज्जत, सो क्यों रहें देखे बिगर।

कोट गुनी देखावें लज्जत, जो रूहों मांगी प्यार कर॥२६॥

ब्रह्मसृष्टियों ने श्री राज जी से लज्जत (रसास्वादन) माँगी थी। उसे देखे बिना वे कैसे रह सकती हैं। ब्रह्मात्माओं ने जिस लज्जत को बहुत प्यार से माँगा था, उसे धाम धनी करोड़ों गुना रूप में दिखा रहे हैं।

भावार्थ- धाम धनी से सखियों ने माया का खेल देखना चाहा तथा उनके चरणों के सुख से भी अलग नहीं होना चाहा। इस प्रकार धाम धनी ने उनकी सुरता को इस मायावी जगत में लाकर मायावी दुःखों के अनुभव में डुबो दिया है तथा इसका स्वाद परमधाम में जाग्रत होने पर मिलेगा। इसी प्रकार इस मायावी जगत् में परमधाम के सुखों का रसास्वादन (लज्जत) हुआ है, जबकि परमधाम में वहाँ के अखण्ड सुखों में डुबो रखा था। यह तथ्य इसी प्रकरण की चौपाई ४७ में दिया गया है।

ना तो इस्क इनों का असल, सब अंगों इस्क रूहन।

इस्क उड़ावे अंग लज्जत, आया इलम वास्ते इन॥२७॥

अन्यथा ब्रह्मात्माओं का प्रेम अखण्ड है। उनके सभी अंगों में इश्क ही इश्क विद्यमान है। इन आत्माओं को

लज्जत देने के लिये ही तारतम ज्ञान (ब्रह्मवाणी) आया है। यदि परमधाम के नूरी तनों का इश्क इस संसार के नश्वर तनों में भी आ जाये, तो दिल में स्वाद (लज्जत) का मिल पाना सम्भव ही नहीं है।

हक को काम और कछू नहीं, देवें रूहों लाड़ लज्जत।

ए तो बिगर चाहे सुख देत हैं, तो मांग्या क्यों न पावत॥२८॥

ब्रह्मसृष्टियों को अपने प्रेम का रसास्वादन कराने के अतिरिक्त धाम धनी को और कोई काम नहीं है, अर्थात् श्री राज जी की लीला में सर्वत्र प्रेम ही प्रेम दृष्टिगोचर होता है। जब बिना माँगे ही श्री राज जी अपनी अँगनाओं को प्रेम का आनन्द देते हैं, तो माँगने पर क्यों नहीं देंगे?

सुख उपजें कई विध के, आगूं अर्स में बड़ा विस्तार।

सो रूहें सब इत देखहीं, जो कर देखें नीके विचार॥२९॥

अनादि काल से ही परमधाम में अखण्ड सुखों का अनन्त विस्तार है। वहाँ पल-पल अनन्त प्रकार के सुख प्रकट होते रहते हैं। यदि आत्मायें ब्रह्मवाणी का अच्छी प्रकार से विचारपूर्वक चिन्तन करके चितवनि करती हैं, तो वे उन सभी सुखों की इसी संसार में प्रत्यक्ष अनुभूति कर सकती हैं।

भावार्थ- यद्यपि "आगूं" शब्द का अर्थ पहले होता है, किन्तु इस चौपाई में इसका भाव अनादि काल से लिया जायेगा।

सो बिगर कहे सुख देत हैं, ए तो रूहों मांग्या मिल कर।

इन जिमी बैठाए सुख अर्स के, हक देत हैं उपरा ऊपर॥३०॥

धाम धनी जब बिना कहे ही अपनी अँगनाओं को सारा सुख देते हैं, तो रसास्वादन का यह सुख तो परमधाम की सभी आत्माओं ने मिलकर माँगा है। यही कारण है कि प्रियतम अक्षरातीत हमें इस नश्वर संसार में रखकर भी ऊपर से परमधाम के अनन्त सुखों का रसास्वादन करा रहे हैं।

दुनी में बैठाए न्यारे दुनी से, किए ऐसी जुगत बनाए।

सुख दिए दोऊ ठौर के, अर्स दुनी बीच बैठाए॥३१॥

श्री राज जी ने ऐसी युक्ति से लीला की है कि हमें इस संसार में रखकर भी संसार से अलग किये रखा है। उन्होंने संसार में लाकर भी परमधाम के सुखों का अनुभव कराया है। इस प्रकार प्रियतम ने हमें संसार तथा परमधाम दोनों का सुख दिया है।

भावार्थ- अक्षरातीत तथा परमधाम का अनुभव हो जाने पर संसार का बन्धन समाप्त हो जाता है। वह संसार में रहते हुए भी नहीं रहता है। उसे कर्मफल के भोग का बन्धन कभी भी बाँध नहीं पाता।

एक तन हमारा लाहूत में, नासूत में और तन।

असल तन रूहें अर्स बीच में, तन नासूत में आया इजन॥३२॥

हमारा एक तन जो नूरमयी है, वह परमधाम में है, और इस मृत्युलोक में यह स्वप्नमयी तन है। परमधाम के मूल मिलावा में हमारा अखण्ड तन धनी के चरणों में विद्यमान है, जबकि इस संसार का तन पञ्चभूतात्मक है और श्री राज जी के आदेश (हुक्म) से आया है।

अर्स तन देखें तन नासूती, तन नासूत में जो हुकम।

सो सुध दई अर्स अरवाहों को, इने सेहेरग से नजीक हम॥३३॥

परात्म के तन हमारे स्वप्न के इन तनों को देख रहे हैं। संसार के हमारे ये तन धनी के हुकम से ही हैं। इनमें प्राणनली (शाहरग) से भी निकट होकर हमारे प्राणवल्लभ अक्षरातीत विद्यमान हैं। परमधाम की हम आत्माओं को यह सारी सुध धाम धनी ने अपनी ब्रह्मवाणी से दे दी है।

दुनियां चौदे तबक में, किन पाई न बका तरफ।

तिन अर्स में बैठाए हमको, जाको किन कह्यो ना एक हरफ॥३४॥

चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में आज दिन तक किसी को भी अखण्ड परमधाम का ज्ञान नहीं था। जिस परमधाम के विषय में आज तक कोई एक अक्षर भी नहीं बोल सका था, धाम धनी ने हमें उसी परमधाम का

अनुभव कराया है जिसमें हम अपने मूल तन से बैठे हैं।

द्रष्टव्य- इस चौपाई के तीसरे चरण में कथित "अर्स में बैठाए" का भाव है- ध्यान द्वारा परमधाम की प्रत्यक्ष अनुभूति करना।

जो जाहेर माएने देखिए, तो बीच पड़यो ब्रह्माड।

एता बिछोड़ा कर दिया, हक अर्स और इन पिंड॥३५॥

यदि बाह्य अर्थों (अभिप्राय) में देखा जाये तो हमारे और धनी के बीच में इस ब्रह्माण्ड का ही पर्दा है। हमारे इन तनों तथा अक्षरातीत के परमधाम के बीच में इस प्रकार से वियोग आ गया है।

भावार्थ- यदि हमारी सुरता (आत्मा) इस ब्रह्माण्ड में नहीं आती, तो इस तन में विद्यमान हमारी आत्मा और धनी के बीच में किसी भी प्रकार का वियोग होने की बात

ही नहीं थी, क्योंकि हम तो मूलतः धनी के चरणों में ही बैठी हुई हैं।

हुआ बिछोड़ा बीच ब्रह्माण्ड के, एते पड़े थे हम दूर।
 सो हकें इलम ऐसा दिया, बैठे कदमों तले हजूर॥३६॥
 इस खेल में हमारी सुरता के आ जाने के कारण, हमारे
 और धाम धनी के बीच में वियोग हो गया था। हमें ऐसा
 लग रहा था कि जैसे हम अपने परमधाम से बहुत दूर आ
 गयी हैं। अब प्रियतम अक्षरातीत ने तारतम वाणी से हमें
 ऐसा अनुभव करा दिया है कि हम स्वयं को मूल मिलावा
 में धनी के चरणों में बैठी हुई पाती हैं।

हुकमें कई मता पोहोंचाईया, बीच ऐसी जुदागी में।
 हकें न्यामत दे अघाए, कई हांसी करियां हम सें॥३७॥

वियोग की इस घड़ी में भी श्री राज जी के हुक्म से अखण्ड ज्ञान की अनेक निधियाँ ब्रह्मवाणी के रूप में आयी हैं। इन अनमोल निधियों को देकर धाम धनी अपनी ओर से सन्तुष्ट हो चुके हैं, किन्तु हमें कई प्रकार से माया में फँसा हुआ देखकर वे हम पर हँसी भी कर रहे हैं।

भावार्थ— रास ग्रन्थ द्वारा समर्पण व प्रेम, प्रकाश में प्रियतम की पहचान व विरह, षट्क्रतु में विरह की गहनता, तथा कलश में ब्रज, रास, जागनी, व संसार का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार सनंध में कुरआन की यथार्थता तथा खुलासा में वेद-कतेब का एकीकरण प्रस्तुत किया गया है। किरन्तन ग्रन्थ सम्पूर्ण श्रीमुखवाणी का संक्षिप्त रूप है। खिल्वत, परिक्रमा, सागर, तथा सिनगार में परमधाम की हकीकत एवं

मारिफत का सम्पूर्ण रस प्रवाहित हुआ है। इस प्रकार ब्रह्मवाणी के रूप में धाम धनी ने परमधाम की अलौकिक निधियाँ हमें प्रदान की हैं।

अर्स-अजीम की कंकरी, उड़ावे चौदे तबक।

तो तिन को है क्यों कहिए, जो देख ना सके हक॥३८॥

यदि नूरमयी परमधाम की एक कंकड़ी भी चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में आ जाये, तो इसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। इस स्थिति में, संसार के जो जीव श्री राज जी को देख ही न सकें, उन्हें अखण्ड अस्तित्व वाला सत् कैसे कहा जा सकता है।

जो हक को देखे ना उड़े, सो दूजा कहिए क्यों कर।

ए बातें अर्स वाहेदत की, पाइए हक इलमें खबर॥३९॥

धाम धनी का दीदार होने पर भी जिनका अस्तित्व बना रहता है, उन आत्माओं को धनी से अलग स्वरूप रखने वाला कैसे कहा जा सकता है। परमधाम की एकदिली की ये गुह्य बातें हैं, जिनका बोध मात्र ब्रह्मवाणी से ही सम्भव है।

भावार्थ- जिस प्रकार सूर्य की किरणें सूर्य के ही समान होती हैं और सागर की लहरें सागर स्वरूपा होती हैं, उसी प्रकार आत्मायें भी श्री राज जी की अँगरूपा हैं। इन्हें धाम धनी से अलग नहीं माना जा सकता।

हकें इलम दिया अपना, सो आया इस्क बखत।

सो इस्क न देवे बढ़ने, ऐसे किए हिरदे सखत॥४०॥

इस जागनी ब्रह्माण्ड में प्रेम की परीक्षा की घड़ी में धाम धनी ने अपनी तारतम वाणी का ज्ञान दिया है। ज्ञान द्वारा

हृदय इस प्रकार कठोर हो गया है कि हृदय में प्रेम की वृद्धि ही नहीं हो पा रही है।

भावार्थ- ज्ञान द्वारा ही पहचान होती है, जिससे प्रेम किया जाता है। बिना पहचान के प्रेम सम्भव नहीं है, इसलिये ज्ञान (इल्म) को प्रेम (इश्क) का प्राण कहा जाता है। किन्तु श्रद्धा, समर्पण, विश्वास, एवं विरह की कमी से शुष्क ज्ञान हृदय को कठोर भी बना देता है, जिससे प्रियतम की प्राप्ति सम्भव नहीं हो पाती।

यही कारण है कि जिस प्रकार इल्म को इश्क का प्राण माना गया है, उसी प्रकार इश्क को भी इल्म (ज्ञान) का प्राण माना गया है, अर्थात् श्रद्धा, विश्वास, एवं भाव-विह्वलता से रहित शुष्क हृदय में वास्तविक ज्ञान का प्रकाश नहीं हो पाता। ऐसा हृदय मात्र शब्द ज्ञान को ग्रहण करने में ही अपने लक्ष्य की प्राप्ति समझ लेता है

और प्रेम की अमृत धारा एवं मारिफत के इल्म (परम सत्य ज्ञान) से वंचित हो जाता है। इस सम्बन्ध में तारतम वाणी का कथन इस प्रकार है—

मैं जान्या प्रेम आवसी, विरहा के वचनों गाए।

सो अक्वल से ले अबलों, विरहा गाया लड़ाए लड़ाए॥

सो गाए गाए हुआ दिल सखत, मूल इस्क गया भुलाए।

मन चित्त बुध अहंकारे, गुझ अर्स कह्या बनाए॥

श्रृंगार २७/५०,५२

जो जोरा होए इस्क का, तो निकसे ना मुख दम।

सो गाए के इस्क गमाइया, जोरा कराया इलम॥

श्रृंगार २८/२

और जित आया हक इलम, अर्स दिल कह्या सोए।

हक न आवें इस्क बिना, और हक बिना इस्क न होए॥४१॥

जिस आत्मा के हृदय में ब्रह्मवाणी के ज्ञान का प्रकाश हो जाता है, उस हृदय को ही धाम कहलाने की शोभा प्राप्त होती है। यदि हृदय में प्रेम न हो, तो धनी का स्वरूप दिल में विराजमान नहीं हो सकता और श्री राज जी के बिना प्रेम कहीं और मिल भी नहीं सकता।

भावार्थ- ब्रह्मवाणी से प्रियतम अक्षरातीत की पहचान हो जाने से हृदय में एकमात्र श्री राज जी का ही चिन्तन होने लगता है। इसलिये, ऐसे हृदय को धाम कहलाने की शोभा प्राप्त हो जाती है। श्री राज जी के स्वरूप की चितवनि किये बिना अन्य किसी साधन या स्रोत से प्रेम प्राप्त नहीं होता। युगल स्वरूप के अतिरिक्त अन्य कहीं पर भी स्वलीला अद्वैत का प्रेम नहीं है।

अर्स कहिए दिल तिन का, जित है हक सहूर।

इलम इस्क दोऊ हक के, दोऊ हक रोसनी नूर॥४२॥

उसी दिल (हृदय) को धाम कहलाने की शोभा प्राप्त है, जिसमें श्री राज जी का चिन्तन और चितवनि होती है। इश्क और इल्म (प्रेम और ज्ञान) दोनों ही धनी के अंग हैं और इन दोनों से ही श्री राज जी के नूरी स्वरूप की पहचान होती है।

भावार्थ- ज्ञान से चिन्तन होता है तथा प्रेम से चितवनि। "सहूर" शब्द का तात्पर्य चिन्तन या चितवनि से ही है। बिना चिन्तन या चितवनि (ध्यान द्वारा आत्म-दृष्टि से देखना) के प्रियतम की नूरमयी शोभा को नहीं जाना जा सकता।

इस्क इलम बारीकियां, दिल जाने अर्स मोमिन।

जो जागी होए रूह हुकमें, ताए लज्जत आवे अर्स तन॥४३॥

इश्क और इल्म की अति सूक्ष्म बातों का ज्ञान मात्र परमधाम की आत्माओं के दिल को ही होता है। जो आत्मा धाम धनी के आदेश से जाग्रत हो जाती है, उसे अपने मूल तन परात्म का स्वाद आता है।

भावार्थ— आत्मा के धाम हृदय में श्री राज जी की शोभा के विराजमान हो जाने पर ही उसे जाग्रत माना जाता है। इस अवस्था में उसे अपनी परात्म का भी साक्षात्कार हो जाता है। अब वह अपने पञ्चभौतिक तन से परे अपने मूल तन (परात्म) को देखती रहती है और उसी के भावों में डूबी रहकर अपने प्राणवल्लभ को रिझाती रहती है।

जो जोरा करे इस्क, तन मोमिन देवे उड़ाए।

दिल सखती बिना अर्स अजीम की, इत लज्जत लई न जाए॥४४॥

यदि आत्मा में प्रेम का बल अधिक आ जाये, तो यह पञ्चभौतिक तन छूट जायेगा। इस प्रकार हृदय के कुछ कठोर (धैर्यशाली) हुए बिना इस संसार में परमधाम के सुखों को रसास्वादन नहीं हो सकता।

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय होता है कि यहाँ तो कहा गया है कि परमधाम का सुख लेने के लिये हृदय में कुछ कठोरता की आवश्यकता है, किन्तु अन्यत्र कहा गया है कि "मोमिन दिल कोमल कहया, तो अर्स पाया खिताब।" इस प्रकार का विरोधाभास क्यों है?

सामान्यतः कोरे जीव का हृदय बहुत कठोर होता है, इसलिये वह प्रेम की राह पर नहीं चल पाता। इसके विपरीत आत्मा जिस जीव पर विराजमान होती है,

उसका हृदय स्वाभाविक रूप से कोमल होता है, क्योंकि आत्मा परात्म की प्रतिबिम्ब स्वरूपा है। आत्मा के हृदय में परात्म के प्रेम की आभा पड़ने से जीव के हृदय का भी कोमल एवं प्रेममयी हो जाना स्वाभाविक है, किन्तु उसकी अत्यधिक कोमलता से विरह-प्रेम इतना अधिक बढ़ सकता है कि इस पञ्चभौतिक शरीर के प्रति उसका लगाव पूर्णतया समाप्त हो सकता है और प्रियतम के निरन्तर दर्शन तथा एक पल के लिये भी अलग न होने की इच्छा शरीर-त्याग के मार्ग पर चलने के लिये विवश कर सकती है। यही कारण है कि परमधाम के सुखों के रसास्वादन के लिये मध्यम स्तर की कोमलता एवं प्रेम की आवश्यकता होती है। इस प्रकार श्रीमुखवाणी के कथनों में कहीं भी विरोधाभास नहीं है।

इस्क नूर जमाल बिना, और जरा न कछुए चाहे।

इस्क लज्जत ना सुख दुख, देवे वाहेदत बीच डुबाए॥४५॥

"प्रेम" अक्षरातीत के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु की नाम मात्र भी इच्छा नहीं करता। प्रेम (इश्क) का स्वाद लौकिक सुख-दुःख की परिधि से परे होता है। वह आत्मा को स्वलीला अद्वैत परमधाम की शोभा में डुबो देता है।

भावार्थ- प्रेम का उद्देश्य आत्मा को युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार में डुबोना होता है। इस अवस्था में उसे इतना आनन्द मिलता है कि संसार के सुख या दुःख उसके लिये नगण्य होते हैं। इस अवस्था को प्राप्त होने वाले सुन्दरसाथ का हृदय न तो सांसारिक सुखों के प्रति आकर्षित होता है और न ही कष्टों से व्यथित (दुखी) होता है।

ना तो सखत दिल मोमिन के, हक करें क्यों कर।

पर अर्स लज्जत बीच दुनी के, लिवाए न सखती बिगर॥४६॥

अन्यथा, धाम धनी ब्रह्मसृष्टियों के हृदय में थोड़ी सी कठोरता क्यों पैदा करते? किन्तु, हृदय के कुछ कठोर हुए बिना, इस संसार में परमधाम के सुखों का रसास्वादन नहीं लिया जा सकता।

एकै नजर मोमिन की, हक सुख दिया चाहें दोए।

रुहें अर्स सुख लेवें खेल में, और खेल सुख अर्स में होए॥४७॥

यद्यपि ब्रह्मसृष्टियाँ मात्र परमधाम का ही आनन्द चाहती हैं, किन्तु श्री राज जी दोनों प्रकार का सुख देना चाहते हैं। वे आत्माओं को इस संसार में परमधाम का सुख दे रहे हैं तथा परात्म में जाग्रत होने पर इस खेल का सुख देना चाहते हैं।

हकें दई जुदागी हमको, इस्क बेवरे को।

बिना जुदागी बेवरा, पाइए ना अर्स मौं॥४८॥

प्रेम का निरूपण (इश्क का विवरण) करने के लिये धाम धनी ने हमें वियोग की यह लीला दिखायी है। बिना वियोग के परमधाम में प्रेम का विवरण मालूम ही नहीं हो सकता।

भावार्थ— परमधाम में एकदिली होने से सभी का इश्क बराबर है। श्री राज जी का ही इश्क सभी तनों में लीला कर रहा है, यह बात परमधाम में मालूम नहीं थी। इस माया के खेल में आने पर जब हमारे पास इश्क नहीं रहा, तो धाम धनी ने अपनी ब्रह्मवाणी से अपने इश्क की मारिफत की पहचान करा दी है।

होए न जुदागी अर्स में, तो क्यों पाइए बेवरा इस्क।

ताथें दई नेक फरामोसी, बीच अर्स के हक॥४९॥

जब परमधाम में वियोग ही नहीं हो सकता , तो इश्क (प्रेम) का निरूपण हो पाना कैसे सम्भव था। यही कारण है कि परमधाम में धाम धनी ने हमें अपने चरणों में बिठाकर थोड़ी सी फरामोशी (नींद) दिखायी है।

भावार्थ- परमधाम स्वलीला अद्वैत है। वहाँ कालमाया के ब्रह्माण्ड जैसी नींद (फरामोशी) की कल्पना नहीं की जा सकती, किन्तु लीला रूप में अनहोनी घटना के रूप में ऐसा घटित हो गया है कि अक्षरातीत की अँगरूपा आत्मायें अपने सामने ही सिंहासन पर बैठे हुए अपने प्राणवल्लभ को नहीं देख पा रही हैं। यद्यपि उनकी आँखें खुली हुई हैं, किन्तु सुरता के खेल में आ जाने के कारण उनके सामने नींद (फरामोशी) जैसा दृश्य उपस्थित हो

गया है। इसे ही इस चौपाई में थोड़ी सी (नाम मात्र) फरामोशी कहकर वर्णित किया गया है।

हम खेल देखें बैठे अर्स में, ए जो चौदे तबक।

रूह हमारी इत है नहीं, लई परदे में हक॥५०॥

हम परमधाम के मूल मिलावा में बैठे-बैठे चौदह लोक के इस खेल को देख रहे हैं। हमारी परात्म इस संसार में नहीं है। धाम धनी ने उसे फरामोशी के पर्दे से छिपा दिया है।

भावार्थ- हमारी आत्मा इस नींद (फरामोशी) के ब्रह्माण्ड में आयी हुई है। हमारे इस तन और परात्म के बीच में यह फरामोशी (माया) का पर्दा है, जिसके कारण परात्म का दर्शन नहीं हो पा रहा है। इसी को फरामोशी के पर्दे में रखना कहा गया है।

फेर दिया इलम अपना, जासों फरामोसी उड़ जाए।

खेल में मता सब अर्स का, इलमें सब विध दई बताए॥५१॥

पुनः धाम धनी ने अपनी तारतम वाणी का ज्ञान दिया जिससे माया की नींद उड़ जाती है। इस प्रकार ब्रह्मवाणी श्री कुल्जुम स्वरूप ने इस संसार में ही हमें हर तरह से परमधाम का वह सम्पूर्ण ज्ञान दे दिया है।

भावार्थ— श्रीमुखवाणी का ज्ञान हमारी आत्मा एवं जीव को माया से परे ले जाने वाला है। ब्रह्मवाणी सभी प्रकार के संशयों को पूर्ण रूप से निवृत्त करने वाली है।

जो रूह हमारी आवे खेल में, तो खेल रहे क्यों कर।

याको उड़ावे अर्स कंकरी, झूठ क्यों रहे रूहों नजर॥५२॥

यदि हमारी परात्म का तन इस संसार में आ जाये, तो इस ब्रह्माण्ड का अस्तित्व नहीं रहेगा। परमधाम की एक

कँकड़ी के ही तेज से यह झूठा ब्रह्माण्ड समाप्त हो जायेगा। ऐसी स्थिति में परात्म की नूरी नजरों के सामने भला यह झूठा (नश्वर) ब्रह्माण्ड कैसे रह सकता है।

देखत है दिल खेल को, लिए अर्स रूह हुज्रत।

फुरमान आया इनों पर, और इलम आया न्यामत॥५३॥

हमारी आत्मा का दिल परमधाम में विद्यमान परात्म का दावा लेकर माया के इस खेल को देख रहा है। इन्हीं आत्माओं के लिये ही कुरआन तथा श्रीमद्भागवत् आदि धर्मग्रन्थ आये तथा तारतम ज्ञान की अनमोल निधि भी अवतरित हुई।

भावार्थ— आत्मा परात्म की प्रतिबिम्ब स्वरूपा है, इसलिये उसके द्वारा परात्म का दावा लेना स्वाभाविक है। आत्मा अपने दिल के माध्यम से जीव पर विराजमान

होकर इस सम्पूर्ण लीला को देख रही है। आत्मा के जाग्रत हो जाने पर उसमें और परात्म में किसी प्रकार का अन्तर (भेद) नहीं रह जाता।

या विध करी जो साहेब ने, हम हुए दोऊ के दरम्यान।

सुध अर्स नासूत की, दोऊ हमको देवें सुभान॥५४॥

धाम धनी ने कुछ इस प्रकार की विचित्र लीला की है कि हमारा सम्बन्ध अब दोनों तनों— आत्मा एवं परात्म— तथा दोनों स्थानों से है। धाम धनी ने हमें इस नश्वर संसार में भी परमधाम के सुख का रसास्वादन कराया है तथा जाग्रत होने पर परमधाम में यहाँ की जागनी लीला के सुखों का अनुभव होगा।

भावार्थ— हमारी परात्म का तन परमधाम में है तथा आत्मा का तन इस नश्वर संसार में है। इस प्रकार हम

दोनों तनों तथा दोनों स्थानों से जुड़े हुए हैं। इस चौपाई के दूसरे चरण का यही अभिप्राय है।

हुकम तन बीच नासूत, हम फरामोस अर्स तन।

नासूत देखें हम नजरोँ, अर्से पोहोंचे ना दृष्ट मन॥५५॥

इस संसार में हमारी आत्मा का तन धनी के हुकम से है और हमारी परात्म का तन परमधाम में है जो फरामोशी में है। हमारी परात्म का तन इस नश्वर जगत के तन को देख रहा है, किन्तु यहाँ के तन का मन और दृष्टि परमधाम तक नहीं पहुँच पाती।

भावार्थ— परात्म का तन अपनी नूरी नजरोँ से अपने नासूती तन या ब्रह्माण्ड को साक्षात् नहीं देख रहा है, बल्कि श्री राज जी के दिल रूपी पर्दे पर देख रहा है। इसी प्रकार इस नश्वर जगत का तन अपने पञ्चभौतिक

नेत्रों की दृष्टि से परमधाम या परात्म को नहीं देख सकता है, बल्कि चितवनि में मात्र आत्म –दृष्टि से ही परमधाम या परात्म को देखा जाता है।

बोले हुक्म दावा ले रूहन, बीच तन नासूत।

ले सब सुध अर्स इलमें, देत दुनी में लज्जत लाहूत॥५६॥

इस संसार के पञ्चभौतिक तन में श्री राज जी का हुक्म ही ब्रह्मसृष्टियों का दावा लेकर बोल रहा है। वह ब्रह्मवाणी से परमधाम की सारी सुध लेकर, संसार में आत्माओं को परमधाम का रसास्वादन कराता है।

भावार्थ- इस चौपाई में यह कहा गया है कि श्री राज जी का हुक्म ही आत्माओं का दावा लेकर बोल रहा है। पुनः यह भी कहा गया है कि वह आत्माओं को परमधाम के सुख का स्वाद भी दे रहा है। ऐसी अवस्था में यह प्रश्न

होता है कि क्या हुक्म और आत्मा दो है?

वस्तुतः हुक्म तो धाम धनी के दिल की इच्छा है, जबकि आत्मा परात्म की प्रतिबिम्ब स्वरूपा है। हुक्म से ही परात्म का प्रतिबिम्बत स्वरूप आत्मा के रूप में प्रकट हुआ है, इसलिये हुक्म को आत्मा का दावा लेने वाला कहा गया है।

परात्म तथा आत्मा के साथ परमधाम, ब्रज, रास, एवं जागनी ब्रह्माण्ड में घटित होने वाली प्रत्येक लीला धनी के हुक्म (आदेश, इच्छा) से ही जुड़ी हुई है। धनी के हुक्म की महिमा को दर्शाने के लिये ही हुक्म का ब्रह्माण्ड, हुक्म का इल्म, हुक्म की रूह (आत्मा), एवं हुक्म की लीला आदि शब्दावली का प्रयोग किया जाता है। चौपाई ५७ एवं ५८ में भी यही स्थिति है।

खिलवत निसबत वाहेदत, जेती अर्स हकीकत।

ए लज्जत हुकम सिर लेवहीं, अर्स रूहें सिर ले हुज्जत॥५७॥

श्री राज जी के हुकम ने परमधाम की आत्माओं का दावा ले रखा है और खिल्वत, निस्बत, तथा वहदत आदि परमधाम की जो भी हकीकत है, उसका रसास्वादन कर रहा है।

भावार्थ- श्री राज जी के मारिफत (परमसत्य) स्वरूप हृदय से ही खिल्वत, निस्बत, वहदत आदि हकीकत का स्वरूप प्रकट रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है। हुकम भी उन्हीं के दिल की इच्छा का स्वरूप है। इस प्रकार सम्पूर्ण लीला दिल से ही जुड़ी हुई है। श्यामा जी सहित सभी सखियाँ निस्बत के ही अन्तर्गत हैं।

यों हुकम नूरजमाल का, अर्स सुख देत रूहों इत।

चुन चुन न्यामत हक की, रूहों हुकम पोहोंचावत॥५८॥

इस प्रकार श्री राज जी का हुकम (आदेश) ही इस संसार में परमधाम की आत्माओं को वहाँ का सुख दे रहा है। वह अक्षरातीत की प्रेम, आनन्द, एकत्व, शोभा, श्रृंगार, और ज्ञान आदि निधियों को चुन - चुनकर आत्माओं तक पहुँचा रहा है।

कई सुख लें हक के खेल में, फेर हुकम पोहोंचावे खिलवत।

कई अनहोनी कर सुख दिए, हुकमें जान हक निसबत॥५९॥

इस संसार में आत्माओं को श्री राज जी के अनेक प्रकार के सुखों का अनुभव उनका हुकम करा रहा है। पुनः उनकी सुरता को मूल मिलावा में भी ले जाता है। धाम धनी से आत्माओं का अखण्ड सम्बन्ध जानकर,

हुक्म अनेक प्रकार की असम्भव बातों को भी सम्भव बना देता है और प्रियतम अक्षरातीत के सुखों का रसपान कराता है।

कई विध के सुख हुकमें, दोऊ तरफों आड़ा पट दे।

अर्स दुनी बीच रूहों को, दिए सुख दोऊ तरफों के॥६०॥

धाम धनी का हुक्म, आत्मा और परात्म के बीच में माया (फरामोशी) का पर्दा डालकर, आत्माओं को अनेक प्रकार के सुखों का अनुभव करा रहा है। उसके द्वारा, संसार में तथा परमधाम में, दोनों तरफ के अनेक प्रकार के सुखों का रसास्वादन आत्माओं को हो रहा है।

भावार्थ- श्री राज जी के दिल रूपी पर्दे पर परात्म माया की लीला देख रही है, जबकि आत्मा इस मायावी जगत् में प्रत्यक्ष सारी लीला को देख रही है। इसी प्रकार हुक्म

के द्वारा आत्मा चितवनि में अपने मूल तन (परात्म) को देखती है तथा परात्म अपने प्रतिबिम्ब के तन को श्री राज जी के दिल रूपी पर्दे पर देखती है। धनी के हुक्म से आत्मा परमधाम के सभी पक्षों, एवं युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार, एवं इश्क, इल्म, वहदत आदि का रस लेती है, तो जाग्रत होने के पश्चात् परात्म इस जागनी लीला के सुख का रसपान करेगी। यही दोनों तरफ का सुख प्राप्त करना है।

जिस प्रकार आत्मा जाग्रत होने पर ही परमधाम के सुख का अनुभव करती है, उसी प्रकार परात्म भी जाग्रत होने पर ही जागनी लीला के वास्तविक सुख का रसपान करेगी, फरामोशी में नहीं।

ए झूठ न आवे अर्स में, ना कछू रहे रूहों नजर।

ताथें दोऊ काम इन विध, हकें किए हिकमत कर॥६१॥

यह झूठा संसार परमधाम में नहीं जा सकता और ब्रह्मसृष्टियों की नूरी नजरों के सामने कुछ ठहर भी नहीं सकता। इस प्रकार धाम धनी ने युक्तिपूर्वक दोनों काम कर दिये, अर्थात् परमधाम में परात्म के तनों को बैठे – बैठे हुकम द्वारा माया का खेल दिखा दिया तथा इस संसार में आत्माओं को बैठे-बैठे सम्पूर्ण परमधाम दिखा दिया।

जेती अरवाहें अर्स की, हक सेहेरग से नजीक तिन।

दे कुंजी अर्स पट खोलिया, हादिएं किए सब रोसन॥६२॥

जो परमधाम की आत्मायें हैं, उनके लिये धाम धनी प्राणनली (शाहरग) से भी अधिक निकट हैं। श्री श्यामा

जी ने तारतम ज्ञान के द्वारा परमधाम का दरवाजा खोल दिया है तथा उसके गुह्य रहस्यों को प्रकाश में ला दिया है।

भावार्थ- श्यामा जी ने अपने पहले जामे में तारतम ज्ञान का संक्षिप्त प्रकाश फैलाया, किन्तु दूसरे जामे में ब्रह्मवाणी के अवतरण से ज्ञान का पूर्ण प्रकाश फैल गया, जिससे परमधाम की अति रहस्यमयी बातें भी स्पष्ट हो गयीं।

इलम लदुन्नी पाए के, अर्स रूहें हुई बेसक।

जगाए खड़े किए अर्स में, बीच खिलवत खासी हक॥६३॥

तारतम ज्ञान के प्रकाश में परमधाम की आत्मायें संशय रहित हो गयी हैं। उन्हें ज्ञान द्वारा जाग्रत होने पर ऐसा लगने लगा है कि हम तो परमधाम के मूल मिलावा में

साक्षात् धाम धनी के सम्मुख ही बैठी हैं।

या तो खड़ी रहे रूह खिलवतें, या तो देवे तवाफ।

हौज जोए या अर्स में, तूं इन विध हो रहे साफ॥६४॥

हे मेरी आत्मा! या तो अब तू मूल मिलावा की शोभा को देख या परमधाम के पच्चीस पक्षों की सातों परिक्रमा में घूमती रह। यदि तू हौजकौसर, यमुना जी, या परमधाम में कहीं भी घूमती रहती है, तो माया से पूर्णतया अलग होकर अपने शुद्ध स्वरूप में रहा करेगी।

भावार्थ- इस चौपाई में खड़े रहने, परिक्रमा देने, या घूमने का तात्पर्य आत्म-दृष्टि द्वारा देखने से है। आत्मा तो सर्वदा शुद्ध है, किन्तु इस चौपाई में साफ रहने का भाव मायावी भावों एवं विकारों से जीव को अलग रखने से है।

पाक पानी से न होइए, ना कोई और उपाए।

होए पाक मदत तौहीद की, हकें लिख भेज्या बनाए॥६५॥

जल द्वारा शरीर को धोने से जीव या आत्मा पवित्र नहीं हो सकती। धाम धनी ने वेद-कतेब के ग्रन्थों में यह बात लिखवा दी है कि यदि स्वलीला अद्वैत परमधाम का प्रेम आ जाये (सहायता मिल जाये), तो हृदय पवित्र हो जाता है। इसके अतिरिक्त निर्मल होने का अन्य कोई भी उपाय नहीं है।

भावार्थ- किसी नदी या कुण्ड आदि के स्नान विशेष से स्वयं को पवित्र समझना बहुत बड़ी भूल है। मनुस्मृति में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जल से मात्र शरीर के बाह्य अंग ही पवित्र होते हैं।

अद्भिः गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति।

विद्या तपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति॥

कबीर जी का यह कथन "बरस्या बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग" भी यही स्पष्ट करता है कि मात्र परब्रह्म के प्रेम द्वारा ही हृदय को निर्मल किया जा सकता है।

फेर फेर हक अंग देखिए, ज्यों याद आवे निसबत।

है अनुभव तो एक अंग का, जो हमेसा वाहेदत॥६६॥

हे मेरी आत्मा! तू अपने प्राणवल्लभ के अंगों की शोभा को बार-बार देख, जिससे तुझे अपने मूल सम्बन्ध की याद आ जाये। धाम धनी के किसी भी अंग की शोभा का अनुभव सभी अंगों की शोभा का अनुभव है, क्योंकि वहाँ सर्वदा एकत्व (एकदिली) की लीला है।

भावार्थ— श्री राज जी के सभी अंगों की शोभा समान है, क्योंकि वहाँ एकदिली है। कोई भी अंग किसी अन्य अंग से कम या अधिक सुन्दर नहीं है। इसलिये, किसी एक

अंग की शोभा का आनन्द मिलने पर सभी अंगों की शोभा का आनन्द प्राप्त हो जाता है।

ताथें तूं चेत रूह अर्स की, ग्रहे अपने हक के अंग।
 रहो रात दिन सोहोबत में, हक खिलवत सेवा संग॥६७॥
 इसलिये, हे मेरी आत्मा! अब तू सावधान हो जा। अपने प्रियतम के अंगों की शोभा को अपने धाम हृदय में बसा। तू चितवनि के द्वारा अपनी आत्म-दृष्टि से मूल मिलावा में पहुँच और दिन-रात उनकी सान्निध्यता (निकटता) में रहकर अपनी प्रेममयी सेवा से रिझा।

जो खावंद अर्स अजीम का, ए हक नूरजमाल।
 आए तले झरोखे झांकत, दीदार को नूरजलाल॥६८॥
 अक्षरातीत श्री राज जी सम्पूर्ण परमधाम के प्रियतम हैं।

अक्षरब्रह्म प्रतिदिन उनका दर्शन करने के लिये चाँदनी चौक में आते हैं तथा तीसरी भूमिका के झरोखों के नीचे खड़े होकर दीदार (दर्शन) करते हैं।

जाके पलथें पैदा फना, कई दुनी जिमी आसमान।

सो आवत दायम दीदार को, ऐसा खावंद नूर-मकान॥६९॥

अक्षर धाम के प्रियतम अक्षरब्रह्म हैं। उनकी महिमा ऐसी है कि उनके पल मात्र में अनेक ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं तथा लय को प्राप्त हो जाते हैं। वे भी श्री राज जी का दर्शन करने के लिये प्रतिदिन चाँदनी चौक में आते हैं।

तिन चाह्या दीदार रुहन का, जो रुहें बीच बड़ी दरगाह।

ए मरातबा मोमिनो, जिन वास्ते हुकम हुआ॥७०॥

ऐसे अक्षरब्रह्म ने भी उन ब्रह्मात्माओं का दर्शन करना

चाहा, जो परमधाम के रंगमहल में रहने वाली हैं।
 ब्रह्मसृष्टियों की महिमा इतनी बड़ी है कि उनका दर्शन
 पाने की आकांक्षा अक्षरब्रह्म के अन्दर भी प्रकट होती है।
 उनकी इच्छा को पूर्ण करने के लिये ही माया के इस
 खेल को बनाने का हुक्म हुआ।

भावार्थ— अक्षरब्रह्म ने परमधाम की प्रेममयी लीला को
 देखने की इच्छा की थी। इधर सखियों ने भी माया की
 लीला देखने की इच्छा की थी। इसलिये ही ब्रज, रास,
 एवं जागनी का ब्रह्माण्ड बनाने का आदेश हुआ।

देख देख मैं देखया, ए सब करत हक हुकम।

ना तो अर्स दिल एता मता लेय के, खिन रहे न बिना कदम॥७१॥

इस सम्पूर्ण लीला को देखकर मेरे हृदय ने यही निर्णय
 लिया कि यह सब कुछ श्री राज जी का हुक्म ही कर रहा

है। अन्यथा, आत्माओं के धाम हृदय में, जब परमधाम की अखण्ड निधियाँ आ जाती हैं, तो ऐसी स्थिति में धनी के चरणों के बिना आत्मा पल भर के लिये भी इस संसार में नहीं रहना चाहेगी।

हकें अर्स लिख्या मेरे दिल को, क्यों रहे रूह सुन सुकन।

एक दम ना रहे बिना कदम, पर रूहों ठौर बैठा हक इजन॥७२॥

धाम धनी ने मेरे दिल को अपना धाम कहा है। मेरी आत्मा इन वचनों को सुनकर इस संसार में भला कैसे रह सकती है। यद्यपि, मेरी आत्मा धनी के चरणों के बिना एक पल भी इस संसार में नहीं रह सकती, किन्तु वह क्या करे। उसकी जगह तो अक्षरातीत का हुक्म ही लीला कर रहा है।

भावार्थ— इस चौपाई के दूसरे चरण में कथित "रूह"

शब्द से तात्पर्य परात्म की प्रतिबिम्ब स्वरूपा आत्मा से है, जो धनी के हुक्म से इस संसार में आयी है। इसलिये उसे भी हुक्म की रूह या सुरता (आत्मा) कहा गया है। परमधाम में तो परात्म एक पल के लिये भी धनी के चरणों के बिना नहीं रह सकती, किन्तु इस संसार में इतने समय तक धनी से दूर रहने का आशय यही है कि श्री राज जी के हुक्म से ही ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हुई है।

हुकम कहे सो हुकमें, अर्स बानी बोले हुकम।

रूहों दिल हुकम क्यों रहे सके, ए तो बैठी तले कदम॥७३॥

मूल स्वरूप श्री राज जी के हुक्म से यह हुक्म का स्वरूप (आत्मा) परमधाम की वाणी बोल रहा है। जो ब्रह्माङ्गनायें मूल मिलावा में धनी के चरणों में बैठी हुई हैं,

उनके दिल में हुक्म का यह स्वरूप कैसे रह सकता है?

भावार्थ- यद्यपि, परमधाम में भी राज जी के हुक्म (इच्छा) से ही सारी लीला होती है। इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी का कथन है-

हकें हुक्म किया वतन में, सो उपजत अंग असल।

खिलवत ५/३७

किन्तु, इस चौपाई में परात्म के दिल में हुक्म के न होने की बात का आशय यह है कि इस खेल में हुक्म का जो स्वरूप (परात्म का प्रतिबिम्बित स्वरूप) धनी से वियोग की स्थिति को भी सहन करता जा रहा है, वैसा परात्म के दिल के लिये सम्भव नहीं है।

खेल तन में हुक्म ना रहे सके, हुज्रत लिए रुहन।

हुक्म हमारे खसम का, क्यों देवे दाग मोमिन॥७४॥

ब्रह्मसृष्टियों का दावा लेकर श्री राज जी का हुक्म इस संसार के तन में नहीं रह सकता है, क्योंकि धाम धनी का हुक्म ही हमारे ऊपर दाग क्यों लगायेगा।

भावार्थ- इस चौपाई में यह बात दर्शायी गयी है कि जब धाम धनी हमारे आशिक हैं, तो उनका ही हुक्म हमारे प्रेम के ऊपर दाग (कलंक) क्यों लगने देगा। किन्तु, हँसी के लिये लीला रूप में यह सब क्यों हो रहा है, इसका स्पष्टीकरण आगे की चौपाई में दिया गया है।

पर हक अर्स लज्जत तो पाइए, बैठे मांग्या खेल में जे।

सो हुकमें मांग्या दे हुकम, हकें करी वास्ते हांसी के॥७५॥

परमधाम में ही ब्रह्मसृष्टियों ने धाम धनी से यह माँगा था कि हमें माया के खेल में भी परमधाम का रसास्वादन चाहिये। इस प्रकार परात्म का प्रतिबिम्ब स्वरूप हुक्म

(आत्मा) ही स्वाद माँग रहा है और मूल स्वरूप का हुक्म ही उसे पूरा कर रहा है। यह सारी लीला तो श्री राज जी ने हँसी के लिये ही की है।

ए बातें होसी सब अर्स में, हंस हंस पड़सी सब।

ए हुकमें करी कई हिकमतें, सब वास्ते हमारे रब॥७६॥

यह सारी बातें परमधाम में होंगी, जिसे सुनकर सभी हँसते-हँसते गिर पड़ेंगी। हमारी इच्छाओं को पूर्ण करने के लिये ही श्री राज जी के हुक्म ने इस प्रकार की अनेक युक्तियाँ कर रखी हैं।

हक मुख हुकमें देख हीं, हुकम देखावे खेल।

हुकम देवे सुख लदुन्नी, हुकम करावे इस्क केलि॥७७॥

श्री राज जी का हुक्म ही हमें यह माया का खेल दिखा

रहा है। इस हुक्म से ही हमें प्रियतम अक्षरातीत के मुखारविन्द की शोभा को देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है। तारतम ज्ञान का सुख भी हुक्म (आदेश) ही देता है और धाम धनी से प्रेम लीला का सम्बन्ध भी स्थापित कर देता है।

भावार्थ- तारतम वाणी से परमधाम के २५ पक्षों तथा श्री राज जी की पूर्ण पहचान एवं उनके हृदय के गुह्यतम भेदों को जानना ही तारतम का सुख है। यह सब श्री राज जी के हुक्म से ही प्राप्त होता है।

हुकमें जोस गलबा करे, हुकमें जोर बढ़े इस्क।

हुकमें इलम रखे सुख को, हुकम प्याले पिलावे माफक॥७८॥

श्री राज जी के हुक्म से ही आत्मा में उनका जोश छा जाता है (शोर करता है)। हुक्म से ही आत्मा में प्रेम का

बल बढ़ता है। हुक्म ही ब्रह्मवाणी के ज्ञान का वास्तविक सुख देता है और वही हमारे आत्मिक सामर्थ्य के अनुकूल प्रेम के प्याले पिलाता है।

भावार्थ- ब्रह्मवाणी का शाब्दिक ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान नहीं है , बल्कि उसमें छिपे हुए परमसत्य (मारिफत) ज्ञान को समझना ही परम उद्देश्य होना चाहिये। इसी में ज्ञान का यथार्थ सुख छिपा हुआ है। यह धाम धनी के हुक्म के बिना सम्भव नहीं है।

जिस आत्मा के जीव के हृदय में जितनी श्रद्धा, समर्पण, निर्विकारिता, एवं कोमलता होती है, उसका आत्मिक बल उतना ही अधिक माना जाता है और उसी अनुपात में उसे प्रेम रस का पान करने का सौभाग्य प्राप्त होता है। निजधाम में सभी आत्माओं का आत्मिक बल समान होता है, किन्तु इस खेल में जीव के सम्बन्ध से उनमें

भेद-दृष्टि की जाती है।

हुकम बेहोस ना करे, हुकम जरा जरा दे लज्जत।

हुकम पनाह करे सब रूहन, हुकमें जानी जात निसबत॥७९॥

श्री राज जी का हुक्म आत्मा को इश्क में बेसुध (बेहोश) नहीं होने देता। वह थोड़ा-थोड़ा करके प्रेम का रसपान कराता रहता है। श्री राज जी का हुक्म सभी आत्माओं को प्रियतम अक्षरातीत की शरण में रखता है। धनी के हुक्म से ही आत्मा को यह पता चल पाता है कि श्री राज जी से उसका मूल सम्बन्ध क्या है।

प्याला हुकम पिलावहीं, करें हुकम रखोपा ताए।

ना तो इन प्याले की बोए से, तबहीं अरवा उड़ जाए॥८०॥

धाम धनी का हुक्म परमधाम की आत्माओं को इश्क के

प्याले पिलाता है और उनके शरीर की रक्षा भी करता है। अन्यथा इश्क के प्याले की सुगन्धि मात्र से आत्मा इस पञ्चभौतिक तन का परित्याग कर देगी।

भावार्थ- माया का जीव परमधाम के इश्क का थोड़ा भी भार सहन नहीं कर सकता। जीव का शरीर वासना से उत्पन्न होता है। वह परमधाम के परम पवित्र प्रेम की सुगन्धि को भी झेल नहीं सकता और विरह में शरीर का परित्याग कर सकता है। धाम धनी का हुक्म ही आत्मा के अधिष्ठान स्वरूप जीव के शरीर की रक्षा करता है।

ए प्याला कबूँ किन ना पिआ, हम रूहें आइयां तीन बेर।

ए प्याले पेहेले तो पिए, जो हम थे बीच अंधेर॥८१॥

परमधाम के पवित्र प्रेम के इस प्याले को आज दिन तक इस सृष्टि में किसी ने भी नहीं पिया है , सिवाय हम

ब्रह्मसृष्टियों के। इस खेल में हम ब्रह्माँगनायें तीन बार आ चुकी हैं— १. ब्रज में, २. रास में, ३. इस जागनी ब्रह्माण्ड में। अब से पहले ब्रज लीला में हमने प्रेम का प्याला अवश्य पिया है, किन्तु पूरी नींद (अज्ञानता) में। रास में भी प्रेम रस का पान किया है, किन्तु आधी नींद और आधी जाग्रति में।

**ए प्याले लिए जाए क्यों जागतेँ, तन तब हीं जाए चिराए।
बोए भी ना सेहे सके, तो प्याला क्यों पिआ जाए॥८२॥**

जाग्रत अवस्था में प्रेम का प्याला नहीं पिया जा सकता, क्योंकि प्रेम की अग्नि से शरीर फट (टुकड़े-टुकड़े हो) सकता है। जब यह पञ्चभौतिक शरीर प्रेम की सुगन्धि को भी सहन नहीं कर सकता, तो उसका प्याला कैसे पिया जा सकता है।

भावार्थ- इस चौपाई में जाग्रत अवस्था का तात्पर्य है— ज्ञान दृष्टि से जाग्रत होना। इश्क का रसपान तो वस्तुतः बेसुधी में ही होता है। ज्ञान द्वारा पूर्ण पहचान होने की अवस्था में यदि प्रेम रस का पान किया जाये, तो यह पञ्चभौतिक तन उसके बोझ को सहन करने में समर्थ नहीं हो सकता।

हुकम जो प्याला देवहीं, सो संजमें संजमें पिलाए।
पूरी मस्ती न हुकम देवहीं, जानें जिन कांच सीसा फूट जाए॥८३॥
 धाम धनी का हुकम आत्माओं को प्रेम का प्याला बहुत धीरे-धीरे पिलाता है। धनी का हुकम कभी भी प्रेम की पूरी मस्ती नहीं देता, क्योंकि उससे यह पञ्चभौतिक शरीर शीशे के दर्पण की भांति टूट सकता है (छूट सकता है)।

ना तो ए प्याला पीय के, ए कच्चा वजूद न रख्या किन।
 पर हुकम राखत जोरावरी, प्याला पिलावे रखे जतन॥८४॥

नहीं तो इस प्रेम के प्याले को पीकर, आज दिन तक कोई भी अपने पञ्चभौतिक तन को सुरक्षित नहीं रख सका है। किन्तु श्री राज जी का हुकम अपनी शक्ति से ब्रह्मसृष्टियों के तन को सुरक्षित रखता है और प्रेम का रसपान भी कराता है।

हुकम मेहेर बारीकियां, ए मैं कहूं बिध किन।
 नजर हमारी एक बिध की, सब बिध सुध ना रुहन॥८५॥

श्री राज जी के हुकम तथा मेहर की बातें बहुत सूक्ष्म हैं। उनका वर्णन मैं किस प्रकार से करूँ। हमारी दृष्टि एक ही प्रकार की है। ब्रह्मसृष्टियों को हर प्रकार की सुध नहीं होती है।

भावार्थ- इस मायावी जगत में परमधाम से अलग हो जाने के कारण आत्माओं की शक्ति सीमित होती है। उनकी ज्ञान-दृष्टि, प्रेम-दृष्टि, दया-दृष्टि आदि की एक सीमा है, जबकि अक्षरातीत की दृष्टि हर प्रकार से अनन्त है। नींद के इस ब्रह्माण्ड में आत्माओं को हर प्रकार की सुध हो पाना सम्भव नहीं है।

हुकम देवे लज्जत, प्याला जेता पिआ जाए।

हर रूहों जतन करें कई बिध, जानें जिन प्याला देवे गिराए॥८६॥

परमधाम के प्रेम का यह प्याला आत्माओं के द्वारा जितना पिया जा सकता है, उतना ही पिलाकर धाम धनी का हुकम उन्हें प्रेम के स्वाद का अनुभव कराता है। श्री राज जी का हुकम प्रेम के प्याले की रक्षा के लिये अनेक प्रकार के यत्न करता है, ताकि कोई प्रेम भरे

प्याले के अमृत रस को गिरा न दे।

भावार्थ— पीने के लिए हाथ में लिये हुए प्याले को गिरा देने का अर्थ है— ब्रह्मवाणी के ज्ञान तथा चितवनि द्वारा अध्यात्म के उस स्तर तक पहुँच जाना, जिसमें प्रियतम का दीदार बहुत निकट रह जाये, फिर भी माया के प्रभाव से विषय-विकारों में फँस जाना और प्रियतम के सुख से वंचित रह जाना। धाम धनी का हुक्म परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों को इस स्थिति में नहीं आने देता।

जिन जेता हजम होवहीं, ज्यों होए नहीं बेहोस।

तब हीं फूटे कुप्पा कांच का, पाव प्याले के जोस॥८७॥

धाम धनी का हुक्म परमधाम की आत्माओं को उतना ही प्रेम का रस पिलाता है, जितना उनका यह शरीर सहन (आत्मसात्) कर सके और वह बेसुध न होए।

सहनशक्ति से अधिक पिला देने पर यह शरीर शीशे के टूटे हुए घड़े के समान नष्ट हो सकता है। प्रेम के चौथाई प्याले के जोश को भी यह शरीर आत्मसात् करने का सामर्थ्य नहीं रखता।

**सही जाए न बोए जिनकी, सो क्यों सकिए मुख लगाए।
सो पैदरपे क्यों पी सके, पर हुक्म करत पनाह।।८८॥**

प्रेम के जिस प्याले की सुगन्धि को (जीव के द्वारा) सहा नहीं जा सकता, उसे भला अपने मुख से कैसे लगाया जा सकता है। इसी प्रकार उसे लगातार प्याले पर प्याले पीया भी नहीं जा सकता, किन्तु धाम धनी का हुक्म आत्माओं को अपनी छत्र छाया में रखकर सब कुछ कराता है अर्थात् प्याले पर प्याले पिलाता रहता है।

भावार्थ— वस्तुतः प्याले में रखी हुई कोई वस्तु ही पी

जाती है, किन्तु बोल-चाल की भाषा में उसे प्याला पीना कहते हैं। इसी प्रकार चौपाई ८७, ८८, ८९ एवं ९० में दिल रूपी प्याले में रखी हुए इश्क को पीने का भाव है, प्याला पीने का नहीं।

ए अंग लगे प्याला जिनके, सब खलड़ी जाए उतर।

ना तो ए प्याला हजम क्यों होवहीं, पर हक राखत पनाह नजर॥८९॥

जिस आत्मा के हृदय तक इस प्रेम भरे प्याले का रस पहुँच जाता है, उसकी सारी खाल (त्वचा) उतर जाती है। अन्यथा, प्रेम से भरे इस प्याले के अमृत रस को कोई भी पचा नहीं सकता, किन्तु धाम धनी की मेहर भरी दृष्टि उस आत्मा को अपनी शरण में रखकर रक्षा करती है।

भावार्थ- "खलड़ी उतर जाना" एक मुहावरा होता है, जिसका अर्थ होता है- बहुत अधिक कष्ट उठाना। इस

प्रेम रूपी प्याले को पीने का अधिकार उसी ब्रह्माँगना को प्राप्त होता है, जिसने अपने लौकिक सुखों की बलि चढ़ा दी होती है तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, आदि दुर्गुणों का परित्याग कर दिया होता है। इस लक्ष्य तक पहुँचने में उसे साधना के मार्ग से गुजरना पड़ता है, जिसमें होने वालों कष्टों को "खलड़ी जाए उतर" के कथन से सम्बोधित किया गया है। इस प्रकार प्रेममयी चितवनि के मार्ग पर चलकर ही निर्विकार अवस्था को प्राप्त हुआ जा सकता है, अन्यथा यह प्रेम-रस आत्मसात् नहीं हो सकता (पच नहीं सकता)।

ए प्याला कोई न पी सके, जुबां लगते मुरदा होए।

पर हक राखत हैं जीव को, ना तो याकी खँच काढ़े खुसबोए॥९०॥

इस संसार का कोई भी प्राणी परमधाम के प्रेम से भरे

इस प्याले को नहीं पी सकता। जिह्वा पर इसका रस आते ही वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। धाम धनी ही अपनी मेहर से आत्मा के जीव को शरीर में बनाये रहते हैं, अन्यथा इसकी सुगन्धि मात्र से जीव शरीर का परित्याग कर देगा।

भावार्थ- इस चौपाई में जिह्वा का तात्पर्य यह स्थूल जिह्वा नहीं है, बल्कि आत्मा की जिह्वा है, जिससे परमधाम के प्रेम-रस का पान किया जाता है।

प्याले पर प्याले पिलावहीं, ताकी निस दिन रहे खुमार।
देवे तवाफ निस दिन, हुकम मेहेर को नहीं सुमार॥९१॥
धाम धनी जिस आत्मा को प्रेम के प्याले पर प्याले पिलाते हैं, वह दिन-रात आनन्द के नशे में रहती है। उसकी दृष्टि दिन-रात परमधाम के पच्चीस पक्षों में

परिक्रमा करती रहती है अर्थात् घूमती रहती है। श्री राज जी के हुक्म (आदेश) और मेहर की महिमा की कोई सीमा नहीं है।

बड़ा अचरज इन हुक्म का, मुरदे राखत जिवाए।

मौत सरबत निस दिन पीवै, सो मुरदे रखे क्यों जाए॥१२॥

धनी के हुक्म की इस लीला पर बहुत आश्चर्य होता है। इस हुक्म ने अपनी शक्ति से मुर्दा जीव को भी इस शरीर में बनाये रखा है। दिन-रात मौत का शर्बत पीने वाले जीव इस शरीर में कैसे हैं? यह बहुत ही अचम्भित करने वाली बात है।

भावार्थ- अपनी मैं (खुदी, अहम्) को मारकर सर्वस्व समर्पण करना ही मौत का शर्बत पीना है। आत्मा के सम्बन्ध एवं ब्रह्मवाणी के ज्ञान के आधार पर ही जीव

ऐसा कर पाता है। इस चौपाई में हुक्म की इस लीला पर आश्चर्य व्यक्त किया गया है कि अपनी मैं (लौकिक अस्तित्व) को मिटाकर भी जीव इस नश्वर शरीर में कैसे बँधा हुआ है।

हुक्म मुरदों बोलावत, और ऐसी देत अकल।

करत नजीकी हक के, मुरदे कहावें अर्स दिल॥९३॥

धाम धनी का हुक्म आत्माओं के अधिष्ठान स्वरूप जीवों से बुलवा रहा है और उन्हें ऐसी जाग्रत बुद्धि दे रहा है कि जीव भी स्वयं को अक्षरातीत की सामीप्यता का अनुभव कर रहे हैं और इनके दिल को धाम कहलाने की शोभा प्राप्त हो रही है।

भावार्थ— आत्मा के साथ "मुर्दा" शब्द का प्रयोग उचित नहीं है। जिस जीव पर आत्मा विराजमान (अधिष्ठित)

होती है, उस जीव को आत्मा का अधिष्ठान कहा जाता है। ऐसा जीव ब्रह्मात्माओं की तरह ही आचरण करने लगता है। आत्मा तो मात्र द्रष्टा है, इसलिये ब्रह्मवाणी के ज्ञान को ग्रहण कर अपनी "मैं" (खुदी) को मारने, दृढ़ विश्वास (ईमान) पर चलने, तथा प्रेम मार्ग का पथिक बनने का प्रयास जीव ही करता है। वह अपने को धनी की अर्धांगिनी मानकर प्रियतम अक्षरातीत को रिझाने भी लगता है। इसी के परिणाम स्वरूप, उसे अक्षरातीत की सामीप्यता का अनुभव होने लगता है और उसे ऐसा आभास होता है, जैसे उसके ही दिल में प्रियतम विराजमान हो गये हैं।

हुकम लाख विधों जतन करे, हर रूहों ऊपर सबन।

हुकम जतन तो जानिए, जो याद आवे अर्स वतन॥९४॥

श्री राज जी का हुक्म परमधाम की सभी आत्माओं को जाग्रत करने के लिये लाखों प्रकार के यत्न (उपाय) करता है। ब्रह्मसृष्टियों को अपने निजघर की याद आना ही हुक्म के द्वारा यत्न करने की पहचान है।

जो पेहेले आप मुरदे हुए, तो दुनियां करी मुरदार।

हक तरफ हुए जीवते, उड़ पोहोंचे नूर के पार॥९५॥

जो ब्रह्ममुनि इस संसार में अपने जीव के मैं (खुदी) के बन्धनों से परे हो जाते हैं, वे सांसारिक दृष्टि से मृतक के समान हो जाते हैं और उनके लिये यह जगत् भी निरर्थक प्रतीत होता है। ऐसा करने वाले अक्षर ब्रह्म से भी परे अक्षरातीत के चरणों में अपने प्रेम के बल से पहुँच जाते हैं।

भावार्थ— जिस प्रकार किसी निर्जीव वस्तु को अपवित्र

मानकर छोड़ दिया जाता है, उसी प्रकार इस चौपाई में संसार को "मुरदार" कहा गया है। संसार के जीव इसी में डूबे रहते हैं, जबकि परमधाम की आत्मायें इसका मोह छोड़ देती हैं और अपने प्राणवल्लभ के ध्यान में डूबी रहती हैं।

दुनियां इस्क न ईमान, क्यों उड़या जाए बिना पर।

तो दुनी कही जिमी नासूती, रूहें आसमानी जानवर॥१६॥

संसार के जीवों के पास न तो इश्क है और न ईमान। इश्क और ईमान के पँख न होने से वे परमधाम की उड़ान कैसे भर सकते हैं। यही कारण है कि कुरआन-हदीसों में संसार के जीवों को मृत्युलोक में रहने वाला कहा गया है तथा परमधाम की आत्माओं को आकाश में उड़ने वाला कहा गया है।

ए दुनियां जो खेल की, छोड़ सुरिया आगे ना चलत।
 सो कायम फना क्या जानहीं, जाकी पैदास कही जुलमत॥१७॥

इस मायावी दुनिया के जीव सुरिया (ज्योति स्वरूप) को छोड़कर आगे नहीं चल पाते हैं। मोह सागर से पैदा होने वाली यह जीव सृष्टि भला अखण्ड परमधाम और नश्वर जगत के भेद को क्या जान सकती है।

महामत कहे ए मोमिनों, बका हासिल अर्स रूहन।
 कहा दिल जिनों का अर्स बका, ए मोमिन असल अर्स में तन॥१८॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! आपको तो अखण्ड परमधाम का ज्ञान प्राप्त है ही। जिन आत्माओं के दिल को अक्षरातीत का अखण्ड परमधाम कहा जाता है, उनके मूल तन परमधाम में ही विराजमान हैं।

प्रकरण ॥२४॥ चौपाई ॥१८५०॥

मोमिनों की सरियत, हकीकत, मारफत, इस्क रब्द का प्रकरण

इस प्रकरण में यह बात दर्शायी गयी है कि परमधाम हकीकत एवं मारिफत का स्वरूप क्या है तथा ब्रह्मसृष्टियों की शरियत (कर्मकाण्ड), हकीकत (ज्ञान), और मारिफत (परमसत्य) की बन्दगी (भक्ति) क्या है। इसके अतिरिक्त इश्क-रब्द के सम्बन्ध में भी प्रकाश डाला गया है।

इस्क रब्द खिलवत में, हुआ हक हादी रूहों सों।

सबों ज्यादा इस्क कहा अपना, तो तिलसम देखाया रूहों कों॥१॥

परमधाम के मूल मिलावा में श्री राज जी, श्यामा जी, एवं सखियों के बीच में इश्क रब्द (प्रेम विवाद) हुआ। सबका यही कहना था कि केवल हमारा इश्क बड़ा है।

इसलिए इसका निर्णय करने के लिए धाम धनी ने ये झूठा खेल दिखाया।

भावार्थ- इश्क रब्द की शुरुआत तीसरी भोम की पड़साल से होती है और समापन मूल मिलावा में होता है। श्री राज जी का कहना है कि आशिक मैं हूँ। श्यामा जी का कथन है कि केवल मैं ही आशिक हूँ, मेरा प्रेम बड़ा है। सखियों का यह कहना है कि हम सभी युगल स्वरूप की आशिक हैं और हमारा प्रेम बड़ा है।

तिन फरेब में रल गैयां, जित पाइए ना इस्क हक।

कहें हक मोहे तब पाओगे, जब ल्योगे मेरा इस्क॥२॥

ब्रह्मसृष्टियाँ इस माया के प्रपञ्च में इस प्रकार घुल-मिल गयी हैं, जिसमें कहीं भी अक्षरातीत का प्रेम नहीं है। धाम धनी ने मूल मिलावा में ही कह दिया था कि मुझे एकमात्र

प्रेम से ही तुम पा सकती हो।

यों हकें छिपाइयां खेल में, दे इलम करी खबरदार।

रब्द किया याही वास्ते, ल्याओ प्यार करो दीदार॥३॥

इस प्रकार धाम धनी ने माया के खेल में स्वयं को आत्माओं से छिपा लिया है और तारतम वाणी का ज्ञान देकर सबको जागनी के प्रति सावचेत भी कर दिया है कि मेरी आत्माओं! जिस प्रेम के सम्बन्ध में तुमने मुझसे रब्द किया था कि मेरा प्रेम बड़ा है, वह प्रेम लाओ और मेरा दीदार करो।

मोमिन हक को जानत, नजीक बैठे हैं इत।

हक कदम हमारे हाथ में, पर हम नजरों ना देखत॥४॥

ब्रह्मसृष्टियों को ऐसा मालूम है कि हम मूल मिलावा में

धनी के बिल्कुल पास बैठी हैं। यद्यपि धनी के चरण कमल तो बिल्कुल हमारे हाथों में ही हैं, लेकिन हम अपने प्रियतम को देख नहीं पा रही हैं।

भावार्थ- हाथों में चरण कमल के होने का कथन आलंकारिक है। इसका भाव यह है कि श्री राज जी का स्वरूप सखियों के अति समीप है। यहाँ चरणों का तात्पर्य सम्पूर्ण स्वरूप से है, किसी अंग विशेष से नहीं।

ए तेहेकीक किया हक इलमें, इनमें जरा न सक।

यों नजीक जान पेहेचान के, हम बोलत ना साथ हक॥५॥

धाम धनी की ब्रह्मवाणी ने यह निश्चित कर दिया है कि इसमें किसी भी तरह का शक-संशय नहीं है। इस प्रकार हम धाम धनी को इतना नजदीक पाकर भी उनसे बोल नहीं पा रही हैं।

ए फरामोसी फरेबी, हम जान के भूलत।

हक छिपे हमसों हांसीय को, हाए हाए ए भूल दिल में भी न आवत॥६॥

यद्यपि धाम धनी ने हमें परमधाम में ही इस मायावी प्रपञ्च के विषय में सब कुछ बता दिया था, फिर भी हम सुन्दरसाथ जान-बूझकर इस बात को भुला रहे हैं (अनदेखी कर रहे हैं)। हमसे हँसी करने के लिये धाम धनी हमसे छिप गये हैं। हाय! हाय! यह कितने आश्चर्य की बात है कि अपनी भूलों को हम अपने दिल में याद भी नहीं कर रहे हैं।

भावार्थ- धाम धनी हमें इसलिये दिखायी नहीं पड़ रहे हैं, क्योंकि हमारी दृष्टि केवल माया को ही देख रही है। संसार से दृष्टि हटाकर जब हम प्रियतम को देखने की ओर कदम बढ़ायेंगे, तभी तो वह दिखायी पड़ेंगे। वैसे तो वह हमारे धाम हृदय में विराजमान हैं ही, किन्तु उन्हें

देखने के लिये अपने और धनी के बीच माया के इस पर्दे को हटाना ही होगा।

बैठे मासूक जाहेर, पर दिल ना लगे इत।

मासूक मुख देखन को, हाए हाए नैना भी ना तरसत॥७॥

मूल मिलावा में श्री राज जी साक्षात् बैठे हैं, किन्तु उनकी शोभा को देखने में दिल नहीं लग पा रहा है। हाय! हाय! अपने प्राणवल्लभ के मुखारविन्द को देखने के लिये हमारे नेत्र अब तरसते भी नहीं हैं, अर्थात् दर्शन की तीव्र लालसा हमारे अन्दर नहीं है।

सुनने कान ना दौड़त, मासूक मुख की बात।

इस्क न जानों कहां गया, जो था मासूक सों दिन रात॥८॥

माया के प्रभाव से ऐसा हो गया है कि अब हमारी आत्मा

के कानों में प्रियतम के मुखारविन्द की अमृतमयी वाणी सुनने की उत्कण्ठा ही नहीं रह गयी है। श्री राज जी के प्रति रात-दिन हमारे हृदय में जो अखण्ड प्रेम रहा करता था, पता नहीं वह कहाँ चला गया है।

रूह अंग ना दौड़े मिलन को, ऐसा अर्स खावंद मासूक।

मेहेबूब जुदागी जान के, अंग होत नहीं टूक टूक॥९॥

परमधाम के स्वामी श्री राज जी सभी आत्माओं के माशूक हैं, फिर भी हमारी आत्मा के अंग उनसे मिलने के लिये दौड़ते नहीं हैं अर्थात् अब हमारे अंगों में मिलन की तड़प नहीं है। अपने प्रियतम से वियोग की बातें जानकर भी हमारे अंग टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो जाते।

जो याद आवे ए कदम की, तो तबहीं जावे उड़ देह।

कोई बन्ध पड़या फरेब का, आवे जरा न याद सनेह॥१०॥

यदि धाम धनी के नूरी चरणों की सच्ची याद आ जाये,
तो विरह में उसी क्षण यह शरीर छूट जायेगा। हमारे और
धनी के बीच में माया का यह झूठा बन्धन आ गया है,
जिसके कारण प्रियतम के प्रेम की अब जरा सी भी याद
नहीं आ रही है।

इस्क हमारा कहां गया, जो दिल बीच था असल।

तिन दिलें सहूर क्यों छोड़िया, जो विरहा न सेहेता एक पल॥११॥

परमधाम में हमारे दिल में धाम धनी के प्रति जो
अखण्ड प्रेम था, वह कहाँ चला गया? परमधाम में तो
एक पल के लिये भी हमारा दिल श्री राज जी का विरह
नहीं सहन कर सकता था। अब तो हमारे दिल ने

प्रेमपूर्वक प्रियतम का चिन्तन करना भी छोड़ दिया है।

भावार्थ- "अर्स तन दिल में ए दिल , दिल अन्तर पट कछु नाहें" (सिनगार ११/७९) के कथनानुसार आत्मा का दिल परात्म के दिल से जुड़ा हुआ है और उसका प्रतिबिम्बित रूप है। जाग्रत हो जाने पर आत्मा के दिल और परात्म के दिल में कोई भी अन्तर नहीं रह जाता।

परात्म का दिल श्री राज जी के दिल रूपी पर्दे पर माया की लीला देखने में संलग्न है , जिसके कारण वह धाम धनी से प्रेम नहीं कर पाता।

इसी प्रकार आत्मा का दिल भी इस संसार में माया के खेल को देखने में लगा हुआ है , जिसके कारण वह भी धनी से प्रेम नहीं कर पाता।

इस चौपाई में दोनों दिलों को प्रेम लीला से दूर हो जाने वाला कहा गया है। ज्ञान से जाग्रत होने पर प्रेम करने की

भावना पनपती है, जबकि परात्म या आत्मा जाग्रत अवस्था में ही धनी से वास्तविक प्रेम कर पाती हैं।

जो दिल से ए सहूर करें, तो क्यों रहें मिले बिगर।

अर्स बेसकी सुन के, अजूं क्यों रहें नींद पकर॥१२॥

यदि सुन्दरसाथ दिल से इस बात का चिन्तन करें, तो धाम धनी से मिले बिना इस झूठे संसार में नहीं रह सकते। यह बहुत ही आश्चर्य की बात है कि परमधाम की आत्मायें ब्रह्मवाणी के ज्ञान से पूर्णतया संशयरहित हो चुकी हैं, फिर भी वे अभी माया को पकड़े बैठी हैं (लिप्त हुई बैठी हैं)।

बातें सबे सुपन की, करें जागे पीछे सब कोए।

पर जागे की बातें सबे, सुपने में कबूं न होए॥१३॥

स्वप्न की बातें तो जाग्रत होने पर सभी करते हैं, किन्तु जाग्रत अवस्था की बातें स्वप्न में कभी नहीं होतीं अर्थात् इस स्वप्नमयी ब्रह्माण्ड में आज दिन तक किसी ने भी अखण्ड परमधाम की बातें नहीं की हैं।

सो जरे जरे जाग्रत की, सब बातें होत बेसक।

नींद रहेत अचरज सों, आए दिल में अर्स मुतलक॥१४॥

अब धाम धनी की मेहर से परमधाम के ज़र्रे-ज़र्रे का वर्णन हो रहा है, जिससे अब किसी प्रकार का संशय नहीं रह गया है। यह बहुत ही आश्चर्य की बात है कि निद्रा की अवस्था में भी मेरे धाम हृदय में सम्पूर्ण परमधाम की शोभा विराजमान हो गयी है।

भावार्थ- यद्यपि ज़र्रे-ज़र्रे का अर्थ एक-एक कण होता है, किन्तु इस चौपाई में ज़र्रे-ज़र्रे का तात्पर्य परमधाम

के सभी पक्षों के अति विस्तृत वर्णन से है। यद्यपि आत्मा के धाम हृदय में युगल स्वरूप तथा परमधाम की शोभा के विराजमान हो जाने पर उसे जाग्रत ही माना जाता है, किन्तु जीव के स्वभाव में आत्मा जैसी स्थिति नहीं आ पाती। इसलिये, इस चौपाई के तीसरे चरण में "नींद" शब्द का प्रयोग किया गया है।

सो कराई मासूकें हमपे, सब अर्स बातें सुपने।

सब गुजरी जो हक हादी रूहों, सो सब करत हम आप में॥१५॥

श्री राज जी ने परमधाम का सम्पूर्ण वर्णन मुझसे इस स्वप्न के ब्रह्माण्ड में ही कराया है। श्री राजश्यामा जी और सखियों के बीच में जो बातें हुई थीं, वह सब मैं सुन्दरसाथ के बीच में (आप में) वर्णन कर रही हूँ। इस प्रकार मैं जाग्रत परमधाम का वर्णन स्वप्न के ब्रह्माण्ड में

कर रही हूँ।

हुआ जाती सुमरन जिनको, अर्स अजीम जैसा सुख।

निसबत बका नूरजमाल, अजूं क्यों पकड़ रहें देह दुख॥१६॥

जिन आत्माओं को चितवनि द्वारा व्यक्तिगत रूप से परमधाम की तरह ही आत्मिक सुखों का अनुभव होने लगे तथा धनी से अपने अखण्ड सम्बन्ध की भी पहचान हो जाये, अर्थात् उन्हें मूल मिलावा में विराजमान अपनी परात्म का भी साक्षात्कार हो जाये, और इस उच्च स्थिति में भी यदि वे लौकिक सुखों में फँसे रहते हैं तो यह बहुत ही आश्चर्य की बात है।

ज्यों जाहेर खड़े देखिए, त्यों देखिए इन इलम।

यों लाड़ लज्जत सुख देवहीं, बैठाए अपने तले कदम॥१७॥

जिस प्रकार आप ध्यान द्वारा परमधाम को प्रत्यक्ष देख रहे हैं, उसी प्रकार इस ब्रह्मवाणी में भी वैसा ही देख सकते हैं। इस प्रकार धाम धनी दोनों (आत्मा-परात्म के) तनों को अपने चरणों में बैठाकर प्रेम के रसास्वादन का सुख दे रहे हैं।

भावार्थ- इस चौपाई के पहले चरण में ध्यान द्वारा ही देखने का प्रसंग है, परात्म द्वारा नहीं, क्योंकि वह तो फरामोशी में सुरता आने के कारण अपने सामने विराजमान युगल स्वरूप को भी नहीं देख पा रही है। इस चरण में "खड़े देखिए" का भाव ध्यानावस्था में जाग्रत होकर देखने से है।

सुपन त्यों का त्यों खड़ा, लिए नींद वजूद।

अर्स मता सब देख्या बका, देह झूठी इन नाबूद॥१८॥

ब्रह्मात्माओं ने इन पञ्चभूतात्मक नश्वर तनों में विद्यमान होकर अखण्ड परमधाम की सभी निधियों का रसास्वादन किया है। फिर भी उनके तनों में अभी माया की नींद का प्रभाव है तथा स्वप्न का यह ब्रह्माण्ड जैसा का तैसा खड़ा है।

भावार्थ— यह स्थूल पञ्चभूतात्मक तन वस्तुतः जीव का है, आत्मा का नहीं। आत्मा का तन तो हूबहू परात्म का ही प्रतिबिम्बित रूप है जो अति सूक्ष्म होने से आँखों से, सूक्ष्मदर्शी से, या अन्य किसी भी साधन से नहीं देखा जा सकता। उसका अनुभव मात्र धाम धनी की कृपा से चितवनि में ही उस समय होता है, जब परात्म तथा श्री राज जी का साक्षात्कार होता है।

जीव के ऊपर आत्मा के विराजमान होने से जीव के तन को ही मोटे रूप में आत्मा का तन कह दिया जाता

है। आत्म-जाग्रति की अवस्था में जीव में फरामोशी जैसी स्थिति बनी रहती है, क्योंकि उसके सभी अंग माया के होते हैं। वह आत्मा के जाग्रत होने पर भी पूर्ण रूप से सर्वज्ञ, पूर्ण जाग्रत, और निर्विकार नहीं हो पाता। यही कारण है कि जीव के तन में नींद का अस्तित्व माना गया है।

जब सुपन से जागिए, तब नींद सबे उड़ जात।

सो जागे में सक ना रही, करें मांहों-मांहें सुपन बात॥१९॥

जब हम स्वप्न से जागते हैं, तब सम्पूर्ण नींद उड़ी हुई होती है। दूसरे शब्दों में, यह भी कहा जा सकता है कि नींद के उड़ जाने पर स्वप्न नहीं रहता। ब्रह्मवाणी द्वारा जाग्रत होने पर अब किसी प्रकार का संशय नहीं रह गया है। सभी आत्मायें आपस में इस स्वप्न के ब्रह्माण्ड में

होने वाली इस जागनी लीला के सम्बन्ध में बातें कर रही हैं।

ऐसा किया हकें सुपन में, जानों जागे में सक नाहें।

ऐसी हुई दिल रोसनी, फेर बोलत सुपनें मांहें॥२०॥

धाम धनी ने ऐसी विचित्र लीला की है कि हमारे जाग्रत होने में अब किसी प्रकार का संशय नहीं रह गया है। हमारे दिल में ब्रह्मवाणी के ज्ञान का प्रकाश जगमगा रहा है, फिर भी हम स्वप्न के ही ब्रह्माण्ड में बोल रहे हैं।

जानों सुपने नींद उड़ गई, मुरदे हुए वजूद।

हकें हक अर्स देखाइया, सुपन हुआ नाबूद॥२१॥

ऐसा प्रतीत होता है कि स्वप्न के इस ब्रह्माण्ड में हमारी मायाजनित नींद उड़ गयी है और हमारे शरीर मृतक हो

चुके हैं। धाम धनी ने हमें अपना निज स्वरूप और परमधाम दिखा दिया है। हमारे लिये यह स्वप्न का ब्रह्माण्ड अब झूठा लगने लगा है।

भावार्थ— मायाजनित नींद का तात्पर्य है— स्वयं को व निज घर को भूले रहना। इसी प्रकार शरीर को मृतक मानने का भाव है— शरीर के मोह जल से परे हो जाना। जब श्री राज जी एवं परमधाम का साक्षात्कार हो जाता है, तो यह सारा संसार झूठा लगने लगता है।

फेर सुपन तरफ जो देखिए, तो मुरदे खड़े बोलत।

बातें करें अकल में, ऐसा हुकमें देख्या खेल इत॥२२॥

पुनः जब हम स्वप्न के इस ब्रह्माण्ड की ओर देखते हैं, तो हमारे ये पञ्चभूतात्मक नश्वर तन बोलते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। इनकी बातें भी जाग्रत बुद्धि से भरपूर होती हैं।

श्री राज जी के हुक्म ने हमें इस संसार में इस प्रकार का बहुत विचित्र खेल दिखाया है।

कबूं कोई न बोलिया, बका बातें हक मारफत।

दे मुरदों को इलम अपना, सो बातें हुकम बोलावत॥२३॥

आज दिन तक इस सृष्टि में किसी ने भी अखण्ड परमधाम तथा श्री राज जी के दिल में छिपी हुई मारिफत (परमसत्य) की बातों को कहा नहीं था। अब धाम धनी का हुक्म उन बातों को तारतम वाणी का ज्ञान देकर इन नश्वर तनों से कहलवा रहा है।

हुए वजूद नींद के अर्स में, सो नींद दई उड़ाए।

दे जाग्रत बातें दिल में, दिल अरसै किया बनाए॥२४॥

परमधाम में परात्म के तनों में नींद का प्रभाव है। उनके

प्रतिबिम्ब स्वरूप आत्मा के तनों के माया में होने के कारण ही ऐसा हो रहा है। धाम धनी ने इन आत्माओं को जाग्रत बुद्धि का ज्ञान देकर जाग्रत कर दिया है और उनके दिल को धाम की शोभा दे दी है।

भावार्थ- यदि सुरता या परात्म की प्रतिबिम्ब स्वरूपा आत्मा अपने मूल तन परात्म को प्राप्त हो जाये, तो उसकी फरामोशी (नींद) समाप्त हो जायेगी। परात्म में वहदत होने के कारण उनकी नींद एक ही साथ समाप्त होगी। जाग्रत बुद्धि के ज्ञान के अनुसार आत्माओं की जागनी आगे-पीछे हो रही है।

असल मुरदा वजूद, भी हक इलमें दिया मार।

जगाए दिए बीच अर्स के, बातें मुरदा करे समार॥२५॥

परात्म का तन फरामोशी के कारण मुर्दे की तरह प्रतीत

हो रहा है। उसका प्रतिबिम्बित स्वरूप आत्मा का तन है। इस मायावी जगत् में उसकी क्रियाशीलता को ब्रह्मवाणी के ज्ञान ने समाप्त करके मुर्दे के समान कर दिया है। अब तारतम ज्ञान से जाग्रत होकर आत्मा का तन अपने मूल तन को परमधाम में विराजित हुए प्रत्यक्षतः अनुभव कर रहा है और निजधाम के विषय में तरह-तरह की बातें कर रहा है।

भावार्थ— जब हृदय में ब्रह्मवाणी के अलौकिक ज्ञान का प्रकाश प्रकट हो जाता है, तो जीव अपनी मैं खुदी का परित्याग कर देता है। इसे ही मुर्दा होना कहते हैं। इस अवस्था में आने के पश्चात् ही परमधाम या धाम धनी के साक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त हो पाता है। इस सम्बन्ध में श्रृंगार २४/९५ का कथन है—

जो पेहेले आप मुरदे हुए, तो दुनियां करी मुरदार।
हक तरफ हुए जीवते, उड़ पोहोंचे नूर के पार॥

यों कई बातें हांसीय को, मासूक करत हम पर।
वास्ते रब्द इस्क के, ए हकें बनाई यों कर॥२६॥

इस प्रकार हँसी की बहुत सी बातें है, जो धाम धनी
हमारे साथ करते हैं। इश्क रब्द के ब्योरे के लिये ही धाम
धनी ने इस प्रकार की हमारी स्थिति कर रखी है।

अब जो हिंमत हक देवहीं, तो उठ मिलिए हक सों धाए।
सब रूहें हक सहूर करें, तो जामें तबहीं देवें उड़ाए॥२७॥
हे साथ जी! अब जो धाम धनी आपको साहस दें, तो
उठकर दौड़ते हुए धाम धनी से मिलिये। यदि सभी

आत्मायें इस बात का चिन्तन करें, तो विरह में उनके तन उसी समय छूट सकते हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में उठकर दौड़ने का तात्पर्य है, ईमान (अटूट आस्था) के साथ प्रेम की दौड़ लगाना। धाम धनी का हुक्म गहन चिन्तन के बाद भी शरीर नहीं छूटने देता।

सहूर बिना ए रेहेत है, तेहेकीक जानियो एह।

ए भी हुकम हक बोलावत, हक सहूरें आवत सनेह॥२८॥

इस बात को निश्चित रूप से सत्य जानिये कि प्रियतम के मिलन के सम्बन्ध में गहन चिन्तन न होने के कारण ही यह शरीर सुरक्षित बना हुआ है। यह बात भी श्री राज जी का हुक्म ही कहलवा रहा है कि प्रियतम अक्षरातीत के चिन्तन से ही प्रेम आता है।

सनेह आए झूठ ना रहे, जो पकड़ बैठे हैं हम।

ए झूठ नजरोँ तब क्यों रहे, जब याद आवें सनेह खसम॥२९॥

हमने जिस मायावी जगत को पकड़ रखा है, दिल में प्रियतम का प्रेम आ जाने पर इस संसार से आसक्ति समाप्त हो जाती है। जब प्रियतम के प्रेम की याद आती है, तो आत्माओं की दृष्टि में यह झूठा संसार कैसे रह सकता है।

हकें इलम भेज्या याही वास्ते, देने हक अर्स लज्जत।

सो मांगी लज्जत सब देय के, आखिर उठावसी दे हिंमत॥३०॥

श्री राज जी ने अपना तथा परमधाम का रसास्वादन कराने के लिये ब्रह्मवाणी का यह ज्ञान भेजा है। ब्रह्मसृष्टियों ने परमधाम में जो लज्जत माँगी थी (रसास्वादन माँगा था), उसे पूरा करके धाम धनी हमें

साहस (हिम्मत) देकर जाग्रत करेंगे।

भावार्थ- लज्जत माँगने के सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी में कहा है-

रूहों लज्जत मांगी हक पे, अर्स की दुनियां मांहे।

तो इलम दिया सबों अपना, बिना इलम लज्जत नांहे॥

सिनगार २८/२३

जो हक न देवे हिंमत, तो पूरा होए न हांसी सुख।

जो रूह भाग जाए आखिर लग, हांसी होए न बिना सनमुख॥३१॥

यदि धाम धनी हिम्मत (साहस) न दें, तो हँसी का पूर्ण सुख प्राप्त नहीं हो सकता। जो आत्मायें आखिर तक धनी के चरणों से भागती रहीं अर्थात् दूर ही रहीं, उनकी हँसी (प्रेममयी) इसलिये नहीं हो सकेगी क्योंकि वे जागनी लीला में धनी के सम्मुख ही नहीं हो सकी थीं (जाग्रत

नहीं हो सकी थीं)।

भावार्थ— इस चौपाई में यह बात दर्शायी गयी है कि जो आत्मायें इस माया के खेल में नींद में पूर्ण रूप से सोई ही रहें, उनकी हँसी नहीं हो सकेगी, क्योंकि वे तो जाग्रत होने की परीक्षा में सम्मिलित ही नहीं हुईं। जो आत्मायें ब्रह्मवाणी के ज्ञान से जाग्रत हो गयीं और परमधाम की अनुभूति के साथ ज्ञान की चर्चा करती रहें, उनके साथ ही इस हँसी के सुख की लीला होगी। यह बात इसी प्रकरण की चौपाई २५ एवं २६ में कही गयी है।

यहाँ यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि यहाँ हँसी की जिस लीला का वर्णन है, वह गुनाहों के कारण होने वाली हँसी की लीला से भिन्न है। उसके लिये तो श्री महामति जी ने स्पष्ट कह दिया है—

और हांसी सब सोहेली, पर ए हांसी सही न जाए।

सिनगार २३/२७

ए हांसी सत वतन की, कोई मोमिन करावे जिन।

सनंध १२/१५

सम्मुख होने का तात्पर्य है— चितवनि द्वारा आत्म-दृष्टि से सम्मुख होना।

हक हिंमत देसी तेहेकीक, हांसी होए ना हिंमत बिन।

ए गुझ बातें तब जानिए, हक सहूर आवे हादी रूहन॥३२॥

निश्चित रूप से श्री राज जी ब्रह्मात्माओं को जाग्रत होने के लिये हिम्मत (साहस) देंगे, क्योंकि बिना हिम्मत के आत्मा जाग्रत नहीं होगी और उसके साथ प्रेममयी हँसी की लीला नहीं हो सकती। परमधाम की इन गुह्य बातों की जानकारी तब होती है, जब हमारा हृदय मूल मिलावा

में विराजमान श्री राजश्यामा जी तथा सखियों के परात्म स्वरूप का चिन्तन करता है।

ए बारीक बातें मारफत की, तिन बारीक का बातन।

ए बातें होए हक हिंमतेँ, हक सहूर करें मोमिन॥३३॥

परमधाम की मारिफत (परमसत्य) की ये अति सूक्ष्म बातें हैं। इन सूक्ष्म बातों का गुह्य स्वरूप श्री राज जी के दिल में विद्यमान है। धाम धनी द्वारा दी हुई हिम्मत से ही आत्मायें जब अपने प्रियतम का चिन्तन करती हैं, तो परमधाम की इन गुह्य बातों का पता चलता है।

हिंमत तो भी हुकम, रूह हुज्रत सो भी हुकम।

तन हुकम सो भी हुकम, सब हुकम तले कदम॥३४॥

धाम धनी के हुकम से ही आत्मा में हिम्मत आती है

और वह परमधाम की होने का दावा करती है। हुक्म रूपी सुरता का यह तन भी श्री राज जी के हुक्म से ही है। धनी के चरणों तले सभी सखियाँ उनके हुक्म से ही बैठी हुई हैं।

इलम इस्क तो भी हुक्म, सहूर समझ सो हुक्म।

जोस होस सो भी हुक्म, आद अंत हुक्म तले हम॥३५॥

जब आत्मा में परमधाम का प्रेम और ब्राह्मी ज्ञान (इश्क-इल्म) आता है, तो वह धाम धनी के हुक्म से ही आता है। इसी प्रकार, परमधाम का चिन्तन करने एवं गुह्य बातों को समझने का सामर्थ्य भी धनी के हुक्म से प्राप्त होती है। श्री राज जी का जोश और होश (आत्म-जाग्रति) भी उनके हुक्म से प्राप्त होता है। हम सभी आत्माओं ने ब्रज लीला (आदि) से लेकर इस जागनी

ब्रह्माण्ड तक प्रियतम के हुक्म (आदेश) की छत्रछाया में ही सारी लीला की है।

बातें हकसों अर्स में, जो करते थे प्यार।

सो निसबत कछूए ना रही, ना दिल चाहे दीदार॥३६॥

परमधाम में हम आत्मायें जो बहुत प्रेम से अपने प्रियतम से बातें करती थीं, उस मूल सम्बन्ध को हमने पूर्णतया भुला दिया है। अब तो माया के प्रभाव से ऐसा हो गया है कि हमारे इस रूखे दिलों में प्रियतम के दीदार की इच्छा ही नहीं होती।

ना तो बैठे हैं ठौर इतहीं, इतहीं किया रब्द।

पर ऐसा फरेब देखाइया, जो पोहोंचे ना हमारा सब्द॥३७॥

अन्यथा, हम सभी आत्मायें तो मूल मिलावा में ही बैठी

हुई हैं। इसी परमधाम में धाम धनी से हमारा इश्क रब्द हुआ था। किन्तु, यह बहुत आश्चर्य की बात है कि प्रियतम ने हमें माया का यह ऐसा प्रपञ्चमयी खेल दिखाया है, जिसमें फँसी हुई हम आत्माओं की आवाज परमधाम तक नहीं पहुँच पाती है।

भावार्थ— यद्यपि आत्मा के धाम हृदय में धनी के विराजमान होने से हमारे हृदय की प्रत्येक आवाज श्री राज जी तक पहुँच ही जाती है, किन्तु इस चौपाई में परमधाम तक न पहुँचने की बात माया की नींद की प्रबलता को दर्शाने के लिये है। ज्ञान द्वारा आत्म-जाग्रति से पहले हमें यह बोध ही नहीं होता कि धाम धनी हमारी प्राण नली से भी अति निकट है। यह कथन उस अवस्था के विषय में ही है कि हमारी आवाज परमधाम तक नहीं पहुँच पाती।

इतथें कोई उठी नहीं, बैठा मिलावा मिल।

बेर साइत एक ना हुई, यों इलमें बेसक किए दिल॥३८॥

मूल मिलावा में सभी सखियाँ धनी के सम्मुख बैठी हुई हैं। इनमें से कोई भी अकेले उठ नहीं सकती। वहाँ तो अभी तक एक पल भी नहीं बीता है, जबकि इस संसार में ब्रज-रास के बीतने पर अब जागनी लीला चल रही है। इस प्रकार तारतम ज्ञान ने हमारे दिल को पूर्णतया संशयरहित कर दिया है।

इस्क मिलावा और है, और मिलावा मारफत।

इलमें लई कई लज्जतें, इस्क गरक वाहेदत॥३९॥

इश्क (प्रेम) द्वारा प्रियतम से मिलन की स्थिति कुछ और होती है तथा परमसत्य ज्ञान (मारिफत के इल्म) से प्रियतम की पहचान की स्थिति कुछ और होती है। इल्म

द्वारा अनेक प्रकार के रसों का स्वाद लिया जाता है, जबकि इश्क आत्मा को परमधाम की एकदिली (एकत्व) के आनन्द में डुबो देता है।

भावार्थ- मारिफत के इल्म द्वारा परमधाम की निस्बत, वहदत, खिल्वत, शोभा, श्रृंगार, तथा श्री राज जी के दिल के गुह्य रहस्यों का बोध होता है। इसे ही कई प्रकार का स्वाद लेना कहते हैं। प्रेम द्वारा तो आत्मा स्वलीला अद्वैत के सौन्दर्य सागर में इस प्रकार डूब जाती है कि उससे निकल पाना उसके लिये सम्भव ही नहीं होता।

ताथें बड़ी हकीकत मोमिनों, बड़ी मारफत लज्जत।

मोमिन लीजो अर्स दिल में, ए नेक हुकम कहावत॥४०॥

इसलिये, मोमिनों की हकीकत तथा मारिफत की लज्जत (स्वाद) बहुत बड़ी है। हे साथ जी! श्री राज जी का हुक्म

मुझसे इस सम्बन्ध में कुछ कहलवा रहा है। इन बातों को आप अपने धाम हृदय में धारण कीजिए।

भावार्थ- हकीकत और मारिफत की दृष्टि से इल्म और इश्क, वहदत तथा निस्बत, आदि का स्वरूप अलग-अलग रूपों में प्रतीत होता है। श्री राज जी का दिल मारिफत (परमसत्य) का स्वरूप है। उसी के प्रकट रूप में श्यामा जी, सखियों, तथा सम्पूर्ण परमधाम की हकीकत का इश्क, इल्म, निस्बत, तथा वहदत का स्वरूप लीला करता है।

जो कदी इस्क आवे नहीं, तो मोमिन बैठ रहें क्यों कर।
अर्स हकसों बेसक होए के, क्यों रहें अर्स बिगर॥४१॥
यदि कदाचित (कभी) प्रियतम का प्रेम दिल में न आये तो ब्रह्ममुनि चुपचाप नहीं बैठे रह सकते, अर्थात् इश्क

पाने के लिये वे सभी सम्भव प्रयास करते हैं। अक्षरातीत तथा परमधाम के प्रति पूर्ण रूप से संशयरहित हो जाने पर आत्मायें परमधाम का दर्शन किये बिना नहीं रह सकतीं।

इस्क क्यों ना उपजे, पर रूहों करना सोई उद्धम।

राह सोई लीजिए, जो आगूं हादिएं भरे कदम॥४२॥

हमारे हृदय में प्रियतम का प्रेम (इश्क) क्यों नहीं उत्पन्न हो रहा है, इस विषय पर चिन्तन करके ब्रह्मसृष्टियों को प्रयास करना चाहिए। सद्गुरु स्वरूप हमारे हादी ने इश्क को पाने के लिये जो राह अपनायी है, हमें भी उसी मार्ग का अवलम्बन करना चाहिए।

भावार्थ— इस चौपाई में हादी का कथन श्यामा जी के दोनों तनों के स्वरूपों— सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी एवं

श्री प्राणनाथ जी- से है। प्रेम पाने के लिये हमें चितवनि का मार्ग अनिवार्यतः अपनाना पड़ेगा। इस मार्ग पर श्री देवचन्द्र जी एवं श्री महामति जी ने चलकर सबका पथ-प्रदर्शन किया है।

ए तिलसम क्योंए न छूटहीं, जहां साफ न होवे दिल।

अर्स दिल अपना करके, चलिए रसूल सामिल॥४३॥

हे साथ जी! जब तक हृदय निर्मल नहीं होता, तब तक माया का यह बन्धन किसी भी प्रकार से छूट नहीं सकता। आप अपने हृदय को धाम बनाकर, अर्थात् उसमें युगल स्वरूप की शोभा बसाकर, श्री प्राणनाथ जी के साथ आत्म-जाग्रति के स्वर्णिम पथ पर गमन कीजिए (चलिए)।

पाक न होइए इन पानिएं, चाहिए अर्स का जल।

न्हाइए हक के जमाल में, तब होइए निरमल॥४४॥

आप इस संसार के जल से नहाकर कभी भी पवित्र नहीं हो सकते। पवित्र होने के लिये परमधाम का प्रेम रूपी जल चाहिए। यदि आप धाम धनी के सौन्दर्य रूपी सागर में डुबकी लगाकर स्नान करते हैं, अर्थात् उनकी अनन्त शोभा को अपने हृदय में बसा लेते हैं, तो निश्चित रूप से आप निर्मल हो जायेंगे।

भावार्थ- जल में सत्व गुण की अधिकता होने से उससे स्नान करने या पीने पर रजोगुण एवं तमोगुण का हास होता है, जिससे हृदय में कुछ निर्मलता तो होती है, किन्तु वास्तविक निर्मलता कदापि नहीं होती। चितवनि द्वारा अक्षरातीत की शोभा को दिल में बसाये बिना यथार्थ निर्मलता कदापि नहीं आ सकती, क्योंकि जल में

रहने वाले प्राणी— मेंढक, मछलियाँ, कछुए, घोंघे, तथा अन्य कीड़े—मकोड़े— कभी भी वासना की ग्रन्थियों से मुक्त नहीं हो पाते हैं।

पाक होना इन जिमिएं, और न कोई उपाएं।

लीजे राह रसूल इस्कें, तब देवें रसूल पोहोंचाए॥४५॥

इस संसार में पवित्र होने के लिये प्रियतम की शोभा को बसाने वाली चितवनि की प्रक्रिया को अपनाने के अतिरिक्त अन्य कोई भी दूसरा मार्ग नहीं है। यदि आप श्री प्राणनाथ जी के द्वारा दर्शायी गई इस राह का अनुसरण करते हैं, तो उनकी कृपा से आप निश्चित ही जागनी के चरम लक्ष्य तक पहुँच जायेंगे।

भावार्थ— श्री देवचन्द्र जी एवं श्री मिहिरराज जी ने मात्र लगभग २६—२७ वर्ष की आयु तक चितवनि द्वारा ही

अध्यात्म की ऊँचाइयों पर छलाँग लगायी थी। श्री देवचन्द्र जी ने जहाँ अखण्ड ब्रज विहारी के रूप में धाम धनी का दर्शन प्राप्त किया, वहीं श्री मिहिरराज जी ने परमधाम एवं अपनी परात्म का भी साक्षात्कार कर लिया था। वि.सं. १७४८-१७५१ तक श्री महामति जी ने गुम्मट जी की गुमटी में बैठकर गहन चितवनि की और सुन्दरसाथ को इस मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित किया।

प्रियतम को रिझाने के नाम पर नाचना, कूदना, गाना-बजाना, परिक्रमा, एवं पूजा-पाठ नवधा भक्ति एवं कर्मकाण्ड के अन्तर्गत आता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रियतम का साक्षात्कार करने के लिये चितवनि का कोई भी विकल्प नहीं है।

अब कहूं सरीयत मोमिनों, जिन लई हकीकत हक।

हक के दिल की मारफत, ए तिन में हुए बेसक॥४६॥

जिन ब्रह्मसृष्टियों ने अक्षरातीत को पाने के लिये हकीकत (सत्य) की राह अपनायी है, उनके लिये अब मैं शरियत (कर्मकाण्ड) का वर्णन करती हूँ। धाम धनी के दिल में जो मारिफत (परमसत्य) का ज्ञान विद्यमान है, उसे आत्मसात् करके आत्मायें पूर्णतया संशयरहित हो गयी हैं।

मोमिन उजू जब करें, पीठ देवें दोऊ जहान को।

हौज जोए जो अर्स में, रूहें गुसल करे इनमों॥४७॥

ब्रह्ममुनि जब उजू (शरीर शुद्धि) करते हैं, तो कालमाया एवं योगमाया के ब्रह्माण्ड को पीठ दे देते हैं और यमुना जी या हौज कौशर में ध्यान द्वारा स्नान करते हैं।

भावार्थ- शरियत से जुड़े हुए मुस्लिम लोग नमाज पढ़ने से पहले अपने शरीर के चौदह अंगों को जल से धोते हैं, जिसे "उजू" करना कहते हैं। कर्मकाण्ड (शरियत) से जुड़े रहने के कारण उनका ध्यान परमधाम तक नहीं पहुँच पाता। इसके विपरीत आत्मायें कालमाया एवं योगमाया से अपना ध्यान हटाकर हौजकोशर या यमुना जी में स्नान करती हैं। यही आत्माओं के द्वारा अपने को पवित्र करना है।

दम दिल पाक तब होवहीं, जब हक की आवे फिराक।
अर्स रूहें दिल जुदा करें, और सबसे होए बेबाक॥४८॥
जब प्रियतम का विरह आता है, तभी जीव का हृदय पवित्र होता है। परमधाम की आत्मायें प्रियतम के विरह में अपने हृदय को संसार के सभी बन्धनों से अलग कर

लेती हैं और पूर्णतया आसक्ति रहित हो जाती हैं।

भावार्थ- अपने शरीर, सगे-सम्बन्धियों, प्रतिष्ठा, धन-सम्पदा, एवं स्वर्ग-वैकुण्ठ के सुखों के प्रति आसक्ति रखना ही संसार के बन्धन हैं। विरह में इनका चिन्तन समाप्त हो जाता है।

चौदे तबक को पीठ देवहीं, ए कलमा कह्या तिन।

कलाम अल्ला यों केहेवहीं, ए केहेनी है मोमिन॥४९॥

चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड को पीठ देना ही ब्रह्ममुनियों द्वारा "कलमा" कहना है। कुरआन के अन्दर भी यही बात कही गयी है। वस्तुतः मोमिनों (ब्रह्ममुनियों) की यही "कथनी" है।

भावार्थ- शरियत के कथनानुसार "ला-इलाह-इल्लिल्लाह मुहम्मदर्सूलल्लाह" को स्वीकार करने वाला

सच्चा मुसलमान कहलाता है। इसी को कलमा (सत्य वचन) का ग्रहण करना कहते हैं, किन्तु ब्रह्मसृष्टियों के लिये कलमा ग्रहण करने का तात्पर्य है— चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड को पीठ देकर परमधाम की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करना।

ला फना सब ला करें, और इला बका ग्रहें हक।

ए कलमा हकीकत मोमिनो, और हक मारफत बेसक॥५०॥

परमधाम की आत्मायें चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड को नश्वर समझकर पूर्ण रूप से त्याग देती हैं और अखण्ड परमधाम तथा अक्षरातीत को अपने धाम हृदय में बसा लेती हैं। उनके लिये यही हकीकत का कलमा ग्रहण करना है और धाम धनी के संशयरहित मारिफत के इल्म को स्वीकार करना है।

भावार्थ- श्री राज जी की पूर्ण पहचान करके उन पर न्योछावर होना ही उस मारिफत को ग्रहण करना है, जिसमें नाममात्र भी संशय नहीं होता है।

नूर के पार नूर तजल्ला, रसूल अल्ला पोहोंचें इत।

मोमिन उतरे नूर बिलंद से, सो याही कलमें पोहोंचें वाहेदत॥५१॥

अक्षर ब्रह्म से परे अक्षरातीत का रंगमहल है, जहाँ मेयरज में रसूल मुहम्मद साहिब पहुँचे थे। आत्मायें परमधाम से इस खेल में आयी हैं। वे भी हकीकत के इसी ज्ञान (कलमे) से स्वलीला अद्वैत परमधाम में पहुँचेंगी।

द्रष्टव्य- इस चौपाई में "पहुँचने" का तात्पर्य ध्यान द्वारा पहुँचने से है। परात्म में जाग्रति तो एक ही साथ होगी। वह धनी के हुक्म से होगी, ज्ञान से पहुँचना जागनी

लीला के अन्तर्गत है।

जब हक बिना कछू ना देखे, तब बूझ हुई कलमें।

जब यों कलमा जानिया, तब बका होत तिनसें॥५२॥

जब आत्माओं के ज्ञान-चक्षुओं में केवल धाम धनी ही दिखायी दें, तो यही माना जाता है कि अब हकीकत के कलमे की वास्तविक पहचान हो गयी है। जब इस प्रकार सत्य ज्ञान (हकीकत के कलमे) की पहचान हो जाती है, तब अखण्ड घर की उपलब्धि मान ली जाती है।

ए मोमिनों की सरीयत, छोड़ें ना हकको दम।

अर्स वतन अपना जानके, छोड़ें ना हक कदम॥५३॥

इस प्रकार ब्रह्ममुनियों के कर्मकाण्ड (शरियत) की राह यही है कि वे एक पल के लिये भी अपने हृदय में प्रियतम

को न भूलें। परमधाम को अपना वास्तविक घर जानकर धनी के चरणों को न छोड़ें।

महंमद ईसा इमाम, बैत बका निसान।

सोई तीन सूरत महंमद की, देखावें अर्स रहेमान॥५४॥

मुहम्मद की तीन सूरतें हैं – १. बशरी सूरत रसूल मुहम्मद साहिब २. मल्की सूरत सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ३. हक्की सूरत श्री प्राणनाथ जी। इन तीन सूरतों ने आत्माओं को अखण्ड घर की पहचान दी है तथा परमधाम एवं अक्षरातीत के दर्शन का मार्ग दर्शाया है।

भावार्थ– मुहम्मद साहिब के समय में परमधाम की आत्मायें अवतरित नहीं हुई थीं। उनका ज्ञान केवल साक्षी रूप में ही है। बिना तारतम ज्ञान के कोई भी अक्षरातीत या परमधाम का साक्षात्कार नहीं कर सकता।

दुनी क़िबला करें पहाड़ को, और हक तरफों में नाहें।

अर्स बका तरफ न राखत, ए देखे फना के माहें॥५५॥

संसार के लोग जड़ पहाड़ों की पूजा करते हैं। उनकी दृष्टि अक्षरातीत तथा अखण्ड परमधाम की ओर नहीं जाती। ये हमेशा नश्वर जड़ पदार्थों की ही भक्ति में लगे रहते हैं।

भावार्थ- मुस्लिम लोग शबा और मरवा नामक पहाड़ों में दौड़ लगाते हैं। ऐसा करने से वे बहिश्त की प्राप्ति समझते हैं। इसी प्रकार हिन्दू लोग चित्रकूट में स्थित उस कामदगिरि की परिक्रमा करते हैं, जहाँ भगवान राम ने निवास किया था।

हकें देखाया क़िबला, बीच पाइए मोमिन के दिल।

ऊपर तले न दाएं बाएं, सूरत हमेसा असल॥५६॥

अक्षरातीत ने मात्र परमधाम को ही पूज्य स्थान बताया है। वह परमधाम ब्रह्मसृष्टियों के हृदय में विद्यमान है। इस संसार में परमधाम दायें-बायें या ऊपर-नीचे कहीं भी नहीं है, बल्कि ब्रह्ममुनियों के दिल में विद्यमान है। उसी में धाम धनी की शोभा अखण्ड रूप से विराजमान होती है।

मजाजी और हकीकी, दिल कहे भांत दोए।

ए बेवरा हकी सूरत बिना, कर न सके दूजा कोए॥५७॥

इस संसार में दो तरह के दिल होते हैं— १. झूठा दिल और २. सच्चा दिल। इनका वास्तविक निरूपण श्री प्राणनाथ जी के अतिरिक्त अन्य कोई भी दूसरा नहीं कर सकता है।

भावार्थ— संसार के जीवों के हृदय में माया का वास

होता है, इसलिए उनके हृदय को झूठा कहते हैं। इसके विपरीत ब्रह्मसृष्टियों का हृदय अति निर्मल होता है, जिन्हें सच्चा दिल कहते हैं। इनके ही अन्दर श्री राज जी की शोभा विराजमान होती है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि ब्रह्मसृष्टियों के दिल का तात्पर्य आत्मा के दिल एवं जीव के दिल दोनों से है। आत्मा के सम्बन्ध से जीव भी ज्ञान एवं प्रेम की राह अपनाकर निर्मल बन जाता है।

इतहीं रोजा इत बन्दगी, इतहीं जकात ज्यारत।

साथ हकी सूरत के, मोमिनों सब न्यामत॥५८॥

परमधाम में विराजमान युगल स्वरूप के चरणों में ही आत्माओं को रोजा खोलना है, बन्दगी करनी है, जकात देनी है, तथा तीर्थयात्रा (जियारत) करनी है। ब्रह्मसृष्टियों

को ये सारी निधियाँ श्री प्राणनाथ जी की सान्निध्यता में ही प्राप्त होती हैं।

भावार्थ— रोजा रखने का तात्पर्य है— सांसारिक विषयों से संयम करना (अपने को अलग रखना)। हकीकत में रोजा रखने का तात्पर्य है— संसार का पूर्णतया परित्याग करके प्रियतम (महबूब) का दर्शन प्राप्त करना। इसके बिना रोजा अपूर्ण माना जाता है। हिन्दू धर्मग्रन्थों में इसे शम और दम कहते हैं।

आत्माओं की प्रेम लक्षणा भक्ति (बन्दगी) युगल स्वरूप के चरणों में होती है। वे इन चरणों को अपने धाम हृदय में बसाकर धन्य-धन्य हो जाती हैं।

शरियत के नियमानुसार अपनी आय का चालीसवाँ हिस्सा (१/४०) दान में देना होता है, किन्तु तरीकत के नियम के अनुसार ३९ भाग दान देना होता है और

मात्र १/४०वाँ भाग ही अपने खर्च के लिये रखना होता है। हकीकत की राह में तो अपना सर्वस्व समर्पण कर देना होता है। योग दर्शन की भाषा में इसे "ईश्वर प्रणिधान" कहते हैं। इसके बिना समाधि की प्राप्ति नहीं होती— "समाधि सिद्धिः ईश्वर प्रणिधानात्" (योग दर्शन)।

ब्रह्मसृष्टियों की तीर्थयात्रा आत्म-दृष्टि से परमधाम के पच्चीस पक्षों में घूमना है। इस नश्वर जगत के तीर्थ स्थानों में चक्कर लगाना शरियत के अन्तर्गत है। जो सुन्दरसाथ श्री प्राणनाथ जी के चरणों में अटूट श्रद्धा-विश्वास (ईमान) रखेंगे, एकमात्र वे ही उपरोक्त निधियों (हकीकत-मारिफत) को प्राप्त करेंगे। शेष सभी कर्मकाण्ड के बन्धनों में फँसे रहेंगे।

मोमिन हक बिना न देखें, एही मोमिनों ताम।

बन्दगी तवाफ सब इतहीं, मोमिनों इतहीं आराम॥५९॥

परमधाम की आत्माएँ श्री राज जी के अतिरिक्त अन्य किसी को भी प्रियतम के भाव से नहीं देखती हैं। प्रियतम का दीदार ही उनके जीवन का आधार रूप भोजन है। युगल स्वरूप के चरणों में ही इनकी भक्ति (बन्दगी) है और परिक्रमा करना है। इसी में उनको सम्पूर्ण आनन्द प्राप्त होता है।

खाना पीना सब इतहीं, इतहीं मिलाप मजकूर।

इतहीं पूरन दोस्ती, इत बरसत हक का नूर॥६०॥

युगल स्वरूप के चरणों में ही ब्रह्मसृष्टियों का भोजन करना एवं जल पीना है। उनसे ही मिलन और वार्ता भी होती है। धनी से ही इनकी प्रेम भरी मित्रता (दोस्ती) है।

इन आत्माओं पर श्री राज जी के नूर की वर्षा होती है।

भावार्थ- भोजन करना प्रेम की बहिरंग लीला है, जिसमें दर्शन लीला (दीदार) प्रमुख है। जल पीना आन्तरिक लीला है, जिसमें दोनों (आशिक-माशूक) एक-दूसरे के दिल में प्रवेश कर जाते हैं और स्वयं का अस्तित्व भूल जाते हैं। चितवनि में आत्मा अपने मूल तन (परात्म) का श्रृंगार सजकर प्रियतम का दीदार करती है और उनसे बातें भी करती है।

इस जागनी ब्रह्माण्ड में युगल स्वरूप श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर लीला कर रहे हैं। यही कारण है कि सभी सुन्दरसाथ ने श्री प्राणनाथ जी को साक्षात् अक्षरातीत मानकर ही श्री ५ पद्मावतीपुरी धाम में उनकी सेवा की। श्री जी के चरणों में प्रेम रखने पर वही फल प्राप्त होता है, जो परमधाम में विराजमान युगल

स्वरूप के प्रति ईमान (निष्ठा, विश्वास) रखने से प्राप्त होता है। इस सम्बन्ध में खुलासा में कहा गया है—

जाको दिल जिन भांत को, तासों मिले तिन विध।

मन चाह्या सरूप होए के, कारज किए सब सिध॥

खुलासा १३/१५

सुर असुर सबों को ए पति, सब पर एकै दया।

देत दीदार सबन को सांई, जिनहूं जैसा चाह्या॥

किरन्तन ५९/७

धाम धनी द्वारा आत्माओं को प्रेम, आनन्द, सौन्दर्य, तथा परमसत्य ज्ञान (मारिफत) आदि का अनुभव कराना ही नूर की वर्षा कराना है।

सरूप ग्रहिए हक का, अपनी रूह के अन्दर।

पूरन सरूप दिल आइया, तब दोऊ उठे बराबर॥६१॥

हे साथ जी! आप अपनी आत्मा के हृदय में धाम धनी की शोभा को बसाइए। जब श्री राज जी का सम्पूर्ण स्वरूप दिल में बस जाता है, तब आत्मा और परात्म की समान स्थिति हो जाती है।

भावार्थ— परात्म के दिल में तो धनी की शोभा अखण्ड रूप से बसी होती है, किन्तु जब वही शोभा आत्मा के भी धाम हृदय में बस जाती है तो दोनों की स्थिति समान हो जाती है, जिसे बराबर रूप में उठना (जाग्रत होना) कहते हैं।

ए सरीयत अपनी मोमिनों, और है हकीकत।

क्यों न विचार के लेवहीं, हक हादी बैठे तखत॥६२॥

हे साथ जी! ये सब अपनी शरियत और हकीकत की बातें हैं। इस बात का विचार करके आप सिंहासन पर विराजमान युगल स्वरूप की शोभा को अपने हृदय में क्यों नहीं बसाते हैं।

भावार्थ- चौदह लोक, निराकार, और बेहद से परे परमधाम तथा युगल स्वरूप के दर्शन को प्राप्त करने का लक्ष्य बनाना शरियत है, जबकि युगल स्वरूप तथा परमधाम की शोभा को बसा लेना हकीकत (वास्तविकता) है।

जो कदी दिल में हक लिया, कछू किया ना प्रेम मजकूर।
 क्यों कहिए ताले मोमिन, जाको लिख्या बिलन्दी नूर॥६३॥
 यदि कभी, किसी आत्मा ने अपने दिल में श्री राज जी को बसा तो लिया किन्तु उनसे प्रेम भरी बातें नहीं की,

तो उसके सौभाग्य में परमधाम के नूर की अनुभूति कैसे मिल सकती है, जो उसका स्वाभाविक अधिकार है।

भावार्थ- इस चौपाई में यह बात दर्शायी गयी है कि मात्र ज्ञान दृष्टि द्वारा ही धनी को दिल में बसाने से जाग्रति का लक्ष्य पूर्ण नहीं हो सकता। जब तक श्री राज जी के नख से शिख तक की सम्पूर्ण शोभा हृदय में बस नहीं जाती और आत्म-चक्षुओं से वह जी भरकर देखी न जाये, आत्मा की रसना से प्रियतम से कुछ कहा न जाये, तथा आत्मा के कानों से उनकी प्रेम भरी आवाज सुनी न जाये, तब तक यह कैसे माना जा सकता है कि आत्मा ने अपने प्राणप्रियतम के नूर (प्रेम, आनन्द, शोभा, सौन्दर्य, एकत्व) को प्राप्त कर लिया है।

ए हकीकत मोमिनों, और ले न सके कोए।

बेसक होए बातें करें, तो मजकूर हजूर होए॥६४॥

प्रियतम को पाने के लिये हकीकत (सत्य) का यह मार्ग ब्रह्मसृष्टियों का है। इस मार्ग पर अन्य कोई भी (जीव) नहीं चल सकता। हे मेरी आत्मा! यदि तू इस सत्य मार्ग (हकीकत) के प्रति पूर्ण रूप से संशयरहित होकर चले और अपने प्राण प्रियतम से बातें करने की इच्छा करे, तो उनसे प्रत्यक्ष रूप में अवश्य वार्ता होगी।

जो तूं ले हकीकत हक की, तो मौत का पी सरबत।

मुए पीछे हो मुकाबिल, तो कर मजकूर खिलवत॥६५॥

हे मेरी आत्मा! यदि तू श्री राजश्यामा जी और परमधाम की यथार्थ शोभा (हकीकत) को अपने हृदय में बसाना चाहती है, तो तुझे मौत का शर्बत पीना पड़ेगा। संसार से

मर जाने के पश्चात् ही तू अपने प्रियतम से मिलने के योग्य हो पाएगी। इसलिये, तू सांसारिक दृष्टि से मर जा और अपनी आत्मिक दृष्टि से मूल मिलावा में पहुँचकर उनसे प्रेम भरी बातें कर।

भावार्थ— मौत का शर्बत पीने का अर्थ है— प्रियतम के विरह—प्रेम का वह प्याला पीना, जिससे हृदय में रञ्जमात्र भी संसार के विषय सुखों एवं सगे—सम्बन्धियों के प्रति मोह नहीं रह जाता। इसी को मर जाना भी कहते हैं। इस अवस्था को प्राप्त करने के पश्चात् ही श्री राज जी से प्रत्यक्ष वार्ता होती है।

जो लों जाहेरी अंग ना मरें, तो लों जागें ना रूह के अंग।

ए मजकूर रूह अंग होवहीं, अपने मासूक संग॥६६॥

जब तक जीव के अन्तःकरण एवं इन्द्रियों की तृष्णायें

समाप्त नहीं होती, तब तक आत्मा के हृदय में जाग्रति नहीं आ सकती। आत्म-जाग्रति की अवस्था में ही आत्मिक अंगों से प्रियतम श्री राज जी से प्रेममयी वार्ता सम्भव है।

भावार्थ- आत्मा जीव के ऊपर स्थित होकर यह माया का प्रपञ्च देख रही है। जब तक जीव विषय-वासनाओं के जाल से मुक्त होकर प्रियतम की ओर नहीं देखता, तब तक आत्मा भी उसी की लीला को देखने में मग्न रहा करती है। यही कारण है कि आत्म-जाग्रति के लिये जीव के हृदय का निर्मल होना अनिवार्य है। जीव या आत्मा की लीला उनके अन्तःकरण के द्वारा ही सम्पादित होती है। यही कारण है कि आत्मा के अन्तःकरण (हृदय) को इस चौपाई में "रुह के अंग" कहकर सम्बोधित किया गया है।

कौल फैल आए हाल आइया, तब मौत आई तोहे।

तब रूह की नासिका को, आवेगी खुसबोए॥६७॥

हे मेरी आत्मा! यदि तू परमधाम की कथनी और करनी को आत्मसात् कर लेती है, तो तुम्हारे अन्दर धाम की प्रेममयी रहनी भी आ जायेगी। उस अवस्था में तू इस झूठे संसार के प्रति मरे हुए के समान हो जायेगी। तब तुम्हारी नासिका को सम्पूर्ण परमधाम की सुगन्धि आने लगेगी, अर्थात् तू परमधाम के सम्पूर्ण आनन्द, प्रेम, एवं शोभा-श्रृंगार का रसपान करने लगेगी।

रूह नैनों दीदार कर, रूह जुबां हक सों बोल।

रूह कानों हक बातें सुन, एही पट रूह का खोल॥६८॥

हे साथ जी! आप अपनी आत्मा के नेत्रों से प्रियतम का दर्शन कीजिए तथा आत्मिक रसना से श्री राज जी से

प्रेम भरी बातें कीजिए। इसी प्रकार अपनी आत्मा के कानों से प्रियतम की मधुर आवाज सुनिए। इस प्रकार आप अपनी आत्मा के पर्दे को हटाइए।

ए सहूर करो तुम मोमिनों, जब फैल से आया हाल।

तब रूह फरामोसी ना रहे, बोए हाल में नूरजमाल॥६९॥

हे साथ जी! आप इस बात का विशेष रूप से चिन्तन कीजिए कि जब करनी रहनी में बदल जाती है , तो आत्मा में माया की नींद (फरामोशी) नहीं रहती। उस रहनी की सुगन्धि में प्रियतम का दीदार होता है।

बेसक होए दीदार कर, ले जवाब होए बेसक।

एही मोमिनों मारफत, खिलवत कर साथ हक॥७०॥

हे मेरी आत्मा! तू पूर्णतया संशयरहित होकर अपने

प्राणवल्लभ का दीदार कर तथा उनसे अपने प्रेम भरे प्रश्नों का उत्तर भी ले। तू मूल मिलावा में अपनी आत्मिक दृष्टि से प्रियतम के साथ प्रेम और आनन्द में डूबकर एकरूप हो जा तथा अपने अस्तित्व को मिटा दे। ब्रह्मसृष्टियों के लिये यही मारिफत की बन्दगी (परम प्रेममयी स्थिति) है।

रूह हकसों बात विचार कर, दिल परदा दे उड़ाए।

रूह बातें वतन की, कर मासूक सों मिलाए॥७१॥

हे मेरी आत्मा! तू अपने प्रियतम से होने वाली बातों का विचार कर और अपने दिल पर पड़े हुए माया के इस पर्दे को उड़ा दे। तू अपने प्राणप्रियतम से निज घर की अति प्रेममयी बातें कर।

भावार्थ— इस चौपाई में यह संशय होता है कि मारिफत

की स्थिति में पहुँची हुई आत्मा से यह बात क्यों कही गयी है कि तू अपने दिल के ऊपर पड़े हुए माया के पर्दे को हटा? क्या इस अवस्था में भी माया का पर्दा बना रहता है?

इस संशय का समाधान यह है कि इस चौपाई में आत्मा को अपने जीव के दिल पर पड़े हुए माया के पर्दे को हटाने के लिये कहा गया है। आत्मा तो तीनों काल में सर्वथा निर्विकार रहती है, किन्तु जीव के लिये ऐसा सम्भव नहीं हो पाता।

इस नश्वर जगत में पञ्चभौतिक तन को जो भोज्य पदार्थ ग्रहण करने पड़ते हैं, उसके प्रभाव से प्रत्येक परमहंस में सत्व, रज, और तम कम या अधिक मात्रा में रहते ही हैं, जिसके कारण महान विभूतियों से भी कुछ भूलों के हो जाने की सम्भावना बनी रहती है। इसलिये इस चौपाई में

आत्मा को इस बात के लिये सावचेत किया गया है कि वह अपने जीव को पूर्ण रूप से जाग्रत एवं निर्विकार बनाने की दिशा में प्रयत्नशील रहे, क्योंकि उनके आचरण के साथ आत्मा की भी गरिमा जुड़ी हुई है।

जो गुझ अपनी रूह का, सो खोल मासूक आगूं।

यों कर जनम सुफल, ऐसी कर हक सों तूं॥७२॥

हे मेरी आत्मा! अब तू अपने विरह-प्रेम की अति गोपनीय बातों को भी अपने प्रियतम से स्पष्ट रूप से कह। तू उनसे इतना प्रेम कर कि इस खेल में तुम्हारा आना सार्थक हो जाये।

भावार्थ- जन्म जीव का ही होता है, आत्मा का नहीं। इस चौपाई में माया के खेल में आने को ही जन्म लेना कहा गया है। वस्तुतः यह कथन आत्मा के जीव द्वारा

तन धारण करने के सम्बन्ध में है।

सब अंग सुफल यों हुए, करी हकसों सलाह सबन।

देख बोल सुन खुसबोए सों, जिनका जैसा गुन॥७३॥

इस प्रकार श्री राज जी से बातें करके आत्मा के सभी अंग सफल हो गये। आत्मा की आँखों, कानों, एवं रसना ने अपने गुणों के अनुसार प्रियतम के सौन्दर्य, मधुर ध्वनि, एवं प्रेम की सुगन्धि का रसास्वादन किया।

भावार्थ- मेरी आत्मा के नेत्र धाम धनी के अनन्त सौन्दर्य को निहारकर निहाल (परितृप्त) हो गये। मेरे आत्मिक कान अमृत से भी अनन्त गुना मीठी उनकी आवाज को सुनकर धन्य-धन्य हो गये और मेरी रसना ने मेरे हृदय के सारे भावों को व्यक्त कर स्वयं को कृतकृत्य माना।

जेते अंग आसिक के, सो सारे किए सुफल।

सोई असल रूह आसिक, जिन मोमिन अर्स दिल॥७४॥

धाम धनी ने अपनी मेहर की छाँव तले मेरी आत्मा के सभी अंगों को सार्थक कर दिया है। वही आत्मा यथार्थ में धनी से सच्चा प्रेम करने वाली है, जिसका हृदय धाम की शोभा को प्राप्त कर चुका है।

ए निसबत बिना होए नहीं, मासूक सों मजकूर।

ए मजकूर इन बिध होवहीं, यों कहे हक सहूर॥७५॥

श्री राज जी से इस प्रकार की वार्ता बिना मूल सम्बन्ध के नहीं हो सकती, अर्थात् मूल मिलावा में जिनकी परात्म के तन विद्यमान हैं, केवल वही आत्मार्ये अनन्य प्रेम (हकीकत) द्वारा बात कर सकती हैं। श्री राज जी की वाणी के चिन्तन से यही निष्कर्ष निकलता है कि मात्र

हकीकत एवं मारिफत (सत्य एवं परमसत्य) के प्रेम मार्ग द्वारा ही अपने प्राणवल्लभ से बातें की जा सकती हैं।

मोमिनों हकीकत मारफत, इनमें भी विध दोए।

एक गरक होत इस्क में, और आरिफ लदुन्नी सोए॥७६॥

ब्रह्मसृष्टियों की हकीकत एवं मारिफत के दो भेद होते हैं। इश्क (प्रेम) की राह पर चलने वाले उसमें डूब जाते हैं और तारतम ज्ञान को आत्मसात् करने वाले विद्वान बनकर परमधाम का रसास्वादन करते हैं।

भावार्थ— इश्क की दृष्टि से हकीकत एवं मारिफत के दो भेद होते हैं— इश्क की हकीकत एवं इश्क की मारिफत। इश्क की हकीकत की स्थिति में आशिक एवं माशूक दोनों को ही अपने स्वरूप का भान होता है, किन्तु इश्क की मारिफत की अवस्था में दोनों ही स्वयं को भूल जाते

हैं। इसी प्रकार हकीकत के इश्क का तात्पर्य है— युगल स्वरूप एवं सखियों का इश्क तथा मारिफत के इश्क का आशय है श्री राज जी के दिल में निहित इश्क। विशेष तथ्य यह है कि श्यामा जी सहित सभी सखियों के दिल में श्री राज जी के विराजमान होने से उनके दिल में भी मारिफत का इश्क विद्यमान रहता है। लीला रूप में वही इश्क हकीकत के रूप में प्रकट होता रहता है। इस प्रकार परमधाम की वहदत में सभी का इश्क बराबर है। मारिफत का इश्क हकीकत में प्रकट होता है, किन्तु उसी हकीकत के इश्क में मारिफत भी विद्यमान होता है। यही सिद्धान्त स्वरूप के निर्धारण में भी प्रयुक्त होता है।

इल्म की दृष्टि से हकीकत एवं मारिफत के दो भेद होते हैं— १. हकीकत का इल्म २. मारिफत का इल्म। हकीकत के इल्म के अनुसार, परमधाम में श्री राजश्यामा

जी एवं सखियों की पच्चीस पक्षों में अखण्ड लीला होती है। मारिफत के इल्म के अनुसार, परमधाम में श्री राज जी के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं है। निस्बत, वहदत, खिलवत आदि का स्वरूप मात्र हकीकत की ही अवस्था में प्रयुक्त होता है।

एक इस्क दूजा इलम, ए दोऊ मोमिनो हक न्यामत।

इस्क गरक वाहेदत में, इलमें हक अर्स लज्जत॥७७॥

इश्क और इल्म (प्रेम और ज्ञान) दोनों ही अलौकिक निधियाँ हैं, जो धाम धनी द्वारा ब्रह्मात्माओं को दी गयी हैं। इश्क की राह पर चलने से आत्मा परमधाम की वहदत के आनन्द एवं सौन्दर्य में डूब जाती है। इसी प्रकार इल्म (ज्ञान) द्वारा आत्मा को धाम धनी एवं परमधाम के सुखों का रसास्वादन प्राप्त होता है।

मारफत लदुन्नी मोमिनोँ, बंदा हक का कामिल।

बड़ी बुजरकी इन की, करें बातें हक सामिल॥७८॥

तारतम का सर्वोपरि (मारिफत) ज्ञान, अर्थात् पूर्ण पहचान, ब्रह्ममुनियों के पास है। यही धाम धनी से यथार्थ रूप में प्रेम करने वाले हैं। इनकी महिमा बहुत अधिक है। यही चितवनि द्वारा अक्षरातीत से प्रत्यक्षतः बातें करते हैं।

भावार्थ- "तारतम" शब्द का अर्थ होता है- माया के अन्धकार से परे ले जाने वाला ज्ञान। अक्षरातीत के धाम, स्वरूप, लीला, तथा पच्चीस पक्षों का ज्ञान हकीकत के अन्तर्गत आता है, किन्तु धाम धनी के दिल की गुह्य बातें मारिफत (सर्वोपरि परमसत्य) के अन्तर्गत आती हैं, जिनका बोध केवल परमधाम की आत्माओं को ही होता है।

सक नहीं लदुन्नीय में, कहे अर्स की जाहेर बातन।

करें हकसों बातें इन विध, ज्यों करें अर्स के तन॥७९॥

इन आत्माओं को तारतम वाणी में किसी प्रकार का संशय नहीं होता है। ये परमधाम की लीला की बाह्य एवं आन्तरिक (हकीकत तथा मारिफत) बातों का वर्णन करती हैं। ये अपनी परात्म के तनों से परमधाम में जिस प्रकार बातें करती हैं, उसी प्रकार इस नश्वर जगत् में भी अपने आत्म स्वरूप से बातें करती हैं।

हक दिया चाहें लज्जत, ताए इलम देवें बेसक।

रूह बातें करें हकसों, देखे हौज जोए हक॥८०॥

धाम धनी जब आत्माओं को परमधाम का रसास्वादन कराना चाहते हैं, तो उन्हें अपना संशयरहित तारतम ज्ञान देते हैं। इस तारतम के प्रकाश में आत्मा धाम धनी

से बातें करती है तथा हौज कौशर, यमुना जी, एवं श्री राज जी की शोभा को देखती है।

भावार्थ- अक्षरातीत तथा परमधाम को दो प्रकार से देखा जाता है- १. ज्ञान दृष्टि से २. आत्मिक दृष्टि से। ज्ञान ग्रहण करने के पश्चात् हृदय में परमधाम तथा अक्षरातीत की छवि अंकित हो जाती है, जिससे हृदय उन्हीं भावों में खोया रहता है। यद्यपि यह चिन्तन जीव तथा उसके हृदय द्वारा होता है, किन्तु आत्मा के साथ संयुक्त रूप में कहा जाता है।

चितवनि की गहराइयों में डूबने के पश्चात् आत्मा का सम्बन्ध जीव और उसके हृदय (मन, चित्त, बुद्धि तथा अहंकार) से हट जाता है और वह अपने धाम हृदय में प्रियतम की शोभा का प्रत्यक्ष रूप से दर्शन करती है। इसे ही वास्तविक रूप में साक्षात्कार (दीदार) कहा जाता है।

अँगना भाव में खो जाने वाला जीव भी शुद्ध होकर आत्मा के साथ इस अनुभूति के आनन्द का कुछ अंश प्राप्त कर लेता है।

मारफत लदुन्नी जिन लई, सो करे हक सहूर।

सहूर किए हाल आवहीं, सो हाल बीच हक मजकूर॥८१॥

जिन्होंने तारतम ज्ञान (ब्रह्मवाणी) के गुह्य रहस्यों को जान लिया होता है, वे अक्षरातीत श्री राज जी का ही चिन्तन एवं चितवनि करते हैं। चितवनि द्वारा उनकी रहनी परमधाम वाली (प्रेममयी) हो जाती है और उस अवस्था में प्रियतम का दीदार होता है तथा उनसे प्रत्यक्ष बातें होती हैं।

भावार्थ— इस चौपाई से यह निष्कर्ष निकलता है कि ब्रह्मवाणी का ज्ञान "कथनी" है, चितवनि "करनी" है,

तथा चितवनि से युगल स्वरूप के प्रति प्रकट होने वाला प्रेम "रहनी" है। मात्र इसी द्वारा ही प्रियतम का दीदार होता है। इसके अतिरिक्त वर्तमान समय में अन्य कोई भी मार्ग नहीं है।

यों हक कहावत मोमिनों, नजीक हाल है तुम।

हक बातें किया चाहें, रूह सों वाहेदत खसम॥८२॥

इस प्रकार धाम धनी मेरे द्वारा ब्रह्मसृष्टियों के लिये इस प्रकार की बातें कहलवा रहे हैं कि हे साथ जी ! आपके लिये यह प्रेममयी रहनी बहुत अनिवार्य (निकट) है। आप इस अवस्था को प्राप्त हो जाइए, क्योंकि परमधाम की एकदिली के प्राणवल्लभ श्री राज जी आपसे बातें करना चाहते हैं।

पीछे हक सब करसी, रूह सुख लिया चाहे अब।

सुख लेने को अवसर, पीछे लेसी मोमिन सब॥८३॥

धाम धनी तो बाद में सब कुछ करेंगे ही, किन्तु आत्मायें तो अभी ही सारा सुख लेना चाहती हैं। बाद में अर्थात् परमधाम में तो सब सुन्दरसाथ सुख लेंगे ही, किन्तु जागनी लीला में अखण्ड सुख लेने का यही सुनहरा अवसर है।

भावार्थ- परमधाम के अखण्ड सुखों का अनुभव करने का यही वास्तविक समय है। यह सौभाग्य परमधम में भी प्राप्त नहीं था।

सुख हक इस्क के, जिनको नहीं सुमार।

सो देखन की ठौर इत है, जो रूह सो करो विचार॥

सागर १२/३०

रूह विरहा खिन एक ना सहें, सो अब चली जात मुद्धत।

अर्स रूहें यों भूल के, क्यों छोड़ें हक मारफत॥८४॥

परमधाम में जो आत्मायें एक पल के लिये भी धाम धनी का विरह सहन नहीं कर सकती थीं, वे इस जागनी लीला में इतने समय तक आसानी से रह रही हैं। यह बहुत आश्चर्य की बात है। परमधाम की आत्मायें इस प्रकार धाम धनी को भूलकर उनकी पूर्ण पहचान को क्यों छोड़ रही हैं।

मारफत हुई हाथ हक के, क्यों ले सकिए सोए।

ए दोस्ती तब होवहीं, जब होए प्यार बराबर दोए॥८५॥

धनी की पूर्ण पहचान उनके ही हाथों में है। उसे कोई भी सरलता से कैसे प्राप्त कर सकता है। प्रेम का यह प्रगाढ़ बन्धन (दोस्ती) तभी होता है, जब आत्मा और धाम

धनी की ओर से समान रूप से प्रेम हो।

भावार्थ- धाम धनी के प्रेम में रञ्जमात्र भी न्यूनता नहीं होती, भूल तो आत्माओं से ही हो रही है। प्रियतम की पूर्ण पहचान के लिये तो आत्माओं को ही प्रेम के क्षेत्र में अपने कदम बढ़ाने होंगे।

मारफत देवे इस्क, इस्कें होए दीदार।

इस्कें मिलिए हकसों, इस्कें खुले पट द्वार॥८६॥

धनी की पूर्ण पहचान (मारिफत के इल्म) से ही इश्क आता है। अनन्य प्रेम (इश्क) से ही प्रियतम का दीदार होता है। इसी इश्क से श्री राज जी से मिलन होता है और माया का पर्दा हट जाता है, जिससे परमधाम का दरवाजा खुलता है अर्थात् परमधाम का साक्षात्कार होता है।

भावार्थ- "दरवाजा बन्द होना" तथा "दरवाजा खुल जाना" मुहावरे हैं, जिसका अर्थ क्रमशः होता है- प्रवेश या प्राप्ति न कर पाना तथा प्रवेश करना। निजधाम में प्रवेश पाने या दर्शन की राह में माया का यह पर्दा बाधक है। इसके हट जाने पर ही निजधाम का साक्षात्कार करना सम्भव होता है। इसे ही दरवाजे का खुल जाना कहते हैं।

सोई रब्द जो हकसों किया, वास्ते इस्क के।

सो इस्क तब आइया, जब हकें दिया ए॥८७॥

हमने परमधाम में अपने प्रियतम से इश्क के सम्बन्ध में रब्द (बहस) किया था। इस जागनी लीला में श्री राज जी ने जब इश्क दिया है, तभी वह हमारे धाम हृदय में आ सका है।

हांसी करी रूहन पर, दे इलम बेसक।

मासूक हंस के तब मिले, जब हकें दिया इस्क॥८८॥

धाम धनी ने हम आत्माओं को अपना संशयरहित तारतम ज्ञान (ब्रह्मवाणी) दिया है और इश्क न होने के कारण हमारी हँसी कर रहे हैं। अब स्वयं धाम धनी ने ही हमें अपना प्रेम दिया है और हँसते हुए हमसे मिलन किया है।

महामत कहे ए मोमिनो, सब बातों का ए मूल।

ए काम किया सब हुकमें, आए इमाम मसी रसूल॥८९॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! सभी बातों का सार यही है कि इस खेल में जो कुछ भी हो रहा है, वह धाम धनी का हुक्म ही कर रहा है। धनी के हुक्म से ही इस खेल में तीनों स्वरूपों – रसूल मुहम्मद साहिब,

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी, एवं श्री प्राणनाथ जी- का
प्रकटन हुआ है।

प्रकरण ॥२५॥ चौपाई ॥१९३९॥

कलस का कलस

बसरी मलकी और हकी, कही महंमद तीन सूरत।

कारज सारे सिध किए, अव्वल बीच आखिरत॥१॥

कलश की शोभा मुकुट के समान होती है। संसार के सभी धर्मग्रन्थों के ऊपर श्रीमुखवाणी (श्री कुल्जुम स्वरूप) कलश के समान है। उसमें भी यह श्रृंगार ग्रन्थ सम्पूर्ण तारतम वाणी में कलश के समान सुशोभित हो रहा है, किन्तु यह प्रकरण तो श्रृंगार ग्रन्थ के भी कलश के रूप में शोभायमान हो रहा है। मुहम्मद की तीन सूरतें— बशरी, मल्की, हक्की— कही गयी हैं। इन तीन स्वरूपों ने ही इस जागनी ब्रह्माण्ड के प्रारम्भ, बीच, एवं अन्त के सभी कार्यों को पूर्ण किया है।

भावार्थ— "मुहम्मद" शब्द से तात्पर्य है— अनन्त महिमा

वाला। इन तीनों स्वरूपों का व्यक्तित्व अलौकिक है। इन तीनों सूरतों ने परमधाम तथा अक्षरातीत का दर्शन किया और संसार को अपने द्वारा अपनायी गयी राह पर चलने के लिये प्रेरित किया। इसलिये, इन तीनों स्वरूपों को हादी या मुहम्मद (महिमा से परे) कहा गया है।

ब्रह्मसृष्टियों के आने से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व "बसरी" सूरत की लीला को प्रारम्भ की लीला इसलिये कहते हैं कि उन्होंने ब्रह्मात्माओं के आने तथा जागनी लीला सम्बन्धी बातों की साक्षी दी। बीच वाले स्वरूप "मल्की" से तारतम ज्ञान (इल्मे लदुन्नी) उतरा और तीसरे स्वरूप "हक्की" से ज्ञान का सम्पूर्ण प्रकाश फैला। इसलिये, इसे आखिरी स्वरूप की लीला कहते हैं।

ए तीनों मिल किया जहूर, अव्वल आखिर रोसन।

हक बैठे इन इलम में, तो दिल अर्स हुआ मोमिन॥२॥

इन तीनों स्वरूपों ने शुरु में , बीच में, एवं अन्त की लीला में अक्षरातीत तथा परमधाम को उजागर (जाहिर) किया। इस ब्रह्मवाणी में अक्षरातीत विराजमान हैं, अर्थात् इस वाणी से धाम धनी के स्वरूप की वास्तविक पहचान होती है। इस प्रकार तारतम वाणी को आत्मसात् करने के कारण ही ब्रह्मसृष्टियों के दिल को धाम कहा गया है।

ए जुबां मैं हक की, और बोलत है हुकम।

हक अर्स बरनन तो हुआ, जो वाहेदत बका खसम॥३॥

अब मेरी यह "रसना" और "मैं" श्री राज जी के हैं। मेरे अन्दर से धाम धनी का हुकम ही बोल रहा है। मेरे धाम हृदय में अखण्ड परमधाम के प्रियतम श्री राज जी का

आवेश ही हुक्म के रूप में विराजमान है, इसलिये तो मेरे तन से श्री राज जी एवं परमधाम की शोभा का वर्णन हो सका है।

गैब खिलवत जाहेर तो हुई, जो हकें कराई ए।

ए खबर नहीं नूर को, करी लदुन्निएं जाहेर जे॥४॥

प्राण प्रियतम श्री राज जी ने ही मेरे तन से अति गोपनीय मूल मिलावा की बातों को प्रकट किया है। इसका ज्ञान तो पहले अक्षर ब्रह्म को भी नहीं था, किन्तु इस श्रीमुखवाणी ने सब कुछ स्पष्ट कर दिया है।

भावार्थ— श्री महामति जी के धाम हृदय में श्री राज जी के विराजमान होने से पूर्व अक्षर ब्रह्म की जाग्रति बुद्धि को मूल मिलावा की गहन बातों का कोई भी ज्ञान नहीं था—

मेरी संगते ऐसी सुधरी, बुध बड़ी हुई अछर।

तारतमें सब सुध परी, लीला अंदर की घर॥

कलस हिंदुस्तानी २३/१०३

यद्यपि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के अन्दर भी जाग्रत बुद्धि विराजमान थी, किन्तु ब्रह्मवाणी का अवतरण न होने से जाग्रत बुद्धि को परमधाम की गुह्यतम बातों की जानकारी नहीं थी। वह दूसरे तन की लीला में ही पूर्ण रूप से जान सकी थी। इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी का कथन है—

एते दिन त्रैलोक में, हुती बुध सुपन।

सो बुध जी बुध जाग्रत ले, प्रगटे पुरी नौतन॥

परिकरमा १/११

धनी जी ध्यान तुमारे रे, बैठे बुध जी बरस सहस्र चार।

छे सै साठ बीता समे, दुनियां को भयो आचार॥

किरंतन ५३/१

इस प्रकार श्यामा जी का स्वामित्व वि.सं. १७३५ के पश्चात् प्रारम्भ हुआ था। इसके बाद ही वहदत, खिल्वत, और निस्बत की मारिफत सम्बन्धी गुह्य बातों का स्पष्टीकरण हो सका था।

बरनन किया अर्स का, सो सब हिसाब अर्से के।

गिनती सो भी अर्स की, ए बातें मोमिन समझेंगे॥५॥

मैंने परमधाम के विस्तार का जो वर्णन किया है, वह सारा माप परमधाम का है। यहाँ तक कि गिनती (गणना) भी परमधाम की है। इस रहस्य को परमधाम की आत्मायें ही समझती हैं।

भावार्थ— परमधाम अनन्त है। यहाँ की गणना से वहाँ का माप कदापि नहीं किया जा सकता। वहाँ के एक कोस

में यहाँ के करोड़ों-अरबों कोस समा जायेंगे। वहाँ की गणना तो समस्त गंगाजल को एक गिलास में रखकर वर्णन करने की भांति है।

या पहाड़ या तिनका, सो सब चीज बिध आतम।

सब देत देखाई जाहेर, ज्यों देखिए माहें चसम॥६॥

परमधाम में चाहे कोई विशाल पर्वत (पहाड़) हो या छोटा सा तिनका, सभी आत्म-स्वरूप हैं। जिस दृष्टि से हम उन्हें देखते हैं, सभी उसी रूप में प्रत्यक्षः दिखायी पड़ते हैं।

भावार्थ- सम्पूर्ण परमधाम श्री राज जी के दिल का ही प्रकट रूप है। यद्यपि बाह्य रूप से सम्पूर्ण पच्चीस पक्ष एवं लीला रूप सामग्री अलग-अलग रूपों में दिखायी पड़ती है, किन्तु आन्तरिक रूप से देखने पर यह स्पष्ट होता है

कि सभी पदार्थ आत्म-स्वरूप हैं और अपने प्राणवल्लभ को अपने प्रेम से रिझा रहे हैं।

और भी खूबी रूह नैन की, चीज दसों दिसा की सब देखत।

पाताल या आसमान की, रूह नजरोँ सब आवत॥७॥

आत्मिक नेत्रों की यह भी विशेषता है कि इनके द्वारा इस नश्वर जगत में भी पाताल से लेकर आकाश तक दशों दिशाओं की सभी वस्तुएँ दिखायी पड़ती हैं।

भावार्थ- आत्म-जाग्रति होने के पश्चात् आत्मिक नेत्रों से सम्पूर्ण परमधाम को तो देखा ही जाता है, कालमाया के ब्रह्माण्ड में भी सब कुछ दिखायी देने लगता है।

रूह का एही लछन, बाहेर अन्दर नहीं दोए।

तन दिल दोऊ एकै, रूह कहियत हैं सोए॥८॥

आत्मा का यही लक्षण है कि उसके दिल (अन्दर) में या मुख (बाहर) पर हमेशा एक ही बात होती है, दो नहीं। उसी को आत्मा कहते हैं, जिसके मुख और दिल समान होते हैं।

दूर नजीक भी अर्स के, सो भी पाइए अर्स सहूर।

नैन चरन अंग तीनों हीं, एक यादै में हजूर॥९॥

परमधाम की चितवनि से निजधाम की बहुत दूर से भी दूर और अति निकट की वस्तुओं का भी साक्षात्कार हो जाता है। प्रियतम की प्रेम भरी याद रूपी चितवनि में धनी के नेत्र, चरण, और हृदय का भी दीदार हो जाता है।

भावार्थ— चितवनि में किसी थम्भ आदि की मेहराव में बने हुए फूलों, पत्तियों आदि का दर्शन अति निकट का

दर्शन है, तथा उसी समय सागरों, बड़ी राँग की हवेलियों, तथा माणिक पहाड़ के हिण्डोलों आदि को देखने लगना अति दूरस्थ वस्तुओं का दर्शन है।

चाल मिलाप या दीदार, ए तीनों रूह के नेक।

जबहीं याद जो आवहीं, तब हीं होए माहें एक॥१०॥

परमधाम की प्रेममयी चाल, हृदय में मिलन की अनुभूति, या प्रत्यक्ष दर्शन – ये तीनों वस्तुएँ आत्मा को बहुत आनन्द देने वाली हैं। जब भी प्रियतम अक्षरातीत की याद आती है, तो इन तीनों में से किसी एक की प्राप्ति आत्मा को अवश्य होती है।

भावार्थ— श्री राज जी के स्वरूप की चितवनि में डूब जाने पर, या तो हमारी रहनी प्रेममयी हो जाती है, या धाम धनी के हृदय में विराजमान होने की झलक मिलती

है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रियतम मेरे सम्मुख ही है। यह भावात्मक मिलन है। अन्तिम परिणाम प्रत्यक्ष दर्शन है, जिसमें आत्म-चक्षुओं से आत्मा अपने प्राणवल्लभ को स्पष्ट रूप से सामने देखती है।

यातो जिमी के दूर लग, या नजीक आगूं नजर।

दूर नजीक सब याद में, ए दोऊ बराबर॥११॥

प्रियतम की प्रेम भरी याद में परमधाम की धरती पर बहुत दूरस्थ कोई वस्तु हो या अपनी आँखों के बहुत पास की वस्तु हो, दोनों ही बराबर प्रतीत होते हैं। वहाँ निकट या दूर जैसी कोई बात है ही नहीं।

भावार्थ- यजुर्वेद में इसी स्थिति को परब्रह्म को दूर से दूर और अति निकट कहा गया है।

अर्स दिल मोमिन तो कहा, जो हक सों रुह निसबत।
ना तो अर्स दिल आदमी का, क्यों कहा जाए खाब में इत॥१२॥
ब्रह्मसृष्टियों के दिल को धाम इसलिये कहा गया है,
क्योंकि इनका धाम धनी से अखण्ड सम्बन्ध होता है।
अन्यथा, इस नश्वर जगत में, भला एक मनुष्य के तन में
स्थित दिल को धाम कैसे कहा जा सकता है।

भावार्थ— परात्म की ही प्रतिबिम्ब स्वरूपा आत्मा है,
जो मानव तन में विद्यमान जीव पर विराजमान होकर इस
मायावी खेल को देख रही है। परात्म धाम धनी की
अङ्गरूपा है। इस प्रकार उसकी प्रतिबिम्ब स्वरूपा आत्मा
से भी धाम धनी का अखण्ड सम्बन्ध सिद्ध होता है। यही
कारण है कि जीव के ऊपर विद्यमान आत्मा के दिल को
श्री राज जी का धाम कहा जाता है।

रूह तन की असल अर्स में, अर्स ख्वाब नहीं तफावत।
 तो कहा सेहेरा से नजीक, हक अर्स दुनी बीच इत॥१३॥

आत्माओं का मूल तन परमधाम में है। उस तन (परात्म) और इस तन (आत्मा के) में मूलतः अन्तर नहीं है। यही कारण है कि इस संसार में भी युगल स्वरूप एवं परमधाम आत्माओं की प्राणनली से भी अधिक निकटस्थ है।

दिल मोमिन अर्स तन बीच में, उन दिल बीच ए दिल।
 केहेने को ए दिल है, है अर्से दिल असल॥१४॥

ब्रह्मसृष्टियों का वास्तविक दिल तो परात्म के अन्दर है। उस दिल के बीच में यह आत्मा का दिल है अर्थात् उसका प्रतिबिम्बित स्वरूप है। यद्यपि कहने के लिये ही इसे दिल कहा जा रहा है, किन्तु यथार्थ रूप में

वास्तविक दिल तो परात्म के ही अन्दर है।

भावार्थ- आत्मा का दिल परात्म के दिल का प्रतिबिम्बित रूप है, इसलिये इसे परात्म के दिल में स्थित हुआ माना गया है। इसी प्रकार आत्मा का सम्पूर्ण तन भी सम्पूर्ण परात्म का प्रतिबिम्ब (सुरता स्वरूप) होने से परात्म के अन्दर स्थित हुआ कहा जा सकता है।

तो हक नजीक कहा रुहन को, और नूर नजीक फरिस्तन।

और आम खलक देखन को, जो कहे जुलमत से तन॥१५॥

अक्षरातीत को ब्रह्मसृष्टियों के निकट अर्थात् आत्माओं के दिल में विद्यमान कहा गया है। इसी प्रकार अक्षर ब्रह्म को ईश्वरी सृष्टि के हृदय में विराजमान हुआ कहा गया है। जीव सृष्टि का अस्तित्व तो मात्र प्रतीत हो रहा है। इनके तन निराकार (मोह तत्व) के हैं।

भावार्थ- अक्षरातीत अपनी अँगरूपा आत्माओं के धाम हृदय में विराजमान हैं, तो अक्षर ब्रह्म ईश्वरी सृष्टि के हृदय में। आदिनारायण की चेतना का प्रतिभास ही जीव के रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है, जो मात्र महाप्रलय तक के लिये ही अपना अस्तित्व बनाये हुए है।

ए तीनों गिरो कही जाहेर, पर ए बीच मारफत राह।

ए कलाम अल्ला में बेवरा, योहीं कहा रुह अल्लाह॥१६॥

धर्मग्रन्थों में इन तीनों सृष्टियों का विवरण दिया गया है। इनमें ब्रह्मसृष्टियाँ मारिफत (परमसत्य) की राह पर चलने वाली होती हैं। कुरआन में यह बात स्पष्ट रूप से कही गयी है। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने भी ऐसा ही कहा है।

भावार्थ- कुरआन पारा ३ तिलकरसूल सूरत अल

इमरान आयत ७ में कहा गया है कि खुदाई इल्म तीन तरह का है। पहले प्रकार का इल्म साधारण (जीव सृष्टि) के लिये है। दूसरे प्रकार का इल्म फकीरों (ईश्वरी सृष्टि) के लिये है तथा तीसरे प्रकार के इल्म की जानकारी मात्र मोमिनों (ब्रह्मसृष्टियों) को ही है।

पर आम खलक ना समझैं, जाकी पैदास कही जुलमत।
इलम लदुन्नी से जानत, रूह मोमिन बीच वाहेदत॥१७॥
किन्तु, निराकार से पैदा होने वाली जीव सृष्टि मारिफत (परमसत्य, विज्ञान) ज्ञान को नहीं समझ पाती।
स्वलीला अद्वैत परमधाम की आत्मायें तारतम ज्ञान द्वारा मारिफत के सभी रहस्यों को स्पष्ट रूप से जान जाती हैं।

इलम नुकते की साहेदी, हक सूरत अर्स मारफत।

सो सब बातें फुरमान में, खोले हकी सूरत हकीकत॥१८॥

अक्षरातीत का स्वरूप तथा परमधाम का सर्वोच्च ज्ञान तारतम वाणी से ही विदित होता है। यद्यपि ये बातें धर्मग्रन्थों (वेद, उपनिषद, तथा कुरआन) में संकेतों द्वारा साक्षी रूप में लिखी हुई है, किन्तु इनकी वास्तविकता को एकमात्र श्री प्राणनाथ जी ही उजागर (प्रकट) कर रहे हैं।

बसरी मलकी और हकी, जो कही महंमद तीन सूरत।

दो देवे हक की साहेदी, फरदा रोज कयामत॥१९॥

बशरी, मल्की, और हक्की- मुहम्मद की तीन सूरतें कही गयी हैं। फरदा रोज अर्थात् ग्यारहीं सदी में कियामत के समय इन दोनों सूरतों (बशरी तथा मल्की) ने हक्की

सूरत श्री महामति जी को अक्षरातीत से सम्बन्धित सभी साक्षियाँ दी हैं।

भावार्थ- फरदा रोज अर्थात् कल का समय १००० वर्ष के पश्चात् ग्यारहवीं सदी में निश्चित होता है। वि.सं. १७३५ के पश्चात् सनंध, खुलासा, मारिफत सागर, तथा कयामतनामा की वाणी उतरी, जिसमें दोनों सूरतों की साक्षी के साथ हकीकत एवं मारिफत का ज्ञान है।

नबी नबुवत कुरान माजजा, ए दोऊ साबित होवें इन से।
 कुरान न खुले बिना खिताब, ना तो लिख्या सब इनमें॥२०॥

यद्यपि कुरआन में सारी बातें लिखी हैं , लेकिन इसे खोलने की शोभा एकमात्र हक्की सूरत श्री प्राणनाथ जी को ही है। कुरआन की हकीकत एवं मारिफत के भेदों के खुलने से ही मुहम्मद साहिब की पैगम्बरी एवं कुरआन

की भविष्यवाणियों की सच्चाई सिद्ध होती है।

भावार्थ- कुरआन में स्थान-स्थान पर कियामत के निशानों का वर्णन है, जिनके अनुसार इमाम मुहम्मद महदी (श्री प्राणनाथ जी) द्वारा कुरआन के सभी भेदों का स्पष्टीकरण होना कहा गया है। श्री प्राणनाथ जी द्वारा कुरआन के सभी भेदों को स्पष्ट कर दिये जाने से यह सिद्ध हो गया है कि रसूल मुहम्मद साहिब ने हदीसों में एवं अल्लाह तआला ने कुरआन में जो कुछ भी कहा है, वह सत्य प्रमाणित हो गया है। इससे उनकी पैगम्बरी सत्य सिद्ध होती है।

इन साहेदिएं सब मिलसी, हिंदू या मुसलमीन।

मुआ दज्जाल सब का कुफर, यों सब पाक हुए एक दीन॥२१॥

इन दोनों सूरतों की साक्षी से हिन्दू और मुसलमान

दोनों ही मिल जायेंगे। तारतम ज्ञान द्वारा अज्ञानता का अन्धकार मिट जाने से सभी के हृदय का पाप मिट जायेगा। इस प्रकार सभी पवित्र होकर एक सत्य सिद्धान्त (निजानन्द) को स्वीकार करेंगे।

भावार्थ- सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी वेद पक्ष के ग्रन्थों की साक्षी देंगे तथा मुहम्मद साहिब कतेब पक्ष के। इस प्रकार लोग शाश्वत सत्य को जान जायेंगे।

इस संसार में स्वप्न की बुद्धि होने से सभी प्राणी एक परम सत्य को स्वीकार नहीं कर सकेंगे। यह सारी लीला योगमाया के ब्रह्माण्ड में होगी, जहाँ सभी अक्षरातीत के चरणों में आकर निर्मल होंगे तथा एक शाश्वत सत्य (दीन) को स्वीकार करेंगे।

यद्यपि "दीन" शब्द का तात्पर्य धर्म से होता है, किन्तु इसका मूल रूप जन-सामान्य से दूर रहता है। धर्म

मूलतः सत्य और परब्रह्म की तरह ही अनादि और अखण्ड है। सम्प्रदाय या मत को धर्म नहीं कहा जा सकता। वह तो धर्म का आंशिक रूप है। इस चौपाई में जिसको धर्म या दीन कहा गया है, उसमें कर्मकाण्डों के लिये कोई स्थान नहीं है। वह सम्पूर्ण सृष्टि का है। वह किसी व्यक्ति, भाषा, समाज, या राष्ट्र के बन्धन में नहीं रहता, बल्कि उसी के आश्रय में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड रहता है।

और भी साहेदी फुरमान में, तबक चौदे जरा नाहें।

खेल नाम धरया सब केहेने को, ए जरा नहीं अर्स माहें॥२२॥

धर्मग्रन्थों में यह भी कहा गया है कि चौदह लोक का यह ब्रह्माण्ड कुछ है ही नहीं। यह तो मात्र कहने के लिये ही चौदह लोक के रूप में खेल का नाम दिया गया है।

परमधाम में तो इसका एक कण भी नहीं जा सकता।

और ठौर न काहूं अर्स बिना, अर्स न कहूं इंतहाए।

जो आप कछुए है नहीं, तिन क्यों अर्स नजरों आए॥२३॥

यद्यपि परमधाम अनन्त है, किन्तु ब्रह्मसृष्टियों के लिये तो परमधाम के अतिरिक्त अन्य कोई ठिकाना ही नहीं है। प्रतिभास मात्र होने से संसार के जीवों का तो कोई अखण्ड अस्तित्व नहीं है, इसलिये उन्हें परमधाम के दर्शन होने का प्रश्न ही नहीं है।

ए अर्स देखें रूह मोमिन, जो उतरे नूर बिलन्द से।

नाहीं क्यों देखे है को, ए तो जाहेर लिख्या किताबों में॥२४॥

परमधाम से आने वाली ब्रह्मात्मायें ही इस परमधाम को देखने में सक्षम हैं। धर्मग्रन्थों में तो यह बात स्पष्ट रूप से

लिखी है कि स्वप्न की तरह मिट जाने वाले जीव भला परमधाम का दर्शन कैसे कर सकते हैं।

भावार्थ- यह प्रसंग पुराण संहिता ११/४२-५० में वर्णित है, जिसमें कहा गया है कि जिस प्रकार सूर्य का प्रतिबिम्ब कभी भी सूर्य तक नहीं पहुँच सकता है, उसी प्रकार चिदाभास स्वरूप जीव उस जाग्रत स्वरूप ब्रह्म का दर्शन कैसे कर सकते हैं जो स्वप्न में आदिनारायण के स्वरूप में है, और उसी की चेतना के प्रतिभास रूप सभी जीव हैं।

बंझापूत फूल आकास, और ससिक सिंग।

कह्या वेद कतेब में, भंग न कछू अभंग॥२५॥

वेद-कतेब में ऐसा कहा गया है कि जिस प्रकार बन्ध्या स्त्री का पुत्र नहीं होता, आकाश का फूल नहीं होता,

और खरगोश के सींग नहीं होते, उसी प्रकार इस जगत् का भी कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं है। जो कुछ है ही नहीं, वह नष्ट क्या होगा या अखण्ड क्या होगा।

यों असल खेल की है नहीं, ए तो दिल में देखाई देत।

किया हुकमें महंमद रूहों देखने, तो भिस्त में इनों को लेत॥२६॥

इस प्रकार इस मायावी ब्रह्माण्ड का अखण्ड स्वरूप नहीं है। यह तो आत्माओं के दिल में दिखायी भर दे रहा है। श्री राज जी के हुक्म ने श्यामा जी एवं सखियों के देखने के लिये ही इस खेल को बनाया है। यही कारण है कि इस ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण जीवों को बेहद मण्डल में अखण्ड मुक्ति प्राप्त हो जायेगी।

भावार्थ— अनुभूति हृदय द्वारा ही होती है। परात्म इस खेल को श्री राज जी के दिल रूपी पर्दे पर देखते हुए

अपने दिल में उसकी अनुभूति कर रही है। इसी प्रकार आत्मा जीव के ऊपर विराजमान होकर अपने दिल में इस मायावी खेल की अनुभूति कर रही है। इस चौपाई के दूसरे चरण का यही भाव है।

ब्रज में आने से पहले भी असंख्य बार सृष्टि बन चुकी है और लय को प्राप्त हो चुकी है। यह प्रक्रिया इस ब्रह्माण्ड के अखण्ड हो जाने के पश्चात् भी चलती रहेगी।

हक हुकमें सब बेवरा किया, वास्ते हादी रुहन।

जो सहूर कीजे मिल महामती, तो लज्जत लीजे अर्स तन॥२७॥

श्री राज जी के हुक्म (आदेश स्वरूप) ने श्यामा जी एवं सखियों के लिये यह सम्पूर्ण विवरण किया है। श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी ! यदि आप सभी युगल स्वरूप की चितवनि करते हैं, तो इसी संसार में

परमधाम की तरह ही अपने मूल तनों के सुखों का रसास्वादन कर सकते हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में "सहूर" शब्द का तात्पर्य चिन्तन नहीं, बल्कि चितवनि है। युगल स्वरूप की छवि के हृदय में अंकित हो जाने पर आत्मा को अपने परात्म स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है और उसे वे सारे आनन्द प्राप्त होने लगते हैं, जो परमधाम में परात्म को प्राप्त होते हैं। यहाँ यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि आत्मा को प्राप्त होने वाले प्रेम और आनन्द की एक सीमा है, अन्यथा यह पञ्चभौतिक शरीर परमधाम के अनन्त आनन्द का बोझ नहीं झेल सकता।

प्रकरण ॥२६॥ चौपाई ॥१९६६॥

मता हक-ताला ने मामिनों को दिया

इस प्रकरण में यह बात दर्शायी गयी है कि यद्यपि श्री राज जी ने अपने हृदय में लहराने वाले ज्ञान (इल्म) के सागर की रसधारा ब्रह्ममुनियों के हृदय में उड़ेल दी है, फिर भी माया का असर पड़ रहा है। उसके प्रभाव से मुक्त होने का समाधान इस प्रकरण में दिया गया है।

एता मता तुम को दिया, सो जानत है तुम दिल।

बेसक इलमें ना समझे, तो सहूर करो सब मिल॥१॥

श्री राज जी कहते हैं कि मेरी आत्माओं ! मैंने अपने हृदय की जो इतनी ज्ञान राशि तुम्हें दी है, उसे तुम्हारा दिल अच्छी तरह से जानता है। यदि मेरे इस संशयरहित ज्ञान से भी तुम्हें मेरे स्वरूप की वास्तविक पहचान नहीं हुई, तो आप सभी मिलकर इस विषय पर गहन चिन्तन

कीजिए कि भूल कहाँ हुई है।

भावार्थ- रास से श्रृंगार तक का अनमोल ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् भी यदि हम माया के बन्धनों को नहीं तोड़ पाये हैं, तो यह आत्म-मन्थन करने की आवश्यकता है कि दवा करते रहने पर भी रोग क्यों बढ़ता गया।

ए तो देख्या बड़ा अचरज, पाए सुख बका अपार।

भी बेसक हुए हक इलमें, तो भी छूटे ना नींद विकार॥२॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी ! मैंने बहुत आश्चर्य की बात यह देखी है कि हमने परमधाम के अपार सुखों का रसपान किया है तथा ब्रह्मवाणी से पूर्णतया संशयरहित भी हो चुके हैं, तो भी माया का वैकारिक बन्धन हमको छोड़ नहीं पाया है।

भावार्थ- यद्यपि धाम धनी की मेहर से आत्माओं को परमधाम का सुख तो प्राप्त हो जाता है, किन्तु उस अनुपात में उनका जीव निर्मल नहीं हो पाता। संसार के जीव निर्बीज समाधि के द्वारा वासना-शून्य होकर वीतराग अवस्था को तो प्राप्त कर लेते हैं, किन्तु उन्हें वैकुण्ठ-निराकार से आगे की प्राप्ति नहीं हो पाती, क्योंकि तारतम्य ज्ञान से रहित होने के कारण वे परब्रह्म के धाम-स्वरूप को ध्यान द्वारा देख नहीं पाते।

इसके विपरीत जीवों की साधना के दसवें भाग से भी कम साधना से आत्मायें, धनी की मेहर से, सम्पूर्ण परमधाम और युगल स्वरूप को देख लेती हैं। मूल सम्बन्ध से आत्मा को तो लक्ष्य प्राप्त हो जाता है, किन्तु जन्म-जन्मान्तरों से विषयों की रस्सी से बँधा हुआ जीव पूर्ण रूप से इस अल्प साधना द्वारा निर्मल नहीं हो पाता।

इस चौपाई में यही बात प्रकट की गयी है। पहली चौपाई का कथन श्री राज जी का है तथा दूसरी चौपाई में श्री महामति जी की आवाज है।

ए बोलावत है हुकम, खुदी भी हुकम की।

तो हमेसा पाक होए, हक इस्क प्याले पी॥३॥

श्री राज जी का हुकम ही मुझसे यह सब कुछ कहलवा रहा है। मेरे अन्दर जो मैं (खुदी) है, वह भी श्री राज के हुकम की ही है। इसलिये, हे मेरी आत्मा! तू सांसारिक बन्धनों से परे होकर सर्वदा ही अपने प्राणवल्लभ के प्रेम भरे प्याले का पान कर।

भावार्थ- यदि हमारी मैं (खुदी) संसार, शरीर, या जीव की होती, तो उसे माया के बन्धनों में फँसे रहने का डर रहता। अक्षरातीत के हुकम से आयी हुई सुरता तो उन्हीं

की तरह निर्विकार है। इसलिये, हमें अपने आत्म – स्वरूप का बोध प्राप्त करके हमेशा ही श्री राज जी के प्रेम में डूबे रहना चाहिए।

खुदी हक हुकम की, सो तो भूलें नहीं कब।

वह काम सोई करसी, जो भावे अपने रब॥४॥

मेरे अन्दर जो मैं (खुदी) है, वह भी श्री राज जी के हुकम की ही है। वह अपने प्रियतम को कैसे भूल सकती है। वह तो मात्र वही काम करेगी, जो धाम धनी को अच्छा लगेगा।

भावार्थ- माया की "मैं" में तो संसार में भटककर प्रियतम को भूला जा सकता है, किन्तु श्री राज जी के हुकम की "मैं" में कदापि नहीं। इस चौपाई में यही बात प्रकट की गयी है।

हुकम तो है हक का, और खुदी भी ना हुकम बिन।

खुदी हुकम दोऊ हक के, इत क्या लगे रूहन॥५॥

मेरे अन्दर हुकम भी श्री राज जी का है तथा मैं भी हुकम की है। जब खुदी और हुकम दोनों ही धाम धनी के हैं, तो परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों को क्या लगता है अर्थात् उन्हें चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

भावार्थ- मूल स्वरूप की इच्छा (हुकम) से परात्म का स्वरूप प्रतिबिम्बित होकर आत्मा के रूप में इस खेल में आया हुआ है। उसे अपने अस्तित्व का जो भान हो रहा है, वह भी श्री राज जी की "मैं" से जुड़ा हुआ है। वह कुछ भी करती है, तो धाम धनी की इच्छा से ही करती है। ऐसी स्थिति में मूल मिलावा में बैठी हुई आत्माओं के लिये माया में फँसने की बात से चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है।

हक केहेवे नेकों को, दोस्त रखता हों मैं।

या खुदी या हुकम, टेढ़ी होए नहीं इनों सें॥६॥

श्री राज जी अपनी अँगनाओं से कहते हैं कि मैं तुमसे मित्रता (दोस्ती) रखता हूँ। इसलिये, खेल में तुम्हारे अन्दर जो "मैं" है या "मेरा हुकम" है, वे तुम्हारी गरिमा के विपरीत कुछ भी नहीं करेंगे।

भावार्थ— शत्रु का विपरीत (विलोम) शब्द मित्र या दोस्त होता है, जिसका तात्पर्य होता है – स्नेह या सौहार्द रखने वाला। इस चौपाई में "दोस्त" को लौकिक भावों में नहीं लेना चाहिए। श्री राज जी एवं आत्माओं में मात्र अँगना भाव (प्रिया-प्रियतम) का ही सम्बन्ध है, किन्तु यहाँ दोस्ती का आशय अत्यधिक प्रेम करने से है।

हुकमें लिया भेख रुह का, सो भी हांसी खुसाली रुहन।
क्यों सिर लेना खुदी हुकम, पाक होए पकड़े चरन॥७॥

श्री राज जी के हुकम ने आत्माओं का रूप धारण किया है, ताकि मूल मिलावा में बैठी हुई सखियों को हँसी – खुशी से भरी हुई यह लीला दिखायी जा सके। ऐसी स्थिति में खुदी (मैं) और हुकम कुछ अपने ऊपर क्यों लेंगे। वे तो माया से परे रहकर श्री राज जी के ही चरणों को पकड़ेंगे।

भावार्थ- यद्यपि इस संसार की लीला दुःखमयी है, किन्तु इसमें धनी को भूल जाने के कारण हँसी की लीला परमधाम में होगी। ब्रह्मवाणी के अवतरण से आत्माओं को इस खेल में श्री राज जी के दिल की उन गुह्य बातों (मारिफत) का पता चला है, जो परमधाम में भी नहीं था। अपनी परात्म में जाग्रत होने के पश्चात् आत्माओं को

बहुत अधिक प्रसन्नता होगी, क्योंकि अब वे स्वलीला अद्वैत के अति गुह्य रहस्यों को जान चुकी हैं। इसी कारण इस लीला को हँसी-खुशी की लीला कहा गया है।

जब आत्मा का स्वरूप भी हुक्म का है, तो उनके अन्दर उत्पन्न होने वाली इच्छा (हुक्म) और अपने अस्तित्व का बोध (मैं) माया से सम्बन्धित कैसे हो सकता हैं। ये दोनों तो निश्चय ही धाम धनी के चरणों से अखण्ड रूप से जुड़े रहेंगे। इसके विपरीत मोह सागर में उत्पन्न होने वाले जीवों का अहम् और इच्छा माया की ही होती है। इनसे परे होकर वे प्रियतम परब्रह्म के चरणों से लिपट ही नहीं पाते।

जब भेख काछा रूह का, फैल सोई किया चाहे तिन।
नाम धराए क्यों रद करे, हक एती देत बड़ाई जिन॥८॥

जब हुक्म ने आत्माओं का वेश धारण किया है, तो उसे उनकी गरिमा के अनुकूल ही आचरण करना चाहिए। जिन ब्रह्मसृष्टियों की धाम धनी ने इतनी महिमा कही है, हुक्म ने यहाँ के तनों को उनका ही नाम दिया है। परिणाम स्वरूप, इन तनों से होने वाले गुनाहों के कारण ब्रह्मसृष्टि का नाम कलंकित (रद्ध) हो रहा है।

भावार्थ— आत्मा इस खेल में मात्र द्रष्टा है। उसके सम्बन्ध से जीव को भी ब्रह्मवाणी के ज्ञान का प्रकाश मिल जाता है, किन्तु उसे आचरण में लाने का उत्तरदायित्व जीव का ही होता है। जन्म-जन्मान्तरों से अपने सिर पर विषय-विकारों का बोझ ढोने वाला जीव शीघ्रतापूर्वक निर्विकार अवस्था को प्राप्त नहीं हो पाता। ऐसी अवस्था में उससे होने वाली भूलें आत्मा के साथ जुड़ जाती हैं, क्योंकि आत्मा का नाम उसके साथ जुड़ा

होता है और आत्मा उस जीव के द्वारा होने वाले अच्छे-बुरे कार्यों को देख रही होती है। बिहारी जी एवं औरंगजेब में परमधाम की ही आत्मा थी, किन्तु इनके जीवों के अनुचित कर्मों के कारण "रतनबाई" एवं "साकुमार" का नाम बदनाम (कुख्यात) हो गया। इस चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है कि जीव की भूल के कारण आत्मा का नाम कलंकित होना शोचनीय है।

ए निस दिन बातें विचार हीं, सोई हुकम हुज्जत मोमिन।

पाक हुआ सो जो अर्स दिल, जाके हक कदम तले तन॥९॥

श्री राज जी का हुक्म (इच्छा) ही ब्रह्मसृष्टियों का दावा लेकर, अर्थात् आत्मा के स्वरूप में, इन बातों का दिन-रात विचार करता है। इन आत्माओं का दिल अत्यन्त (पूर्णरूपेण) पवित्र होता है। इनके ही मूल तन मूल

मिलावा में विद्यमान हैं और इनके ही दिल को धाम कहलाने की शोभा प्राप्त है।

हुकम तो तन में सही, और लिए रूह की हुज्रत।

हिस्सा चाहिए तिन का, सो भी माहें बोलत॥१०॥

यह तो निश्चित है कि संसार के इन तनों में श्री राज जी का हुक्म (आदेश स्वरूप) ही ब्रह्मसृष्टि का दावा लेकर लीला कर रहा है। अब विचार करने योग्य तथ्य यह है कि इन तनों में जो स्वरूप लीला कर रहा है , उसमें आत्मा और हुक्म का कितना-कितना भाग है?

भावार्थ- परात्म का नूरी तन तो इस संसार में आ नहीं सकता, किन्तु श्री राज जी के हुक्म से उसका प्रतिबिम्बित स्वरूप आत्मा के स्वरूप में इस संसार में आया हुआ है, जिसे हुक्म की सुरता का स्वरूप भी

कहते हैं। जिस प्रकार आदिनारायण की इच्छा मात्र (एकोऽहम् बहुस्याम्) से यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड दृष्टिगोचर होने लगता है, उसी प्रकार अक्षरातीत की इच्छा (हुक्म) मात्र से आत्मा का यह स्वरूप अस्तित्व में आ जाता है, जो जीव पर बैठकर इस खेल को देख रहा है। ऐसी स्थिति में यही कहा जा सकता है कि दोनों (हुक्म और आत्मा) का स्वरूप एक-दूसरे में वैसे ही ओत-प्रोत है, जैसे शक्ति और शक्तिमान, तथा शोभा और सौन्दर्य।

जिस प्रकार परमधाम में श्री राज जी की लीला-विलास की इच्छा से उनके मारिफत स्वरूप दिल से हकीकत स्वरूपा सखियों के तन प्रकट हुए हैं, उसी प्रकार इस खेल में भी हुक्म से परात्म से आत्मा का स्वरूप प्रकट हुआ है।

कह्या दिल अर्स मोमिन का, दिल कह्या न हुकम का।

देखों इनों का बेवरा, हिस्से रूह के हैं बका॥११॥

ब्रह्मसृष्टियों का ही दिल अर्श कहा जाता है, हुक्म का दिल नहीं होता। हे साथ जी! इनका विवरण देखिए।
आत्मा का सम्बन्ध तो अखण्ड परमधाम से है।

मोमिन तन में हुकम, तामें हिस्से रूह के देख।

दिल अर्स हक इलम, रूह की हुज्रत नाम भेख॥१२॥

ब्रह्ममुनियों के तन में श्री राज जी का हुक्म ही लीला कर रहा है। हे मेरी आत्मा! तू उसमें अपने अस्तित्व (भाग) को देख। श्री राज जी के हुक्म ने ही परात्म का रूप और नाम लेकर आत्मा का दावा ले लिया है तथा ब्रह्मवाणी के ज्ञान से उसका दिल धाम कहलाने लगा है।

भावार्थ— जिस प्रकार इस क्षर जगत् को आदिनारायण

की इच्छा शक्ति का विलास मानते हैं, उसी प्रकार श्री राज जी की इच्छा के विलास में ही सम्पूर्ण परमधाम के पच्चीस पक्षों एवं श्यामा जी और सखियों का अस्तित्व है। दूसरे शब्दों में यही कहा जा सकता है कि धाम धनी की इच्छा में ही सभी सखियों का स्वरूप निहित है। यद्यपि सखियाँ और श्यामा जी अनादि हैं, किन्तु लीला रूप में इन्हीं शब्दों में प्रकट करना पड़ता है। इसी प्रकार इस माया के खेल में श्री राज जी के ही हुक्म के विलास (क्रीड़ा) में आत्माओं का स्वरूप निहित है।

जो कदी रुहें इत हैं नहीं, तो भी एता मता लिए आमर।
 सो अर्स बका हक बिना, ले हुज्रत रहे क्यों कर॥१३॥

यदि कदाचित् यह मान लिया जाये कि इस खेल में आत्मायें हैं ही नहीं और केवल हुक्म ही इतना ज्ञान लिये

हुए विद्यमान है, तो प्रश्न यह होता है कि आत्माओं का दावा लेकर "हुक्म" अखण्ड परमधाम एवं श्री राज जी के बिना इस संसार में कैसे रह रहा है?

भावार्थ- जिस प्रकार महारास की लीला में श्री राज जी ने कई बार अपनी इच्छा मात्र से अपने जैसे १२००० स्वरूप धारण कर लिये, जो हूबहू वैसे ही थे जैसे इच्छा करने वाले श्री राज जी हैं। वे सभी रूप लीला के पश्चात् भले ही उन्हीं में विलीन हो गये, किन्तु लीला में उन्हें साक्षात् राज जी ही माना जायेगा, जबकि वे प्रकट हुए थे इच्छा शक्ति से। लीला में उनकी महत्ता इच्छा शक्ति से भी अधिक होगी।

इसी प्रकार धाम धनी के हुक्म से खेल में अवतरित होने वाली आत्मायें लीला रूप में अक्षरातीत की प्राणेश्वरी हैं। इस दृष्टि से उनकी महत्ता हुक्म से अधिक हो जाती

है। श्रीमुखवाणी में इस तथ्य को इस प्रकार प्रकट किया गया है—

कह्या अर्स हमारे दिल को, हैं हमहीं हक हुकम।

श्रृंगार २/९

हक अर्स दिल मोमिन, और अर्स हक खिलवत।

वाहेदत बीच अर्स के, है अर्स में अपार न्यामत।

श्रृंगार २/२

हुकम मेहेर के हाथ में, जोस मेहेर के अंग।

इस्क आवे मेहेर से, बेसक इलम तिन संग॥

सागर १५/२

आत्मा के धाम हृदय में स्वयं धाम धनी ही विराजमान हैं और अपने मुख से स्वयं को आत्माओं का आशिक कहते हैं। इतना ही नहीं, वे आत्माओं को अपने जीवन

का आधार भी कहते हैं—

ऊपर तले अर्स न कहा, अर्स कहा मोमिन कलूब।

सिनगार २३/७६

आसिक मेरा नाम, रूह अल्ला आसिक मेरा नाम।

खिल्वत १५/१

प्रीतम मेरे प्राण के, अंगना आतम नूर।

कलस हिंदुस्तानी २३/१७

इस प्रकार प्रेम की लीला में आत्मा की गरिमा हुक्म से अधिक हो जाती है, क्योंकि हुक्म करने वाले श्री राज जी स्वयं ही उसके प्रेम के वश में हो जाते हैं। आगे की चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है।

एता मता रूह का, हुकम के दरम्यान।

तिन का जोरा चाहिए, जो हक आगूं होसी बयान॥१४॥

हुक्म द्वारा होने वाली लीला में आत्मा का आशय इस प्रकार कहा गया है। इस खेल के समाप्त होने के पश्चात् धाम धनी के आगे जिसकी चर्चा हो, उसी को अधिक शक्ति वाला समझना चाहिए।

भावार्थ- इस चौपाई में आत्मा की ओर संकेत करते हुए उसकी महिमा को दर्शाया गया है।

हांसी न होसी हुकम पर, है हांसी रूहों पर।

जाको गुनाह पोहोंच्या खिलवतें, कहे कलाम अल्ला यों कर॥१५॥

इस प्रकार हुक्म पर हँसी नहीं होनी है, बल्कि आत्माओं पर ही होनी है। कुरआन में ऐसा कहा गया है कि मूल मिलावा में आत्माओं के गुनाह पहुँच जाते हैं।

भावार्थ- कुरआन के पारा १९ सूरत मोमिनीन आयत ३९/४४ में यह प्रसंग है कि ब्रह्मसृष्टियों से होने वाले गुनाह परमधाम में पहुँच रहे हैं।

मोमिन बैठे खेल में, अजूं बीच ख्वाब।
 गुनाह पेहेले पोहोंच्या अर्स में, करें मासूक रूहें हिसाब॥१६॥
 ब्रह्मसृष्टियाँ अभी भी माया के खेल में फँसी हुई हैं।
 उनके परमधाम पहुँचने से पहले ही उनके गुनाह वहाँ पहुँच रहे हैं, जिनका हिसाब स्वयं श्री राज जी कर रहे हैं।

हक हुकम तो है सब में, बिना हुकम कोई नाहें।
 पर यामें हुकम नजर लिए, और रूह का बड़ा मता या माहें॥१७॥
 श्री राज जी का हुकम तो सुरताओं के सभी तनों में है।

हुक्म से रहित कोई भी तन नहीं है, किन्तु इन तनों में हुक्म आत्मा की नजर लिये हुए है। इस प्रकार आत्मा की गरिमा हुक्म से बड़ी हो जाती है।

भावार्थ- परात्म की नजर (दृष्टि) तो श्री राज जी की दृष्टि से मिली हुई हैं, किन्तु उसे धाम धनी दिखायी नहीं पड़ रहे हैं, बल्कि यह झूठा संसार ही नजर आ रहा है। यह धाम धनी के हुक्म (आदेश स्वरूप) की युक्ति है, जिसने परात्म के सम्पूर्ण प्रतिबिम्ब को ही इस खेल में उतार दिया है। अब परात्म का प्रतिबिम्ब आत्मा के रूप में इस खेल को देख रहा है। उसकी दृष्टि-शक्ति (नजर) ही इस खेल की लीला का रसपान कर रही है। इस प्रकार अक्षरातीत की अर्धांगिनी रूपी आत्मा की गरिमा अधिक हो जाती है।

जेता हिस्सा तन में जिनका, सो जोरा तेता किया चाहे।
ए विचार करें सो मोमिन, हक हुकम देसी गुहाए॥१८॥

शरीर में आत्मा या हुकम के अस्तित्व का जितना हिस्सा (भाग) होता है, वह उतना ही अपनी शक्ति को दर्शाना चाहता है। इस बात का विचार करने वाली मात्र ब्रह्मात्मायें ही होती हैं। धाम धनी का हुकम भी इसकी साक्षी देगा।

ताथें हुकम के सिर दोस दे, बैठ न सकें मोमिन।
अर्स दिल खुदी से क्यों डरें, लिए हक इलम रोसन॥१९॥

इसलिये, अपने तन से होने वाले गुनाहों का दोष हुकम के शिर मढ़कर ब्रह्ममुनि चुपचाप बैठे नहीं रहेंगे। ब्रह्मवाणी के ज्ञान के प्रकाश से जिन आत्माओं का हृदय धाम की शोभा को प्राप्त हो चुका है, भला वे मैं (खुदी) का गुनाह

(अपराध) लगने से क्यों डरेंगी।

भावार्थ- प्रायः यह बात सर्वत्र ही कही गयी है कि श्री राज जी के हुक्म के बिना कुछ भी नहीं होता। ऐसी स्थिति में यह प्रश्न हो उठता है कि जब गुनाह भी धाम धनी के हुक्म से ही होता है, तो हमारा (आत्मा का) क्या दोष है? यह सारा दोष तो उस हुक्म का है, जिसके अधीन होकर हमसे गुनाह पर गुनाह हो रहे हैं। "इस्क बंदगी या गुणा, से सभ हत्थ हुकम" (सिन्धी ७/२८) का कथन भी यही सिद्ध करता है।

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि आत्म-जाग्रति के पश्चात् आत्मा के तन से जो भी गुनाह होते हैं, उसके लिये हुक्म का कोई भी उत्तरदायित्व नहीं है। ब्रह्मवाणी के ज्ञान के प्रकाश में जिनका दिल श्री राज जी का धाम बन चुका है, उससे भी यदि गुनाह होते हैं तो

निश्चित रूप से इसके लिये आत्मा और उसका जीव ही उत्तरदायी है। इस सम्बन्ध में किरंतन ११८/७ में कहा गया है—

जब तक भूली वतन, तब तक नहीं दोस।

जब जागी हक इलमें, तब भूली सिर अफसोस।।

श्रृंगार ग्रन्थ के इसी प्रकरण की चौपाई ६ में कहा गया है कि श्री राज जी का हुक्म ऐसा कोई भी कार्य नहीं करेगा, जिससे ब्रह्मसृष्टियों की गरिमा कलंकित हो।

वस्तुतः माया के प्रभाव से जीव ही ऐसे बुरे कार्य करता है, जिसके कारण आत्मा को गुनाह लग जाता है। हुक्म तो ब्रह्मसृष्टियों की खुशी के लिये ही सब कुछ कर रहा है। यह बात इसी प्रकरण की चौपाई ७ में कही गयी है।

इसलिये, इस चौपाई में ब्रह्मसृष्टियों को यह सिखापन दी गयी है कि ब्रह्मवाणी के ज्ञान का प्रकाश मिल जाने पर

उन्हें अपने दिल में प्रियतम का प्रेम लेकर चितवनि में डूब जाना चाहिए, जिससे उनके धाम हृदय में युगल स्वरूप विरजमान हो जायें और उनके ऊपर मैं (खुदी) या अन्य किसी प्रकार का गुनाह न लग सके।

गुनाह नूरतजल्ला मिनें, पोहोंच्या रूहों का जित।

कह्या गुनाह कुलफ मुंह मोतिन, दिल महंमद कुंजी खोलत॥२०॥

जिस परमधाम में ब्रह्मसृष्टियों का इस खेल में होने वाला गुनाह पहुँच रहा है, उस परमधाम में भी खेल माँगने के गुनाह के कारण ही उनके मुख को दाग वाला कहा गया है। हक्की सूरत श्री प्राणनाथ जी के दिल में जो ब्रह्मवाणी रूपी ज्ञान की कुञ्जी है, उससे उनका मुख पूर्व (पहले जैसा) रूप में हो जायेगा अर्थात् उनकी नींद (फरामोशी) समाप्त हो जायेगी।

भावार्थ- मेअराजनामा ग्रन्थ में यह वर्णित है कि जब मुहम्मद साहिब की आत्मा मूल मिलावा में पहुँची, तो उन्होंने ब्रह्मसृष्टियों को चुपचाप बैठे हुए देखा। इसे ही मुख पर दोष (कल्फ) लगना कहा गया है।

मुहम्मद साहिब के पूछने पर श्री राज जी ने कहा कि इन्हें खेल माँगने का गुनाह लगा है, जिसके कारण इनके मुख बन्द हैं अर्थात् इनकी सुरता माया के ब्रह्माण्ड को देखने के लिये तत्पर है। उस समय आत्मायें न तो इस खेल में थीं और न परमधाम में जाग्रत अवस्था में ही थीं, बल्कि श्री राज के दिल रूपी पर्दे पर देखने के कारण स्वयं को भूल गयी थीं।

ब्रह्मवाणी के प्रकाश में आत्मायें जब जाग्रत होकर अपने मूल तनों को (एकसाथ) प्राप्त होंगी, तो परात्म के तनों की फरामोशी (नींद) समाप्त हो जायेगी। इसे ही कल्फ

(फरामोशी) का हटना कहा गया है।

हिसाब जिनों हाथ हक के, अर्स-अजीम के माहें।

अर्स तन बीच खिलवत, ताको डर जरा कहूं नाहें॥२१॥

परमधाम में, जिनका हिसाब स्वयं धाम धनी के हाथों में है और जिनके मूल तन मूल मिलावा में विद्यमान हैं, उन ब्रह्मसृष्टियों को किसी भी प्रकार का कोई डर नहीं होता है।

करी हांसी हकें रूहों पर, जिन वास्ते किया खेल।

रूहों बहस किया इस्क का, बेर तीन देखाया माहें लैल॥२२॥

जिन ब्रह्मसृष्टियों को दिखाने के लिये यह माया का खेल बनाया गया है, उनके ऊपर श्री राज जी ने हँसी की लीला की है। आत्माओं ने परमधाम में धाम धनी से

इश्क के सम्बन्ध में बहस की थी, जिसके कारण उन्हें तीन बार माया (ब्रज, रास, और जागनी) में खेल दिखाया गया है।

हक आगूं कहे महंमद, मोहे अर्स में बिना उमत।

हकें दिया प्याला मेहेर का, कहे मोहे मीठा न लगे सरबत॥२३॥

श्री महामति जी अपने धाम हृदय में विराजमान श्री राज जी से कहते हैं कि हे धाम धनी! आपने मेरे हाथों में यह जो मेहर का प्याला दिया है, उसे धाम में ब्रह्मसृष्टियों के बिना अकेले पीने में मुझे मिठास का अनुभव नहीं हो रहा है।

भावार्थ— इस चौपाई में बशरी सूरत का कोई भी प्रसंग नहीं है, क्योंकि अक्षर ब्रह्म की आत्मा न तो ब्रह्मसृष्टियों के साथ प्रेम रस का पान कर सकती है और न उनके

हाथों में इश्क का रस ही दिया जा सकता है। यह कथन सिन्धी ग्रन्थ १/४२, ४३ के उस प्रसंग के अनुकूल है, जिसमें महामति जी की आत्मा कहती है—

तो मूके ई बुझाइयो, जे तूं हेकली थिए।

त तोसे करियां गालडी, दीदार पण डिए॥

आऊं हेकली की थियां, बी लगाई तो।

तो रे आए को कित्तई, जे हिनके पल्ले सो॥

अर्थात् मेरे प्राण प्रियतम! आपने मुझे यह समझाया है कि हे इन्द्रावती! यदि तू अकेली होकर मुझसे मिले, तो मैं तुमसे बातें करूँगा और तुम्हे दर्शन दूँगा। इसके उत्तर में श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मैं आपके पास अकेले कैसे आ सकती हूँ। आपने अन्य सभी आत्माओं को मेरे साथ लगा दिया है। आपके अतिरिक्त अन्य कौन है, जो इनको सम्भाले अर्थात् मेहर का अमृत रस बाँटे।

हकें दोस्त कहे औलिए, भए ऐसे बुजरक।

इनों को देखे से सवाब, जैसे याद किए होए हक॥२४॥

धाम धनी ने इन ब्रह्ममुनियों को अपना अत्यन्त प्यारा (दोस्त) कहा है। इनकी महिमा इतनी अधिक है कि इनके दर्शन मात्र से ही संसार के लोगों को इतना अधिक पुण्य मिलता है, जितना खुदा की याद या बन्दगी (परब्रह्म की भक्ति) करने से।

जित पर जले जबरईल, पोहोंच्या न बिलंदी नूर।

बिना रूहें इसारतें खिलवत, दूजा ए कौन जाने मजकूर॥२५॥

जिस परमधाम में जिबरील फरिश्ता भी नहीं जा सका और कहता है कि वहाँ जाने पर मेरे पँख जलते हैं, उस परमधाम में विद्यमान मूल मिलावा की गुह्यतम बातें जो संकेतों में कही गयी हैं, उन्हें ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त

भला अन्य कोई कैसे जान सकता है।

भावार्थ- पँख जलना एक आलंकारिक वर्णन है, जिसका अर्थ है, शक्ति से रहित होकर असहाय हो जाना। जोश का स्वरूप ही जिबरील है। सत् का जोश बिना इश्क के परमधाम में नहीं जा सकता। लौकिक पँखों से परमधाम तो क्या, निराकार को पार कर बेहद में भी नहीं जाया जा सकता।

अलस्तो बे रब कह्या हक ने, तब जवाब दिया रूहन।

कोई और होवे तो देवहीं, ए फुरमान कहे सुकन॥२६॥

कुरआन में यह बात कही गई है कि जब आत्मायें इस नश्वर जगत् में परमधाम से आने लगीं तो धाम धनी ने उनसे पूछा कि क्या मैं तुम्हारा प्रियतम नहीं हूँ ? तब सभी आत्माओं ने उत्तर दिया कि निश्चित रूप से आपके

अतिरिक्त अन्य कोई भी हमारा प्रियतम नहीं है। परमधाम में ब्रह्मसृष्टियों के अतिरिक्त अन्य कोई हो, तभी तो वह उत्तर भी देता, अर्थात् उस स्वलीला अद्वैत परमधाम में श्री राजश्यामा जी और सखियों के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं है।

तुम रुहें जात नासूत में, जाओगे मुझे भूल।

तब तुम ईमान ल्याइयो, मैं भेजोंगा रसूल॥२७॥

श्री राज जी ने परमधाम में ब्रह्मसृष्टियों से कहा कि अब तुम मृत्यु लोक में जा रही हो। वहाँ जाकर तुम मुझे भूल जाओगी। जब मैं अपने सन्देशवाहक के रूप में श्यामा जी को भेजूँगा, तब तुम उनकी कही हुई बातों पर अवश्य विश्वास लाना।

भावार्थ— इस चौपाई में "रसूल" शब्द से तात्पर्य

मुहम्मद साहिब से नहीं, बल्कि श्यामा जी (सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी) से है। रसूल शब्द का अर्थ सन्देशवाहक होता है। प्रकाश हिन्दुस्तानी २/२ में स्पष्ट रूप में कहा गया है कि धाम धनी ने श्यामा जी को अपना सन्देश देकर भेजा है—

सुंदर बाई इन फेरे, आए हैं साथ कारन जी।

भेजे धनिऐं आवेस देय के, अब न्यारे न होए एक खिन जी॥

श्यामा जी ने दो तनों (श्री देवचन्द्र जी और श्री मिहिरराज जी) के रूप में आत्माओं को जाग्रत किया है।

तुम माहों माहें रहियो साहेद, इत मैं भी साहेद हों।

ए जिन भूलो तुम सुकन, मैं फुरमान भेजों तुमको॥२८॥

हे सखियों! तुम आपस में खेल माँगने की साक्षी देना। यहाँ पर मैं भी साक्षी (गवाह) के रूप में हूँ। मेरी इन बातों

को तुम न भूलना। मैं तुम्हें जाग्रत करने के लिए तारतम वाणी (फुरमान) भेजूँगा।

भावार्थ- इस चौपाई में "फुरमान" का तात्पर्य श्रीमुखवाणी से है। कुरआन तो ब्रह्मसृष्टियों के आने की साक्षी देने के लिये १००० वर्ष पहले उतरा है। ब्रह्मसृष्टियों के अवतरण के समय तो मात्र ब्रह्मवाणी ही उतरी है, जिसे स्वसंवेद (आत्म वेद) या बातिनी कुरआन (इल्म-ए-लदुन्नी) भी कहते हैं।

और साहेद किए हैं फरिस्ते, सो भी देवेंगे साहेदी।

सो रसूल याद देसी तुमें, जो मेरे आगूं हुई इतकी॥२९॥

खेल में आने वाली ईश्वरीय सृष्टियाँ भी इस बात की साक्षी देंगी कि तुमने मुझसे खेल माँगा था। श्यामा जी भी तुम्हें इस बात की याद दिलायेंगी कि यहाँ पर तुमने

मुझसे किस प्रकार इश्क रब्द किया था और माया का खेल देखने की इच्छा की थी।

भावार्थ- इस चौपाई में फरिश्तों का तात्पर्य ईश्वरीय सृष्टि से है, जो अक्षर ब्रह्म ने धारण की हैं। यहाँ इस्राफील का कोई प्रसंग नहीं है।

ऐसी बड़ाई औलियों, हक अपने मुख दें।

कोई याको न जाने मुझ बिना, मैं छिपाए तले कबाए के॥३०॥

इस प्रकार स्वयं धाम धनी ने अपने मुख से ब्रह्ममुनियों की महिमा गायी है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि मैंने इन्हें अपने दामन के नीचे छिपा रखा है। इनके विषय में मेरे अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं जानता।

भावार्थ- इस चौपाई में "दामन" शब्द आलंकारिक है। जामे के निचले हिस्से को दामन (दावन) कहते हैं। यहाँ

दामन में छिपाये रखने का तात्पर्य है— उस "खिल्वत" में छिपाये रखना जिसमें धाम धनी, श्यामा जी, और सखियों के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं रह सकता।

मांगी हुकमें रूह की हुज्रतें, दीजे दुनी में लाड़ लज्जत।

सो हक आप मंगावत, कर हांसी जुदाई बीच वाहेदत॥३१॥

ब्रह्मसृष्टियों का दावा लेकर हुक्म ने ही धाम धनी से नश्वर जगत् में प्रेम का रसास्वादन माँगा। इस प्रकार स्वयं धाम धनी ने हँसी करने के लिये परमधाम की एकदिली में भी वियोग की लीला दिखायी है।

भावार्थ— इस मायावी जगत् में आत्माओं को ही हुक्म की सुरतायें कहा गया है, क्योंकि ये श्री राज जी की इच्छा (हुक्म) से परात्म की प्रतिबिम्ब स्वरूपा हैं। धनी के हुक्म से ही परात्म के तनों ने खेल माँगा था। अब वही

हुक्म आत्मा का दावा लेकर खेल में प्रेम का रसास्वादन कर रहा है, अर्थात् आत्मायें ही प्रेम का स्वाद ले रही हैं।

कबूं न जुदागी बीच वाहेदत, ए इलमें किए बेसक।

तेहेकीक बैठे तले कदमों, न जुदे रूहें हादी हक॥३२॥

ब्रह्मवाणी ने हमें इस बात में पूर्ण रूप से संशयरहित कर दिया है कि परमधाम के एकत्व (एकदिली) में कभी भी वियोग नहीं हो सकता। हम निश्चित रूप से मूल मिलावा में धाम धनी के चरणों में ही बैठे हुए हैं। श्री राज जी से ब्रह्मसृष्टियाँ और श्यामा जी मूलतः अलग हुए ही नहीं हैं।

हुआ रब्द वास्ते इस्क, सबों बड़ा कह्या अपना।

हकें हांसी करी हादी रूहोंसों, कहे देखो खेल फना॥३३॥

परमधाम में इश्क का रब्द हुआ, जिसमें सभी ने अपने

इश्क को बड़ा कहा। धाम धनी ने इश्क का ब्योरा करने के लिये हँसी की यह लीला की है और श्यामा जी तथा ब्रह्माँगनाओं से यह कहा कि अब तुम माया का झूठा खेल देखो।

खेल का जोस आया सबों, इस्क न रह्या किन।

सब चाहें साहेबी खेल की, हक इस्क न नजीक तिन॥३४॥

सबके मन में खेल के प्रति जोश आया हुआ है, अर्थात् सभी आत्मायें खेल देखने में बहुत अधिक तल्लीन हो गयी हैं। यही कारण है कि उनके पास अब परमधाम वाला प्रेम नहीं रह गया है। सभी ने परमधाम को भुला दिया है और इस संसार में स्वामित्व (शोभा, बड़प्पन, प्रतिष्ठा) चाहती हैं। इस प्रकार उनके पास प्रेम (इश्क) नहीं रह गया है।

था रब्द सबों इस्क का, हक देत फेर फेर याद।

रुहें क्योंए न छोड़ें खेल को, दुख लाग्या ऐसा कोई स्वाद॥३५॥

परमधाम में इश्क को लेकर सभी के मन में रब्द था।
धाम धनी वाणी द्वारा बार-बार उसकी याद दिला रहे हैं।
आत्माओं को इस दुःख भरे संसार का कुछ ऐसा स्वाद
लग गया है कि ये किसी भी तरह से इस झूठे संसार को
नहीं छोड़ना चाहतीं।

जब देखिए सामी खेल के, तो बीच पड़यो ब्रह्मांड।

एती जुदाई हक अर्स के, और खेल वजूद जो पिंड॥३६॥

जब हम खेल की ओर देखते हैं, तो हमारे और धनी के
बीच इस ब्रह्माण्ड का पर्दा आ जाता है। इस मायावी
संसार तथा इस पञ्चभौतिक तन में सुरता के आ जाने से
हमारा अक्षरातीत और परमधाम से वियोग सा हो गया

है।

भावार्थ— हमारी आत्मा जब इस संसार की ओर देख रही है या इस मानव तन में बैठी हुई है, तो फरामोशी की अवस्था में हमारी परात्म को न तो परमधाम दिखायी पड़ रहा है और न धाम धनी ही दिख रहे हैं। आत्मिक दृष्टि द्वारा परमधाम, धाम धनी, व अपनी परात्म को देख लेना ही आत्म-जाग्रति है।

हक इलमें ए पिंड देखिए, ए पिंड बीच अर्स तन।

एक जरा जुदागी ना रही, अर्स वाहेदत बीच वतन॥३७॥

ब्रह्मवाणी की ज्ञान-दृष्टि से जब इस शरीर को देखते हैं, तो हमें इसी शरीर के अन्दर अपने धाम हृदय में परात्म का भी तन दिखायी देता है। इस स्थिति में हमारे धाम हृदय में और एकदिली वाले परमधाम के बीच नाम मात्र

के लिये भी वियोग नहीं रह जाता।

भावार्थ- इस पञ्चभौतिक शरीर के अन्दर जीव विद्यमान है, जिस पर आत्मा विराजमान होकर इस खेल को देख रही है। चितवनि की गहन स्थिति में आत्मा अपने धाम हृदय में परमधाम, युगल स्वरूप, एवं अपने मूल तन को देखती है। इस अवस्था में उसके और धाम धनी तथा परमधाम के बीच में नाम मात्र की भी दूरी नहीं रह जाती है।

जाहेर नजरों खेल देखिए, कहूं नजीक न अर्स हक।

तरफ भी न पाई किनहूं, बीच इन चौदे तबक॥३८॥

किन्तु, यदि हम केवल बाह्य दृष्टि से ही इस संसार को देखें, तो अक्षरातीत और परमधाम कहीं भी दिखायी नहीं पड़ते। चौदह लोक के इस नश्वर ब्रह्माण्ड में तो आज दिन

तक कोई भी यह नहीं जान सका है कि अक्षरातीत तथा परमधाम कहाँ पर है।

जबथें पैदा भई दुनियां, रही दूर दूर थें दूर।

फना बका को न पोहोंचहीं, ताथें कोई न हुआ हजूर॥३९॥

जब से यह सृष्टि पैदा हुई है, परमधाम से हमेशा दूर ही दूर रही है। इस नश्वर जगत् के प्राणी अखण्ड धाम में नहीं जा पाते, इसलिये आज दिन तक कोई भी जीव अक्षरातीत का दर्शन नहीं कर सका।

भावार्थ— सृष्टि-प्रलय का चक्र अनादि काल से चल रहा है। तारतम ज्ञान के न होने से आज दिन तक किसी भी सृष्टि में कोई भी अक्षरातीत को नहीं जान सका था।

दोऊ गिरो उतरी दोऊ अर्स से, रूहें और फरिस्ते।

हकें इलम भेज्या इनों पर, सो ले दोऊ अर्सों पोहोंचे ए॥४०॥

इस माया का खेल देखने के लिये परमधाम से ब्रह्मसृष्टि तथा अक्षर धाम (सत्स्वरूप) से ईश्वरी सृष्टि इस नश्वर जगत में आयी हुई है। धाम धनी ने इन्हें जाग्रत करने के लिये तारतम वाणी का प्रकाश भेजा है। इसे ग्रहण कर दोनों सृष्टियाँ अपने-अपने धाम को प्राप्त होंगी।

भावार्थ- अक्षर ब्रह्म का रंगमहल परमधाम के अन्तर्गत ही आता है। सम्पूर्ण परमधाम की लीला श्री राजश्यामा जी एवं सखियों के बीच होती है। अक्षर ब्रह्म की लीला का धाम बेहद मण्डल है, जो ईश्वरी सृष्टि का निजधाम है।

आए फरिस्ते नूर मकान से, अर्स अजीम मकान रूहन।

कलाम अल्ला हक इलम, ए आए ऊपर रूह मोमिन॥४१॥

ईश्वरी सृष्टि अक्षर धाम (सत्स्वरूप) से आयी है तथा ब्रह्मसृष्टि परमधाम से। कुरआन तथा तारतम वाणी का ज्ञान धाम धनी द्वारा ब्रह्मसृष्टियों के लिये भेजा गया है।

दोऊ गिरो जो उतरी, दोऊ अर्सों से आई सोए।

सो आप अपने अर्स में, बिना लदुन्नी न पोहोंचे कोए॥४२॥

दोनों धामों (परमधाम तथा अक्षरधाम) से जो दोनों सृष्टियाँ इस मायावी खेल में आयी हैं, वे बिना तारतम ज्ञान के अपने प्रियतम की पहचान किये बिना निजधाम में नहीं जा सकतीं।

भावार्थ— प्रकाश हिन्दुस्तानी के कातनी के प्रकरण में कहा गया है कि बहुत सी सखियाँ आँखें मलती हुई उठेंगी, अर्थात् उन्हें तारतम ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकेगा। जिनके मूल तन मूल मिलावा में विद्यमान हैं, वे तो किसी

भी स्थिति में अवश्य ही निजधाम जायेंगी। यहाँ पर तारतम ज्ञान के बिना निजधाम न पहुँच पाने का तात्पर्य जागनी लीला के समय जाग्रत अवस्था में परमधाम में चितवनि द्वारा पहुँचने से है, अर्थात् तारतम ज्ञान द्वारा धनी की पहचान किये बिना कोई भी परमधाम का साक्षात्कार नहीं कर सकता।

आप अपने अर्स में, जाए न सके बिना इलम।

तो फुरमान इलम भेजिया, रूहें दरगाही जान खसम॥४३॥

इस मायावी जगत् में अखण्ड ज्ञान के बिना कोई भी सृष्टि अक्षरातीत या अक्षर के धाम में नहीं जा सकती अर्थात् उसका दर्शन नहीं कर सकती। यही कारण है कि धाम धनी ने परमधाम की ब्रह्माँगनाओं के लिये तारतम वाणी तथा कुरआन का ज्ञान दिया है।

तो अर्स कहा दिल मोमिन, जो पकड़या इलम हक।

हक सूरत सुध अर्सों की, रूहों रही न जरा सक॥४४॥

ब्रह्ममुनियों के हृदय को इसलिये तो धाम कहा गया है, क्योंकि इन्होंने ब्रह्मवाणी के ज्ञान को ग्रहण कर धाम धनी के स्वरूप की पहचान कर ली है। अक्षरातीत के अखण्ड स्वरूप तथा अखण्ड धामों (बेहद एवं परमधाम) के सम्बन्ध में अब इनके मन में किसी प्रकार का कोई भी संशय नहीं रह गया है।

भावार्थ- तीनों सृष्टियों के तीन धाम अलग-अलग हैं। ब्रह्मसृष्टि और ईश्वरी सृष्टि जहाँ अपने अखण्ड धाम (परमधाम तथा बेहद मण्डल) से सम्बन्धित हैं, वहीं जीव सृष्टि का धाम वैकुण्ठ तथा निराकार है। नवधा भक्ति से साकार उपासना करने वाले जहाँ वैकुण्ठ की प्राप्ति करते हैं, वहीं योग साधना करने वाले निराकार के

अनन्त मण्डल को प्राप्त होते हैं।

सोई मोमिन जाको सक नहीं, और दिल अर्स हक हुकम।

पट खोले नूर पार के, आए दिल में हक कदम॥४५॥

ब्रह्ममुनि वही हैं, जिनके दिल में धाम धनी के प्रति जरा भी संशय नहीं होता। श्री राज जी के हुक्म से इनके ही हृदय को धाम कहलाने की शोभा प्राप्त है। इनके ही पास अक्षर से भी परे अक्षरातीत के धाम की पहचान होती है और इनके ही हृदय में धाम धनी के चरण कमल विराजमान होते हैं।

पेहेले पट दे खेल देखाइया, दर्ई फरोमोसी हांसी को।

दिया बेसक इलम अपना, तो भीं न आवें होस मों॥४६॥

श्री राज जी ने अपनी अँगनाओं के साथ हँसी की लीला

की है, जिसमें उन्होंने माया की नींद (फरामोशी) के पर्दे में यह झूठा खेल दिखाया है। आत्माओं को जाग्रत करने के लिये उन्होंने अपना संशयरहित तारतम ज्ञान भी दिया है, फिर भी आत्मायें होश में नहीं आ रही हैं अर्थात् माया की नींद को नहीं छोड़ पा रही हैं।

इलमें अंदर जगाइया, तिन में जरा न सक।

कहे हुई है होसी असी की, रुहें बैठी कदम तले हक॥४७॥

ब्रह्मवाणी के ज्ञान ने आत्माओं को आन्तरिक रूप से जाग्रत कर दिया है, इसमें थोड़ा भी संशय नहीं है। तारतम वाणी का ज्ञान यही कहता है कि कुछ आत्माओं को तीनों धामों की पहचान हो चुकी है और कुछ को हो जायेगी। ब्रह्मसृष्टियाँ तो मूल मिलावा में धनी के चरणों में ही बैठी हुई हैं।

भावार्थ- अन्दर से जगाने का तात्पर्य है- ज्ञान दृष्टि से जगाना, जिससे आन्तरिक (सत्य) पहचान हो जाये। कर्मकाण्ड द्वारा होने वाली आस्था से बाह्य जाग्रति होती है। इसी प्रकार चितवनि द्वारा युगल स्वरूप को दिल में बसाने से यथार्थ जाग्रति होती है।

इन बातों सक जरा नहीं, तो दिल अर्स कहा मोमिन।

तो भी टले ना बेहोसी, वास्ते हांसी बीच वतन॥४८॥

ब्रह्ममुनियों को परमधाम की इन बातों में किसी भी प्रकार का संशय नहीं होता है, इसलिये इनके हृदय को धाम कहा जाता है। इतना होने पर भी इनके अन्दर से माया की नींद पूर्ण रूप से नहीं जा पा रही है, क्योंकि परमधाम में सभी की हँसी होनी है।

विरहा सुनत रूहें अर्स की, तबहीं जात उड़ तन।

सो गवाए याद कर कर हकें, जो बीतक अर्स वचन॥४९॥

परमधाम के विरह की बातों को सुनते ही तत्क्षण ब्रह्मात्माओं के तन छूट सकते हैं, किन्तु धाम धनी ने आत्माओं से परमधाम के इश्क रब्द की बातों को गवा-गवाकर उनका विरह ही समाप्त कर दिया है।

मैं जान्या प्रेम आवसी, विरहे के वचनों गाए।

सो अव्वल से ले अबलों, विरहा गाया लड़ाए लड़ाए॥५०॥

मैंने तो सोचा था कि परमधाम के विरह की बातों को गाने से प्रियतम का विरह आयेगा। इसलिये, मैं शुरु से लेकर अब तक बहुत ही लाड (प्यार) से विरह की बातों को कहती रही (गाती रही)।

भावार्थ- मुख से बोल देने से हृदय का विरह

स्वाभाविक रूप से कम हो जाता है, क्योंकि इससे मन को कुछ सन्तोष सा हो जाता है। वस्तुतः विरह-प्रेम की बातें शब्दातीत हैं। इन्हें होंठों पर लाना ही नहीं चाहिए। कलस हिंदुस्तानी में स्पष्ट रूप से कहा गया है – "जब मैं हुती विरह में, तब मुख बोल्यो न जाए।"

सो गाए विरहा न आइया, प्रेम पड़या बीच चतुराए।

हांसी कराई हुकमें, वचनों प्यार लगाए॥५१॥

विरह की बातों के गायन से हृदय में प्रेम नहीं आ सका, क्योंकि उसकी राह में बुद्धि की चतुराई बाधा बन गयी। इस प्रकार धाम धनी के हुक्म ने विरह के वचनों से हमारा प्रेम करा दिया और प्रियतम के प्रेम से वंचित कर दिया।

सो गाए गाए हुआ दिल सखत, मूल इस्क गया भुलाए।

मन चित्त बुध अहंकारें, गुझ अर्स कह्या बनाए॥५२॥

इस प्रकार विरह की बातों को गा-गाकर मेरा हृदय कठोर हो गया और प्रियतम से मूल प्रेम को मैंने भुला दिया। अब मेरा मन, चित्त, बुद्धि, और अहंकार रूपी अन्तःकरण परमधाम की गुह्य बातों को तरह-तरह से व्यक्त कर रहा है।

भावार्थ- हब्शे में श्री महामति जी के जीव ने विरह की जिस अवस्था का अनुभव किया, जागनी लीला में उस अवस्था में रह पाना सम्भव नहीं था। यद्यपि श्री महामति जी की आत्मा के धाम हृदय में युगल स्वरूप विराजमान थे, किन्तु हब्शा वाली विरहावस्था का अनुभव उनका जीव पुनः न कर सका। इस चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है।

अर्स मता जेता हुता, किया जाहेर नजर में लें।

हमें न आया इस्क सुपने, ए किया वास्ते जिन के॥५३॥

परमधाम का जो भी गुह्य ज्ञान था, उसे मैंने अपनी दृष्टि में लेकर वाणी द्वारा उजागर (प्रकट) किया। इस स्वप्न के संसार में, जिस इश्क को पाने के लिये मैंने ब्रह्मवाणी के ज्ञान को प्रकाशित किया, वह इश्क तो प्राप्त ही न हो सका।

भावार्थ— ब्रह्मवाणी के ज्ञान से ही अन्य आत्मायें जाग्रत हुईं और चितवनि की राह पर चलकर इन्होंने इश्क (प्रेम) को पा लिया। इल्म और इश्क (ज्ञान तथा प्रेम) दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं। श्री महामति जी के हृदय की प्रेम भरी पीड़ा यही है कि उन्होंने ज्ञान के क्षेत्र में स्वयं लगकर हब्शे वाली विरहावस्था को छोड़ दिया। इस चौपाई में प्रेम को किनारे करके मात्र शब्द-जाल में फँसे

रहने वाले विद्वत-जनों के लिये भी परोक्ष रूप में सिखापन है।

चौदे तबक बेसक हुए, इन बानी के रोसन।

सो इलम ले कायम हुए, सुख भिस्त पाई सबन॥५४॥

इस ब्रह्मवाणी का प्रकाश चौदह लोक के इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को ही पूर्णतया संशयरहित करने वाला है। इस प्रकार वे इस अलौकिक ज्ञान को ग्रहण करके अखण्ड हो जायेंगे तथा योगमाया में बहिश्तों के शाश्वत सुखों को प्राप्त करेंगे।

हक खिलवत गाए सैं, जान्या हम को देसी जगाए।

इस्क पूरा आवसी, पर हकें हांसी करी उलटाए॥५५॥

मैंने तो यही सोचा था कि श्री राज जी की खिल्वत का

गायन करने से हमारे अन्दर भरपूर प्रेम आ जायेगा और हमारी आत्मा जाग्रत हो जायेगी, किन्तु सब कुछ इसके विपरीत ही हुआ। इश्क न मिल पाने से धाम धनी ने हमारी बहुत अधिक हँसी की है।

भावार्थ- इस चौपाई में खिल्वत का तात्पर्य युगल स्वरूप सहित सखियों की शोभा, लीला, एवं सम्पूर्ण परमधाम है। परिक्रमा, सागर, एवं श्रृंगार ग्रन्थ खिल्वत के वर्णन में ही अवतरित है।

जो देते हम को इस्क, तो क्यों सकें हम गाए।

दिल अर्स पोहोंचे रूह इस्कें, तो इत क्यों रह्यो रूहों जाए॥५६॥

यदि धाम धनी हमें इश्क दे देते, तो हम विरह के गीत नहीं गा सकते। आत्माओं के धाम हृदय में यदि प्रेम (इश्क) आ जाये, तो इस झूठे संसार में वे क्यों रहेंगी।

सब अंग हमारे हक हाथ में, इस्क मांगें रोए रोए।

सब अंग हमारे बांध के, हक आप करें हांसी सोए॥५७॥

हमारे सभी अंग धाम धनी के हाथों में है, अर्थात् हमारे सभी अंगों की क्रियाशीलता धाम धनी की इच्छा (हुकम) पर निर्भर करती है। हम तो रो-रोकर श्री राज जी से अपना इश्क माँग रही हैं, किन्तु धाम धनी ने हमारे सभी अंगों को इश्क के प्रति निष्क्रिय कर दिया है (बाँध दिया है) और हमारी इस दयनीय स्थिति पर हँसी कर रहे हैं।

हम हुकम के हाथ में, हक के हाथ हुकम।

इत हमारा क्या चले, ज्यों जानें त्यों करे खसम॥५८॥

हम तो धाम धनी के हुकम से बन्धे हुए हैं और हुकम उनके हाथों में है। ऐसी अवस्था में इस संसार में हमारा कुछ भी वश नहीं चल पा रहा है। अब तो प्राणप्रियतम

श्री राज जी को जो भी अच्छा लगे, वही करें।

महामत कहे ए मोमिनोँ, हकें भुलाए हांसी को।

हम दौड़े जान्या लें इस्क, हम को डारे बका इलम मोँ॥५९॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! श्री राज जी ने हमारे ऊपर हँसी करने के लिये हमें इस खेल में भुलवा दिया है, अर्थात् हम अपने प्राणवल्लभ को भूल गये हैं। हम सोचते थे कि हम इश्क के लिये बहुत अधिक प्रयास करें, किन्तु हमारी हँसी करने के लिये श्री राज जी ने हमें अखण्ड परमधाम के ज्ञान में उलझा दिया है।

भावार्थ— इस चौपाई को पढ़कर हमें ऐसा नहीं मान लेना चाहिए कि हमें प्रियतम का प्रेम पाने के लिये प्रयास ही नहीं करना है। परिक्रमा ग्रन्थ का चौथा प्रकरण इश्क उपजाने के सम्बन्ध में है। उस प्रकरण में यही बात

दर्शायी गयी है कि आत्म-जाग्रति के लिये इश्क अनिवार्य है और इश्क पाने के लिये युगल स्वरूप तथा पच्चीस पक्षों की शोभा की चितवनि करना अनिवार्य है। इसे श्री राज जी जी का आदेश मानकर, परिणाम की चिन्ता न करते हुए, हमें प्रेम पाने के लिये सतत् प्रयास करना चाहिए। आलस्य के अधीन होकर निष्क्रिय हो जाना तो बहुत बड़ा अपराध होगा। इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी का कथन है—

बैठे मासूक इत जाहेर, पर दिल न लगे इत।

मासूक मुख देखन को, हाए हाए नैना न तरसत॥

प्रकरण ॥२७॥ चौपाई ॥२०२५॥

इस प्रकरण में जागनी के सन्दर्भ में इश्क , इल्म,
और हँसी के ऊपर प्रकाश डाला गया है।

बरनन कराए मुझपे, हकें सब अपने अंग।

सो विध विध विवेक सों, सो गाया दिल रूह संग॥१॥

धाम धनी ने अपने सभी अंगों की शोभा का वर्णन
मुझसे करवाया है। इस प्रकार मेरी आत्मा ने अपने दिल
के द्वारा प्रियतम की शोभा को अनेक प्रकार से अच्छी
तरह गाया है।

जो जोरा होए इस्क का, तो निकसे ना मुख दम।

सो गाए के इस्क गमाइया, जोरा कराया इलम॥२॥

यदि आत्मा के हृदय में इश्क का बल अधिक बढ़ जाये,
तो मुख से कोई भी शब्द नहीं निकल सकता। इस प्रकार

विरह का गायन करने से मैंने इश्क को खो दिया और मेरे ऊपर ज्ञान का वर्चस्व अधिक हो गया।

भावार्थ- इस चौपाई में प्रेम तथा ज्ञान के बीच में संतुलन बनाये रखने के लिये परोक्ष में शिक्षा दी गयी है।

इलम दिया याही वास्ते, कहूं जरा न रही सक।

अव्वल से आज लगे, ऐसा कराया हक॥३॥

धाम धनी ने ब्रह्मवाणी का भी ज्ञान इसलिये दिया, जिससे किसी प्रकार का संशय न रह जाये। धाम धनी शुरु से आज दिन तक मुझसे ऐसा ही कराते रहे हैं, अर्थात् तारतम वाणी का अवतरण कराते रहे हैं।

भावार्थ- वि.सं. १७१२ में सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के धामगमन के पश्चात् युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी मिहिरराज जी के धाम हृदय में विराजमान हो गये।

ब्रह्मवाणी का अवतरण तभी से प्रारम्भ हो गया, किन्तु प्रत्यक्ष रूप से अवतरण हब्शे से प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार वि.सं. १७१२-१७४८ तक के समय को "अव्वल से आज लगे" का समय कहा गया है।

इस्क हमसे जुदा किया, दिया दुनी को सुख कायम।

वचन गवाए हमपे, जो हमेसगी दायम॥४॥

श्री राज जी ने हमसे प्रेम तो अलग कर दिया, किन्तु ब्रह्मवाणी का अवतरण कराया, जिसके परिणाम स्वरूप समस्त ब्रह्माण्ड को बेहद मण्डल का अखण्ड सुख प्राप्त हुआ। धाम धनी ने हमसे परमधाम के उन वचनों का गायन करवाया अर्थात् कहलवाया, जो शाश्वत आनन्द को देने वाले हैं।

नैन श्रवन या रसना, जो अंग किए बरनन।

तिन इस्क देखाया हक का, और देख्या ना या बिन॥५॥

धाम धनी ने मुझसे अपने नेत्रों, कानों, तथा श्रवण आदि जिन अंगों का वर्णन कराया है , उन सबमें अक्षरातीत का ही प्रेम दृष्टिगोचर हुआ है। उनमें प्रेम के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं दिखायी देता।

जो अंग देखे आखिर लग, तिनसे देखे चौदे तबक।

और काहूँ न देख्या कछूए, बिना हक इस्क॥६॥

ब्रह्मवाणी के ज्ञान द्वारा धनी के जिन अंगों की शोभा को मैं अन्त तक देखती रही हूँ, उसी ज्ञान-दृष्टि से मैंने चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड का भी रहस्य जान लिया है। मैं श्री राज जी के इश्क से रहित कुछ भी नहीं हूँ।

भावार्थ- यद्यपि वास्तविक दर्शन प्रेम द्वारा ही होता है,

किन्तु ज्ञान द्वारा प्रेम का पथ प्रशस्त (प्राप्त) होता है।
अन्त तक देखने का तात्पर्य है— श्रृंगार वर्णन के आखिरी
क्षण तक।

बूझी तुमारी साहेबी, दिया सब अंगों इस्क देखाए।

तुमारे हर अंगों ऐसा किया, रहे चौदे तबक भराए॥७॥

हे धाम धनी! आपकी तारतम वाणी से हमने आपके
स्वामित्व (साहिबी) की पहचान कर ली है। इसी वाणी ने
हमें धनी के अंग-अंग में इश्क की अनुभूति करायी है।
आपके प्रत्येक अंग से निकलने वाले प्रेम की सुगन्धि ने
तो ऐसी स्थिति पैदा कर दी है कि चौदह लोक का यह
सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही प्रेम से भरा हुआ दिखायी दे रहा है।

भावार्थ— सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का प्रेम से भरा होना
भावात्मक अभिव्यक्ति है, यथार्थतः नहीं। यदि इस

स्वप्नवत् ब्रह्माण्ड के कण-कण में प्रेम ही प्रेम हो गया है, तो इसमें और परमधाम में तो कोई अन्तर ही नहीं रहना चाहिए। ऐसी स्थिति में तो यहाँ जन्म-मरण, काम, क्रोध, लोभ आदि विकारों का लेशमात्र भी चिह्न नहीं रहना चाहिये, जो व्यवहार में नहीं दिखता।

वस्तुतः इस प्रकार का अनुभव मात्र उन ब्रह्मात्माओं को ही होता है, जो एकमात्र धाम धनी के प्रेम में डूबी रहती हैं और उन्हें संसार दिखायी ही नहीं देता (प्रतीत ही नहीं होता)। इस प्रकरण की चौपाई ६-१० तक इसी प्रकार की अभिव्यक्ति है।

रसनाएं इस्क देखाइया, तिन भरया जिमी आसमान।

इस्क बिना न पाइए, बीच सकल जहान॥८॥

श्यामा जी की रसना ने हमें जिस इश्क का रसास्वादन

कराया है, उससे धरती से लेकर यह सम्पूर्ण आकाश भर गया है। अब तो इस संसार में प्रियतम के प्रेम (इश्क) के बिना और कुछ दिखायी ही नहीं देता।

सब अंग देखे ऐसे हक के, ऐसा दिया इलम।

हक इस्क सबों में पसरया, इस्क न जरा माहें हम॥९॥

श्री राज जी ने हमें ब्रह्मवाणी का ऐसा ज्ञान दिया है, जिससे हमने अपने प्राणवल्लभ के एक-एक अंग की शोभा को देखा है। यद्यपि इस जागनी लीला में हमारे पास जरा भी प्रेम नहीं है, किन्तु संसार के सभी प्राणियों में (योगमाया में) धनी के प्रति प्रेम फैल जायेगा।

भावार्थ— यदि वर्तमान में संसार के सभी प्राणियों में धनी का इश्क विद्यमान होता, तो करोड़ों की संख्या में नास्तिक और आसुरी वृत्ति वाले लोग नहीं दिखायी देते।

वास्तव में, यह प्रसंग योगमाया के ब्रह्माण्ड का है, जब संसार के सभी जीव श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप की पहचान करके विरह में तड़पेंगे। प्रकास हिंदुस्तानी की प्रकट वाणी में इस तथ्य पर प्रकाश डाला गया है—

सब जाते मिली एक ठौर, कोई न कहे धनी मेरा और।
पिया के विरह सो निरमल किए, पीछे अखण्ड सुख सबन को दिए॥
चौपाई १० एवं ११ में भी यही बात दर्शायी गयी है।

यों हर अंग हक के, सब सो ए किए रोसन।

आसमान जिमी के बीच में, कछू देख्या न इस्क बिन॥१०॥

इस प्रकार तारतम वाणी ने श्री राज जी के प्रत्येक अंग की शोभा को प्रकाश में ला दिया है। इस प्रकार अब धरती से लेकर आकाश तक सर्वत्र धनी का इश्क ही इश्क दिखायी पड़ रहा है।

द्रष्टव्य- सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का इश्कमयी होना योगमाया में ही सम्भव है।

इस्क हमारा हक सों, दिया हुकमें आड़ा पट।

हक का इस्क हम सों, किया दुनियां में प्रगट॥११॥

धनी के हुकम ने हमारे और धनी के प्रेम के बीच में माया का यह पर्दा डाल दिया है और संसार में हमारे तथा धनी के अखण्ड प्रेम को ब्रह्मवाणी के ज्ञान द्वारा उजागर कर दिया है।

यों हांसी हम पर करी, बनाए हमारे अक्स।

इस्क लिया खँच के, होसी एही हांसी बीच अर्स॥१२॥

इस प्रकार धाम धनी ने हमारी परात्म की प्रतिबिम्ब स्वरूपा आत्माओं के तन बनाकर हमारे साथ यह हँसी

की लीला की है। इस खेल में हमसे अपना इश्क खींच लिया है। जब हम अपने मूल तनों में जाग्रत होंगे , तो परमधाम में हँसी की अद्वितीय लीला होगी।

हक फेर फेर ऊपर जगावहीं, बिना हुकम न जागे अंदर।
फेर फेर बड़ाई मांगे इत, हक हांसी करें इनों पर॥१३॥

श्री राज जी वाणी के ज्ञान द्वारा बाह्य रूप से जगाते तो हैं, किन्तु बिना उनके हुकम के कोई भी आत्मा आन्तरिक रूप से जाग्रत नहीं हो सकती। वह ज्ञान पाकर भी इस संसार में झूठी प्रतिष्ठा (शोभा) पाना चाहती है। उनकी इस बात पर धाम धनी खूब हँसते हैं।

भावार्थ- ज्ञान द्वारा जाग्रत होना बाह्य जागनी है। इसके अन्तर्गत मात्र कहने-सुनने एवं ईमान की प्राथमिकता रहती है।

इश्क द्वारा प्रियतम को अपने धाम हृदय में बसा लेना ही आन्तरिक (वास्तविक) जागनी है। इसमें वाणी मौन हो जाती है।

मांगे दुनी में हक लज्जत, सो भी बुजरकी वास्ते।

इलमें हुए यों बेसक, एक जरा न दुनियां ए॥१४॥

ब्रह्मसृष्टियाँ इस संसार में धाम धनी का जो रसास्वादन (अनुभूति) चाहती हैं, वह भी बड़प्पन के लिये ही चाहती हैं। ब्रह्मवाणी के ज्ञान से वे धनी के प्रति तो इस प्रकार संशयरहित हो गयी हैं कि उनकी दृष्टि में इस संसार का अस्तित्व एक कण के बराबर भी नहीं है।

भावार्थ— प्रेम अति गोप्य होता है। परब्रह्म से प्रेम का एकमात्र उद्देश्य आत्मिक आनन्द को प्राप्त करना होता है, किन्तु यदि हम धनी से प्राप्त होने वाले अनुभवों को

संसार में प्रचारित कर यश (प्रतिष्ठा) की कामना करते हैं, तो इससे प्रेम की राह कलंकित हो जाती है। इस चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है।

यों जान मांगें फना मिने, लज्जत दुनी में हक।

यों हुकम हांसी करावहीं, दे अपना इलम बेसक॥१५॥

इस प्रकार वे जानते हुए भी इस झूठे संसार में धनी का मात्र स्वाद लेना चाहती हैं। धाम धनी का हुकम इस तरह अपना संशयरहित ज्ञान देकर ब्रह्मसृष्टियों की हँसी करा रहा है।

भावार्थ— ब्रह्मसृष्टियाँ तारतम वाणी के ज्ञान को ग्रहण करके प्रायः विरह-प्रेम में नहीं डूबतीं, बल्कि उसे मात्र कहने-सुनने का ही विषय बना लेती हैं। इस प्रकार वे संसार में मिलने वाली प्रतिष्ठा को ही सबसे बड़ा लक्ष्य

मान कर सन्तुष्ट हो जाती हैं और चितवनि द्वारा अपने धाम हृदय में प्रियतम को बसाने के आनन्द से वंचित रह जाती हैं। उनकी इस भूल के कारण धाम धनी हँसते हैं।

आप मंगावें आप देवहीं, ए सब हांसी कों।

ए सब जानें मोमिन, सक नहीं इनमों॥१६॥

अपनी अँगनाओं पर हँसी करने के लिये धाम धनी ही अपने हुक्म द्वारा उनसे अपनी अनुभूति रूपी स्वाद की माँग कराते हैं और स्वयं पूरा भी करते हैं। आत्मायें इस रहस्य को अच्छी तरह से जानती हैं और इस बात में उन्हें थोड़ा भी संशय नहीं रहता।

भावार्थ— चौपाई १४, १५ तथा १६ में स्वाद (अनुभूति) का तात्पर्य चितवनि द्वारा गोपनीय दर्शन की अनुभूति करना नहीं, बल्कि ज्ञान द्वारा अटूट ईमान को

ग्रहण करके धनी के प्रति अँगना भाव से जुड़े रहने, तथा कुछ ऐसी चमत्कारिक उपलब्धियों को प्राप्त करना है जिससे यह सिद्ध हो सके कि मैं परमहंस अवस्था को प्राप्त हो गयी हूँ और मुझे अब कुछ भी प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं रह गयी है।

कैयों पेहेचान होवहीं, कैयों नहीं पेहेचान।

सो सब होत हांसीय को, करत आप सुभान॥१७॥

इस खेल में कुछ को तो धनी के स्वरूप की पहचान होती है और कुछ को नहीं भी होती। इस प्रकार यह सारी लीला मात्र आत्माओं की हँसी करने के लिये ही हो रही है और इसे स्वयं श्री राज जी ही कर रहे हैं।

ए किया वास्ते इस्क बेवरे, सो इस्क न आया किन।

काहूं जोस जरा आइया, काहूं जरा न किस तन॥१८॥

हँसी की यह सम्पूर्ण लीला धाम धनी ने इश्क के ब्योरे (निर्णय) के लिये ही की है। यही कारण है कि किसी को भी इश्क नहीं आ रहा है। किसी को इश्क का थोड़ा सा जोश आता है, तो किसी को नाम मात्र भी नहीं आता।

भावार्थ- इश्क का थोड़ा सा जोश आने का तात्पर्य है—कुछ दिनों तक विरह—प्रेम में रहकर चितवनि में लगे रहना, किन्तु कुछ अनुभूति करके सन्तुष्ट हो जाना और जागनी करने तथा सेवा के नाम पर प्रेम भरी चितवनि की राह को छोड़ देना।

वास्ते रब्द इस्क के, जो किया बीच खिलवत।

सो हुकम आड़ा सब दिलों, तो इस्क न काहूं आवत॥१९॥

परमधाम में सखियों ने धाम धनी से जो रब्द किया था, उसके कारण ही (निर्णय के लिये) धनी के हुक्म ने यह माया का पर्दा कर दिया है, जिसके कारण किसी के भी अन्दर परमधाम का इश्क नहीं आ पा रहा है।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण से यह संशय होता है कि क्या सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी, श्री महामति जी, श्री युगलदास जी, तथा श्री रामरतन दास जी जैसे अन्य परमहंसों को भी इश्क नहीं आया? यदि नहीं आया तो "कारी कामरी रे" का प्रकरण क्यों उतरा?

निःसन्देह इन तनों में विराजमान आत्माओं ने अति कठोर साधनाओं द्वारा विरह-प्रेम में डूबकर अपने प्राणवल्लभ को पाया, किन्तु जागनी के उत्तरदायित्व ने उन्हें हमेशा उसी अवस्था में डूबे रहने का अवकाश नहीं दिया, जबकि प्रेम (इश्क) के सिद्धान्त के अनुसार

"इश्क को ए लछन, जो नैनों पलक न ले" में बने रहना ही इश्क में डूबे रहना है, जो इस मायावी ब्रह्माण्ड में पूर्णरूपेण सम्भव नहीं है। इस १९वीं चौपाई के चौथे चरण का यही आशय है।

इलम दिया सबन को, किया अर्स दिल मोमिन।

दूर कर सब हिजाब, आप आए अर्स दिल इन॥२०॥

श्री राज जी ने सभी आत्माओं को तारतम ज्ञान का प्रकाश देकर उनके दिल को अपने धाम बनाया है। प्रियतम ने अज्ञानता के सभी पर्दों को हटा दिया है और अपनी अँगनाओं के धाम हृदय में स्वयं आकर विराजमान हो गये हैं।

भावार्थ— तारतम ज्ञान का प्रकाश सभी आत्माओं के लिये आया है, भले ही अभी तक सबके पास ब्रह्मवाणी

का उजाला न पहुँचा हो। इसी भाव को व्यक्त करने के लिये इस चौपाई के पहले चरण में "सबन को" का कथन किया गया है।

पेहेचान सब अर्सों की, अर्सों बीच की हकीकत।

सो जरा छिपी ना रखी, सब दर्ई हक मारफत॥२१॥

श्री राज जी की तारतम वाणी ने उनके सर्वोपरि स्वरूप (मारिफत) की पहचान दे दी है, जिससे सभी अखण्ड धामों तथा उनकी लीला और स्वरूप सम्बन्धी वास्तविकता का बोध हो गया है। धाम धनी ने अब हमसे कोई भी बात छिपाकर नहीं रखी है।

पर इस्क न दिया आवने, वास्ते रब्द के।

हक आए इस्क क्यों न आवहीं, किया हुकमें हांसी को ए॥२२॥

किन्तु, इश्क-रब्द के कारण धाम धनी के हुक्म ने हमारे अन्दर इश्क नहीं आने दिया। हँसी करने के लिये हुक्म ने ऐसी लीला की है कि आत्माओं के धाम हृदय में श्री राज जी तो आ गये हैं, किन्तु इश्क नहीं आ सका।

रुहों लज्जत मांगी हकपे, अर्स की दुनियां माहें।

तो इलम दिया सबों अपना, बिना इलम लज्जत नाहें॥२३॥

ब्रह्मसृष्टियों ने श्री राज जी से इस नश्वर जगत में परमधाम का रसास्वादन (लज्जत) माँगा था। यही कारण है कि धाम धनी ने सभी आत्माओं के लिये अपनी तारतम वाणी का ज्ञान दिया है। बिना ज्ञान के स्वाद नहीं आता।

जो हक देवें इस्क, तो इस्क देवे सब उड़ाए।

सुध न लेवे वार पार की, देवे वाहेदत बीच डुबाए॥२४॥

यदि धाम धनी इस खेल में अपनी अँगनाओं को इश्क दे दें, तो इश्क आत्माओं से संसार को अलग कर देगा। वह न तो संसार की सुध लेने देगा और न ही परमधाम की। वह ब्रह्मसृष्टियों को परमधाम की एकदिली के शाश्वत सौन्दर्य और आनन्द में डुबो देगा।

जब इलम सबों आइया, सो कछू सखती देवे दिल।

तिन सखती तन अर्स की, पाइए लज्जत असल॥२५॥

जब आत्माओं को तारतम वाणी का ज्ञान मिल गया, तो उससे दिल में कुछ कठोरता सी हो गयी। उस कठोरता के कारण ही ब्रह्मसृष्टियों को परमधाम तथा अपने मूल तनों की वास्तविक अनुभूति हुई (स्वाद मिला)।

भावार्थ- प्रेम की गहन स्थिति में तो इस शरीर को सुरक्षित रख पाना ही बहुत कठिन है। ज्ञान आने से हृदय में जो थोड़ी सी कठोरता आती है, उसके कारण विरह में डूबकर चितवनि करने से परमधाम, युगल स्वरूप, तथा अपनी परात्म की झलक मिलती है। इसे ही लज्जत आना (अनुभूति करना) कहते हैं।

हुकम मांगे देवे हुकम, सो सब वास्ते हांसी के।

ए बातें होसी सब खिलवतें, इस्क रब्द किया जे॥२६॥

श्री राज जी का हुकम ही आत्माओं से मँगवाता है तथा वही पूर्ण भी करता है। ऐसा वह सभी ब्रह्मसृष्टियों की हँसी करने के लिये करता है। जिस परमधाम में हमने अपने प्रियतम से इश्क-रब्द किया था, वहाँ जाग्रत होने पर ये सभी बातें बहुत जोर-शोर से होंगी।

अनेक हकें हिकमत करी, सो इन जुबां कही न जाए।

होसी हांसी सबों अर्स में, जब करसी बातें बनाए॥२७॥

धाम धनी ने इस खेल में अनेक प्रकार की युक्तियाँ कर रखी हैं, जिनका वर्णन इस जिह्वा से नहीं हो सकता। जब सभी आत्मायें परमधाम में जाग्रत होंगी और इस खेल की बातें करेंगी, तो सबकी बहुत अधिक हँसी होगी।

हकें किया सब हांसीय को, जो जरे जरा माहें खेल।

इस्क रब्द के कारने, तीन बेर आए माहें लैल॥२८॥

इस खेल में होने वाली छोटी से छोटी घटना आत्माओं की हँसी से जुड़ी हुई है और धाम धनी द्वारा निर्देशित है। परमधाम में होने वाले इश्क-रब्द के कारण ही हमें इस खेल में तीन बार ब्रज, रास, एवं जागनी में आना पड़ा है।

हक हांसी बातें जानें हक, या जाने हक इलम।

इन इलमें सिखाई रूहों, सो बातें अर्स में करसी हम॥२९॥

ब्रह्मसृष्टियों के ऊपर होने वाली धाम धनी की हँसी को या तो स्वयं श्री राज जी जानते हैं या उनका तारतम ज्ञान जानता है। ब्रह्मवाणी के ज्ञान ने तो आत्माओं को भी सब कुछ बता दिया है, जिसकी चर्चा हम परमधाम में जाग्रत होने पर करेंगी।

एही खुलासा सब बात का, हकें किया हांसी को।

रेहेता रब्द रूहों इस्क का, सब केहेतियां बड़ा हम मौं॥३०॥

सभी बातों का यही सार है कि यह सारी लीला श्री राज जी ने अपनी आत्माओं पर हँसी करने के लिये ही की है। परमधाम में अनादि काल से सखियों और श्यामा जी का श्री राज जी के साथ इश्क-रब्द चल रहा था, जिसमें

सबका यही कहना था कि केवल हमारा ही इश्क बड़ा है।

याही वास्ते खेल देखाइया, इस्क गया सबों भूल।

फेर के सब सुध दई, भेज फुरमान रसूल॥३१॥

इस प्रकार, इश्क का ब्योरा करने के लिये ही धाम धनी ने माया का यह खेल दिखाया है, जिसमें सभी आत्माओं ने अपने प्रेम को भुला दिया है। पुनः श्री राज जी ने मुहम्मद साहिब के हाथ कुरआन भेजकर सबको सुध दी।

भावार्थ- ब्रज-रास में सखियाँ परमधाम के प्रति बेसुध रहीं। उनको परमधाम की साक्षियाँ देकर सावचेत करने के लिये ही मुहम्मद साहिब द्वारा कुरआन भेजा गया, ताकि जागनी लीला में आत्माओं को श्री प्राणनाथ जी (आखरूल इमाम मुहम्मद महदी) के सम्बन्ध में कोई संशय न रह जाये।

इनमें इसारतें रमूजें, सो खोल न सके कोए।

कुंजी भेजी हाथ रूहअल्ला, इमाम हाथ खोलाया सोए॥३२॥

कुरआन में संकेतों द्वारा परमधाम तथा ब्रज, रास, एवं जागनी लीला की बातें लिखी हुई हैं, जिनके भेदों को इस संसार का कोई भी प्राणी खोल नहीं सकता। श्री राज जी ने श्यामा जी के हाथ तारतम ज्ञान की कुञ्जी भेजी और श्री प्राणनाथ जी (इमाम मुहम्मद महदी) के हाथों से कुरआन आदि सभी धर्मग्रन्थों के भेदों को खुलवाया।

हांसी याही बात की, किए सब खेल में खबरदार।

तो भी इस्क न आवत, हुई हांसी बे-सुमार॥३३॥

ब्रह्मसृष्टियों की हँसी तो इसी बात के लिये होनी है कि धाम धनी ने इन्हें खेल में पूरी तरह से सावधान कर

दिया है, फिर भी इनके अन्दर अपने प्रियतम के प्रति इश्क (प्रेम) नहीं आ रहा है। इनकी इस भूल के कारण ही परमधाम में जो हँसी होगी, उसकी कोई सीमा नहीं है।

हक इस्क जाहेर हुआ, खेल माहें दम दम।

और न चौदे तबकों, बिना इस्क खसम॥३४॥

इस माया के खेल में अक्षरातीत का प्रेम पल-पल उजागर हो रहा है अर्थात् प्रकाश में आ रहा है। चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में श्री राज जी के इश्क के अतिरिक्त और कुछ दिखायी ही नहीं पड़ रहा है।

भावार्थ- इस प्रकरण की चौपाई ३४-३७ तक में यह कहा गया है कि इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में धाम धनी का इश्क ही दिखायी पड़ रहा है। इस कथन का विशिष्ट

आशय है, जो इस प्रकार है—

ज्ञान-दृष्टि से तथा आत्म-चक्षुओं से श्री राज जी के स्वरूप की जब वास्तविक पहचान हो जाती है, तो उनके इश्क की मारिफत (प्रेम के सर्वोपरि) स्वरूप की भी पहचान हो जाती है। धाम धनी ने इस मायावी जगत की रचना अपने प्रेम के परम स्वरूप (मारिफत) की पहचान कराने के लिये ही की है। यही कारण है कि इसके कण-कण में धनी का प्रेम दृष्टिगोचर हो रहा है।

यह कथन वैसे ही है, जैसे यह कहा जाये कि जिस प्रकार जब कोई प्रेमी अपने प्रेमास्पद को अति सुन्दर वस्तु भेंट में देता है तो माशूक को ऐसा आभास होता है जैसे इस वस्तु के कण-कण में मेरे प्रियतम का प्रेम दृष्टिगोचर हो रहा है। यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि इस ब्रह्माण्ड के अतिरिक्त अन्य सभी ब्रह्माण्डों के कण-

कण में प्रेम की झलकार का कहीं कोई वर्णन नहीं है। सभी स्वप्नवत् नाशवान् हैं। ब्रह्मसृष्टियों तथा अक्षरातीत के इस ब्रह्माण्ड में आने के कारण ही इसकी इतनी शोभा है।

ऐसा इलम हकें दिया, हुआ इस्क चौदे भवन।

मूल डार पात पसरया, नजरों आया सबन॥३५॥

धाम धनी ने हमें ब्रह्मवाणी का ऐसा ज्ञान दिया है कि इसे आत्मसात् करने वाली सभी आत्माओं को चौदह लोक का यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही प्रेम से भरा हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है। संसार रूपी वृक्ष की जड़ से लेकर डाली-डाली और पत्ते-पत्ते तक में इसका स्वरूप नजर आ रहा है।

भावार्थ- संसार रूपी वृक्ष की जड़ निराकार है, वैकुण्ठ

तना है, और स्वर्ग इसकी डालियाँ है। पृथ्वी और पाताल लोक इसकी पत्तियाँ है। इस वृक्ष की उत्पत्ति निराकार से हुई है।

तले सात तबक जिमीय के, या बीच ऊपर आसमान।

मूल बिरिख पात फूल फैलिया, सब हुआ इस्क सुभान॥३६॥

पृथ्वी के नीचे सात पाताल लोक हैं तथा ऊपर छः लोक आकाश में हैं। इस ब्रह्माण्ड रूपी वृक्ष की जड़ से लेकर पत्तों और फूलों तक में धनी के प्रेम की सुगन्धि का अनुभव हो रहा है।

भावार्थ- नीचे के सात पाताल लोक पृथ्वी से अलग नहीं हैं, बल्कि सात समुद्रों के निकटवर्ती स्थान जो हिमालय से नीचे आते हैं, पाताल लोक कहलाते हैं। जैसे- भीमसेन का विष खाने के कारण गंगा में डूबते-

डूबते पाताल लोक में पहुँच जाना, सगर के पुत्रों द्वारा यज्ञ के घोड़े को खोजते-खोजते पाताल (कपिल मुनि के आश्रम) में पहुँचना। ये दोनों स्थान बँगाल की खाड़ी के पास के तटवर्ती भाग हैं। इसी प्रकार अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया भी पाताल लोक के अन्तर्गत ही हैं।

ब्रह्माण्ड रूपी वृक्ष का फूल हिमालय है तथा फल सम्पूर्ण भारतवर्ष है। इसी में ज्ञान, भक्ति, तथा वैराग्य के फूल खिलते हैं और मोक्ष रूपी फल प्राप्त होता है।

नजरोँ आया सबन के, जब पसरया ए इलम।

तब और न देखे कछू नजरोँ, बिना इस्क खसम॥३७॥

जब ब्रह्मवाणी का ज्ञान चारों ओर फैल जायेगा, तो सभी को धनी का प्रेम ही प्रेम नजर आने लगेगा। उस समय किसी को धनी के प्रेम के अतिरिक्त अन्य कुछ भी

नहीं दिखायी देगा।

द्रष्टव्य— यह कथन पूर्ण रूप से योगमाया के ब्रह्माण्ड में सत्य सिद्ध होगा।

हकें अर्स कहा दिल मोमिन, ऐसी दर्ई बुजरकी रूहन।
 ढूँढ़ ढूँढ़ थके चौदे तबकों, पर बका तरफ न पाई किन॥३८॥

श्री राज जी ने ब्रह्मसृष्टियों को इतनी ऊँची गरिमा दी है कि उनके हृदय को अपना धाम कहा है। चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड के प्राणी खोज-खोज कर थक गये, किन्तु किसी को भी अखण्ड धाम का ज्ञान नहीं हो सका।

तबक चौदमें मलकूत, ला हवा सुन्य तिन पर।
 ता पर बका नूरमकान, जो नूरजलाल अछर॥३९॥

चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में वैकुण्ठ सर्वोपरि है। उसे घेरकर शून्य-निराकार का अनन्त मण्डल है। उसके परे अखण्ड अक्षरधाम है, जिसमें अक्षर ब्रह्म विराजमान हैं।

कई ऐसे खेल पैदा फना, होए नूरजलाल के एक पल।

इन कादर की कुदरत, ऐसा रखत है बल॥४०॥

अक्षर ब्रह्म की योगमाया में इतनी शक्ति है कि अक्षर ब्रह्म के एक पल में इस ब्रह्माण्ड जैसे अनेक (करोड़ों) ब्रह्माण्ड पैदा होते हैं तथा लय हो जाते हैं।

तरफ अर्स अजीम की, कोई जाने ना एक नूर बिन।

पर गुझ मता न जानहीं, जो है नूरजमाल बातन॥४१॥

परमधाम कहाँ है, इस बात को अक्षर ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं जानता है, किन्तु अक्षरातीत के हृदय

की अति गुह्य बातों का ज्ञान अक्षर ब्रह्म को भी नहीं है।

सो गुझ हक हादीय का, दिया खेल में बीच मोमिन।

तो दिल अर्स किया हकें, जो अर्स अजीम में इनों तन॥४२॥

इस प्रकार युगल स्वरूप की अति गुह्य बातों की जानकारी ब्रह्मसृष्टियों को इस खेल में तारतम वाणी द्वारा हो गयी है। इसलिये तो धाम धनी ने इनके हृदय को अपना धाम कहा है, क्योंकि इनके मूल तन मूल मिलावा में विराजमान हैं।

हकें अर्स की सुध सब दर्ई, पाई हकीकत मारफत।

हक हादी रूहें खिलवत, ए बीच असल वाहेदत॥४३॥

श्री राज जी ने ब्रह्मसृष्टियों को परमधाम की सम्पूर्ण हकीकत एवं मारिफत सत्य तथा परमसत्य की पहचान

करायी है। श्री राज जी, श्यामा जी, और सखियाँ परमधाम की खिल्वत में हैं, जो अखण्ड एकदिली के अन्दर विद्यमान हैं।

भावार्थ- श्री राज जी का मारिफत स्वरूप दिल ही हकीकत के रूप में श्यामा जी एवं सखियों के रूप में लीला कर रहा है। सर्वत्र श्री राज जी के दिल का ही व्यक्त स्वरूप होने से सम्पूर्ण परमधाम एकदिली (वहदत) के अन्तर्गत है। उसी वहदत के अन्दर खिल्वत छिपी है, अर्थात् लीला रूप सम्पूर्ण परमधाम में लीला स्थान (खिल्वत) है। खिल्वत और वहदत दोनों एक-दूसरे में ओत-प्रोत हैं तथा एक ही दिल के प्रगट रूप हैं।

कहे हुकमें महामत मोमिनो, हक इस्क बोले बेसक।

इस्क रब्द वाहेदत में, हक उलट हुए आसिक॥४४॥

श्री राज जी के हुक्म (आदेश) से श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! इस खेल में तो श्री राज जी का इश्क ही बोल रहा है, अर्थात् धाम धनी के प्रेम का ही वर्चस्व है। इस बात में किसी प्रकार का संशय नहीं करना चाहिए। परमधाम की एकदिली में जो इश्क-रब्द हुआ था, उसका निर्णय करने के लिये माशूक (प्रेमास्पद) श्री राज जी अब आशिक (प्रेमी) बन गये हैं।

प्रकरण ॥२८॥ चौपाई ॥२०६९॥

हक मेहेबूब के जवाब

प्रियतम श्री राज जी की ओर से आत्माओं को उत्तर

इस प्रकरण में श्री राज जी ने ब्रह्मसृष्टियों को प्रत्यक्ष सम्बोधन करते हुए अपने प्रेम भरे हृदय के उद्गार व्यक्त किये हैं।

रूहों मैं-रे तुमारा आसिक, मैं सुख सदा तुमें चाहों।

वास्ते तुमारे कई विध के, इस्क अंग उपजाओं॥१॥

परमधाम की आत्माओं! मैं तुमसे प्रेम (इश्क) करने वाला अनादि प्रेमी (आशिक) हूँ। मैं हमेशा तुम्हें सुखी देखना चाहता हूँ। तुम्हारी आत्म-जाग्रति के लिये मैं तुम्हारे हृदय में अनेक प्रकार से प्रेम पैदा करता हूँ।

मैं आसिक तुमारा केहेलाया, मैं लिखे इस्क के बोल।

मासूक कर लिखे तुमको, सो भी लिए ना तुम कौल॥२॥

मैंने सभी धर्मग्रन्थों में अनन्य प्रेम (इश्क) की बातें लिखी हैं और उनमें मुझे तुम्हारा प्रेमी (आशिक) कहकर वर्णित किया गया है। उन ग्रन्थों में तुम्हें मेरा माशूक (प्रियतमा) कहकर लिखा गया है। फिर भी, तुमने उन धर्मग्रन्थों में लिखे हुए वचनों को ग्रहण नहीं किया।

भावार्थ- ऋग्वेद/८/४४/२३ में आत्मा और परब्रह्म के मध्य गहन प्रेम का स्वरूप इस प्रकार वर्णित किया गया है- "यदग्रे स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम्" अर्थात् जो मैं हूँ वह तू हो जाये, और जो तू है वह मैं हो जाऊँ।

माहेश्वर तन्त्र ३८/६२ में कहा गया है-

त्वं में प्राणाधिका चासि सर्वस्वं मे त्वमेव हि।

त्वदधीनोस्मयहं साध्वि प्रेमपाशनियन्त्रितः॥

अर्थात् परब्रह्म आत्माओं से कहते हैं कि तुम मेरी प्राणाधिका हो और तुम्हीं मेरी सर्वस्व हो। तुम्हारे प्रेम-पाश में बँधा हुआ मैं तुम्हारे अधीन रहता हूँ।

इसी प्रकार श्रीमद्भागवत् का दसवाँ स्कन्ध अक्षरातीत तथा आत्माओं की प्रेम-लीला से भरा हुआ है। कुरआन के सूरे यूसूफ में परोक्ष रूप से आत्मा, परब्रह्म, और उनके प्रेम का वर्णन किया गया है। तफ्सीर-ए-हुसैनी में लिखा है- "मुहम्मद नूर इल्लाह अनामिन अल्लाह व कुल्ल।" अल्लाहतआला ने सबसे पहले श्यामा जी (मुहम्मद) का स्वरूप प्रकट किया, तत्पश्चात् अपनी अँगरूपा आत्माओं का स्वरूप प्रकट किया।

अव्वल बीच और आखिर, लिखे तीनों ठौर निसान।

ए बीतक हम तुम जानहीं, भेजी तुमको पेहेचान॥३॥

धर्मग्रन्थों (कुरआन, भागवत, एवं पुराण संहिता) में
व्रज, रास, और जागनी लीला की पहचान दी गयी है।
इन तीनों लीलाओं की बात को हम और तुम जानते हैं।
मैंने धर्मग्रन्थों के माध्यम से यह सारी पहचान भेज दी है।

दो बेर दुनियां नई कर, किन दो बेर डुबाई जहान।

तुमको लैलत कदर में, दो बेर किन बचाए तोफान॥४॥

तुम इस बात का गहराई से विचार करो कि इस संसार
को दो बार किसने प्रलय कर दिया और पुनः नया संसार
पैदा कर दिया? माया के इस खेल में तुम्हें किसने दो
बार प्रलय से बचाया?

भावार्थ— इस चौपाई में संसार (दुनिया, जहान) का

तात्पर्य समस्त ब्रह्माण्ड नहीं, बल्कि सृष्टि के अल्प भाग से लेकर पृथ्वी सहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही संसार के अन्तर्गत आता है। जिस प्रकार गंगाजल की एक बूँद को भी गंगाजल ही कहते हैं, उसी प्रकार कई बार अल्प भूभाग तथा पारिवारिक या सामाजिक क्षेत्र को भी "संसार" शब्द से सम्बोधित किया जाता है, जैसे— तुम्हारे आने से तो मेरी दुनिया आबाद हो गयी।

इन्द्रकोप के समय समस्त पृथ्वी लोक का लय नहीं हुआ था, बल्कि व्रज को छोड़कर शेष संसार डूब गया था, जो श्री राज जी की कृपा—दृष्टि से यथावत् हो गया। यद्यपि प्रलयकालीन बादलों ने अपना सम्पूर्ण जल बरसा डाला था, किन्तु अति अल्प समय में ही सम्पूर्ण दृश्य पूर्ववत् हो गया था।

फेर तीसरी बेर दुनी कर, जिनमें होसी फजर।

सब विध बेसक करके, तुमें खेल देखाया और नजर॥५॥

पुनः तीसरी बार इस संसार को किसने पैदा कर दिया? इसी संसार में तो ज्ञान का उजाला होने वाला है। मैंने तुम्हें ब्रह्मवाणी के ज्ञान से पूर्णतया संशयरहित कर दिया है। माया का यह खेल मैंने तुम्हें एक विशेष दृष्टि से दिखाया है।

भावार्थ— यद्यपि अनन्त काल से सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय का चक्र चल रहा है, किन्तु तीसरी बार इस संसार के अस्तित्व में आने का अर्थ है—

पहली बार— व्रज में इन्द्रकोप से पहले का संसार।

दूसरी बार— रास के पूर्व होने वाले प्रलय से पहले का जगत।

तीसरी बार— वर्तमान ब्रह्माण्ड।

ब्रज लीला में पूर्ण निद्रा थी तथा रास में अर्ध निद्रा।
 "पूरी नींद को जो सुपन, कालमाया नाम धराया तिन"
 तथा "कछू नींद कछू जाग्रत भए, जोगमाया को सिनगार
 जो कहे" (प्रकट वाणी) के कथनों से यही सिद्ध होता है।

जागनी ब्रह्माण्ड में तारतम ज्ञान से पूर्ण जाग्रत होने का
 स्वाद मिल रहा है। इस लीला में ब्रज, रास, सम्पूर्ण
 परमधाम, तथा अक्षरातीत के हृदय की गुह्यतम
 (मारिफत) बातें भी मालूम हो गयी हैं। यहाँ तक कि इस
 माया का भी बोध हो गया है, जो परमधाम में नहीं था।

इस प्रकार ब्रह्मसृष्टियों को जो अलौकिक ज्ञान-दृष्टि
 प्राप्त हो गयी है, उसे ही "और नजर" कहा गया है।
 परमधाम में प्रेम की नजर रही है, जबकि ब्रज लीला में
 अज्ञान (फरामोशी) की दृष्टि, तो रास में अर्धनिद्रा जैसी
 स्थिति थी। यहाँ हुक्म की नजर या सुरता का प्रसंग नहीं

है, क्योंकि तीनों लीलायें तो हुक्म या सुरता की ही नजर से खेली गयी हैं।

तुम जो अरवाहें अर्स की, साथ हक जात निसबत।
 ए जो दोस्ती हक हमेसगी, बीच खिलवत के वाहेदत॥६॥
 तुम परमधाम की आत्मायें हो। तुम्हारे साथ मेरा प्रिया-
 प्रियतम का अनादि सम्बन्ध है। स्वलीला अद्वैत परमधाम
 के अन्दर लीला रूप सभी स्थानों (खिल्वत) में तुमसे
 मेरा अनादि काल से प्रेम व्यवहार (दोस्ती) है।

कोई तरफ न जाने अर्स की, तो मुझे जाने क्यों कर।
 नूरजलाल नूर मकाने, एक इने मेरे तरफ की खबर॥७॥
 जब इस सृष्टि का कोई प्राणी परमधाम के बारे में ही
 नहीं जानता है, तो मेरे विषय में कैसे जान सकता है।

अक्षरधाम में रहने वाले एकमात्र अक्षर ब्रह्म को ही मेरे बारे में जानकारी है।

दूजा तरफ तो जानहीं, कोई और ठौर बका होए।

नाहीं क्यों जाने तरफ है की, किन ठौर से तरफ ले कोए॥८॥

अक्षर ब्रह्म के अतिरिक्त कोई और मुझे तभी जान सकता था, जब परमधाम एवं अक्षरधाम (बेहद मण्डल) के अतिरिक्त कोई अन्य अखण्ड स्थान भी होता। महाप्रलय में लय हो जाने वाला प्रतिभास स्वरूप जीव भला अखण्ड धाम को कैसे जान सकता है। किसी नश्वर जगत का रहने वाला कोई भी प्राणी अखण्ड धाम में कैसे जा सकता है।

खेल कई कोट एक पल में, देख उड़ावे पैदा कर।

ऐसी कुदरत नूरजलालपे, नूर-मकान ऐसा कादर॥९॥

अक्षरधाम में विराजमान अक्षर ब्रह्म के पास ऐसी शक्ति है, जिसके द्वारा वे एक पल में ही करोड़ों ब्रह्माण्ड पैदा कर देते हैं और उन्हें देखकर लय कर देते हैं।

भावार्थ- अक्षर ब्रह्म का रंगमहल परमधाम के जिस भाग के अन्तर्गत पड़ता है, उसे अक्षरधाम कहते हैं। अक्षर ब्रह्म की लीला उनके अन्तःकरण (चतुष्पाद विभूति) द्वारा सम्पादित होती है, जिसे योगमाया, बेहद मण्डल, या अक्षर का धाम भी कहते हैं।

सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति इसी योगमाया (अव्याकृत+सबलिक) से होती है। केवल में उनकी आनन्द लीला होती है तथा सत्स्वरूप से उनकी सम्पूर्ण लीला निर्देशित की जाती है। सृष्टि के लिये अक्षर ब्रह्म मात्र संकल्प करते

हैं। शेष सारा कार्य योगमाया द्वारा किया जाता है, जिसे इस चौपाई में कुदरत (अखण्ड माया या अखण्ड प्रकृति) कहा गया है।

अक्षरधाम के अन्दर विराजमान अक्षर ब्रह्म अपनी जाग्रत अवस्था में अपने नूरी नेत्रों से इन नश्वर ब्रह्माण्डों को नहीं देखते हैं, अन्यथा ये सभी ब्रह्माण्ड हमेशा के लिये अखण्ड हो जायेंगे। सृष्टि की उत्पत्ति, पालन, (देखना) और प्रलय के लिये मात्र उनका संकल्प ही होता है। करोड़ों ब्रह्मांडों की उत्पत्ति, देखने, और प्रलय का कार्य सबलिक (चित्त) के द्वारा सम्पादित होता है, जिसकी प्रेरणा सत्स्वरूप (अहम् स्वरूप) से होती है।

ए बातून जो मेरे अर्स का, सो सुध नूर को भी नाहें।

मेरी गुझ अर्स जो खिलवत, तुम इन खिलवत के माहें॥१०॥

मेरे परमधाम की गुह्य बातों की जानकारी तो अक्षर ब्रह्म को भी नहीं है। परमधाम के मूल मिलावा की अति गोपनीय (इश्क-रब्द सम्बन्धी) बातों को एकमात्र तुम्हीं जानती हो, क्योंकि तुम अपने मूल तन से वहीं पर बैठी हुई हो।

दोस्ती हक हमेसगी, क्यों भुलाए दई मोमिन।

तुम जो रूहें अर्स की, मेरे अर्स के तन॥११॥

तुम परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ हो तथा मेरी तन स्वरूपा (अँगरूपा) हो। तुमसे तो मेरा अनादि काल का प्रेम रहा है, किन्तु आश्चर्य है कि इस खेल में तुमने उसे क्यों भुला दिया है।

अंग हादी मेरे नूर से, तुम रूहें अंग हादी नूर।

तो अर्स कहा तुम दिल को, जो रूहें वाहिद तन हजूर॥१२॥

श्यामा जी मेरे हृदय की नूर स्वरूपा हैं। इसी प्रकार तुम भी श्यामा जी के हृदय की नूर स्वरूपा हो। मेरे दिल की प्रत्यक्ष स्वरूपा होने के कारण ही तुम्हारे दिल को मेरा धाम कहा गया है।

भावार्थ— श्री राज जी के दिल में प्रेम, आनन्द, शोभा आदि जो कुछ भी (नूर) विद्यमान है, उसी का व्यक्त स्वरूप श्यामा जी हैं। इसी प्रकार श्यामा जी के हृदय का व्यक्त स्वरूप सखियाँ हैं। अतः यह स्पष्ट है कि श्री राज जी का दिल ही श्यामा जी और सखियों के स्वरूप में लीला कर रहा है। इस प्रकार उनके दिल को अक्षरातीत का धाम कहा जाना स्वाभाविक है।

और भी लिख्या महंमद को, आसमान से तेहेतसरा।

ए बहुविध बेहेरूल हैवान, जल सिर लग कुफर भरया॥१३॥

कुरआन के २८वें पारे में मुहम्मद साहिब को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि निराकार (आकाश) से लेकर पाताल तक मोहजल का ही विस्तार है। इसमें अनेक प्रकार के पशु वृत्ति वाले प्राणी रहते हैं, जिनमें कुफ्र ही कुफ्र (पाप ही पाप) भरा होता है।

कई विध के माहें हैवान, कई जिन देव इन्सान।

बीच मरजिया होए काढ़ी सीप, मिने मोती महंमद पेहेचान॥१४॥

इस मोहसागर में पशु वृत्ति वाले बहुत से राक्षस (जिन्न), देवता, और मनुष्य रहते हैं। इस मोहसागर में गोताखोर की तरह मैंने मिहिरराज रूपी सीप को निकाला, जिससे निकलने वाली मोती रूपी इन्द्रावती

आत्मा को महामति (आखिरी मुहम्मद) की पहचान व शोभा दी।

सो तुम अजुं न समझे, मैं कर लिख्या मासूक।

ए सुकन सुन तुम मोमिनो, हाए हाए हुए नहीं टूक टूक॥१५॥

मैंने तुम्हें अपनी प्रियतमा करके लिखा है, फिर भी तुमने अभी मेरे भावों को नहीं समझा है। हाय! हाय! यह कितने खेद की बात है कि मेरे इन वचनों को सुनकर भी तुम मेरे प्रति प्रेम में टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो जा रही हो, अर्थात् मेरे ऊपर अपना सर्वस्व न्योछावर क्यों नहीं कर रही हो।

बसरी मलकी हकी लिखी, आई महंमद तीन सूरत।

एक अव्वल दो आखिर, सो वास्ते तुम उमत॥१६॥

कुरआन में मुहम्मद की तीन सूरतें – बशरी, मल्की, और हक्की – कही गयी हैं। ये तीनों सूरतें मात्र तुम्हारे लिये ही अवतरित हुई हैं। इनमें से बशरी सूरत सबसे पहले तुम्हारे आने की साक्षी देने के लिये आयी तथा शेष दोनों सूरतें (मल्की और हक्की) बाद में अर्थात् जागनी लीला में आयी हैं।

**बंदगी मजाजी और हकीकी, ए जो कहियां जुदियां दोए।
एक फरज दूजा इस्क, क्यों न देख्या बेवरा सोए॥१७॥**

कुरआन में दो प्रकार की भक्ति (बन्दगी) कही गयी है – सच्ची और झूठी। इनमें कर्मकाण्ड (फर्ज) की भक्ति को झूठी तथा प्रेम भक्ति को सच्ची कहा गया है। तुमने इस प्रकार का ब्योरा धर्मग्रन्थों में क्यों नहीं देखा।

भावार्थ – मुण्डकोपनिषद् १ / ७, ८ में कर्मकाण्ड की

भक्ति पर प्रहार करते हुए कहा गया है—

एतच्छ्रेयो ये अभिनन्दन्ति मूढा जरा मृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति।

अविद्यायामन्तरे वर्तमानः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः।

जघन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमानां यथान्धाः॥

अर्थात् जो मूढ़ व्यक्ति कर्मकाण्डपरक इन यज्ञीय कर्मों को ही श्रेय मानकर आनन्द मनाते फिरते हैं, वे बार-बार जन्म-मरण के चक्र में भटकते रहते हैं। अविद्या में पड़े हुए, अपने को धीर और पण्डित मानते हुए, मूर्ख लोग ऐसे फिरते हैं जैसे कि अन्धे को अन्धा ही रास्ता दिखा रहा हो और ठोकरें खा रहा हो।

इसी प्रकार कुरआन के दूसरे पारे सयकूल तथा पारा २२ आयत १४१-१४२ में कहा गया है कि शरियत की नमाज (कर्मकाण्ड की भक्ति) अल्लाहतआला तक नहीं पहुँच पाती है।

ए जो फरज मजाजी बंदगी, बीच नासूत हक से दूर।

होए मासूक बंदगी अर्स में, कही बका हक हजूर॥१८॥

कर्मकाण्ड (शरियत) की झूठी भक्ति इस संसार में ही होती है और वह श्री राज जी से दूर करने वाली होती है। प्रेम लक्षणा भक्ति परमधाम में विराजमान धाम धनी को लक्ष्य करके होती है। यही भक्ति प्रियतम के अखण्ड चरणों तक ले जाती है।

दोस्ती कही हक की, तिन में समनून पातसाह।

पातसाह कौन होए बिना मासूक, देखो इस्म कुरान खुलासा॥१९॥

खुदा के दोस्तों (प्रेम करने वालों) में समनून मुहब्बी का नाम सर्वोपरि है। कुरआन में वर्णित इन नामों के संकेतों के स्पष्टीकरण को तुम समझो कि मासूक (ब्रह्मसृष्टियों) के अतिरिक्त और कौन है, जो खुदा से इतना प्रेम कर

सके।

भावार्थ- कुरआन के सूरे अंबिया तथा सूरे फातिहा में अल्लाहतआला से इश्क करने वाले फकीरों का वर्णन है। बाबा फरीद द्वारा लिखी हुई पुस्तक "तजकीरतुल औलिया" के पृष्ठ ५४ में "समनून मुहब्बी" का वर्णन आता है। उनकी सच्ची बन्दगी के कारण उन्हें "मुहब्बी" की शोभा मिली।

एक दिन उन्होंने ध्यान में देखा कि रोज-ए-हश्र के दिन उन्हें अल्लाह की तरफ जाने वाले मार्ग से हटाया जा रहा है। कारण पूछने पर उत्तर मिला कि तुम्हें खुदा से अधिक अपनी बेटी से प्यार है, इसलिये तुम अल्लाह तआला के पास नहीं जा सकते। यह सुनते ही समनून ने कहा कि मैं अल्लाह के बिना जीवित नहीं रह सकता। मुझे बेटी नहीं चाहिए। इसके पश्चात् वे गहन भक्ति (बन्दगी) में

लग गये और पहले से भी उच्च अवस्था में पहुँच गये।

इस प्रसंग में "समनून मुहब्बी" के दृष्टान्त द्वारा यह दर्शाया गया है कि परमधाम की आत्मायें अक्षरातीत के प्रति अपने प्रेम से सम्पूर्ण संसार और पारिवारिक बन्धनों का भी परित्याग कर देंगी।

अव्वल दोस्ती हक की, लिखी माहें फुरमान।

पीछे दोस्ती बंदन की, क्यों करी ना पेहेचान॥२०॥

धर्मग्रन्थों में यह बात लिखी हुई है कि सबसे पहले परब्रह्म अपनी आत्माओं से प्रेम करते हैं। बाद में ही आत्मायें उनसे प्रेम करती हैं। धर्मग्रन्थों में लिखी इन बातों की तुम पहचान क्यों नहीं करती हो।

भावार्थ— पुराण संहिता २२/५४ में कहा गया है कि "पातुं लालयितुं भोक्तुं स्त्रियः शक्ता न तं परे" अर्थात्

अक्षरातीत के उस परम प्रेममयी तत्व को धारण करने, प्यार करने, तथा रस लेने में सखियाँ प्रत्यक्ष रूप से समर्थ नहीं हैं। पुराण संहिता के इस कथन से यही निष्कर्ष निकलता है कि श्री राज जी का प्रेम सर्वोपरि है। इसे पुराण संहिता के छठे अध्याय में वर्णित राधा-कृष्ण के दृष्टान्त से भी समझा जा सकता है।

कुरआन के पहले पारे में सांकेतिक रूप से कहा गया है, किन्तु हदीस की पुस्तक मिस्कात तथा मेअराजनामा में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अल्लाहतआला अपनी रूहों से पहले इश्क करते हैं, तत्पश्चात् रूहें उनसे मुहब्बत करती हैं।

मैं कदीम लिखी मेरी दोस्ती, ए किए न सहूर सुकन।

तुमको बेसक किए इलम सों, हाए हाए अजूं याद न आवे रुहन॥२१॥

मैंने धर्मग्रन्थों में यह भी लिखवाया है कि तुमसे मेरा प्रेम (दोस्ताना) अनादि काल से है। लगता है तुमने धर्मग्रन्थों में लिखे हुए उन वचनों का विचार ही नहीं किया है। मैंने ब्रह्मवाणी के ज्ञान से तुम्हें पूर्णतया संशयरहित कर दिया है, हाय! हाय! तुम्हें अब भी मेरी याद नहीं आ रही है।

भावार्थ— धाम धनी के ये कथन हमें इस बात के लिये झकझोर रहे हैं कि हम अपने हृदय की कठोरता , शुष्कता, और निष्ठुरता पर आत्म-मन्थन करें। इस विषय पर शुद्ध हृदय से किया हुआ निष्पक्ष चिन्तन जागनी यात्रा में मील का पत्थर सिद्ध हो सकता है।

दोस्त मेरे मोमिन, और मासूक हादी बेसक।

तो नाम लिख्या अपना, मैं तुमारा आसिक॥२२॥

इसमें कोई संशय नहीं है कि सभी ब्रह्ममुनि मेरे प्रेम –

पात्र (दोस्त) हैं और श्यामा जी मेरी प्रियतमा हैं। यही कारण है कि मैंने स्वयं को तुम्हारे प्रेमी (आशिक) के रूप में धर्मग्रन्थों में प्रकट किया है।

मैं लिख्या है तुम को, जो एक करो मोहे साद।

तो दस बेर मैं जी जी कहूं, कर कर तुमें याद॥२३॥

मैंने कुरआन आदि धर्मग्रन्थों में यह लिखवाया है कि यदि मेरी आत्मायें एक बार भी मुझे प्रेमपूर्वक रिझाती हैं, तो मैं उनके आगे दस बार "जी" – "जी" करके उन्हें याद करता हूँ।

भावार्थ– कुरआन के सत्रहवें पारे में यह वर्णित है कि यदि खुदा की तरफ कोई एक कदम भी आगे आता है, तो वह उसकी ओर १० कदम आगे आते हैं।

और भी लिख्या मैं तुमको, मैं करत तुमारी जिकर।

मेरी तुम पीछे करत हो, क्यों कर ना देखी फिकर॥२४॥

मैंने धर्मग्रन्थों में यह भी लिखवाया है कि हमेशा पहले मैं तुम्हारी चर्चा किया करता हूँ। इसके पश्चात् ही तुम मेरी चर्चा करती हो। इस बात को तुमने ध्यानपूर्वक धर्मग्रन्थों में क्यों नहीं देखा?

भावार्थ— यह प्रसंग सत्रहवें पारे से सम्बन्धित है। तीसरे पारे की सूर अस्त्र तथा इन्ना इन्जुलना सूरत की तफ्सीर—ए—हुसैनी की व्याख्या में भी इस तरह का भाव है।

ए जो मैं लिखी बुजरकियां, सो है कोई तुम बिन।

जित भेजों मासूक अपना, जो चीन्हे मेरे सुकन॥२५॥

मैंने धर्मग्रन्थों में जिनकी महिमा लिखवायी है, वह

तुम्हारे अतिरिक्त और कोई भी नहीं है , अर्थात् मेरी प्रियतमा के रूप में तुम्हारी ही महिमा धर्मग्रन्थों में लिखी है। तुम्हें जाग्रत करने के लिये ही मैंने श्यामा जी को भेजा है, जो धर्मग्रन्थों में संकेतों में लिखवाये हुए मेरे वचनों की पहचान करने वाली हैं।

मैं किन पर भेजों इसारतें, पढ़ी जाएं न रमूजें किन।

तुम जानत हो कोई दूसरा, है बिना अर्स रुहन॥२६॥

मैंने परमधाम की गुह्य बातें संकेतों में किसके लिये भेजी हैं? मेरे रहस्य भरे कथनों को इस संसार का कोई भी प्राणी नहीं जान सकता। क्या तुम इस बात को नहीं जानती कि परमधाम की तुम आत्माओं के अतिरिक्त अन्य कोई भी धर्मग्रन्थों में वर्णित परमधाम के गुह्य रहस्यों को नहीं जान सकता।

ए जो औलाद आदम की, सब पूजत हैं हवा।

सो जाहेर लिख्या फुरमान में, क्या तुम पाया न खुलासा॥२७॥

कुरआन में यह बात प्रत्यक्ष रूप में लिखी है कि इस संसार के सभी मनुष्य निराकार की ही पूजा करते हैं। क्या तुमने अभी तक इसका स्पष्टीकरण नहीं पाया?

भावार्थ— हजरत आदम सफ़ी से पैदा होने वाली सृष्टि आदमी या मानव कहलाती है। तारतम ज्ञान से रहित सभी लोग, या तो परमात्मा को साकार मानते हैं या निराकार। यह प्रसंग कुरआन के पहले पारे में वर्णित है।

ए जो दुनियां खेल कबूतर, तित भी दिए कुलफ दिल पर।

पावे हकीकत कलाम अल्लाह की, सो खुले ना लदुन्नी बिगर॥२८॥

जिस प्रकार जादूगर द्वारा दिखाया जाने वाला कबूतरों का खेल झूठा होता है, उसी प्रकार यह सारा संसार

स्वप्नवत् है। इसमें रहने वाले प्राणियों के दिलों पर अज्ञानता का पर्दा पड़ा हुआ है। तारतम ज्ञान का प्रकाश पाये बिना ये कुरआन के वास्तविक आशय को कदापि नहीं समझ सकते।

सो तो दिया मैं तुम को, सो खुले ना बिना तुम।

जो मेरी सुध दयो औरों को, तित चले तुमारा हुक्म॥२९॥

आत्माओं! मैंने ब्रह्मवाणी के ज्ञान का वास्तविक प्रकाश तुम्हें ही दिया है। कुरआन-वेद सहित सभी धर्मग्रन्थों में परमधाम के छिपे हुए रहस्यों को तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं खोल सकता। इस ब्रह्मवाणी के ज्ञान से यदि तुम अन्य लोगों को मेरे स्वरूप की पहचान कराती हो, तो उन लोगों पर तुम्हारा हुक्म (आदेश) चलेगा अर्थात् वे लोग तुम्हारे प्रति समर्पित हो जायेंगे।

ए सुकन हकें अव्वल कहे, अर्स में महंमद को।

केतेक जाहेर कीजियो, बाकी गुझ रखियो दिल मों॥३०॥

परमधाम में श्री राज जी ने मुहम्मद साहिब को प्रारम्भ में ही कह दिया था कि कुरआन का जो ज्ञान मैंने तुम्हें दिया है, उसमें केवल शरियत के ज्ञान को ही उजागर करना है। परमधाम की शेष गुह्यतम बातों को छिपाकर रखना है।

भावार्थ— श्री राज जी का आदेश था कि तुम संसार में केवल शरियत (कर्मकाण्ड) के ज्ञान को ही जाहिर करो। कोई पात्र (योग्य व्यक्ति) मिल जाने पर उसे तरिकत (उपासना) का ज्ञान देना तुम्हारी इच्छा पर है। किन्तु, हकीकत की बातें १२ हरूफ-ए-मुक्तेआत के रूप में संकेतों में कही गयी हैं। मारिफत के शब्द तो मुहम्मद साहिब की जिह्वा से उच्चारित ही नहीं हो सके।

सरा सुकन कराए जाहेर, गुझ रखे बका बातन।

मूंदया रख्या द्वार मारफत का, वास्ते पेहेचान अर्स रुहन॥३१॥

श्री राज जी ने मुहम्मद साहिब द्वारा शरियत (कर्मकाण्ड) की ही बातों को उजागर करवाया तथा परमधाम की गुह्य बातों को छिपाये रखा। परमधाम की तुम आत्माओं की पहचान देने के लिये ही मैंने मारिफत के इल्म (सर्वोपरि आध्यात्मिक ज्ञान) के गुह्य रहस्यों को भी छिपाये रखा।

पट बका किने न खोलिया, कई अवतार हुए तीर्थकर।

हक इलम बिना क्योंए ना खुले, कई लाखों हुए पैगंमर॥३२॥

यद्यपि इस सृष्टि में अनेक अवतार तथा अनेक (२४) तीर्थकर हो चुके हैं, एक लाख बीस हजार पैगम्बर भी हो चुके हैं, किन्तु इनमें से किसी ने भी अखण्ड परमधाम

का ज्ञान नहीं दिया है। ब्रह्मवाणी के ज्ञान का प्रकाश हुए बिना कोई भी परमधाम की पहचान नहीं कर सकता।

अर्स बका पट खोलसी, आखिर बखत मोमिन।

साहेब जमाने की मेहेर से, दिन करसी बका रोसन॥३३॥

धर्मग्रन्थों में यह भी लिखा है कि कियामत के समय में ब्रह्ममुनि आयेंगे और अखण्ड परमधाम के ज्ञान को प्रकाश में लायेंगे। श्री प्राणनाथ जी की कृपा से वे अज्ञानता के अन्धकार को दूर कर देंगे तथा परमधाम के ज्ञान का प्रकाश फैलायेंगे।

राह देखाई तौहीद की, महंमद चढ़ उतर।

सो ए तुमारे वास्ते, क्यों न देखो सहूर कर॥३४॥

मुहम्मद साहिब ने मेयरारज में परमधाम तथा अक्षरातीत

का दर्शन किया और सबको एक अद्वैत परब्रह्म से प्रेम करने का मार्ग बताया। इस बात का विचार करके क्यों नहीं देखती हो कि उन्होंने यह सब कुछ तुम्हारे लिये ही किया है।

और जो पैदा जुलमत से, सो तुम जानत हो सब।

ए क्यों छोड़ें हवा को, जिनों असल देख्या एही रब॥३५॥

निराकार से पैदा होने वाली जीव सृष्टि को तो तुम अच्छी तरह से जानती हो। इन्होंने निराकार को ही सच्चिदानन्द परब्रह्म मान रखा है, इसलिए वे निराकार को कैसे छोड़ सकते हैं।

इलम लदुन्नी तुमपे, जिन पेहेले पाई खबर।

और न कोई वाहेदत बिना, तो इत आवेंगे क्यों कर॥३६॥

तुम्हारे पास तारतम ज्ञान का प्रकाश है, जिससे तुमने पहले ही परमधाम का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। तुम परमधाम में वहदत (एकदिली) स्वरूपा हो और जब तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई भी परमधाम में आ ही नहीं सकता, तो भला यह जीव सृष्टि वहाँ कैसे पहुँच सकेगी।

मेयराज हुआ महंमद पर, सो कौल अर्स बका के।

सो साहेदी के दो एक सुकन, बीच मुहककों पसरे॥३७॥

मुहम्मद साहिब को अल्लाहतआला का दीदार हुआ और उन्होंने अखण्ड परमधाम में श्री राज जी से बातें की। उनमें से कुछ बातों को उन्होंने कुरआन में साक्षी के लिये लिख दिया, जो उनके अनुयायियों में फैल गयीं।

भावार्थ— मुहम्मद साहिब ने हौज कौशर, यमुना जी, अल्लाहतआला आदि के दर्शन का थोड़ा सा वर्णन

कुरआन में किया है, जिसका ज्ञान गहन खोज करने वाले उनके कुछ ही अनुयायियों में है।

बका सुकन सब मेयराज के, जाहेर किए सब में।

सब अर्स बका मुख बोलहीं, और सुकन ना गिरो से॥३८॥

मुहम्मद साहिब को जो कुछ भी दर्शन हुआ था, उसका सम्पूर्ण वर्णन श्री प्राणनाथ जी ने ब्रह्मवाणी द्वारा प्रकाशित कर दिया है। अब ब्रह्मसृष्टियों के मुख से अखण्ड परमधाम के अतिरिक्त अन्य कोई भी बात नहीं निकलती है।

सो खासी गिरो महंमद की, तामें ए बात होत निस दिन।

मुख छोटे बड़े एही सुकन, और बोले न बका बिन॥३९॥

इस जागनी लीला में श्री प्राणनाथ जी के साथ जुड़ी हुई

ब्रह्मसृष्टियाँ (सुन्दरसाथ) हैं, उनमें दिन-रात अखण्ड परमधाम तथा उसके दीदार की ही बातें होती हैं। चाहे छोटी उम्र का कोई बालक हो या वयोवृद्ध, सभी के मुख से मात्र अक्षरातीत श्री राजश्यामा जी और परमधाम की ही बातें निकलती हैं।

भावार्थ- यह प्रसंग उस समय का है, जब श्री प्राणनाथ जी श्री ५ पद्मावती पुरी धाम में लीला कर रहे होते हैं तथा उनके साथ-साथ रहने वाले सुन्दरसाथ दिन-रात परमधाम का ही चिन्तन करते रहते हैं।

बका सब्द मुख सब के, सो इलम सब में गया पसर।
सब्द फना को न देवे पैठने, ऐसा किया बखत रूहों आखिर॥४०॥
ब्रह्मवाणी का ज्ञान फैल जाने से सबके मुख पर केवल परमधाम की ही बातें रहती हैं। इस जागनी लीला में

तारतम ज्ञान ने ऐसी स्थिति पैदा कर दी है कि सुन्दरसाथ नश्वर जगत के झूठे ज्ञान को अपने दिल में आने ही नहीं देते हैं।

सब्द फना गए रात में, किया बका सब्दों फजर।

कुफर अंधेरी उड़ गई, बोल पाइए न बका बिगर॥४१॥

तारतम वाणी में निहित परमधाम के अखण्ड ज्ञान ने उजाला कर दिया है, जिससे इस नश्वर जगत से सम्बन्धित अज्ञानता की रात्रि समाप्त हो गयी है। नास्तिकता का अन्धकार समाप्त हो गया है। अब तो सुन्दरसाथ के बीच में अखण्ड परमधाम के अतिरिक्त और कोई चर्चा ही नहीं होती।

भावार्थ— तारतम ज्ञान के बिना बड़े से बड़े योगी, विद्वान, एवं सन्त के मन में प्रकृति से परे बेहद एवं

परमधाम की भावना रहती ही नहीं है। प्रायः सभी का मत यही होता है कि सच्चिदानन्द परब्रह्म इस नश्वर जगत के ही कण-कण में है। ब्रह्मवाणी के प्रकाश में ही परब्रह्म के धाम व स्वरूप का वास्तविक बोध प्राप्त होता है।

ए कह्या था अव्वल, रसूलें इत आए।

सो रूहें रूहअल्ला इमाम, फजर करी बनाए॥४२॥

मुहम्मद साहिब ने हजार वर्ष पहले ही आकर यह कह दिया था कि जब मोमिन (ब्रह्ममुनि) रूहुल्लाह और आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिबुज्जमां आयेंगे, तो परमधाम के ज्ञान का सर्वत्र उजाला कर देंगे। अब उनकी भविष्यवाणी के अनुसार परमधाम की आत्माओं, सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी, एवं श्री प्राणनाथ जी ने ब्रह्मवाणी के ज्ञान का उजाला कर दिया है।

अव्वल कह्या इलम ल्यावसी, आया तिनसे ज्यादा बेसक।
सो नीके लिया मोमिनो, पाई अर्स मारफत हक॥४३॥

मुहम्मद साहिब ने कहा था कि श्यामा जी तारतम ज्ञान (इल्म-ए-लदुन्नी) लेकर आयेंगी। उनके दूसरे तन (श्री महामति जी) द्वारा उससे भी अधिक ज्ञान आया अर्थात् ब्रह्मवाणी का अवतरण हुआ। इस बात में किसी प्रकार का कोई संशय नहीं है। ब्रह्मसृष्टियों ने इस ज्ञान को बहुत अच्छी तरह से आत्मसात् कर लिया है, जिससे उन्हें अक्षरातीत तथा परमधाम की पूर्ण पहचान हो गयी है।

ए इलम लिए ऐसा होत है, आप बेसक होत हैयात।

और कायम हुए देखे सबको, पावे दीदार बातून हक जात॥४४॥

ब्रह्मवाणी के इस ज्ञान को ग्रहण करने का फल यह होता है कि वह जीव निश्चित रूप से अखण्ड मुक्ति को

प्राप्त कर लेता है तथा सारी सृष्टि को भी इस ज्ञान से अखण्ड होने की भावना करने लगता है। बातिनी रूप में वह श्री राजश्यामा जी तथा ब्रह्माङ्गनाओं का दर्शन भी प्राप्त कर लेता है।

भावार्थ— श्री राजश्यामा जी तथा सखियों को हक जात कहा जाता है। जीव सृष्टि भले ही श्यामा जी एवं सखियों की परात्म का दर्शन न कर सके, किन्तु ज्ञान दृष्टि से तो कर ही लेती है। इसे ही इस चौपाई में दर्शन करना कहा गया है।

देखी अपनी भिस्त आप नजरों, जो होसी बका परवान।
सब करम काटे हक इलमसों, ए देखी बेसक मेहेर सुभान॥४५॥

ब्रह्मवाणी के इस अलौकिक ज्ञान को ग्रहण करने वाला अपने ज्ञान-चक्षुओं से यह देख लेता है कि उसे निश्चित

रूप से अखण्ड बहिस्त का सुख प्राप्त होने जा रहा है। निश्चय ही वह धाम धनी की अपार मेहर का अनुभव करता है, जिसमें वह तारतम ज्ञान की तलवार से सभी कर्मों के बन्धनों को काट डालता है और ब्रह्मानन्द को प्राप्त कर लेता है।

हक तरफ जानें नूर अछर, और दूजा न जाने कोए।

पर बातून सुध तिन को नहीं, हक इलम देखावे सोए॥४६॥

अक्षरातीत कहाँ है, इसका ज्ञान केवल अक्षर ब्रह्म को है। उनके अतिरिक्त अन्य कोई भी अक्षरातीत के धाम के बारे में नहीं जानता। किन्तु, यह ब्रह्मवाणी परमधाम के जिन अति गुह्य रहस्यों को उजागर करती है, उसका ज्ञान अक्षर ब्रह्म को भी नहीं है।

कई सुख कायम इन इलम में, आवें न माहें हिसाब।

हक सुराही बका खिलवत में, ए इलम पिलावे सराब॥४७॥

इस ब्रह्मवाणी में अनेक प्रकार के ऐसे अखण्ड सुख छिपे हुए हैं, जिनकी कोई भी सीमा नहीं है। परमधाम की खिलवत में श्री राज जी का दिल ही वह प्रेम की सुराही है, जिसका रसपान इस तारतम वाणी के ज्ञान (इल्म) से हो रहा है।

सो मैं भेज्या तुमें मोमिनों, देखो पोहोंच्या इस्क चौदे तबक।

ऐसा इस्क मेरा तुमसों, इनमें पाइए न जरा सक॥४८॥

हे साथ जी! मैंने तुम्हारे पास ब्रह्मवाणी का ज्ञान ही इसलिये भेजा है कि ताकि सभी को मेरे प्रेम की पहचान हो जाये। इस ब्रह्मवाणी से चौदह लोक वाले इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में मेरे प्रेम की सुगन्धि फैल जायेगी। अनादि

काल से तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम ही ऐसा है, जिसमें नाम मात्र के लिये भी संशय नहीं किया जा सकता।

भावार्थ- ज्ञान के द्वारा अक्षरातीत के स्वरूप की पहचान होने के पश्चात् ही उनके प्रति प्रेम होना सम्भव है। यह स्थिति यथार्थ रूप में मात्र योगमाया में ही घटित होगी, जहाँ जाग्रत बुद्धि प्राप्त होने से सभी को धाम धनी के स्वरूप और लीला की पहचान हो जायेगी। ऐसा इस्त्राफील (जाग्रत बुद्धि) के द्वारा किया जायेगा। ब्रह्मवाणी के अवतरण से पूर्व जाग्रत बुद्धि को भी परमधाम की लीला का कोई ज्ञान नहीं था। कलस हिंदुस्तानी प्रकरण २३/१०३ में इसी तथ्य को इस प्रकार कहा गया है-

मेरी संगतें ऐसी सुधरी, बुध बड़ी हुई अछर।

तारतमें सब सुध परी, लीला अन्दर की घर।।

यों किया वास्ते ईमान के, आवे आखिर रुहन।

सो आए हुआ सबों रोसन, जाहेर बका अर्स दिन॥४९॥

मैंने ऐसा इसलिये किया है कि ब्रह्मसृष्टियों को ज्ञान द्वारा अपने प्रियतम के प्रति ईमान आ जाये। अब दिन के समान ब्रह्मवाणी के ज्ञान का उजाला फैल गया है, जिससे सभी को अखण्ड परमधाम की पहचान हो गयी है।

अव्वल से बीच अब लग, तरफ पाई न बका की।

महंमद एता ही बोलिया, जासों ईसा पावें साहेदी॥५०॥

जब से यह सृष्टि बनी है, तब से लेकर आज दिन तक किसी को भी अखण्ड परमधाम का ज्ञान प्राप्त नहीं हो सका था। मुहम्मद साहिब ने कुरआन में उतना ही कहा है, जिससे श्यामा जी को साक्षियाँ मिल जायें।

भावार्थ- श्री देवचन्द्र जी के तन से कुरआन सम्बन्धी किसी घटना का वर्णन बीतक साहिब में नहीं है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि श्यामा जी ने अपने दूसरे जामे में ही कुरआन की साक्षियों को संकलित किया। यह प्रसंग मेड़ता से प्रारम्भ होकर दिल्ली, मन्दसौर, तथा औरंगाबाद में कुरआन की टीका कराने एवं तफसीर-ए-हुसैनी को सुनने से सम्बन्धित है।

सो लई रुहअल्ला साहेदी, दूजी साहेदी आप दई।

त्यों करी इमामें जाहेर, ज्यों सब में रोसन भई॥५१॥

इस प्रकार श्यामा जी ने मुहम्मद साहिब की साक्षी ली तथा तारतम ज्ञान द्वारा स्वयं अपनी भी साक्षी दी। श्यामा जी ने आखरूल इमाम मुहम्मद महदी के रूप में इन दोनों साक्षियों को लेकर इस अलौकिक ज्ञान को

उजागर किया, जिसका प्रकाश चारों ओर फैल गया।

भावार्थ- इस चौपाई का यह कथन श्री बीतक साहिब ३४/४ के उस कथन को दर्शाता है, जिसके शब्द इस प्रकार हैं-

इत महम्मद सों मिल चले, तब अहमद पाया खिताब।

ईसा और महंमद मिले, मारे दज्जाल सिताब॥

अर्थात् कलमा और तारतम ज्ञान के मिलन से वेद-कतेब का एकीकरण हो गया, जिससे ऐसा मन्च तैयार हो गया, जहाँ से समस्त विश्व अपनी आध्यात्मिक प्यास को बुझा सकता है और परमसत्य की उपलब्धि कर सकता है।

लई ईसे महंमद की साहेदी, बका जाहेर किया इमाम।

हक हादी रुहन की, करी खिलवत जाहेर तमाम॥५२॥

मुहम्मद साहिब तथा श्यामा जी की साक्षी लेकर श्री महामति जी ने अखण्ड परमधाम का ज्ञान प्रकाश में ला दिया। इसके साथ ही उन्होंने श्री राजश्यामा जी तथा सखियों की खिल्वत का भी स्पष्ट रूप से बोध कराया।

इन आखिर दिनों इमाम, बानी बोले न बका बिन।

सो सिर ले सुकन गिरोहने, कायम किए सबन॥५३॥

ब्रह्मवाणी अवतरण के अन्तिम समय में श्री प्राणनाथ जी ने अखण्ड परमधाम के अतिरिक्त और कोई चर्चा ही नहीं की। ब्रह्ममुनियों ने उनके अमृतमयी वचनों को आत्मसात् किया तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के जीवों के लिये मुक्ति का द्वार खोल दिया।

दुनियां चौदे तबक के, दिए इलमें मुरदे उठाए।

ताए मौत न होवे कबहूँ, लिए बका मिने बैठाए॥५४॥

श्रीमुखवाणी का ज्ञान चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड के सभी जीवों को जाग्रत करने वाला है, अर्थात् उन्हें अपने स्वरूप की तथा अक्षरातीत की पहचान कराने वाला है। इस अलौकिक ज्ञान को ग्रहण करने वाले जीव को कभी भी जन्म-मरण के चक्र में नहीं भटकना पड़ेगा और उनका जीव भी बेहद मण्डल के अखण्ड सुख को प्राप्त कर लेगा।

बड़ाई इन इलम की, क्यों इन मुख करों सिफत।

सो आया तुममें मोमिनोँ, जाको सब्द न कोई पोहोचत॥५५॥

मेरी आत्माओं! मैं स्वयं अपने इस मुख से तारतम वाणी की महिमा का कैसे वर्णन करूँ। तुम्हारे हृदय में इस

अलौकिक ज्ञान का प्रकाश आ चुका है, जिसकी गरिमा का वर्णन करने में इस संसार के शब्दों की कोई पहुँच नहीं है, अर्थात् यह शब्दातीत एवं अलौकिक है।

और सराब मेरी सुराही का, सो रख्या था मोहोर कर।
सो खोलने बोहोतों किया, पर क्यों खोलें कबूतर॥५६॥
मैंने आज दिन तक अपने हृदय रूपी सुराही में प्रेम के उमड़ने वाले अनन्त सागर के रस को बन्द कर रखा था।
उसे खोलने अर्थात् पाने का प्रयास तो बहुतों ने किया,
किन्तु भला जीवसृष्टि में इसकी पात्रता कहाँ से आ सकती है।

सो रख्या तुमारे वास्ते, सो तुमहीं ल्यो दिल धर।
लिखे फूल प्याले तुम ताले, अछूत पियो भर भर॥५७॥

प्रेम का यह अमृतरस तो मात्र तुम्हारे लिये ही रखा हुआ था, इसलिये तुम्हीं इसे अपने दिल रूपी प्यालों में भरकर पिओ। प्रेम के आनन्द से भरे हुए इन प्यालों को पीने का सौभाग्य मात्र तुम्हीं को है। इन्हें आज दिन तक इस ब्रह्माण्ड में कोई भी नहीं पी सका है, इसलिये अपने हृदय रूपी प्यालों में भर-भरकर इसका पान करो।

भावार्थ- जिन आत्माओं को प्रेम का रसपान करने के लिये इस चौपाई में कहा गया है, उन्होंने ब्रज-रास में थोड़ा सा रसपान तो अवश्य किया है, किन्तु निद्रा में। इस जागनी लीला से पहले आज दिन तक किसी ने भी इसका रस नहीं पिया था।

सराब मेरी सुराही का, सो रूहों मस्ती देवे पूरन।

दे इलम लदुन्नी लज्जत, हक बका अर्स तन॥५८॥

मेरे हृदय रूपी सुराही में उमड़ने वाला प्रेम आत्माओं को पूर्ण आनन्द देने वाला है। तारतम वाणी द्वारा ही अक्षरातीत, परमधाम, तथा परात्म के तनों का रसास्वादन मिलता है।

भावार्थ- इस चौपाई में यह बात स्पष्ट की गयी है कि जब ब्रह्मवाणी के ज्ञान को आत्मसात् कर चितवनि में डूबा जाता है, तो धाम धनी का प्रेम प्राप्त होता है, जिसकी रसधारा में आत्मा अपने मूल तन (परात्म), युगल स्वरूप, तथा परमधाम के पच्चीस पक्षों को देखती है। यदि ब्रह्मवाणी नहीं होती तो यह सौभाग्य नहीं प्राप्त होता। इसे ही ब्रह्मवाणी द्वारा रस लेना कहा गया है।

जो बैठे हैं होए पहाड़ ज्यों, सो उड़ाए असराफीलें सूर।
सूरें खोले मगज मुसाफ के, हुए जाहेर तजल्ला नूर॥५९॥

आज तक संसार में सभी मत-पन्थों के अग्रगण्य बड़े-बड़े पहाड़ की तरह दिखायी दे रहे थे। उन्हें तारतम ज्ञान की अखण्ड धारा ने नष्ट कर दिया। तारतम ज्ञान के प्रकाश ने सभी धर्मग्रन्थों के रहस्यों को स्पष्ट कर दिया, जिससे अक्षरातीत की स्पष्ट पहचान हो गयी है।

भावार्थ- अज्ञानता के अन्धकार में भटकने वाले मत-पन्थों के अग्रगण्य लोगों को इतना अहंकार होता है कि वे अपने मिथ्या ज्ञान के आगे किसी को कुछ भी नहीं समझते। तारतम ज्ञान के प्रकाश में जब उन्हें अपनी मिथ्या मान्यताओं का बोध हुआ, तो उनका अहंकार रूपी पहाड़ नष्ट हो गया। इस सन्दर्भ में हरजी व्यास, चिन्तामणि, कुम्भ के मेले में आये हुए आचार्य जन, उदयपुर और औरंगाबाद के पण्डित जनों का नाम प्रमुख है।

"मुसाफ" का तात्पर्य सभी धर्मग्रन्थों से है , मात्र कुरआन से नहीं।

तब उड़े काफर हुते जो पहाड़ से, हुए मोमिनों बान चूर।
 लगे और बान अर्स इलमें, तिन हुए कायम नूर हजूर॥६०॥
 तुम्हारे ज्ञान रूपी बाणों से साम्प्रदायिक धर्माचार्यों के
 अहंकार और वर्चस्व रूपी पहाड़ चूर-चूर होकर नष्ट हो
 गये हैं। परमधाम के ज्ञान के बाणों के उनके हृदय में
 चुभने से उन्होंने अक्षर के ब्रह्माण्ड (बेहद मण्डल) में
 अखण्ड आनन्द का भोक्ता होने का सौभाग्य प्राप्त कर
 लिया है।

भावार्थ- सच्चिदानन्द अक्षरातीत को छोड़कर स्वप्न के
 देवी-देवताओं की पूजा करने वालों को काफिर ही कहा
 जा सकता है। यजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण में कहा गया

है- "योऽन्यां देवतामुपासते स न वेद यथा पशुभिः एव देवानाम्" अर्थात् जो एक परब्रह्म को छोड़कर अन्य देवी-देवताओं की उपासना करता है, वह विद्वानों में पशु के समान हैं।

जो लिखी सिफतें फुरमान में, सो सब तुम अर्स रुहन।
और सिफत तो होवहीं, जो कोई होवे वाहेदत बिन॥६१॥
तुम परमधाम की आत्मायें हो। सभी धर्मग्रन्थों में तुम्हारी ही महिमा लिखी हुई है। तुम परमधाम में एकत्व (एकदिली) स्वरूपा हो। यदि तुम्हारे अतिरिक्त कोई और (ईश्वर, जीव) होती, तब तो उनकी महिमा लिखी जाती।

भावार्थ- वेदों में ब्रह्मसृष्टियों को गुह्य प्रजा (अथर्ववेद १०/७/४१), तथा अन्य ग्रन्थों में ब्रह्ममुनि और परमहंस कहा गया है। गुरु वाणी में "नानक धन

सोहागनियां" कहकर ब्रह्मसृष्टियों की महिमा गायी गयी है। इसी प्रकार कुरआन-हदीसों में मोमिन, तथा बाइबल में "chosen people, sheep" कहकर उनका वर्णन किया गया है।

चौदे तबक पढ़ पढ़ गए, किन खोली नहीं किताब।

इसारतें रमूजें क्यों खुलें, देखो किन खोलाई दे खिताब॥६२॥

इस ब्रह्माण्ड के सभी ज्ञानीजन वेद-कुरआन को पढ़-पढ़कर थक गये, किन्तु उसके रहस्यों को कोई भी खोल नहीं सका। संकेतों में कही हुई गुह्य बातों के भेद भला संसार के जीव कैसे खोल सकते हैं। मेरी आत्माओं! तुम इस बात का विचार करो कि सभी धर्मग्रन्थों के रहस्यों को स्पष्ट करने की शोभा तुम्हें किसने दी है।

मुकता हरफ तुम वास्ते, अखत्यार दिया हादी पर।

जो चौदे तबक दुनी मिले, तो माएने होए न हादी बिगर॥६३॥

कुरआन के हरुफ-ए-मुक्तेआत के भेद मात्र तुम्हारे द्वारा ही जाहिर करवाने के लिये मैंने छिपाकर रखा था। इनको खोलने की शोभा तो केवल श्री महामति जी को है। यदि चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड के सभी ज्ञानीजन मिलकर भी इनके भेद खोलना चाहें, तो हक्की सूरत (श्री प्राणनाथ जी) के बिना अन्य कोई भी इनके भेदों को नहीं खोल सकता।

भावार्थ- कुरआन में कुल १२ हरुफ-ए-मुक्तेआत हैं, जिनका विवरण किरंतन ग्रन्थ की टीका में दिया गया है। कुरआन में स्पष्ट लिखा है कि इनके भेद मात्र अल्लाहतआला ही जानता है। इसी प्रकार अथर्ववेद में कुछ ऐसे कठिन प्रश्न हैं, जिनका वास्तविक समाधान

परब्रह्म की कृपा के बिना हो ही नहीं सकता।

जाहेर खिताब हादी पर, दिया वास्ते मोमिन।

सो मुकता हरफ के माएने, होए न लदुन्नी बिन॥६४॥

ब्रह्मसृष्टियों की महिमा दर्शाने के लिये सभी धर्मग्रन्थों के रहस्यों को खोलने की शोभा प्रत्यक्ष रूप में मात्र श्री महामति जी को है। बिना तारतम ज्ञान के कुरआन के हरुफ-ए-मुक्तेआत के भेद नहीं खुल सकते।

सो दिया लदुन्नी तुम को, तुम खोलो मुकता हरफ।

मैं अर्स किया दिल मोमिन, जाकी पाई न किन तरफ॥६५॥

सभी रहस्यों को स्पष्ट करने वाला तारतम ज्ञान मैंने तुम्हें दे दिया है। अब तुम्हें इन हरुफ-ए-मुक्तेआत के भेदों को उजागर करना चाहिए। जिस परमधाम को आज

दिन तक कोई भी जान नहीं सका है, मैंने तुम्हारे दिल को धाम कहलाने की शोभा दे दी है अर्थात् तुम्हारे दिल में मैं सम्पूर्ण परमधाम की शोभा सहित विराजमान हो गया हूँ।

भावार्थ- चितवनि में डूब जाने पर आत्मा को अपने हृदय में ही युगल स्वरूप सहित सम्पूर्ण परमधाम का साक्षात्कार होने लगता है। इसे ही दिल में परमधाम का विद्यमान होना कहा गया है।

ए जाहेर तुमारा माजजा, पढ़े हरफ कर पढ़ते थे।

ए भेद हक हादी रूहों, बीच खिलवत का जे॥६६॥

संसार के पढ़े लिखे ज्ञानी लोग मात्र धर्मग्रन्थों के बाह्य शब्दों को ही पढ़ते थे। परमधाम की खिल्वत में श्री राजश्यामा जी तथा सखियों के बीच होने वाली प्रेममयी

लीला को आज दिन तक कोई भी जान नहीं सका था। यह तो प्रत्यक्ष रूप में तुम्हारे द्वारा होने वाला चमत्कार है कि तुमने इन ग्रन्थों के रहस्यों को स्पष्ट कर दिया है।

भावार्थ— कुरआन के हरुफ-ए-मुक्तेआत और अथर्ववेद के केन तथा स्कम्भ आदि सूक्तों में अध्यात्म जगत के गूढ़तम रहस्य छिपे हुए हैं, किन्तु तारतम ज्ञान से रहित होने के कारण इस सृष्टि में कोई भी परब्रह्म के धाम, स्वरूप, एवं लीला को नहीं जान सका था। ब्रह्मसृष्टियों ने धनी की मेहर की छाँव तले इन्हीं धर्मग्रन्थों से अक्षरातीत के धाम, स्वरूप, एवं लीला पर प्रकाश डाला है। यह प्रत्यक्ष रूप से बहुत ही चमत्कारिक घटना है।

सो रख्या तुमारे वास्ते, ए खोलो तुम मिल।

दुनी पावे ना इन तरफ को, सो बीच अर्स तुमारे दिल॥६७॥

परमधाम से सम्बन्धित इन गुह्य रहस्यों को मैंने धर्मग्रन्थों में इसलिये रखवाया था कि तुम सभी आत्मायें इनके भेदों को स्पष्ट कर सको। संसार के जीव जिस परमधाम के विषय में कुछ भी जान नहीं पाते, वह परमधाम तुम्हारे हृदय (दिल) के अन्दर ही विद्यमान है।

हक बका मता जाहेर किया, पर ए समझया नहीं कोए।

कह्या हरफै के बयान में, बिना ताले न पेहेचान होए॥६८॥

मैंने कुरआन तथा वेद आदि धर्मग्रन्थों में अपना एवं परमधाम का ज्ञान प्रकट किया है, किन्तु इस संसार में उसे कोई समझ ही नहीं सका। इन हरुफ-ए-मुक्तेआत (रहस्यवादी शब्दों) के वर्णन में ही यह बात कही गयी है

कि ब्रह्मात्माओं के बिना इनके भेदों को कोई भी स्पष्ट नहीं कर सकता है।

ए बयान पुकारे जाहेर, इत पोहोंचे ना दुनी सहूर।

ए हादी जानें या अर्स रूहें, हक खिलवत का मजकूर॥६९॥

इन रहस्यवादी शब्दों के कथनों में यह बात दर्शायी गयी है कि संसार के जीवों की बुद्धि इनके वास्तविक आशय (अभिप्राय) के विषय में सोच ही नहीं सकती। इन हरुफ-ए-मुक्तेआत में परमधाम के मूल मिलावा से सम्बन्धित बातें हैं, जिन्हें या तो श्री प्राणनाथ जी ही जानते हैं या परमधाम की आत्मायें जानती हैं।

तरफ भी किन पाई नहीं, पावे तो जो दूसरा होए।

तुम तो बीच वाहेदत के, और जरा न कित काहूं कोए॥७०॥

आज तक इस सृष्टि में कोई भी यह नहीं जान सका है कि परमधाम किस ओर है। परमधाम में यदि तुम्हारे अतिरिक्त कोई और (सृष्टि) होती, तब तो वह परमधाम के विषय में जान भी सकती। तुम तो परमधाम की एकदिली में रहने वाली हो, अर्थात् तुम मेरे ही दिल की स्वरूपा हो (मुझसे भिन्न नहीं हो)। तुमसे भिन्न (अलग) स्वरूप तो परमधाम में एक कण भी नहीं है।

तुम जानो हम जाहेर, होएं जुदे हक बिगर।

हम तुम अर्स में एक तन, तुम जुदे होए सको क्यों कर॥७१॥

तुमने अभी तक यही समझा था कि तुम इस संसार में मेरे बिना ही जाहिर (प्रकाश में आना) हो जाओगी। परमधाम में मेरे और तुम्हारे तन एक ही समान हैं। ऐसी स्थिति में तुम मुझसे अलग कैसे हो सकती हो।

भावार्थ- श्री राज जी के दिल से ही श्यामा जी सहित सभी सखियों का तन प्रकट रूप में दृष्टिगोचर हो रहे हैं। यही कारण है कि धाम धनी ने सखियों को अपना तन कहा है अर्थात् उनके अन्दर स्वयं श्री राज जी ही विराजमान होते हैं, क्योंकि सखियाँ तो उन्हीं की हृदय स्वरूपा हैं।

दुनी जुदे तुमें तो जानहीं, जो तुम जुदे हो मुझ सें।
 हम तुम होसी भेले जाहेर, अपना वाहेदत हैं अर्स में॥७२॥

यदि तुम मुझसे अलग होती, तब तो लोग तुम्हें मुझसे अलग भी मानते। परमधाम में हमारा और तुम्हारा स्वरूप एक ही है अर्थात् तुम सभी मेरी हृदयस्वरूपा हो। इस संसार में भी हम-तुम एकसाथ ही उजागर (जाहिर) होंगे।

मैं तेहेत-कबाए तुमको रखे, कोई जाने ना मुझ बिन।

तुमको तब सब देखसी, होसी जाहेर बका अर्स दिन॥७३॥

मैंने तुम्हें मूल मिलावा (अपने दामन) में इस प्रकार छिपाकर रखा है कि मेरे अतिरिक्त अन्य कोई भी तुम्हारे विषय में कुछ नहीं जानता। जब तारतम ज्ञान के प्रकाश में अज्ञानता की रात्रि मिट जायेगी तथा दिन के उजाले की तरह अखण्ड परमधाम का ज्ञान प्रकाशित हो जायेगा, उस दिन सारा ब्रह्माण्ड तुम्हारी पहचान कर लेगा।

भावार्थ- कुरआन के पारा ९ में वर्णित है कि अल्लाहतआला ने रूहों को तहतकबाए तले छिपाकर रखा है। जिस प्रकार अपने बागे के दामन या आँचल के नीचे छिपा लेने पर किसी अन्य की दृष्टि नहीं पड़ती, उसी प्रकार हद या बेहद के किसी भी व्यक्ति को मूल मिलावा

का ज्ञान ही नहीं है जहाँ आत्मायें धनी के चरणों में बैठी हुई हैं।

जब पेहेले मोको सब जानसी, तब होसी तुमारी पेहेचान।

हम तुम अर्स जाहेर हुए, दुनी कायम होसी निदान॥७४॥

संसार के लोग पहले मुझे जानेंगे, तब उन्हें तुम्हारी पहचान होगी। जब संसार को मेरी, तुम्हारी, और परमधाम की पहचान हो जायेगी, उस समय निश्चित रूप से यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड योगमाया के ब्रह्माण्ड में अखण्ड हो जायेगा।

भावार्थ— इस जागनी लीला में केवल थोड़े से ही लोगों को अक्षरातीत, आत्माओं, तथा परमधाम की जानकारी मिल पायेगी। वास्तविक रूप से सभी लोगों को धाम धनी की पहचान योगमाया के ब्रह्माण्ड में ही होगी, क्योंकि

वहाँ जाग्रत बुद्धि का प्रकाश होगा।

यह स्वप्नवत् ब्रह्माण्ड है। इस प्रकार, यहाँ की बुद्धि भी मोहमयी है। इस संसार में जाग्रत बुद्धि का ज्ञान आया है। धाम धनी की कृपा से किसी-किसी को ही जाग्रत बुद्धि मिलती है। इस सम्बन्ध में कलश हिन्दुस्तानी १/३६ में कहा गया है—

निज बुध आवे अग्याए, तोलों ना छूटे मोह।

मैं तुमारा मासूक, तुम मेरे आसिक।

और तुम मासूक मैं आसिक, ए मैं पुकारया माहें खलक॥७५॥

मैंने इस संसार के धर्मग्रन्थों में कह रखा है कि मैं तुम्हारा (आत्माओं का) माशूक हूँ और तुम मेरे आशिक हो। इसी प्रकार मैं तुम्हारा आशिक हूँ और तुम मेरे माशूक हो।

हैं को नहीं कीजिए, सो तो कबू न होए।

नहीं को है कीजिए, सो कर न सके कोए॥७६॥

ऐसा तो कभी भी सम्भव नहीं है कि किसी अखण्ड वस्तु का अस्तित्व नष्ट हो जाये। इसी प्रकार किसी नश्वर वस्तु को अखण्ड करना भी मेरे अतिरिक्त और किसी के लिये सम्भव नहीं है।

भावार्थ- इस चौपाई में यह जिज्ञासा होती है कि क्या अक्षर ब्रह्म की पञ्चवासनाओं को अक्षरातीत ने ही अखण्ड मुक्ति दी है?

यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि जो जिसकी उपासना करता है, वह उसी को प्राप्त होता है। अक्षर और अक्षरातीत का स्वरूप एक ही है, दो नहीं। दोनों में मात्र लीला भेद है, स्वरूपगत भेद कुछ भी नहीं है।

वस्तुतः इस चौपाई में ब्रह्माण्ड को अखण्ड करने का

प्रसंग है। अक्षर ब्रह्म के मन (अव्याकृत) के स्वप्न में इस ब्रह्माण्ड की रचना हुई है। इसे अखण्ड करने के लिये जाग्रत अवस्था में जाना आवश्यक है। यद्यपि मूल अक्षर ब्रह्म के साथ नींद या स्वप्न का कोई सम्बन्ध नहीं होता, केवल संकल्प मात्र ही होता है, फिर भी श्री राज जी की प्रेरणा का होना आवश्यक है।

जिस प्रकार व्रज लीला को अखण्ड करने के लिये, अक्षर ब्रह्म ने उसे जाग्रत अवस्था में देखा तो वह अखण्ड हो गयी। उसी प्रकार, यही स्थिति इस जागनी लीला के साथ भी है। "व्रज लीला सों बांधी सुरत, अखण्ड भई चढ़ आई चित" प्रकटवाणी ३७/४८ का कथन यही संकेत करता है।

हक आप काजी होए बैठसी, सो क्या सहूर न किए सुकन।
ला सरीक न बैठे किन में, ना कोई वाहेदत बिन॥७७॥

क्या तुमने धर्मग्रन्थों में लिखे हुए मेरे वचनों का विचार नहीं किया, जिनमें लिखा है कि स्वयं परब्रह्म सबका न्याय करेंगे। मैं परमधाम की आत्माओं के अतिरिक्त मायावी जीवों के दिलों में कभी विराजमान नहीं होता।

सहूर बिना सब रहे गया, और सहूर लदुन्नी माहें।

सो तो सूरत हकीय पे, और वाहेदत बिना कोई नाहें॥७८॥

धर्मग्रन्थों का वास्तविक चिन्तन न होने से संसार के लोगों को अध्यात्म का पूर्ण आनन्द न मिल सका। तारतम ज्ञान के बिना धर्मग्रन्थों का यथार्थ चिन्तन भी सम्भव नहीं है। इस प्रकार समस्त धर्मग्रन्थों का वास्तविक चिन्तन मात्र श्री प्राणनाथ जी और आत्माओं

के ही पास है।

चौदे तबक इतना नहीं, जाके कीजे टूक दोए।

बिना वाहेदत कछूए ना रख्या, क्यों ना देख्या लिख्या सोए॥७९॥

चौदह लोक का यह ब्रह्माण्ड तो इतना भी बड़ा नहीं है कि इसके दो टुकड़े किए जा सकें। अखण्ड परमधाम के अतिरिक्त इस ब्रह्माण्ड का कोई भी अस्तित्व नहीं है। धर्मग्रन्थों में लिखे हुए इन वचनों का तुमने विचार क्यों नहीं किया।

भावार्थ— यद्यपि परमधाम के अतिरिक्त बेहद मण्डल भी अखण्ड है, किन्तु हृद में आयी हुई ब्रह्मात्माओं से धाम धनी कह रहे हैं, इसलिये यहाँ योगमाया के ब्रह्माण्ड की अखण्डता का कोई वर्णन नहीं किया गया।

कुरआन के २७वें पारे में यह वर्णित है कि यह ब्रह्माण्ड

इतना सूक्ष्म है कि यह सुई के छिद्र में भी नहीं समा सकता। इसी प्रकार वेदान्त के ग्रन्थों में इसे खरगोश की सींग के समान अस्तित्वविहीन कहा गया है। पुराण संहिता २१/६८ में कहा गया है कि स्वप्नावस्था के विनाश के पश्चात् नारायण कहाँ रहेंगे। इससे स्पष्ट है कि यह सम्पूर्ण जगत् नश्वर है।

दई कुंजी सनाखत तुम को, मैं भेज्या मासूक रसूल।

बेसक करियां दे इलम, सो भी गैयां तुम भूल॥८०॥

मैंने अपनी प्रियतमा श्यामा जी को तारतम ज्ञान की कुञ्जी देकर तुम्हारे पास पहचान कराने के लिये भेजा। उन्होंने तारतम ज्ञान से तुम्हें संशयरहित कर दिया। फिर भी तुम मुझे भूली ही रही।

तुम बैठे जिमी नासूती, आड़ा मलकूत जबरूत।

सात आसमान हवा बीच में, मैं बैठा ऊपर लाहूत॥८१॥

तुम इस मृत्युलोक में आयी हुई हो, जिसके ऊपर वैकुण्ठ है। उसे घेरकर सात आकाश (शून्य) तथा निराकार का पर्दा है। इसके परे अक्षर धाम (बेहद मण्डल) है, जिसके परे परमधाम (मूल मिलावा) में मैं विराजमान हूँ।

सो दूर राह आसमान लग, बीच ऐसे सात आसमान।

सो भी राह फरिस्तन की, ऊपर जुलमत ला मकान॥८२॥

वैकुण्ठ से निराकार मण्डल के बीच सात आकाशों की राह बहुत अधिक है अर्थात् इन सात आकाशों का बहुत अधिक विस्तार है। इसमें देवी-देवता निवास करते हैं। इसके ऊपर मोहतत्व (महाशून्य) का पर्दा है।

भावार्थ- मोह सागर (महाशून्य) अनन्त है। यह प्रकृति का सूक्ष्मतम् (महाकारण) स्वरूप है। इसके नीचे सात शून्य का विस्तार है। यह प्रकृति की कारण अवस्था का स्वरूप है। इसी कारण प्रकृति से सूक्ष्म महत्तत्त्व आदि की उत्पत्ति होती है।

नूर- मकान हुआ तिन पर, राह चले ना नूर पर।

जित पर जले जबरईल, तित वजूद आदम पोहोंचे क्यों कर॥८३॥

निराकार से परे बेहद मण्डल है। इसके आगे कोई भी नहीं जा सकता। जब इसके आगे जाने पर जिबरील के भी पर जलने लगते हैं, तो वहाँ मनुष्य का यह नश्वर शरीर कैसे जा सकता है।

द्रष्टव्य- "पर जलना" एक आलंकारिक कथन है। इसका आशय यह है कि जिबरील सत् का स्वरूप है।

वह प्रेम के धाम में नहीं जा सकता। पँख शक्ति के प्रतीक हैं। परमधाम में जाने में असमर्थ हो जाना ही पँखों का जलना है।

तित पोहोंच्या मेरा मासूक, कई गुझ बातें करी हजूर।

सो फिरया तुम रूहों वास्ते, आए जाहेर करी मजकूर॥८४॥

उस परमधाम में मेरे माशूक मुहम्मद साहिब पहुँचे और उन्होंने मुझसे कई गुह्य बातें की। उन रहस्यमयी बातों को तुम्हें प्रामाणिक रूप में बताने के लिये वे पुनः संसार में लौट आये तथा मुझसे होने वाली सारी बातों को उन्होंने कुरआन के माध्यम से प्रकट कर दिया।

मैं तुम पे भेजी रूह अपनी, अपन एते पड़े थे बीच दूर।

मैं इलम भेज्या बेसक, तुमें दम में लिए हजूर॥८५॥

इस संसार में आ जाने से मेरे और तुम्हारे बीच में बहुत अधिक अन्तराल आ गया था, इसलिये मैंने तुम्हारे पास श्यामा जी को भेजा। मैंने उनके माध्यम से तुम्हारे पास अपना संशयरहित तारतम ज्ञान भेजा और पल भर में तुम्हें अपने समक्ष (सामने) कर लिया।

भावार्थ- यद्यपि श्यामा जी के साथ ही सभी आत्मायें खेल में आयीं, किन्तु श्यामा जी को भेजने का आशय उस समय से है, जब धाम धनी ने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया और उनके धाम हृदय में विराजमान हो गये।

यह विशेष तथ्य है कि धाम धनी के आवेश स्वरूप से सखियाँ और श्यामा जी कभी भी दूर नहीं रहीं। उनके खेल में आये बिना तो सखियाँ भी नहीं आ सकतीं। "तुम हमको खेल दिखावन काज, हमसों आगे आए श्री राज" (प्रकास हिंदुस्तानी १८/६) का कथन यही भाव प्रकट

करता है।

राह सेहेरग सें देखाई नजीक, दर्ई हादिएं हकीकत।

पुल-सरात सें फिराए के, पोहोंचाए अर्स वाहेदत॥८६॥

श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में मैंने ब्रह्मवाणी द्वारा तुम्हें यह दर्शा दिया है कि मैं तुम्हारी शाहरग (प्राणनली) से भी अधिक निकट विद्यमान हूँ। तुम्हें संसार के कर्मकाण्ड के बन्धनों से निकालकर परमधाम की वहदत (एकदिली) के आनन्द में डुबो दिया है।

ऐसे परदेस में बैठाए के, इन बिध लिखी गुहाए।

इन धनी की गुहाई ले ले, हाए हाए उड़त ना अरवाए॥८७॥

तुम्हें माया में भेजने के पश्चात् भी मैंने तरह-तरह की साक्षियाँ धर्मग्रन्थों में लिखवायी। हाय ! हाय! कितने

आश्चर्य की बात है कि मेरी इतनी साक्षियों को लेने के बाद भी तुम मेरे प्रति अपना सर्वस्व समर्पण नहीं करती।

भावार्थ— इस चौपाई में शरीर छोड़ने का तात्पर्य ज्ञान—दृष्टि से छोड़ने से है। इस अवस्था में शरीर के प्रति नाममात्र का भी मोह नहीं रह जाता।

मैं साख देवाई दोऊ हादियों पे, सो तुमें मिले सब निसान।

अब तो बोले सब कागद, योंही बोली सब जहान॥८८॥

मैंने दोनों स्वरूपों (मुहम्मद साहिब तथा सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी) से तुम्हें जो साक्षियाँ दिलवायी हैं, वे तुम्हें अवश्य प्राप्त हो गयी होंगी। अब तो सभी धर्मग्रन्थ पुकार-पुकारकर कह रहे हैं तथा सारी दुनिया भी कह रही है कि तुमने इस ब्रह्माण्ड को अखण्ड किया है।

अब पाँचों तत्व पुकारहीं, आई रोड़ें बीच आवाज।

सो सब किए तुम कायम, वास्ते तुमारे राज॥८९॥

अब तो अखण्ड होने वाले इस ब्रह्माण्ड के पाँचों तत्व भी पुकार-पुकारकर इस बात की पुष्टि कर रहे हैं। मदीने में गिरी हुई दोनों मीनारों की ईंटों से भी आवाज आयी है कि तुमने संसार को अपना स्वामित्व दर्शाने के लिये सबको अखण्ड मुक्ति दी है।

भावार्थ- इस ब्रह्माण्ड के पाँचों तत्व जड़ हैं। वे प्रत्यक्ष रूप से बोल नहीं सकते। उनके द्वारा बोले जाने का कथन अलंकारमयी भाषा में व्यक्त किया गया है। जब दिल्ली में १२ सुन्दरसाथ को यातना दी गई तो मुहम्मद साहिब की दरगाह की दो मीनारें गिर पड़ीं। वहाँ आकाशवाणी भी हुई कि हिन्दुस्तान में इमाम महदी जाहिर हो चुके हैं। मुहम्मद साहिब ने स्वप्न में दर्शन

देकर भी इमाम महदी के प्रकट होने की बात कही, किन्तु शरियत के बन्धनों में फँसे हुए मुसलमान इस बात पर भी ईमान नहीं ला सके। इसी सम्बन्ध में वहाँ से वसीयतनामे भी लिखकर दिल्ली में औरंगजेब के पास आये।

इस्क सबों में अति बड़ा, बका भोम चेतन।

दायम नजर तले नूर के, पेहेचान सबों पूरन॥९०॥

योगमाया में अक्षर ब्रह्म की दृष्टि में अखण्ड हो जाने के पश्चात् संसार के सभी प्राणियों को अक्षरातीत की पहचान हो जायेगी। जिस बेहद मण्डल में सभी प्राणी आठ बहिश्तों में अखण्ड होंगे, वह भूमिका सर्वदा चेतन और अखण्ड रहने वाली है। वहाँ सभी में एक-दूसरे के प्रति अटूट प्रेम रहेगा।

सो ए करें तुमारी बंदगी, एही इनों जिकर।

इनों सिर हक एक तुम हीं, और कोई ना वाहेदत बिगर॥९१॥

योगमाया में अखण्ड होने वाले जीव तुम्हें परब्रह्म का स्वरूप मानकर तुम्हारी प्रेमपूर्वक भक्ति करेंगे और सर्वदा ही तुम्हारी चर्चा किया करेंगे। उन्हें अखण्ड मुक्ति देने वाले परब्रह्म स्वरूप एकमात्र तुम्हीं हो। उनके हृदय में ब्रह्मरूप होकर मात्र तुम्हीं रहोगे।

भावार्थ- महाप्रलय के पश्चात् आत्मायें तो अपने मूल तन में पहुँच जायेंगी तथा उनके जीव सत्स्वरूप की पहली बहिश्त में ब्रह्मसृष्टियों (परात्म) की नकल का स्वरूप बन जायेंगे। अन्य सात बहिश्तों वाले इन्हीं को ब्रह्मसृष्टि मान लेंगे। धाम धनी ने अपनी अँगनाओं के जीवों को भी ऐसी महान शोभा दी है।

ए कायम सब आगे ही किए, तुम हादी रूहों वास्ते।

जो देखो अन्दर विचार के, तो रूह साहेदी देवे ए॥९२॥

मेरी आत्माओं! माया के इस खेल में श्यामा जी सहित तुम्हारे आने के कारण इस ब्रह्माण्ड को अखण्ड कर लेने का निर्णय मैंने बहुत पहले ही कर लिया था। यदि तुम अपने दिल में विचार करके देखो, तो तुम्हारी आत्मा भी इस सम्बन्ध में तुम्हें साक्षी देगी।

भावार्थ— मूल स्वरूप ने अपने दिल में जो कुछ भी ले लिया है, वह अवश्य होगा। धाम धनी ने इस खेल में आने से पहले ही अपने दिल में ब्रज, रास, एवं जागनी ब्रह्माण्ड की सम्पूर्ण तस्वीर (चित्रांकन) खींच ली थी। उन्होंने उसी समय इस ब्रह्माण्ड को अखण्ड करने का भी विचार ले लिया था, जिसे इस चौपाई के पहले चरण में व्यक्त किया गया है। इस प्रकार का कथन काव्यगत

सौन्दर्यबोधक एवं भावात्मक है, क्रियापरक नहीं। बिना महाप्रलय के जब जीव ही योगमाया में नहीं पहुँचेंगे, तो किसको अखण्ड किया जायेगा।

जिन हरबराओ मोमिनों, हुकम करत आपे काम।

खोल देखो आंखें रूह की, जिन देखो दृष्ट चाम॥९३॥

मेरी आत्माओं! तुम जागनी कार्य की देरी के प्रति घबराओ नहीं। मेरा हुकम स्वयं ही सारे कार्य कर रहा है। अपने भौतिक चर्म-चक्षुओं से इसे मत देखो। बल्कि यदि तुम अपने आत्मिक नेत्रों से देखोगी, तो तुम्हें सारी वास्तविकता का पता चल जायेगा।

राज रोज रूहन का, जब पोहोंच्या इत आए।

तखत बैठे साह कहावते, देखो क्यों डारे उलटाए॥९४॥

इस बात को तुम गम्भीरतापूर्वक देखो कि जब संसार में तुमारी गरिमा के प्रकाश में आने (जाहिर होने) का समय आया, तो मेरे हुक्म ने उस औरंगजेब बादशाह को तख्त-ए-ताऊस से नीचे गिरा दिया जो अपने को सारी दुनिया का मालिक समझता था।

भावार्थ- १२ सुन्दरसाथ को जब दिल्ली में यातना दी गयी, तो इस दुर्व्यवहार से औरंगजेब के बुरे दिन प्रारम्भ हो गये। एक दिन जब वह प्रसिद्ध सिंहासन "तख्त-ए-ताऊस" पर बैठने गया, तो उसे सिंहासन पर भयानक सिंह बैठा हुआ दिखायी दिया। वह केवल औरंगजेब को ही दिखायी देता था, अन्य को नहीं। औरंगजेब ने जब सिंहासन पर बैठने से मना कर दिया, तो उसके दरबारियों ने कहा कि कहीं भी कोई शेर नहीं है। आपको भ्रम हो रहा है। सबके दबाव पर औरंगजेब ने जैसे ही

बैठने का प्रयास किया, उसे पुनः सिंह दिखा और वह भय के मारे तख्त-ए-ताऊस से गिर पड़ा। यह सारी लीला धाम धनी के हुक्म से हुई। इस प्रकरण की चौपाई ९४, ९५ में यही प्रसंग वर्णित किया गया है।

पैगाम दिए तुम जिन को, जो कहावते थे सुलतान।

सो पटके उसी हुकमें, जिन फेरया हादी फुरमान॥९५॥

औरंगजेब अपने को संसार का स्वामी समझता था। उसने काजियों के दबाब में श्री जी द्वारा भेजे गये उस सन्देश (पैगाम) को भी ठुकरा दिया, जिसे लेकर तुम सभी गये थे। इसका परिणाम यह हुआ कि मेरे हुक्म ने उसे सिंहासन से नीचे पटक दिया।

भावार्थ- सत्ता के मद में मुगल बादशाहों में स्वयं को सारे संसार का मालिक समझने की मानसिकता थी।

औरंगजेब के नाम के साथ "आलमगीर" शब्द प्रयुक्त होता था, जिसका अर्थ होता है – सारे संसार का स्वामी। यही प्रवृत्ति उसके पूर्व के बादशाहों, शाहजहाँ और जहाँगीर में भी थी। आलमगीर, शाहजहाँ, और जहाँगीर शब्द एकार्थवाची हैं।

भरत खंड सुलतान कहावते, सो दिए सब फंदाए।

इन विध उरझे आपमें, सो किन्हूं न निकस्यो जाए॥९६॥

सम्पूर्ण भारतवर्ष का शहंशाह कहलाने वाला औरंगजेब बादशाह अपने अहंकार के फन्दे में इस प्रकार उलझ गया कि वह उससे किसी भी प्रकार से निकल नहीं सका।

भावार्थ– औरंगजेब को यह पता तो चल गया था कि इमाम महदी प्रकट हो चुके हैं, किन्तु अपने अहंकार के

कारण वह श्री जी के चरणों में नहीं आ सका। वह उन्हें गिरफ्तार करने के उद्देश्य से उदयपुर, रामनगर, और पन्ना आदि में अपनी सेना तो भेजता रहा, किन्तु अपने आत्म-कल्याण के लिये उसने शीश झुकाना उचित नहीं समझा। श्री जी के चरणों से दूर रहने का दुष्परिणाम यह हुआ कि दिन-प्रतिदिन उसका पतन होने लगा और सम्पूर्ण मुगल साम्राज्य का दीपक ही बुझ गया।

उलट पलट दुनियां भई, तो भी देखत नहीं कोए।

काढ़ ईमान कुफर दिया, ए जो सबे दुनी दीन दोए॥१७॥

संसार की स्थिति बिल्कुल बदल गयी है अर्थात् समस्त भारत से मुगलों का एकछत्र राज्य समाप्त हो चुका है, फिर भी कोई इसका अनुभव नहीं कर पा रहा है कि ऐसा कैसे हो गया। औरंगजेब के अन्दर धर्म और सांसारिक

कर्त्तव्यों के प्रति जो ईमान था, उसे मेरे हुक्म ने समाप्त कर दिया और उसके स्थान पर उसके मन में कुफ्र भर दिया।

भावार्थ- इमाम मेहंदी के प्रकटन की बात को जानते हुए भी न स्वीकारना "कुफ्र" कहलाता है। जिस इमाम महदी के आगमन की बात औरंगजेब बहुत पहले से देख रहा था, उनके आने पर अहंकार और सत्ता जाने के भय से वह समर्पण नहीं कर सका। सांसारिक व्यवहार में भी वह काफी क्रूर हो गया था। इसे ही दीन और दुनिया के प्रति अपने ईमान को छोड़कर काफिर बनना है।

हुकमें वेद कतेब में, लिखे लाखों निसान।

सो मिले कौल देखे तुम, हाए हाए अजूं न आवे ईमान॥९८॥

मेरे हुक्म से वेद और कतेब ग्रन्थों में मेरे और तुम्हारे

विषय में बहुत सी (लाखों) साक्षियाँ लिखी हुई हैं। धर्मग्रन्थों में लिखे हुए उन वचनों की सत्यता अब प्रमाणित हो गयी है, यह तुमने देख भी लिया है अर्थात् मेरा स्वरूप ही श्री प्राणनाथ जी के रूप में आत्माओं के साथ संसार में प्रकट हो चुका है। हाय! हाय! यह बहुत आश्चर्य की बात है कि इतना होने पर भी तुम्हारे हृदय में मेरे प्रति पूर्ण ईमान नहीं आ रहा है।

द्रष्टव्य— इस चौपाई के दूसरे चरण में "लाखों" शब्द का प्रयोग अतिशयोक्ति अलंकार के रूप में किया गया है। इसका भाव है— बहुत अधिक।

चाक चढ़ी सब दुनियां, आजूज माजूज हुए जोर।

सो तुम अजूं न देखत, एता पड़या आलम में सोर॥९९॥

सारा विश्व अस्थिर सा हो गया है। आजूज—माजूज की

शक्ति बढ़ गयी है अर्थात् संसार की आयु पूरी होने की ओर बढ़ रही है। संसार में इन बातों से शोर-शराबा हो रहा है। फिर भी, तुम्हें अभी भी कुछ नहीं दिखायी पड़ रहा है।

हुकम ल्याया जो हकीकत, सो क्यों कर ना देख्या सहूर।

ल्याया तुमारे अर्स में, हुकम जबराईल जहूर॥१००॥

मेरा हुकम परमधाम की वास्तविकता को वाणी के रूप में तुम्हारे पास लेकर आया है। तुमने उसका वास्तविक चिन्तन करके क्यों नहीं देखा। मैंने तुम्हारे धाम हृदय में हुकम और जोश को विराजमान कर दिया है।

भावार्थ— "हक हुकम तो है सबमें" के कथन से यह स्पष्ट है कि धाम धनी का हुकम सभी आत्माओं में लीला कर रहा है। इसी प्रकार जोश भी सबके साथ जुड़ा हुआ

है।

सिजदा जित सरीयत का, तित आए लिखाई पुकार।

एते किन वास्ते लिखे, ए तुम अजहूँ न किया विचार॥१०१॥

अरब की धरती पर शरियत का साम्राज्य है। वहाँ के मक्का-मदीना से वसीयतनामों लिखकर आए, जिनमें पुकार-पुकारकर यह बात कही गयी है कि इमाम महदी हिन्दुस्तान में जाहिर हो चुके हैं। तुमने तो आज दिन तक इस बात का विचार ही नहीं किया कि ये वसीयतनामों किनके लिये लिखे गये हैं।

भावार्थ- कुरआन के तीसवें पारे की इन्ना इन्जुलना आयत में परमधाम से आत्माओं के अवतरण का प्रसंग है। इसी प्रकार मुहम्मद साहिब ने भी हदीसों में कहा है कि कियामत के समय मेरे भाई (ब्रह्ममुनि, मोमिन) आने

वाले हैं, जिनके साथ आखरूल इमाम महदी भी होंगे। इस बात को दर्शाने के लिये ही वसीयतनामों लिखकर आये हैं।

किन लिखाए सख्त सौगंद, जो सरीयत सामी बल।

तिन सबको किए सरमिंदे, हाए हाए अजूं याद न आवे असल॥१०२॥

शरियत के बादशाह औरंगजेब के पास भेजे गए इन वसीयतनामों को किसकी प्रेरणा से इतनी सख्त कसम खाकर लिखवाया गया और शरियत के मानने वाले काजियों तथा वजीरों को किसने शर्मसार किया ? हाय! हाय! इतना जानने पर भी तुम्हें अपने मूल सम्बन्ध के प्रेम की याद नहीं आ रही।

दुनी बरकत सफकत फकीरों, और अल्ला कलाम।

उठाए दुनी से जबराईल, ल्याया अपने मुकाम॥१०३॥

मक्का से आने वाले वसीयतनामों में यह लिखा है कि जिबरील दुनिया की बरकत (खुशकिस्मती, कल्याण), फकीरों की सफकत (कृपा), और कुरआन को उठाकर हिन्दुस्तान में इमाम महदी के पास ले गया है।

भावार्थ- कुरआन को उठाकर ले जाने का तात्पर्य उसमें निहित गुह्य ज्ञान को ले जाने से है, ग्रन्थ को उठाकर ले जाने से नहीं।

महंमद मेंहेंदी ईसा अहमद, बड़ा मेला इसलाम।

जित सूर फूंक्या असराफीले, होसी चालीस सालों तमाम॥१०४॥

आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिब्बुज्जमां श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में मल्की सूरत सद्गुरु धनी श्री

देवचन्द्र जी (ईसा रूहुल्लाह अहमद) विराजमान हैं। श्री जी की छत्रछाया में श्री निजानन्द सम्प्रदाय के अनुयायियों का बहुत बड़ा समूह एकत्रित हो रहा है। जाग्रत बुद्धि का फरिश्ता इस्राफील ज्ञान का सूर फूँक रहा है। श्यामा जी के स्वामित्व का यह कार्यकाल चालीस वर्षों तक चलेगा।

भावार्थ— "अहमद" शब्द का तात्पर्य मल्की सूरत से है। पारा २८ आयत ६ में वर्णित है कि "मुहम्मद" साहिब कहते हैं कि मेरे बाद एक और पैगम्बर होगा जिनका नाम अहमद होगा।

सूर फूँकने का भाव है— ज्ञान की अखण्ड धारा का प्रवाहित होना। वि.सं. १७३५-१७७५ तक श्यामा जी के स्वामित्व (बादशाही) के चालीस वर्ष होते हैं। इस अन्तराल में ब्रह्मवाणी का सर्वोपरि ज्ञान (खिल्वत,

परिक्रमा, सागर, और श्रृंगार) अवतरित हुआ तथा उसका फैलाव हुआ।

किन उठाए हिंदू ठौर सिजदे, किन मिलाए आखिर निसान।

किन खड़े किए मोमिन, कराए पूरन पेहेचान॥१०५॥

मेरी आत्माओं! तुम इस बात पर विचार करो कि हिन्दुओं के बड़े-बड़े धार्मिक स्थानों की महिमा किसने समाप्त कर दी? कलियुग के अन्तिम समय की साक्षियों को किसने प्रमाणित किया? पूर्णब्रह्म के स्वरूप की पहचान कराकर किसने ब्रह्ममुनियों को जाग्रत किया?

भावार्थ- जब हिन्दू समाज को श्री विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप की पहचान हो गयी तो उसने देवी-देवताओं तथा विष्णु भगवान के अवतारों के धामों में जाना बन्द कर दिया। इसे ही धर्म

स्थानों की महिमा को समाप्त करना कहा गया है।

ए झंडा किने खड़ा किया, ए जो हकीकी दीन।

ए लाखों लोक हिंदुअन के, इनको किनने दिया आकीन॥१०६॥

परमसत्य का उद्धोष करने वाले श्री निजानन्द सम्प्रदाय का झण्डा (ध्वज) किसने खड़ा किया? लाखों हिन्दुओं को एक अक्षरातीत परब्रह्म के प्रति किसने आस्था दिलवायी है?

भावार्थ- इन सभी प्रश्नों का एकमात्र उत्तर है कि श्री राज जी के हुक्म ने ही यह सब कुछ किया है।

ए जो द्वार अर्स अजीम का, किन खोल्या कुंजी ल्याए।

इलम लदुन्नी मसी बिना, और काहू न खोल्या जाए॥१०७॥

तारतम ज्ञान की कुञ्जी लाकर परमधाम का दरवाजा किसने खोला और परमधाम का साक्षात्कार करने का मार्ग किसने बताया? श्यामा जी के तारतम ज्ञान के बिना अन्य किसी भी माध्यम से परमधाम की अनुभूति नहीं की जा सकती है।

ए जो बुजरकी महंमद की, मेयराज हुआ इन पर।

महंमद साहेदी ईसे मेहेंदी बिना, कोई दूजा देवे क्यों कर॥१०८॥

रसूल मुहम्मद साहिब की महिमा बहुत अधिक है, क्योंकि उन्हें अल्लाह तआला का दीदार हुआ। इस बात की साक्षी सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी तथा श्री प्राणनाथ जी के बिना अन्य कोई नहीं दे सकता।

उठे दीन सखत बखत में, पसरया सबों में कुफर।

करें रुहें कुरबानी इन समें, ए क्यों होए रसूल ख बिगर॥१०९॥

ऐसे कठिन समय में, जब चारों ओर पाप ही पाप का बोलबाला है, तो धर्म की महत्ता समाप्त सी हो गयी है अर्थात् लोग धर्म के आचरण से दूर हो गये हैं। ऐसे समय में परमधाम की आत्मायें अपने सर्वस्व त्याग द्वारा सबको सत्य की राह दर्शायेंगी। ऐसा श्री महामति जी और अक्षरातीत के बिना कदापि सम्भव नहीं होगा।

भावार्थ- धर्म शाश्वत सत्य है। उसका अस्तित्व कदापि नष्ट नहीं हो सकता। कोई मत विशेष , उसके अनुयायियों, या धर्माचरण का लोप तो हो सकता है, किन्तु धर्म का नहीं, क्योंकि धर्म अनादि, अखण्ड, और परम सत्य है।

इस चौपाई के चौथे चरण में कथित "रसूल" शब्द का

आशय श्री महामति जी से हैं, जबकि "रब" का तात्पर्य अक्षरातीत (श्री राज जी, श्री प्राणनाथ जी, या श्री जी) से है।

किन सुख देखाय अर्स के, बहु विध बिना हिसाब।

अनुभव अपना देख के, हाए हाए अजू न उड़या ख्वाब॥११०॥

तुम्हें इस खेल में परमधाम के अनेक प्रकार के अनन्त सुखों की अनुभूति किसने करायी है? हाय! हाय! यह कितने आश्चर्य की बात है कि इतना अनुभव होने के पश्चात् तुमसे माया का यह संसार नहीं छूट पा रहा है।

भावार्थ— वस्तुतः समस्त आशा-तृष्णाओं से रहित होना ही स्वप्न का त्याग करना है। इसे ही संसार का त्याग कहते हैं। मात्र शरीर के त्याग (छोड़ने) को माया का त्याग नहीं कह सकते, क्योंकि सूक्ष्म और कारण

शरीर में ही जन्म-जन्मान्तरों की वासनाओं के बीज रहते हैं, जो स्थूल शरीर को पाकर प्रत्यक्ष रूप में दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

उतर आए कही रूहअल्ला, सुख सब असों हकीकत।

पाई हक सूरत की अनुभव, दर्ई निसबत मारफत॥१११॥

परमधाम से श्यामा जी आयीं और उन्होंने वैकुण्ठ, अक्षरधाम, तथा परमधाम की विवेचना की। उनके तारतम ज्ञान से तुमने मेरी शोभा का भी अनुभव कर लिया। श्यामा जी ने धनी से अपने मूल सम्बन्ध तथा अक्षरातीत के स्वरूप की भी पहचान करायी।

बहु विध भेज्या फुरमान, तिन में सब असों न्यामत।

खिलवत वाहेदत सुध भई, और सुध दर्ई कयामत॥११२॥

अनेक प्रकार के सुखों को देने वाली तारतम वाणी मैंने तुम्हारे पास भेजी है, जिसमें सभी धामों की ज्ञान रूपी सम्पदा निहित है। इस ब्रह्मवाणी से तुम्हें परमधाम की खिल्वत और वहदत की सुधि हुई है। इसी से अन्तिम समय में होने वाली कियामत की भी पहचान हुई है।

दोऊ हादियों दई साहेदी, मिलाए दिए निसान।

तो भी लज्जत ना पाई रूहों ने, हाए हाए जो एती भई पेहेचान॥११३॥

मुहम्मद साहिब तथा सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने सभी धर्मग्रन्थों के कथनों से मेरी और परमधाम की साक्षी दी है। हाय! हाय! तुम्हें इतनी पहचान हो गयी, फिर भी तुमने परमधाम के आनन्द का रसास्वादन नहीं किया।

भावार्थ— इस चौपाई में यह जिज्ञासा होती है कि जब

मुहम्मद साहिब अनपढ़ थे, तो उन्होंने सभी धर्मग्रन्थों की साक्षी कैसे दे दी?

कुरआन की आयतें तभी उतरती थीं, जब जिबरील आता था। कुरआन में मुहम्मद साहिब ने अपनी बुद्धि से सोचकर कुछ भी नहीं कहा है। तौरेत, इंजील, तथा जंबूर का सार तत्व कुरआन के अन्दर आ चुका है। इसके अतिरिक्त मेअराज का भी वर्णन है, जो तौरेत, इंजील, या जंबूर में नहीं है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जिबरील के माध्यम से मुहम्मद साहिब ने कतेब परम्परा के सभी धर्मग्रन्थों का उद्धरण दिया है।

हौज जोए की साहेदी, और जिमी बाग जानवर।

दई जुदी जुदी दोऊ साहेदी, तो भी दिल गल्या नहीं पत्थर॥११४॥

इन दोनों स्वरूपों ने अपनी आत्मिक दृष्टि से देखकर

हौज कौशर, यमुना जी, परमधाम की नूरमयी धरती, बागों, तथा जानवरों की साक्षियाँ दी हैं। इन दोनों स्वरूपों द्वारा दी हुई साक्षियाँ अलग-अलग भाषाओं में अलग-अलग ग्रन्थों में है। इतना जानने पर भी तुम्हारा पत्थर जैसा कठोर दिल जरा भी नहीं पिघला, अर्थात् प्रेम में द्रवित (रसमग्न) नहीं हो सका।

भावार्थ- मुहम्मद साहिब द्वारा परमधाम के सम्बन्ध में दी हुई साक्षियाँ कुरआन-हदीसों में है, जबकि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने कोई भी ग्रन्थ नहीं लिखा। उन्होंने चर्चा द्वारा परमधाम का वर्णन किया तथा आड़िका लीला द्वारा यमुना जी के जल का कुछ अनुभव कराया। श्यामा जी ने अपने दूसरे तन में परिक्रमा ग्रन्थ का अवतरण किया, जिसमें परमधाम का विस्तारपूर्वक वर्णन है।

दोए अर्स कहे दोऊ हादियों, कही अर्सों की मोहोलात।

कही अमरद और किसोर, ए अर्स सूरत हक जात॥११५॥

इन दोनों स्वरूपों (हादियों, सूरतों) ने अक्षरधाम तथा परमधाम का वर्णन किया है। इन्होंने दोनों धामों के रंगमहलों की भी शोभा बतायी। श्री राजश्यामा जी एवं सखियों के स्वरूप को इन्होंने किशोरावस्था (अमरद सूरत) के रूप में वर्णित किया है।

भेज्या बेसक दारू हैयाती, तुम पे मेरे हाथ हबीब।

किए चौदे तबक मुरदे जीवते, तुम को ऐसे किए तबीब॥११६॥

मैंने तुम्हारे पास अपनी प्रियतमा श्यामा जी के हाथ से तारतम ज्ञान रूपी ऐसी औषधि भेजी है, जो भवरोग से छुड़ाकर अखण्ड मुक्ति का आनन्द देने वाली है और सभी संशयों से निवृत्त करने वाली है। मैंने इस प्रकार की

अलौकिक औषधि देकर तुम्हें ऐसा वैद्य बना दिया है कि उससे तुमने इस ब्रह्माण्ड के सभी मरे हुए प्राणियों को जीवित कर दिया है अर्थात् अखण्ड मुक्ति प्रदान की है।

भावार्थ- इस चौपाई में संसार में भटकने वाले जीवों को मरा हुआ कहा जाना अलंकारमयी भाषा है। जो स्वयं अपने स्वरूप एवं परब्रह्म के स्वरूप को नहीं जानता, वह मृतक के समान है। निज स्वरूप की पहचान कर लेने को ही जाग्रत होना कहते हैं।

न थी हिंमत आप उठे की, सो तुम उठाए चौदे तबक।
ऐसा किया बैठ नासूत में, तुमें इनमें रही न सक॥११७॥
तुम्हारे अन्दर तो स्वयं को भी जाग्रत करने का साहस नहीं था, किन्तु तुमने इस मृत्युलोक में रहकर भी इतना बड़ा काम किया है कि तारतम ज्ञान के बल से तुम चौदह

लोक के इस ब्रह्माण्ड को ही जाग्रत करने वाले हो। अब तुम्हारे अन्दर इस बात में किसी भी प्रकार का कोई संशय नहीं रह गया है।

भावार्थ- सामान्य तरीके से पृथ्वीवासियों का स्वर्ग एवं वैकुण्ठवासियों को ज्ञान सुनाकर जाग्रत करना सम्भव नहीं है। जब ब्रह्मसृष्टियों की जागनी हो जायेगी , तो जाग्रत बुद्धि विष्णु भगवान को जाग्रत करेगी। उनके जागते ही चौदह लोक के सभी प्राणी जाग्रत हो जायेंगे। ब्रह्मसृष्टियों के कारण ही जाग्रत बुद्धि को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इसलिये ब्रह्मसृष्टियों को ही समस्त ब्रह्माण्ड को जाग्रत करने की शोभा दी गयी है। इस सम्बन्ध में कलस हिन्दुस्तानी २३/१७,१८ का कथन है-

हम बुध नूर प्रकास के, जासी हमारे घर।

वैकुण्ठ विष्णु जगावसी, बुध देसी सारी खबर॥

खबर देसी भली भांतें, विष्णु जागसी तत्काल।
तब आवसी नींद इन नैनों, प्रलय होसी पंपाल॥

ऐसे बेसक होए के, तुमें अजूं न अर्स लज्जत।
एता मता ले दिल में, हाए हाए तुमें दरदा भी न आवत॥११८॥
तुम इस प्रकार से संशयरहित हो चुके हो, किन्तु तुम्हें
अभी भी परमधाम के आनन्द का रसास्वादन प्राप्त नहीं
हो रहा है। तुमने अपने हृदय में इतना अलौकिक ज्ञान
ग्रहण कर लिया है, फिर भी हाय! हाय! तुम्हारे अन्दर
मेरे लिये विरह-प्रेम का दर्द क्यों नहीं है?

हाए हाए ए देख्या बल जुलमत का, दिल ऐसा किया सखत।
ना तो एक साख मिलावते, अर्स अरवा तबहीं उड़त॥११९॥

हाय! हाय! इस मोहसागर की शक्ति ही ऐसी देखी गयी है कि इसने तुम्हारे दिल को कठोर बना दिया है, अन्यथा प्रियतम की थोड़ी सी पहचान होते ही आत्मायें इस शरीर और संसार को छोड़ देंगी।

भावार्थ- एक साक्षी मिलने का तात्पर्य है - थोड़ी सी पहचान होना।

स्याबास तुमारी अरवाहों को, स्याबास हैड़े सखत।

स्याबास तुमारी बेसकी, स्याबास तुमारी निसबत॥१२०॥

मुझे भूल जाने के लिये तुम्हें शाबाशी है। इसी प्रकार तुम्हारे कठोर हृदय को भी शाबाशी है कि उनमें मेरे प्रति प्रेम पैदा नहीं हुआ। तुम्हारे संशयरहित होने पर भी मैं तुम्हें धन्य-धन्य कहता हूँ कि सब कुछ जानकर भी तुम मेरे प्रति समर्पित नहीं हो सकी। मुझसे जो तुम्हारा मूल

सम्बन्ध है, उसे भी मैं शाबाशी दे रहा हूँ कि इस संसार में मेरे अतिरिक्त अन्य कइयों से तुम्हारे माया के घनिष्ठ सम्बन्ध हैं।

भावार्थ- उपरोक्त सभी कथन व्यंग्यात्मक हैं, जो प्रेम की मीठी टीस से भरे हुए हैं। इस प्रकार के कथन प्रेम के विवाद में स्वाभाविक ही होते हैं। अगली चौपाई में भी यही बात दर्शायी गयी है।

धन धन तुमारे ईमान, धन धन तुमारे सहूर।

धन धन तुमारी अकलें, भले जागे कर जहूर॥१२१॥

मेरे प्रति तुम्हारा ईमान (विश्वास) धन्य-धन्य है, जो माया के थपेड़ों से डगमगाता रहा है। तुम्हारे द्वारा किया जाने वाला चिन्तन भी धन्य-धन्य है, जिसने तुम्हें चितवनि में न ले जाकर मात्र शब्द -जाल में ही बाँधे

रखा। तुम्हारी इस महान बुद्धि को भी धन्य-धन्य है, जिसके द्वारा तुमने ब्रह्मवाणी का ज्ञान ग्रहण किया और उसके प्रचार से अपनी महिमा फैलाकर स्वयं को जाग्रत हुआ मान रही हो।

अर्स बताए दिया तुमको, और बताए दई वाहेदत।

सहूर इलम कुंजी सब दई, बैठाए माहें खिलवत॥१२२॥

मैंने ब्रह्मवाणी द्वारा तुम्हें परमधाम तथा वहाँ की एकदिली (एकत्व) की पहचान करायी। तारतम ज्ञान रूपी कुञ्जी और परमधाम की चितवनि (सहूर) देकर मैंने तुम्हें आत्म-दृष्टि से मूल मिलावा में बैठा दिया।

एता मता जिन दिया, तिन आप देखावत केती बेर।

पर तुमें राखत दोऊ के दरम्यान, ना तो क्यों रहे मोह अंधेर॥१२३॥

जब मैंने तुम्हें अपनी इतनी निधियाँ दे रखी हैं, तो मुझे तुम्हारे लिये दर्शन देने में कितनी देर लग सकती है। मैंने तो परमधाम के साथ-साथ इस संसार में भी जान-बूझकर तुम्हें रखा हुआ है, अन्यथा यदि तुम्हें मेरा दीदार मिल जाये तो तुम्हारे लिये इस मोहमयी जगत का अस्तित्व ही क्यों रहेगा, कदापि नहीं।

भावार्थ- इस संसार में आत्मा का तन है, तो परमधाम में परात्म का तन। धाम धनी के हुकम से ही आत्मायें इस नश्वर जगत् से बँधी हुई हैं, अन्यथा अपने प्राणवल्लभ का दर्शन पाने के पश्चात् तो कोई भी आत्मा इस संसार में रहना निरर्थक ही समझेगी।

बड़ाई तुमारी बका मिनें, निपट दर्ई निहायत।

तुमें खुदा कर पूजसी, ऐसी और ना काहू सिफत॥१२४॥

निश्चित रूप से अखण्ड सत्स्वरूप की पहली बहिश्त में मैंने तुम्हें अनन्त महिमा दी है। इस बहिश्त में तुम्हारे प्रतिबिम्बित तनों को अन्य बहिश्तों वाले परब्रह्म की अर्धांगिनी मानकर पूजा करेंगे। इतनी बड़ी महिमा और किसी की भी नहीं है।

भावार्थ- "ब्रह्मसृष्टि कही वेद ने, ब्रह्म जैसी तदोगत" के कथनानुसार ब्रह्मसृष्टि और अक्षरातीत में कोई भेद नहीं है। इस प्रकार, इस चौपाई के तीसरे चरण में परब्रह्म मानकर पूजा करने का आशय ब्रह्मसृष्टियों की पूजा करने से है।

परब्रह्म तो एक है, किन्तु ब्रह्मात्माओं के तन बारह हजार हैं। इस चौपाई में जब सभी आत्माओं को सम्बोधित करके धाम धनी स्वयं कह रहे हैं, तो सभी की पूजा (सम्मान) होना अनिवार्य है। यह ध्यान देने योग्य

तथ्य है कि सत्स्वरूप में जिन तनों को ब्रह्मसृष्टि मानकर पूजा होगी, वे परात्म के प्रतिबिम्ब स्वरूप होंगे और उनमें वे जीव विद्यमान होंगे जिन पर विराजमान होकर आत्माओं ने खेल को देखा है। इन तनों को अक्श कहा गया है, जिनका विवरण चौपाई १२७ में दिया गया है।

ऐसी हुई न होसी कबहूँ, जो तुम को दर्ई साहेबी।

ए सुध अजूं तुमें ना परी, सुध आगूं तुमें होएगी॥१२५॥

सत्स्वरूप की पहली बहिस्त में मैंने तुम्हें जो शोभा दी है, ऐसी शोभा न तो पहले कभी किसी की हुई है, और न भविष्य में कभी होगी ही। यद्यपि तुम्हें अभी इसकी पहचान नहीं है, किन्तु बाद में परात्म में पहुँचने के पश्चात् होगी।

भावार्थ— आत्मार्ये जब अपने परात्म को प्राप्त हो जायेंगी

तथा उनके जीव परात्म का प्रतिबिम्ब लेकर सत्स्वरूप की पहली बहिश्त में सुशोभित होंगे, तब ब्रह्मसृष्टियों को धनी द्वारा दी गयी अपनी शोभा का अहसास होगा।

तुम खेल में आए वास्ते, करी कायम जिमी आसमान।
 तिन सब के खुदा तुमको किए, बीच सरभर लाहूत सुभान॥१२६॥
 इस मायावी जगत् में तुम्हारे आने के कारण ही मैंने धरती से लेकर आकाश तक के इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अखण्ड कर दिया। परमधाम में जो मेरी शोभा है, वही शोभा मैंने तुम्हें सत्स्वरूप में दी है अर्थात् अन्य सभी बहिश्तों वाले तुम्हें मेरा ही स्वरूप मानकर पूजेंगे।

सो भी पूजें तुमारे अक्स को, तुम आए असल वतन।
 तिन सबकी लज्जत तुमें आवसी, सब तले तुमारे इजन॥१२७॥

इस खेल को देखकर तुम तो अपने घर परमधाम आ जाओगी, किन्तु सत्स्वरूप में जो तुम्हारी परात्म का प्रतिबिम्बित स्वरूप होगा, उसे ही तुम्हारा स्वरूप मानकर अन्य बहिश्तों वाले परब्रह्म के समान पूजेंगे और सभी तुम्हारे आदेश (हुक्म) के अधीन होंगे। तुम्हें इस सारी लीला का रसास्वादन हमेशा प्राप्त होता रहेगा।

भावार्थ- उपरोक्त चौपाइयों में पूजा का तात्पर्य इस पृथ्वी लोक में होने वाली षोडशोपचार पूजा नहीं है, बल्कि श्रद्धा व सम्मान युक्त प्रेम रसना ही पूजा है।

ए सब बातें ले दिल में, और दिलको लिख्या अर्स।

भिस्त करी तुम कायम, होसी तामें बड़ा तुमें जस॥१२८॥

इन बातों का अपने दिल में विचार करके ही मैंने तुम्हारे दिल को धर्मग्रन्थों में "धाम" के रूप में लिखा है। तुमने

जो यह बहिश्तें अखण्ड की हैं, उससे तुम्हें बहुत यश मिलने वाला है।

तुम दर्ई भिस्त बका ब्रह्मांड को, तिनमें जरा न सक।

किए नाबूद से आपसे, तो भी गुन जरा न देख्या हक॥१२९॥

इसमें नाम मात्र भी संशय नहीं है कि मेरी छत्रछाया में तुमने इस ब्रह्माण्ड के सभी जीवों को बेहद की बहिश्तों में अखण्ड मुक्ति दी है। यद्यपि तुमने इस नश्वर जीवों को अपने ही समान अखण्ड बना लिया है, फिर भी तुम्हें मेरी मेहर की जरा भी पहचान नहीं हुई है।

भावार्थ— जीवों को अखण्ड मुक्ति तो धाम धनी ने ही दी है, किन्तु ब्रह्मसृष्टियों के हाथ से मुक्ति दिलवाकर उनको शोभा दे रहे हैं। यही तो आशिक (श्री राज जी) का आशिकपना है। ऐसी अवस्था में भी यदि आत्मायें अपने

प्राणवल्लभ के प्रेम को न समझें, तो क्या इस भूल का प्रायश्चित हो सकता है?

सो तुमें याद आवसी, ओ तुमें करसी याद।

तुमें पूजें जिमी बका मिने, अजुं इनका केता ल्योगे स्वाद॥१३०॥

जब तुम अपने धाम में पहुँच जाओगी तो तुम्हें उन जीवों की याद आयेगी, जिनको तुमने अखण्ड किया है। बेहद मण्डल के अखण्ड जीव भी तुम्हें याद करेंगे और तुम्हें ब्रह्म स्वरूपा मानकर उस अखण्ड धाम में तुम्हारी पूजा करेंगे, जबकि तुम अभी भी इस झूठी माया में फँसी पड़ी हो। अभी तुम इसका कितना स्वाद लेना चाहती हो?

तुम मांगी है बुजरकी, तिनसे कोट गुनी दई।

दे साहेबी ऐसे अघाए, चाह चित्त में कहूं न रही॥१३१॥

तुमने मुझसे जो खेल में बड़प्पन (श्रेष्ठता का भाव) माँगा है, मैंने उससे करोड़ों गुना तुमको दिया है। मैंने तुम्हें स्वामित्व (साहिबी) की ऐसी शोभा दे दी है कि तुम पूर्णतया तृप्त हो गयी हो और अब तुम्हारे दिल (चित्त) में कोई भी चाहना बाकी नहीं रह गयी है।

क्यों देवें तुमको साहेबी, बीच जिमी फना मिने।

तिनसे तुमारी उमेदें, होएं न पूरन तिने॥१३२॥

मैं तुम्हें इस झूठे संसार में साहिबी क्यों दूँ? इसमें तो तुम्हारी इच्छायें कभी भी पूर्ण नहीं हो सकतीं।

भावार्थ— यह नश्वर ब्रह्माण्ड अतृप्ति का है। आज तक इस ब्रह्माण्ड में किसी की कोई भी इच्छा यथार्थ रूप में

पूर्ण नहीं हो सकी है। इसलिये , धाम धनी ने अपनी अँगनाओं को अखण्ड मण्डल की ही शोभा दी है, जो अनन्त काल तक बनी रहेगी।

तुम मांगी बीच ख्वाब के, जित आगे अकल चलत नाहें।
 धनी देवें आप माफक, याकी सिफत न होए जुबांए॥१३३॥

तुमने मुझसे इस स्वप्न के संसार में साहिबी (स्वामीपना) माँगी थी। इस हद के ब्रह्माण्ड से परे योगमाया का ब्रह्माण्ड है, जहाँ इस संसार की बुद्धि नहीं चलती। अपनी गरिमा के अनुकूल मैंने तुम्हें जो शोभा दी है, उसकी महिमा इस जिह्वा के शब्दों से नहीं हो सकती।

तुम आए तिन जिमीय में, जिनमें न काहूँ सबर।
 पेहेलें बिन मांगे दर्ई तुमको, अब होसी सब खबर॥१३४॥

तुम ऐसी झूठी दुनिया में आयी हो, जिसमें किसी को कभी भी सन्तोष नहीं होता है। अब तुम्हें इस बात की जानकारी हो जायेगी कि मैं पहले से ही बिना तुम्हारे माँगे सब कुछ पूर्ण करता रहा हूँ।

खेल देखाया तिन वास्ते, उपजे तुमको चाह।

ए खेल देख के मांगोगे, जानो होवें हम पातसाह॥१३५॥

मैंने तुम्हें माया का यह खेल भी इसलिये दिखाया है कि तुम्हारे अन्दर माया की कोई इच्छा पैदा हो। मैं यह जानता था कि इस खेल में आकर तुम्हारे अन्दर भी यह इच्छा अवश्य पैदा होगी कि काश! हम भी बादशाह (सम्राट) होते।

सो कई पातसाही जिमी पर, करें पातसाही बीच नासूत।
 कई तिन पर इंद्र ब्रह्मा फरिस्ते, तापर पातसाह माहें मलकूत॥१३६॥
 इस पृथ्वी लोक में अनेक बड़े-बड़े चक्रवर्ती सम्राट हुए
 हैं, जिन्होंने इस पर शासन किया है। इनके ऊपर इन्द्र,
 ब्रह्मा जी, और अन्य देवी-देवता हैं। इन सबके ऊपर भी
 सम्राट के समान वैकुण्ठ में विष्णु भगवान हैं।

कई कोट मलकूत जात हैं, जबरूत के एक पलक।
 ए सब पातसाही फना मिने, इनों का खुदा नूर हक॥१३७॥
 अक्षरधाम में विराजमान अक्षर ब्रह्म के एक पल में
 करोड़ों वैकुण्ठ उत्पन्न होकर लय हो जाते हैं। इस प्रकार
 पृथ्वी लोक से लेकर वैकुण्ठ-निराकार तक के साम्राज्य
 का स्वामित्व नश्वर है। सभी वैकुण्ठ लोकों के अधिपति
 विष्णु भगवान के लिये अक्षर ब्रह्म ही परब्रह्म हैं।

नूरजलाल आवे दीदारें, जो अपन बैठे माहें लाहूत।

तिन चाह्या देखों रूहों इस्क, तुमें तो देखाया नासूत॥१३८॥

जब हम परमधाम में तीसरी भूमिका की पड़शाल में बैठे होते हैं, तो अक्षर ब्रह्म प्रतिदिन हमारे दर्शन के लिये चाँदनी चौक में आते हैं। उन्होंने यह देखना चाहा कि मेरा तुम्हारे साथ कैसा प्रेम है। यही कारण है कि मैंने तुम्हें माया का यह पृथ्वी लोक दिखाया है।

तुमें नासूत देख दिल उपज्या, करें पातसाही फना में हम।

मैं दर्ई पातसाही बका मिने, सो अब देखोगे सब तुम॥१३९॥

इस पृथ्वी लोक के झूठे सम्राटों को देखकर तुम्हारे मन में भी यह इच्छा हुई कि हमें भी स्वामित्व करने को मिल जाता। तुम्हारी इच्छा को पूर्ण करने के लिये ही मैंने तुम्हें अखण्ड का स्वामित्व (बादशाही) दे दिया। इस प्रकार

तुम अपने स्वामित्व का अनुभव करोगी।

ए सुध तुमको ना हुती, तो तुम थोड़ा मांग्या निपट।

कोट गुना दिया तुमको, खोल देखो अंतर पट॥१४०॥

तुम्हें संसार के स्वामित्व की पहचान नहीं थी, इसलिये तुमने बहुत थोड़ी सी साहिबी (स्वामित्व) माँगी। यदि तुम माया के पर्दे को हटाकर अपने आत्म-चक्षुओं से देखो तो तुम्हें यह विदित हो जायेगा कि जितना तुमने माँगा था, उससे करोड़ों (अनन्त) गुना स्वामित्व मैंने तुम्हें दिया है।

जैसी तुमारी साहेबी, करी मेहेर तिन माफक।

सुध हुए खुसाली होएसी, जो करी अपने मासूक हक॥१४१॥

तुम्हारी जैसी साहिबी (स्वामित्व) है, उसके अनुकूल

ही धाम धनी ने मेहर की है। जब तुम्हें इसकी पहचान होगी, तब तुम्हें बहुत अधिक आनन्द का अनुभव होगा। इस प्रकार की मेहर स्वयं श्री राज जी ने ही की है।

देखो अचरज महामत मोमिनों, जो बेसक हुए हो तुम।
 तुमें किन दर्ई एती बुजरकी, दिल अर्स कर बैठे खसम॥१४२॥
 श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी ! आश्चर्य की यह बात देखिये कि इस मायावी खेल में भी आपको धाम धनी ने तारतम वाणी से पूर्णतया संशयरहित कर दिया है। उन्होंने आपको बेहद में इतनी बड़ी साहिबी (बड़प्पन) दे दी है और इस खेल में भी आपके दिल को अपना धाम बनाकर विराजमान हो गये हैं।

प्रकरण ॥२९॥ चौपाई ॥२२११॥

॥ सिनगार सम्पूर्ण ॥